विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २३ | मेष, संवत् १९८३ | संख्या १

चन्द्रमामें मनुष्य

वैज्ञानिक कल्पना

[अनुवादक—श्रीनवनिहिराय, एम. ए.]

क्टर हफमरने ज़रा ज़ोरसे कहा, "शीलू, आज मैं तुम्हें अपना एक और आविष्कार दिखलाऊंगा । अभीतक किसीको इसका हाल मालूम नहीं है । यह आविष्कार बड़े महत्वका है । पृथ्वी-पर एक नई हलचल इससे पैदा हो जायगी, मानवजीवनपर इसका विचित्र प्रभाव पड़ेगा । मेरा विचार है कि मेरे अन्य आविष्कारोंसे इसका महत्त्व अधिक होगा । अच्छा आओ, मैं तुम्हें अपना बृहद् दूरदर्शक दिखलाऊं ।"

"क्या आपने दूरदर्शक यंत्रमें कोई नय आविष्कार किया है ? साधारण यंत्रोंसे क्या आपने कोई अधिक उन्नत दूरदर्शक बनाया है ।"

"हाँ और नहीं, बात साफ़ यह है कि मैंने एक बिलकुल नया ही यंत्र बनाया है । दूरदर्शकका स्थान यह यंत्र ले लेगा । इसकी आकारवर्द्धक शक्ति अबतक बने दूरदर्शकोंसे बहुत अधिक है । साथही इसमें चीज़ें बहुत साफ़ दिखलाई पड़ती हैं ! मैंने कई वर्ष दूरदर्शक यंत्रको उन्नत करनेमें लगाये परन्तु मुझे बहुत कम सफलता प्राप्त हुई । मैंने कई कारखानोंको बड़ी बड़ी रक़में देनेका वादा करके यह प्रयत्न किया कि वह मेरे लिए अबतक बने हुए दूरदर्शक यंत्रोंसे अधिक बड़ा और अच्छा यंत्र बनावे फल कुछ भी न हुआ । रुपया देना पड़ा बहुत और हाथ कुछ भी न लगा । मैं कोई भी महत्वका आविष्कार न कर सका । मैंने

निश्चय किया कि इस मामलेको मैं स्वयं अपने हाथमें लूँ। साधारण मार्गको छोड़ कोई नया मार्ग ढूँढ निकालूँ। दूरदर्शक है क्या? एक साधारण आकारवर्द्धक यंत्र। मुझे एक बात सूझी। किसी ग्रह या तारेका प्रतिबिम्ब या छायाचित्र शीशेपर लिया जाय और इस चित्रको फिर जितना चाहे उतना आकारमें बढ़ा लें। मुझे कोई कारण इसके असंभव होनेका नहीं मालूम हुआ।"

शैलेन्द्रकुमार चट्टोपाध्याय (शीलू बाबू) बोल उठे, "नहीं साहब, इसमें कुछ असम्भव नहीं जान पड़ता। परन्तु प्रयोग करके देखना चाहिए कि वास्तविक बात कैसी ठहरती है।"

डाक्टर हक्सब बोले, "हां, परन्तु कई समस्याएँ उपस्थित हो गई—

१—प्रत्येक बार आकार बढ़ानेसे प्रकाशमें कमी हो जाती है इसलिए तारे या ग्रहसे प्राप्त प्रकाशको बढ़ा सकनेके लिए कोई तरकीब निकालनी चाहिए। २—आकार बढ़नेमें प्रकाशकी किरणोंका वक्रीभवन (refraction) होता है जिसके कारण कुछ न कुछ टेढ़ापन और विरूपता चित्रमें आजाती है। प्रत्येक बार आकार बढ़ानेसे विरूपताकी मात्रा बढ़ती जायगी। विरूपताकी मात्रा न्यूनतम करनेका प्रयत्न जरूरी था, अन्यथा मेरा दूरदर्शक बिलकुल भोंडा ठहरता। ३—भिन्न भिन्न रंगोंके प्रकाशके लिए वक्रीभवन समान नहीं है। इसलिए जब जब और जितनी बार आकार बढ़ाया जायगा उतनाही प्रकाशकी किरणें इन्द्र-धनुषके रंगोंमें अधिक विभक्त हो जायँगी। इसीको रंग-विरूपता (chromatic aberration) कहते हैं। इसे भी दूर करनेकी तरकीब सोचना था। ४—यंत्रके तालों (lenses) में जो कुछ कमी होगी या पृथ्वीके वायुमंडलमें जो अशुद्धता होगी वह भी मात्रामें बढ़ जायँगे और चित्रमें अशुद्धता और विरूपता उत्पन्न करेंगे। यह चार कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

"इसलिए मैंने निम्नलिखित विधिसे काम लिया। मैंने चन्द्रमाके आकारवर्द्धित चित्रको पहले एक दर्पणपर लिया। इस शीशेको मैंने तेज़ बिजलीकी रोशनीसे प्रकाशमय कर लिया। और तब मैंने पुनः आकारवर्द्धित चित्र इस चित्रसे एक परदेपर डाला, जो स्वयं एक दर्पण था। इस विधि-से प्राप्त बड़ा चित्र उतनाही प्रकाशमय था जितना पहला चित्र। मैंने इस चित्रके थोड़ेसे भागको लेकर परिवर्द्धित किया और एक तीसरे दर्पणपर इस चित्रको डाला, चित्रमें प्रकाश उतनाही बना रहा या जब मैंने चाहा प्रकाशको और भी बढ़ा दिया। इस प्रकार मैंने प्रकाशकी समस्या हल कर दी। वक्रीभवनकी विरूपता तथा रंग-की विरूपताको यथासंभव दूर करने या बहुत कम करनेके लिए मैंने प्रत्येक चित्रके बिलकुल केन्द्रीय भागको ही आकार बढ़ानेके लिए लिया। तुम जानते हो कि किनारोंकी अपेक्षा चित्रके केन्द्रपर सदा कम बिगाड़ होता है इस प्रकार अब मैं बिलकुल स्पष्ट चित्र प्राप्त कर लेता हूँ चाहे जितने बार आकारवर्द्धन करके मैंने बड़ा चित्र बनाया हो। तालोंकी कमी दूर करनेके लिए मैंने कारखानोंसे अधिकसे अधिक शुद्ध ताल बनवाये। वायुमंडलमें अशुद्धताके कारण चित्रमें विरूपता न आवे इसलिए मैंने अपना दूरदर्शक बड़े ऊँचे पहाड़की चोटीपर लगाया। मुझे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। स्वप्नमें भी मैं यह विश्वास नहीं करता था कि मेरा एक साधारण विचार इतना महत्वपूर्ण फल मुझे दे सकेगा। परन्तु मेरी प्रयोगशालासे यह यंत्र बहुत दूर था इसलिए काम करनेमें बड़ी असु-विधा थी। बस मैंने एक और तरकीब ढूँढ निकाली। मैंने अपने विद्युद्दर्शक यंत्र (television apparatus) का थोड़ासा संस्कार कर दिया। तुम इस यंत्रको देख ही चुके हो। मैंने तुम्हें बत-लाया था कि ब्रह्माण्डमें प्रत्येक पदार्थ radio-active है अर्थात् उसमेंसे निरन्तर आकाश-

से तरंगें प्रसारित होती रहती हैं। मेरा विद्युद्दर्शक यंत्र ऐसे सिद्धान्तपर बना है कि मैं जब चाहूँ इन तरंगोंको यंत्रमें प्राप्त कर लूँ। मैं अपने यंत्रको इस प्रकार मिला सकता हूँ कि उसके द्वारा चाहे जिस लम्बाईकी तरंगें प्राप्त कर लूँ। साथही यह भी प्रबन्ध मेरे यंत्रमें है कि केवल किसी दिशा विशेषसे और एक निश्चित दूरीसे आनेवाली तरंगें ही यंत्रमें प्राप्तकी जायँ। बर्धकों (amplifiers) द्वारा मैं इन तरंगोंकी शक्तिको बढ़ा सकता हूँ और विशेष रीतिसे तैयार किये गये परिवर्त्तकों (audions) द्वारा मैं इन रेडियो तरंगोंको पुनः प्रकाश तरंगोंमें परिवर्तित कर सकता हूँ और इस प्रकार जिस वस्तुसे तरंगें आती हैं उसका चित्र भी प्राप्त कर सकता हूँ।

"अभीतक मैं अपने विद्युद्दर्शक यंत्रको केवल पृथ्वीपरकी चीज़ें देखनेके लिए काममें लाया करता था। इस यंत्रकी शक्ति बढ़ाते बढ़ाते मैं चीन और अमरीकातककी वस्तुएँ देख सकता हूँ। बारह हज़ार मीलकी दूरीका चीज़ें देखना मेरे यंत्र द्वारा बिलकुल साधारण काम हो गया। चन्द्रमा पृथ्वीसे केवल २४० हज़ार मीलकी दूरी पर है। कितनेही आदमी इतने मील अपने जीवन में चल चुके होंगे। मैंने सोचा कि क्यों न मैं अपने यंत्रको और भी उन्नत करूँ। क्यों न चन्द्रमा-परकी चीज़ें देखनेके लिए अपने यंत्रमें कुछ परिवर्त्तन या परिवर्द्धन करूँ। इस प्रकार मैं उन सब समस्याओंको हल कर सकूँगा जो संसारके ज्योतिषियोंको परेशान किये हुए हैं।"

शीलू बोले—"क्यों साहब! अपने यंत्रको ज़रा और अधिक शक्तिवाला बना लिया होता तो अच्छा था। बुध और मंगल ग्रहोंको भी हम लोग देख सकते। यह प्रश्न तै हो जाता कि बुध और मंगलमें भी मनुष्य हैं अथवा केवल जानवर और वृक्षही इन ग्रहोंपर आधिपत्य जमाये हुए हैं। चन्द्रमा तो शीतप्रधान है ही। चन्द्रमामें न वायु है और न जल। जीवन किसी भी रूपमें वहाँ मौजूद नहीं हो सकता। दूरदर्शक यंत्र द्वारा मैंने चन्द्रमाको देखा है। चन्द्रमाके तलपर केवल शान्त ज्वालामुखी हैं वहाँ किसी प्रकारके जीवधारी नहीं हैं।"

डाक्टर हक्सर कहकहा मारकर हँस पड़े, बोले "शीलू बाबू! इतना निश्चयात्मक फैसला न कीजिए। संभव है आपने जो कुछ देखा वह ठीक न हो। पहली बात तो यह है कि यह आपके ज्वालामुखी केवल शान्त ज्वालामुखी नहीं हैं। निस्सन्देह बुध और मंगलमें पृथ्वी जैसे जीवनका अनुमान कर लेना ठीक ही है क्योंकि इन ग्रहोंमें साधारण अवस्था पृथ्वी जैसी ही है। चन्द्रमामें जल या वायुका कुछ भी पता नहीं चलता इसलिए यदि हम जल्दीसे यह निश्चय कर लें कि वहाँ किसी प्रकारका जीवन संभव नहीं तो ठीक ही है। जैसे गरम देशोंमें रहनेवाले मनुष्य यह कैसे अनुमान कर सकते हैं कि ध्रुव-प्रदेशमें किसी मनुष्यके लिए रहना सम्भव है। पर एस्किमो ध्रुवके पासतक रहते है। रहते रहते एस्किमोको ध्रुव प्रदेशकी सरदी सहनेकी आदत पड़ गई है उनका स्वभाव ऐसाही हो गया है। क्या यह सम्भव नहीं कि चन्द्रमामें भी कोई प्राणी रहते हों, जिनका स्वभाव लाखों वर्षोंमें चन्द्रमामें जीवित रहनेके लिए विकसित हुआ है।"

शीलू ने कहा—"मान लीजिए कि चन्द्रमामें जीवन मौजूद है। वहाँ भी किसी प्रकारके प्राणी रहते हैं। पर एक बात आपको माननी ही पड़ेगी कि जीवनका विकास वहाँपर पृथ्वीसे बहुत पीछे है, हमारी पृथ्वी पुरानी है इसकी अपेक्षा चन्द्रमा बिलकुल नया है।"

डाक्टर हक्सर ने जवाब दिया—"न जाने कैसे यह विचार सर्वसाधारणमें फैल गया है। सत्य इसके बिलकुल विपरीत है। चन्द्रमा पृथ्वीसे अधिक पुराना है। यहाँ मैंने साधारण जनताके विचारानुसार भाषाका प्रयोग किया है। सच

पूछिए, चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों एकही उम्रके हैं। दोनोंही सूर्यमेंसे निकले हैं। नीहारिका-वाद (nebular hypothesis) के अनुसार पहले सूर्य ज्वलन्त विशाल पिंड था। सब ग्रह उसीमें सम्मिलित थे। उसका विस्तार नेपच्यूनतक था। यह ज्वलन्त दग्ध पिण्ड ठंडा हुआ और सिकुड़ा। सबसे पहले नेपच्यून इस पिण्डसे अलग होकर एक ग्रहके रूपमें बन गया। ज्यों ज्यों सूर्यपिण्ड ठंडा होता और सिकुड़ता गया उसमेंसे कुछ टुकड़े अलग होते गये। युरेनस शनि, बुध और मंगल ग्रह क्रमानुसार बनते गये। सबसे अन्तमें पृथ्वी सूर्यसे अलग हुई। उस समय पृथ्वी और चन्द्रमा एक सम्मिलित पिण्डके रूपमें थे। जब पृथ्वी ठण्डी हुई तो उसका एक भाग अलग होकर चन्द्रमा बन गया। इसलिये चन्द्रमा पृथ्वीका लड़का कहा जाता है। जब चन्द्रमा पिण्ड-से अलग हुआ था तो वह इस पिण्डका सबसे ठण्डा भाग था। पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक ठण्डा था ही, साथही आकारमें छोटा होनेके कारण वह पृथ्वीकी अपेक्षा जल्दी ठण्डा होता गया। पृथ्वी तो बहुत देरमें प्राणियोंके वासके योग्य हुई होगी, परन्तु चन्द्रमा पृथ्वीसे लाखों वर्ष पहले प्राणियोंके वासके योग्य हो गया होगा। इसलिए हम कह सकते हैं कि चन्द्रमा हमारी पृथ्वीसे पुराना है। वहाँ जीवनका विकास हमारे यहाँसे लाखों वर्ष पहले आरम्भ हो गया था। वहाँपर शायद विकासकी गति भी तेज़ रही होगी। यदि चन्द्रमामें भी मनुष्य जैसे बुद्धि वाले जीवधारी पैदा हुए थे तो उन्हें इतनी बुद्धि और ज्ञान संचय करनेका अवसर मिल चुका होगा जिसका हम अभी पृथ्वीपर अनुमान भी नहीं कर सकते।"

शीलू ने उत्सुकतासे पूछा—"डाक्टर महोदय, क्या आप विश्वास करते हैं कि चन्द्रमामें भी हमारे ही जैसे स्त्री पुरुष रहते हैं?"

डा० हकसर ने सिर हिलाया, कहा—"नहीं शीलू, यह सम्भव नहीं। मैं तो बुद्धि वाले प्राणियों की बात कह रहा था मनुष्योंकी नहीं।"

शीलूने पूछा—"तो आप यह कैसे निश्चय करते हैं कि चन्द्रमामें मनुष्य नहीं?"

डा० हकसर बोले—"शीलू, इस प्रश्नका उत्तर मैं अभी देता हूँ। पहले तुम यह समझ लो कि पृथ्वीपर जीवधारियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई। यहाँ-पर जीवन कैसे आरम्भ हुआ। स्पष्ट है कि जब पृथ्वी ज्वलन्त अवस्थामें थी तो यहाँपर किसी भी प्रकारका जीवन न था। कमसे कम यह अनुमान नहीं कर सकते कि उस समय यहाँपर किसी प्रकारका जीवन संभव था। पृथ्वीतल ठंडा हुआ तो धातु बने, और ठंडक आनेपर रासायनिक संयोग हुए जिनके फलस्वरूप छोटे छोटे ठोस कण बने होंगे और ठंडे होनेपर ठोस पृथ्वी बनी होगी और तब एक सेल वाले अर्थात् बिलकुल आरम्भिक अवस्थाके वृक्ष अमीबाके रूपमें प्रादुर्भूत हुए होंगे। अमीबामें केवल एक शक्ति रहती है। प्रोटोप्लाज़्म या अमीबाको जिससे छूते हैं तो वह सिकुड़ता है। जीवनकी यही आरम्भिक अवस्था है। अमीबामें एक और शक्ति होती है। वह भोजनको सोख सकता है और बढ़कर दो टुकड़ोंमें विभक्त हो जाता है। प्रोटोप्लाज़्मका यह प्रत्येक कण अब अलग अलग विकसित होकर फिर स्वयं विभक्त हो जाता है। पृथ्वीपर जीवनका इसी प्रकार आरंभ हुआ होगा। यह प्रश्न उठता है कि पृथ्वीके समस्त जीवधारी एक प्रोटोप्लाज़्मके एक ही कणसे विकसित हुए हैं या बहुतसे जीवाद्यमके कण एक साथ उत्पन्न हुए थे और उनसे यह सृष्टि चल पड़ी। यह भी सम्भव है कि स्वतः सृष्टि इस समय भी होती जा रही हो। मेरी राय तो यह है कि समस्त जीवधारी पशु और वृक्ष एक ही प्रकारके आरम्भिक वृक्ष-सेलसे विकसित हुए हैं। वनस्पतियों और प्राणियोंके जीवनमें इतना साम्य है कि मुझे अपना अनुमान बिलकुल ठीक जान पड़ता है।"

शीलू बाबू फूल उठे। मुस्कुराते हुए बोले—"तो फिर चन्द्रमामें भी जीवन इसी प्रकारके सेलसे आरम्भ हुआ होगा। वहाँ भी विकासक्रम पृथ्वीके समान हुआ होगा। और वहांपर भी मनुष्य बन गये होंगे।"

डा० हक्सरने उत्तर दिया—"तुम्हारा अनुमान संभवतः ठीक है। परन्तु जिस निश्चयपर तुम पहुँचे हो वह ठीक न हो। यह तो मैं मानता हूँ कि शायद चन्द्रमापर भी ठीक पृथ्वी जैसे अमीबासे विकास आरंभ हुआ। यह भी संभव है कि वहां जीवनका विकास बिलकुल और ही तरहसे आरम्भ हुआ हो। हम भी कल्पना कर सकते हैं कि पशुओं या वृक्षके अतिरिक्त और प्रकारके भी जीव और देहधारी हो सकते हैं। तब भी यही अधिक संभव मालूम होता है कि जीवनका आरम्भ चन्द्रमा तथा पृथ्वीपर एक ही विधिसे हुआ। कारण, पृथ्वी और चन्द्रमाकी बनावट एक ही थी और उनकी आरंभिक अवस्थाओंमें बड़ा साम्य था।"

शीलू बाबू प्रसन्न होकर बोले—"तो जब आरंभ एक ही समान हुआ और अवस्थाएँ भी समान थीं तो फल समान होने चाहिएँ।"

डाक्टर कुछ नाखेपनसे बोले—"शीलू तुम एक बात भूल गये, पृथ्वीपर भी समान अवस्थामें एक ही स्थानसे चलकर करोड़ों तरहके वृक्ष और जानवर बन गये हैं, एक ओर हाथी दूसरी ओर सीपी। चन्द्रमापर भी बिलकुल समान अवस्थामें करोड़ों प्रकारके प्राणी बने होंगे और उनमें आपसमें एक दूसरेसे बड़ी विभिन्नता होगी। इसलिये हम कैसे मान सकते हैं कि मनुष्य जैसा प्राणी चन्द्रमामें भी होगा। ध्यान रहे, चन्द्रमामें एक दिन हमारे १४ दिनोंके बराबर होता है और वहाँ सूर्यकी किरणोंके उत्तापको शान्त करनेके लिये वायुमण्डल नहीं है इसलिए चन्द्रमाका तापक्रम दिनमें इतना अधिक हो जाता है कि सब चीज़ें झुलस जाती होंगी। इसके बाद १४ दिन लम्बी रात्रि आती है। तापको सुरक्षित रखनेके लिये वायुमण्डल तो है नहीं इसलिए आकाशमें तापका विकिरण हो जाता है और इतनी शीत हो जाती है कि हम उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। पृथ्वीसे इतनी भिन्न अवस्था होनेके कारण चन्द्रमामें बिलकुल और ही तरहके प्राणी और वृक्ष विकसित हुए होंगे।

"चन्द्रमापर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति पृथ्वीसे बहुत कम है इसलिए भी विकास क्रमपर विशेष प्रकारका प्रभाव पड़ा होगा। चन्द्रमातलपर आकर्षण पृथ्वीके आकर्षणका छठा भाग है। डेढ़ सौ पौण्ड भार वाला मनुष्य चन्द्रमापर जाकर केवल २५ पौंड भारमें रह जायगा। यदि अब भी जानवर और वृक्ष चन्द्रमापर विद्यमान् हैं तो वह यहाँके वृक्षों और जानवरोंसे अवश्य भिन्न होंगे। मुझे विश्वास है कि निम्न-श्रेणीके जानवरोंमें अस्थिपंजर नहीं होता होगा। ऊँच श्रेणीके जानवरोंमें अस्थिपंजर होता होगा परन्तु वह सब दिशाओंमें एक समान फैला होगा। कुछ वृक्ष और जानवर एक ही स्थानपर स्थित होंगे और चल फिर न सकते होंगे तथा कुछमें गति होगी अर्थात् एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा सकते होंगे उनकी इन्द्रियोंमें यह शक्ति अवश्य होगी कि वह अपने भोजनको पकड़ कर हज़म कर सकें। मैं यह नहीं कह सकता कि वह साँस लेते हैं या नहीं। हमारी पृथ्वीपर वृक्ष जब साँस लेते हैं तो कार्बनद्विओषिदको अपने अन्दर लेकर कार्बन और ओषजनमें विभक्त कर लेते हैं। हमारे यहाँके जानवर वायुमेंसे ओषजन अन्दर ले लेते हैं और साँसके साथ बाहर कार्बन-द्विओषिद निकाल देते हैं। संभव है कि चन्द्रमामें बिलकुल भिन्न प्रकारकी सृष्टि हो। वहाँपर किसी और रासायनिक संयोगसे प्राणियोंके अन्दर शक्तिका उत्पादन होता हो।"

शीलूने पूछा—"चन्द्रमामें लिंगभेद किस प्रकार है। क्या वहाँ पर भी स्त्री-पुरुष होते हैं?"

डाक्टर हक्सरने जवाब दिया—"इस प्रश्नका उत्तर समझनेके लिये पहले यह देखना चाहिए कि पृथ्वीपर लिंगका विकास किस तरह हुआ। निम्नातिनिम्न श्रेणीके प्राणियों और वृक्षोंमें लिंगभेद नहीं है उनमें स्त्री या पुरुष भेदकी आवश्यकता ही नहीं उनमें प्रजननकी क्रिया अत्यन्त सरल है। वह पहले बढ़ते जाते हैं और तब दो या अधिक भागोंमें विभक्त होकर नये सेल बना देते हैं। विकासकी दूसरी श्रेणीमें दो जीवित एक सेलवाले प्राणी संयुक्त होकर अपने परस्पर संयोगसे एक नया एक सेलवाला प्राणी उत्पन्न करते हैं। यहाँ अभीतक लिंगका विकास नहीं हुआ है दोनों सेल, समान हैं दोनोंके संयोग मात्रसे सृष्टि होती है। पर इसके बाद लिंग-भेद आरम्भ होता है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंगमें विकास होने लगता है और जो नई सेल उत्पन्न होने लगती हैं उसमें शुक्र सेल (sperm cell) और अण्डज सेल (egg cell) दोनों अलग अलग उत्पन्न होने लगते हैं। कहीं कहीं पुरुष और स्त्री भिन्न व्यक्ति होते हैं या दोनों एक ही व्यक्तिके दो भाग होते हैं जैसे फूलनेवाले पौधोंमें। अब इसके बाद सृष्टिकी दूसरी श्रेणियोंका विकास होता है।

"हम लोगोंको यह कितना असंभव मालूम पड़ता है कि सृष्टिमें लिंगका विकास इतने धीरे हुआ। यह समझमें मुश्किलसे आता है कि बिना स्त्री-पुरुषके संयोगके ही अण्डा कैसे बढ़ने लगता है। परन्तु इस समय भी ऐसे प्राणी मौजूद हैं जिनमें बिना ऐसे संयोगके ही अण्डे बढ़ने लगते हैं। एक प्रकारकी ऐसी मछली है जो पहले अण्डे दे देती है तब नर उन अण्डोंमें शुक्र । संयोग कर देता है। इसलिये सृष्टिके विकास क्रममें नरका मादाके साथ रहना बहुत बादमें आया होगा। विकासक्रममें एक सीढ़ी और आगे ऐसे प्राणी विकसित हुए होंगे जिनमें स्त्रीपुरुष संयोगके बाद अण्डे दिये जाते होंगे। और फिर बहुत दिनोंके विकासके बाद वह जीवधारी उत्पन्न हुए होंगे जिनमें बच्चा निकलनेके कई महीने पहले, संयोग होता है।

अब अनुमान कीजिये कि चन्द्रमामें लिंगभेदका विकास कैसे हुआ। यह मान सकते हैं कि वह जीवधारी जो विकासके आरंभिक अवस्था में हैं लिंगहीन होंगे अर्थात् उनमें लिंगभेदका विकास न हुआ होगा। पर लिंगसंयोगसे विकास में तथा सृष्टिमें अत्यन्त सुविधा हो जाती है इसलिए किसी न किसी रूपमें लिंगका विकास चन्द्रमामें भी अवश्य हुआ होगा। परन्तु यह बात मुझे बहुत संभव मालूम होती है कि चन्द्रमामें दो से अधिक लिंग विकसित हुए हों। मेरे अनुमानमें यह भी आता है कि शायद चन्द्रमामें तीन या तीनसे अधिक जन्मदाताओं के परस्पर संयोग के बादही एक बच्चा उत्पन्न होता हो या अंडा एक माँके शरीरसे निकलकर दूसरेके शरीरमें जाता हो या कई शरीरोंमें भिन्न भिन्न अवस्थाओं तक विकसित होता हुआ एकसाथ कई जन्मदाता अर्थात् कई माता-पिताके शरीर मेंसे होता हुआ विकासकी उस अवस्था पर पहुँचता हो जब बच्चेका जन्म होता हो पर यह सब मेरा अनुमान ही है शायद चन्द्रमामें प्रजनन की क्रिया किसी ऐसी विचित्र विधिसे होती हो जिसका हमें पृथ्वी पर ज्ञान तक नहीं है। संभव है कि अब वहाँ कुछ रासायनिक संयोगसेही प्रजननका कार्य होने लगा हो या होनेको ही हो।

"परन्तु मैं तो कल्पनाके संसारमें विचरने लगा। ज़रा मेरे प्रयोगशालामें चलो। दो ही चार मिनटमें मैं तुम्हें कुछ सच्ची घटनाएँ दिखलाऊँगा। चलो मेरे यंत्रसे चन्द्रमा को देखो और मैं तुम्हें दो चार अपने गुप्त रहस्य भी बतलाऊँगा। मैंने एक ऐसी युक्तिकी कल्पनाकी है जो सफल हो गई तो मेरे अन्य सब आविष्कार इसके सामने बिलकुल साधारण सिद्ध होंगे।"

शालू विद्युद्दर्शक यंत्रके परदेके सामने बैठ तो गये पर उनके मुँह पर अविश्वासका भाव चित्रित

था। डा० हक्सर अपने यंत्रको ठीक करने लगे। शीलू शान्तिसे देखते रहे। पर एकाएक विस्मय और आह्लादसे उछल पड़े परदेपर ऐसा चित्र दिखलाई पड़ा जिसकी कल्पना भी करना इनके लिए असम्भव था।

डाक्टर हक्सर बतलाने लगे, "देखो यह चन्द्रमाके तलका बहुत छोटा सा अंश है। यह इतना साफ़ नहीं है। इस चित्रमें कुछ धुँधलापन है। कारण यह है कि कितने ही हज़ार गुना आकार वर्धक शक्तिका प्रयोग करके चित्र दिखलाया गया है। परन्तु इससे आपको चन्द्रमाकी अवस्थाका तथा चन्द्रमाकी चीज़ोंका बहुत ही स्पष्ट ज्ञान हो सकता है।

शीलू विस्मय भरी आवाज़से बोल उठे—"कैसे विचित्र वृक्ष हैं! क्यों साहब! यह हरे तो बिलकुल हैं ही नहीं। यह तो इन्द्रधनुषके सभी रंगोंसे रंजित हैं। कुछ लाल हैं। कुछ नीले, कुछ ऊदे, कुछ कासनी। कहीं नारंगी, हरा और पीला तीनों रंग एक ही वृक्षमें मौजूद हैं। कोई जादू तो आपने नहीं कर दिया? क्या कोई मदारीका खेल है? और देखिए तो इनकी शक्लें! ऐसे वृक्ष हमारी पृथ्वीपर तो होते नहीं! सम्भव है समुद्रके अन्दर जो वृक्ष होते हैं वह कुछ इनके समान हों। देखिए वह सुनहला पौधा! वह तो मूँगेके गुच्छे जैसा मालूम होता है। इनमेंसे कुछ तो पौधे क्या हैं केवल जड़ मात्र हैं। और वह क्या चीज़ें हैं जो फुदक रही हैं। देखिए वह घूमती फिरती हैं और कितना ऊँचा उछल जाती हैं। क्या यह कोई जन्तु हैं?"

डाक्टर हक्सर मुस्कुराते हुए बोले—"या तो यह कोई जानवर हैं या चलते फिरते वृक्ष।"

शीलूने कहा—"यह तो बड़े विचित्र हैं और एक और विचित्र बात यह है कि यह सब उलटे हैं। मानों चन्द्रमासे यह टँगे हुए हैं और बहुत जल्द वहाँसे अलग गिरनेवाले हैं।"

डाक्टर हक्सरने कहा—"एक बात मेरी समझमें नहीं आती। इन प्राणियोंमें मस्तिष्क है या नहीं। इनमें बुद्धिका विकास हुआ है या नहीं। प्रश्न है कि इनमें मेधा-शक्ति है या नहीं। अब हम लोग तो मस्तिष्क और बुद्धिवाले वृक्षोंकी कल्पना कर नहीं सकते परन्तु सृष्टिक्रममें यह कोई असम्भव बात भी नहीं है। मेरा विश्वास है कि चन्द्रतलसे लगे हुए जीवधारी वृक्षोंमें जीवन अवश्य है। छोटे छोटे पौधोंसे बड़े आकारतक मैंने इन्हें बढ़ते देखा है। इनका विकास केवल धातोंकी तरहका नहीं है परन्तु इनमें वास्तविक वृद्धि होती रहती है, जैसे पौधोंमें। परन्तु इनमेंसे कुछ बड़े ही विचित्र हैं. जबतक छोटे रहते हैं इधर उधर घूम सकते हैं परन्तु एक सीमातक बढ़कर यह एक ही स्थान-पर स्थिर हो जाते हैं, जंगमसे स्थावर हो जाते हैं। पृथ्वीपर दो चार ऐसे प्राणी हैं जैसे मेडूसा, (medusae) एक प्रकारकी मछली। आरम्भिक अवस्थामें यह मछली तैरती रहती है परन्तु इसके अण्डे जड़ पकड़ लेते हैं और बढ़कर कई भागोंमें विभक्त हो जाते हैं जिनमेंसे प्रत्येक एक मछली बन जाता है।

शीलू बोले—"इन प्राणियोंमें बुद्धि कभी नहीं हो सकती। देखिए कैसे इधर उधरसे लुढ़क रहे हैं!"

डा० हक्सर ने अब अपने यंत्रको चन्द्रमाके दूसरे भागकी ओर लगाया। अब परदेके ऊपर एक विचित्र यंत्रका चित्र दिखलाई पड़ा।

डा० हक्सर बोले—"देखो शीलू! यह क्या है? यह अवश्य कोई विचित्र, प्रकारकी मशीन है और चन्द्रमानिवासी यदि ऐसी मशीनें बना सकते हैं तो अवश्य उनमें बुद्धि होगी, उनकी शकलें चाहे जितनी विचित्र क्यों न हों। पर यह मशीन है किस कामके लिए। हमारी पृथ्वीपर तो इस प्रकारकी कोई मशीन नहीं है। यह भी निश्चित रीतिसे नहीं कह सकते कि यह धातुकी बनी है। शायद यह किसी ऐसी चीज़की बनी है जिसका हमें ज्ञान-

तक नहीं। चन्द्रमा निवासियोंकी मशीन इतनी विकसित इस समय होगी जितनी हमारी मशीनें लाखों वर्ष बाद होंगी। वह लोग विकासक्रममें लाखों वर्ष हमसे आगे हैं। इसलिए उनके जैसे यंत्र हम लाखों वर्ष बाद बना सकेंगे। और कौन मनुष्य अभीसे लाखों वर्ष आगेकी बात बतला सकता है? भला सोचो तो एक हज़ार वर्षमें कैसे कैसे आविष्कार भूमंडलपर होंगे और तब इसकी कल्पना करो कि एक लाख वर्षोंमें कैसे आविष्कार होंगे। एक बात निश्चित है कि चन्द्रमामें बुद्धि वाले प्राणी अवश्य विद्यमान हैं। संभव है कि मशीन इसलिये बनाई गई हो कि चन्द्रमामें सूर्यका ताप संचित कर लिया जाय और रात्रिमें इसी तापसे काम लिया जाय इस प्रकार चन्द्रतल प्राणियोंके निवास योग्य बना लिया गया हो। मैं छानबीनमें लगा हूँ। मुझे विश्वास है कि थोड़े ही समयमें इस यंत्रका विस्तृत वृत्तान्त जान लूँगा।"

"शीलू ने पूछा, कैसे ?"

डा० हक्सरने कहा—"मैं चन्द्रमा निवासी बुद्धिवाले इन प्राणियोंसे बातचीत करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।"

शीलूने पूछा—"क्या रेडियो द्वारा ?"

डा० हक्सरने उत्तर दिया—"नहीं, अभी नहीं। इसपर पीछे विचार करूँगा। अभी तो मैं यहाँसे चन्द्रमातक एक गाड़ी भेजने वाला हूँ जिसमें चन्द्रमा निवासियोंके लिये पृथ्वीसे खबरें भेजूँगा।"

चकित होकर शीलू बोले—"गाड़ीमें खबरें! क्या चन्द्रमा-निवासियोंकी भाषा जानते हैं? या आपका विश्वास है कि वह हिन्दी या संस्कृत समझ लेंगे ?"

शीलूके शब्दोंमें व्यंग्य था। डाक्टरने शान्त भावसे उत्तर दिया, "न मैं उनकी भाषा जानता हूँ और न वह मेरी। मैं ऐसी भाषाका प्रयोग करूँगा जो समस्त ब्रह्माण्डमें प्रचलित है। मैं कुछ चित्र भेजूँगा जिनमें सब वास्तुएँ अपने असली रंगोंमें चित्रित होंगी। शायद ही कोई ऐसे जंगली मनुष्य संसारमें हों जो चित्रोंको कुछ न कुछ समझ न सकते हों।"

शीलू बोल उठे, "परन्तु इन चन्द्रमानिवासियों के आँखें तो नहीं मालूम पड़तीं। जब देख ही न सकेंगे तो चित्रोंको समझेंगे क्या ?"

अब भी डाक्टरने शान्त भावसे उत्तर दिया, "इन चित्रोंके अतिरिक्त मैं मनुष्य, स्त्री बच्चे जानवरों, वृक्ष यंत्र इत्यादिक भिन्न भिन्न प्राणियों और वस्तुओंके नमूने भेजूँगा। सम्भवतः हमारे चन्द्रमानिवासी मित्र बदलेमें चन्द्रमाकी वस्तुओंके नमूने भेजेंगे। उनके यंत्र प्राप्त करके या उनके रासायनिक यौगिकोंका विश्लेषण करके हम कितनी वैज्ञानिक उन्नति कर सकेंगे! दो चार वर्षोंमें ही हम लोगोंको इतना ज्ञान प्राप्त हो जायगा जिसे चन्द्रमानिवासियोंने हज़ारों वर्षोंमें संचित किया है। मेरी तो बुद्धि अभीसे चौंधियाई जाती है। परन्तु मुझे डर है कि मेरी बुद्धि अभी इतनी विकसित नहीं है कि मैं उनकी मशीनोंका हाल समझ सकूँ। अपनी परिमित बुद्धिके कारण शायद मैं पर्याप्त लाभ न उठा सकूँ। यदि भास्कराचार्यको विद्युत् की मोटर या बिना तारके खबरें भेजनेवाला रेडियो यंत्र मिल जाता तो वह उनकी पूँछ नाक क्या समझ पाते। डायनेमोको चलता हुआ वह देखते तो क्या समझते कि गतिका कारण कहाँ है। मान लो चान्द्रियोंने मेरे पास ऐसी मशीन भेज दी जो आणविक शक्तिसे चलती है तो मेरे लिए उसका समझना उतना ही कठिन होगा जितना भास्कराचार्यके लिए मोटरका हाल।"

शैलेन्द्र कुमार चट्टोपाध्याय व्यंग्यपूर्ण हँसी हँसकर बोले—"मेरी राय है कि आप अपने सब नमूने किसी मछलियोंके स्कूलमें भेज दीजिए। यह भी आपके नमूनोंको उतना ही समझ सकेंगे जितना चन्द्रमानिवासी सज्जन जिनकी बुद्धिके सम्बन्धमें आपने बड़े बड़े कल्पनाके पुल बाँधे हैं। हाँ आपके मन्तव्यमें एक ज़रासी कमी और है।"

"वह क्या ?"

शीलूने कहा—"अपनी गाड़ी और नमूने आप चन्द्रमातक भेजेंगे कैसे ?"

इन शब्दोंके साथ शीलू ज़ोरसे हँस पड़े। उनका विश्वास था कि अब डाक्टर निरुत्तर हो जायँगे।

परन्तु डाक्टर हकसरने मुस्कुराते हुए शान्त-भावसे उत्तर दिया—"ठीक! चन्द्रमातक गाड़ी भेजना कोई आसान काम नहीं है। मैं अपने जीवनमें कितनी ही कठिन समस्याएँ हलकर चुका हूँ और मुझे विश्वास है कि मैं इसे भी हल कर लूँगा। वस्तुतः मैं इस प्रश्नको भी हलकर चुका हूँ परन्तु फिर कभी इसका हाल बतलाऊँगा !"

मुफ्तखोरों (parasites) की प्रकृति और रचना।

[ले० श्री प्रतापसिंह नेगी, एम० एस० सी०]

मुफ़्तख़ोर (parasite) शब्दके विस्तीर्ण अर्थके भीतर वे सब प्राणी आ जाते हैं जो दूसरे जीवधारियोंके शरीरमें रहते हैं, और उन्हींके शरीरसे भोजन पाते हैं। यह परिभाषा केवल वनस्पतियों और जन्तुओंके भीतर रहने वाले ही मुफ़्तखोरोंको संयुक्त करती बल्कि उनको भी संयुक्त करती है जो वनस्पतियों और जन्तुओंके ऊपरी भाग पर रहते हैं। किसी वृक्षके भीतर या किसी फलके गूदेमें रहनेवाला कीड़ेका बच्चा (larva) किसी भांति मनुष्यकी अंतड़ियोंमें रहनेवाले सूत कीड़े (thread worm) से कम मुफ़्तखोर नहीं कहा सकता और भौंराजो कि जंगलके वृक्षों की पत्तियोंको नष्ट कर देता है वह भी उसी श्रेणीका मुफ़्तखोर है जिस श्रेणीके मुफ़्तखोर मनुष्य और अन्य जन्तुओंके शरीरपर रहने वाले जूएं होते हैं। इस अर्थके अनुसार मुफ़्तखोरीका जीवन इस संसारमें अति व्यापक अद्भुत वस्तु या घटना (phenomenon) है।

प्राचीन कालमें मुफ़्तखोर शब्द कुछ विशेष रूपों हीके लिये प्रयोग किया जाता था। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि मुफ़्तखोरी सबसे पृथक अद्भुत वस्तु (phenomenon) समझी जाने लगी और उसका सम्बन्ध किसी भी अन्य प्रकारके जीवनसे न समझा जाने लगा। परन्तु अब यह सम्मति मिथ्या समझी जाती है और जब हम इस विषयपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते हैं तो यह बड़े महत्त्वकी बात समझी जाती है। केवल आँतके अन्दर कीड़े (intestinal worms) और उनसे मिलते जुलते दूसरे प्राणी ही मुफ़्तखोरोंकी श्रेणीमें नहीं रखे जाने चाहियें बल्कि बहुतसे उन जन्तुओंकी गणना भी इसी श्रेणीमें होनी चाहिये जो कि अहारकी प्रकृतिके सिवाय कभी कभी बिलकुल अन्य बातोंमें स्वतंत्र जीवधारियों (free living animals) से इसपूर्ण रीतिसे मिलते जुलते हैं कि इसी धोखेमें वे स्वतंत्र जीवनकी रीति व्यतीत करने वाले समझे गये हैं। क्या यह मुफ़्तखोरीकी विशेष प्रकृतिके साधारण रायके अनुकूल है कि किसी एक जीवको उपरोक्त व्याख्याके अनुसार मुफ़्तखोर मानना ही चाहिये, केवल इस ही कारण कि बजाय सूखी हुई लकड़ीके वह एक जीवित ठहनीका अहार करता है य बजाय सूखी पत्तियोंके वह हरी पत्तियोंको खाता है। और अन्य स्वतंत्र जीवधारियोंसे स्पष्टतया पहचाना जाना चाहिये ? क्या इन अन्तरोंके गुण और आशय उन अंतरोंके गुण और आशयोंसे कम गूढ़ नहीं मालूम होते जिनसे एक और मांसहारी जन्तुओंमें और दूसरी ओर घासाहारी जंतुओंमें भेद मालूम होता है।

यहांपर जो प्रश्न उठा है वह बिना उत्तर-ही के रह जाता है कारण कि हम मुफ़्तखोरीके

विचारको यहांपर बहुत ही संकीर्ण कर देना चाहते हैं और बिलकुल उन्हीं जन्तुओं पर सीमित कर देना चाहते हैं जो दूसरे जन्तुओं पर मुफ़्त-खोरीका जीवन व्यतीत करते हैं और इस लेखके लिये ऐसा हीं करना हमारे लिये उचित होगा।

इस सीमाके भीतर मुफ़्तखोरोंका समूह साधारण दृष्टिसे पहिले विस्तीर्ण विचारकी अपेक्षा बहुत छोटा मालूम पड़ता है, और प्राचीन कालमें तो जब कि लोगोंका यह विचार था कि मुफ़्तखोर सर्वदा मुफ़्तखोर ही रहते हैं केवल इस ही कारण कि वे स्वतंत्र जीवन नहीं व्यतीत कर सकते, इससे भी अधिक छोटा मालूम पड़ता था।

आधुनिक अनुसन्धानों (investigations) से मालूम हुआ है कि सबसे अधिक मुफ़्तखोरोंके जीवनमें भी उदाहरणार्थ आँत वाले कीड़े, बहुधा अवस्थायें (stages) पाई जाती हैं जब कि वे स्वतंत्रतासे पानीमें या सीली भूमिपर रहते हैं और सूत कीड़ों (thread worms) में भी बहुत सी जातियाँ (species) हैं, उदाहरणार्थ रैहबदोतिस (Rahbditis) जो कि समय समयपर ही मुफ़्तखोर होते हैं, और उनके शरीरकी पूरी रचना यदि शीघ्र नहीं तो कमसे कम उतने ही समयमें दूध मांस आदि वस्तुओंमें भी हो सकती है जितने कि किसी जीव धारीके भीतर। एक दूसरे सूत कीड़े असकारिस निगरो विनोसा (ascraris nigrovenos) में हमें उस प्राणीका दृष्टान्त मिलता है जिसका जीवन-काण्ड दो बारी से आने वाली पीढ़ियो (alternate generation) का बना हुआ होता है और ये दोनों पीढ़ियाँ जननेके योग्य होती हैं (sexually mature), इनके शरीर की बनावट और जीनेकी रीति एक दूसरेसे इतनी भिन्न होती है कि उनके वंशीय सम्बन्ध मालूम होने से पूर्व वे दोनों भिन्न २ वंशोंमें रखे गये थे। एवं इस प्रकारके दृष्टान्तोंसे यह अभिप्राय निकलता है कि ऐसे कुछ जन्तु जैसे कि अनेक मक्खियोंके बच्चे (larvae musca vomi-tori, authomuyia canicularis) इत्यादि अधिकतर मृतक सड़े गले माँसपर पलती हैं परन्तु कभी २ जीवित जन्तुसे भी अपने क्षुधाकी तृप्ति करती हैं किसी प्रकार भी मुफ़्तखोरोंकी श्रेणीसे पृथक नहीं किये जा सकते। यदि इस प्रकारकी मुफ़्तखोरीका दूसरे जन्तुओंकी निरन्तर (constant) मुफ़्तखोरीसे पृथक किया जाना अनिवार्य हो तो इसको सामयिक (occasional) मुफ़्तखोरी कह सकते हैं। आधुनिक समयमें भी झूठा मुफ़्तखोर (psuedo parasite) शब्दका प्रयोग इस प्रकार के दृष्टान्तोंके लिये किया गया है परन्तु इस शब्दका प्रयोग केवल ऐसी ही वस्तुओंके लिये किया जाना चाहिये जैसे कि बाल, वनस्पति व्यूह तन्तु (vegetable tissue) इत्यादि जो कि यथार्थमें मुफ़्तखोर नहीं है परन्तु भूलसे मुफ़्तखोर समझे गये हैं और वर्णन भी किए गये हैं, और मेरी समझसे मेंढक साँप और मकड़ियां भी झूठे ही मुफ़्तखोर समझे जाने चाहियें। इन जन्तुओंको बहुतसे ग्रन्थकारोंने मनुष्यके पाक यंत्र (alimentary canal) में वर्षोंतक जीवित रहते बतलाया है, यद्यपि यह सत्य है कि इस प्रकारके जीव दूध पिलाने वाले जीवों (mammals) के शरीरकी सीली गर्मी छ घंटेसे अधिक नहीं सह सकते।

उपरोक्त बातोंसे मालूम होगा कि मुफ़्तखोरी और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने वाले जीव धारियोंके बीचमें कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती और सामयिक मुफ़्तखोरी भी इसी बातकी पुष्टि करती है।

केवल इन्हीं दृष्टान्तोंमें, स्वतंत्र और मुफ़्तखोर रहनेकी रीतियोंमें अवस्थान्तर नहीं पाया जाता। बहुतसे जन्तु जैसे जोंक उसही समय तक मुफ़्तखोर रहते हैं जबतक कि उनको आहार दूसरे ऐसे जीवसे मिलता रहे जो कि उनसे बड़ा और बलवान हो और जब वे अपनी बराबरके या अपनेसे छोटे जीवोंका शिकार करने लगते हैं तो

मांसाहारी बन जाते हैं। मुफ्तखोर सदा ही उस जीवसे छोटा और कमज़ोर होता है जिससे वह अपना आहार प्राप्त करता है। उसको परास्त न कर पानेके कारण मुफ्तखोर अपने मेज़बानको लूटनेसे ही संतुष्ट रहता है और उसके मांस और रसोंसे अपना आहार प्राप्त करता है।

इस प्रकार मुफ्तखोरी और स्वतंत्र जीवनका आपसमें दो स्पष्ट रीतियोंसे सम्बन्ध है और ये दोनों रीतियां स्वयं मुफ्तखोरीकीही विशेषताओंसे सम्बद्ध हैं। इन दो रीतियोंमेंसे एक तो भोजनकी प्रकृति है, और दूसरी रीति मुफ्तखोरीका उस जीवसे सम्बन्ध है जो उसको आहार देता है। यदि इस बातपर ध्यानपूर्वक विचार किया जाय कि मुफ्तखोरका क़द और उसकी रचना उसके जीवन प्रणालीके अनुसार होती है तो यह सुनकर आश्चर्य न होगा कि जीवधारी संसारके भिन्न समूहोंमें मुफ्तखोर बननेकी शक्ति एकसी नहीं होती। उदाहरणार्थ रीढ़की हड्डीवाले जन्तुओंमें जोकि अधिकतर बलवान और बड़े क़दके होते हैं बहुत थोड़े जन्तु मुफ्तखोरीका जीवन बिताते हैं, परन्तु (arthropoda) (जन्तुओंका वह समूह जिसमें झींगा मच्छली, जूएं और बिच्छू इत्यादि रखे गये हैं) में और कीड़ों (worms) में जो कि तुलनामें इनसे बहुत छोटे क़दके और कमज़ोर होते हैं, वंशके वंश ऐसे पाये जाते हैं कि जिनके सबही प्राणी या बहुसंख्यक मुफ्तखोरीका जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इन दो समूहोंमें मुफ्तखोरोंकी संख्या शेष सारे जीवधारियोंके मुफ्तखोरोंकी संख्यासे अधिक होती है। मनुष्य जातके मुफ्तखोर और अन्य उच्च श्रेणीके रीढ़की हड्डी वाले जानवरोंके मुफ्तखोर तो केवल इन्हीं दो समूहोंके होते हैं।

मुफ्तखोर समाजके नाना प्रकारके प्राणियोंके जीवनकी तुलना करते हुए हम केवल उनकी बनावटहीमें बहुतसे मर्म भेदी अन्तर नहीं पाते परन्तु मुफ्तखोरीकी प्रकृति और श्रेणीमें भी अन्तर पाते हैं। एक ओर तो वे मुफ्तखोर हैं जो कभी कभी ही अपने मेज़बान को ढूँढ़ा करते हैं और केवल उतनेही समयतक अपने मेज़बानके पास रहते हैं जबतक कि उन्हें अपना खाना लेनेमें समय लगता है और ज्योंही उनका यह कार्य समाप्त होजाता है त्योंही जुदा होजाते हैं और शायद इसके बाद दूसरे मेज़बानको ढूंढते हैं। दूसरी ओर कुछ मुफ्तखोरी ऐसे होते हैं जो कि बहुत सा समय ही नहीं बल्कि अपने जीवनका एक पूरा भाग अपने मेज़बानके शरीरके भीतर बिताते हैं और इस प्रकार मेज़बान उनका निवासस्थान और आहार प्राप्तिका मूल स्थान भी बन जाता है। यह अन्तर कदाचित "अस्थायी" (temporary) और "स्थायी" (stationary) शब्दोंसे अच्छी तरह विदित होगा परन्तु यहाँपर यह कह देना उचित होगा कि जैसे मुफ्तखोरीके जीवन और स्वतंत्र जीवनमें स्पष्ट सीमा निश्चित नहींकी जा सकती उसी प्रकार इन दो प्रकारकी मुफ्तखोरियोंमें भी स्पष्ट सीमा निश्चित नहींकी जा सकती। परन्तु तो भी ये दो शब्द प्रयुक्त किये जा सकते हैं क्योंकि इनसे मुफ्तखोरीकी दो श्रेणियोंका बोध होता है जोकि साधारणतः एक दूसरेसे भिन्न या पृथक हैं।

प्राचीन कालके जीवशास्त्रज्ञ भी इस अन्तरको मानते थे परन्तु भेद इतनाही था कि वे लोग "अस्थायी" मुफ्तखोरी केवल उसकी मुफ्तखोरीको नहीं कहते थे जो "स्थायी" न हो बल्कि उस मुफ्तखोरीको भी "अस्थायी" ही कहते थे जो जीवन पर्यन्त न रहे। परन्तु उस समय यह बात मालूम न थी कि सबसे अधिक मुफ्तखोर भी (जैसे आंत वाले कीड़े) अपने जीवन कालके एक भागमें स्वतंत्र रहते हैं और इसी कारण उस समयमें इन दो प्रकारकी मुफ्तखोरियोंमें जो अन्तर माना जाता था वह इस अन्तरसे बिलकुल भिन्न था जो वर्तमान समयमें माना जाता है और इस लेखमें बतलाया गया है। उन मुफ्तखोरोंके अतिरिक्त

जो कि जीवन भर मुफ़्तखोरही रहते हैं ऐसे भी मुफ़्तखोर पाये जाते हैं। जो कि थोड़े या बहुत कालतक स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं, या तो युवा अवस्था (adult condition) में जैसे कि (ichneumonflies and gadflies) या बचपन (larvae) में जैसे सूत कीड़े।

इसलिये "स्थायी मुफ़्तखोरीके दो रूप होते हैं (१) "स्थिर", जीवन पर्य्यन्त रहने वाली मुफ़्तखोरी (२) "सामयिक" (periodic) जबकि मुफ़्तखोर जीव अपने जीवन कालके एकही भागमें मुफ़्तखोर होता है और इसलिये अपने जीवनके अन्य भागों उसको स्वतन्त्र जीवन बिताना पड़ता है।

ऊपर बतलाई गई नाना प्रकारकी मुफ़्तखोरीयों में दिलचस्पी और गौरवता होती है जो कि सिर्फ उनके आपसके सम्बन्ध और जीवन निर्वाह करनेके ढंगों पर ही निर्भर नहीं है, परन्तु वे इस कारण भी मनभावने हैं कि उनका प्रभाव शरीर की बनावट बदलनेमें भी पड़ता है। इसी कारण किसी भी प्रकारके मुफ़्तखोरकी सूरतकी परीक्षा करनेपर हम थोड़ी बहुत निश्चयतासे बतला सकते हैं कि वह अमुक मुफ़्तखोरीका जीवन व्यतीत करता होगा। अस्थायी मुफ़्तखोरोंमें अपने मेज़बानको छोड़नेसे लियेऔर उसके पास आनेकेलिये अवश्यही ज़रिये होने चाहियें। और उनके पास चलने फिरनेकी इन्द्रियां और ज्ञान इन्द्रियां होनी चाहियें। और यह देखा भी जाता है कि अस्थायी मुफ्तखोरोंके हमेशा ही बलवान हाथ पैर होते हैं (जैसे खटमल) और कभी २ उन पर पंख भी पाये जाते हैं (जैसे Imidges) और दूसरी मक्खियोंमें या उनपर तैरनेके लिये अंग होते हैं जैसे (fish louse) मछलीकी जूएमें। इन अंगोंकी उपस्थिति आवश्यक कर्मोंको अधिक मिश्रित बना देती है और कभी २ तो इतना अधिक मिश्रत बना देती है कि अस्थायी मुफ़्तखोरे जिस समय अपने मेज़बानसे पृथक रहते हैं उस वक्त उनको पहिचानना कठिन हो जाता है, और केवल उनके आहारकी प्रकृति और आहार प्राप्तिके ढंगों हीसे हम उनको मुफ़्तखोर कह सकते हैं, वे अपनी आहारकी प्राप्ति किसी जीवके मृतक शरीरसे नहीं करते बल्कि जीते जागते जीवके शरीरसे करते हैं।

चलते फिरनेकी शक्ति कम होजानेके साथही मुफ़्तखोरोंको अपने मेज़बानको छोड़ना कठिन होजाता है और इस प्रकार अस्थायी मुफ़्तखोर स्थाइ बन जाता है और पहिले जिस मेज़बानके पास समय समयपर थोड़ेसे ही कालके लिये आया करता था वह अब हमेशाके लिये उसका आश्रय स्थान बन जाता है और मुफ़्तखोर फिर उसको विरलेही समयपर छोड़ता है वा उसको छोड़कर दूसरे मेज़बानके पास कदाचित ही जाता है। स्थायी मुफ़्तखोरोंमेंसे बहुतसे ऐसे हैं जिनमें चलने फिरनेकी शक्ति होती है। उदाहरणार्थ पिस्सू (flea)। और कभी कभी अपने मेज़बानको छोड़कर दूसरेको ढूंढ़ा भी करते हैं जहाँ उनको अधिक भय रहित स्थान मिल सके या अधिक भोजन मिल सके। इस प्रकारके स्थायी मुफ़्तखोरोंमें और अस्थायी मुफ़्तखोरोंमें बहुत समानता होती है, इनमें समानता केवल जीवन निर्वाहकी रीतिमें नहीं होती बल्कि बनावटमें भी होती है और विशेषकर उनके चलने फिरनेके अंगोंकी रचनामें। स्थायी मुफ़्तखोरोंके अधिकांश दृष्टान्तोंमें चलने फिरनेकी शक्ति घट जाती है और कभी २ तो इस शक्तिका बिलकुल ही लोप हो जाता है और इसका फल यह होता है कि मुफ़्तखोर महीनों तक या वर्षोंतक एकही मेज़बानमें रह जाता है इसके दृष्टान्त थैली कीड़ों (bladder worms) में और मादा (lernaedae) में पाये जाते हैं जो कि अपने सिरोंको मछलीके पुट्ठोंमें डाले रहते हैं। चलने फिरनेकी इन्द्रियोंके अकारथ होनेके अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियां भी अकारथ हो जाती हैं और विशेषतया चक्षु जिनकी रचनाकी वृद्धि पुट्ठीय चालकी विचित्रता और शक्तिके साथ २ होती है, और उनकी क्षीणताके साथ २

बहुधा क्षीण भी हो जाती हैं। शरीर का सुन्दर आकार और उसकी खंडना (segmentation) वर्तमान चलने फिरनेकी न्यूनावश्यकताकी समतुल्यतामें बहुधा लोप हो जाती है।

वास्तवमें आँतके कीड़ोंको जो कि सबके सब स्थायी मुफ़्तखोर होते हैं देखनेसे ही स्पष्ट मालूम होता है कि जितना ही अधिक सुस्त मुफ़्तखोरका जीवन होता है उतना ही साधारण और अविभक्त उसके शरीरका आकार भी हो जाता है।

इसके अलावा शरीरकी बाहरी बनावटका सादा होना स्थायी मुफ़्तखोरका कोई विशेष अनूठापन नहीं है जैसेकि स्वतंत्र जीवोंमें पंख और तैरनेके पैरोंका होना अनूठापन नहीं है। स्वतंत्र जीवोंमें हमें अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जिनमें शरीरका एक सा आकार होता है और विशेष तथा उन जन्तुओंमें जिनमें चलने फिरनेकी शक्ति कम होती है और जो इस बातमें कुछ कुछ स्थायी मुफ़्तखोरोंके सदृश होते हैं। केवल थेढ़ेले कीड़ोंको (caterpillar) और दूसरे कीड़े मकाड़ोंके बच्चोंको (larvae) बतला देना काफी होगा जिनमें बहुतेरे आंतके कीड़ोंके समान स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं, उदाहरणार्थ (ickneumon) मक्खियां या तो कभी कभी या हमेशाही मुफ़्तखोर होते हैं। इन अभाव सूचक (negative) लक्षणोंके अतिरिक्त स्थाई मुफ़्तखोरे बहुधा भावसूचक (positive) लक्षणोंसे भी पहिचाने जा सकते हैं जैसेकि उनके शरीर पर आंकड़ोंका (hooks) और चूसनीयों (suckers) का विद्यमान होना जिनसे वे अपने मेज़बानके शरीरपर चिपक सकते हैं। इस प्रकारके अंग केवल स्थायी मुफ्खोरोंमें ही नहीं पाये जाते बल्कि अस्थायी मुफ़्तखोरोंमें भी पाये जाते हैं और कभी कभी स्वतंत्र रहने वाले जीवोंमें भी पाये जाते हैं, परन्तु इनमें वे इतने प्रत्यक्ष या इतने नित्य नहीं होते। जितना ही किसी मुफ्खोरमें चलने फिरनेकी शक्ति क्षीण [illegible]ती है उतनाही कठिन उसका दूसरे जीवोंके पास जाना भी हो जाता है इसलिये उसके पास उन अंगोंका होना अत्यावशक है जिनसे वह बुरेसे बुरे संयोगमें भी अपने स्थानपर डटा रह सके। इन चिपकनेकी इन्द्रियोंकी लक्षणोंकी भिन्नता मेज़बानके शरीरके उस भागकी बनावटके अनुसार होती है जिसमें मुफ़्तखोर वास करता है। यह इन्द्रियां साधारणतः उनमें अधिक बलवान और बड़ी होती हैं जो बाहरी चर्मपर मुफ्तखोरी करते हैं उनके अपेक्षा जो मेज़बानके शरीरके भीतर रहते हैं और भीतरी मुफ्तखोरोंमेंसे चिपकनेकी इन्द्रियां उन मुफ़्तखोरोंमें अधिक बड़ी होती हैं जोकि पाक यंत्रमें रहते हैं क्योंकि उनको उसके द्रव्योंकी दाबका (pressure) सामना करना पड़ता है। परन्तु बहुतसे आंतीय कीड़ोंमें आँकड़े या अन्य चिपकनेको इन्द्रियाँ नहीं होती हैं परन्तु इनके बदले इनमें बहुधा कोई दूसरा प्रबन्ध होता है। सूत कीड़ोंमें जिनका वर्णन हम नीचे करेंगे शरीरका आकार और उसकी लम्बाई आंतके द्रव्योंकी दाबको तोड़नेके लिये उतनेही युक्त मालूम होते हैं जितना कि आंतके भीतोंपर उनकी पकड़को दृढ़ करना। और (Trichocephalus) का तो चाबुककी डोरीके सदृश अग्रभाग (mucous memberane) में वस्तुतः धँसा हुआ रहता है।

इस दृष्टान्तमें शरीरका आकार एक प्राकरसे चिपकावकी इन्द्रीकी अनुपस्थितिका काम देता है। और जब ये चिपकावकी इन्द्रियां उपस्थित रहती हैं तो उनकी बनावटमें और क्रमसे स्थापनामें बड़ा अन्तर होता है क्योंकि इनकी बनावट और इनका स्थापन मुफ्तखोरोंकी आवश्यकतानुसार होता है। कभी कभी जैसे flukes Tremiorchis ranarum) पुट्ठेदार चूसनियां (suckers) होती हैं जो कि उदकगति दाबसे (hydraulic pressure) काम करती है, आंकड़े (hooks) और चांगुल (claws) भी कभी कभी चिपकावकी इन्द्रियां होती हैं ये नीचे पड़े हुए व्यूहतंतु (lissue) के छेदनेके

काममें आती हैं या अनेक उभारोंके पकड़नेके काममें आती हैं। टीनियां सोलियम (taenia solium) में और दूसरे फीता कीड़ों (teapworms) में इन आंकड़ोंके पेंदी भाग मुफ्तखोरके व्यूह-तंतुओंके भीतर धँसे हुए रहते हैं या जैसे जूएं-में और अधिकांश (Arthropoda) मुफ्खोरों में वे हाथ पैरोंके अग्रभाग पर लगे हुये रहते हैं। अनेक प्रकारके बहुधा पाये जानेवाले मोटे बाल (bristles) और ऊपरी खालके बढ़ाव चिपकाव-की इन्द्रियोंकी श्रेणीमें शामिल किये जासकते हैं। ये शरीरके आस पासके भागोंके साथ सटने-से केवल मुफ्खोरकी रोक शक्तिको ही नहीं बढ़ाते बल्कि अपनी सजावटके अनुसार उसको अपने स्थानसे इधर उधर हटनेसे भी रोकते हैं। इस प्रकारकी सीटी (seetae) के वर्तमान होनेके कारण नर द्विमुखी विलाहारज़िया हिमाटोवियम (Distomum Billahrzia haematobium) न केवल मनुष्यकी बृहत् शिरा (vena cava) में अपने स्थानपर ही रह सकता है बल्कि कभी कभी वह रक्तकी धारके विरुद्ध भी मूत्राशय और मलद्वारको शिरा ग्रंथियों (venousplexuses) में बढ़ जाता है और इस प्रकार मादाको जोकि उसके साथ जुड़ी हुई रहती है घसीटता हुआ अंडे देनेके लिये उपयुक्त स्थानपर ले जाता है।

बहुधा एकही मुफ्खोरमें कई प्रकारकी चिप-कनेकी इन्द्रियां पाई जाती हैं उदाहरणार्थ (taeniasolium) जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं, आंकड़ोंके अतिरिक्त जो कि सिरकी चोटी पर क्रमसे एक वृत्तमें लगे रहते हैं चार चूस-नियां भी पाई जाती हैं। इनसे और आंकड़ोंसे मुफ्तखोर इतनी मज़बूतीसे चिपट जाता है कि उसको अपने स्थानसे अलग करना बहुत कठिन होजाता है। इन चार चूसनीयोंकी और सिरपर उनके स्थानकी तुलना, जोंककी एकही पिछली चूसनी औपटेमिओरकिसकी दो चूसनीयोंके साथ करनेपर हमें ज्ञात होगा कि मुफ्तखोरोंमें जितने बड़े अन्तर चिपकनेको इन्द्रियोंके प्रबन्ध में होते हैं उतनेही बड़े अन्तर उनकी बनावटमें भी होते हैं,।

मैं आशा करता हूँ कि अबतक स्पष्ट ज्ञात होगया होगा कि स्थायी मुफ्तखोरें बाहरी आकार और शास्त्रबंधोमें अस्थायी मुफ्तखोरों की अपेक्षा साधारण स्वतंत्र जीवोंकी आकृति और शास्त्र-बन्धोंसे बहुत भिन्न हैं। इन दो प्रकारके मुफ्-तखोरोंमें सचमुच कितना अन्तर है यह उन मुफ्त-खोरोंमें स्पष्ट रूपमें देखा जाता है जोकि अपने जीवन कालके एक भागमें स्वतंत्र होते हैं और दूसरे भागमें मुफ्तखोर होते हैं। स्वतंत्रावस्था मुफ्-तखोरीकी अवस्थासे बिलकुल भिन्न हो सकती है विशेषकर उन जीवोंमें जिनमें मुफ्तखोर जीवनकी सुख चैनकी दशा और स्वतंत्रावस्थाकी सुख चैन-की दशामें विशेष भिन्नता होती है। घोड़ेके उदर-में रहनेवाले गैस्ट्रसके बच्चे (larva of gastrus) के सब लक्षण स्थायी मुफ्तखोरकेसे होते हैं। इस अवस्थामें उनका शरीर बेलनाकार होता है जिस-पर नेता चक्षु होते है न अन्य ज्ञान इन्द्रियां होती हैं और चलने फिरनेकी इन्द्रियोंके बदले मुंहके दोनो ओर मज़बूत आंकड़े होते हैं और शरीरके धरातलपर बहुतसी नाना प्रकारके कदकी सीटी होती हैं। परन्तु स्वतंत्र युवावस्थामें उसके शरीर आकार बिलकुल भिन्न होता है। इस अवस्थामें उसका शरीर खंडित (segmented) होता है और उसपर चक्षु, सींगे, (tentacles,) पैर और पंख विद्यमान होते हैं। भला बतलाइये कौन विश्वास कर सकता था कि ये दोनों जीव एकही प्राणीकी रचनामें केवल दो अवस्थायें। हैं यदि निरूपणोंसे न मालूम किया गया होता कि इस कीड़े सदृश बच्चेकी उत्पत्ति (gastrus) मक्खीके अंडेसे होती है।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह अनोखा अन्तर मुफ्तखोरकी आवश्यकताओंसे उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रखता जितना कि उन अन्तरोंसे जो

स्वर्थजीवनकी रीति और स्वतंत्र जीवनकी रीतिमें होते हैं। इस प्रकार हम पूर्वोक्त यथार्थताको समझ सकते हैं कि गैस्ट्रसके समान अन्य कीड़े भी काया पलटते हैं (metamorphose) और वास्तवमें इनके छोटे बच्चे मुफ्तखोर नहीं होते परन्तु सिर्फ मुफ्तखोरोंकी भांति स्थायी जीवन व्यातीत करते हैं।

इसके प्रतिकूल ऐसे समायिक मुफ्तखोरे भी पाये जाते हैं जिनकी बनावट जीवन कालकी दोनों अवस्थाओंमें एक सी रहती है। ऐसे दृष्टान्त हमें गौरडोसी (gordiaccae) में मिलते हैं। ये बचपन की अवस्थामें घोंघों और कीड़े मकोड़े (insects) की शरीरकंदरामें रहते हैं और युवावस्थामें बिना भोजनके या तो जलमें या सीली भूमिपर रहते हैं। परन्तु इस दृष्टान्तमें स्वतंत्र और मुफ्तखोरके प्रकट रूपमें विशेष अंतर नहीं होगा। दोनों अवस्थाओंमें प्राणी स्थायी जीवन व्यातीत करता है और केवल अपने रहनेका स्थान बदलता है।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि मुफ्तखोरोंके लक्षण जातीय विशेषताओंका काम नहीं दे सकते और यह बात मुफ्तखोरोंके कुछ उन दृष्टान्तोंसे स्पष्टतया सिद्ध हो जाती है जिनके लिये वान बेंडन (van benden) ने सबसे पहिले सहभोजनीकाई (commensialism) शब्दका प्रयोग किया। इस शब्दके अर्थके भीतर वे प्राणी आते हैं जोकि बड़े जानवरोंके शरीरके भीतर मुफ्तखोरोंकी भांति रहते हैं और उनके शरीरकी बनावट भी उन्हींके समान होती है तथापि वे सच्चे मुफ्तखोर नहीं होते क्योंकि वे मुफ्तखोरेकी भांति अपने मेज़बानके रसों और व्यूहततुओंका आहार नहीं करते परन्तु या तो उनके आहारमेंसे भाग लेते हैं या अपने मेज़बानके शरीरके मलका आहार करते हैं। यदि सहभोजनीकाई (commensialism) के जलवासी छोटे जीवों में अनेक दृष्टान्त हैं परन्तु मनुष्यमें और घरेलू जानवारोंमें इसके कोई दृष्टान्त नहीं पाये जाते। यहांपर यह बतला देना अच्छा होगा कि आधुनिक जीवशास्त्रज्ञोंके मतानुसार सहभोजनीकाई (commensialism) शब्द उन मुफ्तखोरोंके लिये प्रयोग नहीं किया जासकता जोकि अपने मेज़बान के व्यूहतंतुओंके बदले आन्तरिक निरर्थक शोधित द्रव्यों (inernal excretory products) पर निर्वाह करते है। यदि यह ठीक ठीक साबित हो जाता कि कुछ आँतके कीड़े जैसेकि घोड़ेकी आंतमें रहनेवाला (oxyuris curvula) निश्चयही अपने मेजमानके अनपच भोजनका अहार करता है तो इस कथनकी थोड़ी बहुत सीमा निश्चित करनेकी आवश्यकता पड़ती। परन्तु साथही यह भीमालूम हो जाता कि सहभोजनीकाई (commensialism) और सच्ची मुफ्तखोरी बहुतसी बीचकी अवस्थाओं (stages) से उसी प्रकार एक दूसरेसे जुड़ी हुई है जैसेकि स्वतंत्र और मुफ्तखोरोंके जीवन जुड़े हुए हैं।

हनुमत्स्तुति

[ले० श्री गोस्वामी तुलसीदास जी]

मङ्गल मूरति मारुत नन्दन। सकल अमङ्गल मूल निकन्दन ॥
पवन तनय सन्तन हितकारी। हृदय बिराजत अवध बिहारी ॥
मातु पिता गुरु गनपति सारद। सिवा समेत सम्भु सुक नारद ॥
चरन बन्दि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद नेह निबाहू ॥
बन्दौं राम लखन वैदेही। जे तुलसी के परम सनेही ॥

[विनय-पत्रिका]

राग कौशिया—तीन ताल

[स्वरकार श्री विष्णु अन्नाजी कशालकर, संगीत प्रवीण]

इस रागमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं

अस्थाई

तार	सा सा सा ० ० ०	सा रे ग सा ० ० ० ०
मध्य	प नी नी नी — ० ० ०	नी नी नी नी ० ० ० ०
मन्द		
	मं ग ल मू · र ति ३ २	मा · रु त नं · द न १ २

तार	सा रे रे रे ग ग म ० ० ० ० ० ० ०	ग रे सा सा ग रे सा ० ० ० ० ‿ ‿ ०
मध्य	नी ०	नी नी ० ०
मन्द		
	स क ल अ मं · ग ल ३ २	मू · ल नि कं · · द न १ २

अन्तरा

तार	सा रे सा म ग ग ग ० ० ० ० ० ० —	ग ग म ग रे ग रे सा ० ० ० ० ० ० — ०
मध्य		नी ०
मन्द		
	प व न त न य सं ३ २	त न हि त का . री हृ द १ २ ३
तार	रे रे रे ग रे ग म ० ० ० ◡ ◡ ० ०	ग रे सा सा ग रे सा ० ० ० ० ◡ ◡ ०
मध्य		नी नी ० ०
मन्द		
	य बि रा . . ज त २	अ व ध बि हा . . री . १ २
तार	सा ◡	सा सा सा — ० ०
मध्य	नी नी नी नी नी ध ध — ० ० — ◡ ◡ ◡	प प नी नी ० ० ० ०
मन्द		
	मा तु पि ता गु . रु . ३ २	ग न प ति सा र द १ २
तार	सा रे रे रे ग म ० ० ० — ० ०	ग रे सा सा ग रे सा ० ० ० ० ◡ ◡ ०
मध्य	नी ०	नी नी ० ०
मन्द		
	सि वा . स मे त शं ३ २	. भु सु क ना . . र द १ १

इस गीतमें जो चिह्न आये हैं उनका खुलासा

मंन्द, मध्य और तार—यह पहिले दूसरे और तीसरे सप्तकके नाम हैं। जिस खानेमें जो स्वर दिया है वह उस सप्तकका समझना।

मंन्द = सबसे नीचे वाला सप्तक है।
मध्य = बीचका सप्तक है।
तार = सबसे ऊँचा वाला सप्तक है
— = यह चिह्न एक मात्राके लिये है
० = ,, ,, आधी मात्राके लिये
⌣ = ,, ,, पावमात्रा के लिये
१ = समके लिये
२ = समके व्यतिरिक्त जो ताल हो उसके लिये
३ = खालीके लिये

कौशिया—यह शुद्ध स्वरोंका संपूर्ण राग है। यह किसी वक्तमें भी गाया जाता है।

ताल—इस गीतका ताल मध्य तीन ताल है। इसकी आठ मात्रा होती हैं. पहिली मात्रापर सम है (ताल दी जाती है) तीसरी और सातवींपर भी ताली है, पांचवी मात्रा पर खाली होती है।

यह अंकन लिपि श्री पंडित बिष्णु दिगंबर जी संस्थापक गांधर्व महाविद्यालयकी निकाली हुई है।

आंखोंकी ओरसे प्रार्थना-पत्र

[ले० श्री चिरंजीलाल माथुर, बी. ए., एल.टी.]

श्रीमान् सभापति जी तथा सभ्यगण व्यवस्थापक सभा,

आपसे सविनय निवेदन है कि आप हम दीनोंकी निम्नलिखित प्रार्थना पर पूर्ण ध्यान दें और हमारे दुःखके निवारण करनेका अवश्य प्रयत्न करें। आपकी सेवामें प्रार्थना करने और आपको कष्ट देनेका कारण यह है कि आपकी सभाका यह कर्त्तव्य है कि दुःखितोंके दुःख दूर करनेका उपाय करें। वर्त्तमानमें ब्रह्मा जेलके राजनैतिक कैदियोंका मामला आपने हाथमें लिया ही था। दक्षिणी अफ्रीकाके भारतवासियोंके लिये आप उपाय कर ही रहे हैं, इत्यादि, इत्यादि।

हम आँखें जीवधारियोंके लिये जितनी उपयोगी हैं उसका वर्णन करना तो अनावश्यक है। केवल एक इस लोकोक्तिसे ही प्रतीत होजाता है कि 'आँख गई तो जग गया' अर्थात् जिस प्राणीके नेत्र चले जाते हैं उसके लिये तो संसार ही शून्य हो जाता है। बहुत उपयोगी होनेके कारणही तो ईश्वरने हमको शरीरमें इस प्रकार बनाया है कि हम सुरक्षित रहें। देखिये, प्रथम तो चेहरेमें हड्डियोंसे घिरे हुये स्थानमें हमको विठाया है कि यदि चेहरा दीवारसे या किसी और कठोर वस्तुसे जा लगे तो हम को चोट न पहुँचे। फिर पलकोंकी चिक हमारे सामने डाल दी है जो उतरती चढ़ती रहती है और हमको प्रत्येक प्रकारकी हानिकारक वस्तुसे सुरक्षित रखती है। फिर भी यदि कोई वस्तु हमतक पहुँच जावे तो हमारी इधर उधरकी ग्रन्थियोंमेंसे एक द्रव निकल कर उसे पिघला देता है और उस वस्तुको बाहर फेंक देता है। एक राजा भी अपने रत्नोंको क्या सुरक्षित रक्खेगा जैसा हमको ईश्वरकी ओरसे रक्खा गया है?

पर हाय! शोकके साथ कहना पड़ता है कि इस मनुष्यने हमारी दुर्गति कर डाली। आधुनिक उन्नति और सभ्यताके समयमें ही हमारे साथ दुराचार अधिक हुआ है। पूर्व समयमें तो मातायें तिलके तेलका काजल बालकोंकी आखों में डाला करतीं थीं जो कि हमको साफ रखता था और उससे हमारा आकार भी बढ़ जाता था। फिर प्रातः काल ठण्डे पानीके छींटे भी दिया करतीं थीं जिससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता था। किन्तु आज कलकी मातायें इस ओर ध्यान ही नहीं देतीं। बहुतसी मातायें तो अपने बालकोंको

पालतीं ही नहीं, दाइयोंके सुपुर्द कर देतीं हैं। बलिहारी इस सभ्यता की! प्रथम पुकार तो हमारी माताओंके विरुद्ध है।

दूसरी शिकायत शिक्षा-विभागके खिलाफ़ है। इस विभाग वालोंने प्रत्येक कक्षामें पढ़ाई इतनी रक्खी है कि बालकोंको दिनके अतिरिक्त रात्रिमें भी पढ़ना पड़ता है। ईश्वरने दिन काम करनेके लिये बनाया है और रात्रि आराम करनेके लिये। इसीलिये दिनमें तो काफ़ी प्रकाश दिया है और रात्रिमें थोड़ा। और वह भी कभीकभी कि कहीं आने जानेका काम पड़ जावे तो चन्द्रमाके प्रकाशमें कर लिया जावे। रात्रि ईश्वरने इसलिये कदापि नहीं बनाई कि इसमें लिखने पढ़नेका काम किया जावे। ऐसा करना अस्वाभाविक है। फिर आप सोच सकते हैं कि हमारे ऊपर रात्रिके पढ़नेसे कितना अनुचित दबाव पड़ता है और हमको कितनी हानि पहुँचती है। यदि तिलके तैलके प्रकाशसे पढ़ें तो भी ठीक है किन्तु ये तो मिट्टीके तैलकी रोशनीमें पढ़ते हैं जिससे हमको और भी अधिक हानि होती है।

हमारी तीसरी शिकायत प्रेस वालोंके विरुद्ध है कि जो बहुत छोटे छोटे अक्षरोंकी किताब छापते हैं। बहुत छोटे अक्षरोंके पढ़नेमें हमें बड़ा ज़ोर पड़ता है और हमको हानि पहुँचती है। यही एक कारण है कि अधिक अंग्रेज़ पढ़ने वाले प्रायः समीपदर्शक हो जाते हैं। अधिक समयतक छोटे छोटे अक्षरोंकी पुस्तकें थोड़े फ़ासलेसे निरन्तर पढ़ते रहनेके कारण इन पढ़ने वालोंकी नज़दीककी दृष्टि तो प्रायः ठीक रहती है और दूरकी कम हो जाती है। पूर्व समयमें अधिकांश तो प्रायः पुस्तकोंके बिना पढ़ाया जाता था और जो पुस्तकें होतीं थीं वे मोटे अक्षरोंकी होतीं थी नरसलकी लेखिनीसे काले चमकीले बड़े बड़े अक्षर लिखे जाते थे कि जिनके पढ़नेमें हमको अनुचित ज़ोर नहीं करना पड़ता था अब यह नरसलकी लेखिनी तो दुनियासे ही लुप्त हो गई है। हिन्दीके पण्डित और फ़ारसीके मौलवी भी लोहेके बारीक नोकदार निबसे लिखने लगे हैं कि जिससे न तो अक्षर का आकार ही ठीक बनता है और न हमको पढ़नेमें सुभीता होता है।

बहुतसे महाशय हमसे कहते हैं कि तुम्हारे निर्बल हो जानेसे क्या हानि है? तुम्हारी सहायताके लिये ऐनकें तो बन गई हैं। इन महाशयोंके लिये हमारा उत्तर यह है कि यदि आपके लिये गाड़ी मोटर बन गई हैं तो क्या आप अपने पैरोंको तोड़ डालने देंगे? फिर ऐनक एक बाहरी वस्तु है। इसके ऊपर सदैव निर्भर नहीं रह सकते। इसके अतिरिक्त ऐनकसे कभी-कभी बड़ी हानि हो जाती है। हमारे ऊपर यदि कभी कोई वस्तु आ पड़ी तो कांच फूटकर हमारे भीतर घुस जायगा और ऐनक लगाने वालेको सदाके लिये अंधा कर देगा। डाक्टर ने जांचमें भूल करके ग़लत नम्बर बतला दिया तो दृष्टिको हानि पहुँचेगी। ऐनक यदि कहीं भूलकर छोड़ आये तो बेकार हो गये, इत्यादि, इत्यादि। मनुष्यने हमारी सहायताके लिये ऐनकका निर्माण किया है परन्तु इस सहायकसे हमें सदा डर लगा रहता है। पूर्व समयके मनुष्योंको स्वाभाविक जीवन अधिक रुचिकर था। इस कारण वे सुखी अधिक थे। आजकल कृत्रिम जीवन अधिक हो गया इसके कारण सुखके स्थानमें दुःख बढ़ गया। ऐनककी आवश्यकता उत्पन्न करके रुपया व्यय करना, और हानिके भयमें पड़ना, इनसे तो यही अच्छा है कि हमारी ख़बरगीरी अच्छी रक्खी जाय। पूर्व पुरुष एक क्या ही अच्छी लोकोक्ति छोड़ गये हैं:—

आंखका अञ्जन दाँतका मञ्जन
नितकर नितकर नितकर
नाकमें ऊंगली कानमें तिनका
मतकर मतकर मतकर।

आजकलके फैशनैबिल जैन्टिलमैन भी हमको

एक तरहसे हानि पहुंचाते हैं। रंगतदार सुगन्धित बाज़ारू तैल दामोंसे ख़रीद कर ये लोग खुब माथेमें भर लेते हैं। इन फैशनके भूखोंको यह नहीं मालूम कि ये तैल मिट्टीके तैलसे बनाये जाते हैं और इनकी सुगन्धि तो थोड़ीसी देरमें चली जाती है और फिर कोरा मिट्टीका तैल रह जाता है जो कि मस्तक द्वारा हमें हानि पहुँचता है।

कभी कभी कुछ लोग हमारा दुरुपयोग भी करते हैं। हमारे द्वारा अपनी दुर्वासनाओंकी तृप्ति करते हैं।

इस प्रार्थना पत्र द्वारा हम आपसे प्रार्थना करतीं हैं कि आप अपने कर्त्तव्य पालनकी चेष्टा करते हुये हमारे दुःख दूर करनेके लिये निम्न लिखित बातोंके विषयमें बिल व्यवस्थापक सभामें पेश करें और पास करा दें।

१—सब मातायें अपने बालकोंकी आखोंमें प्रति दिवस नियमसे काजल डाला करें। यदि वे अपना यह कर्त्तव्य ठीक-ठीक पालन न करेंगी तो उनके बालक उनसे छीन लिये जावेंगे और सरकार उनका पोषण करेगी।

२—एक परीक्षा संस्थापित की जाय जिसमें माताओंके कर्त्तव्यका कोर्स रक्खा जाय। जो स्त्री इस परीक्षामें पास हो केवल उसीको माता बननेका अधिकार दिया जाय। यदि यह परीक्षा संस्थापित न होगी तो सं० १ के विषयमें कुछ मातायें कह देंगीं कि हमको अपने कर्त्तव्य तो ज्ञात ही नहीं।

३—शिक्षा-विभागको इस बातपर बाध्य किया जावे कि बालकोंको जो कुछ पढ़ाया जावे दिन ही में पढ़ावें घरके लिये काम न दें और यदि दें तो इतना कि रात्रिको न पढ़ना पड़े।

४—प्रेस वालोंको दृढ़तासे इस बातके लिये बद्ध किया जावे कि वे ⅛ इञ्चसे कम आकारके अक्षर न छापें और जो छापें उनको दण्ड दिया जावे।

५—ऐनक कोई न लगावे। जिसकी आँखें इतनी दुर्बल हों कि ऐनककी आवश्यकता पड़े उसे कोई जगह न दी जावे तभी तो लोग आखोंको ठीक रक्खेंगे।

६—कोई मनुष्य बाज़ारू तेल जो खुशबूदार वा रंगतदार मिट्टीके तैलपर बने होते हैं, न लगावे। जो ऐसे तैल लगाये दिखाई दे उसकी बबरी काट दी जाय।

अन्तमें हम आपसे यही कहते हैं कि यदि आपने हमारी प्रार्थनाको नहीं सुना और जो हमारे दुःख हैं उन्हें दूर न किया तो हम स्ट्राइक कर देंगीं काम करना बन्द कर देंगी और फिर आपको सभाके कमरेमें टटोलतेही फिरना पड़ेगा।

वनस्पति शास्त्र

[ले० श्री केशव अनन्त पटवर्धन, एम० एस०-सी०]

(गतांक के आगे)

बहुत सी कलियों में वह छोटी छोटी पत्तियाँ जिनसे कि कलियां बनी हुई होती हैं सब एक ही तरह की होती हैं यानी बढ़ने पर सबही से हरी पत्तियां बनती हैं। किन्तु बहुत सी जाड़े की कलियों में यह बात नहीं होती। इन कलियों के बीच वाली छोटी पत्तियों की तो दरख़्त की हरी पत्तियां बनती हैं लेकिन कली की सबसे बाहरवाली हरी पत्ती छिलके की तरह मोटी होजाती है और अन्दरवाली पतली पत्तियों को जाड़े की सरदी से बचाती है। जब बसन्त में कलियां खुलती हैं तब यह छिलकेनुमा पत्तियां या छिलके गिर जाते हैं। तने के जिस जगह से यह छिलके गिरते हैं उस जगह पर वह निशान छोड़ जाते हैं।

मामूली पत्ती के बग़ल की कलियाँ तो हिसाब से निकलती हैं। सबसे छोटी कली हमेशा सिरे पर रहती है। जिन कलियों के निकलने की तरकीब इस तरह की नहीं होती यानी जो पत्ती के बग़ल से नहीं निकलतीं या जिन्हें पत्ती से कोई भी ताल्लुक़ नहीं रहता उन्हें संयोगी कलियाँ कहते हैं। इसकी मिसालें बहुत सी मिलती हैं। संयोगी कलियाँ अक्सर कभी कभी किसी पत्ते से या जड़ से निकलती हैं अगर पथरचट्टी की पत्ती का किनारा दो चार जगह काटकर ज़मीन पर डाल दिया जाय तो संयोगी कलियां उन्हीं काटी हुई जगहों से निकलती हैं और उनसे अंकुर निकल कर पौदे तय्यार होते हैं। जड़ों से जो संयोगी कलियां निकलती हैं उसकी भी बहुत सी क़िस्में हैं।

शाखोत्पत्ति—फूलवाले दरख़्तों में शाखें बाजू की कलियों ही से बढ़कर बनी हुई होती हैं। यह कलियां पत्तियों के बग़ल से निकलती हैं। शाखों के निकलने की तरकीब यानी शाखोत्पत्ति भिन्न भिन्न तरह की हो सकती है लेकिन इसके विषय में हम यहां अधिक लिखना व्यर्थ समझते हैं क्योंकि इसी विषय के बारे में हमें फूलों के बयान में फिर पूरी तरह से विचार करना पड़ेगा।

हमने ऊपर यह बात लिख ही दी है कि दरख़्त के तने के ख़ास तीन काम हैं। इन तीनों कामों में से पहले काम के विषय में तो हमने अब तक कुछ तनों की क़िस्मों और शक्लों के तौर पर लिखा है। अब हमें यह देखना है कि तना अपना दूसरा काम किस तरह से करता है। इस दूसरे काम के बारे में हमें दो बातों का ख़याल करना है वह यह कि ज़मीन में जो पानी होता है वह वहां से पहले जड़ों के ज़रिये से त
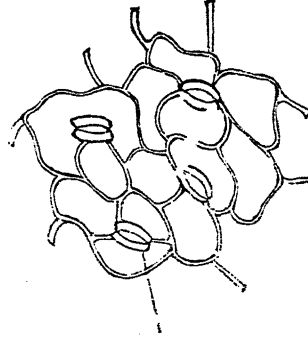
पत्तियों के ऊपर के रन्ध्र। इन्हीं से होती हुई कारबन वायु पत्ती के अन्दर पहुँचती है और इन्हीं के ज़रिये से श्वासोच्छ्वास क्रिया भी होती है।

में से होता हुआ पत्तियों तक पहुँचाया जाता है। इस पानी के साथ बहुत से क्षार भी जो कि उसमें अक्सर घुले हुए होते हैं, पत्तियों में पहुँचते हैं। इन पत्तियों में यह क्षार घुला हुआ पानी, सूरज की रोशनी और गरमी और कारबन वायु की मदद से दरख़्त का भोजन बनाता है और जो कुछ फिर इसके सिवाय पानी बच रहता है वह पानी भाप बनकर रन्ध्रों (Stomata) के ज़रिये से हवा में छोड़ दिया जाता है।

यह तो दरख़्त के तने के दूसरे काम का एक हिस्सा हुआ अब दूसरा हिस्सा यह है कि भोजन तो पत्तियों में बन गया
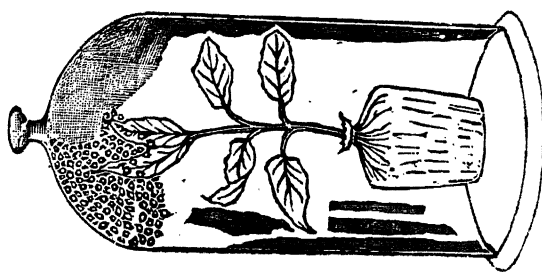
जो पानी पत्तियों के रन्ध्रों में भाप बनकर निकलता है वह फिर पानी के छोटे छोटे बूंदों में बर्तन के अन्दर दिखलाई देता है।

किन्तु वह सब वहीं थोड़े ही ख़र्च कर सकती हैं। इसके सिवाय यह भी है कि दरख़्त के और दूसरे भी हिस्से पत्तियों के अलावा हैं जिन्हें कि खाद्य वस्तु की आवश्यकता है। इसलिये यह खाद्य पदार्थ पत्तियों से हटाकर उन जगहों में पहुँचाये जाते हैं जहाँ पर बाढ़ हो रही हो अर्थात् जहां पर उनकी ज़रूरत हो। अब यह दूसरे काम का दूसरा भी हिस्सा तने हो को करना पड़ता है यद्यपि इस खाद्य पदार्थ का तने से होते हुए जाने का मार्ग दूसरा है और जड़ों से पानी आने का मार्ग दूसरा है। तो इससे हमें यह मालूम हुआ कि तना पानी के नीचे से ऊपर जाने का मार्ग है और खाद्यरस के ऊपर से नीचे लाने का भी मार्ग है। इस विषय की पूरी पूरी चर्चा करने के लिये हमें दरख़्त की अन्तर-रचना का अभ्यास करना पड़ेगा जोकि वनस्पति-शास्त्र के नये विद्यार्थी के लिये काफ़ी औज़ार न होने के कारण मुश्किल है और इसलिये अपने पाठकों को इतना ही जान लेना हम उचित समझते हैं।

तात्पर्य—इस सबक़ में हमने तनों के बारे में जो कुछ लिखा है उसका तात्पर्य यह है—सबसे पहली बात यह है कि तने हमेशा ऊपर की तरफ़ यानी रोशनी की तरफ़ बढ़ते हैं। उनके बिलकुल सिरे पर सिरे की कली और बीच में बाज़ू की कलियाँ और पत्तियाँ निकलती हैं।

हम यह नहीं कह सकते कि तने की तारीफ़ करने को यह ही दो ख़ासियतें काफ़ी हैं क्योंकि बहुत से तने ऐसे हैं जो ज़मीन के नीचे रहते हैं जैसे अरबी आलू वग़ैरः और जो जड़ों का भी थोड़ा सा काम करते हैं। बाज तनों के सिरे पर तो बिलकुल कली होती ही नहीं और अक्सर यह भी होता है कि बाज़ बाज़ जड़ों या पत्तियों पर भी अक्सर कलियां फूटती हैं।

लेकिन इस सबके बाद यह फिर ध्यान रखने के लायक़ है कि बाज़ बातें जो ऊपर तनों की ख़ासियतों के नाम से बयान की गई हैं तनों में अवश्य मिलेंगी चाहे वे तने अपनी असली शक्ल से कितने ही तबदील होगये हों।

जड़

१—अगर जड़ की सब से अच्छी और सहल तारीफ़ करना हो तो वह यह होगी कि जड़ दरख़्त का वह हिस्सा है जो ज़मीन के अन्दर की तरफ़ और रोशनी से दूर भागता है, जिसके ऊपर आम तौर से कलियां व पत्तियां नहीं होतीं और जिसके सिरे पर एक रक्षण करनेवाली टोपी होती है जिसे जड़ का टोप (Rootcap) कहते हैं। जड़ों के अन्दर की बनावट भी निराली ही होती है अर्थात् तनों से बिलकुल भिन्न प्रकार की होती है। केवल अन्दरूनी बनावट से भी हम जड़ को पहचान सकते हैं। इन सब बातों को जानकर यह कहना अनुचित न होगा कि हम जड़ों का तनों से फ़र्क बतलाने में कभी भूल नहीं कर सकते।

२—इसके पहले कि हम जड़ों के बाहरी चिह्न और उनकी क़िस्में बयान करें हमें यह बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि हम पहले जड़ों के कामों के विषय में लिखें। दरख़्त के लिये उपयोगी, जड़ों के असलीयत में ख़ास दो काम हैं।

(क) सबसे पहला और मुख्य काम यह है कि यह दरख़्त को ज़मीन में जमाये रखती हैं और यद्यपि ऊपर वाले हिस्से पर, यानी तने और पत्तियों पर, हवा और तूफ़ान के झोंकों से बहुत ही ज़ोर पड़ता है तब भी दरख़्त का यह ही हिस्सा ऐसा है कि जिसकी वजह से दरख़्त सीधा खड़ा रह सकता है। इस लिये कि जड़ें यह काम अच्छी तरह कर सकें, हर एक बनस्पति की जड़ों की शक्ल निराली निराली तरह की बनी हुई होती है। इनकी क़िस्में और मिसालें आगे बयान की गई हैं।

यहाँ पर एक बात का हम और उल्लेख कर देना उचित समझते हैं। जिस तरह से कि अंकुर हमेशा ऊपर अर्थात् रोशनी की तरफ़ बढ़ने की प्रवृत्ति रखता है उसी तरह से जड़ें शुरू ही से ज़मीन अर्थात् रोशनी से उलटी तरफ़ बढ़ने की प्रवृत्ति रखती हैं। यह ही कारण है कि अगर एक बीज जमने के लिये रक्खा जाय तो अंकुर तो ऊपर की तरफ़ बढ़ेगा और जड़ नीचे की तरफ़ बढ़ेगी। इससे अधिक इस विषय में लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। (ख) जड़ों का दूसरा काम जो कि दरख़्त के लिये बहुत ही मुफ़ीद होता है वह उनका ज़मीन से पानी का लाना है। इस पानी में अकसर क्षार घुले हुए होते हैं। यह पानी और क्षार दरख़्त के भोजन सामग्री का एक हिस्सा है जैसा कि हमने तने के बयान में कुछ कुछ समझाया भी है। इसके असली प्रकार समझने के लिये दो बातें जाननी चाहियें। पहले तो ज़मीन की बनावट या ज़मीन के अन्दर पानी किस प्रकार रहता है और दूसरे जड़ के उस सिरे वाले हिस्से की बनावट जो हिस्सा पानी को ज़मीन से जुदा कर के अपने अन्दर ले जाता है। उस ज़मीन में जो दरख़्त बोने के योग्य समझी जाती है, निरेन्द्रिय और सेन्द्रिय (organic and inorganic) दोनों द्रव्य होते हैं। जितने अधिक यह द्रव्य ज़मीन में होते हैं उतनी ज़मीन अच्छी समझी

जाती है। अब अगर परीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि ज़मीन के छोटे से छोटे टुकड़े के चारों तरफ़ पानी की एक बहुत ही पतली तह होती है और यह तह मामूली गरमी के द्वारा उस टुकड़े से जुदा नहीं की जा सकती। पानी की यह ही तहें होती हैं जो दरख़्तों को पानी भेजती हैं। दरख़्तों को जितना पानी चाहिये वह सब इन्हीं टुकड़ों की तहों से लिया जाता है। इन्हीं टुकड़ों से ज़मीन बनी हुई होती है। टुकड़ों के बीच में जो खाली जगह होती है वह हवा से भरी हुई होती है गीली और दलदल वाली जगहों में यह जगह पानी से भरी हुई होती है यद्यपि इन खाली जगहों में भरा हुआ पानी दरख़्तों के काम का ज़रा भी नहीं होता।
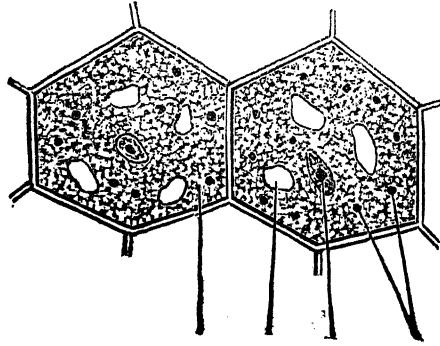
दो पेशियाँ।

अब जड़ के सिरे के हिस्से की बनावट लीजिये। अगर किसी जमते हुये बीज की जड़ देखी जाय तो मालूम होगा कि बिलकुल सिरे के कुछ ऊपर जड़ पर पतले पतले बाल होते हैं। प्रायः यह एक ही पेशी के बने हुये होते हैं यद्यपि इनका एक से अधिक पेशी का बना होना असम्भव नहीं है। इन बालों में ज़मीन के छोटे से छोटे टुकड़े चिपट जाते हैं और 'आसमासिस' (Osmosis) क्रिया से इन टुकड़ों के चारों तरफ़ की तह का पानी इन बालों के अन्दर आ जाता है और यह ही जड़ से और फिर तने से होता हुआ फिर पत्तियों में पहुँचता है। अब हम जड़ों की किस्में बयान करेंगे।

जड़ों के बाहिरी चिह्न

३—जड़ें दो प्रकार की हो सकती हैं, तल जड़ (Tap-Root) और संयोगी जड़ (Adventitious Root) संयोगी जड़ का नाम दो एक बार पहले बयान में आ ही चुका है अब उसके बारे में दुबारा अच्छी तरह सब बातें बताना ठीक समझते हैं।

प्रायः द्विदली (Dicotyledons) दरख़्तों में क्या होता है कि प्रारम्भिक जड़ नीचे सीधी बढ़ती हुई ज़मीन के अन्दर चली जाती है और इधर उधर शाखें देती है। इस जड़ को तलजड़ तरतीब कहते हैं। पहली जड़ तो सीधी बढ़ती हुई नीचे जाती है उसे तलजड़ कहते हैं और उनकी शाखों को अगर वह सीधी इस हिसाब से निकलती हों कि सब से छोटी शाख़ हमेशा सिरे की तरफ़ यानी ज़मीन की सतह से दूसरी तरफ़ हो तब उन्हें मामूली दूसरे दर्जे की जड़ें कहते हैं। शाखें हमेशा बाज़ू ही से दी हुई होती हैं जब कि लम्बी तल जड़ मामूली दूसरे दर्जे की जड़ें अपने बाज़ू से देती है

तो इस शाखों की पद्धति को रेसेमूज, (Racemose) पद्धति कहते हैं। जब मुख्य जड़ छोटी रह जाय और शाख
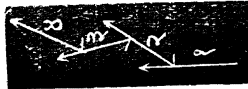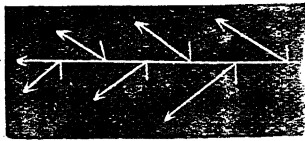
शाखाओं के निकलने की रेसेमूज़ पद्धति।

(दूसरे दर्जे की) ही असली जड़ तरतीब बनाती हैं तब उसे 'साइमूज़ (cymose) पद्धति कहते हैं। इनके अलावा जैसा
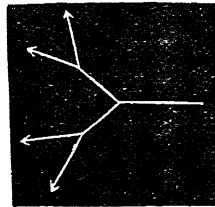
शाखाओं के निकलने की सायमूज़ पद्धति

हम ऊपर लिख आये हैं संयोगी जड़ें भी अक्सर पौदों पर पाई जाती हैं। या तो (क) यह मामूली जड़ों पर बिना तरतीब के दी हुई होती हैं, या (ख) तनों पर निकली हुई होती हैं और या (ग) यह बाज़ बाज़ हालतों में पत्तों पर भी पाई जाती हैं। संयोगी जड़ें प्रायः द्विदली दरख़्तों में ज़्यादातर कंद वग़ैरः में या रिंगने वाले तनों पर पाई जाती हैं। एक दाल वाले क़रीब क़रीब सभी दरख़्तों में जड़ें अक्सर संयोगी ही होती हैं

तल जड़ और मामूली शाखों वाली जड़ों की क़िस्में

हरे द्विदली दरख़्तों में मामूली तौर पर जटाधारी शाखों की तल जड़ें पाई जाती हैं। इन में मामूली एक तरह से तल जड़ और मामूली शाखें यह दोनों ही पतली और रेशेदार होती हैं। इस क़िस्म की जड़ें उन पेड़ों में पाई जाती हैं जो ज़मीन के अन्दर से अपना खाना लेते हैं। इस पद्धति की एक बदली हुई सूरत उन दरख़्तों में पाई जाती हैं जो ज़मीन के अन्दर अपना खाना खाते हैं और इनमें तल जड़ छोटी और मज़बूत होती है और पतली और रेशेदार शाखों का विस्तार बहुत बड़ा होता है। वार्षिक दरख़्तों की जड़ें ज़्यादा-तर पतली और रेशेदार होती हैं और इनमें खाने का सामान जमा नहीं होता है। बहुवर्षिक दरख़्तों की जड़ों की हालत और ही होती है। इनमें थोड़ा बहुत खाने का सामान बचत की तरह जमा होता है ताकि वह अगले साल की बाढ़ के लिये काम में आवे और इसी से अक्सर यह मोटी और गूदेदार हो जाती हैं। द्विवर्षी दरख़्तों की जड़ें भी इसी कारण, से अक्सर मुटाई लिये हुये होती हैं, जैसे गाजर मूली, शलगम-वग़ैरः यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि गाजर और चुक़ंदर के तलजड़ में 'हायपोकाटोल' (Hypocotyl) हिस्सा भी शामिल है लेकिन अङ्गरेज़ी मूली और शलग़म में फूला हुआ गूदेदार हिस्सा सिर्फ़ 'हायपोकाटोल' (Hypocotyl) है

और तल जड़ गोया उसके नीचे का हिस्सा होती है। अकसर मामूली दूसरे दर्जे की शाखें भी फूल जाती हैं और 'रूट ट्यूवर्स' Root-tubers कहलाती हैं।

संयोगी जड़ें और उनकी किस्में :—गेहूं, चावल, मकई वग़ैरः में व और दूसरे अनाजों में भी क्या होता है कि जड़ें सब रेशेदार (Fibrous) होती हैं और ज़्यादातर तने के उस हिस्से से निकलती हैं जो असली जड़ों के ऊपर की तरफ होता है। इन जड़ों की तने से निकलने की पद्धति तल जड़ों की पद्धति से बिलकुल निराली ही होती है। इसमें सब से पुरानी जड़ नीचे की तरफ़ और सब से नई या छोटी ऊपर की तरफ़ निकली हुई होती है। इस तरह की जड़ें जो जड़ों से निकलने की बजाय तनों या पत्तियों से निकलती हैं, संयोगी जड़ें कहलाती हैं। सब से मामूली और आसानी से पहचाने जाने के लायक़ संयोगी जड़ें बरगद के दरख़ में मिलती हैं। इसमें संयोगी जड़ें शाखों से निकलती हैं और अगर उन्हें तोड़े ताड़ें नहीं तो वह ज़मीन तक लटकती हैं और आख़िर में ज़मीन के अन्दर घुस जाती हैं। यह जड़ें इतनी मोटी हो जाती हैं कि देखने में तनों या शाखों में और इनमें कुछ भी फ़र्क नहीं दिखाई देता। लेकिन यह बात कि यह जड़ें हैं, न कि तने या शाखें, इस बात से स्पष्ट मालूम होती है कि इन पर पत्तियां या छिलके नहीं होते और इन सब के सिरे पर जड़टोप पाया जाता है।

अन्त में इनके तनों की तरह दिखाई देने की यह एक वजह है कि इन जड़ों में और तनों में यद्यपि प्रथम बहुत अन्तर होता है किन्तु जैसे जैसे यह बढ़ती जाती हैं वैसे ही यह मोटाई में तनों की तरह बढ़ती है और उन्हीं की तरह से काग और छाल भी अपने ऊपर बनाती हैं। बरगद के दरख़ की संयोगी जड़ें उसकी शाखों को सहारे का काम देती हैं और इस तरह यह दरख़ बेहद बढ़कर बहुत ही जगह घेर सकता है। कलकत्ते में एक बरगद का पेड़ है जिसमें इन जड़ों से बने हुये ५०० सहारे हैं और इसकी शाखें इतनी फैली हुई हैं कि वह करीब क़रीब ६०० फुट घेर की जगह घेरे हुये हैं।

ऊपर वाली मिसाल में हमने देखा है कि संयोगी जड़ें दरख़ की शाखों से निकलती हैं। यह कहना ज़रा भी अनुचित न होगा कि संयोगी जड़ें अँकुर के क़रीब क़रीब किसी हिस्से से निकल सकती हैं। अगर मामूली गन्ने के टुकड़े ज़मीन में गाड़ कर लगा दिये जांय तो उसके नीचे संयोगी जड़ पैदा हो जाती हैं और दरख़ बड़ा होने लगता है। मामूली आलू या दूब घास वग़ैरः के बढ़ाने या पैदा करने का यह ही तरीक़ा है। आलू वैसे के वैसे ही ज़मीन के अन्दर गाड़ कर डाल दिये जाते हैं और उस से दरख़ पैदा होकर उसमें से तमाम आलू होते हैं। माली इस उपाय से बहुत से काम करते हैं। कोई भी फूलदार या ख़ूबसूरत शौकीनी पेड़ जो कि अच्छे पैदा करने लायक़ बीज नहीं देते (जैसे क्रोटन वग़ैरः), उनके मेल के बहुत से दरख़्त जमाने के लिये उनकी एक शाख़ झुका कर उस का एक हिस्सा ज़मीन के नीचे तोप देते हैं और तोपी हुई शाख़ ज़मीन के अन्दर से आप ही आप निकलती हैं और इस तरह उस शाख़ का एक नया पेड़ बन जाता है। इसके बजाय अकसर यह भी करते हैं कि किसी शाख़ के चारो तरफ़ थोड़ी सी मिट्टी लगा दी जाती है और उस पर

चारों तरफ़ कपड़ा बांध कर उसे तर रखते हैं। जब उसमें संयोगी जड़ें निकल आती हैं तब उस मट्टी बंधे हुये हिस्से को नीचे की तरफ़ से काट कर उसे ज़मीन में लगा देने से नया पेड़ तैयार हो जाता है।

यह संयोगी जड़ें सिर्फ़ शाखों से ही नहीं बल्कि पत्तों से भी अक्सर निकलती हैं। ब्रायोफायलम वा बेगोनिया के दरख़्त लगाने की तरकीब यह है कि उस दरख़्त की एक पत्ती तोड़ लो और उसे ज़मीन पर डाल दो। उस पत्ती से संयोगी जड़ें निकल कर ज़मीन के अन्दर जाती हैं और अङ्कुर निकल कर ऊपर की तरफ़ बढ़ता है।

उन पेड़ों में एक अजीब तरह की जड़ें होती हैं जो कि और मामूली दरख़्तों की तरह ज़मीन पर उगने की बजाय दूसरे दरख़्तों ही पर रहते हैं। यह दरख़्त जिन्हें (Epiphytes) कहते हैं दूसरे पेड़ों से अपनी छोटी छोटी जड़ों के ज़रिये से चिपटे रहते हैं। यह जड़ें दरख़्त की छाल में घुसी रहती हैं और जो कुछ पानी शाखों और तनों से बहता हुआ आता है वह उनकी जड़ें इस्तेमाल करती हैं। किन्तु इन पेड़ों को ज़मीन से ज़रा भी ताल्लुक़ न रहने की वजह से इन पेड़ों का इस पानी के अलावा और कहीं से भी पानी नहीं मिल सकता और यह मामूली तौर से समझ लेना चाहिये कि (Epiphytes) ज़्यादातर नम हवा में ही रह सकते हैं। इसी कारण ऐसे दरख़्तों की जड़ें ख़ास तौर से बनी हुई होती हैं। सूखी हालत में यह जड़ें सफ़ेद मालूम होती हैं लेकिन जब गीली होती हैं तब हरी सी नज़र आती हैं। अगर इन्हें तोड़ा जाय तो मालूम होगा कि इनके बीच में तो सख़्त और हरा हिस्सा होता है परन्तु इस हरे हिस्से के बाहर की तरफ़ ढीला और स्पञ्ज की तरह से होता है ताकि यह हिस्सा एक दफ़ा पानी मिलने पर बहुत सा ले सके और उसे बहुत देर अपने में रख सके।

इनके सिवाय एक और मेल के पेड़ होते हैं जिन्हें परोपजीवी (Parasites) दरख़्त कहते हैं और एक दूसरे मेल के पेड़ होते हैं जिन्हें अर्ध परोपजीवी (Half parasites) कहते हैं। इनके नाम ही से साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह मामूली दरख़्तों की तरह अपने वास्ते पानी और भोजन ज़मीन से नहीं लेते किन्तु दूसरे वृक्षों से लेते हैं। इनकी भी बहुत सी मिसालें हैं।

जड़ों के बाल:—जड़ टोप के कुछ ही ऊपर जड़ों पर बारीक बाल होते हैं और वह थोड़ी ही दूर तक पाये जाते हैं। ज़मीन से पानी खींचने के काम के सिवाय यह एक ख़ास काम यह भी करते हैं कि दरख़्त की जड़ ज़मीन में अच्छी तरह से जमाये रखते हैं क्योंकि ज़मीन के हिस्से उनमें अच्छी तरह से लिपट जाते हैं। यह बातें जो ज़मीन में बीज जमाये जायं उनमें अच्छी तरह से पाई जाती हैं।

पत्ती

एक हरी पत्ती के भाग—पत्ता दरख़्त के तने से कुदरती तौर से बढ़ कर निकलता है। एक हरे पत्ते के मामूली तौर से तीन भाग होते हैं (क) पत्र दल (ख) पत्र डंठल (ग) पत्ते का जोड़ या बैठक।

(क) पत्र दल—यह वह भाग है जो कि कारबन संस्थापन क्रिया करता है । प्रायः यह चौड़ा और पतला होता है
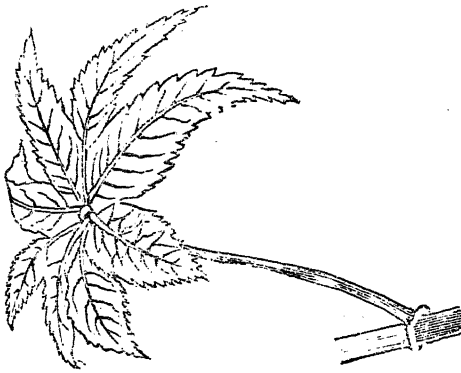
पत्ती और उसके तीन हिस्से । पत्र दल, पत्र डंठल और पत्ते की बैठक । इस पत्ता के किनारे दंदानेदार हैं ।

किन्तु जिन दरख़्तों में भाश्पी भवन क्रिया (Transpiration) के कम होने की आवश्यकता होती है उन में पत्र दल ज़्यादातर बहुत ही कम चौड़ा होता है । इन दरख़्तों की पत्तियों का आकार या तो गोल होता है जैसे कि प्याज़ के दरख़्त में या नोकदार जैसे सुरू या चीड के दरख़्तों में और या गूदेदार होता है । बाज़ दरख़्तों में तो पत्तियों का पत्र दल बिलकुल ही ग़ायब रहता है जैसे नागफनी के दरख़्त में और इन दरख़्तों में हमें जो हथेली की तरह चौड़ी और हरी चीज़ें नज़र आती हैं वह असल में तना है न कि पत्ती ।

(ख) पत्र डंठल—मामूली तौर से तो यह हिस्सा गोल होता है लेकिन इस के ऊपर का हिस्सा अक्सर चपटा या नोकदार भी होता है । बाज़ पत्तियों में पत्र डंठल ग़ायब रहता है । पत्र दल को ऊपर की तरफ़ बढ़ा कर जहाँ तक हो सके
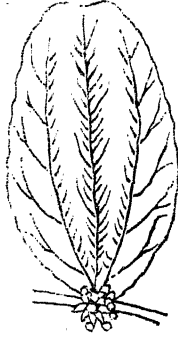
बिना पत्र डण्ठलवाली पत्ती ।

उसे ज़्यादः रोशनी की जगह में पहुँचाना ही पत्र डंठल का मुख्य काम है । द्विदली दरख़्तों की पत्तियों में यह न हो ऐसा बहुत कम होता है किन्तु एक दल वाले दरख़्तों में यह ज़्यादातर ग़ायब रहते हैं । इन दरख़्तों में पत्र दल ही के नीचे का थोड़ा सा हिस्सा तने के चारों तरफ़ लिपटा रहता है जैसे बांस, घास, प्याज़, वग़ैरः के दरख़्तों में ।

(ग) पत्ते की बैठक—यह पत्ते के डंठल के नीचे का चपटा हिस्सा है । बहुत से दरख़्तों में पत्ते की बैठक नहीं होती परन्तु बाज़ दरख़्तों के पत्तों में यह तने या उसकी शाख़ के उस जगह के चारों तरफ चिपटी रहती है जहाँ से कि पत्ता उनसे निकलता है । बाँस व घास वग़ैरः के दरख़्तों में

बैठक लम्बी और नलीनुमा होती है। बैठक अक्सर मोटी और गूदेदार भी होती है। यह पत्ते को 'लीवर' (Liver) का काम देती है और इसी वजह से पत्ता अपनी दिशा बदल सकता है और अपने को बहुत से नुकसानों से जो कि उसे उसकी पहली जगह में रहते हुये पहुँच सकते हैं बचा सकता है। एक दाल वाले दरख़्तों में तो बहुत ही कम किन्तु द्विदली दरख़्तों में अक्सर पत्तों की बैठक पर दोहरी और छोटी छोटी पत्तियों की सी चीजें निकलती हैं जिन्हें वृत्तानुबंध (Stipules) कहते हैं। इनको पत्ती के पंख कहना बिलकुल अनुचित न होगा।

गुलाब की मिश्रित पत्ती और उसके वृतानुबन्ध।

पत्ती के से बनावट की चीज़ें—पत्तियों की सैकड़ों तरह की क़िस्में और शक्लें हैं। जो पत्ती जिस ख़ास तरह से अपना काम करती है उस पत्ती की शक्ल और बनावट उसी ख़ास काम के करने के लायक़ बनी हुई होती है। हम फुटकर चीजों को छोड़ कर थोड़ी सी ख़ास ख़ास शक्लों को बयान करेंगे।

(क) पत्राङ्कुर—इसके विषय में उद्भेद का बयान लिखते समय हम पूरा हाल लिखेंगे। यहाँ केवल इतना ही लिखना चाहते हैं कि यह जिन पौदों के उद्भेद में पेड़ की पहली पत्तियाँ बनकर ज़मीन के ऊपर आते हैं उन पेड़ों में इन पत्राङ्कुरों की शक्ल और सूरत मामूली हरी पत्ती की तरह होती है, किन्तु जिन पेड़ों में यह पत्राङ्कुर ज़मीन की सतह के नीचे ही रहते हैं उनमें पेड़ की सब से नीचे की या पहली पत्तियाँ तने ही से निकली हुई होती हैं।

(ख) छिलके के समान पत्ती—मामूली तौर से यह देखने में छोटी और भूरी होती है। इनमें हरित वर्ण शरीर नहीं होते जिनकी वजह से और पत्तियाँ हरी होती हैं। यह ज़्यादातर ज़मीन की सतह के नीचे रहने वाले तनों पर पाई जाती हैं और बहुत सी कलियों के रक्षा करने वाले छिलके भी इन्हीं के बने हुये होते हैं। इनका मुख्य काम रक्षा करना है। ये अक्सर उन कलियों की रक्षा करती हैं जो किसी पत्ती के बग़ल में पाई जाती हैं। अगर यह छिलका कलियों के चारों तरफ़ लपटा हुआ हो तो वह उसके अन्दर की दूसरी छोटी छोटी पत्तियों की रक्षा करता है जो उसके अन्दर की तरफ़ होती हैं और जिनसे कि कली बनी हुई होती है।

(ग) मामूली हरे पत्ते—इस विभाग में दरख़्त पर लगे हुये सब हरे पत्ते शामिल हैं। यह दरख़्त के वह हिस्से हैं

जिनकी वजह से दरख़्त के बहुत से काम होते हैं जैसे भोजन सामिग्री से भोजन का बनाना, श्वासोच्छ्वास क्रिया भाप्पी भवन क्रिया वग़ैरः २ सब काम दरख़्त का यही अङ्ग करता है। पत्तों का रङ्ग हरित वर्ण शरीरों के होने की वजह से हरा होता है।

(घ) फूलों की पखरियाँ और ब्रेक्टस—यह पत्तियों की शक्ल के वह हिस्से हैं जो कि दरख़्त की उत्पत्ति क्रिया करनेवाले स्थानों में पाये जाते हैं। इनके विषय में यहाँ कुछ भी लिखना व्यर्थ है क्योंकि आगे चलकर फूलों के बयान में सब बातें लिखना होंगी।

पत्र संगठन क्रम—वह तरीक़ा या तरकीब जिससे कि दरख़्त के तने पर या उसकी शाखों पर पत्तियाँ लगी हुई होती हैं पत्र संगठन क्रम कहलाता है। इस क्रम के दो हिस्से हैं (क) पहले को पेचदार क्रम कहते हैं और (ख) दूसरे को चक्करदार क्रम कहते हैं।

पेचदार पत्र संगठन क्रम में एक ही एक पत्ता हर एक गाँठ (node) से निकलता है। इस क्रम को पेचदार क्रम कहने का कारण यह है कि अगर एक ख़्याली लकीर तरतीब से पत्तों की बैठकों में होती हुई खींची जावे तो यह मालूम होगा कि यह लकीर तने के चारों ओर एक पेंच सा बनाती हुई जाती है। चक्करदार संगठन क्रम में दो या दो से अधिक पत्तियाँ हर एक गाँठ (node) से निकलती हैं और इस क्रम को चक्करदार संगठन क्रम कहने की वजह यह है कि इस में पत्तियाँ गाँठ के चारों तरफ़ से निकली हुई होती हैं और एक चक्कर सा बनाती हैं। अगर दो ही पत्तियाँ एक गाँठ पर निकलती हैं तो इन्हें अभिमुख पत्तियाँ कहते हैं अगर एक गाँठ पर की अभिमुख पत्तियाँ उसी के ऊपर या नीचे
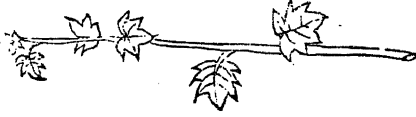
एक शाख़ जिस पर पत्तियों का पेचदार संगठन क्रम है।

वाली गाँठकी अभिमुख पत्तियोंके ठीक ऊपर या नीचे निकली हों यानी हरएक तने या शाख़ पर पत्तियों की सिर्फ़ दो ही लकीरें हों तो इन्हे 'सुपर पोज़्ड' (Superposed) अभिमुख पत्तियाँ कहते हैं लेकिन अमूमन इस तरहका संगठन बहुत ही कम दरख़्तों में पाया जाता है। कभी कभी एक गाँठ के ऊपर की पत्तियाँ उसी के ऊपर या नीचेवाली गाँठ की पत्तियों के एक ही क़तार में होने की बजाय कोई दो पास वाली गाँठों के ऊपर निकली हुई पत्तियाँ एक दूसरे से ९० अंश का कोना

बनाती हैं। इस हालत में तने पर पत्तियों की चार क़तारें नज़र आती हैं। चक्करदार संगठन क्रम में पत्तियाँ जब इस हिसाब से तने या उसकी शाखपर हों तब उन्हें 'डिकसेट' (decussate) अभिमुख पत्तियाँ कहते हैं।
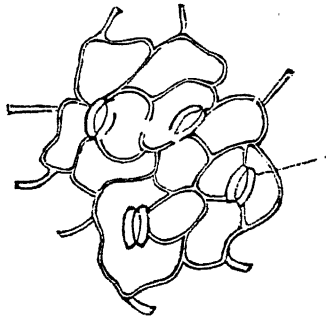
इसी तरह से जड़ें ज़मीन से पानी खींचकर ऊपर पत्तियों में पहुँचाती हैं। काँच के नली में लगी हुई शाख। सिरे की कली।

नीचे दी हुई कुछ बातें पत्र संगठन क्रम के विषय में ध्यान देने के योग्य हैं। पेंचदार संगठन क्रम में वह ख़्याली लकीर जो कि पत्तियों की बैठका से होती हुई खींची जाती है 'जेनेटिक स्पाइरल' (genetic spiral) कहलाती है और इस संगठन क्रम में वह कोण या अंश जो कि किसी एक पत्ती और उसीके ऊपर या नीचे वाली पत्ती में पाया जाता है अंश का कोण कहलाता है। अब देखना चाहिये कि मामूली घास के तने पर किस प्रकार का संगठन क्रम पाया जाता है घास के तने पर पत्तियाँ हरएक गाँठ पर एक ही एक के हिसाब से होती हैं किन्तु यह पत्तियाँ तने पर दो क़तारें बनाती हैं। तो गोया एक गाँठ के ऊपर की पत्ती में और उसी
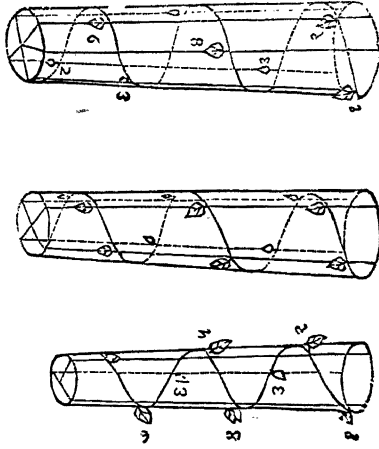
पत्र संगठन क्रम और अंश के कोण निकालने में मदद करने के लिये कुछ चित्र।

के ऊपर वाली गाँठ की पत्ती के बीच का अंश १८०° होता है। (ताकि फिर तीसरी पत्ती इस पहली पत्ती की क़तार में होती है)। इसी तरह से हम किसी एक टहनी को लेकर उसके ऊपर लगी हुई किसी दो पत्तियों के बीच का अंश निकाल सकते हैं। इस काम के लिये दो आलपीनें और एक फ़ुट भर लम्बा तागा इन दो चीज़ों की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक है कि उस टहनी की कोई भी पत्ती टूटकर गिर न गई हो क्योंकि अक्सर पत्तियाँ किसी न किसी वजह से टूट जाती हैं और फिर हमारे हिसाब में गोलमाल होने का डर

रहेगा इसीलिये संगठन क्रम मालूम करने के लिये जो टहनी ली जाय उसकी सब पत्तियाँ साबित होनी चाहिये अब फ़र्ज़ करो कि हम उस डंगाल की किसी पत्ती को हम पहली पत्ती कहें और उसके बैठक की जगह तने पर एक पिन चुभो दें और धागे का सिरा उस आलपीन में बाँध दें इसके बाद उस धागे को इस पहली पत्ती के बाद उसके ऊपर की पत्ती की बैठक से और फिर इसी हिसाब से उसके ऊपरवाली पत्तियों की बैठकों से होते हुये ले जावें यहाँ तक कि फिर से ऐसी पत्ती आ जावे जो कि पहली पत्ती के ऊपर ठीक उसी की सीध में हो। इसके बाद हमें यह देखना चाहिये कि उस दूसरी ठीक ऊपर वाली पत्ती तक पहुँचने के लिये हमें बीच में कितनी पत्तियाँ मिलती हैं और दूसरी बात यह कि उसी पत्ती तक पहुँचने में हमारा धागा तने में कितनी बार पूरे चक्कर करता है। अब फ़र्ज़ करो कि पहिली पत्ती के बाद हम को और चार पत्तियों से होते हुये गुज़रना पड़ता है तब हमें पाँचवीं पत्ती मिलती है जो कि पहली पत्ती के ठीक ऊपर है और यह भी मान लिया जाय कि इस पत्ती तक पहुँचने के लिये हमें दरख़्त के तने के गिर्द पूरे दो चक्कर लगाने पड़ते हैं तो उस डगाल के ऊपर की किन्हीं दो पत्तियों के बीच का अंश निकालने के लिये हमें $\frac{२ \times ३६०}{५} = १४४^\circ$ यानी दो चक्करों को (हरएक चक्कर करने में ३६०° डिगरियाँ होती हैं) पाँच से भाग दें। अर्थात् इस ख़ास टहनी में दो पत्तियों के बीच का अंश १४४° अंश (डिगरी है)। इस ऊपर वाली मिसाल से हमें यह मालूम हो जायगा कि हम जितने चक्कर धागे के तने के गिर्द करें उनको, जितनी पत्तियों से होता हुआ हमारा धागा जाय, उससे भाग दें और इसको ३६० से गुणा करें तो कोई भी दो पत्तियों के बीच का अंश निकल आवेगा।

दरख़्तों में मामूली तौर से अंश दो सिलसिलों में पाये जाते हैं:—(क) $\frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{२}{५}, \frac{३}{८}, \frac{५}{१३}$

(ख) $\frac{१}{४}, \frac{१}{५}, \frac{२}{९}, \frac{३}{१४}, \frac{५}{२३}$

इन सिलसिलों के ताल्लुक़ में यह ख़ास बात है कि एक सिलसिले का कोई भी अंश हम उस सिलसिले के पहले दो अंश मालूम होने से निकाल सकते हैं।

लड़कों से दरख़्तों की टहनियाँ मंगाकर उनसे हरएक टहनी का पत्र संगठन क्रम और अंश का कोण निकलवाना चाहिये।

पत्तों का लगाव(Insertion)—तने की उस जगह को जहाँ पत्ती उस पर लगी हुई होती है लगाव कहते हैं। पत्तियों को हम कौलिन पत्ती (cauline) या रेमल (Ramel) पत्ती कहते हैं। पहिली हालत में तो ख़ास तने ही पर से पत्ती निकली होती हैं और दूसरी हालत में उसकी शाख़ से। किन्तु वह पत्तियाँ जो बहुत ही छोटे तने से निकलती हैं और जो जड़ ही से निकली मालूम होती है मूलांकुरी पत्ती (Radical) कहते हैं।

क्रमशः

सूर्य-सिद्धान्त

चन्द्रग्रहणाधिकार

संक्षिप्त वर्णन

[१ श्लोक—सूर्य और चन्द्रमाके मध्यव्यासके मान। २-३ श्लोक—प्रत्येकके स्पष्ट व्यास जाननेकी रीति तथा चंद्रमाकी कक्षामें सूर्यका स्पष्ट व्यास (योजनों और कलाओंमें) जाननेकी रीति। ४-५ श्लोक—चंद्रमाकी कक्षामें पृथ्वीकी छायाके व्यासका मान जाननेकी रीति। ६ श्लोक—चंद्रमाके पातके कहां रहनेसे ग्रहण हो सकता है। ७ श्लोक—किस तिथिमें ग्रहण हो सकता है। ८-श्लोक—अमावास्या और पूर्णिमाके अन्तकालके सूर्य और चंद्रमाको स्पष्ट करनेकी रीति। ९—श्लोक ग्रहण क्यों पड़ता है। १० श्लोक ग्रस्त भागका परिमाण जाननेकी रीति। ११-श्लोक—सर्वग्रास ग्रहण होगा या खंड ग्रहण अथवा ग्रहण न पड़ेगा यह निश्चय करनेकी रीति। १२—१५ श्लोक—ग्रहण और सर्वग्रास ग्रहण कितने समयतक रहेगा यह जाननेकी रीति। १६ श्लोक—ग्रहणके आरंभकाल और अन्तकाल जाननेकी रीति। १७ श्लोक—सर्वग्रास ग्रहणके आरंभकाल और अन्तकाल जाननेकी रीति। १८—२१ श्लोक—किस समय कितना भाग ग्रस्त रहेगा यह जाननेकी रीति। २२—२३ श्लोक—ग्रासका परिमाण जानकर इष्टकाल जाननेकी रीति। २४—२५ श्लोक—ग्रहणका चित्र खींचनेके लिये वलन जाननेकी आवश्यकता। २६ श्लोक—इष्टकालमें बिम्बका अङ्गुलात्मक मान जाननेकी रीति।]

सूर्य और चन्द्रमामें ग्रहण किस प्रकार लगता है यह जाननेके लिए पहले प्रकाशके कुछ गुणोंकी जानकारी आवश्यक है। इसलिए पहले संक्षेपमें इन्हींपर विचार किया जायगा। यह सबके अनुभवकी बात है कि रातको दीपकके उजेलेमें दीवालपर किसी वस्तुकी जो छाया पड़ती है वह कहीं हलकी और कहीं गहरी होती है। गहरी छाया बीचमें होती है और हलकी छाया गहरी छायाको घेरे रहती है। यदि वस्तु दीवालके पास हो तो गहरी छाया बड़ी होती है और हलकी छाया कम। ज्यों ज्यों वह वस्तु दीवालसे दूर होती जाती है परंतु दीपकके निकट त्यों त्यों छायाका विस्तार तो बढ़ता जाता है परंतु गहरी छाया कम होती जाती है और हलकी छाया अधिक। यदि वस्तु दीपकसे छोटी हो तो एक स्थिति ऐसी भी आजायगी जिसमें गहरी छाया बिल्कुल नहीं पड़ेगी, केवल हलकी छाया दीवालपर देख पड़ेगी। हां, यदि वस्तु दीपकसे बड़ी हो तो गहरी छाया दीवालपर सदैव पड़ेगी।

दीवालके जिस भागपर गहरी छाया पड़ती है उस भागपर दीपकके प्रकाशका कोई अंश नहीं पहुंचता परंतु हलकी छायामें दीपकका प्रकाश कुछ न कुछ अवश्य पहुँचता है। यदि कोई कीड़ा दीवालपर गहरी छायामें हो तो उसे दीपक बिल्कुल नहीं देख पड़ेगा परन्तु हलकी छायामें उसे दीपकका कोई न कोई भाग अवश्य देख पड़ेगा। इसकी परीक्षा यों की जा सकती है:—

एक दीपक या लम्प जलाकर रख लो। थोड़ी दूरपर एक पेंसिल गोली या ऐसी चीज़ जो दीपकसे छोटी हो खड़ी कर दो या टांग दो। कुछ और दूरपर एक पतला कागज़ हाथमें इस प्रकार थामो कि इसपर पेंसिलकी गहरी और हलकी दोनों छाया पड़े दो। गहरी छायामें सुईसे एक छेदकर दो और इसीसे देखो कि दीपक देख पड़ता है या नहीं। दीपक नहीं

चित्र ६०

चित्र ६१

चित्र ६२

देख पड़ेगा। हलकी छायामें सुईसे छेद करके देखो। दीपकका कुछ अंश देख पड़ेगा।

रेखा गणितसे यह जाना जा सकता है कि गहरी छाया कहां पड़ेगी और हलकी छाया कहां पड़ेगी। इनके विस्तार आदिका पता लगाना भी गणितसे सम्भव है। सूर्य, चन्द्रमामें ग्रहण कैसे पड़ता है यह जाननेके लिए गहरी और हलकी छायाका गणित करना पड़ता है इसलिए इसपर अच्छी तरह विचार करना आवश्यक है। आगे गहरी छायाको केवल छाया और हलकी छायाको उपछाया कहा जायगा।

मान लो र एक प्रकाशमान पिंड और च एक अपारदर्शक पिंड है। दोनों पिंड गोलाकार हैं। र से प्रकाशकी किरणों चारों दिशाओंमें फैलती हैं परन्तु जो किरणें च पिंडपर पड़ती हैं वे इसके आगे नहीं बढ़ने पातीं। इन दोनों पिंडोंको सीधी स्पर्श करती हुई रेखाएं खींची जांय तो वे त बिन्दुपर परस्पर मिलकर एक दूसरेको काटती हुई आगे बढ़ेंगी। अतएव सूची (cone) के आकारका होगा। यही च पिंडसे बनी हुई छाया-की सीमा होगी इसके ऊपर, नीचे, इधर उधर छाया नहीं पड़ेगी।

इन दोनों पिंडोंको छूती हुई जो रेखाएं त बिंदुपर मिलती है। इनसे परिछाया की सीमा बनती है।

यदि एक पट (पर्दा) छायामें इस प्रकार रखा जाय कि वह र, च पिंडोंके केन्द्रोंको मिलाने वाली रेखासे समकोणपर रहे तो इस पटपर छायाका जो वृत्त बनेगा उसका व्यास छ छा होगा और परिछायाके वृत्त का व्यास उऊ होगा जिसमें छायाका व्यास भी शामिल है (देखो चित्र ६१) यदि ढ छ खंडमें किसी जगह प बिंदुपर एक छेद कर दिया

जाय और इसी छेदसे प्रकाशमान पिंड देखा जाय तो पिंडका वह ऊपरी भाग देख पड़ेगा जो प विंदु के ऊपर है। यह प विंदु प आ स्पर्श रेखाको बढ़ानेसे प्रकाशमान पिंडपर निश्चय किया जाता है। यदि ऊ छा खंडमें कहीं छेद किया जाय तो प्रकाशमान पिंडके नीचेका भाग देख पड़ेगा। परंतु यदि छेद छ छा खंडम किया जाय तो प्रकाशमान पिंडका कोई भाग नहीं देख पड़ेगा। सारांश यह कि यदि द्रष्टा अ आ त रेखाके ऊपर परन्तु ता आ उ के नीचे कहीं रहेगा तो उसे र पिंडका ऊपरी भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु नीचे वाला भाग नहीं देख पड़ेगा। इसी प्रकार इ ई त रेखाके नीचे और अ ई क रेखाके ऊपर द्रष्टाके रहनेसे प्रकाशमान पिंडका नीचे वाला भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु ऊपर वाला भाग नहीं देख पड़ेगा।

यदि पट त विंदुपर लाया जाय तो यहां छाया नाम मात्र-को भी नहीं रहेगी। प्रकाशमान पिंड देख तो नहीं पड़ेगा परंतु इसकी चमक चारों ओर कुछ अवश्य देख पड़ेगी। यदि पट त से और दूर किया जाय तो एक और ही दृश्य देख पड़ेगा। क ख और ग घ उपछायाके खंडोंमें तो पहले की ही तरह बात देख पड़ेगी परन्तु ख ग खंडमें जो छाया की सीमा बनाने वाली रेखाओंके बीचमें है प्रकाशमान पिंडका किनारे वाला पूरा भाग देख पड़ेगा परंतु बीचमें अन्धकार रहेगा। (देखो चित्र ६२) चित्र से यह प्रकट ही है कि ख ग के बीच किसी विंदु से च पिंडको स्पर्श करती हुई जो रेखाएं खींची जायंगी वह र पिंडके ऊपर नीचे दोनों ओर पहुँचेगी पिंड गोल है इसलिए बीचमें अन्धकारमय होनेसे कंकण की तरह देख पड़ेगा।

यह सब दृश्य प्रयोग द्वारा देखे जा सकते हैं। एक गोल लम्प, गेंद तथा लकड़ीके चौखटेमें तने हुए पट, बस तीन चीजें इसके लिए पर्याप्त हैं। र पिंडकी जगह गोल लम्प और च की जगह गेंदको समझना चाहिए। अंधेरी रातमें किसी स्थानमें यह प्रयोग सहज ही किया जा सकता है।

इसी प्रयोगसे सूर्यग्रहणकी सारी बातें समझमें आ सकती हैं। र को रवि या सूर्य और च को चन्द्रमा समझना चाहिए। पट-की जगह पृथ्वीको समझना चाहिए। जिस तरह यह पिंडके निकट रहने पर छाया और परिछाया दोनोंमें रहता है परन्तु दूर रहनेपर केवल उपछाया या छायाकी सीमा बनाने वाली रेखाओंके बीचमें रहता है। इसी तरह पृथ्वी भी कभी चंद्रमाके निकट रहनेसे चंद्रमाकी छाया और परिछाया दोनोंमें रहती है और कभी दूर रहनेसे केवल परिछायामें ही रहती है। पृथ्वी चंद्रमासे बहुत बड़ी है इसलिए सारी पृथ्वी छाया या परिछाया-में नहीं पड़ सकती। पृथ्वीका जो भाग छायामें पड़ जाता है वहांके निवासियोंको सूर्य बिलकुल नहीं देख पड़ता। इस लिये सूर्यका पूर्णग्रहण या सर्व ग्रहण (total eclipse of the sun) होता है। पृथ्वीका जो भाग परिछायामें पड़ता है वहाँके निवासियोंको सूर्य का खंड ग्रहण (partial eclipse) देख पड़ता है। यदि पृथ्वीपर छाया न पहुंचे तो वह उसी स्थितिमें रहेगी जो क ख ग घ पटसे दिखायी गयी है। ऐसी दशामें पृथ्वीका जो भाग छायाकी सीमा बनाने वाली रेखाके बीचमें होगा वहां कंकण ग्रहण (annular eclipse) देख पड़ेगा।

जिस तरह चंद्रमाकी छाया या उपछायामें पृथ्वीके आ जानेसे सूर्यमें पूर्ण ग्रहण खंड ग्रहण, अथवा कंकण ग्रहण देख

चित्र १३

पड़ता है उसी तरह पृथ्वीकी छायामें जब चंद्रमा आजाता है तब प्रकाश हीन हो जाता है। इसीको चंद्र ग्रहण कहते हैं। यदि चंद्रमाका पूर्ण पिंड छायामें आ जाय तो पूर्ण चंद्र ग्रहण (total elclipse of the moon) और अधूरा पिंड छायामें आवे तो खंड चंद्र ग्रहण (partial eclipse of the moon) पड़ता है। इस स्थितिमें चद्रमा निवासी सूर्यमें ही ग्रहण लगता हुआ देखेंगे परंतु उनको कंकण ग्रहण देखनेका सौभाग्य नहीं हो सकता क्योंकि चंद्रमासे पृथ्वीका आकार बड़ा होनेके कारण चंद्रमा कभी छायासे बाहर नहीं जा सकता है।

चित्रसे यह भी स्पष्ट है कि छायामें पहुंचनेके पहले परिछायामें घुसना आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिए कि चंद्रग्रहण तभी देख पड़ता है जब चंद्रमा पृथ्वीकी छायामें जाता है। यदि चद्रमा केवल परिछायामें जाय तो ग्रहण नहीं देख पड़ेगा, हां कुछ मलिनता अवश्य आ जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वीकी परस्पर दूरियोंके अनुसार छाया और उपछाया-का परिमाण भी कम या अधिक हो सकता है। यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है कि सूर्य और पृथ्वीके बीचकी दूरी तथा चंद्रमा और पृथ्वीके बीचकी दूरी घटती बढ़ती रहती है। दूरीके घटने बढ़नेसे इन पिंडोंके कोणात्मक आकार घटे बढ़े देख पड़ते हैं (देखो पृष्ठ १२७,१२८) इसलिए कोणात्मक आकारोंका परिमाण जाननेके लिए इनकी स्पष्ट दूरियोंका जानना आवश्यक है। परंतु त्रिप्रश्नाधिकार में यह बतलाया गया है कि किसी पिंडके आकार, लम्बन और उसकी स्पष्ट दूरीमें परस्पर क्या संबंध है। इस लिए लंबन या दूरी दोनों-

मेंसे किसी के जान लेनेसे यह जाना जा सकता है कि छाया परिमाण किस समय कितना होता है। नीचेके चित्र ६३ से यह जाना जाता है कि चंद्रग्रहणके समय चंद्रमाकी कक्षामें पृथ्वी की छायाका व्यास कितना बड़ा होता है।

मान लो कि चित्र ६३ में च चंद्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स बिंदुपर प्रवेश कर रहा है, इस लिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और पृथ्वीकी सामान्य स्पर्श रेखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वीकी छाया बनती है जिसकी नोक न है। सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्याएं र रा और प पा स्पर्श रेखा रा पा के समकोणपर हैं। परि रेखा पा रा के समानान्तर है।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वीके केन्द्रपर छायाकी उस त्रिज्यासे बनता है जो चंद्रमाकी कक्षामें है इसलिए इससे चंद्रकक्षामें छायाके आकारका पता चलेगा।

$$\sqrt{}\ \text{रिपर} = \frac{\text{रिर}}{\text{पर}} = \frac{\text{रार}-\text{रारि}}{\text{पर}} = \frac{\text{रार}-\text{पाप}}{\text{पर}} = \frac{\text{रार}}{\text{पर}} - \frac{\text{पाप}}{\text{पर}}$$

= सूर्यकी त्रिज्या − सूर्यका लंबन

= त्र − ल

त्र और ल से सूर्यकी त्रिज्या और लंबन सूचित किये गये हैं।

$\angle$ स प छ = $\angle$ प स पा − $\angle$ प न पा

= $\angle$ प स पा − $\angle$ रिपर

क्योंकि परि और न पा रा समान्तर हैं और न प र दोनों-को काटता है।

यहां $\angle$ प स पा $= \frac{\text{प पा}}{\text{प स}} =$ चंद्रमा का लंबन = ला

ला को चंद्रमाका परम लंबन या क्षितिज लंबन मान लेनेमें बहुत अंतर नहीं पड़ेगा। इसलिए

$\angle$ स प छ = ला − (त्र − ल)

= ल + ला − त्र

इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि सूर्य और चंद्रमा के क्षितिज लम्बनोंके योगफलसे सूर्यकी त्रिज्याका कोणात्मक मान घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छायाकी त्रिज्याका कोणात्मक मान होता है। इसीको भूभार्द्ध भी कहते हैं।

अनुभव से जाना गया है कि पृथ्वीके वातावरणके कारण इसकी छाया उपर्युक्त गणितसिद्ध छायासे १/५० गुना बड़ी होती है क्योंकि ऊपरके गणितमें पृथ्वीके केवल ठोस पिंडका विचार किया है, इसके वातावरणका नहीं।

उदाहरण—यदि सूर्यका लंबन ९," चंद्रमाका लंबन ५८'१" और सूर्यकी त्रिज्य १६'१३" हो तो चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छाया-की त्रिज्या बतलाओ।

भूभार्द्ध = ल + ला − त्र

= ९" + ५८'१" − १६'१३"

= ५८'१०" − १६'१३"

= ४१'५७"

यह गणित सिद्ध छायाकी त्रिज्या है। वातावरणके कारण छायाका १/५० गुना बढ़ आता है। इसलिए कुल छाया

$$= ४१'५७'' + \frac{४१'५७''}{५०} = ४१'५७'' + ५०'' = ४२'४७''$$

यह प्रकट है कि चंद्रकक्षामें भूभार्द्ध (पृथ्वीकी छायाकी त्रिज्या) का परिमाण सदैव एकसा नहीं रहता क्योंकि यह

सूर्य और चंद्रमाके लंबन तथा सूर्यकी कोणात्मक त्रिज्यापापर अवलंबित है और यहतीनों बातें पृथ्वीसे सूर्य और चंद्रमाकी दूरियोंपर अवलंबित हैं जो सदैव घटा बढ़ा करती हैं।

अब यह बतलाया जायगा कि इस विषयपर सूर्यसिद्धान्त का क्या मत है :—

सूर्य और चन्द्र बिम्बोंका मध्यम व्यास तथा चंद्रकक्षामें सूर्यका स्पष्ट व्यास—

साधानि षट्सहस्राणि योजनानि विवस्वतः।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः सहाशीत्या चतुःशतम् ॥१॥
स्फुट स्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्योद्धृतौस्फुटौ।
रवेः स्वभगणाभ्यस्तः शशाङ्क भगणोद्धृतः ॥२॥
शशाङ्ककक्षा गुणितो भाजितो वार्ककक्षया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्षायां तिथ्याप्ता मानुलिप्तिका ॥३॥

अनुवाद—(१) सूर्यके मण्डलका मध्यम व्यास ६५०० योजन और चन्द्रमाके मण्डलका मध्यम व्यास ४८० योजन है। (२) जिस समय किसीका स्पष्ट व्यास जानना हो तो उसके मध्यम व्यासको उस समयकी उसकी स्पष्टगतिसे गुणा कर दो और गुणनफलको उसकी मध्यमगतिसे भाग दे दो। सूर्यके स्पष्ट व्यासको सूर्यके महायुगीय भगणसे गुणा करके गुणनफलको चन्द्रमाके महायुगीय भगणसे भाग देनेपर (३) अथवा सूर्यके स्पष्ट व्यासको चन्द्रकक्षासे गुणा करके और गुणनफलको सूर्यकी कक्षासे भाग देनेपर जो आता है वही चन्द्रकक्षामें सूर्यके स्पष्ट व्यासका परिमाण है। चन्द्रकक्षामें सूर्य और चन्द्रमाके व्यासको १५ से भाग देनेपर सूर्य और चन्द्रमाके व्यास कलाओंमें सात हो जाते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकोंका सार यह है :—

सूर्य बिम्बका मध्यम व्यास=६५०० योजन

चन्द्र बिम्बका मध्यम व्यास=४८० योजन

$$\text{स्फुट व्यास} = \frac{\text{मध्यम व्यास} \times \text{स्फुट गति}}{\text{मध्यम गति}}$$

चन्द्रकक्षामें सूर्यका स्फुट व्यास

$$= \frac{\text{सूर्यका स्फुट व्यास} \times \text{सूर्यका महायुगीय भगण}}{\text{चन्द्रमाका महायुगीय भगण}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{सूर्यका स्फुट व्यास} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

यहां यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि क्या सूर्यका योजनात्मक आकार भी घटता बढ़ता है क्योंकि ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यका स्फुट (स्पष्ट) व्यास उसकी स्फुट गतिपर अवलंबित है जो सदा घटती बढ़ती रहती है। परन्तु बात यह नहीं है। सूर्यका योजनात्मक आकार स्फुट गतिके अनुसार कदापि घटता बढ़ता नहीं है, हां कलात्मक या कोणात्मक आकार अवश्य बदलता है जिसकी मीमांसा स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२७-१३३ में अच्छी तरह की गयी है। यहां मध्यम व्यास और स्फुट व्यासका परिमाण यद्यपि योजनोंमें बतलाया गया है तथापि इसे कोणात्मक ही समझना चाहिए क्योंकि इसके जाननेकी जो रीति भास्कराचार्यजी * ने लिखी है उससे यह अर्थ निकलता है। भास्कराचार्यजी कहते हैं कि जिस दिन सूर्यकी स्पष्ट या स्फुट गति मध्यम गतिके समान हो उस दिन उदयकालमें ३४३८ इकाइयोंके समान

* गणिताध्याय पृष्ठ १७१-१७२

दो लकड़ियां लेकर इनके दो सिरोंको मिलाकर[2] मूल स्थानोंमें आंख रखकर सूर्यके बिम्बको इस प्रकार वेधो कि इन लकड़ियोंके आगेवाले सिरे बिम्बके उत्तर और दक्खिनवाले किनारोंको स्पर्श करें। इसी दशामें लकड़ियोंके सिरोंको इस प्रकार कस दो कि आगेवाले सिरोंकी दूरीमें कोई भेद न पड़े। अब इन सिरोंकी दूरीको उसी इकाईसे नापो जिससे लकड़ियोंकी लम्बाई नापी गयी है। यह अन्तर जितनी इकाइयोंके
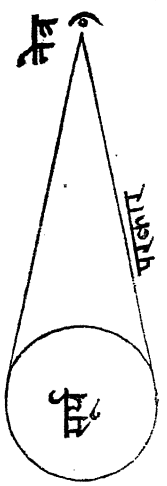
चित्र ९४

समान होगा उतनीहो कला सूर्यके बिम्बका व्यास होगा। भास्कराचार्यजीके अनुसार यह व्यास ३२′३१″३३‴ होता है। यदि इसको ३२′३०″ या ३२′.५ माना जाय और सूर्यकी कक्षा[3] का मान ४३,३१,५०० योजन लिया जाय तो सूर्य-बिम्ब का योजनात्मक मान इस प्रकार प्राप्त होगा :—

$$\text{कोई कक्षा} = ३६०^\circ$$
$$= २१,६००'$$

∴ सूर्यकी कक्षा भी २१,६०० कलाके समान है परन्तु योजनोंमें यह ४३,३१,५०० के समान है इस लिए

$$२१६००' = ४३,३१,५०० \text{ योजन}$$

$$३२'.५' = \frac{३२.५ \times ४३३१५००}{२१६००} \text{ योजन}$$

$$\therefore = ६५.७१' \text{ योजन}$$

सूर्य सिद्धान्तने सूर्यका मध्यम व्यास ६५०० योजन माना है इससे प्रकट होता है कि सूर्य इस ग्रन्थमें सूर्यका उदयकालिक बिम्ब ३२′३०″ से कम लिया गया है जो ठीक भी है क्योंकि वर्तनके कारण उदयकालिक बिम्ब यथार्थसे कुछ बड़ा देख पड़ता है।

इस तरह यह सिद्ध है कि सूर्य या चन्द्र बिम्बोंका योजनात्मक मान कलात्मक मानोंसे ही जाना गया है।

मध्यम व्याससे स्फुट व्यास जाननेका जो नियम बतलाया गया है वह कुछ स्थूल है क्योंकि सूर्य या चन्द्रमाकी स्फुटगतिका परिवर्तन उसी अनुपातसे नहीं होता जिस अनुपातसे इनके कोणात्मक बिम्बोंका परिवर्तन होता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १३२-१३३)।

चन्द्रकक्षामें सूर्यका स्पष्ट व्यास जाननेके दो नियम बतलाये गये हैं जो वास्तवमें एक ही निममके दो रूप हैं। चित्र ९५ में यदि रर सूर्यकी कक्षा, और चच चन्द्रमाकी कक्षाके खंड मान लिये जांय, भ पृथ्वीका केन्द्र हो और

चित्र ९५

यदि रर सूर्य बिम्बके समान मान लिया जाय तो चन्द्रकक्षामें यह बिम्ब चच के समान होगा। यह स्पष्ट ही है कि

२ आजकल यह काम परकार (dividers) की नोकोंसे किया जा सकता है। आंख उस बिन्दुपर होनी चाहिए जहां कम्पासकी दोनों भुजाएं मिलती हों।

३ भूगोलाध्याय श्लोक ८६

$$\frac{\text{चचा}}{\text{ररा}} = \frac{\text{भ च}}{\text{भ र}} = \frac{\text{चन्द्रकक्षाका व्यासार्ध}}{\text{सूर्यकक्षाका व्यासार्ध}}$$

$$= \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य कक्षा}}$$

क्योंकि दो वृत्तोंकी परिधियोंमें वही अनुपात होता है जो उनके व्यासार्धोंमें होता है।

इसलिए

$$\text{चचा} = \frac{\text{ररा} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य कक्षा}}$$

$$= \frac{\text{सूर्यका स्पष्टव्यास} \times \text{चन्द्र कक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

इस प्रकार चंद्रकक्षामें सूर्यके स्पष्ट व्यासके जाननेका दूसरा नियम सिद्ध होगया। अब यह बतलाना कठिन नहीं है कि पहला इसका रूपांतर किस प्रकार है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हमारे आचार्यों-का मत है कि प्रत्येक ग्रहकी दैनिक योजनात्मक गति समान होती है। इसलिए यह सिद्ध है कि प्रत्येक ग्रह एक महायुग या कल्पमें जितने योजन चलता है वह सब ग्रहोंके लिए एकसा है। ग्रह एक महायुगमें जितने योजन चलता है उसको यदि ग्रहके महायुगीय भगणसे भाग दे दिया जाय तो ग्रहकी कक्षाका मान योजनोंमें निकल आवेगा, इसको यों भी लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{ग्रहकी महायुगीय गति (योजनोंमें)}}{\text{ग्रहका महायुगीय भगण}} = \text{ग्रहकी कक्षा (योजनोंमें)}$$

यदि ग्रहकी महायुगीय योजनात्मक गतिको म मान लिया जाय और सूर्यके महायुगीय भगणको र तथा चंद्रमाके महायुगीय भगण को च मान लिया जाय तो उपर्युक्त नियमके अनुसार

$$\frac{\text{म}}{\text{र}} = \text{सूर्यकी कक्षा}$$

$$\text{और } \frac{\text{म}}{\text{च}} = \text{चन्द्रकक्षा}$$

यदि दूसरे समीकरणके प्रत्येक पक्षको पहले समीकरणके समपक्ष (corresponding sides) से भाग दे दिया जाय तो

$$\frac{\text{म}}{\text{च}} \div \frac{\text{म}}{\text{र}} = \frac{\text{चन्द्र कक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{र}}{\text{च}} = \frac{\text{चन्द्र कक्षा}}{\text{सूर्यकी कक्षा}}$$

इस प्रकार सूर्यके स्फुट व्यासका पहला नियम भी सिद्ध होगया।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि सूर्यका स्फुट व्यास तथा सूर्यकी कक्षाका विस्तार यथार्थमें उतना नहीं है जितना हमारे सिद्धान्त ग्रन्थोंमें बतलाया गया है। अनेक वेधोंसे यह सिद्ध हो गया है कि सूर्यका लंबन ९ कलासे अधिक नहीं होता इसलिए पृथ्वीसे इसकी दूरी लंबनके सूत्र-के अनुसार (देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५५१) ९ करोड़ २९ लाख मील है और इसके पिंडका व्यासार्ध ४, ३२, ८९० मील है (देखो पृष्ठ १४४)। यदि योजनका परिमाण ५ मीलके समान समझा जाय (देखो पृष्ठ ८२) तो

$$\text{सूर्यका व्यासार्ध} = \frac{४३२८९०}{५} = ८६५७८ \text{ योजन, और}$$

$$\text{सूर्यकी मध्यम दूरी} = \frac{९,२९,००,०००}{५} = १,८५,८०,००० \text{ योजन}$$

यह परिमाण हमारे सिद्धान्तके परिमाणोंसे कितना भिन्न है यह नीचे की तालिकासे स्पष्ट हो जायगा जहां सब परिमाण योजनोंमें दिये जाते हैं :—

	सूर्य सिद्धान्त	सिद्धान्त शिरोमणि	R. S. Ball's Spharical Astoromy
सूर्य बिंबका व्यास	६५००	६५२२	८७३२५६
सूर्यकी मध्यम दूरी	६८६३७८	६८६३७७	९२५८००००
चंद्र बिंबका व्यास	४८०	४८०	४३०
चंद्रमाकी मध्यम दूरी	५१५६६	५१५६६	४७५००

तीसरे श्लोकके उत्तरार्द्धमें यह भी बतलाया गया है कि चन्द्रमाकी कक्षामें सूर्य बिम्बका जो व्यास योजनोंमें हो उसको १५ से भाग देनेपर कलाओंमें इसका परिमाण आ जायगा। इसका कारण यह है कि चंद्रकक्षाका विस्तार ३२४००० योजन माना गया है जो ३६० अंश या २१६०० कलाके समान भी है इस लिए जब २१६०० कला=३२४००० योजन तब १ कला= $\frac{३२४०००}{२१६००}$=१५ योजन जिसका अर्थ यह हुआ कि चंद्रकक्षाका १५ योजन एक कलासे समान होता है।

चंद्रकक्षामें भूछायाके व्यासका परिमाण—

स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यास गुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यास स्फुटार्क श्रवणान्तरम् ॥४॥

मध्येन्दुव्यास गुणितं मध्यार्कव्यास भाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्या तु तमोलिप्तास्तु पूर्ववत् ॥५॥

अनुवाद-(४) चंद्रमाकी स्पष्ट गतिको पृथ्वीके व्याससे गुणा करके गुणनफलको चंद्रमाकी मध्यगतिसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है उसे सूची कहते हैं। सूर्यके स्फुट व्याससे पृथ्वीके व्यासको घटाकर (५) शेषको चंद्रमाके मध्यम व्याससे गुणा करके और गुणनफलको सूर्यके मध्यम व्याससे भाग दे दो। लब्धिको सूचीसे घटा देनेपर जो शेष आवेगा वह चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छायाका व्यास योजनोंमें आ जायगा। इसको पहिलेकी तरह १५ से भाग दे देनेपर भूछायाका व्यास कलाओंमें ज्ञात हो जायगा।

विज्ञानभाष्य—यहां चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्टगतियोंको । और रा अक्षरोंसे सूचित किया जायगा। यदि चंद्रमा और सूर्यके महायुगीय भगणोंको महायुगीय सावन दिनोंसे भाग दे दिया जाय और लब्धिकी कलाएं बनायी जांय तो चंद्रमा और सूर्यकी मध्यम दैनिक गतियां क्रमानुसार ७९०'.५६ और ५९'.१३६२ होती हैं। पृथ्वीका व्यास १६०० योजन माना गया है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ५९)। इन मानोंके आधारपर उपर्युक्त दो श्लोकोंको संक्षेपमें इस प्रकार लिखा जा सकता है:—

$$सूची = \frac{१६०० \times चा}{७९०.५६}$$

$$सूर्यका\ स्फुट\ व्यास = \frac{६५०० \times रा}{५९.१३६२}$$ (देखो श्लोक २)।

चंद्रकक्षामें भूछायाका योजनात्मक व्यास

उपपत्ति

$$= \frac{१६००चा}{७६०.५६} - \left(\frac{६५००रा}{५६.१३६२} - १६००\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षामें भूछायाका कलात्मक व्यास

$$= १०६\tfrac{२}{३} \times \frac{चा}{७६०.५६} - ३२ \times \frac{रा}{५६.१३६२} + ७.८८$$

जिस समय चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्टगतियां इनकी मध्यम गतियोंके समान होंगी उस समय $\frac{चा}{७६०.५६}$ और $\frac{रा}{५६.१३६२}$ एक-के समान होंगे। ऐसी दशामें भूछायाका कलात्मक व्यास १०६.६७ − ३२ + ७.८८ = ८२.५५

चित्र ६३ की सहायतासे आरंभमें यह बतलाया जा चुका है कि भूमार्ध अर्थात् चंद्रकक्षामें पृथ्वीकी छायाका अर्धव्यास ४१′५७″ होता है जिससे पृथ्वीकी छायाका व्यास ८४′ के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्य सिद्धान्तके नियमसे पृथ्वीकी छायाका व्यास जितना आता है वह नवीन रीतिसे निकाले हुए व्यासके प्रायः समान ही होता है यद्यपि उसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध हैं। भारतीय रीतिके भूछायाके व्यासका जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६.६७, ३२ और ७.८८ के योग वियोगसे सिद्ध होता है। इसी तरह नवीन रीति-से भूमार्द्धका परिमाण भी तीन पदों ५८′१″, १६′१३″ और ९″ के योग वियोगसे व्यक्त किया जा सकता है (देखो ६६ पृष्ठका उदाहरण)। इन तीन पदोंके दूने क्रमसे ११६′२″, ३२′२६″ और १८″ हैं। इनमें ३२′२६″ भारतीय नियमके दूसरे पदसे बिलकुल मिलता है, पहला पद यहां ११६ और
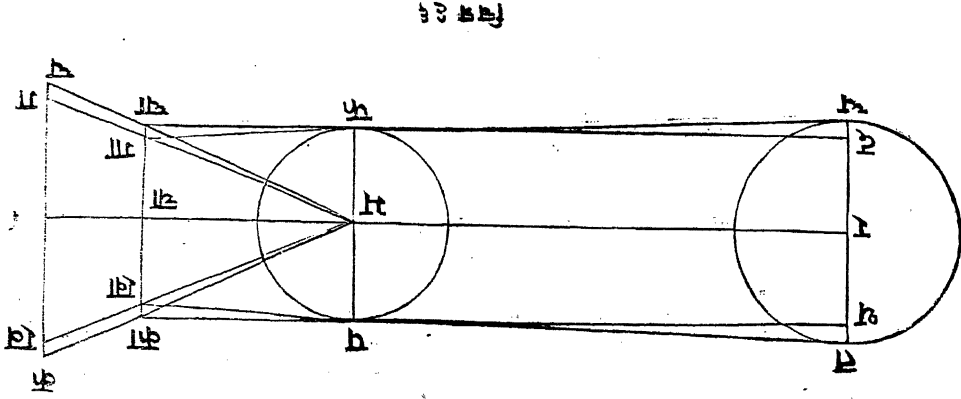
यहां १०७ कला है और तीसरा पद यहां १८" और वहां ८' के लगभग है इसलिए पहले और तीसरे पदोंका योग ११६' के लगभग हो जाता है। इससे प्रकट है कि हमारे सिद्धान्त-से भूभार्धका जो रूप सिद्ध होता है वह नवीन रूपसे केवल इस बातमें भिन्न है कि सूर्यका आकार और उसकी दूरी हमारे यहां बहुत कम मानी गयी है।

कल्पना करो कि भ पृथ्वीका केन्द्र, पफ पृथ्वीका व्यास, र सूर्यका केन्द्र, तथ सूर्यका व्यास, च मध्यम चन्द्रमाका केन्द्र, चा स्पष्ट चन्द्रमाका केन्द्र, त प खा और थ फगा पृथ्वी और सूर्यकी सामान्य स्पर्श रेखाएं, थ प का और द फ घा र भ के सामानान्तर हैं। यह स्पष्ट है कि खा गा स्पष्ट चंद्रमाके तलमें पृथ्वीकी छायाका व्यास है जो भूकेन्द्रसे देखनेपर मध्यम चन्द्रमाकी कक्षामें ख ग के समान होगा। यदि भ का और भ घा बढ़ाये जायं तो मध्यम चन्द्रमाकी कक्षामें क घ विन्दुओंपर मिलेंगे।

चित्रसे स्पष्ट है कि

भूछायाका व्यास खा गा = का घा − (का खा + गा घा)

= प फ − (का खा + गा घा)

समजातीय त्रिभुज प का खा और प थ त में,

$$\frac{\text{पका}}{\text{पथ}} = \frac{\text{का खा}}{\text{तथ}}$$

इसी तरह $\frac{\text{फ गा}}{\text{फ ध}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}}$

परन्तु पका = फगा और पथ = फध

$$\therefore \frac{\text{का खा}}{\text{तथ}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गाघा}}{\text{त थ} - \text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गाघा}}{\text{त ध} - \text{थद}}$$

$$\therefore \frac{\text{प का}}{\text{प थ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} \quad \text{.........(१)}$$

समजातीय त्रिभुज का भ घा और क भ ध में

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}}$$

परन्तु भ चा और भ चा पृथ्वीसे स्पष्ट और मध्यम चन्द्रमा की दूरियां हैं और यह बताया गया है कि कोणीय वेग कर्णके वर्गके प्रतिलोमके अनुसार बदलता है देखो (स्पष्टाधिकार पृष्ठ १३३) इसलिए स्थूल रूपसे यह माना जा सकता है कि कोणीय वेग कर्णके भी प्रतिलोमके अनुसार बदलता है जैसा कि सूर्यसिद्धान्तके नियम से प्रकट होता है।

इसलिए

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{चंद्रमाकी मध्यम गति}}{\text{चन्द्रमाकी स्पष्ट गति}} = \frac{\text{म}}{\text{स}}$$

$$\therefore \frac{\text{म}}{\text{स}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}} = \frac{\text{प फ}}{\text{क घ}}$$

$$\therefore \text{क घ} = \frac{\text{प फ} \times \text{स}}{\text{म}} = \frac{\text{भू व्यास} \times \text{स्पष्टगति}}{\text{मध्यमगति}}$$

इसी क घ का नाम श्लोक ४ में सूची रखा गया है।

समजातीय त्रिभुज भ का खा और भ क ख इत्यादिसे सिद्ध हो सकता है कि

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का खा}}{\text{क ख}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{ग घ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{क ख} + \text{ग घ}} \quad \text{...(२)}$$

समीकरण (१) और (२) में प का और भ चा समान हैं इसलिए

$$\text{प थ} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} = \text{भ च} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

चित्र ३१
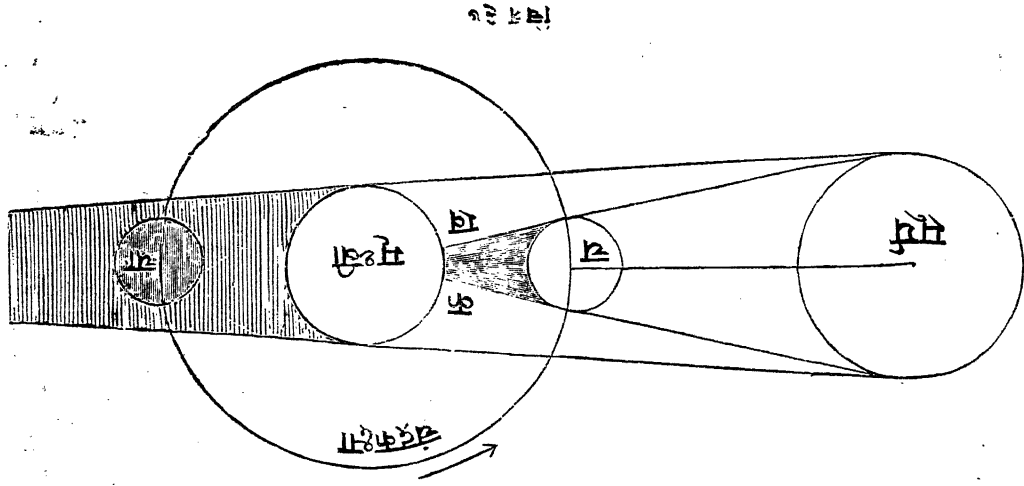
या $\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{\text{त ध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$

परन्तु प थ या भ र पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी और भ च पृथ्वीसे चंद्रमाकी मध्यम दूरी है जिनका अनुपात= $\frac{४३३१५००}{३२४०००}$ = १३·३७ क्योंकि सूर्य सिद्धान्तके अनुसार ४३३१५०० योजन सूर्यकी कक्षा और ३२४००० योजन चंद्रमाकी कक्षाका विस्तार हैं, तथा $\frac{६५००}{४८०}$ = १३·५४, सूर्य और चन्द्रमाके मध्यम व्यासोंका अनुपात है जो १३·३७ के प्रायः समान है। इसलिए यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं कि

$$\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{सूर्यका मध्यम व्यास}}{\text{चंद्रमाका मध्यम व्यास}}$$

$$\therefore \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{त ध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

$$\therefore \text{क ख} + \text{ग घ} = \left(\text{त ध} - \text{प फ}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

परन्तु क ख + ग घ = क घ − ख ग
= सूची − चंद्रकक्षामें भूछाया

और त ध − प फ = सूर्यका स्पष्ट व्यास — पृथ्वीका व्यास

∴ सूची − चंद्रकक्षामें भूछाया

$$= \left(\text{सूर्यका स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वीका व्यास}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

∴ चन्द्रकक्षामें भूछाया

$$= \text{सूची} - \left(\text{सूर्यका स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वीका व्यास}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यही ४,५ श्लोकोंका तात्पर्य है।

ग्रहण कब सम्भव होता है—

भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा ।
शशाङ्कपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ॥६॥
तुल्यौ राश्यादिभिः स्यातामभावास्यान्तकालिकौ ।
सूर्येन्दु पौर्णमासान्ते भार्धे भागादिकौ समौ ॥७॥

अनुवाद—(६) सूर्यसे ६ राशिके अंतरपर पृथ्वीकी छाया होती है। यदि सूर्यसे इतनी ही दूरीपर अथवा सूर्यके ही समान राशि अंशपर अथवा इनसे कुछ ही कम या अधिक दूरीपर चन्द्रमाका पात हो तो सूर्य और चन्द्रमामें ग्रहण लगता है। (७) सूर्य और चन्द्रमाके राशि अंश कला विकला इत्यादि अमावस्या के अन्तमें समान होते हैं और पूर्णमासीके अंतमें ठीक ६ राशिके अन्तरपर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—चित्र ९३ से प्रकट है कि पृथ्वीकी छायाका केन्द्र छ या न सूर्य और पृथ्वीके केन्द्रोंको मिलाने वाली रेखा र प न पर सदैव रहता है इसलिए पृथ्वीकी छाया सूर्यसे सदैव १८०° या ६ राशि आगे रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा सूर्यसे १८०° के लगभग आगे रहता है तभी यह पृथ्वीके छायामें प्रवेश कर सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु जब चन्द्रमा सूर्यसे १८०° आगे रहता है तब पूर्णिमा का अंत होता है इसलिए पूर्णिमाके अंतकालके लगभग चंद्रग्रहण लग सकता है। इसी प्रकार जब चन्द्रमा सूर्यके सामने आकर उसको ढक लेता है तभी सूर्य ग्रहण लगता है परन्तु यह बात तभी संभव है जब सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश प्रायः समान होते हैं अर्थात् जब अमावास्या होती है। इसलिए यह प्रकट है कि चन्द्रग्रहण पूर्णिमाके अंतमें और सूर्यग्रहण अमावास्याके अंतमें लगते हैं। देखो चित्र ९७

अब यह प्रश्न हो सकता है कि प्रत्येक पूर्णिमा और अमावास्याके अंतमें चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण क्यों नहीं लगता। इसका कारण यह है कि चन्द्रमाका कक्षातल क्रान्तिवृत्तके कक्षातलसे भिन्न है। इन दोनोंका परम अंतर ५° के लगभग है जिसे चन्द्रमाका परमविक्षेप या परम शर कहते हैं (देखो मध्यमाधिकार पृ० ११२-११३)। परंतु सूर्य और चन्द्रमाके बिम्बार्ध १६′ के लगभग तथा पृथ्वीकी छायाका व्यासार्ध अथवा भूमार्ध ४२′ के लगभग होता है (देखो पहलेका उदाहरण) इसलिए जब चन्द्रमा अपनी कक्षामें ऐसी जगह रहता है जो क्रान्तिवृत्तके पासहो और क्रान्तिवृत्तसे जिसका अंतर १६′ + ४२′ = ५८′ के लगभग या इससे भी कमहो तभी ग्रहणहो सकता है। यह स्थिति उसी समय सम्भव है जब अमावास्या या पूर्णमासीके लगभग चन्द्रमा अपनी कक्षा और क्रान्तिवृत्तके मिलन बिन्दुओं अर्थात् पातोंके पास हो। परन्तु चन्द्रमाके पात एक दूसरेसे सदैव १८०° के अंतर होते हैं इसलिए यह प्रकट है कि जब अमावस्या या पूर्णमासीके समय सूर्यके भोगांशके समानही या इसके लगभग राहु या केतु किसीका भोगांश हो तभी ग्रहण लग सकता है अन्यथा नहीं। यह बात चित्र ९८ से अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी :—

क च रेखापर क का छ छा के समान काट लो और का से क ख के समान और समानान्तर का खा खींचो, च खा को मिलाकर खा की ओर क्रान्तिवृत्तके ब बिन्दुतक खींचो। यही च खा ब चन्द्रमाका आपेक्षिक मार्ग होगा, यदि यह मान लिया जाय कि भूछाया छ बिन्दुपर स्थिर है।

यदि छ से च ब पर छ फ लम्ब डाला जाय तो यही चन्द्रमा और भूछायाके केन्द्रोंकी निकटतम दूरी होगी। यदि

चित्र ६८

पूर्णिमान्त काल में :— छ=पृथ्वीकी छायाका केन्द्र
च=चन्द्रमा का केन्द्र
च छ या श=चन्द्रमाका शर (विक्षेप)
म=भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धोंका योग है
प=चन्द्र म का पात
चक या चा=चन्द्रमा की प्रति घड़ी भोगांश गति है
क ख या शा= ” ” श र की गति है
छ छा या रा भूछाया अथवा सूर्यकी प्रतिघड़ी भोगांश गति है

छ को केन्द्र मानकर म के समान त्रिज्यासे वृत्त खींचा जाय जो च क को दो बिन्दुओं स, सा पर काटे तो यही दो बिन्दु आपेक्षिक मार्ग पर चन्द्रमाके स्पर्श और मोक्षकालके स्थान होंगे। यदि इन बिन्दुओंसे चक के समानान्तर रेखाएँ खींची जाँय तो ये चन्द्रमाके यथार्थ मार्गके जिन बिन्दुओंपर पहुँचेगी वही स्पर्श और मोक्षकालके यथार्थ स्थान होंगे।

यदि क च ख कोणको इ और का च खा कोणको ई मान लिया जाय तो

$$\text{स्परे } इ = \frac{कख}{कच} = \frac{शा}{चा}$$

$$\text{स्परे } ई = \frac{का\,खा}{का\,च} = \frac{क\,ख}{का\,च} = \frac{शा}{क\,च - क\,का} = \frac{शा}{चा - रा}$$

कोण च छ फ और छ च फ का योग समकोणके समान है क्योंकि च ब पर छ फ लम्ब खींचा गया है परन्तु छ च फ और फ च क कोणोंका योग भी समकोणके समान है क्योंकि च छ छ प पर लम्ब है और च क छ प के समानान्तर है। इसलिए कोण च छ फ = कोण फ च क = ई, इसलिए

$$छ\,फ = च\,छ \text{ कोज्या } ई = श \text{ कोज्या } ई$$

यदि श कोज्या ई का मान भूछाया और चंद्रमाके व्यासार्द्धों के योगसे अधिक होगा तो ग्रहणनहीं लगेगा।

परन्तु यदि श कोज्या ई भ से छोटा होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। यदि यह जानना हो कि खंड ग्रहण लगेगा या सर्व-ग्रास तो दोनोंका अंतर निकालना चाहिये। यदि म — श कोज्या ई का मान चन्द्रमाके व्याससे छोटा हो तो समझना चाहिए कि खंड ग्रहण लगेगा और यदि इसका मान चन्द्रमाके व्याससे बड़ा हो तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा क्योंकि चित्र ६६ से प्रकट है कि म — श कोज्या ई = चन्द्रमाका ग्रसित भाग। इसलिए यदि ग्रसित भाग चन्द्रमाके व्याससे कम होगा तो स्पष्ट है कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लग सकता। परन्तु यदि ग्रसित

भाग चन्द्रमाके व्याससे अधिक है तो सर्वग्रास ग्रहण अवश्य लगेगा।

चित्र ६६

चित्र ६६ चन्द्रमा और भूछायाका उस समयका चित्र है जब कि चन्द्रमा भूछायासे निकटतम अन्तरपर रहता है अर्थात् जब चन्द्रमा चित्र ६८ के फ बिन्दुपर रहता है और भूछाया छ पर। यह स्पष्ट है कि छ झ भूछायाका व्यासार्ध और च ज चन्द्रमाका व्यासार्ध है। चन्द्रमाका ग्रसित भाग ज झ के सामान है। अब देखना है कि ज झ का परिमाण क्या है।

$$\text{जझ} = \text{छ झ} - \text{छ ज}$$
$$= \text{छ झ} - (\text{च छ} - \text{च ज})$$
$$= \text{छ झ} + \text{च ज} - \text{च छ}$$
$$= \text{म} - \text{श कोज्या ई}$$

यदि म − श कोज्या ई शून्यके समान हो अर्थात् यदि म = श कोज्या ई तो ग्रहण नहीं लगेगा क्यों कि चन्द्रमा भूछायाको स्पर्श करता हुआ निकल जायगा। ऐसी दशा में भूछाया के केन्द्र से पातका अन्तर छ प का परिमाण यों निकलेगा :—

यह प्रकट है कि कोण च प छ = इ, इसलिए

$$\text{स्पर्श इ} = \frac{\text{च छ}}{\text{छ प}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{च छ}}{\text{स्पर्श इ}} = \frac{\text{श}}{\text{स्पर्श इ}}$$

परन्तु ऊपर मान लिया गया है कि

$$\text{म} = \text{श कोज्या ई}$$

$$\therefore \text{श} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई} \times \text{स्पर्श इ}}$$

$$= \text{म छेद ई कोस्पर्श इ}$$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जब पातसे भूछायाका अंतर म छेद ई कोस्पर्श इ के समान या अधिक होगा तब ग्रहण नहीं लगेगा और कम होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। परन्तु ऊपर माना गया है कि

$$\text{स्पर्श इ} = \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चन्द्रमाके शर की गति}}{\text{चन्द्रमाके भोगांशकी गति}}$$

$$\text{स्पर्श ई} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{\text{चन्द्रमाके शरकी गति}}{\text{सूर्य और चन्द्रमाकी गतियों का अंतर}}$$

और म = भूछाया और चन्द्रमाके व्यासार्धों का योग

इसलिए यह तीनों गुणक चन्द्रमा और सूर्यकी गतियोंपर निर्भर हैं जो अस्थिर हैं इसलिए छ प का मान भी अस्थिर है। यहाँ इ क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के बीच का कोण है इसलिए यह ज्ञात है परन्तु ई अज्ञात है इसलिए पहले ई को ही जानना चाहिए। ऊपरके सम्बन्धसे स्पष्ट है कि

$$\frac{\text{स्परे ई}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} + \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}}$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}} \times \text{स्परे इ}$$

इ, चा और रा के मध्यम मान क्रमशः ५°९', ७९०'३५" और ५९'८" है। इसलिए

$$\frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{७९०'३५''}{७९०'३५'' - ५९'८''} = \frac{७९०'३५''}{७३१'२७''} = १\cdot०८०८४$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = १\cdot०८०८४ \times \text{स्परे}५°९'$$

$$= १\cdot०८०८४ \times \cdot०९०१$$

$$= \cdot०९७४$$

$$\therefore \text{ई} = ५°३४'$$

$$\therefore \text{छ प} = \text{म छे रे ई कोस्परे इ}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई स्परे इ}}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या } ५°३४' \text{ स्परे } ५°९'}$$

परन्तु म = भूछाया और चन्द्रमाके व्यासार्धोंका योग

∴ म का मध्यम मान

= भूछायाका मध्यम व्यासार्ध

+ चन्द्रमाका मध्यम व्यासार्ध

भूछायाका मध्यम व्यासार्ध = चन्द्रमाका मध्यम लंबन

+ सूर्यका मध्यम लंबन – सूर्यका मध्यम व्यासार्ध

$$= ५७'११'' + ८''\cdot५ - १६'१''$$

$$= ४१'१८''\cdot५$$

इसका $\frac{१}{५०}$ और बढ़ानेपर भूछायाका मध्यम व्यासार्ध

$$= ४१'१८''\cdot५ + ४९''\cdot६$$

$$= ४२'८'' = ४२'\cdot१३५$$

और चन्द्रमाका मध्यम व्यासार्ध = १५'३५" = १५'·५८३

$$\therefore \text{म} = ४२'\cdot१३५ + १५'\cdot५८३ = ५७'\cdot७२$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{५७'\cdot७२}{\text{कोज्या } ५°३४' \text{ स्परे } ५°९'}$$

$$\therefore \text{लरि (छ प)} = \text{लरि}५७'\cdot७२ - \text{लरि कोज्या}५°३४' - \text{लरि स्परे}५°९'$$

$$= १\cdot७६१४ - ९\cdot९९७९ - ८\cdot९५४६$$

$$= १\cdot८०८९$$

$$\therefore \text{छ प} = ६४४' = १०°४४'$$

यह चन्द्र ग्रहणकी मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि छ प का महत्तम मान १२°३६' और लघुतम मान ९° है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि छ प १२°३६' से अधिक हो तो चन्द्र ग्रहण असम्भव है और ९° से कम हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा परन्तु यदि छ प ९° से अधिक और १२°३६' से कम हो तो ग्रहण सम्भव हो सकता है, जिसका निश्चय पूर्णिमान्त कालिक सूर्य और चन्द्रमाके लंबन तथा इनके स्पष्ट बिम्बार्ध से करना चाहिए।

यह पहलेही बतला दिया गया है कि छ प भूछायाके केन्द्रसे पातकी दूरी है परन्तु भूछायाका केन्द्र सूर्यके केन्द्रसे १८०° आगे रहता है और चन्द्रमाके दोनों पातोंका अंतर भी १८०° होता है इसलिए यदि पूर्णिमान्त कालिक सूर्यसे चन्द्रमाके किसी पातका अंतर १२°३६' से अधिक हो तो ग्रहण असम्भव है, ९° से कम हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा और इन दोनोंके बीचमें हो तो सम्भव है ग्रहण लगे। इसलिए चन्द्र ग्रहणकी महत्तम सीमा १२°३६' और लघुतम सीमा ९° होती है।

(शेष फिर)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २३ } वृष, संवत् १९८३ { संख्या २

क्षार तत्व—ग्राव और सोडियम

(Alkali Metals—Lithium and Sodium)

(ले० श्री सत्यप्रकाश, बी० एस० सी० विशारद,)

आरम्भ

आवर्त्त संविभागके प्रथम समूहमें इस समय आठ तत्व हैं। ये तत्व मुख्यतः दो समूहोंमें विभक्त हैं जिन्हें क—, और ख—समूह कहते हैं। क-समूहमें ग्राव, सोडियम पोटाशियम, रूपद और श्याम तत्व हैं। ख-समूहमें ताम्र रजत और स्वर्ण हैं। इन दोनों उपसमूहोंके तत्व अधिकांश गुणोंमें एक दूसरेसे भिन्न हैं। वास्तवमें, ग्राव और सोडियमको मातृतत्व कहा जा सकता है जिनसे दो वंशोंकी उत्पत्ति हुई है। इस लेखमें इन मातृतत्वोंकाही वर्णन किया जायगा। प्रथम समूही तत्व इस प्रकार प्रदर्शित किये जा सकते हैं:—

ग्राव, ग्र, (६.९४)

सोडियम, सो, (२३)

पोटाशियम, पो, (३९.१)	ताम्र, ता, (६३.५७)
रूपद. रू, (८५.४५)	रजत, र, (१०७.८८)
श्याम, श्य, (१३२.८)	—
—	स्वर्ण, स्व, (१९७.२)

क-समूहीतत्व,—ग्राव, सोडियम, पोटाशियम, रूपद, और श्याम क्षार-तत्व कहे जाते हैं। वस्तुतः क्षार वे पदार्थ हैं जिनको (र ओ उ) सूत्रसे प्रदर्शित किया जा सके। इस प्रकार पोटाश, सोडा, अमोनिया, ग्रावा, रूपदा, और

श्यामा सब क्षार हैं। इन क्षारोंसे तालव्य-वर्णों को क्षारतत्त्व कहते हैं। यह ठीक है कि अमोनिया क्षार (न उ४ ओउ) का नउ४—भाग पृथक नहीं किया जा सका है पर निस्सन्देह न उ४ भाग क्षार तत्त्वों के समान गुणी है। यह एक शक्तिक है और पारदके साथ पारद-मेल (amalgam) बनाता है।

पुराने समयमें केवल एक अम्ल मनुष्योंको ज्ञात था जिसे वे सिरका या सिरकाम्ल कहते थे। यह सुराके ओषदीकरणसे प्राप्त होता था। जब सुरा वायुमें कुछ काल तक रक्खी रहती है तो इसमें खट्टापन आजाता है। कीमियागर या आलकेमिस्टों ने अन्य अम्लों (गन्धकाम्ल, नत्रिकाम्ल, और उदहरिकाम्ल) की भी खोज की। शील नामक वैज्ञानिक ने बहुतसे आङ्गिक अम्लोंका (organic acids) भी अन्वेषण किया। राबर्ट बायल (सं० १७२० वि०) ने अम्लोंके निम्न गुणों की परीक्षा की।

१—अम्लोंका स्वाद खट्टा होता है।

२—भिन्न भिन्न अम्लोंमें भिन्नभिन्न वस्तुयें पृथक् मात्रा में घुल सकती हैं।

३—पोटाशियम-बहु-गन्धिदों (polysulphides) मेंसे अम्लोंके योगसे गन्धक पृथक् हो जाता है।

४—ये नील द्योतक-पत्र (litmus) को लाल कर देते हैं।

५—अम्ल क्षारोंसे संयुक्त होकर शिथिल लवण बनाते हैं जिनके गुण अम्ल और क्षार दोनोंके गुणोंसे भिन्न होते हैं।

इनके अतिरिक्त कैविण्डशने (सं० १८२३ वि०) अम्लोंके विषयमें यह बात प्रदर्शित की थी कि बहुतसे धातु अम्लोंके संसर्गसे उद्जन उत्पन्न करते हैं।

प्राचीन वासियोंको कुछ क्षार पदार्थ जैसे लकड़ी की राख, सोडियम कर्बनेत आदि ज्ञात थे। तेरहवीं शताब्दिमें कीमियागरोंको अमोनियम कर्बनेत भी ज्ञात होगया था। क्षार दो भागों में विभक्त किये गये थे। दाहक (caustic) क्षार और मन्द (mild) क्षार। इनके साधारण गुण ये थे:—

१—इनको हाथ में लगाने से साबुन की सी चिकनाहट प्रतीत होती है।

२—लाल द्योतक-पत्रको ये नीला कर देते हैं।

३—ये अम्लोंके साथ संयुक्त होकर शिथिल लवण बनाते हैं।

४—'मन्द' क्षार अम्लोंके साथ बुद बुदाने लगते है और स्थायी वायव्य (fixed gas) अर्थात् कर्बनद्विओषिद (क ओ२) उत्पन्न होता है।

पोटाश और सोडा क्षारोंके भेदको मारग्राफने (सं० १८१४ वि०) इस प्रकार प्रदर्शित किया था कि पोटाशको प्लाटेनम तार पर बुन्सन दग्धक (bunsen burner) की लौमें रखनेसे कासनी (violet) रंगकी लौ प्रतीत होगी पर सोडाका प्रयोग करनेसे पीली लौ मिलेगी। यदि उदहरिकाम्लमें घोल कर पोटाशमें प्लाटिनिकहरिद डाला जाय तो पीला तलछट प्राप्त होगा। पर सोडाके साथ ऐसा करनेसे कोई तलछट नहीं प्राप्त होता है। शीलके प्रयोगानुसार पोटाश इमलिक-अम्ल (tartaric acid) के साथ तलछट देता है पर सोडा नहीं देता।

उस समय तीन प्रकारके क्षार जनताको ज्ञात थे, १—मन्द वानस्पतिक-क्षार अर्थात् पोटाशियम कर्बनेत, जो पौधों की राखसे प्राप्त होता था। यह चूनेके साथ उबालने पर दाहक वनस्पतिक्षार (पोटाशियम उदोषिद, पोओउ) में परिणत हो जाता है ? मन्द सोडियमक्षार (सोडियम कर्बनेत् जो चूनेके साथ उबालने पर दाहक सोडियम क्षार (सोओउ) देता है। ३. मन्द उड़नशील क्षार (अमोनियम कर्बनेत) जो चूनेके साथ उबालने पर दाहक उड़नशील क्षार (अमोनियम उदोषिद) देता है।

ब्लैक का अन्वेषण

क्षारोंकी रासायनिक प्रकृतिका सबसे पहले जोसेफ़ ब्लैक नामक वैज्ञानिकने अध्ययन किया। यह सं० १७८५ वि० में आयरलैण्डके बोर्डो स्थान में उत्पन्न हुआ था। इसने वैद्यक शास्त्रमें विशेष प्रवीणता प्राप्त की। सं० १८५६ वि० में इसका देहान्त होगया। उसके समय में 'फ्लाजिस्टन सिद्धान्त' सर्वव्यापी होरहा था। फ्लाजिस्टन-से तात्पर्य दाहकतत्व से है। लोगों की यह कल्पना थी कि प्रत्येक जलने वाले पदार्थमें एक तत्त्व रहता है जिसका नाम उन्होंने फ्लाजिस्टन रक्खा था। जब वह पदार्थ जलता है तो उसका फ्लाजिस्टन निकल भागता है। आग गन्धक आदिमें फ्लाजिस्टन की मात्रा बहुत है, इस कल्पनाके आधार पर जब चूनेका पत्थर आगमें जलाया जाता है तो यह आगसे फ्लाजिस्टन ग्रहण कर लेता है। इस दाहक तत्त्वके ग्रहण करनेके कारण इसमें दाहक गुण आजाते हैं। इस प्रकार चूनेके पत्थरको जलानेसे दाहकचूर्ण प्राप्त होता है। यदि फ्लाजिस्टनको 'फ'से सूचित करें तो :—

चूनेका पत्थर + फ = दाहक चूना ...(१)

ऊपर कहा जा चुका है कि मन्द क्षारको चूने के साथ उबालनेसे दाहक क्षार प्राप्त होता है। लोगोंका यह विचार था कि मन्द क्षार चूनेके फ्लाजिस्टनको अपनेमें ग्रहण कर लेता है और दाहक क्षार बन जाता है।

मन्द क्षार + फ = दाहक क्षार······(२)

मन्द क्षार + दाहक चूना = मन्द क्षार + चूनेका पत्थर + फ

=(मन्द क्षार +फ) +चूनेका पत्थर

=दाहक क्षार+ चूनेका पत्थर (३)

पर इस सिद्धान्तका विरोध करके ब्लैकने दर्शाया कि जब चूनेका पत्थर बहुत गरम किया जाता है तो उसका बोझ कम हो जाता है और यह दाहक चूने में परिणत होजाता है। समीकरण (३) के अनुसार दाहक चूनेका बोझ मन्द क्षारके बोझसे अधिक होना चाहिये था। उसने यह भी देखा कि मन्दक्षारके गरम करने पर एक वायव्य जनित होता है जिसे उसने स्थायी वायव्य (कर्बनद्विओषिद) कहा। ब्लैकने कर्बनद्विओषिदके निकल जानेके पश्चात् बचे हुए क्षारको मन्दक्षार (पोटाशियम कर्बनेत) के साथ उबाला। ऐसा करने पर उसे उतना ही चूनेका पत्थर प्राप्त हुआ जितना उसने गरम करनेसे पूर्व लिया था, इससे सिद्ध होता है कि दाहक चूनेने मन्दक्षारसे उतना ही स्थायी वायव्य ग्रहण कर लिया है। निम्न समीकरणोंमें ये बातें स्पष्टतया प्रदर्शित की गई हैं।

१. पत्थर का चूना = दाहक चूना + स्थायी वायु (प्रयोग द्वारा सिद्ध)

२. दाहक क्षार + स्थायी वायु = मन्द क्षार (कल्पित)

३. दाहक चूना + मन्द क्षार = दाहक चूना + (दाहक क्षार + स्थायी वायु)

= (दाहक चूना + स्थायी वायु) + दाहकक्षार

= पत्थर का चूना + दाहक क्षार

इसी बातको सूत्रोंमें इस प्रकार आज कल प्रदर्शित करते हैं—

१. खकओ$_3$ = खओ + कओ$_2$

२. २ पोओउ + कओ$_2$ = पो$_2$ कओ$_3$ + उ$_2$ओ

३. खओ + उ$_2$ओ + पो$_2$कओ$_3$ = खकओ$_3$ + २ पोओउ

समीकरण (२) में यह कल्पना की गई है कि दाहक क्षार स्थायी क्षार के संयोग से मन्द क्षार बनाते हैं। इसकी सिद्धि इस प्रकार की गई है। मन्दक्षार पर किसी अम्ल के प्रभाव से उतना ही स्थायी वायु उत्पन्न होता है जितना कि पत्थरके चूनेपर इस अम्लके प्रभाव से। पत्थर-के चूनेको अम्लमें घोलकर मन्दक्षार डालनेसे

उतना ही पत्थरके चूने का तलछट प्राप्त होता है जितना पत्थरका चूना घाला गया था।

ख क ओ$_3$ + २ उ ह = ख ह$_2$ + उ$_2$ओ + क ओ$_2$

पो$_2$क ओ$_3$ + २उह = २पोह + उ$_2$ओ + कओ$_2$

खह$_2$ + पो$_2$कओ$_3$ = खकओ$_3$ + २पोह

इस प्रकार ब्लैक ने क्षारोंके रासायनिक रूप को प्रदर्शित किया।

प्राव

प्रथम समूहका सबसे पहला तत्व प्राव है यह भूमिमें बहुत थोड़ी मात्रामें पाया जाता है तथापि पृथ्वीका कुछ ही भाग ऐसा होगा जहाँ इसकी कुछ न कुछ मात्रा विद्यमान न हो। कुछ थोड़ेसे खनिज ऐसे अवश्य हैं जिनमें इनकी समुचित मात्रा पायी जाती है। दूध, रुधिर, पौधे और तम्बाकू में यह थोड़ा सा पाया जाता है। प्राव के कुछ प्रसिद्ध खनिज नीचे दिये जाते हैं:—

(१) ट्राइफिलाइट (triphylite)—

(प्र, सो) स्फुओ$_4$ + (लो, मा)$_3$(स्फ ओ$_4$)$_2$ इसमें (१·६–३·७) प्रति शतक प्राव होता है।

२. पेटेलाइट (petalite)—प्र,स्फ (शै$_2$ओ$_5$)$_2$ इनमें २·७–३·७ प्रतिशतक प्राव होता है।

३. लेपीडोलाइट (lepidolite) या प्राव माइका–(प्र,पो,सो)$_2$स्फ$_2$ (शै ओ$_3$)$_3$ (स, ओउ)$_2$.

४. स्पोडुमीन (spodumene)—प्र स्फ (शै ओ$_3$)$_2$—जिसमें ३·८–५·७ प्रति श० प्राव है।

प्राव कुछ खनिज-जलोंमें भी पाया जाता है; करनोटाइट (cornotite) नामक रेडियेशक्तिक खनिज में और समुद्र में भी यह विद्यमान है।

प्रावका पृथक्करण

सं० १८७४ वि० में आर्फ़्वेड्सन (Arfvedson) नामक वैज्ञानिकने इस धातुका अन्वेषण किया था, पर सं० १९१२ वि० में बुन्सन और मेथीसन (Matthiessen) ने इस धातुको इसके हरिद यौगिक से पृथक किया। इस उपचार के लिये हरिद यौगिकको द्रवीभूत किया गया और तत्पश्चात् विद्युत् विश्लेषण द्वारा धातुको अलग करलिया गया। सोडियमके विषयमें हम इस विधिका विस्तृत वर्णन देंगे। यदि प्राव हरिदको मिरीदीन (filtrate) क$_5$उ$_5$न—में घुला लिया जाय और तत्पश्चात् घोलका विद्युत्-विश्लेषण किया जाय तोभी धातु पृथक होसकता है।

खनिजोंमें से प्राव-लवणोंको पृथक करनेकी भिन्न भिन्न विधियें हैं। खनिजको पीस कर पहले चूर्ण कर लिया जाता है और तत्पश्चात् इसे तीव्र गन्धकाम्ल या उदहरिकाम्लके साथ संचालित (digest) करते हैं अर्थात कई बार खूब गरम करके सुखा देते हैं। ऐसा करनेसे शैला (silica) अर्थात् शैलओषिद, अघुल रह जाता है और प्राव तथा अन्य धातुओंके घुलनशील लवण बन जाते हैं। सूखे हुए पदार्थको पानीमें घोलकर छान लेते हैं। छान्यद्रव (filtrate) में सोडियम-कर्बनेत डालते हैं, जिससे लोह, अलुमिना, मग्न आदिके तलछट प्राप्त होजाते हैं, जिन्हें छानकर पृथक कर लिया जा सकता है। छन्यद्रवको गरम करके गाढ़ा कर लिया जाता है। तत्पश्चात् सोडियमकर्बनेत अधिक मात्रामें डालते हैं जिससे प्रावकर्बनेतकी तलछट प्राप्त होती है। यह कर्बनेत अन्यक्षार कर्बनेतों के समान जलमें घुलनशील नहीं है।

पृथक्करणकी दूसरी विधि इस प्रकार है। खनिजको, भारियम कर्बनेत और गन्धेतके साथ द्रवी भूत करते हैं, और फिर जलमें घोलकर छान लेते हैं। छन्यद्रवमें भारियम हरिद डालनेसे तलछट प्राप्त होता है और इसे फिर वाष्पीभूत किया जाता है। सूखे हुए पदार्थमें प्राव, सोडियम और पोटाशियमके हरिद विद्यमान रहते हैं। इस पदार्थको शुद्ध मद्य और ज्वलक (ether) के मिश्रणसे संचालित करते हैं। ऐसा करनेसे

केवल प्राव-हरिद इस मिश्रणमें घुल जाता है और अन्य पदार्थ अघुल शेष रह जाते हैं। छानकर इस प्रकार प्राव-लवण पृथक् किया जा सकता है।

प्राव चाँदीके समान श्वेत धातु है, यह सोडियमकी अपेक्षा कुछ सख्त है। वायुमें रखनेसे इसपर जङ्गकी तह जम जाती है। इसे जलमें रखनेसे उद्जनके बुलबुले दिखाई पड़ेंगे और जल विभाजित हो जायगा। इसका द्रवांक १८०°श है।

प्रावके लवण

प्रावको जब इसके द्रवांकके ऊपर गरम किया जाता है तो यह जलने लगता है, और प्राव-एक-ओषिद या प्रावा ($प्र_2ओ$) प्राप्त होता है। यह ओषिद तापक्रमके कुछ अधिक करनेपर जलमें शनैः शनैः घुल सकता है। घुलनेपर इसका उदोषिद (प्र ओ उ) उपलब्ध होता है। प्राव-गन्धेत को छोड़कर अन्य क्षार गन्धेत मद्यमें अघुल हैं। इस गन्धेतको भारियम-उदोषिदसे (बेरीटा जलसे) संचालित करनेसे भी उदोषिद प्राप्त हो सकता है। घोलमेंसे इसके रवे बन सकते हैं जिनका रूप प्र ओ उ, $उ_2ओ$ होता है। यह शक्तिशाली क्षार है। इन रवोंको उद्जनमें १४°श तक गरमसे सूराखदार श्वेत पदार्थ (प्र ओ उ) मिलता है पर यदि तापक्रम ७८०°श तक बढ़ा दिया जाय तो ओषिद ($प्र_2ओ$) बन जाता है। उदोषिदके घोलमें उद्जनपरओषिद और मद्य डालनेसे ($प्र_2ओ_2$, $उ_2ओ_2$, ३ $उ_2ओ$) यौगिक का तलछट प्राप्त होता है। इस तलछटको स्फुर-पञ्चोषिद ($स्फु_2 ओ_5$) पर सुखानेसे प्राव परओषिद ($प्र_2 ओ_2$) प्राप्त हो सकता है।

यदि प्राव-हरिदके घोलमें सोडियम कर्बनेत छोड़ा जाय तो प्राव कर्बनेत ($प्र_2क ओ_3$) प्राप्त हो सकता है क्योंकि यह जलमें अघुल है। इसी प्रकार प्राव-हरिदमें सोडियम-स्फुरेत डालने प्राव-स्फुरेत ($प्र_3 स्फु ओ_4$) मिल सकता है। प्राव कर्बनेतको यदि कर्बन द्विओषिदके घोलमें घुलाया जाय तो प्राव-अर्धकर्बनेत (bicarbonate), प्र उ क $ओ_3$, प्राप्त हो जायगा यह साधारण कर्बनेतकी अपेक्षा अधिक घुलनशील है। इस अर्धकर्बनेतके घोलको प्रावा-जल कहते हैं। साधारण कर्बनेतको गरम करनेसे यह पूर्णतः ओषिद और कर्बन-द्विओषिदमें विभाजित हो जाता है। इन सब गुणोंमें प्राव पार्थिव-क्षार—(alkaline earths) तत्वों, खटिक आदि, से अधिक मिलता है।

प्राव हरिद (द्रवांक ६०६° श) सम्पूर्ण ज्ञात पदार्थोंकी अपेक्षा अधिक जल-ग्राही (deliquescent) है। प्रावके लवण, विशेषकर आंगिक जैसे प्राव-नीबूएत (citrate) और सेलिसिलेत (salicylate) मूत्र सम्बन्धी कुछ रोगोंके निवारण-में उपयुक्त होते हैं क्योंकि प्राव-मूत्रेत जलमें घुलनशील है।(२०°श पर ३६८ भाग पानीमें एक भाग)। प्राव नत्रेत ($प्र न ओ_3$) भी जल-ग्राही है और यह मद्यमें घुलनशील है।

प्रावके लवणोंको यदि उदहरिकाम्लके भिगो लिया जाय और प्लाटिनम तार पर रख कर लौ-में गरम किया जाय तो लाल रंगकी सुन्दर लपक दिखाई पड़ेगी। रश्मि विश्लेषण यंत्र द्वारा इसमें दो रेखायें पायी गई हैं। (१) पीली मन्दरेखा (६१०४ आँ०) और दूसरी लालचमकीली रेखा (६७०८ आँ०)। प्राव-हरोप्लाटिनेत, $प्र_2 प्ला ह_6$, घुलनशील पदार्थ है अतः हरोप्लाटिनेत बनाकर प्रावको पोटैशियम से पृथक कर सकते हैं, शुद्ध मद्य और ज्वलकके मिश्रणमें तथा पिरीदीनमें प्रावके हरिद घुलनशील है पर सोडियम हरिद घुलनशील नहीं है। इस प्रकार प्रावको सोडियम-से भी पृथक् कर सकते हैं।

उद्जन और प्रावके संयोगसे प्राव-उदिद (प्रउ) और नत्रजनके संयोगसे प्राव नत्रिद ($प्र_3 न$) प्राप्त हो सकते हैं। विद्युत्-भट्टीमें इसे कर्बनके साथ-साथ गरम करने से प्राव कर्बिद ($प्र_2 क_2$)

बन जाता है, जो जलके संसर्ग से शुद्ध सिरकिलीन (acetylene) नामक गैस देता है।

गू२क२ + २उ२ओ = २गू + क२उ२
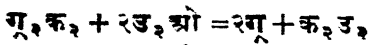
सोडियम

कुछ दिनों पूर्व वैज्ञानिकों का यह मन्तव्य था कि कास्टिक पोटाश और कास्टिक सोडा तत्व हैं। लवाशियेने यह अनुमान किया था कि ये पदार्थ कदाचित् किसी अन्य धातुके ओषिद होंगे। सर हम्फ्रीडेवी ने (सं० १८३५—१८८६ वि०) जिसने सुरक्षित-दीप (safety lamp) का आविष्कार किया था, लवाशियेके विचारोंको आधारमान विद्युत् विश्लेषणकी प्रक्रियाका उपयोग करना आरम्भ किया। सं० १८६४ वि० में उसने यह प्रयोग किया :—

शुद्ध पोटाशका एक छोटा टुकड़ा थोड़ी देर के लिये वायुमें रखा गया। ऐसा करने से उसने वायुमण्डल के कुछ जलकण अभिशोषित कर लिये, जिसके कारण वह विद्युत का अच्छा चालक होगया। इसे प्लाटिना की निष्चालक (Insulated) पेंदीपर रक्खा, जिसका बाटरीके ऋण ध्रुवसे सम्बन्ध था। धनध्रुवको क्षारके तलसे संयुक्त कर दिया, विद्युत् धारा प्रवाहित करनेपर पोटाश संयुक्त-बिन्दुओंके निकट पिघलने लगा और ऊपरी तल पर बहुत फसूकर उठने लगा। नीचेके ऋणतल-पर कोई गैस नहीं निकल रही थी पर धातुके समान चमक वाला एक पदार्थ थोड़ी देरमें दृष्टिगत होने लगा। यह पारेके समान था। इसका कुछ अंश बनतेही जल उठा पर कुछ अंशपर केवल जंग ही लगकर रह गया। यह पदार्थ वह तत्व था जिसकी खोजमें डेवी बहुत दिनोंसे था। उसने इसका नाम पोटाशियम रक्खा।

इसी प्रकार का प्रयोग कास्टिक सोडा लेकर किया गया। अबकी भी पूर्वके समान चमकदार एक धातु प्राप्त हुआ जिसका नाम सोडियम रक्खा गया। डेवीको अपने इन तत्वोंके आविष्कार से इतना आनन्द हुआ था कि वह हर्षके मारे कमरेमें नाचने लगा। डेवीके इस प्रयोग ने उसका नाम रसायनिक जगत्में अमर कर दिया है। आजकल भी सोडियम विद्युत्विश्लेषण की प्रक्रियासे व्यापारिक मात्रामें तैयार किया जाता है। यह चांदीके समान श्वेत धातु है। पिघले हुये सोडियमको शनैः शनैः ठण्डा करने से अष्टतलीय (octahedral) रवे प्राप्त हो सकते हैं। वाष्प का रंग बैंगनी है और इसी प्रकार यदि इसे ज्वलक (ether) में घुलाया जाय तो इसके उपघोल (colloid) का रंग भी बैंगनी होता है। वायुमें रखनेसे इसपर एक तह ओषिद की जम जाती है। अंधेरेमें देखनेपर इसमें हरी स्फुरप्रभा (phosphorescence) प्रकट होती है। जब इसे ओषजन या हरिन्में गरम करते हैं तो यह जल उठता है पर यदि ये गैसें जलकणसे सर्वथा शून्य हों तो सोडियम स्वच्छ वाष्पीभूत किया जा सकता है। जलके संसर्गसे इसमें प्रबल परिवर्त्तन होता है और उद्जन जनित होता है।

२सो + २उ२ओ = २सो ओ उ + उ२
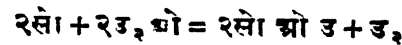
इसका आपेक्षिक घनत्व ०.९७३ है अर्थात् यह पानीसे हलका है। ९५.६°श पर यह द्रवीभूत होता है और पारदके समान प्रतीत होने लगता है। यह ८७७ श पर उबलता है। सोडियमको पेट्रालियम या मिट्टीके तेलमें रखते हैं, नहीं तो वायुमें रखनेसे यह धीरे-धीरे पूर्णतः ओषिदमें परिणत हो जाता। जब कभी आवश्यकता पड़ती है तो इसे चाकूसे तैलके भीतर ही काटते हैं।

सोडियमके छोटे-छोटे टुकड़े काटकर खरल में पारदके साथ पीसनेसे सोडियम-पारद-मिश्रण या अमलगम बन सकता है। यह काम बहुत सावधानीसे करना चाहिये। पारदको खरलमें लो और उसमें चनेके बराबर सोडियमके टुकड़े जिनका तैल सूखे कागज़ द्वारा सुखा लिया गया

है डालकर मूसलीसे पीसो। आरम्भमें चिनगारियाँ दिखलाई पड़ेंगी। सोडियमके टुकड़े तब तक डालने जाना चाहिये जब तक पारद मिश्रण ठोस न हो जाय। ८० भाग पारदके लिये १ भाग सोडियमकी आवश्यकता पड़ेगी। यह मिश्रण जल को बहुत शनैः शनैः विभाजित करता है।

ओषिद

सोडियमके दो ओषिद पाये जाते हैं। सोडियम-एक-ओषिद, सो₂ओ और सोडियम पर-ओषिद, सो₂ओ₂ या सो.ओ.ओ. सो। सोडियम को १८०° अंश तक वायुकी सीमित मात्रामें गरम करने पर एक-ओषिद प्राप्त होता है। सोडियम परओषिद, नत्रेत या नत्रितको सोडियमके साथ गरम करने पर भी एकओषिद प्राप्त हो सकता है।

२ सो न ओ₃ + १० से = ६ सो₂ ओ + न₂

यह श्वेत चूर्ण पदार्थ है। इसे यदि ४००° श तक गरम किया जाय तो यह सोडियम-परओषिद और सोडियम में विभाजित हो जाता है। यह जल के साथ प्रचंड रूपमें संयुक्त होता है। सो₂ ओ + उ₂ ओ = २ सो ओ उ, पर यह सामान्य तापक्रम पर कर्बन द्विओषिदको अभिशोषित नहीं करता है।

सोडियमको जब अधिक वायु या ओषजनमें जलाते हैं तो सोडियम परओषिद बनता है। कर्बनद्विओषिदसे रहित शुद्ध वायुमें स्फटके पात्रमें सोडियमको ३००°श तक गरम करके यह व्यापारिक मात्रामें प्रति वर्ष ५०० टनके लगभग बनाया जाता है। यह पीला पदार्थ है पर वायुमें रखनेसे सोडियम-उदोषिद और अर्ध-कर्बनेत बननेके कारण यह श्वेत हो जाता है। यदि इसे तीव्रतासे गरम किया जाय तो इसका कुछ ओषजन मुक्त हो जाता है। बर्फ़ द्वारा ठण्डे किये हुए जलमें थोड़ा थोड़ा पर-ओषिद डालकर खूब हिलानेसे इसका घोल बनाया जा सकता है जिसमें यह परओषिद सो₂ ओ₂, ८ उ₂ओ रूपमें विद्यमान रहता है। इसके गुण क्षारीय है क्योंकि जलके संसर्गसे कुछ कास्टिक सोडा बन जाता है—

सो₂ ओ + २ उ₂ ओ = २ सो ओ उ + उ₂ ओ₂

इसको गरम करने से ओषजन उपलब्ध होता है। कर्बनद्विओषिद के संसर्ग से भी ओषजन मुक्त होता है:—२सो₂ओ₂ + २क ओ₂ = सो₂ क ओ₃ + ओ₂ यह घोल ओषदीकरण के अधिक उपयोग का है। क्रामिक उदोषिद को सोडियम क्रोमेत में परिणत करदेता है।

यदि परओषिद को शुद्ध-मद्य के संसर्ग में ०°श तापक्रम पर रक्खें तो एक श्वेत चूर्ण मिलता है जिसे सोडील उदोषिद या सोडियम-उदजन परओषिद, सो ओ ओ उ कहते हैं।

सो₂ओ₂ + क₂उ₅ सो ओ = क₂उ₅ ओ सो + सो ओ ओ उ

(ज्वलीलमद्य)

सोडियम कर्बनेत (लीब्लांक विधि)

पहले समुद्र-तट पर उगने वाले पौधों को भस्म करके सोडियम कर्बनेत बनाया करते थे। पर आजकल इसके बनाने की विधि लीब्लांक-विधि के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इसे लीब्लांक नामक वैज्ञानिक ने सबसे प्रथम सं० १८४८ वि० ओरलियनके ड्यूक से कुछ ऋण लेकर व्यापारिक मात्रा में आरम्भ किया था। इस विधि के दो अंश हैं:—

(१) नमक अर्थात् सोडियम हरिद को गन्धकाम्ल द्वारा सोडियम गन्धेत और उद-हरि काम्ल में परिणत करना और

(२) इस सोडियम गन्धेत को कोयले और खटिक कर्बनेत के साथ पिघला कर सोडियम कर्बनेत बनालेना।

२सोह + उ₂ ग ओ₄ = सो₂ ग ओ₄ + २ उह
सो₂ ग ओ₄ + ख क ओ₃ + २ क = सो₂ क ओ₃ + ख ग + २ क ओ₂

अनार्द्र सोडियम गन्धेत, सो₂ ग ओ₄ को लवण-रोटिका (Salt cake) भी कहते हैं। इसके बनाने की विधि लवण-रोटिकाविधि कही जाती है। इस विधि में नमक (सोडियम हरिद) लोहेकी

बड़ी बड़ी कढ़ाइयों में रखा जाता है, और उसमें गन्धकाम्लकी समुचित मात्रा डाली जाती है। फिर खूब हिलाकर नीचेकी भट्टीसे मन्द मन्द आग देते हैं। ऐसा करनेसे, सोडियम उदजन गन्धेत, सोउगओ$_4$, पहले बनता है और उदहरिकाम्ल गैस ठण्डी करके दूसरे स्थानमें द्रवीभूत करली जाती है।

सोह + उ$_2$ ग ओ$_4$ = सो उ ग ओ$_4$ + उह
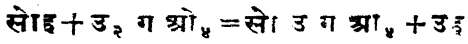
इसके बाद, सोडियम उदजनगन्धेत और नमकके मिश्रणको दूसरे स्थानपर उच्चतापक्रम तक गरम करते हैं। ऐसा करनेसे लवणरोटिका या सोडियम गन्धेत बन जाता है।

सो उ ग ओ$_4$ + सोह = सो$_2$ ग ओ$_4$ + उह
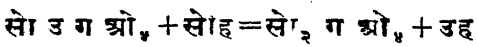
लवणरोटिकाको हारग्रीवज़-विधिसे भी बनाते हैं जिसमें गन्धकाम्लकी आवश्यकता नहीं होती है। इसमें गन्धक द्विओषिदका प्रयोग होता है जो गन्धक या लोह गन्धिक आदिसे मिल सकता है। इसे जलवाष्प और वायुके साथ गरम किये हुए नमक पर प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे सोडियम गन्धेत बन जाता है।

४सोह + २ग ओ$_2$ + २उ$_2$ओ + ओ$_2$ = २सो$_2$ग ओ$_4$ + ४उह
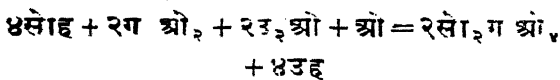
सोडियम गन्धेतको सोडियम कर्बनेतमें परिणत करनेकी विधिको श्याम-राख-विधि कहते हैं क्योंकि उपलब्ध-सोडियम कर्बनेत काली राखके समान प्रतीत होती है। सोडियम गन्धेतके छोटे छोटे टुकड़े करके कोयले और चूने के पत्थर (क ख ओ$_3$) के साथ मिलाते हैं, और खूब गरम करते हैं। यह क्रिया लोहेके बड़े बड़े खोखले बेलनोंमें की जाती है जिनके चारों ओर ईंटोंकी भट्टी चुनी होती है। बेलन १८ फीट लम्बे और १२ फीट व्यासके होते हैं, और ये अपनी कीली-पर घुमाये जा सकते हैं, बेलनके अन्दरके पदार्थ बिलकुल पिघल जानेके पश्चात् निकाल लिये जाते हैं जो ठण्डे होने पर ठोस हो जाते हैं। निम्न सूत्रों द्वारा यह क्रिया प्रदर्शित की जा सकती है:—

सो$_2$ ग ओ$_4$ + २ क = सो$_2$ ग + २क ओ$_2$

सो$_2$ ग + ख क ओ$_3$ = सो$_2$ क ओ$_3$ + ख ग
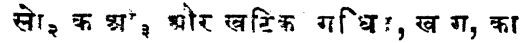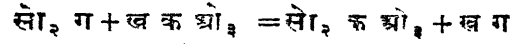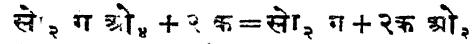
सो$_2$ क ओ$_3$ और खटिक गन्धिद, ख ग, का मिश्रण काले रंगका होता है। इसे श्याम-राख कहते हैं। इसमें अन्य अशुद्धियां भी विद्यमान रहती हैं, जैसे कोयला, चूना, चूनेका पत्थर, सोडियम गन्धेत, कास्टिक सोडा आदि। खटिक गन्धिद पानीमें अघुल है, पर सो$_2$क ओ$_3$ पानीमें घुलनशील है, अतः पानीके साथ धोकर सोडियम कर्बनेत पृथक किया जा सकता है। सोडियम कर्बनेतके घोलको गरम करके सुखा देनेसे शुद्ध सोडियम कर्बनेत प्राप्त हो सकता है।

श्याम-राखको गरम जलमें घोल कर स्वच्छ द्रवको गरम करके ठण्डा करनेपर सोडियम कर्बनेतके रवे प्राप्त हो सकते हैं, इन रवोंको धोनेका सोडा (Washing Soda) कहते हैं। यह सिरकेबाल साफ करनेके काममें आता है। इसका रूप सो$_2$ क ओ$_3$, १० उ$_2$ ओ है। इन रवोंको कर्बन-द्विओषिदके संसर्गमें रखनेसे सोडियम अर्ध कर्बनेत (Sodium bi carbonate) बन जाता है।

सो$_2$ क ओ$_3$,१० उ$_2$ ओ + क ओ$_2$ =
२ सो उ क ओ$_3$ + ९ उ$_2$ ओ
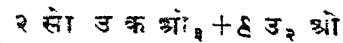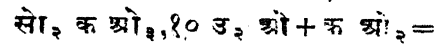
अनार्द्र सोडियम कर्बनेत श्वेतचूर्ण पदार्थ होता है जिसमें नम-वायुके संसर्गसे ठप्पे बंध जाते हैं। यह ८५२°श पर पिघलता है। यदि इसमें जल छोड़ा जाय तो समुचित गरमी उत्पन्न होती है, और आर्द्र-लवण बन जाते हैं। इसके घोलमें जल-विश्लेषण (hydrolysis) के कारण अम्ल गुण विद्यमान रहते हैं। घोलावस्थामें

सो$_2$ क ओ$_3$ = २ सो' + कओ''$_3$; क ओ$_3$ +
उ$_2$ ओ = उ क ओ$_3$ + ओउ
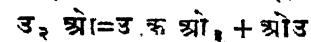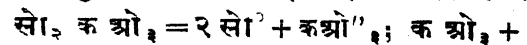
सोडियम अर्धकर्बनेतके घोलमें भी क्षारीय गुण हैं पर कर्बनेतकी अपेक्षा कम हैं। इसको गरम करनेपर कर्बनद्विओषिदके बुलबुले निकलने लगते हैं और अर्धकर्बनेत कर्बनेतमें परिणत हो

जाता है। अनार्द्र सोडियम अर्धकर्बनेतको गरम करनेसे शुद्ध सोडियम कर्बनेत प्राप्त हो सकता है।

यदि सोडियम कर्बनेत और सोडियम अर्ध-कर्बनेतकी सम अणुमात्रा गरम जलमें घोल कर रवे बनाये जायं तो सोडियम एकार्धकर्बनेत, $सो_2 कओ_3$, सोउकओ ३,२ $उ_2$ओ बन जाता है।

अब हम ली-ब्लांक विधिका मान-चित्र नीचे देते हैं :—
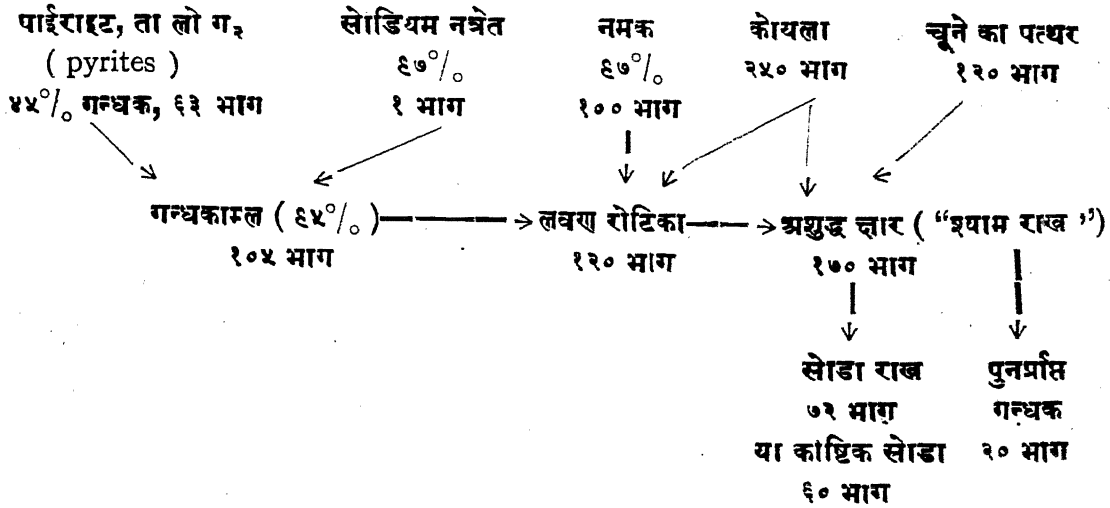
कास्टिक सोडा, सो ओ उ

उपर्युक्त ली-ब्लांक विधिसे उपलब्ध सोडियम कर्बनेत कास्टिक सोडा बनानेके काममें आता है। उसके घोलको लोहेके बड़े बड़े कुंडोंमें रखते हैं जिनमें घोलको टारने (हिलाने) के लिये विक्षोभक (stirrer) लगे होते हैं, और भापके लिये नलियोंका प्रबन्ध होता है। द्रवके ऊपरकी ओर एक जालमें चूना रखा जाता है और विक्षोभकोंसे द्रवको खूब टारा जाता है और भाप प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार सोडियम कर्बनेत सम्पूर्णतः कास्टिक सोडामें परिणत हो जाता है :—

$$सो_2 कओ_3 + ख (ओउ)_2 = २सो ओउ + खकओ_3$$
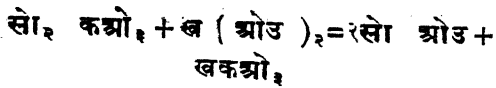
$खकओ_3$ थोड़ीसी मात्रामें ही जलमें घुलनशील है। छाननेसे लगभग शुद्ध कास्टिक सोडा प्राप्त हो सकता है। इसे गाढ़ा किया जा सकता है और विशेष प्रकारके बने हुए शून्य वाष्पयंत्रोंमें गरम करके सम्पूर्ण जल दूर किया जाता है। गन्धिद और श्यामिद आदि अशुद्धियोंको ओषिद करण करके दूर करनेके लिये सोडियम नत्रेत भी डाल देते हैं।

कास्टिक सोडा श्वेत अल्प पारदर्शक ठोस पदार्थ है। यह ३१८·४° श पर पिघलता है और १३००° श तक गरम करनेसे यह तत्वोंमें विभाजित हो जाता है। २ सोओउ=२सो + $उ_2$ + $ओ_2$। वायुमें रखनेसे यह जल कण लेकर पसीजने लगता है; पर फिर कर्बनद्विओषिदके अभिशोषण करने—से अल्प-घुल सोडियम अर्धकर्बनेतके बननेके कारण यह ठोस हो जाता है। यह प्रबल क्षार है और साबुन बनानेके काममें अधिक आता है। तेल और कास्टिक सोडाको उचित मात्रामें मिलानेसे साबुन बन सकता है, साबुनको द्रवभागमेंसे अलग करनेके लिये थोड़ा सा नमक भी डाल देना चाहिये।

कास्टिक सोडाके बनानेकी दूसरी विधि लौविग नामक वैज्ञानिककी निकाली हुई है। सोडा-राख (सोडियम कर्बनेत) और लोहिक ओषिद्का मिश्रण एक चक्करदार भट्टीमें रक्त तप्त किया जाता है। ऐसा करनेसे सोडियम लोहित, सो$_2$ ओ, लो$_2$ ओ$_3$ या (सो लो ओ$_2$) बन जाता है:—

सो$_2$ क ओ$_3$ + लो$_2$ ओ$_3$ = २सो लो ओ$_2$ + क ओ$_2$

सोडियम लोहितको ठंडा होनेपर तोड़ा जाता है और टुकड़ोंको गरमजलसे संचालित किया जाता है। ऐसा करनेसे कास्टिक सोडा और अघुल लोहिक ओषिद् बन जाता है:—

२ सो लो ओ$_2$ + उ$_2$ ओ = लो$_2$ ओ$_3$ + २ सोओ उ

कास्टिक सोडाको छान कर शून्य-वाष्प यंत्रोंमें गाढ़ा कर लेते हैं; और फिर जमा लेते हैं।

सोडियम कर्बनेतके बनानेकी अमोनिया-सोडा विधि

सं० १८९५ वि० में ह्वार और हेमिङ्ग नामक वैज्ञानिकोंने नमक और अमोनियम-उद्जन कर्बनेत द्वारा सोडियम कर्बनेत बनानेका विचार किया। इन दो पदार्थोंके संसर्गसे सोडियम अर्ध-कर्बनेत इस प्रकार बना—

सो ह + न उ$_4$ उ क ओ$_3$ = सो उ क ओ$_3$ + न उ$_4$ ह

इस विधिको अमोनिया सोडा विधि कहते हैं। स्क्लोइसिंग और रौलेण्डने इस विधिको व्यापारिक रूपमें १७ वर्ष पश्चात् प्रस्तुत किया और ब्रूनर आदिने सं० १९३१ वि० इसको व्यवहारिकतः उपयोग किया। इसविधिमें इतनी सफलता प्राप्त हुई कि इसने लीब्लांककी विधिको पछाड़ दिया। सं० १९६५ वि० में संसारमें २० लाख टन सोडा बनाया गया था जिसमेंसे लीब्लांककी विधिसे केवल १ लाख टन बनाया गया था।

इस विधिमें नमक, चूनेका पत्थर, कोयला और अमोनियाका उपयोग किया जाता है। सम्पूर्ण विधि ६ अंगोंमें विभाजित है—

(१) नमकका एक घोल बनाया जाता है जिसमें ३१ प्रति. श. सोह, अमोनिया और अमोनिया कर्बनेत होते हैं।

(२) इस अमोनिया-संयुक्त द्रवको कर्बन द्विओषद्से संचालित करते हैं, जिससे अमोनिया कर्बनेत और अमोनियम अर्धकर्बनेत दोनों बनते हैं।

२ न उ$_3$ + उ$_2$ ओ + क ओ$_2$ = (न उ$_4$)$_2$ क ओ$_3$

(न उ$_4$)$_2$ क ओ$_3$ + उ$_2$ ओ + क ओ$_2$ = २ न उ$_4$.उ क ओ$_3$

यह अमोनियम अर्धकर्बनेत सोडियम हरिद्के साथ सोडियम अर्धकर्बनेत देता है—

न उ$_4$. उ क ओ$_3$ + सो ह = सो उ क ओ$_3$ + न उ$_4$ ह

इस प्रकार नमकका दो तिहाई भाग सोडियम अर्ध कर्बनेतमें परिणत हो जाता है।

(३) सोडियम अर्ध कर्बनेतको छान लेते हैं और धोकर अमोनिया-लवणसे पृथक् कर लेते हैं।

(४) सोडियमअर्धकर्बनेतको जलाकर सोडियम कर्बनेत और शुद्ध कर्बन द्विओषिद् बना लेते हैं।

(५) अंग (२) और (३) द्वारा उपलब्ध अमोनिया लवणोंके घोलको भाप और चूनेके संसर्गमें लाकर अमोनिया गैस और खटिक हरिद् प्राप्त होता है।

(६) चूनेके पत्थरको जलाकर कर्बन द्विओषिद् गैस बनती है और इसमें नत्रजन मिला रहता है उपलब्ध चूना अंग (५) में उपयुक्त होता है।

इस प्रकार इस विधिसे शुद्ध सोडियम कर्बनेत, कर्बन द्विओषिद्से संयुक्त नत्रजन और खटिक हरिद् का घोल प्राप्त होता है।

इस विधिका मान चित्र नीचे दिया जाता है:—
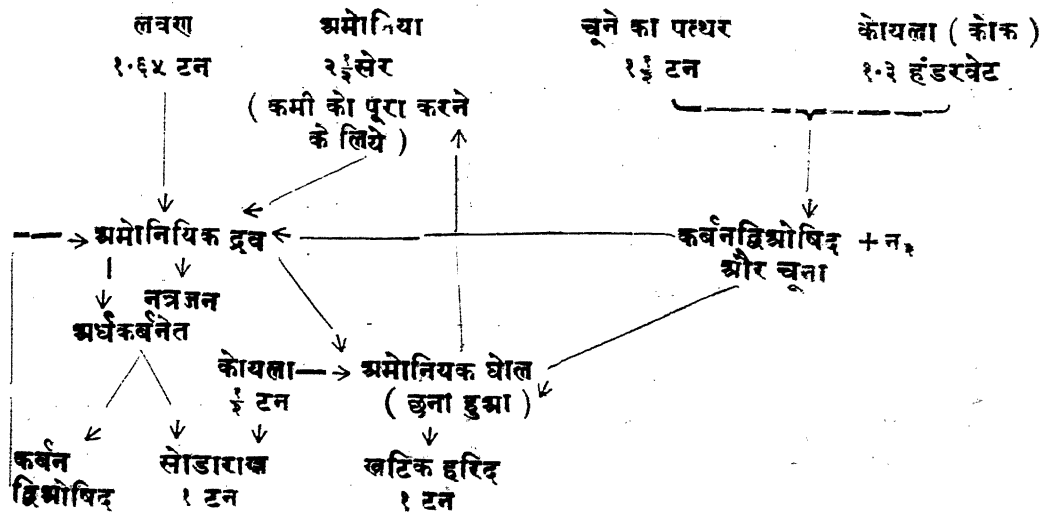
सोडियम के अन्य लवण

साधारण नमक जिसका हम उपयोग करते हैं, सोडियमका एक लवण है जिसे सोडियम हरिद कहते है। संसार भरमें इसका विस्तार है। समुद्रके जलमें इसकी समुचित मात्रा विद्यमान है। अटलाण्टिक महासागरके १००० सेर पानीमें २९ सेरके लगभग नमक है। खारी कुए और खारी झीलोंमेंभी यह अधिक मात्रामें पाया जाता है। यह खानोंमेंभी पाया जाता है। साधारणतया नमकमें सोडियम हरिदके साथ साथ मग्नहरिद भी विद्यमान रहता है जिसमें पसीजने के गुण विद्यमान हैं अर्थात् यह वायुसे जल ग्रहण कर लेता है। इसीलिये वर्षाके दिनोंमें विशेषकर नमक सूखा नहीं रहने पाता और पसीज जाता है। यदि नमकमेंसे मग्नहरिद पृथककर लिया जाय तो नमक नहीं पसीजेगा। साधारण नमकको पानीमें घोलकर उदहरिकाम्ल गैस प्रवाहित करनेसे शुद्ध नमककी तलछट प्राप्त हो जायगी और मग्न लवण घोलमें रह जायंगे। इस प्रकार छानकर शुद्ध नमक प्राप्त हो सकता है।

नमकके रवे घन होते हैं जिनका आपेक्षिक घनत्व २·१६ है। ये ८१५° श पर पिघलते हैं और रक्त तप्त होनेपर वाष्पी भूत हो सकते हैं। सामान्य तापक्रम पर १०० भाग जलमें ३६ भागके लगभग नमक घुलनशील है, और १००°श तापक्रमपर ३९ भाग। बर्फमें नमक मिला देने से(−२२°श) तापक्रम प्राप्त हो सकता है। इसीलिये मलाईकी बर्फ जमानेके लिये बर्फमें नमक छोड़ देते हैं, और इस प्रकार दूध सरलतया जम जाता है।

सोडियम हरिदके समान सोडियम ब्रमिद और नैलिद भी पाये जाते हैं। सोडियम श्यामिद (cyanide) अधिक उपयोगी लवण है। कास्टिक सोडा और उदश्यामिकाम्ल, उकन, के संयोग से यह बन सकता है :—

सो ओ उ + उ क न = सो क न + उ₂ ओ

सोडियम लोहो श्यामिद, सो₄ लो (क न)₆, को अकेले या सोडियमके साथ गरम करनेसे भी सोडियम श्यामिद प्राप्त हो सकता है :—

सो₄ लो (क न)₆ = ४ सो क न + लो + २ क + न₂

सो₄ लो (क न)₆ + २ सो = ६ सो क न + लो

कास्टिक सोडाको मद्यमें घोलकर उदश्यामि-

काम्ल प्रवाहित करनेसे शुद्ध श्यामिद तलछट रूपमें प्राप्त हो सकता है। व्यापारिक मात्रामें श्यामिद कास्टनरकी विधिसे बनाया जाता है। लोहेके भभकेमें सोडियमको ३००°-४००° तापक्रम तक गरम करके उसमें अमोनिया प्रवाहितकी जाती है। इस प्रकार सोडामिद, सो न उ$_2$ बनता है। उसे रक्त-तप्त कोयलेपर छोड़नेसे सोडियम श्यामेमिद बनता है जो कोयलेके संसर्गसे श्यामिद-में परिणत होजाता है :—

२ सो + २ न उ$_3$ = २ सो न उ$_2$ + उ$_2$

२ सो न उ$_2$ + क = क न· नः सो$_2$ + २ उ$_2$

क न· नः सो$_2$ + क = २ सो क न
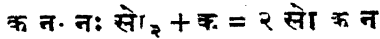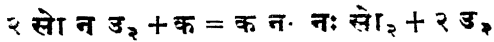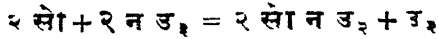
श्यामिद जलमें विश्लेषित होजाता है अतः इसका घोल अम्ली गुण प्रदर्शित करता है—

सो क न + उ$_2$ ओ = सो ओ उ + उ क न
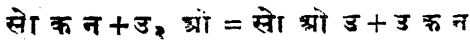
सोडियम नत्रेत—(चिलीका शोरा)— सो न ओ$_3$—दक्षिणी पेरू और बोलवियाके वर्षारहित स्थलोंमें यह लवण अधिक मात्रामें पाया जाता है सामान्य नत्रेतमें सोडियम हरिद, खटिक गन्धेत और सोडियम नैलेत भी अशुद्धि रूप में विद्यमान रहते हैं। रवे बनाकर नत्रेत स्वच्छ किया जा सकता है। सोडियम नैलेत नैलके उत्पन्न करनेमें उपयुक्त होता है। नत्रेत जलमें बहुत घुलनशील है और पसीजनेके भी गुण इसमें विद्यमान हैं, इसलिये गोला बारूद बनानेके काममें यह उस प्रकार नहीं आ सकता है जिस प्रकार पोटाशियम नत्रेत आता है। गरम करनेसे यह पिघलता है और फिर उच्च तापक्रम पर ओषजन दे देता है और सोडियम नत्रित बन जाता है।

२ सो न ओ$_3$ = २ सो न ओ$_2$ + ओ$_2$
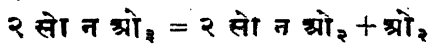
यह नत्रिकाम्ल बनानेके काममें आता है। खादके साथ विद्यमान होने पर यह उपजको बढ़ा देता है।

सोडियम नत्रित—सो न ओ$_2$—सोडियम नत्रेत को खूब गरम करनेसे यह प्राप्त होसकता है। सोडियम नत्रेतको लोह चूर्णके साथ मिलाकर गरम करनेसे साधारण तप्त होनेपर ही यह उपलब्ध होसकता है—सो न ओ$_3$ + लो = सो न ओ$_2$ + लो ओ। नत्रस ओषिद भी कास्टिक सोडा के संसर्गसे इसे दे सकता है। यह दुर्बल अम्लों द्वारा जैसे सिरकाम्लसे विभाजित हो जाता है और भूरी भूरी गैस निकलने लगती हैं। पोटाशियम नैलिदके संसर्गसे नैल गैस निकलने लगती है। यदि कागज़को माँड़ (starch) के घोलसे भिगोकर नैलगैसके घोलके संसर्गसे लावें तो नीला रंग प्रतीत होगा। नत्रितके पहिचाननेके लिये यह अच्छा साधन है। आंगिक रसायनमें रंग आदि बनानेके काममें इसका बड़ा उपयोग होता है।

सोडियम गन्धित—सो$_2$ ग ओ$_3$—सोडियम कर्बनेत, सो$_2$ क ओ$_3$, के घोलके एक भागको गन्धक द्विओषिद, ग ओ$_2$, से संपृक्त करके, सो$_2$ क ओ$_3$ का दूसरा भाग डालनेसे सोडियम गन्धित बन सकता है :—

(१) सो$_2$ कओ$_3$ + २ गओ$_2$ + उ$_2$ ओ = २ सो उ ग ओ$_3$ + क ओ$_2$

(२) २ सो उ ग ओ$_3$ + सो$_2$ कओ$_3$ = २ सो$_2$ गओ$_3$ + कओ$_2$ + उ$_2$ ओ
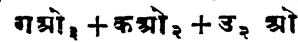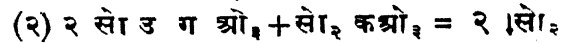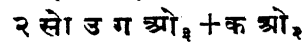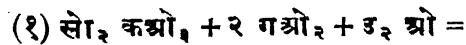
यह जलके सात अणुओंके साथ रवे बनाता है और क्षारीय है। वायुके ओषजनके संसर्गसे यह गन्धेतमें परिणत हो जाता है इसलिये यह शुद्ध रूपमें कठिनतासे प्राप्त हो सकता है। हरिन, नैल, नत्रिकाम्ल आदिसे इसमें ओषिदीकरण हो जाता है।

सो$_2$ ग ओ$_3$ + नै$_2$ + उ$_2$ ओ = सो$_2$ ग ओ$_4$ + २ उ नै
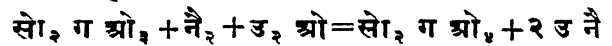
सोडियम गन्धकी गन्धेत (Thiosulphate)— सो$_2$ग$_2$ ओ$_3$—इसे पहले सोडियम उपगन्धित या सोडियम हाइपो गन्धित (Hypo-sulphite) कहते थे। सोडियम गन्धितको गन्धकपुष्पसे गरम करनेसे यह प्राप्त हो सकता है—

सो$_2$ ग ओ$_3$ + ग = सो$_2$ ग$_2$ ओ$_3$
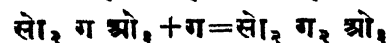
व्यापारिक मात्रामें बनानेके लिये सोडियम गन्धिद्के घोलमें गन्धक द्विओषिद् प्रवाहित किया जाता है—इस प्रकार निम्न परिवर्त्तन होते हैं:—

(१) $\text{सो}_2\,\text{ग} + \text{उ}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_3 = \text{सो}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_3 + \text{उ}_2\,\text{ग}$

(२) $2\,\text{उ}_2\,\text{ग} + \text{ग}\,\text{ओ}_2 = 2\,\text{उ}_2\,\text{ओ} + 3\text{ग}$

(३) $\text{सो}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_3 + \text{ग} = \text{सो}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3$

जब सोडियम गन्धिद् और गन्धितके मिश्रण पर नैलका प्रभाव होता है तो भी गन्धको—गन्धेन उत्पन्न होता है —

$\text{सो}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_3 + \text{सो}_2\,\text{ग} + \text{नै}_2 = \text{सो}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3 + 2\text{सो}\,\text{नै}$ ।

इसे सोडियम अमलगम (पारद मिश्रण) से अवकृत (Reduce) करनेपर सोडियम—गन्धित और गन्धिद् पुनः प्राप्त हो सकते हैं:—

$\text{सो}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3 + 2\,\text{सो} = \text{सो}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_3 + \text{सो}_2\,\text{ग}$

यह जलके पांच अणुओंके साथ रवे बनाता है और इसका घोल शिथिल होता है। यह घोल धीरे धीरे विभाजित होता है और इस प्रक्रियामें गन्धक मुक्त होता जाता है। फ़ोटोग्राफ़ीमें इसका बहुत उपयोग किया जाता है क्योंकि यह अप रेवर्नित रजत हरिद, ब्रमिद और नैलिद्को घुला लेता है, और चित्रपर इसका कोई प्रभाव नहीं होता है। गन्धकाम्लके साथ यह गन्धक मुक्त कर देता है और गन्धक द्विओषिद् गैस निकलने लगती है—

$\text{सो}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3 + \text{उ}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_4 = \text{उ}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3 + \text{सो}_2\text{ग}\,\text{ओ}_4$

$$\text{उ}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3 = \text{उ}_2\,\text{ग}\,\text{ओ}_3 + \text{ग}$$
$$= \text{उ}_2\,\text{ओ} + \text{ग}\,\text{ओ}_2 + \text{ग}$$

नैलके साथ इसमें निम्न प्रभाव होता है—

$2\text{सो}_2\,\text{ग}_2\,\text{ओ}_3 + \text{नै}_2 = 2\,\text{सो}\,\text{नै} + \text{सो}_2\,\text{ग}_4\,\text{ओ}_6$

इस प्रकार सोडियम चतुर्गन्धकीनेत बन जाता है। इस प्रक्रियाका प्रयोग आयतन सम्बन्धी द्रवयोग विश्लेषण titration में किया जाता है। नैलके ज्ञातशक्तिक घोलसे गन्धकी गन्धेत के घोल की शक्ति द्रवयोग-विश्लेषण द्वारा निकाली जा सकती है।

साधारण-रसायन

[ले०—श्री सत्यप्रकाश, बी० एस-सी०, विशारद]

मात्रा क्या है ?

इस संसारमें हमारे व्यवहारमें दो प्रकारकी वस्तुएँ आती हैं। एक तो वे जिनको हम आँखोंसे देख सकते हैं, हाथसे छू सकते, जिसके स्वाद और गन्धका अनुभव कर सकते, तथा जिसको हम तैाल सकते हैं। दूसरे प्रकारकी वे वस्तु हैं जो किसी प्रकार तैाली नहीं जा सकतीं हैं। ये प्रथम प्रकारकी वस्तुओंके आश्रितही अपने गुणोंको प्रदर्शित करती हैं। उदाहरणके लिये, एक पत्थरकी ओर विचार कीजिये। हम इसके रूप रंगको आँखोंसे जान सकते हैं। छूकर इसकी कठोरता भी मालूम कर सकते हैं। तराजूमें तैालकर इसका भार भी ज्ञात हो सकता है। पर पत्थरके साथ-साथ एक दूसरी और भी वस्तु है। धूपमें रखनेसे पत्थर गरम हो जाता है। पत्थरकी इस गरमीको हम तैाल नहीं सकते। गरमी पत्थरके समान किसी न किसी वस्तुके आश्रित ही रहती है। हम इसे पृथक् इकट्ठा नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रकाश, विद्युत्, ध्वनि, और चुम्बकी आकर्षण भी नहीं तैाले जा सकते हैं।

इस तरह वस्तुओंके दो विभाग हैं, एक तो वे जो तौली जा सकें। इनको मात्रा की बनी हुई कहते हैं। मात्रा वह है जिसमें कुछ तौल हो। दूसरी वे हैं जो तौली न जा सकें और जिनका अस्तित्व मात्राके आश्रित हो। इन्हें शक्ति कहते हैं। पत्थर, लोहा, गन्धक, पानी आदि पदार्थ

मात्राके बने हुए हैं। ताप, प्रकाश, विद्युत आदि शक्तियाँ हैं।

मात्राके तीन रूप

हम पत्थरके टुकड़ेको तौल सकते हैं, इसी प्रकार पानी, और धुएँको भी तौला जा सकता है। अतः पत्थर, पानी, और धुआँ तीनों मात्राके बने हुए हैं। पत्थरके टुकड़ेको जिस स्थानपर रख दिया जाय उसी स्थानपर वह रक्खा रहता है। यदि कोई इसे हिलाये नहीं तो दो तीन महीने पश्चात् भी वह उसी स्थान पर रक्खा दिखाई पड़ेगा, पर पानीमें यह बात नहीं है। किसी गिलासमें एक कोनेसे पानी डाला जाय तो यह नहीं हो सकता कि वह दूसरे कोनेमें न पहुँच जाय। इस प्रकार पानीमें बहनेका स्वभाव है। वह तबतक बहता है जबतक बर्तनमें उसकी सतह एक न हो जाय। एक सतह हो जानेके पश्चात् जलका बहना बन्द होजाता है और फिर इस अवस्थामें वह पत्थरके समान बहुत समय तक अचल रह सकता है। धुआँ पानीसे भी भिन्न है क्योंकि जिस बर्तनमें रक्खा जाय, उसके सारे भागको वह घेर लेगा। आधा तोला धुआँ एक बड़े बर्तनमें बन्द करो या चाहे छोटे बर्तनमें, वह सम्पूर्ण बर्तनमें फैल जावेगा।

इस प्रकार मात्राके तीन रूप हैं। एक तो वह जिसका आकार और रूप निश्चित होता है और जो अपने रूपको स्थिर रख सकता है। जैसे पत्थर, लकड़ी, या लोहेका टुकड़ा। इस प्रकारकी वस्तुओंको ठोस कहते हैं। दूसरे प्रकारकी वस्तु बहने वाली हैं। इनका रूप बर्तनके रूपके आश्रित होता है। ये वस्तुएँ तब तक बहती हैं जब तक बर्तनमें सतह एक न होजाय। इस प्रकार पानी, दूध, तैल आदि पदार्थ गिलासमें रक्खे जायँ तो गिलासके रूपके होजायँगे और यदि लोटेमें रक्खे जायँ तो लोटेके रूपके हो जावेंगे, इस प्रकारकी वस्तुओंको द्रव कहते हैं। द्रवोंको चाहे किसी बर्तनमें रक्खो, उनके आयतनमें कोई भेद नहीं पड़ेगा। पर तीसरे प्रकारकी वस्तुएँ वे हैं जो जिस बर्तनमें रक्खी जायंगी उसको पूरा भर लेंगी, बर्तनका आयतन, आकार और रूपही उनका आयतन, आकार और रूप है। ऐसी वस्तुओं को वायव्य कहते हैं। धुआँ, भाप, हवा आदि वायव्य हैं। मात्राके इस तरह तीन रूप हुए- ठोस, द्रव, और वायव्य।

पदार्थोंके भौतिक गुण

वस्तुओंके गुण जाननेके लिये हमारे पास पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।— आँख, नाक, जीभ, कान और त्वचा। इनसे पदार्थोंके जो गुण जाने जा-सकते हैं वे यहाँ दिये जावेंगे—

१. आंखसे (क) पदार्थ ठोस है, द्रव है या वायव्य।
(ख) रंग क्या है।
(ग) पदार्थ पारदर्शी है, या अपारदर्शी या अल्पपारदर्शी।

जिन पदार्थोंके आरपार साफ़ साफ़ दीखता है उसे पारदर्शी कहते हैं जैसे पानी, काँच, हवा। जिस पदार्थके आरपार नहीं दीखता और प्रकाशमें उसकी छाया पड़ती है उसे अपारदर्शी कहते हैं। जैसे लोहा, पत्थर आदि। बहुत सी वस्तुओंके आरपार थोड़ा सा प्रकाश आता है। पर उस पदार्थके दूसरी ओरकी वस्तुएँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ती हैं। इन्हें अल्पपारदर्शी कहते हैं। जैसे तैलसे भीगा काग़ज़।

२. नाकसे गन्ध ज्ञात हो सकती है। गन्ध दो प्रकारकी होती है—सुगन्ध और दुर्गन्ध। जैसे इत्रकी सुगन्धि और मिट्टीके तैलकी दुर्गन्ध। कुछ गन्ध बहुत तीक्ष्ण होती हैं। इनका कोई स्पष्ट विभाग नहीं किया जासकता है।

३. जीभसे स्वाद प्रतीत होता है। स्वाद कई प्रकारका होता है—मीठा, खट्टा, चरपरा, खारी, नमकीन आदि।

४. कानसे ध्वनिका ज्ञान होता है। धातुके बर्तन 'टनटन' की ध्वनि से बजते हैं। लकड़ी आदि से 'खटखट' की ध्वनि आती है।

५. त्वचासे छूनेका काम लिया जाता है। छूकर जाना जा सकता है कि अमुक वस्तु कठोर है या मृदु, खुरखुरी है, रवे दार है या बेरवा चून सी।

इनके अतिरिक्त अन्य भौतिक गुणोंकी भी परीक्षा की जा सकती है। बहुतसे पदार्थ चोट खाने पर चूर चूर हो जाते हैं जैसे काँच। इन्हें भञ्जन शील कहते हैं, बहुतसे पदार्थ चोट खाने पर पत्र बन जाते हैं जैसे सोना चांदी आदि। इन्हें घनवर्धनीय या आघात वर्धनीय कहते हैं। बहुतसे पदार्थ मोड़नेके पश्चात् छोड़देने पर अपनी पहली अवस्थामें लौट आते हैं। उन्हें लचीला कहते हैं जैसे बेंत, लोहेकी कमानी आदि। जो पदार्थ मोड़नेके पश्चात् छोड़ देने पर अपनी पूर्व अवस्थामें नहीं लौट आते उन्हें चिमड़ा कहते हैं, जैसे, सोना, सीसा आदिकी पतली चद्दर। कुछ पदार्थ खींचनेके पश्चात् छोड़देने पर अपनी पूर्वावस्थामें आजाते हैं, उन्हें स्थिति स्थापक कहते हैं जैसे रबर। जिन पदार्थोंमें छोटे छोटे छेद होते हैं उन्हें रन्ध्रमय या छेदीला कहते हैं जैसे सोखता (स्याही सोख) जिनमें पानी नहीं घस सकता है उन्हें अभेद्य कहते हैं। कुछ वस्तुएँ पानीमें घुलन शील हैं और कुछ अनमिल। जो पदार्थ जल सकते हैं उन्हें दाह्य और जो नहीं जलसकते उन्हें अदाह्य कहते हैं।

इस बातकी भी परीक्षा करनी चाहिये कि अमुक वस्तु पानीसे हलकी है या भारी। यदि कोई वायव्य पदार्थ हो तो यह देखना चाहिये कि यह वायुसे हलका है या भारी। यदि होसके तो इनका आपेक्षिक घनत्व भी निकालना चाहिये। वस्तुओंके द्रवांक और क्वथनांक भी उपयोगी गुण हैं। (विस्तारके लिये देखो विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृ० १६३)

परिवर्त्तन

यह जगत् परिवर्त्तन शील है। वस्तुओंमें परिवर्त्तन होता है। तालाबका पानी गरमीमें सूखजाता है, गरम करनेसे पानी भाप बनकर उड़ जाता है। भापको ठण्डा करनेसे फिर पानीकी बूँद टपकने लगती हैं। यही पानीकी बूँदें और अधिक शीतल करनेसे बर्फ़ बनजाती हैं। इस तरह द्रव जल ठोस और वायव्य अवस्थामें बदल जाता है। यह एक प्रकार का परिवर्त्तन है। चाँदी और सोना गलाकर द्रव किया जासकता है, इसी प्रकार मोम और गन्धक भी। पर इन द्रव पदार्थोंको ठण्डा करनेसे फिर ठोस चाँदी, सोना, मोम और गन्धक प्राप्त हो सकता है।

लोहेका काला टुकड़ा गरम करनेपर लाल प्रतीत होने लगता है, यहाँ उसका रंग परिवर्तित हो गया है। ठण्डा करनेपर फिर वह काला प्रतीत होने लगेगा। सोनेका टुकड़ा अपारदर्शी है पर यदि उसके बहुत पतले पत्र किये जायँ तो वे अल्पपारदर्शी प्रतीत होने लगेंगे। जल पारदर्शी है पर नदियोंमें जल अल्पपारदर्शी दिखाई पड़ता है क्योंकि ऊपरसे देखनेपर उसका धरातल नहीं दिखाई देता है। यही जल यदि कांचके गिलासमें रक्खें तो फिर पारदर्शी प्रतीत होगा। ये सब उदाहरण भौतिक-गुणोंके परिवर्तन हैं। इन्हें भौतिक-परिवर्तन कहते हैं। इनमें पदार्थोंकी अवस्थामें भेद पड़ जाता है पर पदार्थोंका वास्तविक रूप नहीं बदलता है।

हम आगमें लकड़ी जलाते हैं। पर लकड़ीका जलाना लोहे या पानीके गरम करनेके समान नहीं है। जलती हुई लकड़ीके अंगारेको ठण्डा करनेपर लकड़ी नहीं प्राप्त होगी। हमको राख या कोयला मिलेगा। भापको ठण्डा करनेसे पानी प्राप्त हो सकता है पर लकड़ीके धुएँको ठण्डा करनेपर लकड़ी नहीं मिल सकती। यहाँ लकड़ीने अपना वास्तविक रूप बिलकुल परिवर्तित कर दिया है। तैल जलाया जानेपर धुएँ में परि

मात्राके बने हुए हैं। ताप, प्रकाश, विद्युत आदि शक्तियाँ हैं।

मात्राके तीन रूप

हम पत्थरके टुकड़ेको तौल सकते हैं, इसी प्रकार पानी, और धुएँको भी तौला जा सकता है। अतः पत्थर, पानी, और धुआँ तीनों मात्राके बने हुए हैं। पत्थरके टुकड़ेको जिस स्थानपर रख दिया जाय उसी स्थानपर वह रक्खा रहता है। यदि कोई इसे हिलाये नहीं तो दो तीन महीने पश्चात् भी वह उसी स्थान पर रक्खा दिखाई पड़ेगा, पर पानीमें यह बात नहीं है। किसी गिलासमें एक कोनेसे पानी डाला जाय तो यह नहीं हो सकता कि वह दूसरे कोनेमें न पहुँच जाय। इस प्रकार पानीमें बहनेका स्वभाव है। वह तबतक बहता है जबतक बर्तनमें उसकी सतह एक न हो जाय। एक सतह हो जानेके पश्चात् जलका बहना बन्द होजाता है और फिर इस अवस्थामें वह पत्थरके समान बहुत समय तक अचल रह सकता है। धुआँ पानीसे भी भिन्न है क्योंकि जिस बर्तनमें रक्खा जाय, उसके सारे भागको वह घेर लेगा। आधा तोला धुआँ एक बड़े बर्तनमें बन्द करो या चाहे छोटे बर्तनमें, वह सम्पूर्ण बर्तनमें फैल जावेगा।

इस प्रकार मात्राके तीन रूप हैं। एक तो वह जिसका आकार और रूप निश्चित होता है और जो अपने रूपको स्थिर रख सकता है। जैसे पत्थर, लकड़ी, या लोहेका टुकड़ा। इस प्रकारकी वस्तुओंको ठोस कहते हैं। दूसरे प्रकारकी वस्तु बहने वाली हैं। इनका रूप बर्तनके रूपके आश्रित होता है। ये वस्तुएँ तब तक बहती हैं जब तक बर्तनमें सतह एक न होजाय। इस प्रकार पानी, दूध, तैल आदि पदार्थ गिलासमें रक्खे जायँ तो गिलासके रूपके होजायँगे और यदि लोटेमें रक्खे जायँ तो लोटेके रूपके हो जावेंगे, इस प्रकारकी वस्तुओंको द्रव कहते हैं। द्रवोंको चाहे किसी बर्तनमें रक्खो, उनके आयतनमें कोई भेद नहीं पड़ेगा। पर तीसरे प्रकारकी वस्तुएँ वे हैं जो जिस बर्तनमें रक्खी जायंगी उसको पूरा भर लेंगी, बर्तनका आयतन, आकार और रूपही उनका आयतन, आकार और रूप है। ऐसी वस्तुओं को वायव्य कहते हैं। धुआँ, भाप, हवा आदि वायव्य हैं। मात्राके इस तरह तीन रूप हुए- ठोस, द्रव, और वायव्य।

पदार्थोंके भौतिक गुण

वस्तुओंके गुण जाननेके लिये हमारे पास पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।— आँख, नाक, जीभ, कान और त्वचा। इनसे पदार्थोंके जो गुण जाने जासकते हैं वे यहाँ दिये जावेंगे—

१. आंखसे. (क) पदार्थ ठोस है, द्रव है या वायव्य।

(ख) रंग क्या है।

(ग) पदार्थ पारदर्शी है, या अपारदर्शी या अल्पपारदर्शी।

जिन पदार्थोंके आरपार साफ़ साफ़ दीखता है उसे पारदर्शी कहते हैं जैसे पानी, काँच, हवा। जिस पदार्थके आरपार नहीं दीखता और प्रकाशमें उसकी छाया पड़ती है उसे अपारदर्शी कहते हैं। जैसे लोहा, पत्थर आदि। बहुत सी वस्तुओंके आरपार थोड़ा सा प्रकाश आता है। पर उस पदार्थके दूसरी ओरकी वस्तुएँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ती हैं। इन्हें अल्पपारदर्शी कहते हैं। जैसे तैलसे भीगा कागज़।

२. नाकसे गन्ध ज्ञात हो सकती है। गन्ध दो प्रकारकी होती है—सुगन्ध और दुर्गन्ध। जैसे इत्रकी सुगन्धि और मिट्टीके तैलकी दुर्गन्ध। कुछ गन्ध बहुत तीक्ष्ण होती हैं। इनका कोई स्पष्ट विभाग नहीं किया जासकता है।

३. जीभसे स्वाद प्रतीत होता है। स्वाद कई प्रकारका होता है—मीठा खट्टा, चरपरा, खारी, नमकीन आदि।

४. कानसे ध्वनिका ज्ञान होता है। धातुके बर्तन 'टनटन' की ध्वनि से बजते हैं। लकड़ी आदि से 'खटखट' की ध्वनि आती है।

५. त्वचासे छूनेका काम लिया जाता है। छूकर जाना जा सकता है कि अमुक वस्तु कठोर है या मृदु, खुरखुरी है, रवे दार है या बेरवा चून सी।

इनके अतिरिक्त अन्य भौतिक गुणोंकी भी परीक्षा की जा सकती है। बहुतसे पदार्थ चोट खाने पर चूर चूर हो जाते हैं जैसे काँच। इन्हें भञ्जन शील कहते हैं, बहुतसे पदार्थ चोट खाने पर पत्र बन जाते हैं जैसे सोना चांदी आदि। इन्हें घनवर्धनीय या आघात वर्ध नीय कहते हैं। बहुतसे पदार्थ मोड़नेके पश्चात् छोड़देने पर अपनी पहली अवस्थामें लौट आते हैं। उन्हें लचीला कहते हैं जैसे बेंत, लोहेकी कमानी आदि। जो पदार्थ मोड़नेके पश्चात् छोड़ देने पर अपनी पूर्व अवस्थामें नहीं लौट आते उन्हें चिमड़ा कहते हैं, जैसे, सोना, सीसा आदिकी पतली चद्दर। कुछ पदार्थ खींचनेके पश्चात् छोड़देने पर अपनी पूर्वावस्थामें आजाते हैं, उन्हें स्थिति स्थापक कहते हैं जैसे रबर। जिन पदार्थोंमें छोटे छोटे छेद होते हैं उन्हें रन्ध्रमय या छेदीला कहते हैं जैसे सोखता (स्याही सोख) जिनमें पानी नहीं घस सकता है उन्हें अभेद्य कहते हैं। कुछ वस्तुएँ पानीमें घुलन शील हैं और कुछ अनमिल। जो पदार्थ जल सकते हैं उन्हें दाह्य और जो नहीं जलसकते उन्हें अदाह्य कहते हैं।

इस बातकी भी परीक्षा करनी चाहिये कि अमुक वस्तु पानीसे हलकी है या भारी। यदि कोई वायव्य पदार्थ हो तो यह देखना चाहिये कि यह वायुसे हलका है या भारी। यदि होसके तो इनका आपेक्षिक घनत्व भी निकालना चाहिये। वस्तुओंके द्रवांक और क्वथनांक भी उपयोगी गुण हैं। (विस्तारके लिये देखो विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृ० १६३)

परिवर्त्तन

यह जगत् परिवर्त्तन शील है। वस्तुओंमें परिवर्त्तन होता है। तालाबका पानी गरमीमें सूखजाता है, गरम करनेसे पानी भाप बनकर उड़ जाता है। भापको ठण्डा करनेसे फिर पानी-की बूँद टपकने लगती हैं। यही पानीकी बूँदें और अधिक शीतल करनेसे बर्फ़ बनजाती हैं। इस तरह द्रव जल ठोस और वायव्य अवस्थामें बदल जाता है। यह एक प्रकार का परिवर्त्तन है। चाँदी और सोना गलाकर द्रव किया जासकता है, इसी प्रकार मोम और गन्धक भी। पर इन द्रव पदार्थों-को ठण्डा करनेसे फिर ठोस चाँदी, सोना, मोम और गन्धक प्राप्त हो सकता है।

लोहेका काला टुकड़ा गरम करनेपर लाल प्रतीत होने लगता है, यहाँ उसका रंग परिवर्तित हो गया है। ठण्डा करनेपर फिर वह काला प्रतीत होने लगेगा। सोनेका टुकड़ा अपारदर्शी है पर यदि उसके बहुत पतले पत्र किये जायँ तो वे अल्पपारदर्शी प्रतीत होने लगेंगे। जल पारदर्शी है पर नदियोंमें जल अल्पपारदर्शी दिखाई पड़ता है क्योंकि ऊपरसे देखनेपर उसका धरातल नहीं दिखाई देता है। यही जल यदि कांचके गिलासमें रक्खें तो फिर पारदर्शी प्रतीत होगा। ये सब उदाहरण भौतिक-गुणोंके परिवर्तन हैं। इन्हें भौतिक-परिवर्तन कहते हैं। इनमें पदार्थोंकी अवस्थामें भेद पड़ जाता है पर पदार्थोंका वास्तविक रूप नहीं बदलता है।

हम आगमें लकड़ी जलाते हैं। पर लकड़ीका जलाना लोहे या पानीके गरम करनेके समान नहीं है। जलती हुई लकड़ीके अंगारेको ठण्डा करने-पर लकड़ी नहीं प्राप्त होगी। हमको राख या कोयला मिलेगा। भापको ठण्डा करनेसे पानी प्राप्त हो सकता है पर लकड़ीके धुएँको ठण्डा करनेपर लकड़ी नहीं मिल सकती। यहाँ लकड़ी-ने अपना वास्तविक रूप बिलकुल परिवर्तित कर दिया है। तैल जलाया जानेपर धुएँ में परि

प्राप्त होता है पर उस धुएँको ठण्डा करनेपर तैल नहीं प्राप्त हो सकता है। इस प्रकारका परिवर्तन भौतिक परिवर्तनसे भिन्न है। इसे रासायनिक-परिवर्तन कहते हैं।

लोहेके चूरेको गन्धकके साथ गरम करनेपर एक काला पदार्थ प्राप्त होता है जिसमें न तो लोहेके गुण विद्यमान हैं और न गन्धकके। इस पदार्थको ठण्डा करनेपर भी लोहा और गन्धक नहीं प्राप्त हो सकता है। अतः यहाँ भी रासायनिक परिवर्तन हुआ है। उदजन वायव्यको वायुमें जलाने और ठण्डा करनेसे पानीको बूँदे प्राप्त होंगी पर पानीको गरम करनेसे उदजन नहीं प्राप्त होता है। अतः वायुमें जलनेपर उदजनमें रासायनिक परिवर्तन होता है।

इस प्रकार परिवर्तन दो प्रकारके हैं रासायनिक परिवर्तन, और भौतिक परिवर्तन।

रासायनिक परिवर्तन करनेके साधन

भौतिक परिवर्तनकी अपेक्षा रासायनिक परिवर्तन अधिक उपयोगी हैं, और रासायनशास्त्रका इससे विशेष सम्बन्ध है। इस परिवर्तनके करनेकी अनेक विधियाँ हैं जिनका इस पुस्तकमें वर्णन किया जायगा। मुख्य विधियाँ ये हो सकती हैं —

१. साधारण तापक्रमपर वायुके संसर्गसे भी बहुतसे रासायनिक परिवर्तन होते हैं। जैसे भीगे लोहेमें जंग लग जाना। सैन्धकम् और स्फुरपर वायुका प्रभाव होता है, स्फुर जल उठाता है और सैन्धकम्का ओषिद बन जाता है।

२. जल या अन्य द्रवोंके संसर्गसे भी रासायनिक परिवर्त्तन होता है। सैन्धकम् को जलमें डालनेसे उदजन निकलने लगता है। दस्तम्को गन्धकाम्लके संसर्गमें लानेसे भी उदजन निकलता है। और दस्त-गन्धेत नामक पदार्थ प्राप्त होता है।

३. दो या अधिक वस्तुओंको एक साथ पीसने या ज़ोरसे कूटनेसेः—शोरा, गन्धक और कोयलेको एक साथ कूटनेसे चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। यहाँ भी एक रासायनिक परिवर्त्तन हो रहा है।

४ गरम करनेसे— पांशुजहरेतको अकेले या मांगनीज़ द्विओषिदके साथ गरम करनेपर ओषजन निकलने लगता है और पांशुज-हरिद प्राप्त होता है।

५ दो या अधिक घोलों को मिलानेसे— रजत-नोषेतको नमक अर्थात् सैन्धक-हरिदके साथ मिलाने पर रजत-हरिदका श्वेत तलछट या अवक्षेप प्राप्त होता है। इसी प्रकार लोह-हरिदके घोलमें अमोनियाका घोल डालनेसे लाल रंगका लोहिक उदौषिद अवक्षेप रूपमें मिलता है।

६. वायव्य या गैसको किसी घोलमें प्रवाहित करनेसे—तूतियाके घोलमें एक बूँद उदहरिकाम्लडाल कर उदजन-गन्धिद वायव्यको प्रवाहित करनेसे ताम्रगन्धिदका काला अवक्षेप प्राप्त होगा। इसी प्रकार चूनेके पानोमें कर्बनद्वि ओषिद गैस प्रवाहित करनेसे एक श्वेत अवक्षेप, खटिक-कर्बनेतका प्राप्त होता है।

७.विद्युत- धाराके संचारसे—यदि पानीमें विद्युत धारा का संचार किया जाय तो एक ध्रुव पर उदजन और दूसरेपर ओषजन निकलने लगता है। तूतियाके घोलमें विद्युत् धाराके प्रवाह से एक ध्रुव पर शुद्ध ताम्र जमा होने लगता है।

रासायनिक परिवर्त्तनके चिह्न

साधारणतया यह पता लगाना कि पदार्थमें भौतिक परिवर्त्तन हो रहा है या रासायनिक, सरल कार्य है पर दोनों प्रकारके परिवर्त्तनोंके बीचमें एक भेदक-भित्ति खींचना कठिन है। रासायनिक परिवर्त्तनकी मोटी पहिचानें यहाँ दी जाती हैं।

१. जब रासायनिक परिवर्त्तन होता है तो बहुधा तापक्रममें भी परिवर्त्तन हो जाता है। कभी कभी पदार्थ पहलेकी अपेक्षा अधिक शीतल हो जाते हैं और कभी कभी गरम। कास्टिक सोडा अर्थात्

सैन्धक-उदौषिदमें उदहरिकाम्ल डालनेसे बड़ी गरमी उत्पन्न होती है और घोल का तापक्रम बढ़ जाता है। गरमीके उत्पन्न होने से यहाँ यह अनुमान किया जा सकता है कि दोनों पदार्थोंके बीचमें कोई रासायनिक परिवर्त्तन हो रहा है।

२. कभी कभी जब रासायनिक परिवर्त्तन होता है तो घोलोंके आयतनमें भी भेद पड़ जाता है। एक ग्राम तूतिया को ९९९ ग्राम पानीमें घोलो इस १००० ग्राम घोलका आयतन ३८४०·३ घन शतांशमी० होता है। १ ग्राम नोषिकाम्लका १००० ग्राम घोल बनानेपर आयतन १९३३·२ घन. श. मी. होता है। नोषिकाम्ल और तूतियेके इन घोलों को आपसमें मिला दो, और दोनोंका आयतन नापो। यदि दोनों घोलोंके मिलानेपर कोई रासायनिक परिवर्त्तन न होता तो इनका आयतन (३८४०·३ + १९३३·२ = ५७७३·५) घन. श. मी. होतो पर प्रयोग करनेपर आयतन ५७८१ घन. श. मी. निकलता है। इस प्रकार ७·५ घन. श. मी. की वृद्धि हो जाती है। इस वृद्धिसे सिद्ध है कि दोनों घोलोंके मिलानेपर रासायनिक परिवर्त्तन हुआ है और ताम्रनोषेत बन गया है।

३—कभी कभी रासायनिक परिवर्त्तन होनेपर अवक्षेप प्राप्त होता है। स्वच्छ घोलमें किसी घुलनशील पदार्थके मिलानेपर यदि किसी ठोस पदार्थके श्वेत या अन्य किसी रंगके कण तलमें बैठते हुए दिखाई पड़ें तो इन कणोंके समूहको अवक्षेप कहते हैं। यह अवक्षेप उस घोलमें अनघुल होता है। उदाहरणतः, उदहरिकाम्ल और रजतनोषेत दोनों पदार्थ जलमें घुलनशील हैं, पर रजत-हरिद जलमें अनघुल है। इसीलिये उदहरिकाम्लके घोलमें रजत-नोषेतके घोलको मिला देनेसे रजत-हरिद बन जानेके कारण रजतहरिदके अनघुल कण अवक्षेपके रूपमें प्राप्त हो जाते हैं। एक घोलमें दूसरा घोल डालकर अवक्षेप उत्पन्न करनेकी क्रिया को अवक्षेपन कहते हैं और जो घोल अवक्षेपनके कार्य्यमें उपयुक्त होता है उसे अवक्षेपक कहते है। तूतियाके घोलमें उद-गन्धिद वायव्य प्रवाहित करनेसे अनघुल ताम्र गन्धिदका काला अवक्षेप प्राप्त होता है।

४—किसी वस्तुमें कोई वस्तु डालनेसे या गरम करनेसे यदि कोई गैस या वायव्य उत्पन्न हो तब भी यह आशाकी जा सकती है कि कोई रासायनिक परिवर्त्तन हुआ है। खड़िया मिट्टीपर उदहरिकाम्लका घोल डालनेसे कर्बनद्विओषिद गैस निकलने लगती है। इसका निकलना इस बातका प्रमाण है कि दोनों पदार्थोंके बीचमें कोई रासायनिक परिवर्त्तन हो रहा है। सैन्धक-गन्धित पर उस अम्लके डालनेसे गन्धक-द्विओषिद गैस निकलती है अतः यहाँभी रासायनिक परिवर्त्तन हो रहा है।

५—कभी कभी रासायनिक परिवर्त्तनमें कोई अवक्षेप तो नहीं प्राप्त होता है पर रंग बदल जाता है जो कभी कभी इस परिवर्त्तनका सूचक होता है। तूतियाके घोलमें संपृक्त अमोनियाका घोल अधिक डालनेसे चटकीला नीले रंगका घोल प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ रासायनिक परिवर्त्तन होरहा है।

मिश्रण और यौगिक

यदि लोहेके चूरे और गन्धकको पीसकर खूब मिला दिया जाय तो जो वस्तु प्राप्त होती है उसे लोहे और गन्धकका मिश्रण कहेंगे। इस मिश्रणका रंग कुछ हरा प्रतीत होता है। साधारणतया लोहे और गन्धकके कण दिखाई नहीं पड़ेंगे पर वास्तवमें दोनोंके कण पास पास विद्यमान हैं। एक अच्छे सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा इसकी परीक्षाकी जा सकती है। शक्तिमान चुम्बकको यदि इस मिश्रणके पास लाया जाय तो यह चुम्बक लोहेके कणोंको अपनी ओर खींच लेता है और गन्धकके कण अलग रह जाते हैं। इस तरह लोहेको गन्धकसे अलग किया जा सकता है। कर्बन द्विगन्धिदमें इस मिश्रणका घोल बनाकर छाननेसे लोहेके कण छन्नेके ऊपर रह जायगे और गन्धक कर्बन-द्वि-गन्धिदमें

घुलकर नीचे चला आवेगा। इस तरहसे भी गन्धक और लोहे के कण पृथक हो सकते हैं।

पर यदि लोह और गन्धकके मिश्रणको हम इतना गरम करें कि मिश्रण लाल हो जाय तो ठण्डा करने पर काला ठोस पदार्थ प्राप्त होगा। यह भी लोहा और गन्धकसे मिलकर बना है, पर अच्छे से अच्छे सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा भी दोनोंके अलग अलग कण दिखाई नहीं पड़ सकते। कितना ही शक्तिमान चुम्बक क्यों न हो वह इस काले ठोस पदार्थमेंसे लोहेको नहीं खींच सकता है। कर्बन-द्विगन्धिद द्वारा घोल बनाने पर भी लोहा और गन्धक अलग नहीं किये जा सकते हैं। इस प्रकार लोहे और गन्धक-में दो प्रकारका मेल हो सकता है। एक तो जिसमें लोहे और गन्धकके कण अलग अलग रहते हैं और साधारण साधनोंसे ही अलग किये जा सकते हैं। इस प्रकारके मेलको मिश्रण कहते हैं (मिश्रणके पदार्थोंको पृथक करनेकी विधि विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृ० १९३ पर देखो)। दूसरे प्रकारके मेलमें दोनों पदार्थोंके कणोंमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है कि वे साधारणतया पृथक् नहीं किये जा सकते हैं। इस प्रकारके मेलको संयोग कहते हैं और संयोगसे प्राप्त पदार्थको यौगिक कहते हैं। लोहे और गन्धक-के मिश्रणमें लोहे और गन्धक दोनोंके गुण विद्यमान हैं पर इन दोनोंके यौगिकमें न तो लोहेके गुण दिखाई पड़ते हैं और न गन्धकके। एक तीसरी ही वस्तु बन जाती है जिसे हम लोह-गन्धिद कह सकते हैं। इसके गुण मूल पदार्थोंसे सर्वथा भिन्न होते हैं।

मिश्रण और यौगिकमें एक और भी भेद है। एक सेर लोहा २ सेर गन्धकके भी साथ मिश्रण बना सकता है और चार सेर गन्धकके साथ भी मिश्रण बना सकता है। तात्पर्य यह है कि लोह-गन्धक मिश्रण बननेके लिये लोहे और गन्धकके परिमाणोंमें कोई अनुपात निश्चित नहीं है। पर यौगिकोंके विषयमें यह बात नहीं है। ५६ सेर लोहेके लिये लोह-गन्धिद यौगिक बनानेके हेतु ३२ सेर गन्धककी ही आवश्यकता पड़ेगी, न इससे कम और न इससे अधिक। इस प्रकार मूल पदार्थ निश्चित अनुपातमें ही यौगिक बना सकते हैं।

प्रकृति अविनाशी है

रसायन शास्त्रका मुख्य आधार इस सिद्धान्त पर है कि प्रकृति अविनाशी है। यह ठीक है कि वस्तुओंमें परिवर्तन होता रहता है, एक पदार्थ बदल कर दूसरा पदार्थ बन जाता है। पर वास्तविक मात्रा वही रहती है। केवल परमाणु एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चले जाते हैं। हम कह चुके हैं कि मात्रा वह है जिसमें भार हो। अतः प्रकृतिका सबसे स्थायी गुण भार है। यह कभी नहीं हो सकता है कि एक छटांक प्रकृतिके परमाणुओंसे दो छटांककी वस्तु बन जाय। जो भार रासायनिक-संयोगके पूर्व दो पदार्थोंका था वही भार संयोगके पश्चात् भी नये बने हुए पदार्थोंका रहेगा। ७ सेर लोहा और ४ सेर गन्धकके मिलाने से ११ सेर ही लोह-गन्धिद बनता है। यद्यपि लोह-गन्धिदमें लोहे और गन्धक दोनोंके गुण विद्यमान नहीं हैं तो भी इस यौगिकके भारमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति ने अपने गुण परिवर्तित कर दिये हैं पर उसका नाश नहीं हुआ है।

दीपक को हम जलते हुए देखते हैं तो हमको यह जान पड़ता है कि तेल और बत्ती दोनों नष्ट होते जा रहे हैं। पर यदि विचार पूर्वक परीक्षा की जाय तो पता चलेगा कि ये दोनों अपना रूप ही बदल रहे हैं। कुछ धुआँ बन रहा है, कुछ ऐसे पदार्थ बन रहे हैं जो साधारणतया हमें दिखाई नहीं देते हैं। इसी प्रयोगको सावधानीसे करने पर पता चलेगा कि इसमें तीन वस्तुएं काम कर रही हैं, तैल, बत्ती और वायु। बत्तीके जलनेसे

इतनी चीजें बन रही हैं—धुआँ, कर्बन-द्विओषिद, और पानी। यदि तैल बत्ती और वायुका भार जलानेसे पूर्व ज्ञात हो, और जलाने के पश्चात् भी हम प्रत्येक पदार्थको जो संयोग द्वारा उत्पन्न हुए हैं, इकट्ठा करके तोलें तो हमको दोनों भारोंमें कोई अन्तर नहीं मिलेगा। समीकरण द्वारा यह बात इस प्रकार दिखाई जा सकती है :—

तैल + बत्ती + वायु = धुआँ + कर्बनद्विओ-षिद + जल

इससे यह स्पष्ट है कि परिवर्त्तनशील होते हुए भी प्रकृति अविनाशी है।

तत्व और यौगिक

संसारके सब पदार्थोंकी परीक्षा करनेपर विदित होता है कि उनके दो विभाग किये जा सकते हैं। कुछ पदार्थ तो ऐसे हैं जिनका सूक्ष्मसे सूक्ष्म विभाग करनेपर और उनपर रासायनिक क्रिया किये जानेपर भी दो भिन्न पदार्थ नहीं पाये जासकते हैं। उदाहरणतः सोनेको लेकर हम उसके कणोंके चाहें कितने ही छोटे टुकड़े क्यों न करें, हमें सोनेके अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं मिलेगा। इसी प्रकारकी अवस्था चाँदी, ताँबा, कर्बन, ओषजन, पारद आदि वस्तुओंकी है। इनके छोटेसे छोटे टुकड़े करने पर भी भिन्न पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते हैं। इस प्रकारके पदार्थ जो दो अधिक भिन्न गुणों वाले पदार्थोंमें विभाजित नहीं किये जा सके हैं, तत्व कहलाते हैं।

दूसरे प्रकारके पदार्थ वे हैं जो कई तत्वोंसे मिलकर बने हैं। इन पदार्थोंमें से ये तत्व किसी न किसी विधिसे अलग किये भी जा सकते हैं। इन्हें यौगिक कहते हैं। कर्बन-द्विओषिद एक यौगिक है जो कर्बन और ओषजन नामक दो तत्वोंसे मिलकर बना है। इसी प्रकार नमक भी एक यौगिक है क्योंकि इसमें सैन्धकम् और हरिन् नामक दो तत्व विद्यमान हैं। शक्करमें तीन तत्व-कर्बन, ओषजन और उदजन हैं। इस प्रकार तत्व अविभाजनीय पदार्थ हैं और यौगिक विभाजनीय पदार्थ हैं।

संसारमें तत्वोंकी संख्या लगभग ६२ के है। इसमेंसे कुछ तत्व साधारण तापक्रमपर ठोस हैं, कुछ द्रव और कुछ वायव्य।

ठोस तत्व	द्रव तत्व	वायव्य तत्व
आञ्जनम्	पारदम्	ओषजन
कर्बन		नोषजन
कोबल्टम्		अरुणिन्
खटिकम्		हरिन्
गन्धक		नैलिन्
ताम्रम्		प्लविन्
दस्तम्		आदि
रजतम्		
स्वर्णम्		
आदि		

इसी प्रकार कुछ तत्व धातु हैं, कुछ उपधातु और कुछ अधातु हैं। अधिकांश तत्व धातु हैं जैसे अञ्जनम्, कोबल्टम्, खटिकम्, ताम्रम्, दस्तम्, रजतम्, स्वर्णम्, पारदम् आदि। कर्बन, गन्धक, ओषजन, हरिन् आदि तत्व अधातु हैं। शैलम्, संक्षोणम् आदि तत्व उपधातु हैं, अर्थात् इन तत्वों में धातु और अधातु दोनोंके गुण विद्यमान हैं।

इन तत्वोंमें से अधिकांश तत्व तो संसारमें यौगिक अवस्थामें पाये जाते हैं। परन्तु फिरभी अवश्य कुछ ऐसे हैं जो तत्व रूपमें भी उपलब्ध होते हैं। वायुमें ओषजन और नोषजन तत्व-रूप-में विद्यमान हैं। ज्वालामुखी पहाड़ोंके निकट स्वच्छ गन्धक भी मिल जाता है। कर्बन भी हीरेके रूपमें खदानमें पाया जाता है। स्वर्णम्, रजतम् और पारदम् भी कहीं कहीं स्वच्छ रूपमें मिलते हैं। पर तत्वोंकी अपेक्षा यौगिक ही अधिक पाये जाते हैं। धातुएँ गन्धक, कर्बन, ओषजन, हरिन्, प्लविन्, स्फुर आदि तत्वोंके साथ मिली हुई पायी जाती हैं। संसारमें कर्बन, उदजन, और ओषजनके बने हुए सहस्रों यौगिक

विद्यमान हैं। पृथ्वीके पृष्ठपर तत्त्व लगभग निम्न-अनुपातोंमें पाये जाते हैं:—

ओषजन—	४४ से ४८·७ प्रतिशतक तक
शैलम्—	२२·८ से ३६·२ "
स्फटम्—	६·६ से ६·१ "
लोहम्—	६·६ से २·४ "
खटिकम्—	६.६ से ०·६ प्रतिशतकतक
मगनीसम्—	२·७ से ०·१ "
सैन्धकम्—	२·७ से २·५ "
पांशुजम्—	१.७ से ३.१ "

भिन्न भिन्न स्थानोंपर यह अनुपात भिन्न भिन्न है। भूमण्डलका अधिक भाग सामुद्रिक है जिसके जलमें ओषजन और उद्जन नामक तत्त्व विद्यमान हैं। पहाड़ोंमें शैलम् तत्त्वकी अधिक मात्रा है।

तत्वों के संकेत

इन तत्वोंके इतने बड़े नामोंका प्रयोग करना बड़ा कठिन कार्य्य है इसलिये प्रत्येक तत्त्वका एक संकेत बनाया गया है। इनके उपयोग से जोलाभ है वह आगे बताया जावेगा। ये संकेत चिह्न बहुधा तत्त्वोंके नामोंके प्रथम-अक्षर हैं, कहीं कहीं आवश्यकता पड़नेपर अन्य अक्षर संकेत मान लिये गये हैं। हम यहां मुख्य तत्त्व और उनके संकेत देते हैं।

	तत्त्व	संकेत
१	अरुणिन्	रु
२	आञ्जनम्	आ
३	उद्जन	उ
४	ओषजन	ओ
५	कर्बन	क
६	कोबल्टम्	को
७	खटिकम्	ख
८	गन्धक	ग
९	टंकम्	टं
१०	ताम्रम्	ता
११	दस्तम्	द
१२	नकलम्	न
१३	नैलिन्	नै
१४	नोषजन	नो
१५	परदौप्यम्	प
१६	पारदम्	पा
१७	पांशुजम्	पां
१८	प्लविन्	प्ल
१९	भारम्	भ
२०	मगनीसम्	म
२१	मांगनीज़	मा
२२	रजतम्	र
२३	रश्मिम्	मि
२४	रागम्	रा
२५	लोहम्	लो
२६	वंगम्	व
२७	विशद	वि
२८	शैलम्	शै
२९	संक्षीणम्	क्ष
३०	संदस्तम्	सं
३१	सीसम्	सी
३२	सैन्धकम्	सै
३३	स्तंशम	स्त
३४	स्फटम्	स्फ
३५	स्फुर	स्फु
३६	स्वर्णम्	स्व
३७	हरिन्	ह

इन संकेतोंसे बड़ा लाभ है। दो या अधिक तत्त्वोंको साथ लिखदेनेसे हमारा तात्पर्य्य उस यौगिकसे होता है जो उन तत्त्वोंसे मिलकर बना है। इस प्रकार ताम्रओषिदको हम (ता ओ) लिखेंगे क्योंकि यह ताम्र और ओषजनका यौगिक है। लोह गन्धिदका संकेत (लो ग) है। इस प्रकार बड़े बड़े यौगिकों को हम इन संकेतों द्वारा थोड़ेसे स्थानमें लिख सकते हैं।

इन संकेतोंका प्रयोग समीकरणोंके रूपमें भी किया जाता है जिनसे हम रासायनिक प्रक्रियाओं

को भली प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं। यह कहा जा चुका है कि जब लोहा और गन्धक गरम किया जाता है तो लोह गन्धिद नामक यौगिक बनता है। इस प्रक्रियाको हम इस प्रकार लिख सकते हैं:—

लो + ग || लो ग

पारद-ओषिदको गरम करनेपर हमें पारद और ओषजन प्राप्त होता है। यह बात समीकरण द्वारा इस प्रकार दिखाई जा सकती है:—

पा ओ = पा + ओ

इसी प्रकार आगे पता चलेगा कि समीकरणों और संकेतोंका उपयोग रसायन विज्ञानके लिए कितना आवश्यक है। पहले यह कहा जा चुका है कि प्रकृति अविनाशी है। अतः यह भी ध्यान रखने योग्य है कि समीकरणोंके दोनों ओरके भार समान होने चाहिये। यह प्रत्यक्ष है कि उपर्युक्त समीकरणमें (पा ओ) अर्थात् पारदओषिदका भार पा (पारद) और ओ (ओषजन) के बराबर ही है।

धुनायी

[ले०—श्री पं० औ० एस० पथिक, बी० ए०, बी० काम]

साधारणतः यह ख़याल किया जा सकता है कि धुनायीका काम तो बड़ा आसान है। इसे तो एक मामूली आदमी भी आसानीसे कर सकता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। वस्त्र-निर्माणके उद्योगमें धुनायीका कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। फिर जो व्यक्ति गृहशिल्पमें उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें तो सबसे पहले इस हुनरको सीखना चाहिए। धुनायीका कार्य वस्तुतः इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसका जितनी कुशलतासे उपयोग होगा अर्थात् रुई अच्छी तरहसे धुनकी जायेगी, उससे उतना ही अच्छा सूत तैयार होगा। इसलिये जो व्यक्ति औद्योगिक संगठन करना चाहते हैं, तथा जो मजदूर इस उद्योगके बलपर कमाना चाहते हैं, उन्हें अच्छे धनुये अवश्य ही चाहिएँ। पर अच्छे धनुये कहाँ रक्खे हैं? बाजारू धनुये तो किसी उपयोगके नहीं होते, जबतक कि अपनी निरीक्षणतामें उन्हें न बनवाया जाये। इसका बनाना अत्यंत सरल है। इस देशमें प्राचीन कालमें जिस प्रकार धनुषका प्रचार रणक्षेत्रके लिए रहा है, उसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्रमें धनुयेका भी रहा है। किसी किसी अंशमें दोनोंमें समता भी है। इस धनुयेको बनानेके लिए पहले धनुष चाहिए। धनुषको डांडी भी कहते हैं। इस डांडीके मुड़े हुए हिस्सेको माथा कहते हैं। यह डांडी सागवान अथवा ठोस बाँस जैसी लकड़ीकी होती है। इस डांडोका नाम धनुष इसलिए पड़ा कि वह धनुषा कार—गोल बनायी जाती है। डांडीकी बायीं ओर दो इंचका फासला छोड़कर तेरह इंच चौड़ा और एक इंच लम्बा सागवानकी लकड़ीका कुंदा लगाया जाता है। यहां, यह याद रखना चाहिए कि कुन्देके दोनों ओर छेद होते हैं। इस कुन्देको डोरीसे डंडेके साथ बड़ी मजबूतीसे बांधते हैं। इस कुन्देका आवरण डंडीकी ओर मोटा और दूसरी ओर पतला होता है। इसके उपरांत तांत लगायी जाती है। यह विशेषतः बकरीके अंतड़ियोंकी बनती है। परन्तु जो बड़े धर्मभीरु हैं, वे चाहें तो दूसरी चीज़ोंका उपयोग कर सकते हैं। कुछ भी हो, तांत पतली और मजबूत होनी चाहिए। कारण, वह जितनी ही पतली होगी उतना ही अच्छा उससे धुनका जा सकेगा। प्रायः दस तारों की तांत बनाते हैं। तार लगानेपर उसकी आजमाइश सितार की तरह की जाती है। इससे तारोंका ढीले व तंग होना विदित होता है। तांत और कांकरकी डोरियोंमें बांसकी सलाइयां लगाई जाती हैं। इन सलाइयोंको डोरियोंमें

बल देकर लगाना पड़ता है। धनुयेके माथेपर चमड़ेकी पट्टी भी लगाते हैं। इसे भीतरसे निकालकर बाहर खूब मज़बूतीसे लपेटते हैं। भीतर और बाहरकी ओर कीलें भी जड़ दी जाती हैं। माथेके सिरेपर गोलसा जो हिस्सा खाली होता है वह इस पट्टीसे बराबर हो जाता है। माथेकी गोलाईके समीप प्रायः आध इंच ऊँची बांसकी एक कील लगाई जाती है, जिससे तांत और चमड़ेकी पट्टी खिसकने न पावे।

इस धनुये को धुनाई के समय ढलुआं रखते हैं। धनुयेको इस प्रकार रखनेके लिए उसे इस प्रकार बांधते हैं, जिससे वह डांडीके द्वारा लटका रहता है। धुनकनेके समय यह डांडी धुनकने वालेकी छाती तक रहती है। डोरीकी गांठ बड़ी ढीली रक्खी जाती है जिससे धनुआ आसानीसे खिसकाया जा सके। बाजारू पिंजारे धरती या ख़राब वस्त्रपर रुई रखकर धुनकते हैं। इससे रुईमें मिट्टी इत्यादि लग जाती है। इस लिए रुईको स्वच्छ रखनेके लिए उसे सदैव साफ़ चटाइयोंपर रखनी चाहिए। धनुयेके नीचे भी चटाई बिछी होनी चाहिए। पतले सरकंडोंकी चटाई अधिक वाञ्छनीय है। सरकंडोंको सूतसे बांध कर चटाई आसानीसे बन सकती है। खपाचियों के धनुषसे धनुयेको बांधते हैं जिससे वह आसानीसे ऊँचा नीचा हो सकता है। इस प्रकार यह संक्षेप में धनुयेका वर्णन है। इसमें एक दो स्थानपर चमड़ेका वर्णन भी आया है। गृहशिल्पके धार्मिक प्रेमी लकड़ीके छोटे २ नवीन धनुओंसे काम ले सकते हैं जिनमें चमड़ा ज़रा भी नहीं लगता है। लेकिन तांत तो चमड़ेकी ही उपयोगी है।

यदि पतंगके मांजेकी तरह सूत इत्यादिमें मोम लगा कर महीन तांत बन सके तो और भी अच्छा है। छोटे धनुओंकी आवश्यकताएं पूर्ण होनी चाहिए। निःसन्देह छोटे धनुयें सितारसे भी अधिक आनन्द देते हैं। सितारसे-आनन्दके सिवा स्वर्गीय आनन्दही सही—उत्पादन कुछ नहीं होता है। पर इससे तो सहज हीमें दोनों कार्य सम्पादन होते हैं। सितारकी तरह धनुयेमें भी तांत चढ़ानेमें पूरी जानकारी चाहिए। बाजारमें तांतकी आंटी आती हैं। तांतके सिरेको किसी वस्तुसे बांधकर डांडीपर आगेसे अपनी ओर ही लपेटते हैं। इस प्रकार चमड़ेकी पट्टी और कुन्देके आख़ीरतक तांत लपेटी जाती है। तांतके दूसरे सिरेपर रुईकी एक गोली रखकर गांठ लगा दी जाती है। यह छोर कुन्देसे पांच इंचके फासलेपर रहता है। इस प्रकार लपेटनेके उपरांत तांतको खिसका करके ठीककर लेते हैं। एक सिरेको डंडीके साथ बँधी हुई डोरीके छेदमें अटकाते हैं। इसके बाद धनुयेको ठीक अपने सामने रख करके डांडीका कुन्दा पैरसे दबाते हैं, और तातमें एक हाथ लम्बी मजबूत लकड़ी लगाकर उसे दोनों हाथ की अंगुलियोंसे पकड़कर कुन्देको अंगूठेसे दबा तांतको उसपर चढ़ा देते हैं। तांतके सिरेकी गांठ कोनेपर रहती है। धनुयेके माथेपर तांतकी कुछ लपेटन अलग रक्खी जाती है क्योंकि आगेका हिस्सा टूटनेपर इसमेंसे खिसकाकर बराबर कर दिया जाता है। गांठके पास तांतकी दुहरी लपेटन दी जाती है। इस प्रकार जिस तरकीबसे तांतको चढ़ाते हैं, उसी तरकीबसे उतारते भी हैं। उसके उतारनेपर डांडीपर लिपटी हुई तांतको बायी ओर सरकाकर तंग करके चढ़ाते हैं।

कपासको धुनकनेके पूर्व धूप दी जाती है। पर इसके पहले उसे लकड़ीसे झटका लेना चाहिए। गांठवाली कपास ज्यादा झटकनी पड़ती है। धुनकनेके समय बायें हाथसे धनुयेकी डांडीको पकड़ते हैं और उस स्थानके ठीक सामने तांतपर दाहिने हाथसे घोटा मारते हैं। यह अंतर बड़े धनुओंमें प्रायः ६ इंच और छोटे धनुओंमें ३ इंच होता है। छोटे धनुओंमें छटांक २ भर कपास लेकर धुनकते हैं। परन्तु बड़े धनुओंमें इसकी

दुगनी तिगुनी कपास होती है। पहले तांतको कपासमें रखकर भीतरही फटकारते हैं। इस फटकारसे कपास अलग अलग हो जाता है। उसकी गांठें भी जुदा हो जाती हैं। फटकारके समय तारपर रुई नहीं लिपटी हुई रहनी चाहिए। यदि चिपट जाये तो तुरंतही फटकारसे उड़ा देनी चाहिए। तांतकी चिकनाहटसे रुई उसमें चिपकती है इसलिए मिट्टी वगैरः लगाकर तांतकी चिकनाई दूरकर देनी चाहिए। गीली कपास तांतमें ज्यादा चिपकती है। भीतरी फटकारके बाद फिर उलट करके फटकार दी जाती है। यह होनेपर एक झटकेसे तांतपर सारी रुईको धुनक धुनक करके आगेकी ओर उड़ाते हैं। इसके बाद फिर लकड़ीसे रुई एकत्र करके धुनकते हैं। इस बार उसका दूसरा हिस्सा बाहर निकालते हैं। इस प्रकार एक दो बार और ठीक तौरसे धुनकनेपर रुई पूनीके लायक हो जाती है। रुईको ज्यादा धुनकनेसे किनकियां पड़ जाती हैं। ऐसी रुईकी अच्छी कताई नहीं होती है। इस रुईको हाथसे उठानेपर मैली होने और दब जानेकी आशंका है इसलिए लकड़ीसे उठाकर स्वच्छ चटाईपर रखते हैं। अपने भण्डारमें धुनकी रुईकी तुरंत पौनी बनानी अधिक वांछनीय है। जैसी रुई धुनकती जाये, वैसीही उसकी पौनी बननी चाहियें। क्योंकि उसमें बड़ी जल्दी नमी लगती है। अच्छा सूत तैयार करनेकी दृष्टिसे इसमें सुविधा है कि धुनाई, पौनी बनाई और कताई क्रमसे होती चली जायें। जिस दिन रुई काती जाये उसी दिन पौनी बननी चाहिए। क्योंकि ताज़ी पौनीके तंतु नहीं मुर्झाते हैं। पौनीके लिए १२ इंच लम्बी एक पतली लकड़ी लेते हैं। यह लकड़ी सलाईके मानिन्द होती है। पौनी साफ खरखरे पत्थर या ऐसीही किसी दूसरी वस्तुपर बनायी जाती है। पौनी बनाने केलिए सलाईसे थोड़ी रुई लेकर बराबर करते हैं। रुई बराबर होनेपर सलाई फेरते हैं। यदि एक वारके फेरनेसे रुई अच्छी तरह न लिपटे तो फिर धीरेसे सलायी घुमानी चाहिए। रुई लिपट जानेपर पौनीको दाहिने हाथकी हथेलीसे दबाकर बायें हाथसे सलायीको निकाल लेते हैं। पौनी बहुत भारी व लम्बी न होनी चाहिए। पौनियाँ सर्दीसे बचानेके लिए कागज़में लपेटकर बक्समें रखनी चाहिए।

ऊपर हम धनुषका वर्णन कर आये हैं। यह धनुष बांसको मोड़कर बनाया जाता है। हरे बांसको मोड़कर धूपमें सुखाते हैं। बांस मुड़ा हुआ रहनेके लिए किनारोंपर डोरी बांध देते हैं। कुछ रोज़ बाद बांस सूख जानेपर डोरीके स्थानपर तांत बांध दी जाती है। इसमें हरकत देनेके लिए जो घोंटा लकड़ीका बनता है, उसमें माथेकी ओर ज्यादा ढलावा न होना चाहिये इस धनुषसे हर एक आदमी बड़ी आसानीसे घरमें भी धुनायी कर सकता है। धनुषमें तांत न सरकनेके लिए उसके दोनों कोनोंपर छेद करके तांतकी मजबूत गांठें दी जाती हैं। यह घोंटा अकसर लकड़ीका बनता है। आजकलकी हलचलमें यह घोंटा ठीक लड़कोंके खेलनेके बेंडलोंके समान बनता है। इसका बीचका हिस्सा मोटा होनेपर भी दोनों सिरोंपर कम मुटाई रक्खी जाती है। तांतमें पूरी हरकती देनेके लिए चलाते समय वह सीधा रक्खा जाता है। यह घोंटा बबूल, सीसम और इमलीका भी बनता है। वह ऐसी लकड़ीका बनाया जाये जो वजनदार हो, और उसकी हरकतसे तांतमें अधिक गर्मी न पहुँचे। इसके अतिरिक्त कांकर बकरेके बहुत पतले चमड़ेकी बननी है। यह डांडीके साथ बांधी जाती है। इसकी लम्बाई प्रायः कुन्देकी गोलाईके आधे भागतक पहुँचती है। कुन्देकी कुछ दूरीपर छेद करके कांकरका एक सिरा बांधते हैं और, दूसरे सिरेको दुहरा कर उसमें एक बांसकी सलायी रख कर उसे रस्सीसे डांडीमें बांधते हैं। यह कांकर कुन्देके किनारेसे कुछ अधरपर रहती हैं क्योंकि मध्यमें जीभ रहती है। यह जीभ भी कांकरके टुकड़ोंको

एकत्र करके बना दी जाती है। धनुयेमें जो आवाज़ होती है, उसका कारण यही है कि तांत का इससे संघर्ष होने पर मधुर ध्वनि निकलती है। इससे सहजहीमें यह पहचान होती है कि तांत ठीक लगी है या नहीं।

इस सीधे सादे धनुयेके ही सहारे नये धनुयेकी बनियाद पड़ी। खोजके अनुसार धनुयेंका रूपान्तर होता चला गया। आरम्भमें लकड़ीकी नादको नुकीले-तारोंसे आच्छादित किया। इस पर लकड़ीका बेलन लगाया। उसके सिरोंपर चारों ओर तार जड़ा। यह बेलन जमीनपर अवस्थित वस्तु स्टैंडपर लगाया गया जिसमें हेंडल भी लगा था। जब नादके तारोंपर कपास रक्खा जाता तब बेलन नीचे चला जाता और उसके नुकीले तार नादके तारोंसे आकर मिल जाते। इस प्रकार इस कलसे काम लिया जाने लगा। पर इतनेपर भी रुई बादमें साधारण धनुयेसे साफ़की जाती। इसके बाद बेलन और नाद बदल दिये गये। छोटे बेलनके स्थानपर लकड़ीका बड़ा सिलेंडर लगाया गया और सिलेंडरके ढँकनेके लिए नादके बजाय कम चौड़ी खपाचियां लगायी गयी जिससे सिलेंडरका ऊपरी हिस्सा ढंक जाये। सिलेंडर और खपाचियां दोनों ही नुकीले तारोंसे जड़ी गयीं। खपाचियोंकी नोकें नीचेकी ओर रक्खी गयीं जिससे चलानेके समय दोनों जुड़े रहें। इस कलने ५ या ६ × ३ फीट का स्थान लिया। इससे ज्यादा तादाद में कपास धुना जाने लगा। जब कपास सिलेंडरसे आकर लगता, तब वह चलाकर हटा दिया जाता। इस प्रकार खपाचियोंका कपास ज्योंही सिलेंडरसे स्पर्श होता, त्योंही हेंलडके घुमाते वह धुनक जाता। परन्तु, रुई फिर भी हाथके धनुयेसे साफ की जाती। अबतक इस कलमें एक ही सिलेंडरका उपयोग हुआ था। पर आर्कराइटने बड़े सिलेंडरके साथ साथ एक छोटे सिलेंडर लगानेकी योजनाकी। इस छोटे सिलडरका संबन्ध बड़े सिलेंडरसे किया। जब यह हाथसे धीरे धीरे घूमने लगा तब उन्होंने शक्तिसे काम लिया। धुनाईकी इस कलकी घिरनी और खपाचियां लकड़ीकी थीं। आर्कराइटने इस कलमें अपने अनुभव द्वारा आगे और भी सुधार किया जिसे कलकी अत्यंत उपयोगिता बढ़ गयी। उन्होंने धुनी हुई रुईको साफ करनेके लिए कलमें कुछ परिवर्त्तन किया। अन्तमें इस कलमें यहां-तक सुधार हुआ कि उससे पौनीतक बन कर निकलने लगी।

वर्त्तमान कारखानोंकी धुनाईकी कलोंमें आरम्भिक कलोंसे अत्यधिक अन्तर है। यद्यपि इनका निर्माण आरंभिक कलोंसे हुआ है, तथापि आजकल तो इतना परिवर्त्तन हुआ कि सब कलें धातुकी बन गयी हैं। सुतरां उनका कोई भी हिस्सा विना धातुका बना हुआ नहीं है, बड़े सिलेंडर—बेलनका व्यास चालीससे पचास इञ्चतक होता है और ३९ से ५० इञ्च चौड़ाई होती है। पहले यह ढाला जाता है फिर खरादमें बड़ी होशियारीसे घुमाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सिलेंडर एकही नापके तैयार होते हैं।

वेष्टित तार सिलेंडरके चारों ओर पेचीले लिपटे होते हैं। यह इतने लपेटे जाते हैं कि सारा हिस्सा ढंक जाता है। सिलेंडरमें छेद करके छोटी छोटी खूंटियां भी तारमेंसे निकालकर लगायी जाती हैं। इस प्रकार जब तार पूर्ण रूपसे वेष्टित हो जाता है तब सिलेंडरपर सहस्रों तारकी नोकें दिखाई देती हैं। इसपर ही कपासके रेशोंकी सफ़ायी होती है। सिलेंडरका वज़न करीब आध टन होता है। यह दो सौ बीस चक्कर एक मिनटमें करता है। कपास तारकी नोकोंपर पहुँचतेही साफ हो जाता है। यह तारकी कंघी पतले और धुंधले कपासको भी साफ़ करती है। कंघीपर कपास बराबर पहुँचाया जाता है। कलका चलाना अत्यन्त मनोरंजक है। मज़दूर कपासका बोझ अपने सिरपर रख करके धुनायीकी कलके कमरेमें

ले जाते हैं। यहाँ वह कलके ब्रेकेटमें कपासको रखते हैं। इस ब्रेकेटके नीचे एक घूमनेवाला रोलर होता है। इसके घूमतेही कपास सिलेंडर—चक्करके उस स्थानपर पहुँचती है जहांपर कि सहस्रों तेज चाकूकी नोकें लगी हैं। इस सिलेंडरको "लिकरइन" कहते हैं। इसका व्यास ८ या ९ इंच होता है और प्रति मिनट ३५० या ४०० चक्कर करता है, तेज चाकूकी नोकें कपासको साफ करती हैं और मुख्य सिलेंडरके पास पहुँचाती हैं। मुख्य सिलेंडरमें कपासकी धुनायी होती है। इस धुने हुये कपासको नुकीले तारोंकी कंघी साफ करती जाती है। यहांसे रुई मध्यमें अवस्थित स्पातके प्लेटपर पहुँचती है। यहाँपर दो चक्कर उस रुईको फिर भेजते हैं। ये चक्कर अपने स्थानसे रुईके लम्बे टुकड़ोंको अलग अलग करके आगेकी ओर बढ़ाते हैं। इस स्थानपर यह आसानी होती है कि लम्बे टुकड़ोंको लपेट लिया जाये; अन्यथा उनके टूटनेका भय रहता है। इसके बाद रुई ब्लायलरमें पहुँचती है। जो फिर रुईको घुमाता है और बड़े टुकड़ोंको लम्बे गोल टिनमें छोड़ देता है। यहां रुई पहुँचतेही धीरे धीरे पौनीके रूपमें लिपटती हुई चली जाती है। यह स्थान जब पौनीसे भर जाता है, तब एक आदमी उसे हटाकर उसके स्थानपर दूसरा गहरा बासन रख देता है। यह बर्तन पहले स्पातका बनता था; परन्तु आजकल कागज़के बक्सोंसे काम लिया जाता है। आजकल कपासके कारखानोंमें दो प्रकारकी कलें तथा एंजिन होते हैं। पहली श्रेणीकी कलमें हलके दर्जेका कपास या रद्दी कपास धुना जाता है। इस कलमें मुख्य चक्करके अतिरिक्त साफ करनेवाले चक्कर भी होते हैं। अन्य चक्कर मुख्य चक्करके साथ तारोंसे वेष्टित होते हैं। सफ़ाईके चक्कर काम करनेवाले चक्करोंसे एकके बाद एक टेढ़ी रेखामें होते हैं। काम करनेवाले चक्करोंका व्यास छः इंचका होता है, जिनके सतहकी गति बीस इंच प्रति मिनट होती हैं। सफ़ाईके चक्करोंका ३ इंचका व्यास होता है और सतहकी गति प्रति मिनट ४०० इंच होती है। काम करनेवाले चक्कर मुख्य सिलेंडरमें कपासको धुनते हैं और वहाँसे उसे साफ करनेवाले चक्करोंके पास भेजते हैं। यह क्रिया तबतक बराबर होती है, जबतक कि कपास उतारनेवाले सिलेंडरपर नहीं पहुँचता है। काम करनेवाले और साफ करनेवाले चक्कर अच्छी पालिशकी हुई लकड़ोंके ढकनोंसे रक्षित रहते हैं। दूसरी श्रेणीकी कलमें मध्यम तथा उत्तम श्रेणीका कपास धुनका जाता है। इसमें मुख्य सिलेंडर टीनकी छड़ोंसे आच्छादित होता है। इन छड़ोंका सेक्शन ⊥ के आकारमें होता है। ये कार्ड प्लेट—लोहेकी छड़ें करीब १०० से १२० तक होती हैं। छड़ें कलकी दोनों ओर होती हैं। जिस दिशामें मुख्य सिलेंडर घूमता है, उसी ओर सबके सब छड़ घूमते हैं। छड़की दौड़ एक इंच प्रति मिनट होती है। इस प्रकार छड़ें और सिलेंडरके मध्यमें रुई धुनकती रहती है। जहांपर छड़ सिलेंडरके ऊपरी हिस्सेको नहीं ढँकते हैं, उस स्थानको स्पातके प्लेटसे ढँकते हैं। नीचेकी ओर धातुके बने हुए खाने होते हैं। कल चलानेके समय सिवा प्रकाशके हवा आना अवांछनीय है, क्योंकि उसके वेगसे रुई तितर बितर हो जाती है और पौनी भी अच्छी नहीं तैयार होती है। ऊपर जो प्लेट बताये गये हैं, वे सिलेंडरको हा नहीं ढँकते हैं वरन कलके भयानक हिस्सोंसे उसके चलाने वालों की भी रक्षा करते हैं।

वर्षा कृषि-कर्म्म

[ले०—श्री शीतलाप्रसाद तिवारी]

[लेखक की 'कृषि-शास्त्र' नामक पुस्तक से]
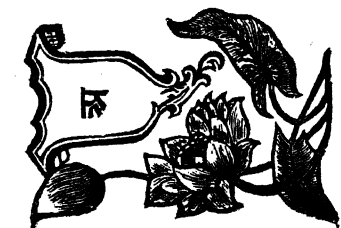
तक हमने प्रस्तुत-पुस्तक के पिछले प्रकरण में भारतीय "ग्रीष्म कृषि-कर्म्म" पर स्वतंत्रता पूर्वक वैज्ञानिकों की अनुमति के अनुसार अपना विचार प्रकट किया है। अब हम "वर्षा कृषि-कर्म्म" की कुछ आवश्यक बातों की विवेचना करके तत्पश्चात् वर्षा-ऋतु की जुताइयों के विषय में अपने देश के किसानों के हित की बात करूँगा।

यद्यपि इसमें संदेह नहीं है। कि हमने 'ग्रीष्म कृषि-कर्म्म" की एक तरह से इति श्री कर दी है। परन्तु तो भी एक ऐसी बात कहनी है। जो कि वर्षा तथा ग्रीष्म दोनों ऋतुओं के कामों से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। "जायद" की जितनी फ़सलें बोई जाती हैं; उनके खेतों की तय्यारी इसमें सन्देह नहीं है। जैसा कि हम अगले पृष्ठों में कह भी आये हैं। कि शिशिर तथा बसंत ऋतु में ही कर ली जाती है। जिससे वे ज्येष्ठ तक अवश्य ही बो दी जाती हैं; इन (जायद) फ़सलों की बुवाई फ़रवरी मार्च से ही आरम्भ हो जाती है और ज्येष्ट तक अवश्य हुआ ही करती है। इस कारण इन जायद की फ़सलों को जैसे गन्ना, बंडा, कपास, मक्का, करबी (चरी) इत्यादि की फ़सलों के लिये इनके खेतों की तैयारी समयानुसार ठीक रीति से करके ठीक सयय पर बुवाई भी कर देना चाहिये।

जिससे इन फ़सलों की तमाम आवश्यक बातों से हमारे देशवासी कृषकों को "वर्षा कृषि-कर्म्म" के समय फ़ुरसत मिली रहे—अर्थात उन्हें इन फ़सलों के विषय की कोई अड़चन न रहे। इस अड़चन से बरी रहने से हमारे किसान "वर्षा कृषि-कर्म्म" को स्वतंत्रता पूर्वक उचित रीति से करने में दत्तचित्त हो सकेंगे।

वर्षा के आरंभ होते ही किसानों को 'रबी' की फ़सलों के खेतों को तय्यार करने की धुन में मस्त होने की उतनी कोई आवश्यकता नहीं है। जितनी कि 'ख़रीफ़' की फ़सलों के बोने के लिये ख़रीफ़ के खेतों की। इसलिये किसानों को उन खेतों की सब से पहिले ठीक कर लेना चाहिये। जिसमें कि "ख़रीफ़" की फ़सलों को बोना है। इन खेतों को ठीक करके ख़रीफ़ की फ़सलों को जैसे धान, ज्वार, अरहर, बाजरा इत्यादि की बुवाई समयानुसार ठीक समय पर कर के इन खेतों के अन्यान्य कर्म्म पर तथा 'जायद' की फ़सलों के अन्यान्य आवश्यक कामों के लिये कुछ आदमियों को तैनात कर देना चाहिये, और उनके आधीन (सुपुर्द) तमाम ख़रीफ़ और जायद की फ़सलों का काम सौंप देना चाहिये। जिससे ख़रीफ़ की फ़सलों के ज़ुम्मेदार होने पर वह ख़रीफ की फ़सलों से उत्तम-श्रेणी की पैदावार प्राप्त कर लेने की धुन में फ़िक्रमन्द हो जावें।

इस प्रकार से जब परिवार-प्रधान (आला-मालिक) कुटुम्ब के एक गिरोह के ताल्लुक़ ख़रीफ़ की फ़सलों का तमाम चार्ज सौंप देगा; तो उसका यह कर्त्तव्य होगा कि अब वह उन खेतों में बरसात की जुताइयों का भी काम परिवार के किसी चतुर पुरुष के हाथों में सौंप दें। कि जिसमें 'रबी' की फ़सलें बोना है। क्योंकि जिस प्रकार से 'ख़रीफ़' और 'रबी' की फ़सलों के लिये गरमी की जुताइयाँ आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य हैं। उसी प्रकार से 'रबी' की फ़सलों के लिये बरसात की जुताइयाँ भी अनिवार्य्य (जरूरी) हैं।

इन जुताइयों का करना 'रबी' की फ़सलों के लिये उतना ही हितकर है। जितना कि गरमियों की जुताइओं का करना। इन जुताइयों के करने की अनेक वैज्ञानिक प्रणालियाँ तथा रीति रिवाजें और प्रथायें हैं। जिनका कि सदुपयोग हमारे देश के किसानों को भी अन्य देश के किसानों की भांति करना वर्त्तमान काल में अनिवार्य्य रूप से आवश्यक हो गया है। अब हम तमाम वैज्ञानिक प्रथाओं तथा रीति रिवाजों का वर्णन करूंगा। जो कि बरसात की जुताइयों के लिये लाभदायक तथा अनिवार्य्य हैं।

पहिले ही लहरा के पड़ते ही—अर्थात् वर्षारम्भ के साथ ही वे तमाम खर-पतवारों के बीज जो कि खेतों में किसी प्रकार से जीवित रह जाते हैं, नमी के पाते ही जम आते हैं; इनके उगने और उग कर बढ़ने से खेतों के धरातल हरे-भरे होकर के लहलहा उठते हैं; जिससे वर्षा-ऋतु के आगम का संदेश सांसारिक प्राणियों को मिल जाता है; और वे अपने-अपने कामों पर डट जाते हैं। ऐसे सयम में उन किसानों का यह काम है। कि जिनके सुपुर्द 'रबी' की फ़सलों की बुवाई के लिये खेतों को तय्यार करने के हेतु "बरसात की जुताइओं" का काम उनके सुपुर्द कर दिया गया है। वे झटपट खेतों की जुताइयां वर्षा-ऋतु में आरम्भ कर दें। जिससे खेतों के सारे खर-पतवार जड़ सहित उखड़-पुखड़ कर जड़ हीन हो जावें, और धरातल की मिट्टी में दब कर सड़ गल कर हरी खाद का काम दें। यदि ऐसा न किया जायगा; अर्थात् इन खर-पतवारों के जमते ही इनको वाल्यकाल में ही नष्ट बर्बाद न कर दिया जायगा। तो यह हमारी फ़सलों को अनेकों प्रकार से हानि पहुंचावेंगे। क्योंकि ये सारे खर-पतवार, घास-फूस जो कि खेतों में उगा करते हैं। वनस्पति शास्त्रानुसार हमारी फ़सलों के कुटुम्बी होने के कारण खेत में जमा की हुई ख़ूराक के हक़दार हो जाते हैं, और फ़सलों के बीजों के बोने से पहिले ही खेतों की मिट्टी से ख़ूराक ग्रहण करके (१) एक तो फ़सलों की ख़ूराक को ही कम करने लगते हैं, जिसका फल यह होता है कि खेतों में बोई जाने वाली फ़सल के लिये पर्य्याप्त मात्रा में ख़ूराक नहीं मिलती और वे कमज़ोर ही दशा में उगते हैं, और अपनी शैशवास्था से ही जब कमज़ोर हो जाते हैं, तो यौवनावस्था में भी इतने सशक्त नहीं हो सकते। कि उन खर-पतवारों के जवान पौधों से लड़-भिड़ कर पूर्णमात्रा में खेतों से ख़ूराक ग्रहण कर सकें। जो कि बरसात के ही आरम्भ में खेतों में उगकर के

भरपूर्ण ख़ूराक ग्रहण करके सशक्त और नौ जवान हो गये हैं।

दूसरे ऐसी ही अवस्था के कारण जिन खेतों की जुताई वर्षा ऋतु में करके उन के खर-पतवारों को नष्ट-बर्वाद नहीं कर दिया जाता है। वह बलवान होने के कारण अपनी नव-जवानी में कार्तिक में बोई जाने वाली 'रबी' के बच्चा फ़सलों की ख़ूराकों को खा कर अपना कुटुम्ब बढ़ाने के लिये अपने तमाम हिस्सों को बलिष्ट बना कर के खूब उत्तम तथा मजबूत बीज पैदा किया करते हैं। जिससे 'रबी' की फ़सलों के पौधे इन खर-पतवारों के फ़सलों के पौधों के सामने कमज़ोर हो कर के पीले पड़ जाते हैं, जिससे उनसे उत्तम पैदावार हासिल हो नहीं हो सकती। ऐसी दशा में गरमियों की जुताइयों का किया हुआ श्रम भी व्यर्थ हो जाता है; ऐसी दशा में किसानों का यही कर्त्तव्य है कि वर्षारम्भ के साथ ही 'रबी' के उन तमाम खेतों को एक बार शीघ्राति शीघ्र जोत दें, जिन खेतों से कि "रबी" की फ़सलों द्वारा उत्तम-श्रेणी की पैदावार लेने की आशा कर रहे हों।

बहुत से हमारे किसान पाठक ! इस बात के जानने के लिये उत्सुकता पूर्वक लालायित होंगे। कि लेखक महोदय मुझे शीघ्र बताइये कि हम लोग इन दिनों की (बरसात) जुताइयां किस प्रकार के हलों से करें। क्योंकि आपने गरमी की जुताइयों की चर्चा में यह साफ़ साफ़ शब्दों में कह दिया है। कि इन दिनोंमें—अर्थात गरमी की जुताइयाँ मिट्टी-पलटने वाले 'मोल्ड-बोर्ड" (mould Board) हलों से ही करने में सर्बांश में लाभ है। इसी प्रकार से कृपया शीघ्र बतलाइये कि हम लोग वर्षा की जुताइयों को किन-किन प्रकार के हलों से करें। जिसकी वजह से हम गर्मी की जुताइयों की भांति वर्षा की जुताइयों से भी पूर्णतः लाभ उठा सकें। ऐसी आतुरता के समय पर चटपट हम अपने किसान पाठकों को यही राय देंगे। कि आप लोग अपने सारे खेतों को उन्हीं मिट्टी-पलटने वाले हलों से जोतना आरंभ कर दीजिये। कि जिन हलों को आपने गरमी की जुताइयों के दिनों में अपने प्रयोग और व्यवहार में लाया है— तथा साथ ही उन हलों से जुताई करने की तमाम रीति रिवाजें आपने लगभग चार महीने जुताई करके सीख ली हैं। यही राय तमाम कृषि-वैज्ञानिकों ने अपने-अपने देश के किसानों को ऐसे मौक़ों पर दी है। यही मेरी भी राय है, मेरा जहां तक ख़्याल है। यही राय भारत के तमाम कृषि—वैज्ञानिकों की भी होगी, और इसी राय के अनुसरण तथा अनुकरण में भारतीय किसानों का कल्याण है।

इसमें सन्देह नहीं है कि ग्रीष्म-ऋतु की भांति वर्षा-ऋतु की जुताइयों के लिये भी वर्तमानकाल में अनेकों प्रकार के यंत्र आविष्कृत होकर के कृषि-संसार के व्यवहार में प्रचलित हो गये हैं। जिससे तमाम देश के किसान इन यंत्रों के व्यवहार से लाखों रुपया का लाभ उठाया है, और उठा रहे हैं, और इनकी संताने भी उठावेंगी। क्योंकि वे वैज्ञानिक-साहित्य के अध्ययन में दत्त-चित हैं, और वैज्ञानिक-साहित्य का अध्ययन भली भांति कर रहे हैं। परन्तु हमारे देश वासियों का वैज्ञानिक-साहित्य की ओर अभी तक ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ है, अस्तु।

जैसा कि हमने कहा है कि गरमी की जुताइयों में जिन हलों का प्रयोग और व्यवहार किया गया है। उन्हीं हलों का प्रयोग तथा व्यवहार भारतीय किसानों को बरसात की जुताइयों के आरंभ काल से ही करना चाहिये। इनसे यथोचित रूप से पूर्णतया हमारे किसानों को लाभ ही होगा। हानि तिल मात्र की भी नहीं होगी। क्योंकि ये मिट्टी-पलटने वाले हल खर-पतवारों की जड़ों को काट देंगे, और धरातल की मिट्टी को उलट-पुलट करके गर्भतल के पास पहुंचा देंगे। जिससे ये सारे खर-पतवार सड़-गल कर हरी खाद का काम दे जावेंगे—अर्थात् हमारी खरीफ़ या रबी की फ़सलों के पौधों की ख़ूराक न छीन सकेंगे। वरना आप ही सड़-गल कर हमारे पौधों की ख़ूराक़ बन जावेंगे।

प्रिय पाठको! गरमी की जुताइयाँ करने के लिये हमने जिन-जिन हलों के व्यवहार करने की राय दी है। वे वास्तव में ही बरसात की जुताइयों के लिये भी लाभदायक हैं। पर, तो भी कुछ ऐसे और भी हल हैं। जिनका वर्णन हमने पाठकों से नहीं किया। इन हलों की भी बनावट मिट्टी-पलटने वाले हलों के ही समान है; केवल अन्तर इतना ही है। कि यह हल "मेस्टन-हल" से कुछ बड़े हैं, और अधिक गहराई तक खेतों को जोत सकते हैं। क्योंकि 'मेस्टन हल' देशी-हल के ही सदृश काम करता है, और धरातल की ही मिट्टी को उलट-पुलट सकता है। परन्तु ये हल जिनका कि वर्णन आगे किया जायगा। 'मेस्टन हल' से अधिक गहरे जाने वाले हैं। इसके सिवाय "मेस्टन हल" हलकी क़िस्म की ही (light soil) जमीनों के लिये अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। परन्तु अग्र चित्रित हल हलकी ज़मीनों के सिवाय कठोर भूमियों के लिये भी लाभकारी सिद्ध हुये हैं। दूसरी मुख्य बात यह भी है कि गरमियों में धरातल के खुले रहने से खेत के गर्भतल में भी धरातल के ही द्वारा सूर्य्य की प्रखर किरणों का तथा लूह का प्रभाव भली प्रकार से जम सकता है। इसलिये यदि ऐसे समय में (गरमी के दिनों में) खेतों का धरातल ही खोल दिया जाय। तो भी भारतीय किसानों के लिये बहुत कुछ लाभ फ़सलों की पैदावार के रूप में हो सकता है।

बरसात के दिनों में इस बात की आवश्यकता हुआ करती है कि खेतों में जमे हुये खर-पतवारों के तथा घास-फूस के सारे पौधे जड़ से ही उखाड़-पुखाड़ कर ज़मीन में दबा कर गाड़ दिये जांय। जिससे ये पौधे सड़-गल कर हरी खाद का काम दे जावें। इस काम के लिये हमें इस बात की भी आवश्यकता होगी। जो कि खेत के धरातल के सिवाय गर्भतल तक की मिट्टी को भी खोदकर उलट पलट दें। जिससे खर-पतवारों के पौधे समूल उखड़ कर गर्भतल की नमी से सड़गल कर खाद बन करके निर्मूल हो जावें। इस काम के लिये हमारे देश के किसानों को भी गरमी के दिनों में जुताई करने वाले हलों की अपेक्षा कुछ ऐसे बड़े हलों का प्रयोग तथा व्यवहार करना पड़ेगा। जो कि अग्र वर्णित (गरमी की जुताइयों के सम्बन्ध में) हलों के मुक़ाबिले में गहरी जुताई कर सकते हों। जिससे खर-पतवारों के समूल नष्ट होने के सिवाय खेत के गर्भतल तक में पर्य्याप्त मात्रा में बरसात का जल सोख (जज़्ब)

जाय। यह तभी होगा जब कि खत के गर्भतल का भी कुछ भाग खुद कर पोला हो जायगा, और वहां पर पानी भली प्रकार से मिट्टी के जर्रों में जज्ब हो सकेगा। यदि पानी भली प्रकार से इन हलों की जुताइयों के कारण खेत के धरातल तथा गर्भतल में जज्ब हो जायगा तो देख लीजियेगा फ़सलों के बीज उत्तम तथा ठीक रीति से जमकर फूल फल देंगे।

अतएव, अवश्य ही हमारे देशवासियों को इन हलों को अपने खेतों की जुताइयों के व्यवहार में लाना चाहिये। हमारे देश के सर्वसाधारण किसानों के लिये जो हल बरसात की जुताइयों के लिये उपयुक्त होंगे, उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है। संयुक्त प्रान्त वासियों के लिये तो यह हल अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुये हैं। इसलिये हमारे प्रान्त तथा देश के उन निवासियों को चाहिये कि बरसात में "वाट्स' (wats) हल का व्यवहार तथा प्रयोग अवश्य ही करें। कि जिन्होंने गरमी की जुताइयों में "मेस्टन-हल" का प्रयोग और व्यवहार किया है।

इस हल का नाम जिसका कि चित्र आगे चित्रित किया गया है वाट्स हल (wats plough) है। यह हल "मेस्टन हल" से कुछ हा भारी है। इसकी बनावट को देखने से ही पता चलता है कि इसकी बानवट बहुत कुछ 'मेस्टन-हल' से मिलती-जुलती हुई है। अन्तर केवल इन हलों के मिट्टी-पलटने वाले भाग (mould board) में तथा वाडी (body) में ही है, और इसी अन्तर के कारण यह हल मेस्टन-हल से बड़ा कहा जाता है। यह हल इस देश तथा प्रान्त में बहुत दिनों से प्रयोग तथा व्यवहार में आ रहा है। जिससे इस हल की उपयोगिता भारत देश तथा संयुक्त प्रान्त के किसानों के लिये बहुत कुछ सिद्ध हो गई है। तमाम संयुक्त

चित्र नं० ३
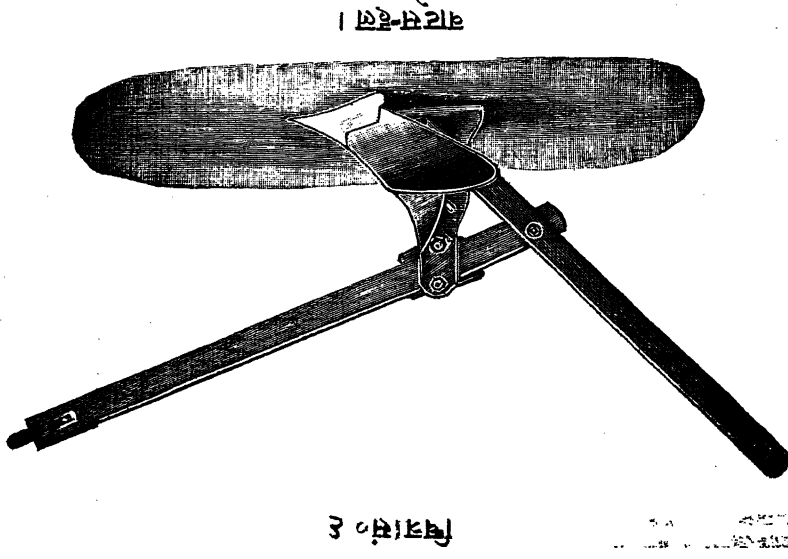
वाट्स-हल।

प्रान्त तथा देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कृषि-वैज्ञानिकों ने तथा सरकारी कर्म्म-चारियों ने जिन्होंने कि इस हल का प्रयोग और

व्यवहार अपने-अपने आधीन कृषि-फार्मों पर किया है। साफ़ साफ़ शब्दों में कह दिया है कि यह हल भी इस देश के लिये बहुत ही लाभकारी है। इस हल को भी हमारे देशवासी किसानों को गरमा तथा बरसात की जुताइयों के समय प्रयोग में लाना चाहिये, और इसके व्यवहार तथा प्रयोग से अन्य देश के किसानों की भाँति लाभ भी उठाना चाहिये।

यह हल खेत के धरातल की मिट्टी में लगभग छः इंच (दस या ग्यारह अंगुल) गहरा और पांच इञ्च के (सात या आठ अंगुल) लगभग चौड़ा कूढ़ काटकर मिट्टी को उलट-पलट देता है। जैसा कि हम कह चुके हैं। कि इस हल की बनावट बहुत कुछ मेस्टन-हल से मिलती-जुलती हुई होती हैं। परन्तु तो भी इसकी हरीस में और 'मेस्टन हल' की हरीस में बहुत कुछ अन्तर है, और वह अन्तर यह है कि "वाट्स हल" की कुछ (beams) हरीसें तो "मेस्टन-हल" की हरीस की भांति लम्बी होती हैं, और कुछ वाट्स-हल की हरीसें 'पंजाब' तथा 'टर्नरैस्ट-हल' की भांति छोटी होती हैं। जो कि लोहिया जंजीरों के द्वारा खेत को जोतते समय जुये से जोड़ी जाती हैं। छोटी हरीस वाले हलों में यही विशेषता है कि लोहिया जंजीरों के कारण बैल सरलता पूर्वक घूम सकते हैं। इस कारण उन बलों के लिये जो कि छोटी हरीस वाले हलों को जो कि लोहिया जंजीरों के द्वारा जुये से जोड़ी जाती हैं, आदी हो गये हैं। यह छोटी हरीस वाला हल बहुत ही उपयुक्त होगा। परन्तु उन बैलों के लिये जो कि देशी हलों के तथा लम्बी हरीस के मेस्टल-हल को ही जोतने के अभी तक आदी हैं। उनके लिये बड़ी हरीस वाला वाट्स हल ही उपयुक्त होगा। ऐसी सूरत में खेतों की जुताई का काम भी भली प्रकार से अच्छा ही होगा और बैलों तथा हलवाहों को भी कोई दिक़्क़त नहीं उठानी पड़ेगी।

'वर्न' कम्पनी में बने हुये 'वाट्स-हल' का मूल्य निम्न-लिखित है। पाठकों को तथा उन तमाम ख़रीदने वालों को—अथवा उन तमाम किसानों को जो कि पढ़े-लिखे हैं। चाहिये कि जब इन हलों को ख़रीदने लगें, तो इनके मूल्य की सूची दस-पाँच प्रसिद्ध प्रसिद्ध कम्पनियों से मंगा लें, और स्थानीय कृषि-विभाग से भी मूल्य इत्यादि आवश्यक विषयों के सम्बन्ध में पूंछ-ताछ कर लें। इस रीति से काम करने में सदैव लाभ ही है, हानि की कदापि भी संभावना नहीं है।

'वर्न' कम्पनी का	'वाट्स-हल' बड़ी हरीस वाला मूल्य	१५)
'वर्न' कम्पनी का	,, ,, छोटी हरीस वाला ,,	१२)
,, ,,	,, नोक का मूल्य	॥।-)
,,	मोल्ड-बोर्ड (मिट्टी-पलटने वाले भाग) का मूल्य	॥=)
	वाट्स-हल की जंजीर का मूल्य	८)

'वाट्स' तथा 'मेस्टन' हल का अन्तर।

जैसा कि हम कई बार कह और लिख चुके हैं। कि यह दोनों हल लगभग सभी बातों में और कामों में समान है; इनमें कोई विशेष

अन्तर नहीं है; केवल इन दोनों हलों की बनावट और हरीस में थोड़ा सा अन्तर है। उसका भी वर्णन हमने ऊपर कर दिया है। यह दोनों हल हल्की-क़िस्म (light soil) की ज़मीनों के लिये जैसे कि पड़वा, हल्की-दूमट तथा दूमट और बलुहरा ज़मीनों की जुताई के लिये लाभकारी हैं।

लम्बी हरीस वाला वाट्स-हल भी मेस्टन-हल की भाँति देशी हल के ठीक करने वाले किसानों के द्वारा ठीक किया जा सकता है; और इसकी मरम्मत भी देश के चतुर लुहार तथा मिस्त्री कर सकते हैं। छोटी हरीस वाले हल को सब से पहिले बड़ी हरीस वाले हल की भाँति ठीक कर लेना चाहिये, और खेत के धरातल पर रख करके देख लेना चाहिये कि यह वाट्स-हल खेत के धरातल पर ठीक रीति से एकसां है कि नहीं; जब वाट्स-हल खेत के धरातल पर एकसां बैठ जावे, तो जंजीर से जुये को जोड़ देना चाहिये। परन्तु तो भी इस बात का ध्यान बना रहे कि इस लोहिया जंजीर की लम्बाई इतनी होनी चाहिये। कि जिससे हल की नोक ऊपर को न उठी रहे। यदि जंजीर आवश्यकता से अधिक लम्बी कर दी जावेगी। तो बैलों को हलवाहों के लिये वश में रखना दुष्कर (मुश्किल) हो जावेगा।

ऐसी दशा में हल की नोक यानी फार वाला भाग जमीन में बहुत गहरा घुस जायेगा। जिससे बैलों को भी खींचने में अधिक ज़ोर लगाना पड़ेगा। जिससे अनेकों प्रकार की दिक़्क़तों के सामना करने की संभावना है। इसी प्रकार से मिट्टी-पल्टने वाले हलों को छोटी हरीस वाले हलों में न तो जंज़ीर को बहुत बड़ी ही करना चाहिये, न बहुत छोटी ही। क्योंकि इन दोनों हरकतों ही में हानि है। सदैव बैलों की छोटाई-बड़ाई के अनुसार हल की जंज़ीर को भी छोटा और बड़ा रख करके तभी जुये में जंज़ीर को लगाना चाहिये। जिससे खेत ठीक रीति से जोता जा सके और जुताई करते समय बैलों को तथा हलवाहों को किसी प्रकार का कष्ट न सहना पड़े। क्योंकि जिस प्रकार से इन हलों के व्यवहार और प्रयोग से अधिक लाभ है। उसी प्रकार से इनके जोतने के लिये तथा व्यवहार और प्रयोग में लाने के लिये चतुर और व्यावहारिक कृषि-कर्म्म में दक्ष हलवाहों तथा बैलों की भी आवश्यकता है। ये तमाम बातें—अर्थात् बैलों की तथा हलवाहों की कार्य्य पटुता थोड़े ही दिनों में या तो किसी सरकारी कृषि-फार्म पर अथवा किसी कृषि-विज्ञान-विशारद की सहायता द्वारा अपने ही फार्मों के खेतों पर थोड़े ही दिनों में बड़ी सरलता के साथ सीखा जा सकता है इसलिये इन हलों का व्यवहार और प्रयोग पहिले किसी न किसी प्रकार से सीख लेना ही किसानों के लिये लाभ-प्रद है। मिट्टी-पलटने वाले एक और "मोल्ड-बोर्ड-प्लाऊ" का वर्णन करके तब हम इन हलों का वर्णन हम कुछ देर के लिये बन्द कर देंगे। तब जुताई के अन्यान्य यन्त्रों का वर्णन करेंगे। जो कि बरसात की ही जुताइयों के लिये विशेष करके आविष्कृत किये गये हैं। इस मिट्टी-पलटने वाले हल का चित्र आगे चित्रित किया जाता है। जिसका कि वर्णन हम पाठकों को देना चाहते हैं।

इस हल का नाम 'मानसून-हल' (monsoon plough) है। यह हल भी हमारे देश के किसानों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।

चित्र सं० १०

मानसून हल।
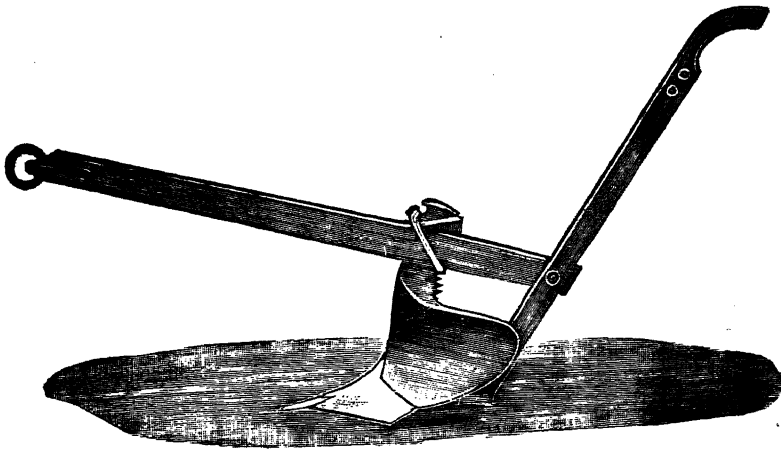
इस हल की भी बनावट तथा अन्यान्य बातें बहुत कुछ मेस्टन तथा वाट्स-हल से मिलती-जुलती है। जिससे इस हल के जोतने में बैलों तथा आदमियों को किसी भी प्रकार की नई कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा। यह हल वाट्स तथा मेस्टन-हल की भांति हल्की-ज़मीनों में (light soil) जैसे पड़वा, दूमट, हल्की-दूमट, बलुहरा के लिये उत्तम सिद्ध हुआ है। उसी प्रकार से इस हल में विशेषता यह पाई गई है। कि यह हल मटियार तथा मार काबर ज़मीन की क़िस्म के खेतों में भी भली प्रकार से व्यवहार तथा प्रयोग में लाया जा सकता है। इस हल को भी भारतवासियों को अपने व्यवहार में लाने के लिये हिचकना नहीं चाहिये। यह हल इसी उद्देश्य से बनाया ही गया है। कि इसे किसान-वर्ग हर प्रकार की ज़मीनों के जोतने के काम में लावे। दूसरे इस हल की पहली नोक यदि एक तरफ़ जोतते-जोतते घिस जावे; तो इसे पलट कर इसका दूसरा सिरा जुताई के काम में लाया जा सकता है। जिससे इसके नोक के बदलने के लिये दूसरी नोक भी जल्दी ही ख़रीदने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। ऐसी दशा में कुछ मूल्य की भी बचत भारतीय किसानों को हो सकती है।

"मानसून हल" भी जंज़ीर वाले—वाट्स-हल की भांति ठीक किया जा सकता है, और इसकी मरम्मत भी देश के लोहार और मिस्त्री जो कि देशी-हल और मेस्टन तथा वाट्स हल की मरम्मत कर सकते हैं; बिना किसी अड़चन के कर लेंगे। इसमें एक विशेषता यह भी रक्खी गई है। कि हरीस के सिरे पर एक छेददार कुन्दा लगाया गया है। जिसमें पहिले लोहिया जंज़ीर को अटका करके, तब उसे जुये में बांधना चाहिये। इस छेददार कुंदे में जंज़ीर को दाहिने या

बायें हटा देने से हल 'कूड़' से बाहर नहीं जा सकता। सब एक परेथा (कुढ़ा) (one handed plough) वाले हलों को ऐसे ही ठीक करना चाहिये। जिससे कि परेथा 'कुढ़ा' बिलकुल सीधा रहे। 'कूड़' की तरफ़ या बाहर की तरफ़ झुका न रहे। "रैनसम्" कम्पनी का बना हुआ मानसून-हल निम्नलिखित मूल्य पर मिल सकता है।

रैनसम्	कम्पनी	का	मानसून हल मूल्य	२७)
,,	,,	,,	लोहे का भाग ,,	२५)
,,	,,	,,	फार व नोक ,,	१)
,,	,,	,,	फार बिला नोक ,,	।।।)
,,	,,	,,	नोक बिना फार के	।")
,,	,,	,,	मोल्डबोर्ड का मूल्य	१।।)
,,	,,	,,	जंजीर	८)

गरमी तथा बरसात की जुताइयों के सम्बन्ध में हमने उन तमाम मिट्टी-पलटने वाले हलों का सचित्र वर्णन कर दिया है। जो कि देश-भारत के लिये उपयोगी सिद्ध हो गये हैं। इसमें दोनों प्रकार के हलों का वर्णन किया गया है। चाहे वह एक परेथा वाले (single stilt or one handed) हल हों। चाहे दो परेथा (ploughs with two stilts) वाले हल हों। एक परेथा वाले हलों का व्यवहार हमारे देश के सर्वसाधारण किसान तक कर सकते हैं। क्योंकि इन हलों के व्यवहार करने के लिये देशी-हलों के व्यवहार की ही भांति केवल एक जोड़ी बैल तथा एक हलवाहे की आवश्यकता हुआ करती है, और इन हलों का मूल्य भी कुछ विशेष अधिक नहीं है। न इनके व्यवहार करने में ही कोई विशेष अड़चन हमारे देश के किसानों को पड़ सकती है। इस कारण हमारे देश के किसानों को अवश्य ही जो कि देशी-हल का व्यवहार किया करते हैं। गरमी तथा बरसात की जुताइयों में इन हलों का व्यवहार करके लाभ उठाना चाहिये। समय आ गया है कि हम लोग भी व्यावसायिक संसार के रणांगण में उतरें, और अपने कृषि-व्यवसाय को प्राचीन काल की भांति फिर से संसार के व्यवसाय के शिखर पर पहुँचा दें।

हम उन देश के कृषि-व्यवसायियों से चाहे वह देश के आला क़ौमों के किसान हों, या कि अदना क़ौमों के, तथा ज़मीदारों और ताल्लुक़ेदारों के सिरवाहों से जो कि खेती के लिये खुले दिल रुपया ख़र्च करना चाहते हैं। यह कह देना चाहता हूँ कि अब वह मौक़े को हाथ से न जाने दें। दो परेथा वाले हलों का व्यवहार और प्रयोग अवश्य करें। इसमें संदेह नहीं कि इन हलों का मूल्य एक परेथा वाले हलों के मूल्य की अपेक्षा बहुत है। परन्तु कोई हर्ज की बात नहीं है। इनके लाभों को और समय की आवश्यकता को देखते हुये हमें खुले दिल रुपया ख़र्च कर के इन हलों को ख़रीद लेना चाहिये, और इनको अपने व्यवहार में लाना चाहिये।

ये दोनों प्रकार के हल गरमी तथा बरसात की जुताइयों के लिये काम में लाये जा सकते हैं। जिन्हें जिस हल के ख़रीदने का सुभीता हो—अथवा जिस स्थान के लिये जो उपयोगी हो, वहां के

लोगों को वही हल खरीद कर व्यवहार तथा प्रयोग में लाना चाहिये, और इन हलों को खरीदते समय अपने स्थानीय सरकारी तथा अन्यान्य कृषि-वैज्ञानिकों की सम्मति ले लेनी परमावश्यक है, इससे देश के किसानों का लाभ है।

खेतों की जुताइयों के विषय में उन तमाम हलों का सचित्र व्यवहार और प्रयोग हमने अपने पाठकों के सम्मुख सार रूप से निचोड़ करके रख दिया। चाहे वह इन हलों को अपने व्यवहार में लावें या न लावें। इसके लिये कोई भी लेखक, सम्पादक, कृषक-हितैषी, कृषि-विज्ञान वेता, सरकारी कृषि-कर्म्मचारी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। क्योंकि इन लोगों ने बहुत कुछ अपने कर्तव्यों का पालन देश के हित के लिये किया है। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय कृषि सुधार के लिये जितना प्रयत्न उक्त सांसारिक पुरुषों के समुदाय को करना चाहिये था नहीं किया है। इसलिये भारतीय कृषि-विषयक तमाम बुराइयों का दोषारोपण उन्हीं के सिरों पर मढ़ा जा सकता है। समय आ रहा है, और शीघ्र सामयिक आवश्यकताओं के पूर्णार्थ भारतवासी कर्म्म-क्षेत्र में कर्त्तव्य पालन के हेतु पदार्पण करेंगे; ऐसे समय भारतीय कृषि-व्यवसाय के सुधार का मामला आप ही आप तय हो जावेगा।

जुताई के यंत्रों (हलों) का वर्णन हमने अपनी मति के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक में जैसा करना चाहिये था वैसा कर दिया। जिसके अध्ययन से पाठक वृन्द ! बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कुछ ऐसी बातें हम अपने व्यावहारिक कृषिकारों से और कह देना चाहते हैं। जो कि इन हलों के सम्बन्ध में मुझे कहनी है। संभव है इन बातों में से कुछ बातों का उल्लेख इस पुस्तक में कहीं पर प्रसंगानुसार कर दिया गया हो। तो इस स्थान पर मुझे पुनरुक्ति का दोष एक प्रकार से क्षम्य होगा।

अभी तक हमारे देश भारत में नवीन वैज्ञानिक रीति से तैयार किये हुये मिट्टी-पलटने वाले विदेशी हलों का प्रचार यथोचित रीति से जैसा होना चाहिये था नहीं हुआ है। इस बात के अनेकों कारण हैं। जो कि देश भारत की सामयिक बाधाओं के उपस्थित हो जाने के भय से निकट भविष्य में नहीं दूर की जा सकतीं। इन कारणों में भारत की नैतिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं का बाहुल्य है। जिसके कारण इन नवीन कृषि यन्त्रों का प्रचार देश में नहीं हो रहा है। ये समग्र विघ्न-बाधायें शीघ्र ही समय के उलट-फेर से दूर हो जायेंगी, और सारे भारतवासी अन्य वैज्ञानिक यंत्रों (मशीनों) की भांति इन कृषि-यंत्रों (मशीनों) का भी व्यवहार और प्रयोग नित्य प्रति करने लगेंगे।

ऐसे समय के उपस्थित हो जाने पर इन वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों का व्यवहार और प्रयोग बहुत ही सरल बात हो जायगी। ऐसी अवस्था में हमारे देश के लोग इन सारे कृषि-यन्त्रों का व्यवहार प्रचुरता से करने लगेंगे। तब इन विदेशी कम्पनियों का कृषि-सम्बन्धी सारा सामान जो अभी तक दुकानों में पड़ा पड़ा सड़ रहा है, और बरसात में लोहिया यन्त्रों पर मुर्चा लग रहा है। खराब न होने पावेगा। वह भारतीय बाजारों में अन्य वैज्ञानिक

यन्त्रों (मशीनों) की भाँति तड़ाक-फड़ाक बिक जावेगा। जिससे एक बार विदेशी कम्पनियाँ इन कृषि-यन्त्रों की ही बिक्री की बदौलत मालामाल हो जावेंगी ; इसलिये उन्हें अभी से घबड़ाने का समय नहीं है।

धीरज धरै सो उतरै पारा, नहीं तो डूबै मंझधारा।

इस कहावत के अनुसार।विदेशी तथा स्वदेशी और भारत सरकार के राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग के कर्म्मचारियों का इस समय अभी यही कर्तव्य है। कि जिस प्रकार से हो सके उसी प्रकार से इन कृषि-यन्त्रों का प्रचार देश में करते रहें, जो कि देश के लिये उपयोगी सिद्ध हो गये हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि इन कृषि-यन्त्रों का मूल्य भारतीय किसानों की आर्थिकावस्था के सम्मुख बहुत मँहगा जंच रहा है जिससे इच्छा होते हुये भी बहुत से किसान इन यन्त्रों के व्यवहार तथा प्रयोग से बंचित रह जाते हैं। इस कारण ऐसी तमाम सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को चाहिये कि सामयिक अवस्था का अवलोकन करते हुये किसानों की आर्थिकावस्था पर भी विचार करें, तब इन कृषि-यन्त्रों का मूल्य कुछ कम कर दिया जाय। कि जिससे भारतीय किसान बिना आर्थिक कठिनाइयों के इन हलों को ख़रीद करके तब अपने कामों में ला सकें। क्योंकि इस बात की शिकायत लोगों को बहुत हो रही है कि सरकारी कृषि-डिमांस्ट्रेटर समयानुसार कृषि-मशीनें व्यवहार के लिये न जाने देने में क्यों असमर्थता प्रकट कर दिया करते हैं। कभी तो इन डिमांस्ट्रेटरों के पास मशीनें ही नहीं ठीक फिट रहती हैं, और जब कभी मशीनें ठीक भी रहती हैं, तब उनको काम दिखाने वाले चतुर मशीनमैनों अथवा बैलों की ही कमी पड़ जाती है। इस प्रकार से अनेकों अड़चनें स्थानीय डिमांस्ट्रेटरों को पड़ जाया करती हैं, इसलिये लोगों को समझ बूझ कर कुछ ऐसे मार्गों का अवलम्बन करना श्रेयस्कर होगा। जिससे लोगों को अधिक हानि भी न उठानी पड़े, और देश के कृषक-समाज में इन नवीन वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों का प्रचार भी यथोचित रीति से हो जावे।

अब तक जितने हलों का वर्णन हमने ऊपर किया है। उनके सम्बन्ध की उन तमाम ज्ञातव्य (जानने योग्य) बातों की भी चर्चा हमने साथ ही साथ कर दी है। परन्तु तो भी इन हलों के सम्बन्ध में बहुत सी उन बातों का जिक्र अभी तक नहीं किया जा सका है। जिनका जानना भी पाठकों के लिये तथा उन पुरुषों के लिये आवश्यक है। जो कि इन हलों का व्यवहार और प्रयोग करना चाहते हैं।

इन एक परेथा तथा दो परेथा वाले मिट्टी-पलटने वाले हलों के वर्णन के साथ ही साथ हमने इसके खोलने तथा जोड़ने इत्यादि तमाम बातों का वर्णन कर दिया है। इसके साथ ही तमाम उन बातों का भी यथोचित रूप से वर्णन कर दिया है। कि जिन पर ध्यान रख कर जोतने से खेतों की उत्तम जुताई भी हो सकती

है। यदि उन तमाम बातों पर जो कि आदि से लेकर अन्त तक जुताइयों के सम्बन्ध में कही गई हैं। उचित तथा ठीक रीति से कार्य्यरूप में परिणित कर कर दी जायगीं, और उन पर ठीक रीति से हमारे देशवासी किसान अमल करने लगेंगे। तो देख लीजियेगा। केवल जुताइयों के ही कारण से भारतीय फ़सलों की उपज में आशातीत परिवर्तन हो जावेगा।

सब से मुख्य बात जो कि इन मिट्टी-पलटने वाले हलों के व्यवहार के सम्बन्ध में कहनी है। वह यह है कि देशी हलों से जो जुताइयां की जाती हैं। वह खेतों के किनारों से मेंड़ों के पास से की जाती हैं, और जोतते जोतते खेत की जुताई खेत के बीच में जाकर के समाप्त हो जाती है। ऐसी अवस्था में जब खेतों में हेंगा (पटेला, सरावन) चलाया जाता है, तो खेतों का धरातल ठीक उसी प्रकार से दिखाई देता है कि जिस प्रकार से तश्तरी का धरातल दिखाई पड़ता है। खेतों के धरातल में यह बुराइयां देशी हलों के अनुचित रीति के प्रयोग से हो जाया करती हैं। जिससे खेत के बीच में धरातल की निचाई के कारण बरसात में पानी जमा हो जाया करता है, जिससे खेत के धरातल की मिट्टी में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं, और इन खेतों में बोई जाने वाली फ़सलों के पौधे आरंभकाल से ही पीले-पीले दिखाई पड़ते हैं। जिससे जमने का अधिकांश भाग मिट्टी के रोग के कारण नष्ट हो जाता है। क्योंकि फ़सल के पौधे इन खेतों की मिट्टी से पर्य्याप्त मात्रा में खूराक न ग्रहण कर सकने के ही कारण से यथोचित मात्रा में पैदावार नहीं दे सकते हैं। इसी बुराई को इन नवीन मिट्टी-पलटने वाले हलों के आविष्कार ने अन्त कर दिया है।

इन मिट्टी-पलटने वाले हलों में वैसे तो अनेकों सुधार देशी हलों की अपेक्षा वर्तमानकालानुकूल हुये हैं। जिससे देशी हलों की अनेकों अपूर्णताओं का ज्ञान हमारे देश के किसानों तथा प्राचीन कृषि वैज्ञानिकों को हो गया है; इसी से वे इन हलों को व्यवहार में लाने के क़ायल हो गये हैं। सब से विशेष परिवर्तन इन मिट्टी पलटने वाले हलों में देशी हलों की अपेक्षा यह किया गया है कि मिट्टी-पलटने वाला (Mould board) का पुर्जा अधिक आविष्कृत करके लगा दिया गया है; जिससे इन हलों की उपयोगिता जुताई के लाभों की दृष्टि से सर्वमान्य होगई है।

जहां इन हलों के उचित व्यवहार से अनेकों लाभ हैं, वहां इन हलों के अनुचित प्रयोग तथा व्यवहार से सहस्रों हानियों की भी संभावना सदैव बनी रहती है। इसलिये इन हलों के प्रयोग तथा व्यवहार के समय किसानों को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये; नहीं तो अनुचित तथा कुरीति पूर्ण प्रथाओं तथा रीति रिवाजों से जुताई करने से अनेकों प्रकार की हानि हो जाने की संभावना है। जिससे फ़सलों की पैदावार ही पर अधिक हानि-दायक प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि खेत की मिट्टी पर भी बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण इन हलों को ठीक रीति से ही प्रयोग तथा व्यवहार (इस्तेमाल) में लाना चाहिये, जिससे के

तमाम हानिकारक बुराइयां न उत्पन्न हो सकें, जो कि कुरीतियों द्वारा प्रयोग तथा व्यवहार में लाने से हो सकती हैं।

मिट्टी पलटने वाले हलों से भूल कर भी खेत के मेड़ों की ओर से जुताई न आरंभ करनी चाहिये। देशी हलों के व्यवहार से जुताई करने से खेत के धरातल की मिट्टी खेत के बाहर की ओर फिंका करती है। इसी से खेतों के किनारे का भाग ऊँचा और बीच का भाग नीचा होकर के 'तश्तरी' का रूप धारण कर लिया करता है। इसी हानि से बचाने के लिये मिट्टी-पलटने वाले नवीन हलों द्वारा खेत के बीच से जुताई आरंभ की जाती है। यदि खेत बड़ा होता है, तो खेत को कई टुकड़ों में अर्थात 'हलाइयों' के रूप में विभक्त करके तब इन हलों से खेतों की जुताइयां की जाती हैं। इतना समानता होते हुये भी इन मिट्टी पलटने वालों हलों से जब खेत छोटा होगा तो पहिला कूढ़ा खेत के बीचों-बीच काट कर आरंभ किया जायगा, नहीं तो हलाइयों के बीच से पहिला 'कूढ़' काटकर खेतों की जुताइयां आरंभ की जांयगी। इससे जुताइयों द्वारा खेत की मिट्टी खेत के बीच की तरफ़ अर्थात भीतर की तरफ़ पलटेगी, और खेत की हमवारी में किसी भी प्रकार का अन्तर उपस्थित नहीं हो सकेगा।

इसके पश्चात्—अर्थात् जब इस रीति से खेतों की जुताइयाँ मिट्टी पलटने वाले हलों से गर्मी तथा बरसात में कर दी जायगीं, और 'रबी' की तय्यारी के लिये आधी बरसात से ही अथवा बरसात के पश्चात् इन खेतों की जुताइयाँ देशी अथवा अन्य नवीन जुताई के यन्त्रों से की जांयगी, तो खेत की समलता यानी हमवारी में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आयेगा, और जो नालियां खेतों के मेंड़ों के सहारे पड़ा करेंगी वह भी पाटा के देने से भठ कर खेत के धरातल के समान हो जांयगी। खेत की जुताइयों के लिये यही तरीक़ा ठीक है। जो कि साधारणतया सभी कृषि-फ़ार्मों पर जहां कि इन हलों से जुताइयां की जाती हैं—वर्ता जाता है। जो लोग इन हलों का व्यवहार करना सीखना चाहें वह किसी सरकारी तथा ग़ैर सरकारी फ़ार्मों पर जाकर के वहां के चतुर हलवाहों द्वारा इन हलो के प्रयोग तथा व्यवहार की तमाम बातें सीख सकते हैं। क्योंकि इन हलों की व्यावहारिक बातें खेतों में जाकर हल बैलों को जोड़कर चलाने से ही सीखी जा सकती हैं। किताबों के पढ़ने से केवल तरीक़े और रीति रिवाजों का ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। इन वैज्ञानिक बातों का जो कि सिद्धान्तरूप में बतलाई जा सकती है। खेतों पर व्यवहार करके ही उनका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

पाठकों की सुविधा के हेतु कि जिससे व्यावहारिक बातों की भी जानकारी प्राप्त करलें. ठीक रीति से जुताई की हुई खेत की मिट्टी का एक चित्र आगे चित्रित किया जाता है

चित्र में चित्रित खेत की जुताई मिट्टी-पलटने वाले 'मोल्ड बोर्ड' हल द्वारा खेत के बीच से आरंभ की गई है। जिसमें यह दिखलाया गया है। कि इन मिट्टी-पलटने वाले हलों से खेत के भीतर की ओर मिट्टी पलटती है। जिसके कारण खेत का धरातल बीच

में नीचा नहीं हो सकता। इससे खेत के धरातल के चौरसपने में

जुताई की ठीक रीति मिट्टी खेत के भीतर को पलटी है
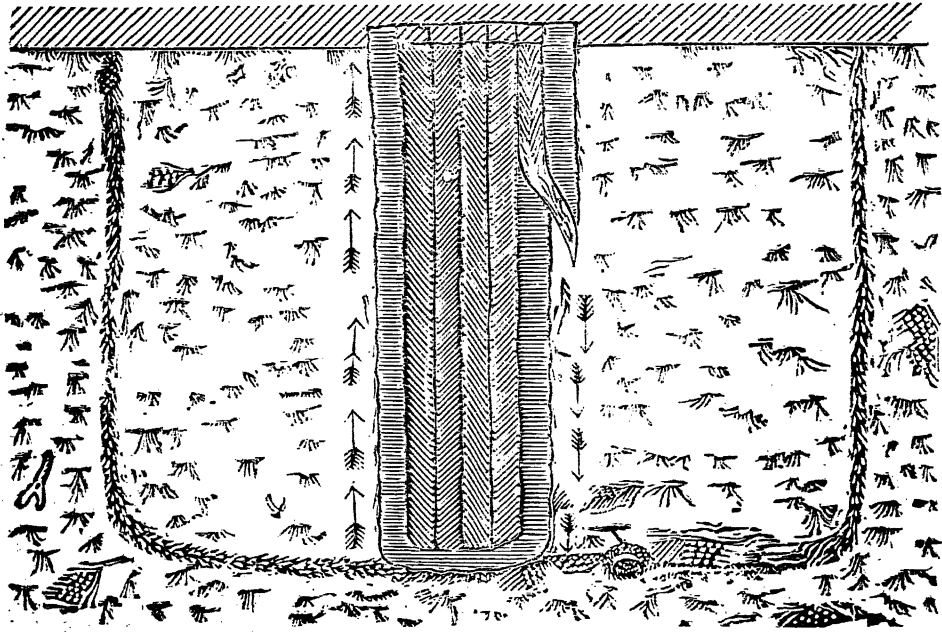
चित्र सं० ११

कोई विशेष अन्तर नहीं उपस्थित होता है। इसी जुताई को अंगरेजी में [Center to side ploughing] नाम दिया गया है। जिसे देशी भाषा में मध्य से मेंड की जुताई कहते हैं। तमाम मिट्टी पलटने वाले एक परेथा वाले तथा दो परेथा वाले हलों से इस नाम की जुताई की जा सकती है। केवल "टर्न रैस्ट प्लाऊ" की जुताई को छोड़कर। इस।टर्न रैस्ट की कुछ बातों का जिक्र हम आगे प्रसगानुसार करेंगे। यहां पर हम पाठकों की जानकारी के हेतु उस जुताई का भी एक चित्र चित्रित किये देते हैं जिसे 'मेंड से मध्य" की जुताई [side to center ploughing] कहते हैं। जैसा कि हमारे देशी हलों से हमारे देश के हलवाह प्रायः हमारे खेतों की जुताइयां किया करते हैं। मिट्टी-पलटने वाले हलों से इस रीति से जुताई न करनी चाहिये। क्योंकि उन हलों से जुताई की दृष्टि से यह जुताई का 'ग़लत रास्ता' है।

मिट्टी पलटने वाले हलों द्वारा अग्र चित्रित में मेंड से मध्य की (Side to Center Ploughing) जुताई की गई है। इन हलों से जुताई करने का यह तरीक़ा ग़लत है। इस तरीक़े से खेत की मिट्टी बाहर की ओर—अर्थात खेत के मेंड़ की ओर फिंकती है।

इससे खेत का बीच वाला भाग नीचा और मेंड़ वाला भाग ऊँचा पड़ जाता है। जो कि खेत के धरातल को बिगाड़ देता है। और खेत की मिट्टी में पानी के जमा रहने से अनेकों प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। जो कि फ़सलों की उपज को बहुत ही कम कर के वनस्पतियों के आकार-प्रकार में भी अनेकों प्रकार के विकार उत्पन्न कर देते हैं; जिस से इन खेतों में बोई जाने वाली फ़सलें

भी रोगी हो जाती हैं। इस कारण इन फ़सलों के बीज भी रोगी

पलटन-वाला मिट्टी बाहरी तरफ़ को पलटती है।

चित्र सं० १९
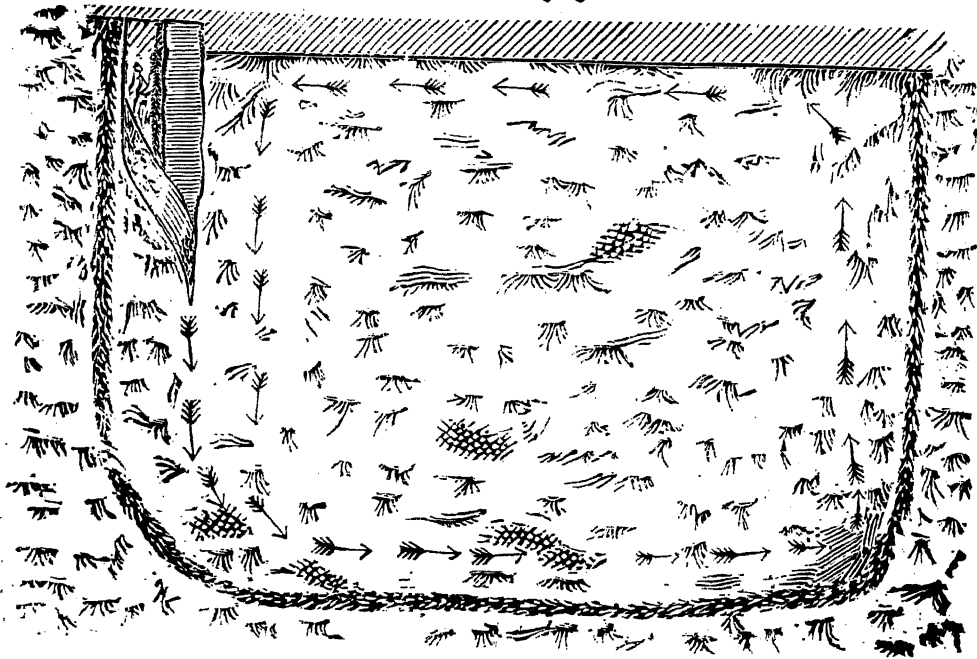
हो जाया करते हैं, और जब यह बीज बोये जाते हैं; तो अगले वर्ष की उस फ़सल में भी यह रोग प्रायः उत्पन्न हो जाया करता है। कि जिस फ़सल में गत वर्ष यह रोग लग चुका था। इसलिये इन हलों का व्यवहार सदैव ठीक और उचित रीति से ही पाठकों को तथा अन्य कृषि-व्यवसाइयों को करना चाहिये। जिससे लाभ ही लाभ हो। हानि होने की कभी नौबत ही न आवे। इस के सिवाय जोतते समय खेतों में हलों को भली प्रकार से जाँच लेना चाहिये। कि उनके सारे भाग ठीक प्रकार से फ़िट हैं; या कि नहीं कोई 'बोल्टू' वग़ैरह ढीला तो नहीं है। नहीं तो जोतते समय किसी प्रकार की ख़राबी उत्पन्न हो जावे।"

जिन खेतों का धरातल समतल न हो, उन खेतों के धरातल के समतल करने में भी यह मिट्टी-पलटनेवाले हल बहुत ही उपयुक्त तथा लाभदायक जंचे हैं। इन सब हलों में 'टर्नरैस्ट' हल खेतों के समतल करने में बहुत ही उत्तम जंचा है। इसलिये जिन खेतों का धरातल वाला भाग जिस तरफ़ नीचा है। उसी ओर से खेतों की जुताइयां करना चाहिये। क्योंकि जब जुताई खेत के नीचे वाले भाग से की जायगी तो इस "टर्न रैस्ट" हल से जो मिट्टी खुदेगी और पलटेगी, वह सब नीचे वाले भाग की ही तरफ़ पलटेगी। जिसका फल यह होगा कि दो ही तीन उलटन-पलटन में खेत हमवार हो जायगा। इस प्रकार से जिन खेतों का धरातल समतल न हो उन खेतों में इन हलों से उसी ओर से जुताई करना चाहिये। कि जिस ओर से खेत का धरातल नीचा हो; इसी नीचे के भाग की ओर से

खेतों की जुताई करके मिट्टी को भी नीचले भाग की ही ओर पलटना चाहिये। इस बात के वर्णन से पाठक समुदाय को इस बात का भी पता चल गया होगा। कि यह मिट्टी-पलटने वाले हल केवल खेतों की उत्तम तथा लाभकारी जुताई ही नहीं कर सकते, बल्कि जुताई के साथ ही साथ खेतों के ऊँचे नीचे धरातल के भी समतल करने में यह हल बड़े काम के हैं। इसलिये इन हलों का प्रयोग तथा व्यवहार प्रत्येक दशा में भारतीय किसानों के लिये लाभकारी ही है।

हमने अपनी तथा वैज्ञानिकों की अनुमति के अनुसार सारे मिट्टी-पलटने वाले नवीन, विदेशी वैज्ञानिक पद्धति से तय्यार किये हुये, हलों का आवश्यक वर्णन पाठकों को सुविधा के हेतु इस प्रस्तुत पुस्तक में कर दिया है। हलों के विशेष वर्णन को जानने के लिये अब पाठकों को अन्यत्र भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। सारे मिट्टी पलटने वाले उन हलों का आवश्यक वर्णन जो कि देश भारत के किसानों के लिये लाभदायक हैं। इस किताब में सविस्तार दिया है। इन हलों से गरमी तथा बरसात की जुताइयां की जा सकती हैं। इन हलों से इस महीने में जुताई करने से विशेष लाभ है। क्योंकि यह सारे मिट्टी-पलटने वाले हल खेत की मिट्टी को खोद कर पलट देने के सिवाय उन खर-पतवारों को भी नीचे दबाकरसड़ा दिया करते हैं। जो कि वर्षा के आरम्भ काल में हमारे खेतों में उग आया करते हैं, और हमारी फ़सलों की खूराक को हमारे खेतों से ग्रहण करके खा लिया करते हैं। जिससे हमारी फ़सलों के लिये खूराक कम हो जाया करती हैं। जिसके कारण वह उत्तम श्रेणी की पैदावार कभी दे ही नहीं सकते। अतएव मेरा तो यही कहना है। कि भारतवासियों को जिस प्रकार से हो सके, उसी प्रकार से इन हलों का प्रयोग तथा व्यवहार करना चाहिये।

आजकल जितनी कृषि-सम्बन्धी मशीनें (यन्त्र) कृषि-कर्म्म की व्यावहारिक बातों में व्यवहृत हो रही हैं। उनके प्रयोग तथा व्यवहार से दो प्रकार का लाभ पहुँचता है। एक तो उन मशीनों से सीधे लाभ पहुँचता है कि जिनके व्यवहार से ज़मीन की उर्वरा-शक्ति (natural fertility) बढ़ जाया करती है, और फ़सलों द्वारा उपज के रूप में लाभ हो सकता है। दूसरे प्रकार के वे कृषि-यन्त्र हैं। जिनके व्यवहार में लाने से समय तथा मज़दूरों की बचत होती है। ऐसी दशा में इन मशीनों (यन्त्रों) के व्यवहार से समय भी कम लगता है, और मज़दूरी भी कम लगती है। जिससे लाभ यह होता है। कि थोड़े समय में थोड़े ही मज़दूरी द्वारा अधिक काम हो जाया करता है। इससे अर्थ-वैज्ञानिकों के मतानुसार बहुत कुछ धन बचा लिया जा सकता है। इस पद्धति के अनुसरण से इन कृषि मशीनों का व्यवहार करके बहुत से देशों के किसानों ने अपनी गिरी हुई आर्थिकावस्था का पुनः उद्धार कर लिया है, और आज वह सभ्य देश के किसानों में अपनी गणना करा रहे हैं। तो क्या कभी भी कोई कृषि-विज्ञान वेत्ता यह कहने का दावा कर सकता है कि इन कृषि-मशीनों के व्यवहार से भारत को हानि होगी ?

धनदायक अथवा किसी भी फ़सल के उत्तम बीजों को ही बोकर अधिक पैदावार हासिल करने को चेष्टा करना भारी भूल है। क्योंकि जब तक खेतों की जुताई इत्यादि आवश्यक कर्म्मों को ठीक रीति से भली भांति करके खेतों को बुवाई के योग्य ठीक न कर लिया जायगा। तब तक उन खेतों में चाहे कितना ही चुना हुआ तथा वैज्ञानिक प्रथाओं से जाँचा हुआ उत्तम श्रेणी का उन्नति प्राप्त बीज बो दिया जाये; कभी भी इस उत्तम बीज के बो देने से ही उत्तम श्रेणी की अधिक पैदावार प्राप्त नहीं की जा सकती। उत्तम छँटे हुये बीजों से उत्तम श्रेणी की अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने का सबसे उत्तम तरीक़ा यही है। कि उन्नति प्राप्त यन्त्रों द्वारा खेतों की तैयारी भी बीजों के बोने के पहिले कर ली जाय, नहीं तो यथेष्ट फल प्राप्त न होगा। निस्सन्देह यह बात सत्य और ठीक है। कि यदि खेतों की साधारण जुताइयाँ अपने देशी हलों से करके उत्तम श्रेणी का चुना हुआ छँटा बीज बो दिया जाय, तो अवश्य ही पैदावार अधिक मिल जायगी। जिस प्रकार से यह सिद्धान्त सत्य और ठीक है। उसी प्रकार से इस सिद्धान्त की भी सत्यता निर्विवाद है कि उत्तम प्राप्त हलों से, उन्नति प्राप्त रीति रिवाजों से, यदि खेतों की जुताइयां की जाँय, और उन्नति प्राप्त चुने हुये छँटे बीज बोये जावें, तो पैदावार अधिक मात्रा में मिलेगी। क्योंकि इसके अनेकों तजुरबे देश के राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-फार्मों पर हो चुके हैं। उन्हीं में से एक तजुर्बा नीचे पाठकों की जानकारी के हेतु लिखा जाता है।

जिले कानपूर में देशी गेहूँ की साधारण उपज साधारणतया देशी हलों की साधारण जुताई के किये जाने पर सोलह मन प्रति एकड़ हुआ करती है। यदि इन्हीं सब बातों के रहते हुये किसान लोग उन्नति प्राप्त छँटे हुये पूसा नं० १२ के गेहुँओं को बो दिया करते हैं। तो उपज बढ़कर १९ से २० मन के लगभग प्रति एकड़ पहुंच जाया करती है। इसी जिले कानपूर के सरकारी कृषि फ़ार्मों पर केवल उन्नति प्राप्त हलों द्वारा खेतों की जुताई करके और खेतों की तय्यारी भी उन्नति प्राप्त यन्त्रों से करके, बिना किसी विशेष खाद के केवल उत्तम श्रेणी की जुताई ही करके गेहूं पूसा नं० १२ का बीज अधिक क्षेत्रफल में बोया गया था। जिसके फल स्वरूप प्रति एकड़ २५ मन से ३० मन तक की उपज प्राप्त हुई थी। पाठकगण! अपनी आंखों से इन उपजों की तुलना करके स्वयं विचार कर सकते हैं। कि कितना अंतर है। सरकारी खेतों की जुताइयां उन्हीं हलों के द्वारा गरमी और बरसात में की गई थी कि जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, और जिसको भारत के सर्वसाधारण कृषक ख़रीदकर अपने व्यवहार तथा प्रयोग में ला सकते हैं।

कानपूर के काश्तकारों के उन खेतों में जो कि घर (आबादी) के आस-पास हैं। जिनमें मल-मूत्र किया जाता है, और खाद भी सरलतापूर्वक अधिक से अधिक मात्रा में डाली गई थी। ऐसे गौहानी खेतों में पूसा नं० १२ के गेहूं की उपज प्रति एकड़ सत्ताईस मन तक हुई थी। ऐसी ही दशा में कानपूर सरकारी फार्म के उन खेतों में जिनमें

(देखिए कवर पृष्ठ ३)

कर्बनिक रसायन

[ले० श्री सत्यप्रकाश बी. एस. सी. विशारद]

प्रारम्भिक क्रियायें

कागमें छेद करना

प्रयोगोंके करनेमें बहुधा कागमें छेद करनेकी आवश्यकता पड़ती है । इसमें छेद करनेसे पहले यह देखलेना चाहिये कि जिस बोतलके मुँहमें काग लगाना है उसमें यह ठीक ठीक कस जाता है या नहीं। यदि बोतलके मुँहसे काग थोड़ासा बड़ा हो तो इसे जूतेके तलेसे बेलना चाहिये । ऐसा करनेसे काग पहलेकी अपेक्षा कुछ छोटा हो जायगा और बोतलमें ठीक ठीक कस जायगा ।

फिर इस कागको पानीसे थोड़ासा भिगोलो। भीगनेसे यह नरम पड़ जायगा और छेद करनेमें आसानी होगी। छेद करनेके लिये छेदक होते हैं। ये लोहे या पीतलकी लगभग तीन इञ्च लम्बी खोखली नलियाँ होती हैं जिनके सिरेपर दो छेद होते हैं। इन छेदोंमें लोहेकी तीली लगाई जाती है। इस तीलीको मुट्ठीसे दबाकर छेदक आसानीसे घुमाये जा सकते हैं। छेदकोंका नीचेका भाग पैना होता है। ये भिन्न भिन्न व्यासोंके मिल सकते हैं। छेद करनेसे पहले यह देख लेना चाहिये कि छेदकका मुँह और उस काँचकी नलीका मुँह जिसे कागके छेदमें लगाना है, एक बराबर चौड़ा है या नहीं। यदि छेदकका मुँह नलीके मुँहसे छोटा होगा तो नली इसमें कसा न जा सकेगी। अगर छेदकका मुँह नलीके मुँहसे बड़ा है तो नली ढीली रह जायगी। इसलिये उपयुक्त छेदक लेना चाहिये।

कागके दो सिरे होते हैं—एक सिरा छोटा होता है और दूसरा बड़ा। छेद हमेशा छोटे सिरेसे आरम्भ करना चाहिये। जिस स्थान पर छेद करना हो उसपर छेदकको सीधा खड़ा करो। कागको मेज़पर रखलेनेसे यह काम सरलतासे हो सकेगा। मुट्ठीमें तीली दबाकर छेदकको सावधानीसे घुमाओ। यह ध्यान रखना चाहिये कि छेद सीधा बने। जब आधीदूरके लगभग छेदक कागमें घुस जाय तो इसे निकाललो और कागके दूसरे सिरेमें ऐसे स्थानसे छेद आरम्भ करो कि यह पहली ओरसे किये हुए छेदके बिल्कुल सीधमें हो। छेदकके घुमानेसे कागमें अब पूरा छेद किया जा सकता है। दोनों ओरसे छेद करनेमें लाभ यह है कि काग फटने नहीं पाता। छेद करनेमें कागके मुँहमें छोटे छोटे टुकड़े भर जाते हैं। इन्हें कीलीसे ठोककर निकाला जा सकता है। यदि छेद आवश्यकतासे कुछ छोटा बना हो और अन्दर साफ़ न हो तो गोल-रेतीसे रेतकर इसे ठीककर सकते हैं।

नलियोंका काटना और मोड़ना

काँचकी बड़ी बड़ी नलिकायें मिलती हैं इन्हें काटकर छोटा किया जा सकता है। काटनेकी विधि यह है कि जिस स्थानपर काटना हो वहाँ रेतीसे थोड़ा खुरच दो। नलिकाके चारों ओर खुरचनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल ऊपरकी ओर थोड़ासा खुरच देनेसे काम चल जाता है। जिस स्थानपर खुरचा है उसके नीचेकी ओर दोनों अँगूठे लगाओ और दोनों हाथकी आठों उँगलियोंसे नलिकाको पकड़कर अँगूठेके विरुद्ध बल दो। ऐसा करनेसे नलिका टूट जायगी। यदि टूटी हुई नलिकाके सिरे खुरखुरे हैं तो उसे दग्धककी लौमें गरम करके एकसाकर लेना चाहिये।

मोड़नेके लिये नरम काँचकी नलियाँ काममें लानी चाहिये। पुच्छदार दग्धक (fishtail burner) या स्पिरिट दीपककी ऊपरी लौमें नलीको दोनों सिरोंसे पकड़ो और दोनों हाथोंसे घुमाते जाओ जब नली गरम होकर लाल हो जाय और पिघलनेके लगभग हो तो घुमाना बन्द कर दो और एक

सिरेके छोड़ दो। ऐसा करनेपर नली धीरे धीरे नीचे मुड़ने लगेगी। जब यह काम लायक मुड़ जावे तो इसे लौमें से हटा लो और ठण्डा करलो। यह स्मरण रखना चाहिये कि ठण्डा करनेके लिये कभी पानी मत डालो नहीं तो नली टूट जायगी। हवामें ही इसे ठण्डा होने देना चाहिये। नलीका मोड़ यदि एकसा गया है तो समझना चाहिये कि नली ठीक मुड़ी है। और यदि मोड़ बेढंगा है तो दूसरीनली लेकर फिर मोड़ना चाहिये।

नलीको खींच कर सूची-नली बनाना

कभी कभी इतनी पतली नलिकाओंकी आवश्यकता होती है जिनका छेद सुईके बराबर छोटा हो। ऐसी नलियोंको सूची-नली कहते हैं। काँचकी साधारण नलियोंसे ये बनाई जा सकती हैं। बनानेकी विधि इस प्रकार है काँचकी नलीको दोनों हाथोंसे बुन्सन दग्धककी लौमें घुमाओ। जब काँच गरम होकर नरम पड़ जाय तो इसे लौमेंसे निकालकर धीरे धीरे दोनों हाथोंसे खींचो। ऐसा करनेसे पतली नली बनजायगी, रेतीसे काटकर पतली सूची-नली को काटकर अलग किया जा सकता है।

सूची-नली या साधारण नलिकाओंके सिरेको मूँदनेकी भी कभी कभी ज़रूरत होती है। इसकी विधि यह है कि नली के सिरेको बुन्सन दग्धकके लौमें घुमाओ। ऐसा करनेसे काँच पिघलेगा और सिरा बन्द हो जावेगा।

द्रव को छानना

द्रवमें कभी कभी किसी पदार्थके कण बिखरे होते हैं। थोड़ी देर शान्त रखनेपर ये कण धीरे धीरे बर्तनकी तलैटीमें बैठते जाते हैं। थोड़ी देरमें लगभग सब बैठ जाते हैं, और ऊपर स्वच्छ द्रव रह जाता है। इस द्रवको सहारेसे अलग उँडेल लिया जा सकता है और ठोस कण पहले बर्तनमें रह जाते हैं। इस प्रकार ठोस कणोंको द्रव भागसे अलग करनेकी क्रियाको निथारना कहते हैं। पर निथारनेसे ठोस कण सर्वथा पृथक नहीं हो सकते हैं अतः इस कामके लिये द्रवको छानना पड़ता है।

छाननेके लिये छन्ना कागज़ काममें लाये जाते हैं। ये ठीक स्याही सोखकी तरह होते हैं पर उनकी अपेक्षा अधिक पतले होते हैं। इन कागजों-को गोल काट लेना चाहिये। इन्हें मोड़नेकी दो विधियां हैं:—

१. साधारण—गोल छन्ना कागज़को बीचमें से मोड़कर दो पर्त करलो इस प्रकार इनका अर्ध वृत्तका आकार होजायगा। इन्हें फिर बीचो बीचसे मोड़ दो इस प्रकार वृत्तके ठीक चार भाग हो जायँगे। तीन पर्तोंको एक साथ थामकर चौथे पर्तको खोलनेसे कीपका आकार बन जायगा। छन्ना कागज़को इस प्रकार मोड़कर कीपमें रखो और जलकी धारसे भिगोकर इसे कीपमें चिपका लो। कीपमें छन्ना कागज़ खूब चिपक जाना चाहिये। कागज़ और कीपके बीचमें वायुके बुलबुलोंको रहने देनेसे छाननेमें कठिनाई होगी।

२—बहु पर्ती मोड़—जब बहुतसा द्रव या गरम द्रव छानना होता है तो छन्ना कागज़ को दूसरी विधिसे मोड़ते हैं। पहली विधिके अनुसार कागज़के चार पर्त कर लो। इन चार पर्तोंके दो पर्तोंको फिर एक ओर मोड़ो और शेष दो पर्तों को दूसरी ओर। इस प्रकार अब आठ पर्त होगये। इन्हें फिर मोड़कर सोलह पर्त बनाये जा सकते हैं। जब काफ़ीपर्त हो जायँ तो खोलकर कीपमें रख लो।

छाननेके समय द्रवको काँचकी नलीके सहारेसे उँडेलना चाहिये नहीं तो छन्ना कागज़के फटने का डर है। साधारण कीप काँचके बने होते हैं जिनके नीचे एक लम्बी काँच-की नली होती है। इस नलीमेंसे द्रव बूँद बूँद छनकर टपकता है। नलीको नीचे रखे हुए बर्तन-के किनारेसे लगा देना चाहिये। ऐसा करनेसे छाननेमें सरलता होती है और द्रवके छिटकने की भी

सम्भावना नहीं है। कीपोंको रखनेके लिये लकड़ीके छल्लेदार डट्टे होते हैं।

जब बहुतसा द्रव शीघ्रतासे छानना होता है तो नीचेकी विधि काममें लायी जाती है। इसका कीप चीनी मिट्टीका होता है। इसे एक बड़ा कटोरा समझना चाहिये, जिसके नीचे एक नली लगी होती है। इसके तलमें बहुतसे छोटे छोटे चलनीके समान छेद होते है। कीपको मज़बूत रबरके कागमें छेद करके लगा देते हैं। एक बड़ी टोंटीदार बोतलमें काग कस दिया जाता हैं। बोतलकी टोंटीको शून्यक पम्प से लगादेते हैं। शून्यकपम्प इस प्रकारका यंत्र है कि जब इसे पानीके नलसे संयुक्त कर दिया जाता है तो जलके वेगके साथ बोतलकी हवा खिंचने लगती हवाके खिंचनेके साथ द्रव शीघ्रतासे छनकर बोतलमें गिर सकता है।

पदार्थ को सुखाना

जब किसी द्रवको छानते हैं तो उसके ठोस कण छन्ना-कागज़पर रह जाते हैं। छन्ना कागज़के पदार्थके साथ साथ कुछ द्रव जलभी रहता है। ऐसा करनेपर यह आवश्यक है कि छने हुए पदार्थको किसी प्रकार सुखाया जाय। ऐसा करनेकी कई विधियाँ हैं। साधारण विधि यह है कि छन्ना कागज़को कीपके सहित लोहेकी ऊँची चिमनीके ऊपर रखते हैं और चिमनीको त्रिपादपर रखकर नीचेसे मन्द लौके दग्धकसे गरम करते हैं ऐसा करनेसे धीरे धीरे पदार्थ सूख जाता है। यह सावधानी रखनी चाहिये कि छन्ना कागज़ झुलसकर काला न पड़ जाय।

दूसरी विधि यह है कि एक रन्ध्रमय पट्टिका (porous plate) लेते हैं। यह साधारणमिट्टीकी बनी होती है जिसे भट्टीमें सावधानीसे पकाया जाता है। ऐसा करनेसे इसमें बहुतसे अदृश्य छेद हो जाते हैं। छन्ने कागज़के पदार्थको इस पट्टिका पर रख देते हैं। पट्टिकाके छेद धीरे धीरे पानीको सोख लेते हैं और पदार्थ सूख जाता है।

पदार्थको सुखाने के लिये रस-शोषक यंत्र (dessicator) भी काममें लाया जाता है। यह मोटे काँचका पेंदीदार डब्बा होता है। इसकी पेंदी- में गन्धकाम्ल और झाँवा पत्थर (pumice) के टुकड़े रखे होते हैं। इनकी थोड़ी ऊँचाई पर धातुकी एक चलनी लगी होती है जिसपर मिट्टीकी एक छोटासा त्रिपाद रक्खा होता है। जिस पदार्थको सुखाना होता है उसे मिट्टीकी छोटीसी घड़ियामें रखते हैं इस घड़ियाको त्रिपादपर रख दिया जाता है। रस-शोषकको एक ढकनेसे बन्द कर दिया जाता है। ढकनेके किनारेमें लेई लगी रहती है जिसके कारण यह रस-शोषकपर जम कर बैठ जाता है। इस यन्त्रकी दीवारमें एक नली लगी रहती है जिसे शून्यकयन्त्र के साथ लगा दिया जाता है। ऐसा करके यन्त्रसे सब वायु निकाल ली जाती है। वायु-शून्य स्थानमें पदार्थका जल भाप बन कर उड़ने लगता है। इस भापको गन्धकाम्ल और झाँवा पत्थर अभिशोषित कर लेते हैं। धीरे धीरे पदार्थ सूख जाता है।

पदार्थोंको सुखानेके लिये वाष्प-अंगीठी और वायु-अंगीठी भी तैयारकी गई हैं। वाष्पअंगीठी तांबेके सन्दूकके आकारकी होती है। इसकी एक ओरकी दीवार खोखल होती है। इसमें जल भर दिया जाता है। बाहर एक सूचक-नली रहती है जिससे पता चलता रहता है कि अन्दर पानी किस सतह तक भरा हुआ है। अंगीठीके ऊपर भाप निकलने का एक मार्ग होता है। सन्दूकमें कई खाने बने होते हैं। इनमें भीगे पदार्थको रख देते हैं और दर्वाजा बन्द कर दिया जाता है। नीचेसे बुन्सन-दग्धकसे पानी भाप बनाया जाता है। भापकी गर्मीसे पदार्थ सूख जाता है।

वायु अंगीठी भी साधारण सन्दूकके आकारकी होती है। इसमें दो दर्जे होते हैं। ऊपर तापमापक

लगानेके लिये सूराख होता है। पदार्थ ऊपरके दर्जेमें रख दिया जाता है। दर्वाज़ा बन्द करके नीचे-से दग्धक द्वारा गर्मी पहुँचाई जाती है। धीरे धीरे पदार्थ सूख जाता है। तापमापकसे तापक्रम नियमित करते रहते हैं।

यौगिक का शुद्धकरण

बहुधा प्रत्येक यौगिकके द्रवांक और क्वथनांक निश्चित होते हैं। पर यदि शुद्ध यौगिकमें कुछ अशुद्धियाँ मिलादी जायँ तो उनके द्रवांक पहलेकी अपेक्षा कम हो जावेंगे और क्वथनांक बढ़ जावेंगे। अतः द्रवाँक और क्वथनांक निकाल कर यह पता लगाया जा सकता है कि पदार्थ शुद्ध है या अशुद्ध। ठोस पदार्थोंके द्रवांक देखे जाते हैं और द्रवोंके क्वथनांक।

अगर द्रवोंकों और क्वाथनांकोंसे यह सिद्ध हो जाय कि पदार्थ अशुद्ध है, तो किसी विधिसे उस पदार्थको शुद्ध करना चाहिये। शुद्ध करनेकी विधियाँ ये हैंः—

१—धोना
२—रवे बनाना
३—आंशिक स्रवण
४—निष्कर्षण

बारी बारीसे इन सब विधियोंका अब वर्णन किया जावेगा।

पदार्थका धोना

पदार्थकी शुद्धिके लिये धोना बड़ा आवश्यक है। पर वेही पदार्थ धोए जाते हैं जो बहुधा जलमें अनघुल होते हैं। छने हुए अवक्षेप को छन्ने कागज़ परही धोते हैं। धोनेके लिये एक विशेष बोतल तैयारकी जाती है। जिसे 'धोनेकी बोतल' (wash bottle) कहते हैं। इसके बनानेकी यह विधि है—एक बड़ी बोतललो और उसमें दो छेदों वाला एक काग कसो। काँचकी एक नलिका इतनी बड़ी लो कि कागमें लगाने सेवह एक इञ्चके लगभग बोतलके अन्दर रहे और पांच इंच बाहर। इस नलिकाको एक सिरेसे चार इञ्चकी दूरीपर सावधानीसे मोड़कर १३५° का कोण बनाओ। दूसरी नली और लो जो बोतलके पेंदे तक पहुँचती हो, और कागके ऊपरभी ६ इञ्चके लगभग लम्बाई शेष रहती हो। एक सिरेसे चार इञ्चकी दूरीपर इसेभी मोड़कर ४५° का कोण बनाओ। दोनों नलियोंको कागमें लगादो। एक छोटी नलीको सावधानीसे गरम करो। जब काँच मुलायम पड़ जायतो दग्धकसे बाहर निकालकर दोनों हाथोंसे धीरेसे खींचलो। ऐसा करनेसे एक ऐसी नली बन जायगी जिसके आगेका भाग धीरे धीरे पतला होता गया है। रेतीसे नोकको काटदेनेपर सुईके बराबर छेद हो जायगा। इस प्रकारकी नलीको 'टोंटी' कहते हैं। रबरके टुकड़ेके सहारे इस टोंटीको ४५° कोणवाली नलीके सिरेसे लगादो। बस धोनेकी बोतल तैयार होगई। इसमें पानी भरदो। १३५° कोणवाली नलीके सिरेको मुंह—में देकर फूँकनेसे टोंटीमेंसे पानीकी पतली-धार निकलने लगेगी। इस धारसे अवक्षेपको सावधानीसे धोया जासकता है। अवक्षेपकी ऐसी अशुद्धियाँ जो पानीमें घुलनशील है घुलकर नीचे छन जावेंगी और शुद्ध पदार्थ रह जवेगा। कभी कभी प्रयोगकी अवस्थाके अनुसार धोनेके लिये गरम पानी, अमोनियाद्वार क्षारित पानी, या अम्लित पानीका भी उपयोग किया जाता है। सिद्धान्त यह है कि उस द्रव द्वारा पदार्थ धोया जायगा जिसमें उसकी अशुद्धियाँघुलनशील हों पर पदार्थ स्वयं अनघुल हो।

रवे बनाना

रवे बनानेका सिद्धान्त यह है कि कुछ पदार्थ किसी घोलकमें उच्चतापक्रम पर अधिक घुलनशील होते हैं और वायुके साधारण तापक्रम पर वे कम घुलनशील है। इसलिये ऐसे घोलकमें उच्चतापक्रम पर संयुक्त घोल बनाया जाता है। ठण्डा करने पर घुलनशीलता कम होने लगती है

और पदार्थ रवेके रूपमें घोलसे पृथक होने लगता है। ये रवे बहुधा शुद्ध होते हैं क्योंकि इनकी घुलनशीलता इनकी अशुद्धियोंकी घुलनशीलताकी अपेक्षा अधिक भिन्न होती है। आंशिक-रवे बनाकर दो भिन्न पदार्थोंको पृथक भी किया जासकता है। घोलमेंसे दोनों पदार्थोंके रवे भिन्न भिन्न तापक्रमपर पृथक् होंगे। (विस्तारके लिये विज्ञान प्रवेशिका भाग २ पृ. १८७-१९० देखो)।

आंशिक स्रवण

दो द्रवोंके घोलको आंशिक-स्रवण द्वारा पृथक् किया जासकता है। इस कामके लिये एक बोतललो जिसमें एक काग कसदो। इस कामके लिये विशेष प्रकारकी बोतल जिन्हें स्रवण-बोतल (distilling flask) कहते हैं बनाई गई हैं। इनके गलेमें एक नली लगी होती है जो भभकेसे कागद्वारा संयुक्तकी जासकती है। पर यह काम साधारण बोतलोंसे भी लिया जासकता है। ऐसी अवस्थामें, कागमें दो छेद करदो। एक छेदमें तापक्रमापक लगादो। दूसरे छेदमें एक मुड़ी हुई नली लगादो। इसके दूसरे सिरेको भभकेके कागमें कसदो। भभकेके दूसरे सिरेको नीचे एक सञ्चक-बोतल या गिलास रखदो। भभकेको पानीके नलसे ऐसे संयुक्त करो कि भभकेमें पानी नीचेकी ओरसे ऊपरकी ओर बहे। स्रवण बोतलमें द्रव मिश्रणको रक्खो और गरम करो। तापक्रमको नियमित रक्खो। द्रव भाप बनकर उड़ेगा। यह भाप पानीके वेगसे ठण्डी होकर फिर द्रव बन जायगी और शुद्ध द्रव बन जायगी। इसकी बूँदें सञ्चकमें टपकने लगेंगी। यदि घोलके भिन्न भिन्न द्रव भिन्न भिन्न तापक्रम पर वाष्पीभूत होते हैं और यदि इन तापक्रमोंमें परस्परमें बहुत अन्तर है तो तापमापक द्वारा तापक्रमको नियमित करके स्रवण द्वारा वे द्रव शुद्धावस्थामें पृथक किये जासकते हैं।

कभी कभी वाष्प—स्रवण (steam distillation) की आवश्यकताहोती है। एक लोहेकी बोतल इस कामके लिये लीजाती है। इसमें काग कसा जाता है। कागके एक छेदमें एक गज़ लम्बी नली सीधी लगा देते हैं। दूसरे छेदमें एक मुड़ी नली लगाते हैं। इस नलीको स्रवण बोतलके कागमें एक नली लगाकर संयुक्त कर देते हैं। बाकी सब उपचार पहलेके समान रहता है। लोहेकी बोतलमें पानी भरके गरम किया जाती है। स्रवण बोतलको भी सावधानी से गरम करना चाहिये। भाप स्रवण बोतलमें प्रवाहित होती है और अपने साथ द्रवके कुछ अंशको लेजाती है। यह अंश ठण्डा होकर संचकमें स्रवित होजाता है।

जब किसी उड़नशील द्रव या घोलको उच्चतापक्रम तक गरम करना होता है तो बोतलमें भभकेको सीधा खड़ा लगा देते हैं। भभकेमें पानी प्रवाहित करते हैं। मिश्रणको इच्छानुसार गरम किया जाता है। द्रवकी उड़ी हुई वाष्पें फिर ठण्डी होकर द्रव होजाती हैं और बोतलमें वापस गिर पड़ती हैं। इसविधिको वायु-स्रवण कहते हैं।

निष्कर्षण

पानी और ज्वलक यदि आपसमें ख़ूब हिलाये जायं, तो भी एक दूसरेमें नहीं मिलेंगे। थोड़ीदेर ठहरनेके पश्चात् दोनों पृथक पृथक सतहोंमें होजायंगे। ऐसे पदार्थोंको अमिल कहते हैं। इन्हें पृथक्कारी-कीप (separating fuunnel) द्वारा अलग किया जासकता है। इस कीपका ऊपरका भाग गोल होता है, जिसमें अमिल-मिश्रण भर दिया जाता है। इसके नीचे एक लम्बी नली होती है जिसमें एक टोंटी होती है। टोंटीके पेंचको घुमानेसे कीपमेंसे द्रव नीचे गिरने लगता है। इस कीपमें मिश्रणको भरकर पेंच घुमाते हैं। धीरे धीरे सावधानीसे नीचेवाली सतहका द्रव पृथक कर लेते हैं। और ऊपर वाली सतहका द्रव कीपमें ही रह जाता है।

कभी कभी ऐसा होता है कि पदार्थ पानीकी अपेक्षा ज्वलक (या कोई अन्य अमिल द्रव) में अधिक घुलनशील होते हैं। अतः यदि पानी और

पदार्थके मिश्रणमें ज्वलक डालकर खूब हिलाया जाय तो पदार्थ ज्वलकमें घुल जायगा। शान्त होनेपर पानी और जलकी दो सतहें होजायंगी और वे पृथककी जासकेंगी। ज्वलक उड़नशील है और वह साधारणतया है उड़जावेगा इस प्रकार उसमें घुला हुआ पदार्थ शुद्ध प्राप्त हो सकता है। इस प्रक्रियाको ज्वलक द्वारा निष्कर्षण कहते हैं।

द्रवणांक निकालना

पदार्थकी शुद्धता जाननेके लिये बहुधा द्रवणांक निकालनेकी अवश्यकता होती है। द्रवांकके लिये एक गोल पेंदीकी बोतल जिसकी गर्दन लम्बी हो और पेंदी छोटीहो ली जाती है। इसमें एक काग कसते हैं। कागकी भीतमें रेतीसे रेतकर दो सीधी लकीरें खोद देते हैं। इनसे यह लाभ है कि जब काग बोतलमें कस दिया जावेगा तो वायु बोतलमें एक लकीरके मार्गसे आ और दूसरे मार्गसे जा सकेगी। इस प्रकार वायुका प्रवाह आरम्भ होजायगा। इस प्रवाहसे बोतलमें जो द्रव भरा जायगा वह स्वभावतः टरता रहेगा। अस्तु, बोतलके कागमें एक मोटा छेद भी करो जिसमें ताप मापक कसा जासके। जिस पदार्थका द्रवांक निकालना हो उसे सूचीनलीमें भरो। इस नलीको पानीसे भिगोकर तापमापककी घुण्डीसे चिपका दो। बोतलमें शुद्ध गन्धकाम्ल भरदो। ताप मापककी घुण्डी और सूचीनलीको गन्धकाम्ल में डुबो दो। दग्धककी लौसे बोतलकी एक भीतको सावधानीसे गरम करो (बोतलके नीचे दग्धक न रखना चाहिये) हाथोंको बोतलसे दूर रक्खो जिससे यदि दैववशात् बोतल टूटे तो गन्धकाम्लसे हाथ न जल जाय। उस तापक्रमको पढ़लो जिसपर पदार्थ द्रवीभूत हो रहा हो। द्रवणांक पर तापक्रम तब तक स्थिर रहता है जबतक सम्पूर्ण पदार्थ द्रवीभूत न हो जाय। तापक्रमको द्रवांकके ऊपर दो तीन अंश तक और बढ़ने दो। फिर दग्धकको हटालो। जिस तापक्रम पर द्रव ठोस होने लगे उसे पढ़लो। पहले अंक और इस अंकका औसत पदार्थका द्रवणांक है। गन्धकाम्लके स्थानमें कभी कभी मधुरिन (glycerine) का भी उपदेश करते हैं क्योंकि इससे जलनेकी कोई आशंका नहीं है।

क्वथनांक निकालना

क्वथनांक निकालनेकी विधि बहुत साधारण है। द्रवको एक बोतलमें गरम करो और उसमें तापमापक लगाओ वाष्प निकलनेका भी मार्ग होना चाहिये। कागमें दो छेद करले, एक ताप मापकके लिये और दूसरेमें एक नली भाप निकलनेके लिये लगादो। ताप मापक द्रवमें डूबना न चाहिये। उसे केवल वाष्पसे गरम होने देना चाहिये। जब द्रव उबलने लगे और तापक्रम स्थिर हो जाय तो इस तापक्रमको क्वथनांक समझना चाहिये।

कुण्डियाँ

पदार्थोंको भिन्न भिन्न तापक्रम तक गरम करने की आवश्यकता होती है। बहुतसे पदार्थ ऐसे होते हैं कि यदि उन्हें १००°शके ऊपर गरम करें तो वे विभाजित होकर नष्ट हो जाते हैं। ऐसे पदार्थों को जलकुण्डी पर गरम करना चाहिये। जल-कुँडी बहुधा लोहे या तांबेकी बनाई जाती हैं। इन्हें एक प्रकारका कटोरदान समझना चाहिये। इनके ऊपर लोहेके छल्ले रखे होते हैं जिस पर बोतल रखदी जाती है। कुण्डीमें आधी दूरके लगभग जलभर देते हैं और त्रिपाद पर रखकर गरम करते हैं। इस प्रकार बोतल भाप द्वारा गरम होती है जिसका तापक्रम १००°श से कभी नहीं बढ़ सकता है। इस प्रकार पदार्थके विभाजित होनेका डर नहीं रहता है।

जल-कुण्डीके अतिरिक्त तैल-कुण्डीका भी विशेष अवस्थाओंमें जब तापक्रम २००°—२५०°के लगभग बढ़ाना हो, तो उपयोग किया जाता है। तैल अधिकतर सरसों या अंडीका काममें लाते हैं।

कभी कभी रेणु-कुण्डीमें पदार्थोंको गरम करते हैं। इसके लिये लोहे या तांबेकी कुण्डी लेनेकी आवश्यकता नहीं है। लोहेके तवे पर बालू रखते हैं और उसपर बोतल या चीनीकी प्याली रखकर गरम करते हैं।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २३ | मिथुन, संवत् १९८३ | संख्या ३

कार्बनिक रसायनकी पद सूची

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी० एस० सी० विशारद]

यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि कार्बनिक रसायन के यौगिकोंके नामोंके भाषान्तर करनेमे बड़ी कठिनाई पड़ती है। अभीतक हिन्दी जगतमें इस कार्य्यके विषयमें कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया है। यहाँ तक कि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित वैज्ञानिक कोषके रसायन विभागमें कार्बनिक रसायनके पदोंको कोई भी स्थान नहीं दिया गया है। यहाँ एक सूची विचारणार्थ प्रस्तुत की जाती है इसक्षेत्रमें यह प्रथम प्रयास है। अनुवाद करते समय हमारे सम्मुख दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं:—१. कार्बनिक रसायनके यौगिकोंकी संख्या सहस्रोंके लगभग है २. इन यौगिकोमेंसे बहुतसे अंग्रेज़ी शब्दोंका मूल भी कहीं स्पष्टतया वर्णित नहीं है। इस सूचीमें केवल प्रारम्भिक शब्द रक्खे गये हैं। Purine group, carbohydrates, alkaloids, proteins terpenes, camphors, drugs और dyes के यौगिकों को इस सूचीमें अभी विस्तार पूर्वक स्थान नहीं दिया गया है। इसका कारण यह है कि प्रारम्भिक अवस्थामें इनके विस्तारकी अधिक आवश्यकता भी नहीं पड़ती है और इनके नामकरणका कार्य्य भी अधिक दुस्तर है। आशा है कि भविष्यमें इनका भी नामकरण हो जावेगा।

A

Acetal.	सिरकम
Acetaldehyde.	सिरकमद्यानार्द्र
Acetaldoxime.	सिरकमानोषिम
Acetamide.	सिरकामिद्
Acetamido phenetol.	सिरकामिदोदिव्यितोल
Acetanilide.	सिरकनीलिद
Acetate	सिरकेत
Acetic acid	सिरकाम्ल
glacial	हैम सिरकाम्ल
Acetic anhydride.	सिरकिक अनार्द्रिद्
Acetic ester.	सिरकिक सम्मेल
Acetin .	सिरकिन
Acetoacetic acid	सिरकोसिरकिकाम्ल
Acetoaceticester	सिरकोसिरकिक सम्मेल
Acetobromamide	सिरकोअरुणामिद्
Acetone.	सिरकोन
Acetonitrile.	सिरकोनोषिल
Acetophenone.	सिरकोदिव्योन
Acetous fermentation	सिरकस खमीरण
Acetoxime	सिरकोषिम
Acetoxyl radical	सिरकोषील मूल
Acetylchloride.	सिरकील हरिद
Acetyl radical.	सिरकील मूल
Acetylene	सिरकीलिन
Acetylide.	सिरकीलिद
Acetyl malic acid	सिरकील सेबिकाम्ल
Acid amide	अम्ल अमिद्
Acrolein.	चरपरोलिन
Acryl aldehyde	चरपरीलमद्यानाद्र
Acrylic acid.	चरपरीलिकाम्ल
Acyl radical.	अम्लील मूल
Additive compound	युक्त यौगिक
Adipic acid	पीनिकाम्ल
Alanine.	रेशमिन
Albumin	अण्ड सित
Albuminate	अण्डसितेत
Albuminoid.	अण्डसितोद्
Alcohol absolute.	मद्यविशुद्ध
Alcoholate	मद्येत
Alcoholic.	मद्यिक
Aldehyde-ammonia.	मद्यानार्द्र अमोनिया
Aldehyde.	मद्यानार्द्र
Aldol.	मद्यानोल
Aldoxime.	मद्यानोषिम
Aliphatic series.	मद्यमज्जिक श्रेणी
Alizarine.	मंजिष्ठिन
Alkaloid.	क्षारोद्
Alkyl radical.	मद्यील मूल
Alkyl amine.	मद्यील अमिन
Alkylaniline.	मद्यीलनीलिन्
Alkylene.	मद्यीलिन
Alloxan.	अलकाष्ठन
Almunium mercury couple.	स्फट-पारद जोड़ा
Amide.	अमिद्
Amine	अमिन
Aminoacetic acid.	अमिनो सिरकिकाम्ल
Amino acid.	अमिनो अम्ल
Aminobenzene.	अमिनो बानजावीन
Amino phenetol.	अमिनो दिव्यितोल
Amino propionic acid.	अमिनो अग्रिक अम्ल
Aminosuccinamide.	अमिनो रालेमिद्
Amomonium carbamate.	अमोनियम कर्बमेत
Ammonium cyanate.	अमोनियम श्यामेत
Amygdalin.	बादामिन
Amyl alcohol	केलील मद्य
Amylene.	केलीलिन
Analysis.	विश्लेषण

Anhydride.	अनार्द्रिद
Aniline.	नीलिन
Anthracene.	अंगारिन
Anthracene hydride.	अंगारिन उदिद
Anthraquinone.	अंगारा कुनोन
Antifebrin	ज्वर विनाशिन
Arabinose.	गोंदोज़
Aromatic.	सुरभिन
Artificial.	कृत्रिम
Aryl.	सुरभील
Asparagin.	पौधजिन
Asparatic acid	पौधिक अम्ल
Aspirin.	पौधिन
Assymmetric.	असमसङ्कतिक
Atropine.	विनाशिन
Azo	अजीव
Azol	अजीवोल
Azulmic acid.	अजीवलमिकाम्ल
B	
Balance Action	सममापित क्रिया
Barbituric acid.	रसम-मूत्रिकाम्ल
Barley sugar.	यवशर्करा
Base.	भस्म, आधार
Beer.	बियर शराब
Beeswax.	मोम
Beetroot.	चुकन्दर
Benzal chloride	बानजावलहरिद
Benzaldelyde.	बानजावमद्यानार्द्र
Benzaldoxime.	बानजावमानोषिम
Benzamide.	बानजावामिद
Benzene.	बानजावीन
Benzene hexabromide.	बानजावीनषष्ठ अरुणिद
Benzene sulphonate	बानजावीन गन्धोनेत
Benzenyl chloride	बानजावीनील हरिद
Benzine.	बानजाविन
Benzoic acid.	बानजाविकाम्ल
Benzoline.	बानजावोलिन
Benzonitrile.	बानजावोनोषिल
Benzophenone.	बानजावोद्व्योन
Benzoquinone.	बानजावोकुनोन
Benzoyl chloride	बानजावोइल हरिद
Benzoyl glycine.	बानजावोइलमधुन
Benzyl alcohol.	बानजावील मद्य
Benzylcyanide.	बानजावील श्यामिद
Benzylidene.	बानजावीलिदिन
Berberine.	मुकोइन
Betol.	औषधोल
Bisulphite.	अर्धगन्धित
Bitter almonds.	सड़े बादाम
Biuret.	द्वि मूत्रित
Boiling point.	कथनाङ्क
Bone oil.	अस्थितैल
Borneo camphor	बोर्निओ कपूर
Borneol.	बोर्निओल
Brandy.	ब्राण्डी
Britishgum.	बृटिशगोंद
Bromacetanilide	अरुण सिरक नीलिद
Bromanthraquinone	अरुण अंगारा कुनोन
Bromine.	अरुणिन्
Brombenzene.	अरुणो बानजावीन
Bromomethane.	अरुणो दारेन
Brucine	ब्रूसिन
Butane	नवनीतेन
Butter	नवनीत, मक्खन
Butylalcohol	नवनीतील मद्य
Butylamine	नवनीतील अमिन
Butylene.	नवनीतीलिन
Butyric acid	नवनीतीरिकाम्ल
Butyrin	नवनीतीरिन
C	
Caffeine	कहवीन

Calcium carbide	खटिक कर्बिद	Chlorhydrin	हर-उद्रिन
Camphor	कपूर	Chlorine	हरिन्
Caoutchouc	रबरू	Chlorobenzene	हरो-बान जावीन
Cane Sugar	गन्ना-शर्करा	Chloroform	हरो पिपील, क्लोरोफार्म
Capric acid	अजिकाम्ल		
Caprin	अजिकिन	Chloroformic	हरोपिपीलिक
Caproic acid	अजोइकाम्ल	Chlorotoluene	हरो टॉलिवन
Caproin	अजोइन	Cinchona	लंकोना
Caproyl	अजोईल	Cinchonine	लंकोनिन
Caprylic	अजीलिक	Cinnamic acid	दालचीनिकाम्ल
Caprylin	अजीलिन	Citricacid	नीबूइकाम्ल
Carbamic acid	कर्बमिकाम्ल	Closed chain	बंद शृंखला
Carbamide	कर्बमिद	Coaltar	कोलतार
Carbamin	कर्बमिन	Cocaine	कोकेन
Carbinol	कर्बिनोल	Combustion	भस्मीकरण
Carbohydrate	कर्बोउदेत	Compound	यौगिक
Carbolic acid	कर्बोलिकाम्ल	Condensation	लिप्तीकरण
Carbon	कर्बन	Constitution	संगठन
Carbonyl	कर्बोनील	Continuous	क्रमित
Carboxyl	कर्बोषील	Copper acetylide	ताम्र सिरकीलिद
Carbylamine	कर्बीलामीन	Cotton seed	बिनौला
Carbyloxime	कर्बीलौषिम	Cream	मलाई
Catechol	कत्थोल	Creatinine	कृतिनिन
Catechue	कत्था	Creosote oil	कृओसोत तैल
Celluloid	छिद्रोद	Creosol	कृओसोल
Cellulose	छिद्रोज	Cresol	कृसोल
Centric	केन्द्रिक	Crude	मिश्रित
Cerotic acid	षड्विंशोतिकाम्ल	Crystallisation	रवीकरण
Ceryl alcohol	षडविंशीलमद्य	Cyanate	श्यामेत
Cetylalcohol	अष्टदशील मद्य	Cyanhydrin	श्यामउद्रिन
Cetyl palmitate	अष्टदशील खजूरितेत	Cyanic acid	श्यामिकाम्ल
Chinesewax	चीनी-मोम	Cyanide	श्यामिद
Chloracetic acid	हरसिरकिकाम्ल	Cyanogen	श्यामजन
Chloral	हरल	Cyanuric acid	श्याममूत्रिकाम्ल
Chloral hydrate	हरल उदेत	Cymene	स्निग्धिन
Chlorethane	हर-ज्वलेन	Cymogene	स्निग्धजन

D

Decane	दशेन
Detection	खोज
Determination	परीक्षण
Dextrin	दक्षिणिन
Dextro rotatory	दक्षिणी परिभ्रमक
Dextro tartaric	दक्षिणी इमलिक
Dextrose	दक्षिणोज़
Diacetyl	द्विसिरकील
Diastase	शर्करद
Diazo	द्विअजीव
Diazobenzene	द्विअजीवबानज़ावीन
Dibasic	द्वि-भस्मिक
Diethyl	द्विज्वलील
Disaccharose	द्विशर्करोज़
Distillation	स्रवण
Diureid	द्विमूत्रीद
Dodecane	द्वादशेन
Double bond	द्विगुण बन्धन
Drier	शोषक
Dynamite	गतिप्रेरक, डाइनेमाइट

E

Earth oil	पार्थिव तैल
Egg albumin	अण्ड-सित
Electro plating	विद्युत्-पटन
Empirical formulae	अनुमानित सूत्र
Enantimorphous	विपरीत्-रूपक
Enzyme	प्रेरकजीव
Essence	इत्र
Esssential oils	सुगन्धित तैल
Esters	सम्मेल
Eterification	सम्मेलकरण
Estimation	अनुमापन
Ethane	ज्वलेन
Ether	ज्वलक
Ethereal oil	ज्वलकीय तैल
Ethoxide	ज्वलोषिद
Ethyl radical	ज्वलील मूल
Ethylacetate	ज्वलील सिरकेत
Ethylether	ज्वलील ज्वलक
Ethylamine	ज्वलीलामिन
Ethylate	ज्वलीलेत
Ethylene	ज्वलीलिन
Ethylidene	ज्वलीलिदिन
External	वाह्य
Extraction	निष्कर्षण

F

Fat	मज्जा
Fatty acid	मज्जिक अम्ल
Fermentation	ख़मीरण
Ferment	ख़मीर
Ferricyanide	लोहीश्यामिद
Ferrocyanide	लोहोश्यामिद
Flash point	चमक-बिन्दु
Fluorscein	विपरीति वर्णिन
Formaldelyde	पिपीलमद्यानार्द्र
Formaline	पिपीलिन
Formamide	पिपीलामिद
Formate	पिपीलेत
Formic acid	पिपीलिकाम्ल
Formonitrile	पिपीलोनोषिल
Formose	पिपीलोज़
Formula	सूत्र
Formyl	पिपीलील
Fractional distillation	आंशिक स्रवण
Fractionating columns	पृथक्-स्तूप
Freezing point	हिमांक
Fructose	फलोज़
Fruit sugar	फल-शर्करा
Fulminate	पटाखा

Furane, Furfurane	देवदारेन
Furfurole	देवदारोल
G	
Galactonic	दुग्धश्योनिकाम्ल
Galactose	दुग्धश्योज़
Gallic acid	माजूफलिकाम्ल
Gelatine	सरेस
Glacial	हैम
Glucosazone	दाक्षोसाजीवोन
Glucose	दाक्षोज़
Glucose phenyl hydrazone	दाक्षोज़ दिव्यील उदाजीविन
Glucoside	दाक्षोसिद
Glucosone	दाक्षोसोन
Glue	गोंद
Glutin	उपसरेस
Glyceric acid	मधुरिकाम्ल
Glycerine	मधुरिन
Glycerol	मधुरोल
Glycerol cyanhydrin	मधुरोलश्याम उदिन
Glyceryl	मधुरील
Glycine	मधुन
Glycocoll	मधुश्रोकोल
Glycogen	मधुश्रोजन
Glycol	मधुश्रोल
Glycol acetate	मधुश्रोल सिरकेत
Glycollic acid	मधुश्रोलिकाम्ल
Glyoxal	मधुकाष्ठ
Glyoxallic	मधुकाष्ठिक
Gold extraction	स्वर्ण पृथक्करण
Grapesugar	दाक्षशर्करा
Gum	गोंद
Guttaparcha	गटापारचा
H	
Halide	लवणिद
Halogen	लवणजन
Hardsoap	सख्त या कठोर साबुन
Heavy oil	भारी तैल
Hepta decane	सप्तदशेन
Heptane	सप्तेन
Heterocyclic	विषम वृत्तिक
Hexadecane	षष्ठदशेन
Hexamine	षष्ठामिन
Hexane	षष्ठेन
Hexone	षष्ठोन
Hippuric acid	अश्वमूत्रिकाम्ल
Homocyclic	समवृत्तिक
Homologus series	समश्रेणी
Hydracrylic	उदचरपरिक
Hydrazine	उदाजीविन
Hydrazone	उदाजीवोन
Hydrobenzamide	उदोबानजावामिद
Hydrocarbon	उदकर्बन
Hydrocyanic	उदश्यामिक
Hydroferrocyanic	उद लोहोश्यामिक
Hydrogen	उदजन
Hydrolysis	उद-विश्लेषण
Hydrolytic	उद-विश्लेषिक
Hydroquinone	उदकुनोन
Hydroxyazo-benzene	उदश्रोषश्रजोव-बानजावीन
Hydroxyl	उदश्रोषील
I	
Indigo	नील
Internal compensation	अन्तरीय पूरन
Inversion	विपर्यय
Invert sugar	विपर्यित शर्करा
Iodobenzene	नैलोबानजावीन
Iodoform	नैलो पिपील

	(आइडेफार्म)
Isobutane	सम नवनीतेन
Isobutyric	सम नवनीतीरिक
Isocyanide	सम श्यामिद्
Isoleicacid	समजैतूनिकाम्ल
Isomeric	समरूपिक
Isomerism	समरूपता
Isopropyl	समअग्रील
Isoquinoline	सम कुनोलिन
K	
Kerosine	केरोसीन तैल
	(या मिट्टी का तैल)
Ketones	कीतोन
Ketonic	कीतोनिक
Ketose	कीतोज़
Ketoxime	कीतोषिम
L	
Lactic acid	दुग्धिकाम्ल
Lactic fermentation	दुग्धिक खमीरण
Lactose	दुग्धोज़
Laevotartaric	उत्तरी इमलिक
Laevulic acid	उत्तरिकाम्ल
Laevulose	उत्तरोज़
Lead Acetate	सीससिरकेत
Light oil	हल्कातैल
Linking	संयोग
Linoleic acid	अल-जैतूनिकाम्ल
Linoleum	अलजैतूनम
Linseed oil	अलसी का तैल
Lubricating oil	स्निग्ध तैल
M	
Madder	मंजिष्ठ
Malic acid	सेबिकाम्ल
Malonicacid	सेबोनिकाम्ल
Malonylurca	सेबोनील मूत्रिआ
Malt	यवरस
Malt sugar	यव शर्करा
Maltase	यवद
Maltose	यवोज़
Mannitol	मनीतोल
Mannose	मनोज़
Marshgas	दलदलवायव्य
Melissylalcohol	त्रिंशील मद्य
Melting point	द्रवांक
Mercuric	पारदिक
Mercury	पारद
Mesitylene	त्रिदारबानीन
Mesotartaric	मध्यइमलिक
Mesoxlyl urea	मध्यकाष्ठीलमूत्रिआ
Meta compound	मध्य यौगिक
Metaldelyde	मध्यमद्यानार्द्र
Metameric	मध्य रूपिक
Metamerism	मध्य रूपता
Methane	दारेन
Methyl alcohol	दारील मद्य
Methyl orange	दारील नारंगी
Methyl radical	दारील मूल
Methylanaline	दारील नीलिन
Methylated	दारीलित
Methylene	दारीलिन
Middle oil	मध्य तैल
Milk	दूध
Milksugar	दूधकी शर्करा
Minrel oil	खनिज तैल
Mixed ether	मिश्रित ज्वलक
Molasses	सीरा
Molecular	अणुक
Mono	एक-
Monoacetin	एक-सिरकिन
Monohydric	एक-उद्रिक
Monosaccharose	एक-शर्करोज़
Mordant	दृढ़द

English	Hindi
Morphine	अफीमिन
Mucic acid	विगोंदिकाम्ल
Mucin	विगोंदिन
Multiple	गुणित, बहु
Mustrard oil	तिलका तैल
N	
Naphtha	नफथा
Naphthalene	नफथलिन
Naphthol	नफथोल
Naphthylamine	नफथीलामिन
Narcotine	नरकटिन
Native	स्थानिक
Neopentane	नवपंचेन
Nicotine	ताम्बुलिन
Nitraniline	नोषनीलिन
Nitrile	नोषिल
Nitrobenzene	नोषोबानजावीन
Nitrocellulose	नोषोछिद्रोज
Nitrogen	नोषजन
Nitoglycerin	नोषोमधुरिन
Nitrosamine	नोषोसामिन
Nitrosomethyl aniline	नोषोसोदारीलनीलिन
Nonane	नवेन
Normal	सामान्य
Neuclear	केन्द्रिक
Neucleus	केन्द्र
O	
Octane	अष्टेन
Oil	तैल
Oil cloth	तैल-पट
Olefiantgas	तैल-जनिक वायव्य
Olefine	तैल-जनक
Oleic acid	जैतूनिकाम्ल
Olein	जैतूनिन
Opium	अफ़ीम
Optical activity	रश्मिक शक्ति
Ortho	पूर्व
Osazone	ओसजीवोन
Oxalate	काष्ठेत
Oxalic acid	काष्ठिकाम्ल
Oxalylurea	काष्ठीलमूत्रिआ
Oxamide	काष्ठेमिद
P	
Palmitic acid	खजूरिकाम्ल
Palmitin	खजूरिन
Paper	कागज़, पत्र
Parabanic acid	परवनिकाम्ल
Para compound	पर-यौगिक
Para cyanogen	पर-श्यामजन
Paraffin	पर-सम्बन्धिन
Paraform	पर-पिपील
Para latic acid	परदुग्धिकाम्ल
Paraldehyde	परमद्यानार्द्र
Parchment paper	चर्म्मिक-पत्र
Pentane	पंचेन
Pentose	पंचोज़
Pepsin	पाचक रस
Peptone	पाचकोन
Petrol	पेट्रोल, मिट्टी का तेल
Petroleum	पेट्रोलियम
Phenacetin	दिव्य सिरकिन
Phenanthraquinone	दिव्यअंगारकुनोन
Phenanthrene	दिव्य अंगारिन
Phenic acid	दिव्यिकाम्ल
Phenol	दिव्योल
Phenolic	दिव्योलिक
Phenyl	दिव्यील
Phenylamine	दिव्यीलामिन
Phenylene	दिव्यीलिन
Phloroglucinol	प्रभ-द्राक्षिनोल

Phosgene स्फुरजन
Photogene चित्रजन
Phthalic acid थलिकाम्ल
Phthalic anhydride थलिक अनाद्र
Picric acid प्रवलिकाम्ल
Pinene पीनीन
Piperidine मिर्चिदिन
Piperine मिर्चिन
Polarised light ध्रुवित रश्मि
Polyhydric बहु उदिक
Polymerisation बहु रूपता
Polysaccharoses बहु शर्करोज़
Potassium पांशुजम्
Preparation रचना
Primary प्रारम्भिक, प्रथम
Propane अप्रेन
Propional अप्रोनल
Propionic अप्रोनिक
Propionyl अप्रोनील
Propyl अप्रील
Propylene अप्रीलिन
Protamine प्रत्यामिन
Protein प्रथमीन
Prussian blue प्रशियन नील
Prussiate प्रशियेत
Prussic acid प्रशियिकाम्ल
Pseudo मिथ्या
Purification शुद्धिकरण
Purpurin पीतरिन
Pyrazole प्रभअजीवोल
Pyridine मिरीदीन
Pyrogallol पर-माजूफलोल
Pyroligeneous प्रभाजनक
Pyrrole प्रभोल
Pyroxylin प्रभोषिलिन
Pyruvic acid वाह्निविकाम्ल

Q

Quadrivalency चतुर्शक्तिक
Qualitative गौण
Quaternary चत्वारिक
Quinhydrone कुन उदोन
Quinic acid कुनिकाम्ल
Quinine कुनिन
Quinol कुनोल
Quinoline कुनोलिन
Quinone कुनोन

R

Racemic अंगूरिक
Radical मूल
Raffinose रफिनोज़
Red लाल
Resolution पृथक्करण
Resorcinol रेशेनोल
Reversible विपर्ययेय
Ring compound मुद्रीय यौगिक
Rotatory परिभ्रमक
Rubber रबर
Ruberythric रबरिथ्रिक

S

Saccharic शर्करिक
Saccharimeter शर्करा मापक
Saccharine शर्करिन
Saccharose शर्करोज
Salicylic विविटपिक
Salol विविटपोल
Salt लवण
Saponification साबुन विश्लेषण
Sarco lactic acid पल दुग्धिकाम्ल
Saracosine पलोसिन
Saturated संपृक्त
Selede बन्द

Secondary	द्वितीय
Side chain	पार्श्व श्रृङ्खला
Silver	रजतम्
Simple	साधारण
Soap	साबुन
Sodium	सैन्धकम्
Softsoap	मृदु साबुन
Solar oil	सौर्य तैल
Solid	ठोस
Soluble	घुलनशील
Solvent	घोलक
Space configuration	अवकाश प्रभाव
Specific	निश्चित
Spirit	स्पिरिट, शराब
Starch	माँड़ी
Steam distillation	वाष्प स्रवण
Stearic acid	चर्बिकाम्ल
Stearin	चर्बिन
Stearine	चर्बाइन
Stereoisomerism	अवकाश सम रूपता
Strychnine	कटुनिन
Strychnos	कटुनोस
Substituted	स्थापित
Substitution	स्थापन
Succinate	रालेत
Succinic acid	रालिकाम्ल
Succinylosuccinic	रालीलोरालिक
Sugar	शर्करा
Sugar cane	गन्ना
Sugar of lead	सीस-शर्करा
Sulphanilic acid	गन्धनीलिकाम्ल
Sulphide	गन्धिद्
Sulphinic acid	गन्धिनिकाम्ल
Sulpho	गन्धो
Sulphonal	गन्धोनल
Sulphone	गन्धोन
Sulphonic	गन्धोनिक
Sulphonium	गन्धोनम
Sulphovinic	गन्धोविनिक
Sulphoxide	गन्धोषिद्
Sulphur	गन्धक
Sulphuric acid	गन्धकाम्ल

T

Tannin	खाल
Tartar	इमल
Tartaric acid	इमलिकाम्ल
Tartarate	इमलेत
Tartronic acid	इमलोनिकाम्ल
Terephthalic acid	तटीथैलिकाम्ल
Terpene	तारपीन
Tertiary	तृतीय
Tetra	चतुर्
Thiophene	गन्धकोद्दिव्य
Tobacco	ताम्बूल
Tolu	टोल्यू
Toluene	टोल्यीन
Toluic acid	टोलियकाम्ल
Toluidine	टोलियदिन
Tri	त्रय
Triacetin	त्रयसिरकिन
Trihydric	त्रय-उद्रिक
Tropic acid	नाशिकाम्ल
Tropine	नाशिन
Turpentine	तारपीन का तैल

U

Unsaturated	असंपृक्त
Urea	मूत्रिआ
Ureid	मूत्रीद
Urethane	मूत्र ज्वलेन
Uric acid	मूत्रिकाम्ल

V

Vacuum	शून्य
Valency	संयोग शक्ति
Valent	शक्तिक
Valeric acid	बलिकाम्ल
Valeryl	बलील
Vapour density	वाष्पघनत्व
Varnish	वार्निश
Vaseline	लेपन, वेसलीन
Vegetable	वनस्पतिक
Vinegar	शराब
Vinylbromide	लतील अरुणिद्

W

Wax	मोम
Whisky	व्हिस्की शराब
Wine	अंगूर की शराब
Wintergreen oil	शिशिर-हरित तैल
Wood	काष्ठ
Wool	रुई

X

Xylene	वनीन
Xylidine	वनिदिन
Xylonite	वनोनित
Xylose	वनोज़

Y

Yeast	खमीर कीट
Yellow	पीत

Z

Zinc	दस्तम्
Zymase	प्रेरद्

वायव्य सम्बन्धी सिद्धान्त

[ले०.श्री सत्यप्रकाश, बी० एस० सी० विशारद]

डाल्टन का सिद्धान्त

ब कोई वस्तु गरम की जाती है तो उसके आयतनमें कुछ वृद्धि हो जाती है। यह नियम ठोस, द्रव और वायव्य तीनोंके विषयमें एक सा है। इसी प्रकार किसी वस्तुको ठण्डा करें तो वह सिकुड़ जायगी। सारांश यह है कि वस्तुके आयतन और तापक्रम में बड़ा सम्बन्ध है। ठोस पदार्थ गरम करने पर बहुत कम बढ़ते हैं, द्रव पदार्थोंमें ठोसकी अपेक्षा अधिक बढ़ती होती है। तापमापकमें पारेको बढ़ता हुआ सभी ने देखा है। पर वायव्य पदार्थ थोड़ा सा ही गरम करनेपर बहुत बढ़ जाते हैं।

वायव्योंके सम्बन्धमें जिस प्रकार तापक्रमका विचार रखना पड़ता है इसी प्रकार दबाव का भी ध्यान रखना चाहिये। ठोस और द्रव पदार्थोंपर दबावका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः जब हम वायव्योंके आयतन और तापक्रमका अध्ययन करेंगे तो हमको दबाव स्थिर रखना पड़ेगा। कल्पना कीजिये कि १ घन फुट वायुका कुछ अंश तापक्रम बढ़ानेसे इसका आयतन १$\frac{1}{2}$ घन फुट हो गया। इस प्रकार आयतनमें $\frac{1}{2}$ घन फु० की वृद्धि हुई। यदि हम तापक्रम न बढ़ाते और वायुके दबावको कम करते तो भी आयतन बढ़ता और पहलेके समान वृद्धि होती। अतः वायुके आयतन बढ़ानेके दो साधन हैं—(१) तापक्रमको बढ़ाना और (२) दबावको कम कर देना।

इस समय हम केवल इतना ही विचार करेंगे कि यदि दबावमें कोई भेद न किया जाय और केवल तापक्रम बढ़ाया जाय तो आयतन किस हिसाबसे बढ़ेगा। आयतनके बढ़नेका नाम विस्तार और कम होनेका नाम संकोच है। यहाँ एक बात और समझलेनी उचित है कि ठोस, द्रव और वायव्योंमें एक विचित्र भेद है। समान आयतनके एकसे दो ठोस पदार्थ लीजिये, एक लोहेका और दूसरा चाँदीका। दोनोंको एक ही तापक्रम तक गरम कीजिये। अब दोनोंका आयतन देखिये। इस समय दोनोंके आयतन एक दूसरेसे भिन्न होंगे। इससे यह सिद्ध है कि चाँदी और लोहा दोनोंमें भिन्न मात्रामें विस्तार होता है। यही अवस्था द्रवोंकी है। पानी पारेको अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत हो जाता है। पर वायव्योंके विषयमें यह बात नहीं है। उदजन, ओषजन और नोषजन तीनोंके समान आयतनको एकसे दबावपर समान तापक्रम तक गरम करके फिर आयतनोंकी तुलना कीजिये। अब भी तीनोंके आयतन परस्पर में बराबर होंगे। अतः यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक वायव्य पर तापक्रमका एक समान प्रभाव पड़ता है और उनमें विस्तार और संकोच भी एकसाही होता है।

डाल्टन नामक वैज्ञानिकने वायव्योंके विषयमें एक उपयोगी सिद्धान्त निकाला है। बहुत सावधानीसे प्रयोग करनेपर उन्होंने यह निश्चित किया है कि यदि दबाव स्थिर रक्खा जाय तो प्रत्येक वायव्य ०°शसे १°श तक तापक्रम बढ़ानेपर अपने आयतन का लगभग $\frac{१}{२७३}$ भाग बढ़ेगा। इस प्रकार जिस वायव्य का आयतन ०°श पर २७३ है उसका आयतन—

१°श	पर	२७४
२°श	पर	२७५
३°श	पर	२७६
१०°श	पर	२८३
त°श	पर	(२७३+त)

हो जावेगा। इस नियम का ध्यान रखकर तापक्रमकी अपेक्षासे किसी गैसके आयतनके विस्तारका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।

उदाहरण—१. किसी गैसका आयतन ५°श पर ५७६ घन शतांश मीटर है तो बताओ कि २५°शपर उसका क्या आयतन होगा?

जिस गैस का आयतन ०°श पर २७३ होता है उसका ५°श पर आयतन २७८ होता है और २५°श पर २९८ होगा।

∴ तापक्रम ५°श से २५°श तक वृद्धि होने पर—

२७८ आयतन बढ़कर २९८ होजाता है।

∴ ५७६ ,, ,, $\frac{२९८\times५७६}{२७८}$=६१७ हुआ।

२. किसी वायव्यका आयतन ३०°श पर १००० घन. श. मी. है तो बताओ कि ०°श पर उसका क्या आयतन होगा?

जिस गैसका आयतन ०°श पर २७३ है, उसका ३०°श पर आयतन (२७३+३०) अर्थात् ३०३ होगा।

अतः तापक्रममें ३०°शसे ०°श तक कमी होने पर—

३०३ आयतन घटकर २७३ होजाता है।

∴ १००० ,, ,, $\frac{१०००\times२७३}{३०३}$=९०१ हो जायगा।

बायलका सिद्धान्त

जिस प्रकार डाल्टनने वायव्योंके आयतन और तापक्रममें सम्बन्ध निश्चित किया था, उसी प्रकार बायल नामक दूसरे वैज्ञानिकने वायव्योंके आयतन और भिन्न दबाओंमें सम्बन्ध निश्चित किया है। हम पहले कह चुके हैं कि यदि वायुका तापक्रम स्थिर रक्खा जाय तो दबावके बढ़ने पर उसका आयतन कम होता जायगा तथा यदि

दबाव कम कर दिया जाय तो आयतन बढ़ जायगा।

दबावमापक यंत्र से दबाव नापा जा सकता है। इसके बनानेको सरल रीति यह है कि काँचकी दृढ़ नली एक गज़ लम्बी लो और इसके एक सिरेको बन्द कर दो, फिर इसे पारेसे पूरा भर दो और इसके मुँहको अंगूठेसे बन्द करके एक प्यालेमें जिसमें पारा भरा हो डुबोकर उल्टा खड़ा करदो। अंगूठेको निकाल लो। ऐसा करनेपर पता चलेगा कि पारा धीरे धीरे गिर रहा है। ६ इञ्चके लगभग गिरने पर पारेका गिरना रुक जायगा। यदि नलीको एक ओर झुका दिया जाय [देखो विज्ञान प्रवेशिका भाग २ चित्र ५६] तो पारा नलीमें बढ़ने लगेगा पर प्यालेमें पारेके तलसे नलीके पारेके ऊपरी तलतककी ऊँचाई उतनी ही होगी जितनी पहले थी। नलीमें ६ इंच के लगभग जो खाली जगह थी उसमें कोई भी वायव्य नहीं है। वह शून्य स्थान है। इसका प्रयोग सबसे पहले टुरेसेलीने किया था। इस शून्य स्थानको 'टुरेसेलीय-शून्य' कहते हैं। अब प्रश्न यह है कि यह पारा क्यों गिरा और नलीको झुकानेपर पारा क्यों बढ़ने लगा। इसका कारण यह है कि वायु मण्डल लगभग ४० मीलतक ऊपर फैला हुआ है। प्यालेके पारेके ऊपर इस वायु मण्डलका कुछ दबाव है। यह मण्डल प्याले के पारेको नीचे दबाता है और फिर यह पारा नलीके पारेको नलीमें चढ़ा देता है। वायुमण्डलका जितना दबाव होगा उतना ही पारा नलीमें ऊपर बढ़ेगा। और फिर रुक जायगा। यदि वायु मंडलका दबाव बढ़जाय तो नलीमें पारा थोड़ासा और ऊँचा चढ़ जायगा। इस प्रकार नलीमें पारेकी ऊँचाई नापनेसे दबाव नापा जा सकता है। [देखो विज्ञान प्रवेशिका दूसरा भाग पृ० २०५-२०७]

अब हम दबाव और वायव्यके आयतनके सम्बन्धका वर्णन करेंगे। यदि तापक्रम स्थिर रक्खा जाय तो दबावके बढ़ानेपर वायव्यका आयतन कम होता जायगा। यदि दबाव पहले की अपेक्षा दुगुना कर दिया जाय तो आयतन पहलेसे आधा रह जायगा। यदि दबाव तिगुना कर दिया जाय तो आयतन पहलेसे तिहाई हो-जायगा, इसी प्रकार—दबाव १० गुनाकर देनेपर आयतन दसवाँ भाग ही रह जायगा।

दबाव —१, २, ३, ... १० ... द

आयतन—१, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, ... $\frac{१}{१०}$ ... $\frac{१}{द}$

इसी प्रकार यदि दबाव पहलेकी अपेक्षा आधा रहजाय तो आयतन दुगुना हो जायगा। दबाव तिहाई कर देनेपर आयतन तिगुना होजायगा।

दबाव —१, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, ...द

आयतन—१, २, ३, ...$\frac{१}{द}$

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस अनुपातमें दबाव बढ़ता हैं उसी अनुपातमें आयतन कम होता है। इसे व्युत्क्रम-अनुपात कहते हैं। बायलने सिद्धान्त इस प्रकार प्रस्तुत किया कि जब तापक्रम स्थिर रहता है तो वायव्यके आयतन और दबावमें व्युत्क्रम अनुपात रहता है।

उदाहरण—किसी वायव्य का आयतन ७८० मिली मीटर दबावपर ५३० घन श० मी० है तो बताओ कि ७६० मि० मी० दबावपर उसका क्या आयतन होगा?

बायलके नियमानुसार दबाव और आयतनमें व्युत्क्रम अनुपात रहता है। अतः

यदि ७८० मि० मी० दबावपर आयतन ५३० घ० श० मी है

तो　१　,,　,,　,,　५३० × ७८०　होगा

,,　७६०　,,　,,　,,　$\frac{५३० \times ७८०}{७६०}$　,,

यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि दबाव कम किया जायगा आयतन तो बढ़ेगा तथा यदि दबाव अधिक किया जायगा तो आयतन कम होजायगा। यदि क मिली० मी० दबावपर वायव्यका आयतन च घन० श० मी० है तो ख-

मिली० मी० दबावपर आयतन $\frac{क \, च}{ख}$ घन० श० होगा।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिये कि ज्यों ज्यों दबाव बढ़ता है त्यों त्यों आयतन कम होता जाता है। पर वायव्यका भार उतना ही रहता है, भार पर दबाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः यह स्पष्ट ही है कि दबावके बढ़जानेसे वायव्यका आपेक्षिक घनत्व भी बढ़ता है, क्योंकि आपेक्षिक घनत्व = $\frac{भार}{आयतन}$ अतः दबाव और आपेक्षिक घनत्व समानुपाती हैं।

दबाव और तापक्रमका आयतनपर प्रभाव

अब तक हमने दबाव और तापक्रमका आयतन पर पृथक् पृथक् जो प्रभाव पड़ता है उसका वर्णन किया है। जब हमने दबाव और आयतन के सम्बन्धकी विवेचना की थी तब तापक्रमको स्थिर रखा था। और जब तापक्रम और आयतन के सम्बन्धपर विचार किया था तब दबावको स्थिर रक्खा था। कल्पना कीजिये कि वायव्य पर के दबाव और उसके तापक्रम दोनों में परिवर्त्तन हो रहा है। ऐसी अवस्था में आयतन में क्या परिवर्तन होगा? इस प्रश्न का उत्तर डाल्टन और बायल दोनों के सिद्धान्तोंका साथ साथ उपयोग करने से निकाला जा सकता है। निम्न उदाहरण से यह बात स्पष्ट है:—

उदाहरण—२५° श तापक्रम और ४६० मि· मी· दबाव पर किसी वायव्यका आयतन ३५० घन· श· मी· है तो ३०° श और ५०० मि· मी· दबाव पर इसका आयतन क्या होगा?

उपर्युक्त सिद्धान्तों के प्रयोग से यदि दबाव ४६० मि· मी· पर स्थिर हो तो जिस गैस का आयतन २५° श पर ३५० घन· श· मी· है उसका आयतन ३०° श पर यह होगा—

$$\frac{(२७३+३०)\times ३५०}{(२७३+२५)} = \frac{३०३\times ३५०}{२९८} \text{ घन· श· मी·}$$

अब यदि दबाव ४६० मि· मी· से ५०० मि· मी· हो जाय तो आयतन बायलके सिद्धान्तके अनुसार यह होगा—

$$\frac{३०३\times ३५०}{२९८}\times\frac{६००}{४५०} = \text{घन· श·}$$

सामान्यतः यदि त° श तापक्रम और द मि· मी· दबाव पर आयतन स घन· श·मी· हो तो थ° श तापक्रम और ध मि· मी· दबाव पर आयतन $\frac{(२७३+थ^\circ)\times स\times द}{(२७३+त^\circ)\times ध}$ घन· श· मी· होगा।

यहां यह कहदेना भी आवश्यक है कि आयतन बहुधा घन· श· मी में या लीटर (=१००० घन-श· मी·) में नापा जाता है। और दबाव मिली मीटर में अधिकतर दिया जाता है। दबाव मिली मीटर में देने से यह तात्पर्य्य नहीं है कि दबाव लम्बाई के समान कोई गुण है जिसे मिली मीटर में नापते हैं। जब हम कहते हैं कि दबाव अमुक मि· मी· है तो हमारा तात्पर्य्य यह है कि दबाव उतने मिलीमीटर ऊँचाई वाले पारदके दबाव के बराबर है। जिस समय सामान्य ताप क्रम और सामान्य वायव्य का निर्देश किया जाय, उस समय ०° स और ७६०° मि· मी· दबावका तात्पर्य्य समझना चाहिये।

बहुत से स्थानों पर साधारण तापक्रम सूचक अंकोंके स्थानमें परमांशोंका प्रयोग किया जाता है। यह सिद्ध किया गया है कि वास्तविक शून्यांक हमारे शतांशमापकके शून्य से २७३° और नीचे है। इस प्रकार यदि हम इस वास्तविक शून्यांक को शून्य मानकर अन्य तापक्रमों की गणना करें तो हमें साधारण तापक्रम-अंशों में २७३ जोड़ देना चाहिये जोड़ कर जो अंश आता है उसे परमांश कहते हैं। उदाहरणतः—

$$१^\circ \text{ श} = (१+२७३)^\circ \text{ परमांश}$$
$$४^\circ \text{ श} = (४+२७३)^\circ \text{ परमांश}$$
$$क^\circ \text{ श} = (क+२७३)^\circ \text{ परमांश}$$

गेलूज़कका सिद्धान्त

सं० १८६५ वि० में गेलूज़क ने एक उपयोगी सिद्धांतकी खोजकी जो इस प्रकार है—यदि कुछ वायव्यों में रासायनिक संयोग होता है तो उनके आयतनोंमें एक निश्चित सरल अनुपात विद्यमान रहता है और यदि संयोगद्वारा कोई वायव्य पदार्थ प्राप्त होता हो तो उसके आयतन और पूर्व वायव्य के आयतन में भी एक सरल अनुपात विद्यमान रहेगा। निस्सन्देह ये आयतन एक ही तापक्रम और दबाव पर नापे जाने चाहिये। यह सिद्धान्त निम्न प्रयोगों द्वारा स्थिर किया गया था जिनका वर्णन आगे पुस्तकमें किया जायगा—

१. १ आयतन ओषजन २ आयतन उद्जन से संयुक्त होकर २ आयतन भाप देता है।

२. १ आयतन हरिन १ आयतन उद्जनसे संयुक्त होकर २ आयतन उद्हरिकाम्ल देता है।

३. १ आयतन नोषजन २ आयतन ओषजनसे संयुक्त होकर २ आयतन नोषजन द्विओषिद् देता है।

४. १ आयतन नोषजन ३ आयतन उद्जनसे संयुक्त होकर २ आयतन अमोनिया देता है।

इस सिद्धान्तका लाभ यह है कि यदि वायव्य तत्वोंका घनत्व ज्ञात हो और यदि यह ज्ञात हो कि उनके संयोगमें आयतनोंका अनुपात क्या है तथा यौगिक वायव्य के आयतन और मूल तत्वोंके आयतनोंमें क्या अनुपात है तो प्राप्त यौगिकका घनत्व निकाला जा सकता है।

उदाहरण—(१) दो आयतन उद्जन १ आयतन ओषजन वायव्य से संयुक्त होकर २ आयतन भाप देता है। उद्जनका घनत्व वायुकी अपेक्षा ०·०६६३ है, अर्थात् किसी स्थिर दबाव और तापक्रमपर जिस आयतनमें १ ग्राम हवा आवेगी उतनेमें ही ०·०६६६ ग्राम उद्जन आवेगा। इसी प्रकार ओषजनका घनत्व १·१०५६ है। अतः—

२ आयतन उद्जनका भार ०·१३८६ ग्राम है।
१ " ओषजन " १·१०५६ ग्राम है।

अतः २ आयतन भापका भार १·२४४२ ग्राम है।
∴ १ " " " ०·६२२१ ग्राम है।

अतः वायुकी अपेक्षासे भापका आपेक्षिक घनत्व ०·६२२१ है।

दूसरा उदाहरण—१ आयतन उद्जन १ आयतन हरिन्—गैसके साथ संयुक्त होकर २ आयतन उद्हरिकाम्ल देता है। उद्जन का घनत्व ०·०६९३, और हरिन्का घनत्व २·४४३५ है तो उद्-हरिकाम्ल का क्या घनत्व होगा?

१ आयतन उद्जनका भार ०·०६६३ ग्राम है।
१ " हरिन् " २·४४३५ "

२ आयतन उद्हरिकाम्ल " २·५१२८ "
∴ १ " " १·२५६४ "

∴ उद्हरिकाम्ल वायव्यका घनत्व १·२५६४ है।

एवोगैड्रोका सिद्धान्त

एवोगैड्रोने वायव्योंके विषयमें एक उपयोगी सिद्धान्त निर्धारित किया है। इसका कथन है कि प्रत्येक वायव्य [चाहे वह तत्व हो या कोई यौगिक हो] के समान आयतनमें जबते स्थिर तापक्रम और दबाव पर होंगे, अणुओंकी संख्या समान होगी। तात्पर्य्य यह है कि जितने आयतन में किसी दिये हुए तापक्रम और दबाव पर जितने उद्जनके अणु आवेंगे उतने आयतनमें उतने ही अणु हरिन, ओषजन, नोषजन आदि तत्व-वायव्यों के आवेंगे। इसी प्रकार उतने ही आयतनमें यौगिक-गैस जैसे अमोनिया, उद्हरिकाम्ल आदि के उतने ही अणु आवेंगे।

उ₂ + ह₂ = २उह

चित्र द्वारा स्पष्ट है कि यदि दो कोष्ठोंका आयतन बराबर हो तो उद्जन और हरिनके

अणुओंकी संख्या भी दोनों कोष्ठोंमें बराबर होगी। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि दोनों वायव्यों का तापक्रम और दबाव एकही होना चाहिये। उद्जन और हरिन् मिलकर जिस प्रकार उद्हरिकाम्ल बनाते हैं वह भी चित्रमें स्पष्ट किया गया है। चित्रसे स्पष्ट है कि उद्हरिकाम्लके आयतन का उतना ही भाग लिया जाय जितना उद्जन या हरिन् का था, तो उनमें भी उतने ही अणु होंगे जितने उद्जन के आयतन में थे।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिये कि अणु और परमाणुमें क्या भेद है। जलके यदि विभाग करते जावें तो उसकी एक अन्तिम अवस्था आवेगी। इस सूक्ष्मतम कणको जलका अणु कहेंगे। इस अणुको और विभाजित करनेपर जल तो न मिलेगा पर प्रत्येक अणुमें २ परमाणु उद्जन और १ परमाणु ओषजन मिलेगा अतः अणु किसी पदार्थ की वह सूक्ष्मतम अवस्था है जिसमें पदार्थके परिमाणु मिलकर रह सकते हैं। अणु यौगिकों और तत्वों दोनोंके हो सकते हैं पर परमाणु केवल तत्वोंके होते हैं। उद्जन ($उ_2$), ओषजन ($ओ_2$) हरिन् [$ह_2$], नोषजन [$नो_2$], उद्हरिकाम्ल [उ ह] आदि पदाथ के अणुओंमें दो परमाणु हैं, और कर्बनद्विओषिद [क $ओ_2$], ओज़ोन [$ओ_3$] आदि पदार्थोंके प्रत्येक अणुमें ३ परमाणु हैं। इसी प्रकार अमोनिया [नो $उ_3$] स्फुर [$स्फु_4$] के अणुओंमें ४ परमाणु हैं।

एवोगैड्रोके उपर्युक्त सिद्धान्तका समर्थन इस बातसे होता है कि प्रत्येक आदर्श गैसपर तापक्रम और दबावका प्रभाव एकही प्रकारका होता है। तापक्रमके बढ़ानेपर प्रत्येक वायव्यका विस्तार समान ही होता है जैसा कि डाल्टनके सिद्धान्त द्वारा पहले दिखाया जा चुका है। इसी प्रकार दबावके प्रभावसे भी प्रत्येक वायव्य एक समानही सिकुड़ता है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब प्रत्येक वायव्यके समान आयतनमें अणुओंकी संख्या समानही हो। यदि संख्या समान न होती तो बराबर तापक्रम या दबाव में वृद्धि करनेसे आयतनके प्रसारकी मात्रा भी भिन्न भिन्न होती। पर ऐसा नहीं होता है।

ग्रैहमका निस्सारण सिद्धान्त

सं० १८८० वि० में डोबरीनर नामक वैज्ञानिकने यह देखा कि जब एक काँचकी कुप्पी को जिसमें एक छोटा सा छेद था, उद्जनसे भर कर पानीके ऊपर उलटा रक्खा गया तो दूसरे दिन उद्जनका आयतन कम होगया। इससे सिद्ध है कि कुछ उद्जन निकल भागा था। पर जब कुप्पीको एक बड़े कांचके मटकेसे ढककर जिसमें भी उद्जन भरा था, रक्खा गया तो कुप्पीके उद्जनका आयतन कम न हुआ। यदि उसी कुप्पीमें वायु भर कर वायु मंडलमें रक्खा गया तो भी आयतनमें कोई भेद नहीं हुआ।

दो बेलनाकार-पात्र लो जिनके मुंह बिलकुल चिकने हों, और एक में उद्जन गैस भर दो और दूसरे में कर्बन-द्वि-ओषिद गैस भरो। एक पात्रके ऊपर दूसरा पात्र औंधा करके रख दो। कर्बन-द्विओषिद वाला पात्र नीचे रहे। उद्जनकी अपेक्षा कर्बन द्विओषिद २२ गुना भारी है। अतः कर्बन-द्विओषिदको नीचेके पात्रमें ही रहना चाहिये था और उद्जन ऊपरके पात्रसे नीचेके पात्रमें न आना चाहिये। पर ऐसा नहीं होता है। थोड़ी देरके पश्चात् कर्बनद्विओषिद ऊपर वाले पात्रमें और उद्जन नीचेके पात्रमें बहकर चला आता है, यहाँ तक कि एक वह अवस्था आती है जब दोनों वायव्योंका एक रस मिश्रण बनाता है ऊपर और नीचेके पात्रोंमें दोनों वायव्योंका एकसा मिश्रण इस प्रयोग से यह स्पष्ट है कि वायव्योंका आपेक्षिक घनत्व चाहे कुछ भी क्यों न हो, यदि उनके पात्र एक दूसरेके संसर्गमें रक्खे जावेंगे तो वायव्य एक पात्र से दूसरे पात्रमें निस्सारित होगा [बह कर आजावेगा] यह निस्सारण क्रिया तब बन्द होजावेगी जब दोनों पात्रों पात्रोंमें दोनों गैसोंका सम-मिश्रण बन जावेगा।

(शेष फिर)

कृषि-कमीशन

[ले० श्री शीतलाप्रसाद तिवारी]

(लेखक की 'कृषि-विज्ञान' नामक पुस्तक से प्रकाशित)
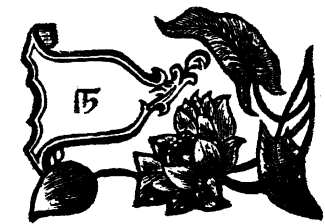
जब कभी दुर्भिक्ष तथा अन्यान्य कारणों वश किसी भी देशवासियों के उदर भरण-पोषण का प्रश्न उग्र तथा भयावह रूप धारण कर लेता है, तो देश के कोने कोने में उथल-पुथल मच जाती है। ऐसे समय में लोग क्षुधा-चिन्ता से विक्षिप्त हो जाते हैं; और लोगों को आत्म-रक्षा के हेतु जो कुछ भी मार्ग सामने दिखलाई पड़ते हैं—चाहे वह प्रशस्त हों अथवा अ-प्रशस्त। अधिकतर उन्हीं की शरण ग्रहण करना पड़ता है। ऐसे समय में यदि देश की सरकार पूर्णतः से क्षुधा पीड़ित प्रजा के हेतु पर्याप्त सुविधाओं के उपस्थित करने का प्रयत्न करती है—और उसे सफल बना देती है। तो उस देश की प्रजा का अनुराग राजा के प्रति बढ़ जाता है। इसके फल स्वरूप प्रजा में राज-भक्ति की मात्रा सदैव बढ़ती ही चली जाती है। इसके अनेकों प्रमाण भारत के प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। इतना ही नहीं यह तो सभी जानते हैं कि भारतवर्ष एक 'धार्मिक' देश है। इसकी समग्र बातों की स्थापना की भित्ति धार्मिक विश्वासों की ही नींव पर खड़ी की गई है। भारत के प्राचीन धर्म्म-ग्रन्थों में इस विषय का भली प्रकार से प्रतिपादन किया है कि यदि देश का राजा धर्मिष्ट होता है। तो प्रजा को किसी भी प्रकार का प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय कष्ट नहीं सहन करना पड़ता है। इसी सिद्धान्त के प्रतिकूल यदि राजा धर्म्मच्युत हो कर के पतित हो जाता है। तभी देश में दुर्भिक्ष आदि प्रजा पीड़ित कष्टों की दिनों—दिन वृद्धि होती रहती है।

निःसन्देह यह बात सत्य है कि हिन्दू-राज्य काल में भी भारत पर दुर्भिक्ष का प्रकोप सदैव से होता रहा है। परन्तु जब कभी ऐसे संकट उपस्थित हो गये हैं। तो उस काल के ऋषियों, मुनियों ने राजा को विवश कर के प्रायश्चित करा कर के यज्ञों द्वारा इन्द्रादिक देवताओं को प्रसन्न कर के दुर्भिक्ष की यन्त्रणाओं का निवारण किया करते थे। एक किम्बदन्ती से ज्ञात होता है कि किसी समय में भारत में दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे साधारण प्रजा तो क्या बड़े से बड़े ऋषि-मुनि भी क्षुधा चिन्ता से व्यग्र हो गये, तो सुना जाता है कि उस काल में पशुओं के मास का एक यज्ञ किया गया और यज्ञ के पश्चात् प्रसाद स्वरूप कुछ ऋषियों ने मास भक्षण करना चाहा, तो उसी समय स्वर्ग के देवगण एकाएक इस दृश्य को देख कर कांप उठे, और सब लोग भूतल पर आये, और ऋषियों से परामर्श किया, तो यह निर्णय हुआ कि वर्षा के पश्चात् किसी ऐसे अन्न का आविष्कार किया जाय, जो कि शीघ्र से शीघ्र अर्थात् एक ही मास में तैयार हो जाय। जिससे लोग उसे खा पीकर के

जीवन रक्षा कर सकें। इस परामर्श के पश्चात् निश्चय हुआ कि 'सांवा' और 'काकुन' के बीज बोये जांय। यही बीज एक मास में ही अपना फल दे सकते हैं। कहा जाता है कि उसी समय में उक्त बीजों का प्रादुर्भाव देश भारत में हुआ है। लोग जानते ही हैं कि उक्त बीज अधिकतर वर्षा के आरम्भ काल में अर्थात आषाढ़ में बो दिये जाते हैं, और सावन, भादों भर में तैयार हो जाते हैं। इन्हीं प्रकार के उपकारों से प्राचीन काल से ही भारतीय प्रजा अपने इन हितैषियों को बड़े प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी, और उनका आदर-सत्कार करती थी। इतना ही नहीं उनके बताये हुये मार्ग पर चला करती थी। इसके फल स्वरूप अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत की प्रजा राज-भक्ति में संसार के अन्यान्य देशों से सदैव से ही आगे रही है।

परन्तु सामयिक परिवर्तनानुसार जैसे जैसे हिन्दू राज्य तहस नहस होते गये, और भारत को विदेशियों के चंगुल में फंसना पड़ा तैसे ही तैसे भारत में उत्तरोत्तर दुर्भिक्ष आदि दैविक दुःखों की भी सीमा बढ़ती गई। विदेशियों के आक्रमण से दैविक दुःखों की बढ़ोत्तरी के साथ साथ आक्रमणकारियों द्वारा भी देश की कृषि तहस-नहस कर दी जाती थी। जिससे अनेकों प्रकार की हानि भारतवासियों के कृषि-व्यवसाइयों को उठाना पड़ता था। विदेशियों के निरन्तर आक्रमणों के कारण तथा राज्य की उथल-पुथल से प्राचीन कृषि-विज्ञान का साहित्य एक प्रकार से लोप ही हो गया। यह सब होते हुये भी हम यह कहने में संकोच नहीं कर सकते कि बहुत से विदशी आक्रमणकारियों ने भी जब भारत को अपने अधीन कर लिया, और शासन करने लगे, तो उनमें से भी कुछ उत्तम श्रेणी के शासकों ने भारत के अन्यान्य व्यवसायों की रक्षा तथा उन्नति के साथ कृषि-व्यवसाय की रक्षा और उन्नति में भी दत्तचित्त हुये, और उनसे जो कुछ हो सका, उन्होंने इस कृषि-व्यवसाय की उन्नति के हेतु अपने राज्य-काल में किया भी। इसी कारण से वे प्रजा की दृष्टियों में पूज्यनीय ठहराये गये, और भारत की प्रजा ने उनके साथ वही राज्य-भक्ति प्रदर्शित की, जो कि यह प्राचीन काल से अपने हिन्दू राजाओं के प्रति करती चली आ रही थी। जिनके आँखें और ज्ञान है, वह भारत के मुसलमानी काल के इतिहास का अवलोकन कर के इस बात का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अंग्रेजी राज्य-काल के आरंभ से आज तक भारतवासियों को निरन्तर कई एक दुर्भिक्षों के प्रकोप का शिकार बनना पड़ा है। जिसके कारण भारतीय प्रजा को अनेकों यन्त्रणायें भोगनी पड़ी हैं, और उनके दुःख निवारण का कोई वास्तविक कार्य्य सरकार की ओर से इस रूप में नहीं किया जा सका था। जिससे समग्र प्रजा को उससे पर्याप्त सहायता मिल सकी हो, और प्रजा के दुःख दर्द निवारण हो सके हों। इसी सम्बन्ध में इसी स्थान पर हरेक भारतवासी यह भी कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करने के लिये तैयार है। कि निःसन्देह यह बात सत्य और ठीक है कि अंग्रेजी शासन-काल में जब जब दुर्भिक्षों का सामना करना पड़ा है। तब तब भारत सरकार का अधिकारी वर्ग दुर्भिक्ष-चिन्ता से चिन्तित

होकर अवश्य कुछ न कुछ उपाय प्रजा के कष्ट निवारण के हेतु जहाँ तक हो सका है, किये हैं। परन्तु देश की परिस्थित से परिपूर्ण रूप से परिचित न होने के कारण दुर्भिक्ष काल की सरकार द्वारा निर्माण की हुई समितियों के व्यक्तियों ने जो कुछ भी कार्य किया है। उससे कोई व्यापक तथा संतोषजनक लाभ प्रजा को नहीं पहुंच सका है। इस बात को देश के अच्छे २ विद्वानों ने क़बूल किया है। हाँ उन निर्माणक समितियों के सदस्यों के काम से इतना लाभ अवश्य हुआ है कि भारत में राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभागों की स्थापना हो गई है। जिससे भी भारतीय प्रजा को अभी वास्तविक लाभ नहीं पहुंचा है। इसमें संदेह नहीं कि यदि निरन्तर प्रजा की अवस्थाओं का ज्ञान करके प्रचार किया जाय। तो अवश्य लाभ पहुंचेगा।

भारत की प्रजा बहुत दिनों से आधा पेट भोजन करती चली आ रही है। उसे वर्तमान काल में अथवा निकट भविष्य में स्वप्न में भी इस बात की आशा नहीं है। कि हमारी यह ग़रीबी किसी भी प्रकार से दूर हो सकेगी। जब किसी ने कोई तरकीब उनको अपने सुधार की बताई, तो पहिले तो उस पर वह बहुत सोच विचार करते हैं। यदि सोच विचार से—अथवा एक दूसरे की देखा—देखी वह तरकीब अच्छी जँचती है तो उसे ग्रहण कर लेते हैं।

इसी उक्त सिद्धान्त के फल स्वरूप सहस्रों वर्षों से पद दलित, पीड़ित, अपमानित, उदर चिन्ता से चिन्तित भारतीय प्रजा को जब भारत सरकार द्वारा कोई भी आश्वासन अंग्रेज़ी राज्य-काल से आज तक नहीं मिला। प्रत्युत इसके जो अधिकारी सम्राट द्वारा यहां नियुक्त होकर के आये। उन्होंने देश पर राज्य करने की तथा अपना प्रभुत्व और सत्ता स्थापित करने की एक नूतन ही प्रथा का आविष्कार किया—अर्थात शासकों की नूतन प्रथा यह थी कि भारतीय रजवाड़ों, रईसों, राजाओं महराजाओं को तथा बड़े बड़े प्रभावशाली व्यक्तियों को आदर-सम्मान प्रदान कर के तथा उन्हें हरेक प्रकार से अपनी नीतियों द्वारा संतुष्ट करके देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में रखना।

इस उक्त प्रणाली के आविष्कार, प्रयोग, व्यवहार, का यह प्रत्यक्ष फल हुआ कि अधिकारी वर्ग की सहायता, प्रेम, सम्मिलन से उक्त बड़े बड़े प्रभावशाली व्यक्तियों का अधिकार दिनों दिन बढ़ता गया। जिसके फल स्वरूप कृषक प्रजा का रक्त चूस-चूस कर के उपर्युक्त बड़े बड़े व्यक्तियों ने शासकों को प्रसन्न रखने तथा उनकी अभिलाषाओं की तृप्ति करने का एक ज़रिया बना लिया। इस ज़रिये का फल यह हुआ कि शासक वर्ग और उक्त बड़े बड़े आदमियों का गिरोह आवश्यकता से अधिक भोग-विलास की लिप्सा में फँस कर दिनों-दिन आराम-तलब होता गया। भारतीय रईस, रजवाड़े अधिकतर उच्च शिक्षा के अभाव से तथा वैज्ञानिक शिक्षा के प्रभाव से लाखों कोस दूर होने के कारण कर्म्मच्युत हो गये। उन्हें प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का कुछ ज्ञान ही न रहा। कि हमें अपनी प्रजा की रक्षा के हेतु तथा उसे धन धान्य, से समृद्धिशाली बनाने के लिये क्या क्या उपाय करना चाहिये।

अब क्या था ! योरोपीय संग्राम छिड़ गया ! युद्ध की दुन्दुभियां बजने लगीं, चारों ओर से सुसज्जित सेनायें रणाङ्गण में वीर रसोन्मत्त होकर आ डटीं, योरोप का वाणिज्य-व्यवसाय एक दम पट पड़ गया, वहां के लोग युद्ध चिन्ता में निमग्न हो गये। इसका प्रभाव भारत पर भी जैसा पड़ना चाहिये था, वैसा ही पड़ा अर्थात युद्ध में सरकार का दाहिना हाथ होने के कारण भारत को दिल खोल कर मदद देनी पड़ी, ऐसे विपत्ति के समय में भी भारत की प्रजा ने अपनी राज्य-भक्ति को प्रदर्शित करने से मुंह नहीं मोड़ा—युद्ध काल में खाद्य पदार्थों की महंगी की अपेक्षा अन्यान्य आवश्यक—जैसे कपड़ा इत्यादि की महंगी ने भी इतना भयंकर रूप धारण कर लिया कि वस्तुओं का मूल्य छः गुना-सात गुना बढ़ गया। पर, तो भी भारत की कृषक प्रजा ने उसे सहन करते हुये युद्ध काल में भी अग्र वर्णित दोनों वर्ग के शासकों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करते हुये अपनी राज-भक्ति में तिल मात्र भी पीछे नहीं हटे। इसी सम्बन्ध में प्रसंगानुसार यह भी कहना असंगत न होगा कि भारत के राजनीतिक दल ने भी मौक़ा देख कर सरकार से कुछ क़बूल करा लेने की चेष्टा की, और मौक़े की प्रगति को देख कर सरकार ने भी यथाशक्य अधिकार देने का वादा किया। परन्तु इसका फल विपरीत निकला, योरोपीय युद्ध के पश्चात् भारत सरकार के कुछ शासकवर्ग मदोन्मत्त होकर भारत की कृतज्ञता को भूल गये—**'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'** के सिद्धान्तानुसार मदोन्मत्त होकर अपने कर्तव्य भी भूल गये, और प्रत्युत इसके परिणाम यह हुआ कि जिस प्रकार से हो सके। इसी प्रकार से प्रजा का रक्त चूस-चूस कर के भोग, विलास, विहार, नाच, राग, रङ्ग, अर्थात् जो कुछ मनुष्योपयोगी सुखोपभोग की आधुनिक सामग्रियाँ हैं, एकत्रित की जाँय, और उनका आनन्द से रसास्वादन करते हुये शासकों को भी प्रसन्न रक्खा जाय।

इस नीति के अवलम्बन से इसमें सन्देह नहीं की उक्त दोनों वर्ग के शासक वर्गों की मनोकामना बहुत कुछ क्या अधिकाँश में सफल हो गई और भारत की प्रजा ने भी सदैव से ही राज-भक्त होने के कारण कुछ भी आनाकानी न की, और अपनी कमाई का सर्वांश धन इन्हीं के सुखोपभोग के लिये अर्पण करती रही। परन्तु संसार में सब बातों की अन्तिम हद और मर्य्यादा है—इसी सिद्धान्तानुसार सूर्य्यदेव को भी तप-तप कर मध्यान्ह १२ बजे ठीक संसार के सिर पर विराज करके, पुनः लुढ़कना पड़ता है, और अन्त मो अस्ताचल में जाकर छिप जाना पड़ता है, जैसा कि निम्नलिखित दोहांश से पता चलता है:—

ज्यों तपि तपि मध्यान्ह लौं, अस्त होत है भान।

इसी सिद्धान्तानुसार जब भारत के दोनों वर्गों की भोग-लिप्सा शिखर पर पहुँच चुकी, और इसके साथ ही भारतीय कृषक प्रजा के पीड़ा की भी मर्य्यादा अपनी मर्य्यादा को उच्छृंखल कर गई तो सांसारिक प्रकृति ने अपना भयंकर रूप धारण करके योरोप के रङ्ग-मञ्च पर अपना नाटक खेलना आरम्भ कर दिया।

भारत के राजनीतिक नेताओं के साथ की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में आनाकानी करने लगे—इसी बीच में राजनीतिक नेताओं में और शासक वर्ग के अधिकारियों में घोर मतभेद हो जाने के कारण देश में बहुत से उपद्रव खड़े हो गये। जिसके फल स्वरूप पिछले वर्षों में भारत की दशा शासक और शासित दोनों वर्गों के लिये भयावह हो गई।

जिसका परिणाम वही हुआ जो कि भारतीय महाभारत के युद्ध काल के समय में कौरवों और पांडवों के बीच हुआ था अर्थात् जब कौरवों ने अपने छल-बल से पांडवों को बनवास दे दिया, तो प्रजा को प्रसन्न करके देश पर अपना साम्राज्य स्थापित रखने के लिये अनेकों यत्नों का आविष्कार किया गया। दुर्योधन ने भारत की कृषि की उन्नति के हेतु अनेकों प्रकार के सुधार तथा सुविधाओं को प्रदान करने में बड़ी तत्परता से काम किया। जिससे उस काल में देश के कृषि की दशा बहुत ही उत्तम हो गई, और कृषकों की दशा में अनेकों सुखदायी परिवर्तन हो गये। जिसका समुचित ज्ञान किरातार्जुनीय के ही अध्ययन से चल सकता है। ऐसे प्रयत्नों के अन्तिम परिणाम जो कुछ होते हैं, उससे लोग प्राय: अनभिज्ञ नहीं है।

इसी प्रणाली के अनुसार—अर्थात कौरवों पांडवों की नीति के अनुसार उसी को ग्रहण करके गत वर्षों की राजनीतिक उथल पुथल के समय देश के सच्चे राजनीतिक नेताओं के मतों के प्रचारार्थ प्रचारकों ने अनेकों अवैध प्रणालियों रीति, रिवाजों, प्रथाओं का अवलम्बन कर के भारत की अशिक्षित भोली-भाली जनता को अपनी सुरीली तानों को सुनाकर मुग्ध कर लिया—और देश की कृषक-जनता जो कि सहस्रों वर्षों से पद दलित अपमानित और हेय समझी जा रही थी। जिसे कोई पूछता तक नहीं था कि संसार में तुम्हारी भी कुछ सत्ता है। जब उन्होंने अपनी निद्रा को भंग कर के आँखें खोलकर देखा, तो उनको दिखाई पड़ा हाँ सचमुच में विष्णु भगवान ने सदैव की भाँति हमारे दुःखों को दूर करने के लिये और आतातायियों का नाश करने के लिये अवतार लिया है। ऐसे धार्मिक विश्वासों के कारण भारत की कृषक प्रजा अपने इन क्षणिक तथा स्वार्थ से प्रेरित हितैषियों के चक्कर में आकर इनका विश्वास भी करने लगी।

इसमें सन्देह नहीं कि इन हितैषियों के सतत परिश्रम और उद्योग से उस काल में कृषकों के अनेकों दुःख, बात की बात में दूर हो गये। इससे इनकी धाक कृषक जनता पर दिनों दिन जमती चली गई, और कृषकों का विश्वास भी इनके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अन्त में इन हितैषियों के प्रचारकों ने अशिक्षित कृषकों की सहायता से ऐसे ऐसे अवैध, घृणित, लज्जाजनक मार्गों का अनुसरण करके अग्र वर्णित दोनों वर्गों के शासकों के प्रति भड़का कर इतना भेदभाव उत्पन्न कर दिया। कि दोनों वर्गों के प्रति घोर शत्रुता के भाव उत्पन्न हो गये, और हरेक वर्ग ने एक दूसरे को हड़प जाने की कोशिश में लीन हो गया इसका प्रधान कारण यह था कि उक्त दोनों वर्ग के शासक वर्ग सदैव से एक दूसरे के सुर

में सुर मिलाया करते थे। इस मौके से तीसरे वर्ग ने लाभ उठाया और प्रजा के साथ सहानुभूति प्रकट करके और साथ ही कुछ प्रत्यक्ष लाभ भी दिखला कर के अपना साथी बना लिया। इसमें सन्देह नहीं कि इस कारवाई से किसानों को अधिक क्षति उठानी पड़ी और शासक वर्ग के स्वार्थों को बड़ा धक्का पहुँचा, जिससे उनकी दशा दिनों-दिन क्षीण होती चली जा रही है, और पहिले जो भक्ति-भाव द्वितीय श्रेणी के शासकों के प्रति भारतीय प्रजा के भाव थे, वे अब नहीं रह गये। अधिकाँश में भारत की कृषक प्रजा इस नवीन तीसरे वर्ग से मिलकर अपने उद्धार की कोशिश में निमग्न हो गई।

इस मौक़े को देख कर भारत सरकार के शासकों का ध्यान भारतीय कृपक प्रजा की शक्ति की ओर आकर्षित हुआ। पिछले वर्षों के उथल-पुथल के अनुभवों के आधार पर शासकों को यह विश्वास हो गया। कि भारत की कृषक प्रजा में ही इतनी शक्ति है कि वह जिस वर्ग को चाहे, उसी वर्ग के शासकों को भारत के सिंहासन पर बिठाये। क्योंकि पिछले वर्षों में उन्होंने देखा कि भारत के प्राचीन राज-वंशों में अभी इतनी शक्ति विद्यमान थी कि कृषक प्रजा कठपुतलियों की भांति इन्हीं के हाथों के इशारे पर नाचा करती थी। परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इस दृश्य के नाटक का परदा बदल गया। अभिनय के दूसरे परदे के खुलते ही शासक रूपी दर्शकों ने देखा कि भारत के प्राचीन राज-वंशों के ति कृषक प्रजा की वह भक्ति और सहानुभूति नहीं रह गई है। जो कि कुछ वर्षों पहले इनमें विद्यमान थी। अब कृषक प्रजा की सहानुभूति और भक्ति दिनों-दिन भारत के राजनीतिक नेताओं के प्रति बढ़ती जा रही है। जिससे उनके दिलों में यह पक्का विश्वास होता जा रहा है कि इन्हीं नेताओं के सतत परिश्रम और उद्योग से भारत की कृषक प्रजा का कल्याण होगा। इस सच्चे और पक्के विश्वास का पता गत वर्षों की कारवाइयों से पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ा—जिससे अन्तिम यही परिणाम निर्द्धारित किया गया कि भारत की कृषक प्रजा को जो वर्ग अपना श्रद्धालु और भक्त बनाये रहेगा। उसी की तूती भारत और जगत में बोलती रहेगी—यह बात परिपूर्णतः सत्य है। इसको सभी लोग जानते हैं।

जब उक्त निर्णय भली प्रकार से भारत सरकार के वर्तमान शासकों ने समझ लिया, तो शासक वर्ग के चतुर राजनीतिज्ञों द्वारा भारतीय कृषकों को प्रसन्न रख कर अधिकार में करते हुये प्राचीन काल की भाँति राज-भक्त प्रजा बनाने की स्कीमें सोची जाने लगीं। जिसके फल स्वरूप भारत के भूतपूर्व वायसराय श्री मान् लॉर्ड रीडिङ्ग और भारत सचिव द्वारा, उक्त स्कीम को सफल बनाने के हेतु (royal agricultural commition in india) भारत में शाही कृषि कमीशन की स्थापना की गई। इतना ही नहीं कमीशन की नियुक्ति के साथ ही साथ भारतवर्ष के वायसराय के पद पर भी एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति का प्रश्न छेड़ा गया, जो कि जगत प्रसिद्ध कृषि विज्ञान वेत्ता हैं; और अपना अधिकाँश जीवन 'कृषि' के ही निरीक्षण, परीक्षण, अनसन्धान आविष्कार आदि

कर्मों में बिताया है। जब कमीशन और वायसराय के नियुक्ति की बात भारत में प्रकाशित हो गई, तो भारत में एक प्रकार के सन्नाटा छा गया। इस रहस्य का भेद-भाव ही लोगों की समझ में नहीं आया। क्योंकि भारत के राजनीतिक नेताओं की जो माँग दरपेश थी, वह उसी की राह जोह रहे थे। इधर गुल दूसरा ही खिला-सारा पाँसा उलटा पड़ा। लोगों की आशाओं पर पानी फिर गया। लोग इस कृषि-कमिशन तथा कृषि-विज्ञान वेत्ता वायसराय की नियुक्त पर जल-भुन गये। क्योंकि उनकी माँगों को एक प्रकार से ठुकरा सा दिया गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि देश के प्रमुख प्रमुख नेताओं पत्रों, छोटी-बड़ी व्यवस्थापक सभाओं के पतिनिधियों ने खुले शब्दों में कृषि-कमीशन तथा वायसराय की नियुक्ति पर असन्तोष प्रकट करते हुये इस नियुक्ति की तीव्र कटु आलोचना की, और वर्तमान काल में भारत के लिये इस कमिशन को अनुपयोगी सिद्ध किया गया। लोग इस रहस्य में छिपी हुई बातों को जानने की उधेड़-बुन में लग गये, और अन्त में यह निश्चय किया गया कि कमीशन की नियुक्ति भारत के लिये भूल-भूलैया का खेल है। इस कमिशन द्वारा भारत को कोई लाभ नहीं पहुंच सकता। क्योंकि इस कृषि-कमीशन को भारत के प्रचलित क़ानून लगान में अर्थात जिस क़ानून से भारत की कृषक प्रजा जकड़ी हुई है। कुछ विचार करने का अधिकार ही नहीं है। तो यह कमिशन सिवाय वैज्ञानिक मशीनों रीति-रिवाजों आदि के प्रचार की शिफारिश के सिवाय कर ही क्या सकता है? जब इस प्रकार की दलीलों द्वारा अनेकों निस्सार बातों का दिग्दर्शन करा कर के लोगों की दृष्टियों में इस कमिशन की नियुक्ति को व्यर्थ कर देने की चेष्टा में लोग उतावले हो गये; और सरकार से छोटी-बड़ी व्यवस्थापक सभाओं में इस कमिशन के सम्बन्ध अनेकों प्रश्न किये जाने लगे, तो अन्त में राज्य-परिषद् के एक सदस्य के प्रश्न पर यह भी कहा गया। कि कमीशन भारत के किसानों के क़ानूनों के सम्बन्ध में भी जाँच पड़ताल करके अपना मत प्रकट करेगा।

इससे लोगों को कुछ सन्तोष हुआ, और भारत में शाही कृषि कमिशन का संगठन कर दिया किया। जिसमें स्वदेश तथा विदेश के अनेकों ऐसे सज्जन हैं, जो कि भारत की आर्थिकावस्था से भली प्रकार से परिचित हैं। यहाँ पर यह कह देना भी मैं मुनासिब समझता हूं। कि 'कृषि कमीशन' का संगठन जैसा होना चाहिये था, बहुतेरों के मतानुसार वैसा नहीं हुआ, ख़ैर 'गतानि सोचानि' जो कुछ होना था, सो हो गया। अब रही कमिशन के कार्य्य की चर्चा और उसे सफल बनाने की चेष्टा।

इसमें सन्देह नहीं है कि भारत सरकार के चतुर राजनीतिज्ञों ने ऐसे मौक़े पर कृषि-कमिशन की नियुक्ति की है. कि यदि उन्होंने मौक़े को सार्थक बनाने की चेष्टा की, और कमिशन ने भली प्रकार से कृषकों की परिस्थित, अवस्था, दशा की छान-बीन की—और उस पर पूर्ण रूप से वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुये, इस बात का खुले दिल प्रयत्न किया। कि भारत में भी

उसी प्रकार से कृषि-व्यवसाय होने लगे। कि जिस प्रकार से अमेरिका, डेन्मार्क आदि अन्यान्य कृषि-प्रधान देशों में हो रहा है। तो उसे वहाँ और यहाँ—अर्थात् दोनों जगहों की परिस्थितियों का भली प्रकार से तुलना करना पड़ेगा। कि वहाँ का कृषक-वर्ग अपनी कृषि की उन्नति करने के लिये हरेक दृष्टियों से कितना स्वतंत्र है और भारत कितना प्रतन्त्र। यदि सब बातों को जान कर पूर्ण रूप से भारतीय किसानों के दुःख-दर्द को दूर कर—उनके कृषि व्यवसाय को सुधारने तथा उन्नति के शिखर पर पहुंचाने की वास्तविक तथा लाभदायक प्रणालियों का अनुसरण किया जायगा, तो अवश्यमेव--भारत की प्रजा को अपना अनुगामी और हितैषी बनाने की जो स्कीम शासकों के चतुर राजनीतिज्ञों ने सोच रक्खी है। अवश्य सफलता को प्राप्त हो जायगी। क्योंकि भारतीय कृषक जिस प्रकार से भोले-भाले हैं—उसी प्रकार से वे अपने हानि लाभ और मित्र-शत्रुओं की भी परख करने की पूर्ण-रूप से बुद्धि रखते हैं। यह बात दूसरी है कि वह अपने मुखों से शब्दों द्वारा इस बात को लोगों से प्रकट नहीं करते। परन्तु जानते सब कुछ हैं।

यों तो जैसा कि हमने अगले पृष्ठों में वर्णन किया है। भारतवर्ष के समग्र व्यवसायों की उन्नति की चेष्टा भारत सरकार पिछले ४०-५० वर्षों से निरन्तर करती चली आ रही है। परन्तु मुख्य बात तो है कि भारत जगत में एक विस्तृत विशाल देश है। जहाँ पर समग्र व्यवसायों की उन्नति की सामग्री तथा सम्भावनायें प्रचुरता से उपलब्ध हैं। दूसरे देशवासियों की आर्थिकावस्था इतनी हीन है कि अपनी उन्नति के लिये वह हरेक प्रकार से निःशक्त और पराधीन हैं। अतएव गत ५० वर्षों में जो कुछ चेष्टायें की गईं, वह सर्वथा अ-पर्य्याप्त थीं। क्योंकि वह चेष्टायें केवल कुछ दूरदर्शी शासक-अफ़सरों का प्रयत्न स्वरूप थीं। उस समय सरकार की अभिमत किसी व्यापक नीति का फल नहीं थी। क्योंकि सरकार इन बातों से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं रखती थी। सब को अपने अपने व्यवसाय की उन्नति अवनति करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, ऐसा कहा जाता था।

इसी सिद्धान्त के विपरीत जरमनी, जापान आदि उन्नतिशील देशों में वहाँ की सरकार देश के हरेक व्यवसायों की उन्नति का पूर्ण-रूपेण भरपूर प्रयत्न करती है। परिणामतः भारत की आर्थिक पराधीनता और निर्बलता के दृश्य का भयंकर अवलोकन कर—अथवा भारतवासियों के विलपने का फल समझिये एवं योरोपीय महाभारत की चेतावनी :—

इसके फल स्वरूप मई सन् १९१६ में सरकार ने सर टी. एच हालैण्ड के सभापतित्व में औद्योगिक-कमीशन रच कर उसके सामने यह प्रश्न रक्खे।

[१] क्या व्यवसाय अथवा उद्योग-धन्धों में भारतीय पूँजी के उपयोग के नये लाभदायक मार्ग बताये जा सकते हैं?

[२] क्या औद्योगिक उत्थान में सरकार लाभ पूर्वक सहायता दे सकती है? यदि ऐसा है तो किस प्रकार से:—

अ—वैज्ञानिक परामर्श के द्वारा ?

ब – विशेष-विशेष उद्योग धन्धों को व्यापारिक ढंग पर चलाने योग्य दिखाकर ?

स – आर्थिक सहायता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से पहुंचा कर ?

द—या अन्य किसी रीति से जो सरकार की वर्तमान नीति के विरुद्ध न हो।

जिस प्रकार से सुना जा रहा है। कि 'कृषि-कमीशन' को लगान सम्बन्धी अर्थात् कृषि-कृषक सम्बन्धी क़ानूनों पर विचार करने का अधिकार नहीं है।

ठीक उसी प्रकार से उक्त औद्योगिक कमिशन को भी सरकार की व्यापार नीति पर विचार करने का अधिकार नहीं था। बहुत से स्वदेशी-विदेशी वैज्ञानिकों की राय थी कि भारत संसार के अन्यान्य देशों की अपेक्षा उष्ण देश है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है—इस कारण वह विशेषतया कृषि के योग्य है। औद्योगिक कला-कौशल सम्बन्धी उन्नति में कृषि के मुक़ाबिले में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त कमिशन ने "भारत की वर्तमान औद्योगिक स्थित क्या है ? और सम्भावनायें क्या हैं ? भारत वर्तमान काल की उद्योग गति के साथ क्यों नहीं चल रहा है" :—

इस प्रश्न के ऊपर विचार करते हुये लिखा था कि—"यहाँ की अधिकाँश जन संख्या पुराने ढङ्गों से खेती करने में लगी हुई है; जिसके कारण कठिनता से जीवन-निर्वाह के योग्य उपज प्राप्त की जा रही है; जो कुछ कृषि-व्यवसाय में परिवर्तन हुआ है। वह आयात और निर्यात व्यापार का प्रभाव मात्र है, न कि औद्योगिक परिवर्तन का"।

इस विचार को प्रकट करते हुये कमिशन ने अपनी राय दी थी। कि उद्भिज सामग्री में अमेरिकन कपास की कृषि बढ़ानी चाहिये। गन्ना जितनी भूमि में यहाँ बोया जाता है, संसार के अन्यान्य देशों में उतने क्षेत्रफल में नहीं बोया जाता। परन्तु उसकी नस्ल इतनी गिरी हुई दशा में है कि उसको, तथा बोने और काश्त करने के ढङ्ग में विशेष सुधार की आवश्यकता है। छोटे-छोटे टुकड़ों में बोये जाने के कारण एक भी फैक्टरी का चलाना कठिनाई से हो सकता है। तेलहन भी इस देश में बहुत होता है। परन्तु कोल्हुओं की उन्नति करना अनिवार्य्य है, अभी तो अधिकतर कच्चा माल विदेश को भेज दिया जाता है।

कृषि और उद्योग का घनिष्ट सम्बन्ध दर्शाते हुये कमिशन ने विचार प्रकट किया था। कि उद्योग धन्धों की सफलता का दारोमदार कृषि की ही उन्नति पर निर्भर है। कमिशन ने खेती की उन्नति के लिये वैज्ञानिक कृषि-प्रणाली के प्रचार की आवश्यकता बतलाई थी। साथ ही कमिशन की राय में वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रों के व्यवहार और प्रयोग की अधिकाधिक आवश्यकता भी प्रतीत हुई थी। जिससे मज़दूरों की मिहनत बच जाने की बहुत कुछ संभावना समझी गई थी। उदाहरणार्थ भारतवर्ष में तीस लाख

कुओं से उस समय में सिंचाई हो रही थी। तिस पर आशा प्रकट करते हुये कमिशन ने कहा था कि शीघ्र ही आशा है कि दूने कुओं से काश्त होने लगेगी। तब यदि पाँच प्रति-शत कुयें भी पानी उठाने के ऐसे ऐसे छोटे छोटे यन्त्रों का व्यवहार करने लगें; जो कि मशीनों द्वारा चलाये जाते हों, तो जिस परिश्रम का अभी दुरुपयोग हो रहा है, वह बच जायगा। मशीनों के प्रयोग और व्यवहार से उपज में भी आशातीत सफलता प्राप्त की जा सकेगी, अभी भारतवर्ष और इङ्गलैण्ड—अर्थात् दोनों देशों में गेहूँ और जव की अधिक खेती हो रही है। औसतन पैदावार क्रमशः ८१४ पौण्ड और १९१९ पौण्ड गेहूँ की—और ८७७ पौण्ड तथा १६४५ पौण्ड जव की प्रति एकड़ है। ऐसी दशा में मशीनों के व्यवहार और प्रयोग से मशीनों को बनाने और सुधारने के लिये एक वृहद् इञ्जिनियरिङ्ग धन्धे की सृष्टि भी अनिवार्य्य होगी।

औद्योगिक कमिशन ने उक्त लिखित कषि-सम्बन्धी अवतरणिकायें अपनी रिपोर्ट में दी थीं। रिपोर्ट के प्रकाशित हो जाने पर इस रिपोर्ट की बड़ी टीका-टिप्पणी भारत के हितैषियों द्वारा की गई। आलोचना कर्त्ताओं में भारत के प्रमुख नेता माननीय मालवीय जी ने कृषि और व्यापार के शिक्षा की आवश्यकता जापान के साथ तुलना करके बतलाई थी।

कहने का साराँश यह है कि औद्योगिक कमिशन और आलोचकों की रिपोर्ट, सम्मति, आलोचना सब कुछ जहाँ की तहाँ रह गई। हुआ वही जो कुछ कि होना था। इसी प्रकार अब की बार भी 'कृषि-कमिशन' का ढोल दूर से बड़ा सुहावना मालूम हो रहा है। क्योंकि कमिशन की नियुक्ति में अपूर्व नूतनता, सौन्दर्य्य, चहल-पहल, उत्सुकता है। इसके भविष्य का आशा-क्षेत्र जहाँ पहिले उजाड़ और बीरान था। वहाँ अब देश के सर्बोपरि नेता महात्मा गाँधी की अमूल्य सम्मति और सलाह मशविरे के कारण लहलहा रहा है।

बम्बई प्रान्त के गवर्नर तथा कृषि-कमिशन के अधिकारियों ने महात्मा जी से स्व-कार्य्य के आरम्भ में ही प्रार्थना की थी कि वह अपनी अमूल्य सम्मति और परामर्श कृषि-कमिशन को दें। महात्मा जी ने इस निमन्त्रण को यह कहते हुये स्वीकार किया कि यद्यपि इस कमिशन से मुझे कुछ भी आशा और विश्वास नहीं है कि यह भारत की 'कृषि' और कृषकों के विषय में कुछ भी लाभदायक कार्य्य कर सकेगा। तथापि मुझे कषि-कर्म्म और इस व्यवसाय तथा इसके व्यवसायी कृषकों से घना सम्बन्ध और प्रेम है। इसलिये मैं इस कमिशन के सम्मुख अवश्य अपने विचारों को रक्खूँगा।

इसी आत्म निणय के अनुसार महात्मा जी बम्बई के गवर्नमेंट हाउस महाबलेश्वर में १८-१८ मई को बम्बई के गवर्नर से परामर्श किया है; जिससे ज्ञात होता है कि अन्यान्य कमिशनों की अपेक्षा इसका फल अवश्य ही भारत की 'कृषि' और कृषकों के लिये शुभदायक होगा। क्योंकि भारतीय किसानों और कृषि की दशा से महात्मा जी भली प्रकार से अभिज्ञ हैं। दूसरे गवर्नर ने भी यह

बड़ी ही दूरदर्शिता का काम किया है कि सब से पहिले महात्मा जी से ही परामर्श करते हुये अपने कार्य्य का आरंभ किया है। कमिशन को निःसन्देह भारत की कृषि और कृषकों की अवस्था के बारे में तथ्य और जानने योग्य बातों का पता लग जायगा। इसके अतिरिक्त वह जो कुछ अपनी सम्मति देंगे, वह भी देशवासियों को शिरोधार्य्य है।

परन्तु इतना होते हुए भी कमिशन को यह ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ महात्मा जी परामर्श दें, वह अंशतः पूर्ण रूपेण कार्य्य रूप में परिणित किया जाय, तभी कृषि-कमिशन भारत में सफलता प्राप्त कर सकेगा, और उसकी नियुक्ति भी सार्थक हो सकेगी—अन्यथा यदि कमिशन ने उनके परामर्श में मीन—मेख निकाली, और उसमें अपनी ही राय का बाहुल्य रख कर निर्णय किया, तो इस कमिशन का भी फल राजा और प्रजा की दृष्टि में वही होगा, जो कि पिछले बहुत से कमिशनों का हुआ है।

अब हम अपने देशवासी किसानों से भी यही कहना चाहते हैं कि इस कमिशन के विषय में जो कुछ उदासीनतापूर्ण आलोचनायें पत्रों में निकली थीं, और उसके आधर पर कृषक-समुदाय उदासीनता प्रकट करते हुये कमिशन के कार्य्यों से तटस्थ हो गये थे। उन्हें अपनी उदासीनता और तटस्थता का परित्याग करके कमिशन के कार्य्य में महात्मा जी के सिद्धन्तों का अनुसरण करते हुये हाथ बटाना चाहिये। इस मौक़े पर देश के हरेक बच्चे से बच्चा किसान का यदि उसमें कुछ भी समझ हो तो कृषि-कमिशन के सामने अपनी अवस्था का सच्चा खाका खींचकर रख देना चाहिये-और अपने दुःखों का ब्योरेवार पूरा विवरण कमिशन के सामने उपस्थित करना चाहिये; और उन माँगों को जिससे कि उन्हें आशा है कि उसके मिल जाने से उनके दुःख-दर्द दूर हो जायेंगे—जोरदार शब्दों में कमिशन के सामने पेश करते हुये कह देना चाहिये किः—

ज़रा जिगर थाम के बैठो
अब मेरी बारी आई।

अर्थात् अब की बार अपनी मांगों को पूर्ण कराये बिना विश्राम नहीं लेंगे।

क्योंकि सदियों से आधा पेट भोजन करते करते और संसार के समृद्धिशाली, भर पेट भोजन करने वाले अभिमानियों का अपमान सहन करते करते। मेरे सहन-शीलता की मर्य्यादा के तापक्रम का परा दिनों दिन ऊपर ही चढ़ता जा रहा है। इसका अन्त में क्या परिणाम होगा! यह संसार के वैज्ञानिकों से छिपा नहीं है।

अभी कमीशन देश के प्रमुख प्रमुख नेताओं, हितैषियों, विद्वानों से परामर्श करेगा। तब अपना कार्य्य-क्रम नियत करेगा। इसके पश्चात् नवम्बर (अगहन) मास से जिले जिले में किसानों के बीच अपनी जाँच—पड़ताल का कार्य्य आरम्भ कर देगा।

देश के किसानों—कृषि-समितियों-किसान सभाओं—अर्थात् इस व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाले समग्र-देशवासियों को अभी से अपना अपना मसाला तय्यार कर लेना चाहिये। जिससे कमिशन के दौर के मौक़े पर किसी बात को सोचने विचारने की बात शेष न रहे। वरन् मौक़े पर धड़ाधड़ गोला, गोली, बारूदों की भाँति अपनी अपनी राम-कहानियाँ छूटने लगें; और कमीशन का पेट भी जाँच-पड़ताल से भर जाये।

इसी सम्बन्ध में इतना और कह देना हम आवश्यक समझते हैं कि लोगों को यह कभी भी भूल कर नहीं ख़्याल करना चाहिये। कि इस कमिशन से कोई भी लाभ नहीं होगा। इसलिये इसके झगड़े-बखेड़े में पड़ना व्यर्थ है। ऐसे विचार हमारे धार्मिक ग्रन्थों के आदेशानुसार अ-ज्ञानियों के हैं। क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मनुष्य को अपना 'कर्म्म' करना चाहिये, फल की आशा नहीं रखना चाहिये।

गीता के इसी अदेशानुसार कि हम कृषक हैं—कृषि हमारा व्यवसाय है। इस कारण यदि कोई भी, चाहे राज-पक्ष हो अथवा प्रजा-पक्ष का। जब हमारी वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। तो हमें प्रसन्नता से उसे अपनी दशा का परिचय निःसंकोच भाव से देने में किसी भी प्रकार का हर्ज नहीं समझना चाहिये क्योंकि :—

होता है वही जो मंज़ूरे ख़ुदा होता है:—

इसलिये हमको कृषि-कमिशन के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना, इस मौक़े पर अनिवार्य्य है—प्रत्युत इसके कृषि कमिशन चाहे अपने कर्तव्य का पालन करे अथवा नहीं।

अब तक हमने उन समग्र बातों का उल्लेख किया है कि जिसका जानाना प्रस्तत-पुस्तक के हरेक पक्ष के पाठकों के लिये अतीव आवश्यक था। अब हम कमिशन के सम्मुख विचारार्थ अपने मन्तव्य को रक्खूँगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि मेरे मन्तव्यानुसार भारत की शिक्षा प्रणाली में संशोधन कर दिया जाय। तो थोड़े ही दिनों में भारतीय कृषि की अवस्था में आप से ही आप सुधार और उन्नति हो जायगी।

संसार के उन्नति-शील देशों में अमेरिका ही इस समय कृषि-प्रधान देश है। वहाँ की शिक्षा प्रणाली में तथा भारत की शिक्षा प्रणाली में जमीन आसमान का अन्तर है। इसका मुख्य कारण यह है कि वहाँ के लोग शिक्षा के सिद्धान्तों को भली भाँति समझते हैं। तभी तो वहाँ 'कृषि' की शिक्षा अमेरिकन बच्चों को प्राइमरी स्कूलों से ही दी जाती है। जिससे वे इस व्यवसाय से लड़कपन से ही रुचि पैदा करने लगते हैं; और ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों कृषि-विज्ञान के अध्ययन द्वारा अपने देश के कृषि-व्यवसाय को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देने का प्रयत्न करते हैं।

सृष्टि में भारतवर्ष भी एक कृषि-प्रधान देश माना जाता है। जहाँ कि शिक्षा-प्रणाली हरेक दृष्टियों से विचार करते हुये यही कहना पड़ता है—और देश भी कह रहा है कि नितान्त दूषित

है। क्योंकि प्राथमिक शिक्षा के हेतु डिस्ट्रिक्टबोर्डों और प्रान्तीय शिक्षा विभाग की देख-रेख में जो प्राइमरी स्कूल ग्रामों में संचालित किये जाते हैं—जिसी में प्रायः किसानों के लड़के पढ़ते हैं। उनमें से किसी में भी कृषि-शिक्षा का प्रबन्ध न तो प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने ही किया है। न डिस्ट्रिक्टबोर्ड के ही कर्म्मचारियों ने।

संयुक्त प्रान्तीय शिक्षा-विभाग की सन् १९२५ ई० की रिपोर्ट जो कि अभी प्रकाशित हुई है। उसमें गर्व सहित कहा गया है कि प्राइमरी स्कूलों में जो कि अधिकतर ग्रामों में ही स्थापित किये गये हैं उसमें ५०,००० बालक शिक्षा पा रहे हैं। कितने खुशी की बात है कि किसानों के इतने बालक शिक्षा से परिचय प्रात कर रहे हैं। इसी सम्बन्ध में रिपोर्ट में यह भी दिखलाया गया है कि इतने विद्यार्थियों के लिये जो स्कूल स्थापित किये गये हैं, उनमें १० स्कूलों में प्राथमिक शिक्षा के साथ 'कृषि' की भी शिक्षा दी जा रही है।

धिक्कार !!! ऐसी प्राथमिक शिक्षा को, कहने के लिये तो पचास हजार किसानों के बालक प्राथमिक शिक्षा से शिक्षित हो रहे हैं, किन्तु उन्हें वास्तविक शिक्षा से वंचित रक्खा जा रहा है! जिन कृषकों की कमाई का ५५ प्रतिसतक भाग प्रान्तीय सरकार ले ले, उनके बालकों के लिये कृषि शिक्षा का यह प्रबन्ध ?

कितने शोक और सन्ताप की बात है कि अब तक भी प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की आँखें नहीं खुलीं, और न उन्होंने आज तक भारतीय शिक्षा के आदर्श को पहिचाना ही।

भारत के शाही कृषि-कमिशन से मेरा तो जोरदार शब्दों में यही कहना है कि यदि वह भारत में सचमुच कृषि-व्यवसाय का उद्धार करना चाहता हैं। तो सर्व प्रथम विदेशी कृषि प्रधान उन्नतिशील देशों की भाँति भारत में भी प्राइमरी स्कूलों से लेकर हाई-स्कूलों तक 'कृषि' शिक्षा को अनिवार्य कर दें।

जब इस प्रकार से प्राइमरी स्कूलों तक 'कृषि' शिक्षा अनिवार्य्य हो जायगी, तो भारत के बच्चों को कृषि-शिक्षा से आप से आप रुचि उत्पन्न हो जायगी; और स्कूल की पढ़ाई तक में वह पर्याप्त रूप में व्यावहारिक कृषि शिक्षा का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। इसके पश्चात् 'इन्टर मीडियेट' की शिक्षा से वह स्वतंत्र कर दिये जाँय—अर्थात् यदि वह कृषि-विज्ञान विषयिणी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रान्तीय कृषि कालिजों में चले जाँय—अन्यथा यदि अन्य विषयों की ओर उनकी रुचि है तो वह युनिवर्सिटियों में चले जाँय; और अपनी रुचि के अनुसार अन्यान्य विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करें।

इसके साथ ही साथ यह भी करना पड़ेगा कि जिस प्रकार से हाई स्कूलों तक कृषि-शिक्षा अनिवार्य्य होनी चाहिये। उसी प्रकार से वर्नाययुलर मिडिल तथा नार्मल स्कूलों तक में कृषि-शिक्षा अनिवार्य्य होनी चाहिये। जिससे इन स्कूलों में से निकले हुये अध्यापक अपर तथा लोअर प्राइमरी स्कूलों के बालकों को कृषि विषयिणि शिक्षा देने में समर्थ हो सकें।

दूसरे प्रत्येक भाषाओं में प्रान्तीय कृषि विभागों द्वारा कृषि-

सम्बन्धी पत्र-पत्रिकायें निकाली जाँय, जिनमें कि सुबोध और सरल रीति से वैज्ञानिक कृषि-कर्म्म की नवीन समग्र बातों का उल्लेख किया जाय। जिससे थोड़े पढ़े-लिखे भी इन पत्र-पत्रिकाओं के अवलम्बन से कृषि-विज्ञान सम्बन्धी देशोपयोगी बातों को कार्य्य रूप में परिणित करके लाभ उठा सकें।

इसी सम्बन्ध में प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में भी 'कृषि-विज्ञान' साहित्य की रचना की जाय। इस रचना के हेतु प्रान्तीय कृषि विज्ञान विषयक अच्छे-अच्छे लेखक ग्रन्थों की रचना करने में दत्तचित्त हों; इतना ही नहीं जो लोग प्रान्तीय कृषि-पत्र पत्रिकाओं में समयोपयोगी लेख लिखें, उन्हें भी उनके लेखों की उपयोगिया के अनुसार पुरस्कार दिया जाना आवश्यक है। इससे देश की भाषाओं में कृषि-वैज्ञानिक साहित्य काप्रचार होगा। जिससे लोगों की रुचि इस व्यवसाय के साहित्य की ओर आकर्षित होगी, और दिनों-दिन इसके पठन-पाठन की प्रणाली जोर पकड़ती जायगी।

थोड़े पढ़े लिखे-अर्थात् जिन्होंने कृषि-विज्ञान साहित्य की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् ही जीवनसंग्राम में उतर पड़े हैं, और उच्च शिक्षा यदि किसी कारण से नहीं प्राप्त कर सके हैं। परन्तु तो भी कृषि-विज्ञान-विषयक नवीन बातों की खोज, आविष्कर अथवा इसी प्रकार की समयानुसार अन्यान्य बातों में वे दिन-रात सपरिश्रम निरत रहते हैं। तो प्रान्तीय तथा राजकीय-कृषि-विभाग के अधिकारियों का कर्तव्य है कि उन्हें भी आर्थिक सहायता देकर उनके ज्ञान को बढ़ाने के हेतु उन्हें 'रिसर्च-स्कालर शिप" देकर किसी भी 'इंस्टीट्यूट' में ज्ञान संपादन करने के लिये भेज दें। ऐसे छात्रों के लिये डिग्री, डिप्लोमा की कैद का बन्धन न होना चाहिये। वरन् उनकी विशेष योग्यता पर ही उन्हें यह स्कालरशिप शिघ दिया जाना चाहिये।

जो लोग निर्धन हैं और 'कृषि' शिक्षा से शिक्षित हैं यदि वह नौकरी न करके इस व्यवसायक कोही करना चाहते हैं तो सरकार का कर्तव्य है कि देशी रियासतों की ओर से ऐसा प्रबन्ध करे कि ऐसे लोगों को राज्य की ओर से हरेक प्रकार की सहायतायें दी जांय, और उन्हें इस व्यवसाय द्वारा जीवका उपार्जन करने का साधन प्राप्त किया जावे; और फिर धीरे धीरे उनसे किस्त वार वसूल किया जावे। इस समय प्रान्तीय कृषि स्कूलों और कालिजों से जितने विद्यार्थी निकले हैं उनका पता लगावा जावे कि कौन सा व्यवसाय करके जीविका निर्वाह कर रहे हैं। यदि ये लोग कृषि-सम्बन्धी व्यवसाय द्वारा जीवन-निर्वाह कर रहे हों, तो ठीक ही है। नहीं तो इनके लिये ऐसे मार्ग सोचे बिचारे जांय, जिससे उनकी यह विद्या सफल हो सके।

प्रान्तीय कृषि-विद्यालयों से निकले हुये जितने लोग देहातों में 'कृषि' का व्यवसाय कर रहे हैं, उन्हें आर्थिक सहायता देकर यह कार्य्य सौंपा जाय कि वह अपने आस-पास के एक मर्य्यादित क्षेत्र के किसानों की कृषि दशा का निरीक्षण भी करें, और उनमें नई नई बातों का प्रचार भी करें।

सिंचाई के लिये नहर इत्यादि साधनों के अतिरिक्त जहाँ कुओं से सिचाई होती है। वहां पर सरकारी अथवा सहयोग समितियों द्वारा कुओं में इञ्जन से पानी उठाने की प्रथा का जोरों से प्रचार किया जाय, और लोगों के खेतों की सिंचाई इतने कम मूल्य पर की जाय। कि जो पुर अथवा चरसे के द्वारा सिंचाई करने पर बराबर या सस्ती पड़े। इसी प्रकार से प्रत्येक जिले की तहसीलों में सरकिलें बनाकर कृषि का काम जोरों से विस्तृत करके किसानों का ध्यान निरन्तर आकर्षित करने के उपाय सोचे विचारे जांय, और कार्य्य रूप में परिणित किये जांय।

यह भी तब होगा, जब कि देश के किसानों के हित-रक्षा की दृष्टि से क़ानून लगान तथा इसी सम्बन्ध के सारे क़ानूनों में घोर परिवर्तन किया जाय। क्योंकि वर्तमान काल में किसानों को क़ानूनी बन्धनों से इतना जकड़ दिया गया है कि किसान बेचारे रातदिन जमींदारों के अत्याचारों का शिकार बनकर अदालतों की ही शरण में अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं कि किसी प्रकार से हमारी जमीन तो हमारे कबज़े में रहे देश के कृषकों तथा जमींदारों का एक बड़ा भारी समूह रात दिन क़ानूनी अत्याचारों के कारण अदालती कारवाईयों में ही परेशान रहता है। जिसका मुख्य अर्थ जमींन पर अपने क़बजे को बनाये रखना ही है। इसी 'क़बज़े' पर ही सारा धन वरन् क़र्ज लेकर के भी लगा दिया जाता है, और कृषि सुधार और उन्नति की बातें ताक़ पर रक्खी रह जाती हैं। क्योंकि उसके लिये तो लोगों का समय और धन अटता ही नहीं।

अतएव, कृषि कमीशन को देश-विशेषतया अवध, आगरा प्रान्त के किसानों के बारे में जिसके विषय में मुझे पूरी आशा है महात्मा जी ने सारा कच्चा चिट्ठा सामने रख दिया होगा। तब भी कमिशन को पूरे तौर से छान-बीन करना चाहिये, और उचित सुधार करना चाहिये। तभी वास्तविक सफलता भी प्राप्त हो सकेगी। अन्यथा यदि विदेशी कृषकों की सिर्फ तुलना ही करके कार्यक्रम का जाल फैलाया जाय तो कुछ भी न होगा। यदि अधिकारी वर्ग सचमुच में चाहते है कि यहां भी विदेशों की भांति वैज्ञानिक-कृषि कर्म्म सफलता प्राप्त करले। तो उन्हें भी भारत के किसानों के लिये कृषि व्यवसाय की दृष्टि से वही क़ानून बनना और बरतना पड़ेगा, जो कि विदेशी कृषकों के लिये उनकी सरकारें जमीदारों के मुकाबिले में बनाया है और बरत रही हैं। मेरा विश्वास है कि कृषि-कमिशन यह तो अवश्य ही करा देने का प्रयत्न करेगा कि भूमि लगान सम्बन्धी क़ानूनों की जिनकी आज कल विशेष शिकायत है। वह इस रूप में परिवर्तित हो जायगी कि देश के सभी दलवाले लोग संतुष्ट हो करके स्वीकार कर सकेंगे।

सूर्य-सिद्धांत

[ले०—श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव]

[गतांकसे आगे]

सूर्य ग्रहणकी महत्तम और लघुतम सीमा—जिस तरह चित्र ६३ से सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा पृथ्वीकी छाया स ह में आजाता है तब चन्द्र ग्रहण पड़ता है उसी तरह उसी चित्रसे यह भी सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा अमावस्याके अंतमें पृथ्वीकी छाया बनानेवाली स्पर्श रेखाओंके सा, हा विन्दुओंके बीचमें आजाता है तब पृथ्वी पर कहीं न कहीं सूर्य ग्रहण अवश्य देख पड़ेगा क्यों कि ऐसी स्थितिमें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीके किसी न किसी स्थान पर अवश्य पड़ेगी। जिस प्रकार स ह के व्यासार्धके परिमाणसे चन्द्रग्रहणकी सीमा जानी जा सकती है। उसी प्रकार सा हा के व्यासार्धके परिमाणसे सूर्य ग्रहणकी सीमा जानी जा सकती है।

∠सा प छा = ∠प न पा + <प सा पा
= <रि प र + <प सा पा
= सूर्यका त्रिज्या − सूर्यका लंबन
+ चन्द्रमाका लंबन

∴ <सा प छा का मध्यम मान
= १६′१″ − ८″·५ + ५७′११″
= ७३′३″·५
= ७३′·०५८

सूर्य ग्रहणके संबंधमें भी सूत्र छ प = म छेरे ई कोस्परे इ, काम दे सकता है। यहां म = ∠सा प छा + चन्द्रमाका व्यासार्ध
= ७३′·५८ + १५′·५८३ = ८८′·६४

∴ छ प = $\frac{८८′·६४}{\text{कोज्या ५°३४′ स्परे ५°६′}}$

∴ लरि छ प = लरि ८८′·६४ − लरि कोज्या ५°३४′ − लरि स्परे ५°६
= १·६४७६ − ९·९९७९ − ८·९५४६
= २·६९५१
∴ छ प = ९८८′·६
= १६°२८′·६

यह सूर्य ग्रहणकी मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि सूर्य ग्रहणके संबंधमें छ प का महत्तम मान १८°·५ और लघुतम मान १५°·३ है। अर्थात् यदि अमावस्याके अंतमें सूर्यसे चंद्रमाके किसी पातका अंतर १५°·३ से कम हो तो समझना चाहिए कि सूर्य ग्रहण अवश्य पड़ेगा और यदि यह अंतर १८°·५ से अधिक है तो सूर्य ग्रहण सम्भव नहीं है। परन्तु यदि यह अंतर इन दोनोंके बीचमें हो अर्थात् १५°·३ से अधिक और १८°·५ से कम हो तो सम्भव है कि ग्रहण लगे जिसका निश्चय अमावस्याके अंतकालके सूर्य, चंद्रमाके लंबन और उनकी स्पष्ट गतियोंके द्वारा करना चाहिये।

चन्द्र ग्रहण उन सब स्थानोंमें देख पड़ता है जहां ग्रसित चंद्रमाका उदय हो चुकता है। परंतु सूर्य ग्रहणका देखना उन सब स्थानोंसे सम्भव नहीं जहाँ सूर्यका उदय हुआ रहता है क्योंकि चन्द्रमाके लंबन तथा इसकी छायाके बहुत पतली होनेके कारण यह थोड़े ही स्थानोंसे देखा जा सकता है जिसका निश्चय करना सहज नहीं है।

पर्वान्तकालमें सूर्य, चन्द्रमा और पातको स्पष्ट करनेकी रीति—

गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफलेनोन संयुतौ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा ॥८॥

अनुवाद—(८) जिस समयके सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समयसे पर्वान्तकाल अर्थात् पूर्णमासी या अमा-

वस्याके अंतकालका जो अंतर हो उतने समयकी सूर्य और चद्रमाकी स्पष्ट गतियां जानकर उनका सूर्य और चंद्रमाके स्पष्ट भोगांशोंमें क्रमशः घटाने या जोड़नेसे जो आवें उन्हींको पर्वान्त कालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्रमा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्तकालसे पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये। परन्तु पातका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्तकालसे पीछे हो तो उतने समयकी पातकी गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पातकी गति उलटी होती है।

विज्ञान भाष्य—जैसे मध्यमाधिकारके ६७वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि किसी समयका मध्यम ग्रह दिया हुआ हो तो किसी अन्य समयका मध्यम ग्रह कैसे जानना चाहिये उसी प्रकार यहाँ बतलाया जाता है कि किसी समयके सूर्य, चन्द्रमा और राहुके स्पष्ट भागांश ज्ञात हों तो पर्वान्तकालके सूर्य चद्रमा और राहुके स्पष्ट भागांश कैसे जानने चाहिएँ। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि ग्रहणकी गणना करनेके लिए पूर्णमासी और अमावस्याके अन्तकालोंके सूर्य, चन्द्रमा और राहुके स्पष्ट स्थानों तथा उनकी गतियोंसे ही काम लिया जाता है जैसा कि ऊपरकी बतलायी गयी रीतियों-से स्वयम् प्रकट होता है।

ग्रहण का कारण—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् ।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥९॥

अनुवाद—(९) सूर्यसे नीचे रहनेके कारण चंद्रमा उसको बादलकी तरह ढक लेता है। पूर्वकी ओर भ्रमण करता हुआ चंद्रमा भू छायामें प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमाको भू छाया ढक लेती है। इसलिये सूर्य ग्रहणमें चंद्रमा सूर्यका छादक होता है और चन्द्रग्रहणमें भू छाया चंद्रमाका छादक होती है।

विज्ञान भाष्य—यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है इसलिए यहां दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

ग्रासका परिमाण—

तत्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः ।
योगार्धात्प्रोज्झ्य यच्छेषं तावच्छन्नं तदुच्यते ॥१०॥

अनुवाद—(१०) पर्वान्तकालिक चंद्रमाके विक्षेप या शरको छाद्य और छादकके व्यासार्धोंके योगसे घटा दो, जितना शेष रहे वही ग्रासका परिमाण होगा।

विज्ञान भाष्य—यह चित्र ६६ की व्याख्यासे स्पष्ट है। यह चित्र सूर्य और चंद्रमा दोनोंके लिए समान लागू है। चंद्रग्रहणमें छ छादक और च छाद्य है और सूर्य ग्रहणमें यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायगा।

सर्व ग्रास ग्रहण और खंड ग्रहणकी व्यवस्था—

यद्ग्राह्यमधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा ।
योगार्धादधिकेनस्याद्विक्षेपे ग्राससम्भवः ॥११॥

अनुवाद (११) यदि छाद्यके बिम्बमानसे ग्रासका प्रमाण अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण अर्थात् सर्वग्रास ग्रहण और कम हो तो खंड ग्रहण लगता है। परन्तु यदि चन्द्रमाका विक्षेप

चित्र १००
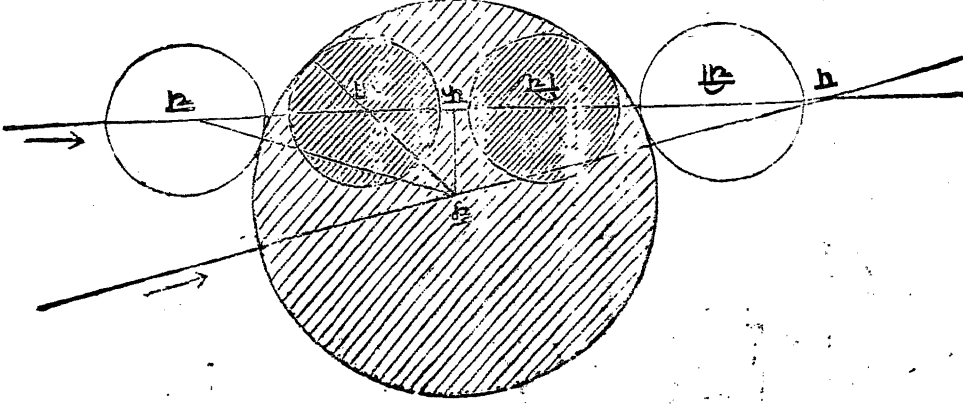
छाद्य और छादकके व्यासार्धोंके योगसे अधिक हो तो ग्रहण नहीं हो सकता ।

विज्ञान भाष्य—यह भी चित्र ९९ की व्याख्यामें समझा दिया गया है। यहां जो कुछ चन्द्रमाके विषयमें कहा गया है वही सूर्यके सम्बन्धमें भी लागू हो सकता है ।

स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध जाननेकी रीति

ग्राह्य ग्राहक संयोगवियोगो दलितौ पृथक् ।
विक्षेपवर्गहीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे ॥१२॥
षष्ट्या संगुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिते ।
स्यातां स्थितिविमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः॥१३॥

अनुवाद—(१२) छाद्य और छादकके बिम्बोंको जोड़कर और घटाकर प्रत्येकका आधा करके अलग अलग रखो। प्रत्येकके वर्गसे चंद्रमाके विक्षेपके वर्गको घटाकर शेषका वर्ग मूल निकालो। (१३) प्रत्येकके वर्ग मूल को ६० से गुणा करके गुणनफल सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट गतियोंके अन्तरसे भाग देदो। भाग देने से जो लब्धि आवेगी वह स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध होंगे।

विज्ञान भाष्य—ग्रहण जितने समयतक रहता है उसके आधे समयको स्थित्यर्ध और सर्व ग्रास ग्रहण जितने समयतक रहता है उसके आधेको विमर्दार्ध कहते हैं। अथवा स्पर्शकालसे ग्रहणके मध्यकालतकके समयको स्थित्यर्ध और सम्मीलनकालसे मध्यकाल तक के समयको विमर्दार्ध कहते हैं। स्थित्यर्धको दूना करनेसे जो आता है वह कुल ग्रहण काल है और विमर्दार्धको दूनाकर देनेसे जो आता है वह सर्वग्रास ग्रहण का समय है।

चित्र १०० में छप क्रान्तिवृत्त, चप चंद्रकक्षा प चंद्रमाका पात, छ भूछाया का केन्द्र, च स्पर्शकालके समय चंद्रमाका केन्द्र, चा सम्मीलन कालके समय चंद्रमाका केन्द्र, चि उन्मीलनके समय चंद्रमाका केन्द्र, ची मोक्षकालके समय चंद्रमाका केन्द्र और फ ग्रहणके मध्यकालके समय चंद्रमाका केन्द्र हैं। यहां सुविधाके लिए भूछायाके स्थिर मान लिया गया है। इसलिए चंद्रमाकी गति अपनी कक्षामें अपेक्षित है जैसा कि चित्र ९८ में चव रेखासे दिखलाया गया है। इस लिए यह सिद्ध है कि चंद्रमा जिस गतिसे चव रेखापर जाता हुआ दिखलाया गया है वह चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्ट गतियोंका अंतर है। यदि यह मान लिया जाय कि छपचएक समतल त्रिभुज (plane triangle) है तो कोई हर्जन होगा। ऐसी दशामें जब कि चफछ कोण समकोण हो और छफ पर्वान्तकालिक चंद्रमा का शर हो तब।

$$\text{चफ} = \sqrt{\text{चछ}^2 - \text{छफ}^2}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{चंद्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{2}\right)^2 - (\text{चंद्रशर})^2}$$

यदि चंद्रमा और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गतियोंका अंतर चा-रा हो तो जितनी देर में चंद्रमा इसी गतिसे चफ मार्ग चलेगा वह इस प्रकार ज्ञात होगा:—

जब चंद्रमा चा-रा भाग ६० घड़ियोंमें चलता है तब चफ भाग

$$\frac{60 \times \text{चफ}}{\text{चा-रा}}$$ घड़ियोंमें चलेगा।

यदि चफ की जगह इसका ऊपर बतलायी गयी रीतिसे आना हुआ मान रखा जाय तो स्थित्यर्धकाल यह होगा—

$$\frac{60}{\text{चा-रा}} \times \sqrt{\left[\left(\frac{\text{चंद्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{2}\right)^2 - (\text{चंद्रशर})^2\right]}$$

यदि $\frac{\text{चन्द्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{2}$ को मानैक्यखंड लिखा जाय और इस सूत्रको सरल किया जाय तो वह रूप होगा:—

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{60 \text{ घड़ी} \times \sqrt{(\text{मानैक्यखंड} + \text{शर})(\text{मानैक्यखंड} - \text{शर})}}{\text{चन्द्र और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गतियोंका अंतर}}$$

इसी प्रकार

$$\text{चाफ} = \sqrt{\text{चा छ}^2 - \text{छ फ}^2}$$

$$= \sqrt{\left[\left(\frac{\text{भूभाबिम्ब} - \text{चंद्रबिम्ब}}{2}\right)^2 - (\text{चन्द्रशर})^2\right]}$$

इसलिए विमर्दार्धकाल

$$= \frac{60}{\text{चा-रा}} \times \sqrt{\left[\left(\frac{\text{भूभाबिम्ब} - \text{चंद्रबिम्ब}}{2}\right)^2 - (\text{चंद्रशर})^2\right]}$$

यदि $\frac{\text{भूभाबिम्ब} - \text{चन्द्रबिम्ब}}{2}$ को मानान्तरखंड लिखा जाय और इस सूत्रको सरल किया जाय तो

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{60 \text{ घड़ी} \times \sqrt{(\text{मानान्तरखंड} + \text{शर})(\text{मानान्तरखंड} - \text{शर})}}{\text{चंद्र और सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गतियोंके अंतर}}$$

इनके सरल करनेपर जो समय आवेगा वह घड़ियोंमें होगा। परन्तु यह स्थूल होगा क्योंकि इनकी गणनामें सूर्य और चन्द्रमाकी स्पष्ट दैनिक गतियोंका अंतर तथा पर्वान्तकालीन चन्द्रशर लिये गये हैं जो स्पर्श या सम्मीलनकालकी स्पष्टगतियों और शरसे बहुत भिन्न होंगे। इसलिए आवश्यक यह है कि पर्वान्त कालके कुछ पहले और पीछेकी प्रत्येक घड़ी या घंटेकी स्पष्ट गतियोंकी अंतर और चन्द्र-

शर निकाल कर गणनाकी जाय। यदि ऊपरके नियमसे ही स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल जाना जाय तो चाहिए कि पर्वान्तकालसे इतना पहलेके सूर्य, चन्द्रमा, राहु और चन्द्रशर के स्पष्ट स्थान निकाल कर इनसे फिर स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल जाना जावे। ये पहलेकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होंगे। इसी प्रकार कई बार स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल निकाले जायँ तो अंतमें ऐसा फल मिलेगा जो फिर भिन्न न हो सकेगा। यही शुद्ध स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्धकाल होंगे ऐसी क्रियाको असकृतकर्म कहते हैं। इसीकी रीति अगले दो श्लोकोंमें बतलायी गयी है।

असकृत्कर्मसे स्थित्यर्ध और विमर्दार्धकाल जानना—

स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता गतयः षष्टिभाजिता।
लिप्तादि प्रग्रहे शोध्यं मोक्षेदेयं पुनः पुनः ॥१४॥
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथासकृत।
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादिफलं स्वकम् ॥१५॥

अनुवाद—(१४) सूर्य, चन्द्रमा और पातकी दैनिक गतियोंको स्थित्यर्धकालसे (जो घड़ियोंमें होता है) गुणा करके साठसे भाग देनेपर यह ज्ञात होता है कि सूर्य चन्द्रमा और पात स्थित्यर्धकालमें कितना चलते हैं। इन परिमाणोंको क्रमशः पर्वान्तकालीन सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशोंमें घटा देनेपर सूर्य और चन्द्रमाके स्पर्शकालीन भोगांश आजाते हैं और जोड़ देनेपर इनके मोक्षकालीन भोगांश आजाते हैं। (१५) परंतु स्पर्शकालीन पातका भोगांश जानने के लिए स्थित्यर्धकालमें पात जितना चलता है उसको पर्वान्तकालीन पातके भोगांशमें जोड़ना चाहिए और मोक्षकालीन पातका भोगांश जाननेके लिए उसको पर्वान्तकालीन पातके भोगांशमें घटाना चाहिए क्योंकि पातकी गति उलटी होती है। इस प्रकार स्पर्शकालीन सूर्य चन्द्रमा और पातके भोगांशसे चंद्रमाका शर और सूर्य चन्द्रमाकी स्पष्ट गतियोंको जानकर स्थित्यर्ध और विमर्दार्धकाल फिर निकाले। इसी प्रकार कई बार असकृत कर्मसे स्पर्श और मोक्षकालका ज्ञान सूक्ष्मता पूर्वक हो सकता है। इसी प्रकार सम्मीलन और उन्मीलनकालकी शुद्धता भी जाननी चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इसकी उपपत्ति पिछले पृष्ठमें बतलायी जा चुकी है इसलिए अधिक लिखनेकी आवश्यता नहीं है।

स्पर्श और मोक्षकाल तथा सम्मीलन और उन्मीलनकाल जाननेकी रीति—

स्फुट तिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत्।
स्थित्यर्धनाडिका हीने ग्रासो मोक्षस्तुसंयुते ॥१६॥
तद्वदेव विमर्दार्धनाडिका हीन संयुते।
निमीलनोन्मीलनाख्ये भवेतां सकल ग्रहे ॥१७॥

अनुवाद—(१६) स्पष्ट तिथिके अंतमें अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्याके अन्तमें ग्रहणका मध्यकाल होता है। इस समयसे स्थित्यर्धकाल घटा देनेपर स्पर्शकालका समय आता है और जोड़ देनेपर मोक्षकालका समय आता है। (१७) इसी प्रकार ग्रहणके मध्यकालसे विमर्दार्धकाल घटा देनेपर सर्वग्रास ग्रहणके आरम्भकाल अर्थात् सम्मीलन कालका पता लग जाता

है और जोड़ देनेपर उन्मीलन काल अर्थात् सर्वग्रास ग्रहणके अंतकालका पता लग जाता है।

विज्ञान भाष्य—यह स्वयम् इतना स्पष्ट है कि अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

अब यह भी बतला देना आवश्यक है कि अन्य प्रथाके अनुसार ग्रहणका मध्यकाल, स्पर्शकाल, मोक्षकाल, सम्मीलनकाल और उन्मीलनकाल कैसे जाने जाते हैं।

चित्र ६८ में दिखलाया गया है कि पूर्णमासीके अंतमें चंद्रमा और भूछायाके भोगांश समान होते हैं। इसलिए घ घड़ी उपरान्त चन्द्रमा और भूछायाके भोगांशोंका अन्तर घ × (चा — रा) के समान होगा जब कि चा और रा चन्द्रमा और सूर्य अथवा भूछायाकी प्रतिघड़ीकी भोगांश गति हो। यदि चन्द्रमाके शरकी गति प्रतिघड़ी शा हो तो घ घड़ीके उपरान्त इसके शरमें घ × शा के समान परिवर्तन हो जायगा। यदि पूर्णिमान्तकालमें चन्द्रमाका शर श हो तो घ घड़ीके उपरान्त इसका शर श − घ × शा होगा। इसलिए घ घड़ीके उपरान्त चन्द्रमा और भूछायाके केन्द्रोंका अन्तर मा यह होगा :—

$$मा = \sqrt{[घ (चा - रा)]^2 + (श - घ \times शा)^2}$$

क्योंकि चन्द्रमा और भूछायाके भोगांशोंका अन्तर भुज, चंद्रमाका शर कोटि और दोनोंके केन्द्रोंका अंतर कर्णके समान होगा जैसा कि स्पर्शकाल और सम्मीलनकालके समयकी दशा चित्र १०० में दिखलायी गयी है। इस समीकरणके दोनों पक्षोंका वर्ग कर देनेसे

$$मा^2 = [घ (चा - रा)]^2 + (श - घ \cdot शा)^2$$

$$= (चा - रा)^2 घ^2 + श^2 - २ श \cdot शा \cdot घ + घ^2 \cdot शा^2$$

$$= [(चा - रा)^2 + शा^2] घ^2 - २ श \cdot शा \cdot घ + श^2$$

$$या \; [(चा - रा)^2 + शा^2] घ^2 - २ श \cdot शा \cdot घ + श^2 - मा^2 = ०$$

यह घ का वर्ग समीकरण है जिससे घ के दो मान ज्ञात होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णिमान्तके पहले और पीछे २ बार चंद्रमा भूछायासे समान अंतरपर आता है। यदि मा के स्थानमें मानैक्यखंडका मान रखकर घ के दो मान निकाले जायँ तो यह स्पर्शकाल और मोक्षकालके समय होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि ग्रहण नहीं लगेगा, यदि समान हों तो समझना चाहिए कि ग्रहणका आरंभ और अंत एक साथ होगा अर्थात् चंद्रमा भूभा को केवल स्पर्श करता हुआ निकल जायगा परंतु ग्रहण नहीं लगेगा।

यदि मा के स्थान में मानान्तर खंड का मान रखकर घ के दो मान निकाले जांय तो सर्व ग्रास ग्रहणके आरंभकाल और अंतकाल अथवा सम्मीलन और उन्मीलनकालके समय ज्ञात होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लगेगा और यदि दोनों मान समान हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ और अंत एक साथ ही होगा अर्थात् जैसे ही चंद्रमाका पूरा बिम्ब छायामें आवेगा तैसे ही छायाके बाहर भी होने लगेगा।

इस समीकरणसे घ के दोनों मान नीचे लिखे सूत्रके अनुसार होंगेः—

$$घ = \frac{२ श. शा \pm \sqrt{४श^२. शा^२ - ४[(चा-शा)^२ + शा^२][श^२ - मा^२]}}{२[(चा-शा)^२ + शा^२]}$$

$$= \frac{श. शा \pm \sqrt{श^२. शा^२ - [(चा-शा)^२ + शा^२][श^२ - मा^२]}}{(चा-शा)^२ + शा^२}$$

घ के इन दोनों मानोंके योगका आधा

$$= \frac{श. शा}{(चा-शा)^२ + शा^२}$$

यही ग्रहणका मध्यकाल है, अर्थात् पूर्णिमान्तके इतने ही समय उपरान्त ग्रहणका मध्य होता है।

सूर्य, चन्द्रमाके विषुवांश और क्रान्तिसे भी ग्रहणका स्पर्शकाल, सम्मीलनकाल इत्यादि जाननेकी रीति है जो उपर्युक्त रीतिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है परन्तु वह विस्तार भयसे यहां नहीं लिखी जायगी।

यहां यह बतला देना आवश्यक समझ पड़ता है कि सूर्य सिद्धान्तमें स्पर्शकाल और मोक्षकाल इत्यादिके जाननेका जो नियम दिया गया है उससे सिद्ध होता है कि ग्रहणका मध्यकाल पूर्णिमाके अन्तमें होता है परन्तु ऊपर बतलायी गयी दूसरी रीतिमें ग्रहणका मध्यकाल पूर्णिमान्तके कुछ उपरान्त आता है। दूसरी रीति बिलकुल शुद्ध है और पहली कुछ स्थूल। इसका कारण चित्र ९८ में स्पष्ट हो जाता है। ग्रहणका मध्यकाल उस समय होता है जिस समय चन्द्रमा भूभा से निकटतम अंतर अर्थात् क पर होता है जब कि छ क चन्द्रमाकी कक्षापर लम्ब होता है। ऐसी दशा में चन्द्रमाका शर पूर्णिमान्त कालके शरसे कुछ छोटा होता है और चन्द्रमा भी पूर्णिमान्त कालके स्थान च से कुछ आगे बढ़ा रहता है।

यह जानना कि ग्रासका परिमाण स्पर्श कालसे किस समयपर कितना होता है—

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ताः कोटिलिप्तिकाः॥१८॥
भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्ध संगुणाः।
स्फुटस्थित्यर्ध सम्भक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः
स्मृताः॥१९॥

क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत्।
मानयोगार्धतः प्रोज्झ्य,
ग्रासस्ता कालिकोभवेत्॥२०॥

अनुवाद—(१८) ग्रहणके आरंभ कालसे कुछ घड़ी पीछे परंतु मध्य ग्रहणके पहले ग्रासका परिमाण कितना होता है यह जाननेके लिए इष्ट घड़ीको स्थित्यर्धकालसे घटाकर शेषको चन्द्रमा और सूर्यकी दैनिक स्पष्टगतियोंसे अन्तरसे गुणा करके गुणनफलको ६० से भाग दे दो। इस भागफलको कोटिकला कहते हैं जब कि दैनिक गतियां कलाओंमें प्रकट की गयी हों। (१९) सूर्यग्रहणका ग्रासमान जाननेके लिए ऊपरकी रीति निकाली गयी कोटिकलाको मध्यस्थित्यर्धसे गुणा करके गुणनफलको स्पष्ट तिथ्यर्धसे भाग देनेपर आता है उसे स्पष्ट कोटिकला कहते हैं। (२०) उस समयके चंद्रमाके शरको भुज मानकर इसके वर्गको कोटिकलाके वर्गमें जोड़कर योगफलका वर्गमूल निकालनेसे जो कर्ण आये उसे मानैक्यखंडसे घटानेपर जो आवे वही तत्कालिक ग्रास होता है।

विज्ञान भाष्य—इस नियमकी उपपत्ति चित्र ९८, ९९ और १०० के सम्बन्धमें अच्छी तरह समझायी गयी है । १६-१७ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें जो सूत्र

मा = $\sqrt{[\text{घ}(\text{चा}-\text{रा})]^2+(\text{श}-\text{घ}\times\text{शा})^2}$ स्थापित किया गया है वह इसी नियमका दूसरा रूप है । इस सूत्रमें घ पर्यन्तकालसे पहले या पीछेका समय है परन्तु नियममें स्पर्शकालके उपरान्तका इष्टकाल माना गया है इसलिए स्थित्यर्धसे इष्टकाल घटानेका आदेश है ऐसा करनेसे जो आवे उसको घ की जगह रखकर सूत्रकी सरल करनेपर मा का जो परिमाण आवेगा उसीको मानैक्य खण्डसे घटानेपर तात्कालिक ग्रासका परिमाण जाना जा सकता है । यहां घ (चा – रा) ही कोटिलिप्ता है क्योंकि चा – रा सूर्य और चंद्रमाकी प्रतिघड़ीकी गतियोंका अन्तर है । यदि दैनिक स्पष्ट गतियोंका अंतर दिया हुआ हो तो इसको ६० से भाग देना पड़ता है जैसा कि नियममें बतलाया गया है । श – घ × शा तात्कालिक शर है । और मा भूभा और चन्द्रमाके केन्द्रोंका तात्कालिक अन्तर है यह अन्तर मानैक्यखंडसे जितना कम होता है वही ग्रासका परिमाण है जिसका व्याख्या चित्र ९९ के संबंधमें अच्छी तरहकी गयी है उस चित्र से भिन्नता केवल इतनी है कि उसमें चंद्रमा और भूभा के केन्द्रोंकी निकटतम दूरी ली गयी है जो श कोज्या ई के समान होती है और यहां वह दूरी ली गई है जो स्पर्शकालसे इष्ट घड़ी उपरान्त होती है ।

यदि मानैक्यखण्ड अर्थात् भूभा और चन्द्रमाके व्यासार्धोंके योगको पहलेकी तरह म अक्षरसे सूचित किया जाय तो स्पर्शकालसे घ घड़ी उपरान्त ग्रासका परिमाण यह होगा:—

$$\text{ग्रास} = \text{म} - \sqrt{\left[(\text{स्थि}-\text{घ})\times\frac{\text{चा}-\text{रा}}{६०}\right]^2+\text{श}^2}$$

जहाँ स्थि स्थित्यर्धके लिए, श चन्द्रमाके तात्कालिक शरके लिए और चा – रा सूर्य चंद्रमाके दैनिक गतियोंके अन्तर लिए लिखा गया है । यदि चा – रा प्रति घटीका अन्तर हो तो ६० से भाग देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

सूर्य ग्रहणके संबंधकी बात आगे आने वाले सूर्य ग्रहणाधिकारमें बतलाई जायगी ।

मध्य ग्रहणके उपरान्त परन्तु मोक्षकालसे कुछ घड़ी पहले ग्रासका परिमाण—

मध्यग्रहणतश्चोर्ध्वमिष्टनाडी विशोधयेत् ।
स्थित्यर्धान्मौक्षिकाच्छेषं प्राग्वच्छेषं तु मौक्षिके ॥२१॥

अनुवाद—(२१) जब यह जानना हो कि मध्य ग्रहणके उपरान्त मोक्षकालसे कुछ घड़ी पहले ग्रासका परिमाण क्या है तब मोक्षकाल संबंधी स्थित्यर्धसे इष्ट घड़ी घटाकर जो शेष बचे उससे ऊपरके १८–२० श्लोकोंमें बतलायी गयी रीतिके अनुसार ग्रासमान निकाले । इससे यह जाना जायगा कि मोक्षकालसे इष्ट घड़ी पहले चंद्रमाका कितना भाग ग्रस्त शेष है ।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८–२० श्लोकोंमें बतलाये गये नियमके समान है । उससे यह जाना जाता है कि इष्टकालमें कितना भाग ग्रस्त हो जाता है और इससे यह जाना जाता है कि इष्टकालमें कितना भाग ग्रस्त शेष रहता है क्योंकि मध्य ग्रहणके पहले जिस क्रमसे ग्रस्त भागकी वृद्धि होती है,

मध्यग्रहणके उपरान्त ठीक उसके विलोम क्रमसे ग्रस्त भाग की क्षीणता होती है।

ग्रासका परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल जानना—

ग्राह्य ग्राहक योगार्धाच्छोध्याः स्वच्छन्न कालिप्तिः।
तद्वर्गात्प्रोश्य तत्काल विक्षेपस्य कृतिं पदम् ॥२२॥
कोटिलिप्ता रवेः स्पष्ट-स्थित्यर्धे नाहता हृताः।
मध्येन लिप्तास्तन्नाड्यः थितिवद् ग्रासनाडिका २३

अनुवाद—(२२) मानैक्यखंडसे ग्रस्त भागकी कलाको घटाकर शेषका वर्ग करो और इसके वर्गसे चन्द्रमाके तात्कालिक शरके वर्गको घटा दो और शेषका वर्गमूल निकालो तो [२३] कोटिलिप्ताका मान ज्ञात होगा। सूर्यग्रहणमें इस कोटिलिप्ताको स्पष्ट स्थित्यर्धसे गुणा करके गुणनफलको मध्यम स्थित्यर्धसे भाग देनेपर जो आता है वह कोटिकला है। इसी कोटिकलासे स्थित्यर्धकाल जाननेकी रीतिसे घड़ी बनावे अर्थात् कोटिकलाको ६० से गुणा करके सूर्य और चन्द्रमाकी दैनिक गतियोंके अन्तरसे भाग दे। जो भागफल आवे उसको स्थित्यर्धकालसे घटा दे तो यह ज्ञात होगा कि स्पर्शकालके उपरान्त कितनी घड़ी बीती है। इसीका नाम ग्रासनाड़िका है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८-२० श्लोकोंमें बतलाये गये नियमका विलोम है। वहां यह बतलाया गया है आरम्भकालसे इष्ट घड़ी उपरान्त ग्रासका परिमाण क्या होता है और यहां यह बतलाया गया है कि यदि ग्रासका परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल कैसे जाना जाता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी वही है। इसका रूप यह है:—

$$\text{कोटिकला} = \sqrt{(\text{म}-\text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$$

$$\text{ग्रासनाडिका} = \text{घ} = \text{स्थि} - \frac{60}{\text{चा}-\text{रा}}\sqrt{(\text{म}-\text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$$

वलन जानना

नतज्यादाज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्ता तस्यकार्मुकम्।
वलनांशाःसौम्ययाम्याः पूर्वापरकपालयोः ॥ २४ ॥
राशित्रययुताद्ग्राह्या त्क्रान्त्यंशै र्दिक्समैर्युताः।
भेदेऽन्तराज्ज्या वलना सप्तत्यंगुलभाजिता ॥२५॥

अनुवाद—(२४) छाद्य ग्रहके समप्रोत वृत्तके नतांशकी ज्या को इष्टस्थानके अक्षांशकी ज्यासे गुणा करके गुणनफलको ग्रहके अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्यासे भाग दे दे, और भागफलका धनु बनावे। यही धनु ग्रहका आक्षवलन कहलाता है। यदि ग्रह पूर्वकपालमें हो अर्थात् याम्योत्तरवृत्तसे पूर्व हो तो अक्षवलन उत्तरकी ओर होता है और यदि ग्रह पश्चिम कपालमें हो अर्थात् याम्योत्तरवृत्तसे पश्चिम हो तो आक्षवलन दक्षिणकी ओर होता है। (२५ ग्रहके सायन भोगांश में ९० अंश जोड़नेसे जो भोगांश आवे उसकी क्रान्ति (स्पष्टाधिकार श्लोक २८ के अनुसार) निकाले अर्थात् उसको परम क्रान्तिज्यासे गुणा करके (अहोरात्रवृत्तकी) त्रिज्यासे भाग दे दे भागफल आयनवलन कहलाता है। यह (क्रान्ति) उत्तर या दक्षिणकी ओर होगी। यदि आक्षवलन और आयनवलन दोनोंकी दिशा एकही हो तो जोड़ दे और भिन्न हो तो घटा दे। ऐसा करनेसे जो कुछ आवे वह स्फुटवलन कहलाता है। इसकी ज्याको ७० से भाग देनेपर वलनका अङ्गुलादि मान ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—यह जाननेके लिये कि ग्रहणका स्पर्श, मोक्ष
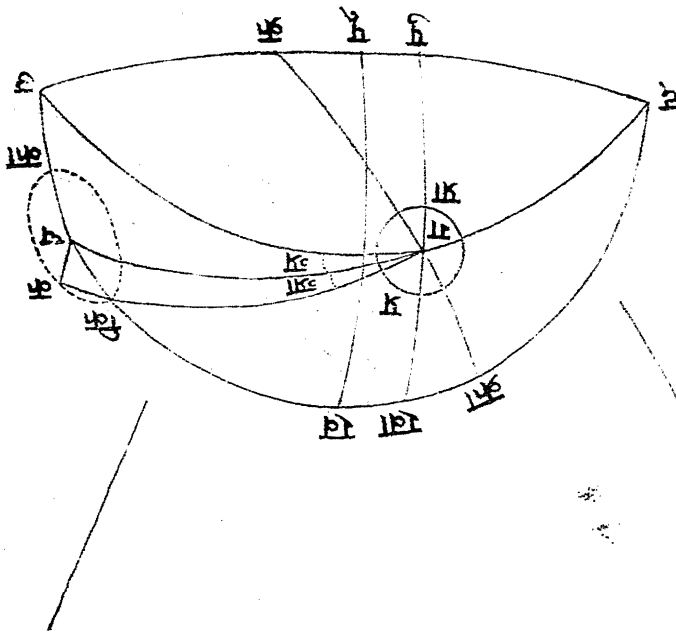
इत्यादि छाद्य ग्रहके किस विन्दुसे आरंभ या अंत होता है स्फुटवलनकी आवश्यकता पड़ती है । छाद्य ग्रहके पूर्व या पश्चिम विन्दुसे जितने कोणपर क्रान्तिवृत्त उत्तर या दक्षिण होता है उसीको स्फुटवलन कहते हैं । ग्रह बिम्बका पूर्व और पश्चिम विन्दु इस प्रकार जाना जाता है—ग्रहके केन्द्रसे क्षितिजके उत्तर-दक्षिण विन्दुओंको जाता हुआ एक महावृत्त खींचते हैं जिसे उस ग्रह का समप्रोतवृत्त (circle of position) कहते हैं । यह समप्रोतवृत्त सममण्डलमें* समकोण बनाता है । सममण्डलके समानान्तर ग्रह बिम्बके केन्द्रसे जो ऊर्ध्व वृत्त खींचा जाता है वह भी समप्रोतवृत्तसे समकोणपर होता है । यह ऊर्ध्ववृत्त ग्रहबिम्बके किनारेके जिन विन्दुओंपर काटता है उनमेंसे जो पूर्वकी ओर होता है उसे ग्रहका पूर्व विन्दु और जो पश्चिमकी ओर होता है उसे ग्रहका पश्चिम विन्दु कहते हैं । चित्र १०१ से यह सब बातें स्पष्ट होती हैं ।

चित्र १०१ से सिद्ध है कि क्रान्तिवृत्त क ग का ग्रह बिम्बके प्राच्य विन्दुसे पु ग क कोणके अंतरपर है । इसी अंतरको स्फुटवलन कहते हैं । यह जाननेके लिए समप्रोत वृत्त उ ग और कदम्बप्रोत वृत्त क ग के बीचका कोण उ ग क जाननेकी आवश्यकता पड़ती है क्योंकि उ ग और क ग क्रमानुसार खा ग पु और क ग का से समकोणपर हैं इसलिए पहले दो के बीचका कोण पिछले दो के बीचके कोणके समान होगा । इसलिए स्फुटवलन उ ग क कोणके समान हुआ जो उ ग ध और ध ग क नामक दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है । कोण उ ग ध को अक्षवलन और कोण ध ग क को आयनवलन कहते

चित्र १०१

क ध ख द=इष्ट स्थानका याम्योत्तर वृत्त
उ पु द=इष्ट स्थानका क्षितिजवृत्त (पूर्वार्ध)
उ, द, पु=क्षितिजके उत्तर, दक्षिण और पूर्व विन्दु
ग=ग्रहबिम्ब

* देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ११४

ख पू=सममण्डल
क का=क्रान्तिवृत्त
ग=छाद्य ग्रहके बिम्बका केन्द्र
उ ग द=ग बिन्दुका समप्रोतवृत्त (circle of position)
ध=उत्तरीय आकाशीय ध्रुव
क=कदम्ब (क्रान्ति वृत्तीय ध्रुव)
क का कि=कदम्ब वृत्त (वह वृत्त जिसपर कदम्ब अहोरात्रमें ध्रुवकी परिक्रमा करता है)

ख गा=समप्रोत वृत्तका नतांश
का=कदम्बका स्थान जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्तपर होता है
कि=कदम्बका स्थान जब सायन मकर याम्योत्तरवृत्तपर होता है।
ग ध=ग्रहका ध्रुवान्तर
ग क=ग्रहका कदम्बान्तर
कोण उ ग ध=ग्रहका अक्षवलन
कोण ध ग क=ग्रहका आयनवलन
कोण उ ग क=ग्रहका स्फुटवलन
कोण क ग पु=ग्रहका स्फुटवलन
प्रा प ग प्रा पु=ग्रहके केन्द्रसे जाता हुआ सममण्डलका समानान्तर वृत्त
प्र प्रा=ग्रह बिम्बका प्राच्य (पूर्वी) विन्दु
प्र= " " प्रतीच्य (पश्चिमी विन्दु)

कहते हैं। जिससे स्पष्ट है कि कोण उ ग क का परिमाण जाननेके लिए अक्षवलन और आयनवलनको जोड़ना पड़ेगा। परन्तु यदि कदम्ब प्रोतवृत्त क ग उ ग और ध ग के बीचमें हो तो अक्षवलनसे आयनवलन घटानेपर स्फुटवलन आता है। चित्रमें ग्रह पूर्व कपालमें अर्थात् याम्योत्तर वृत्तके पूर्व दिखलाया गया है। ऐसी दशामें स्फुटवलन प्राच्य विन्दुसे उत्तरकी ओर होता है। यदि इसी तरह दूसरा चित्र बनाकर ग्रह पश्चिम कपालमें दिखलाया जाय तो उससे स्पष्ट होगा कि स्फुटवलन ग्रहके प्रतीच्य विन्दुसे दक्खिनकी ओर होता है। इस प्रकार श्लोक २४ के उत्तरार्धकी उत्पत्ति सिद्ध होती है। अक्षवलन का परिमाण गोलीय त्रिभुज उ ग ध से इस प्रकार जाना जाता है :—

गोलीय त्रिभुज उ ग ध में,

$$\frac{\text{ज्या (उ ग ध)}}{\text{ज्या (ध उ)}} = \frac{\text{ज्या (ग उ ध)}}{\text{ज्या (ग ध)}} = \frac{\text{ज्या (ख गा)}}{\text{ज्या (ध्रुवान्तर)}}$$

क्योंकि उ ख और उ गा ९०° के समान हैं इसलिए इनके बीचका कोण गा उ खा अथवा ग उ ध ख गा के समान हुआ जो समप्रोतवृत्तका नतांश है। ज्या (ध्रुवान्तर) = ग्रहकी क्रान्ति कोटिज्या = ग्रहकी द्युज्या* = ग्रह के अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या *ज्या (ध उ) = अक्षांश की ज्या = अक्षज्या

इसलिए

$$\text{ज्या (उ ग ध)} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{ज्या (खगा)}}{\text{ग्रहके अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{ज्या (खगा)}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \text{..................(१)}$$

इस तरह श्लोक २४ का पूर्वार्ध भी सिद्ध हो गया। यहाँ त्रिज्याका अर्थ ३४३८ नहीं है वरन् अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या है जो ग्रहकी क्रान्ति कोटिज्या के समान होती है और नतज्याका अर्थ ग्रह के नतांश ख ग अथवा देखो नतकाल ख ध ग की ज्या नहीं है वरन् समप्रोतवृत्तका नतांश खगा है। भास्कराचार्यजीने इसका परिमाण जाननेके लिए यह नियम* बतलाया है कि

* देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १०३-१०४ गणिताध्याय पृष्ठ १८०

स्पर्शकालमें छाद्य ग्रहका जो नतकाल हो उसको ६० से गुणा करके यदि सूर्यग्रहण हो तो दिनार्धमान और चन्द्रग्रहण हो रात्र्यर्धमानसे भाग दे दे। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब दिनार्धमान या रात्र्यर्धमानमें छाद्य ग्रह ९०° ऊपर चढ़ता है तो नतकालमें जितना चढ़ेगा वही उसका नतांश है परन्तु यह नियम स्थूल है। जान पड़ता है कि सूर्य सिद्धांत ने भी छाद्य ग्रहके नतांश ख ग की ज्याके लिए ही नतज्या लिखा है न कि ख ग के लिए क्योंकि ख ग का परिमाण जानने के लिए कोई नियम नहीं बतलाया गया है। यह भी संभव है कि नतकाल ख ध ग की ज्या के लिए भी नतज्या लिखा गया हो। परन्तु यह दोनों अर्थ शुद्ध नहीं हैं। इसलिए मैंने अनुवादमें इसका अर्थ समप्रोतवृत्तके नतांशकी ज्या किया है।

समप्रोतवृत्तका नतांश ख ग अथवा कोण ख उ ग गोलीय त्रिकोण मितिके आधारपर इस प्रकार शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है :—

पहले ग्रह के नतकालसे उसका नतांश ख ग पृष्ठ ४३० में सिद्ध किये गये सूत्र (क) से जान लेना चाहिए। फिर नतांश की सहायता से कोण ध ख ग पृष्ठ ४०६ में सिद्ध किये गये सूत्र से जानना चाहिए। जब नतांश ख ग और कोण ध ख ग अथवा उ ख ग ज्ञात हो गये तब गोलीय त्रिभुज उ ख ग के तीन अंग अर्थात् दो भुज उ ख और ख ग तथा इनके बीचका कोण जानकर कोण ख उ ग सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

कोस्पर (ख ग) × ज्या (ख उ)

= कोज्या (ख उ) कोज्या (उ ख ग) + कोस्पर्श (ख उ ग)* ज्या (उ ख ग)

परन्तु यहां ख उ = ९०°, इसलिए ज्या (ख उ) = १ और कोज्या (ख उ) = ०

∴ कोस्पर्श (ख ग) = कोस्पर्श (ख उ ग) ज्या (उ ख ग)

$$\therefore \text{कोस्पर्श } (\text{ख उ ग}) = \frac{\text{कोस्पर्श}(\text{ख ग})}{\text{ज्या } (\text{उ ख ग})}$$

$$\text{अथवा स्पर्श } (\text{ख उ ग}) = \frac{\text{ज्या } (\text{उ ख ग})}{\text{कोस्पर्श } (\text{ख ग})}$$

$$= \text{ज्या } (\text{उ ख ग}) \text{ स्पर्श } (\text{ख ग})$$

परन्तु कोण उ ख ग = ९० + ∠ पू ख ग

= ९०° + अग्रा†

∴ ज्या(उ ख ग) = ज्या(९०° + अग्रा) = कोज्या (अग्रा)

∴ स्पर्श (ख उ ग) = अग्रा की कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

इसलिए सिद्ध होगया कि ग्रहके समप्रोतवृत्तकी नतांश ज्या जाननेके लिए ग्रहकी अग्राकी कोटिज्याको ग्रहके नतांश स्पर्शरेखासे गुणा कर देना चाहिये।

इस प्रकार ख उ ग कोण अथवा ख ग धनुका मान जान कर इसकी ज्या को पृष्ठ ४५ के सूत्र (१) में उत्थापित करनेसे अक्षवलन का मान ज्ञात होगा।

आयनवलन का मान इस प्रकार जाना जा सकता है :—

---

*देखो Todhunter and Leathem's Spherical Trigonometry pp. 26.

†देखो पृष्ठ ४०६

गोलीय त्रिभुज क ग घ में

$$\frac{\text{ज्या}\angle \text{क ग घ}}{\text{ज्या (क घ)}} = \frac{\text{ज्या}\angle \text{ग क घ}}{\text{ज्या (ग घ)}}$$

$$\therefore \text{ज्या}\angle \text{क ग घ} = \frac{\text{ज्या (क घ)} \times \text{ज्या}\angle \text{ग क घ}}{\text{ज्या (ग घ)}}$$

यहां क घ कदम्बसे ध्रुवका अंतर है जो सूर्यकी परम क्रान्तिके समान होता है। ग घ ध्रुव ग्रहका अंतर है जिसकी ज्या ग्रहकी क्रान्ति कोटिज्याके समान है और कोण ग क घ, ग के कदम्ब प्रोतवृत्त ग क और अयनवृत्त क घ के बीचमें है। पृष्ठ २६३ के चित्र ३६ से स्पष्ट है कि दक्षिणायन विन्दु द वसंत संपातसे ९०° आगे और उत्तरायण विन्दु ब वसंत संपातसे २७०° आगे है अर्थात् दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दुओंसे जाता हुआ अयनवृत्त वसंत संपातसे ९०° और २७०°के अन्तरपर क्रान्तिवृत्तको समकोणपर काटता है। उसी चित्रसे यह भी प्रकट है कि ग के कदम्बप्रोतवृत्त प क और अयनवृत्त द घ क के बीचका कोण द क ग या द क प के समान है जो प द धनुके भी समान हुआ। ग्रहका भोगांश व प धनु है। इसलिए व प और प द का योग ९०° के समान हुआ अर्थात् प द की ज्या व प की कोटिज्या के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रहके कदम्बप्रोतवृत्त और अयन-वृत्तके बीचके कोणकी ज्या ग्रहके भोगांश की कोटिज्याके समान होती है। इसलिए

$$\text{ज्या}\angle \text{क ग घ} = \frac{\text{परम क्रान्तिज्या} \times \text{ग्रहकी भोगांश कोटिज्या}}{\text{ग्रहकी क्रान्ति कोटिज्या}} \cdots\cdots\cdots\cdots (५)$$

इस प्रकार क ग घ कोणकी मान अथवा अयनवमन सिद्ध होता है। २५वें श्लोकके पूर्वार्धमें संक्षेपमें केवल इतना ही बतलाया गया है कि ग्रहके भोगांशमें ९०° जोड़नेसे जो कुछ आवे उसकी क्रान्ति निकालें अर्थात् इसकी ज्याको परम क्रान्तिज्यासे गुणा करके ग्र के अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या से भाग दे दो। परन्तु अहोरात्रवृत्तकी त्रिज्या = क्रान्ति कोटिज्या (देखो पृष्ठ ३०३, ३०४ और ग्रहके भोगांश में ९०° जोड़कर जो आता है उसकी ज्या ग्र के भोगांशकी कोटिज्याके समान होती है क्योंकि यदि भ भोगांश हो तो

ज्या (भ + ९०°) = कोज्या भ। देखो पृष्ठ १८५—१८६।

जब भोगांश ६ राशिसे कम होता है तो क्रान्ति उत्तर होती है और ६ राशि से अधिक होता है तो क्रान्ति दक्खिन होती है। इसी तरह जब भ + ९०° ६ राशिसे अधिक हो तो ∠ क ग घ को दक्खिन समझना चाहिए और ६ राशिसे कम हो तो उत्तर समझना चाहिए।

अक्षवलन और आयनवलन दोनोंकी दिशाएं एक ही हों तो जोड़नेसे और भिन्न हों तो इनके अंतरसे स्पष्टवलनकी परिमाण ज्ञात होता है। यह चित्र १०१ से ही स्पष्ट है।

अक्षवलन और अयनवलनके सूत्रोंसे यह भी निश्चय किया जा सकता है कि इनके मान किस समय सबसे अधिक और किस समय शून्य हो सकते हैं। उदाहरणके लिए आयन-वलनके सूत्रको लीजिए। इस समीकरणके दाहिनी ओरके ३ गुणक हैं जिनमें परमक्रान्तिज्या अचल है। परन्तु ग्रहकी भोगांश कोटिज्या और क्रान्तिकोटिज्या चल हैं। जिस समय भोगांश शून्य होगा उस समय ग्रह वसंत संपातपर होगा इसलिए इसकी क्रान्ति भी शून्य होगी। ऐसी दशामें इनकी कोटिज्याओंका मान १ होगा। इसलिए आयनवलन परमक्रान्तिके समान अर्थात् २३°२७′ होगा। यही

बात शरद् सम्पातपर भी होगी। यही बात भास्कराचार्यजीने गोलाध्यायके ग्रहणवासनाके ३०वें श्लोकमें लिखी है। इसी प्रकार जब भोगांश ९०° या २७०° होगा तब भोगांश कोटिज्या शून्य होगी परन्तु क्रान्ति कोटिज्या शून्य नहीं होगी क्योंकि क्रान्ति २४° के लगभग होगी इसलिए आयनवलन भी शून्य होगा इत्यादि।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि स्फुट वलनका परिमाण अंशों या कलाओंमें कैसे जाना जाता है यदि यह जानना हो कि चित्र खींचते समय अंगुलसे नापकर कैसे काम लिया जाय तो स्फुटवलनकी ज्या को ७० से भाग देनेपर अंगुलोंमें वलनका परिमाण आ जाता है। ऐसा २५ वें श्लोकमें बतलाया गया है। इसकी उपपत्ति यह है कि छाद्य ग्रहके बिम्बका चित्र खींचनेके लिए ४९ अंगुलका व्यासार्ध मानकर वृत्त खींचने की परिपाटी थी। यह १२ अंगुलके शंकुके चौगुनेके लगभग होता है और इस प्रकार एक अंगुल ७० कलाके लगभग होता है क्योंकि त्रिज्याका मान साधारणतः ३४३८ कलाओंका समझा जाता है और ४९ × ७० = ३४३० जो ३४३८ के बहुत निकट है।

अंगुलों में बिम्बका मान जानना:—

सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु।
छिन्द्याद्विक्षेप मानानि तान्येषामङ्गुलानि तु ॥२६॥

अनुवाद—(२६) इष्ट समयमें छाद्य ग्रहका जो उन्नतकाल हो उसको दिनमान और दिनार्धमानके योगमें जोड़कर योगफलको दिनार्धमानसे भाग दे दो। इस भागफलसे विक्षेप, छाद्य और छादक ग्रहोंके कलात्मक बिम्बोंपातोंके भाग दे देनेसे इनके बिम्बोंके अंगुलात्मक मान ज्ञात

विज्ञान भाष्य—पृष्ठ ५५३ में बतलाया गया है कि वर्तनके कारण उदय अस्त होते हुए सूर्यका आकार बड़ा देख पड़ता है। यही दशा चन्द्रमाकी भी होती है। यह बात हमारे आचार्यों-को भी ज्ञात* थी। यह तो निश्चय ही था कि उदय या अस्त होते हुए सूर्य और चन्द्रमाके यथार्थ पिंडमें कोई अन्तर नहीं पड़ता इसलिये हमारे आचार्योंने यह कल्पना की थी कि उदय या अस्तकालके सूर्य या चन्द्रमाके बिम्बमानको अङ्गुलों-में प्रकट करनेके लिए ३ कलाका अङ्गुल माना जाय और जब यह पिंड ख-स्वस्तिकमें हो तब ४ कलाका अङ्गुल माना जाय↑। ऐसा करनेसे आकारोंमें जिस प्रकारकी भिन्नता देख पड़ती है वैसी ही भिन्नता उनके अङ्गुलात्मक मानोंमें भी हो जायगी। यह तो हुई उदय या अस्त होते हुए बिम्बमानों और ख-स्वस्तिकमें स्थित बिम्बमानोंकी बात। यदि ग्रह ख-स्वस्तिक और क्षितिज दोनोंके बीचमें हो तो उसके बिम्बका अङ्गुलात्मक मान जाननेके लिए अनुपातसे इस प्रकार काम लेते थे। क्षितिजसे ख मध्य अथवा याम्योत्तर वृत्ततक जानेमें अङ्गुलका मान ३ कलासे ४ कला हो जाता है तो उदयकाल या अस्त-कालसे इष्टकाल तक जो उन्नतकाल है उसमें अङ्गुलका मान क्या होगा। परन्तु उदयकालसे याम्योत्तर वृत्त तक जानेमें जितना समय लगता है उसे दिनार्धमान कहते हैं। इसलिए जब दिनार्धमानमें अङ्गुलके मानमें एक कलाका अन्तर पड़ जाता है तब उन्नतकालमें कितना अन्तर पड़ेगा। यह अंतर

* देखो गणिताध्याय पृष्ठ १८२, १८१

↑ भास्कराचार्य ने २॥ कला और ३॥ कलाका अंगुल माना है। देखो गणिताध्याय पृष्ठ १८१। (देखिए कवर पृष्ठ ३)

व्याज (Interest)

[ले० श्री विश्वप्रकाश विशारद]

किसी वस्तुके उत्पादनके लिये चार वस्तुओंकी आवश्यकता होती है—भूमि श्रम, पूंजी और व्यवस्था*। इन चारोंकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना पड़ता है। भूमिका मालिक लगान मांगता है, श्रम करनेवाले मज़दूरी मांगते हैं, पूंजीके मालिक व्याज मांगते हैं तथा व्यवस्थापक भी कुछ लाभ की इच्छा करता है। अस्तु व्याजका संबन्ध पूंजीके मालिकोंसे है जो कि अपनी पूंजीके लिये व्याज मांगते हैं।

व्याजका वास्तविक स्वरूप

व्याज शब्द भी अनेक भाववाची है। वर्त्तमान समयमें जो व्याज दिया जाता है उनसे तात्पर्य है :—

(अ) उस धनसे जो केवल पूंजीके उपयोग के लिये दिया जाता है और जिसमें जोखम (risk) तथा कठिनाईका ध्यान नहीं रक्खा जाता है

(ब) धन जिसमें जोखमका भी ध्यान रक्खा जाता है

(स) धन जिसमें कठिनताका भी ध्यान रक्खा जाता है

(ग) श्रम जो कि पूंजीको वसूल करने तथा फिर व्याज देनेमें होता है उसकी पूर्त्तिके लिये धन।

पूंजीके उपयोगके लिये व्याज देना पड़ता है पर व्याजमें अन्य वस्तुओंका भी ध्यान रक्खा जाता है। (ब) में बताया गया है कि जोखमके कारण कुछ अधिक रुपया व्याजके रूपमें लिया जाता है। जोखम भी कई प्रकारका होता है। जिस मनुष्यको व्याज दिया जाय यह संभव है कि वह बेईमान निकल जाय। इस प्रकार रुपये के वसूल न होनेकी भी संभावना हो जाती है। दूसरा जोखम है कि जिस व्यवसायमें रुपया लगाया गया उसमें लाभ होनेके स्थानमें हानि हो जाय। व्यापारीका दिवाला पिट जानेसे रुपया संभव है कि न मिल सके। यही कारण है कि महाजन तथा बंक इस जोखमके लिये कुछ अधिक व्याज ले लिया करते हैं।

व्याजपर रुपया देनेवालोंको भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सबसे सुगम व्याजपर रुपया उस समय दिया जा सकता है जब व्याजपर रुपया देने वाला जिस समय चाहे अपना रुपया ले ले। पर इन शर्त्तोंपर लोग उधार नहीं लेते और यदि लेते भी हैं तो बहुत कम व्याज देते हैं। इस कारणसे महाजनों और बंकों को बहुत समयके लिये रुपया देना पड़ता है। इस कठिनाईके लिये भी कुछ अधिक व्याज लिया जाता है। यही (स) में दिखाया गया है।

व्याजपर रुपये देने, उसके वसूल करने आदि में भी बड़ा श्रम करना पड़ता है। बड़े-बड़े रजिस्टर रखने पड़ते हैं, रुपये और व्याज का हिसाब रखना पड़ता है, बंकमें क्लार्क रक्खे जाते हैं। इस कार्य्यके लिये भी कुछ व्याज अधिक लिया जाता है। यह (ग) में दिखलाया गया है।

ब, स, ग के हिसाबकी पूर्त्तिके उपरान्त कुछ शेष रह जाता है। यही शेष (अ) का भाग है। अर्थशास्त्रमें व्याजका तात्पर्य केवल (अ) हीसे होता है। इसको शुद्ध व्याज (Pure Interest) या वास्तविक व्याज (Net Interert) अथवा आर्थशास्त्रिक व्याज (Economic interese) कहते हैं।

पूंजी की मांग (Demand of capital)

व्याज पूंजीपर ही लगती है इसलिये पूंजी का समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। पूंजी की

* Land, labour, capital, organisation

आवश्यकता तो सभीको पड़ती है। उदाहरणार्थ एक घास खोदने वालेको ले लीजिये। घास खोदने वालेके पास एक छोटा हँसिया है, उससे घास खोदकर वह बाज़ारसे दो आना रोज़ कमा लेता है। उसके हँसिये का मूल्य चार आना है। यदि वह चार आना उधार ले के आठ आने का हँसिया ख़रीद ले तो उसकी आमदनी तीन आना बढ़ जाती है। इसी प्रकारसे एक बढ़ई ५०) रु० मासिक कमा लेता है। यदि उसके पास सौ रु० और हों तो वह कुछ औज़ार और मंगा लेगा और कई नौकर रख लेगा। इससे उसकी आय ५०) रु० बढ़ जायगी। यदि वह १०) रु० औज़ार और मशीनोंकी मरम्मत आदिके लिये रख लें तो उसकी आय ४०) रु० होगी। इसी प्रकारसे १००) रु० और उसके पास हो जायँ तो उसकी आय ३०) रु० और बढ़ जायगी। यदि इसको इकट्ठा करके रख दें तो उस बढ़ई की "पूंजी की मांग की सारिणी" (Demand Schedule for capital) बन जायगी।

पूंजीकी आवश्यकता केवल उत्पादनके लिये न होकर भोगके लिये भी हुआ करती है। हमको भोजन वस्त्र आदिके लिये भी रुपया ब्याजपर लेना पड़ता है। पर इसकी मात्रा अति न्यून है। यदि हम एक देशके मनुष्योंकी इन दोनों मांगोंको इकट्ठा कर दें तो इसका अनुमान होजायगा कि उस देश में कितनी पूँजी की माँग है।

यहांपर एक बातका बता देना आवश्यक होगा कि पूंजीकी मात्रापर उसकी उपयोगिता निर्भर है।

पूँजी	पूर्ण उपयोगिता (Total utieity)	अन्तिम उपयोगिता (marginal utility)
१००)	१००	१००
२००)	१००+८०=१८०	८०
३००)	१००+८०+५०=२३०	५०
४००)	१००+८०+५०+४०=२७०	४०

इस सारिणीके देखनेसे पता चलता है कि १००) पूंजीकी पूर्ण और अन्तिम उपयोगिता दोनों ही १०० थीं। पर सौ और बढ़ जानेसे पूर्ण उपयोगिता १८० ही रही क्यों कि दूसरे १००) की उपयोगिता केवल ८० ही है। इसी प्रकार जब ४००) की पूंजी थी तो पूर्ण उपयोगिता ४०० होनी चाहिये थी पर वह केवल २७० ही है। बात यह है, पूंजोकी अधिकतासे उसकी उपयोगितामें वृद्धि नहीं हुई। ज्यों ज्यों अधिक पूंजी आई त्यों त्यों उसकी उपयोगिता भी कम होती गई।

पूंजी क्यों इकट्ठाकी जाती है

पूंजीकी मांग तभी पूरी हो सकती है जब पूंजी इकट्ठी की जाय। पूंजीका इकट्ठा होना जमा करनेकी शक्ति या इच्छापर निर्भर है। यदि इच्छा नहीं है तो लाखों रुपयेकी आय होनेपर भी रुपया बचाया नहीं जा सकता। इसके विपरीत यदि आय इतनी न्यून है कि भोजन वस्त्र भी पूरे नहीं पड़ते तो इच्छा होते भी बचाना कठिन है। प्रायः इन कारणोंसे रुपया बचाया जाता है।

(अ) निश्चित आवश्यकताओंके लिये जो भविष्यमें अवश्य होंगी। जैसे लड़कोंके विवाह तथा विद्या पढ़ानेका व्यय। हर एक मनुष्य बुड्ढा अवश्य होता है।

(ब) ऐसी घटनाओंके लिये जो निश्चित नहीं हैं। मृत्युपर किसीका चारा नहीं है। नौकरीका भी कुछ ठीक नहीं होता। आज है और कल छूट जाय। इस प्रकार मनुष्यकी आय कम हो सकती है।

(स) थोड़ेसे मनुष्य भविष्यमें व्यापार करनेके लिये भी रुपया जमा करते हैं। व्यापार-कुशल पुरुष देखते रहते हैं कि किस समय व्यापार करने में अधिक लाभ होगा। ऐसे समयके लिये लोग रुपया जमा करते हैं।

(क) ब्याजपर रुपया देनेके लिये।

(ख) आय व्ययसे अधिक होती है तब स्वाभाविक तौरसे रुपया इकट्ठा हो जाता है।

(ग) देश या जातिपर आपत्ति आनेपर। इसका उदाहरण वर्त्तमान महायुद्ध है जब कि

यूरोपके सभी देशोंमें युद्धके लिये अधिक धन इकट्ठा हो गया था।

ब्याज की दरका पूंजी जमा करने- पर प्रभाव

ब्याजका प्रभाव पूंजी जमा करनेवालोंपर अवश्य पड़ता है। यह सभी देशोंमें देखा जाता है कि जब ब्याज अधिक मिलता है तो लोग अधिक पूंजी इकट्ठा करने लगते हैं। प्रत्येकको आशा हो जाती है कि ब्याजपर रुपया देनेसे अधिक लाभ होगा और अन्य व्यापारोंका त्याग करके वह अपने रुपयेको इसी कार्य्यमें लगाना आरम्भ कर देते हैं। इस प्रकार ब्याज को दर अधिक होनेसे देशमें अधिक पूंजी इकट्ठा हो जाती है। इसके विपरीत यदि ब्याजकी दर कम होती है तो लोगोंका ध्यान पूंजी जमा करनेसे हट जाता है।

ब्याजकी दरका निर्णय

अन्य वस्तुओंके समान ब्याजकी दरका निर्णय पूंजीकी मांग तथा उसकी पूर्त्तिपर [demand and supply] निर्भर है। यहांपर हम एक सारिणी देते हैं जिससे यह विषय समझमें आ जायगा।

ब्याजकी दर [प्रति शतक]	पूंजी जो एक वर्षमें इकट्ठा होगी (करोड रुपयों में)	एक वर्षकी पूंजी- की मांग (करोड़ रुपये में)
०	१५	१००
१	२०	७०
२	४०	६०
३	५०	५०
४	५५	४५
५	६०	४०

इस सारणीके देखनेसे पता चलता है कि जब ब्याजकी दर ० थी तो केवल १५ करोड़की पूंजी इकट्ठी हो पाई थी पर १०० करोड़की मांग थी। इस प्रकार ८५ करोड़ पूंजीकी मांग पूरी नहीं हुई। जब दर १ हो गई तब २० करोड़ पूंजी इकट्ठी हुई पर मांग ७० करोड़की थी। इसी तरह जब ब्याजकी दर २ हुई तब ४० करोड़ पूँजी इकट्ठी हुई पर मांग ६० की थी। इसलिये ब्याजकी दर बढ़ाई गई क्योंकि लोगोंको पूँजीकी आवश्यकता थी। जब ब्याजकी दर ३ हुई तब मांगके बराबर पूँजी इकट्ठी हो गई। इस समय जितनी आवश्यकता थी उसकी पूर्त्ति होगई। इसलिये यही ब्याजकी दर होगी जब कि पूँजी जो इकट्ठी हुई हैं वह मांगके बराबर है।

इस सारिणीके देखनेसे एक बात और मालूम होती है कि ब्याजकी दर बढ़नेसे अधिक पूंजी इकट्ठी होती गई पर पूंजीकी मांग कम होती गई। बात यह है कि अधिक ब्याजकी दर होनेसे लोगोंने बिना पूंजीके कार्य्य करना आरम्भ कर दिया।

मुद्राओंके अपकर्ष तथा उत्कर्ष (Appreciation and Depreciation) का ब्याजकी दर पर प्रभाव।

ब्याजकी दरपर मुद्राओंके अपकर्ष तथा उत्कर्षका विशेष प्रभाव पड़ता है। जब उत्कर्ष होता है तो ब्याजकी दरभी अधिक हो जाती है। उदाहरण के लिये यदि १ प्र० श० मुद्राके मूल्यमें उत्कर्ष हो जायगा तो ब्याज भी ३ के स्थान में ४ प्र० श० हो जायगी क्यों कि ब्याजपर पूंजी उठाने वाले किसी प्रकारकी हानि नहीं सह सकते। इसी प्रकार यदि मुद्राके मूल्यमें अपकर्ष हो जायगा तो ब्याजकी दर ३ के स्थान में २ ही रह जायगी।

ब्याजकी दरका देशकी उन्नति पर प्रभाव

जैसा पहले कहा जा चुका है, व्यापार तथा कलाकौशलके लिये पूंजीकी आवश्यकता पड़ती है। यदि हम पाश्चात्य देशोंपर ध्यान दें तो हमको पता चलेगा कि एक एक फेक्टरीमें करोड़ों रुपयोंकी पूंजी लगी हुई है। एक एक मशीन का मूल्य लाखोंतक पहुँचता है। पूंजीकी अधिकतासे वे प्रति दिन नये नये अन्वेषण करते जा रहे हैं जिसके प्रभावसे वह धनवान तथा ऐश्वर्यशाली हो रहे हैं।

(देखिये कवर पृष्ठ ३)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग २३ { कर्क, संवत् १९८३ } संख्या ४

बंकका कार्य्य और उसकी उपयोगिता

[ले:—श्री विश्वप्रकाश विशारद]

बंकका आरम्भ

व्यापारके साथ साथ रुपयेके लेन देनकी आवश्यकता पड़ी। सभी देशोंमें जहाँके पुरुष व्यापारशील हों रुपयेका लेन देन होना स्वाभाविक है और इसके बिना किसीका कार्य्य चलना कुछ अंशोंतक असम्भव ही है। बहुतोंके धार्मिक बन्धन इसकी आज्ञा नहीं देते कि रुपयेके लेन देन में व्याज दिया जाय परन्तु बिना व्याज दिये रुपयेका मिलना कठिन है। धार्मिक विचारके मनुष्य (जैसे कि भारतवर्षमें भी बहुतसे पाये जाते हैं) जो कुछ उनके पास है उसीसे व्यापार करना पसन्द करते हैं। पर धनी व्यापारियोंके सम्मुख वे ठहर नहीं सकते। जिसके पास अधिक धन होगा वह बढ़िया मशीनसे कार्य्य करेगा और उसका लाभ भी अन्योंकी अपेक्षा अधिक होगा। यही कारण है कि कम पूंजी वाले देश (जैसा कि भारतवर्ष है) अधिक पूंजी वाले देश (जैसे कि इंग्लैंड और अमरीका आदि हैं) की अपेक्षा अधिक व्यय करनेपर भी कम वस्तुयें तय्यार कर पाते हैं।

व्यापारियोंही नहीं छोटेसे छोटे कृषकोंको भी पूंजीकी आवश्यकता है। पृथ्वीका लगान देना होता है, सिंचाई का व्यय होता है, बीज भी क्रय करने होते हैं। जिस समय बंक प्रचलित नहीं थे महाजन, चेती आदि इस कार्य्यको किया करते थे। आजकल भी ग्रामोंमें महाजनका राज्य है। ग़रीब कृषक महाजनसे रुपया ले आते हैं।

ये महाजन रुपयेपर अधिक ब्याज लेते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि कृषकोंकी आवश्यकताको वे ही दूर कर सकते हैं।

बंकका कार्य्य

बंकोंका आरम्भ महाजन और खेती आदिसे हुआ। बंकके दो मुख्य कार्य्य हैं:—

(१) कम ब्याजपर रुपया लेना और अधिक ब्याजपर रुपया देना।

(२) रुपयेका एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजना।

प्रायः सभी बैंक इन दोनों कार्य्योंको करते। क्यों कि एकके करनेसे अधिक लाभ नहींहोता हैं बंकके संचालनका कार्य्य सरल नहीं है। विशेषज्ञ ही इस कार्य्यको भली प्रकारसे कर सकते हैं।

बंकका कोष

सभी बंकोंमें कुछ पूंजीका होना अत्यावश्यक है क्योंकि कोई मनुष्य अपने रुपयेको गरीबके पास न रक्खेगा। जब एक मनुष्य बंकमें रुपया जमा करने जाता है तो वह जानता है कि जिस समय रुपयेकी आवश्यकता होगी रुपया बंकसे मिल सकेगा। बंकके कार्य्य कर्त्ताओंको भी इस बातका ध्यान रखना पड़ता है कि रुपया मांगनेपर ही दिया जाय। जो बंक मांगनेपर रुपया नहीं देते उनपर लोगोंका विश्वास हट जाता है। बैंकों-में तीन प्रकारका रुपया होता है।

[१] बंककी पूंजी

[२] रुपया जिसका हिसाब चालू होता है (Current Account)

[३] रुपया जो अधिक कालके लिये जमा होता है। [Fixed Deposit]

बंककी पूँजी वह होती है जिससे कि कार्य्यका आरम्भ किया जाता है। सरकारी बंकोंमें तो सरकारका ही बहुत सा रुपया होता है, वही उसकी पूंजी होती है। संयुक्त बंक [Joint Stock Bank] तथा सहकारी बंक [Cooperative Bank] में लोग मिलकर पूँजी बनाते हैं। जब कोई संयुक्त बंक खोलना होता है तब थोड़ेसे लोग मिलकर यह निश्चय करते हैं कि कितनी पूंजीसे बंक आरम्भ किया जावे। यह भी निश्चित हो जाता है कि प्रत्येक हिस्सा कितने रुपयेका होगा। इसके उपरान्त सरकारको एक प्रार्थना पत्र भेजा जाता है कि अमुक मनुष्य एक बंक चलाना चाहते हैं और जिसकी पूँजी अमुक धनसे अधिक न होगी। सरकार प्रार्थना पत्र भेजने वालोंके आचारकी जांच करती है। छली, कपटी और स्वार्थी अपने कार्य्यकी सिद्धिके लिये प्रायः ऐसे कार्य्य आरम्भ कर देते हैं, इसलिये यदि सरकार उनके आचार-की जांच न करे तो घोर अन्धेर हो जाय। इस जांचके पश्चात् बंक रजिस्टर्ड [Registered] हो जाती है। जितनी पूंजी होती है उसके हिसाबसे रजिस्ट्रीकी फीस [Registration fee] बंक सरकारको देता है।

जब मनुष्योंको यह बात नहीं मालूम होती कि किस समय उनको रुपयेकी आवश्यकता होगी तब वे बंक में उसका चालू हिसाब [Current Account] खोल लेते हैं। घरमें रुपया रखनेपर भय ही होता है। बंक घरसे अधिक सुरक्षित होता है। इस हिसाबमें रुपया जमा करने वाला जिस समय रुपया चाहे, निकाल सकता है। बंक इस हिसाबपर ब्याज नहीं देते हैं क्योंकि उस रुपये को वे अधिक समयके लिये ब्याजपर नहीं उठा सकते। कोई कोई बंक ऐसे हिसाबपर २ प्र० श० ब्याज दिया करते हैं।

जब रुपया जमा करने वाला यह जानता है कि निश्चित कालके लिये उसे रुपयेकी आवश्य-कता नहीं पड़ेगी तो वह उसका चालू हिसाब नहीं खोलता है। वह बंकको कह देता है कि इस कालतक वह रुपया न लेगा। बंकके कार्य्य-कर्त्ता उसका अलग हिसाब रखते हैं। ब्याजकी मात्रा भी कालके विचारसे ही बढ़ती जाती है। भारतवर्ष-के बंक तीन मासके पश्चात् रुपया लेनेपर ३

प्र० श०, छः मासपर ४ प्र० श० और १ वर्ष उपरान्त निकालनेपर ५ प्र० श० ब्याज देते हैं। अधिक समयके बाद रुपया लेनेमें इसलिये ब्याज अधिक मिलता है कि वह रुपया उस समयतकके लिये बंक ब्याजपर उठा सकते है।

ब्याजपर रुपया देना

अबतक तो यही बताया गया है कि बंकमें किस प्रकार रुपया आता है। रुपयके लेनेमें कोई कुशलता नहीं है। कठिन कार्य्य यह है कि रुपया किस प्रकार ब्याजपर दिया जावे। बंकके कार्य्यकर्ताओंको रुपया जमा करने वाले तथा जिसको बंक रुपया देता है, उन दोनोंको प्रसन्न करना पड़ता है। रुपया जमा करने वाले अधिक-से अधिक ब्याजके अभिलाषी होते हैं। बंकसे रुपया लेने वाले यह चाहते हैं कि कमसे कम ब्याज देना पड़े। बंकके हिस्सेदार चाहते हैं कि उनको भी अधिकसे अधिक लाभ हो।

चालू हिसाबका रुपया ब्याजपर नहीं दिया जा सकता क्योंकि रुपया जमा करने वाले प्रति-क्षण उसको मांग सकते हैं। रुपयेको कोषमें रखनेमें भी कोई लाभ नहीं होता, अतः जितनी आवश्यकता समझी जाती है उतनेको कोषमें रखकर शेषको बंक ब्याजपर उठा दिया करते हैं। कुछ रुपया तीन महीनेके लिये, कुछ छः मास-केलिये, कुछ एक वर्षके लिये, इस प्रकार भिन्न भिन्न समयके लिये बंक रुपया देता है और समय समाप्त होनेपर रुपया कोषमें आता रहता है।

बंक रुपया देनेके पूर्व उस पुरुषके आचार-की जांच कर लेता है। बहुत बंक सम्पत्तिपर कर्ज़ देते हैं। यदि वह रुपया वापिस देनेके अयोग्य होता है तो उसकी सम्पत्ति बेच दी जाती है। कुछ बंक अन्य धनी पुरुषोंकी ज़मानतपर रुपया देते हैं। अन्य बंक अपने बंकमें जमा किये हुये रुपयेकी ज़मानत मांगते हैं। ब्याज भी भिन्न भिन्न ही हुआ करता है। जिस रुपयेके वापिस मिलनेमें अधिक भय होता है उसपर अधिक ब्याज लगाया जाता है। जो साधारण श्रमसे मिल जाता है उसपर अधिक ब्याज नहीं लगाया जाता।

रुपयेका भेजना

बंक कई प्रकारसे रुपया भेजते हैं। उनमेंसे मुख्यका वर्णन यहाँ किया जाता है।

बंकको आज्ञा होती है कि अमुक धन अमुक आदमीको अमुक हिसाबसे दे दिया जाय। चेकके अंग्रेज़ी शब्द इस प्रकार होते हैं:—

No B. 85401 Allahabad 14th Feb. 1923.

ALLAHABAD BANK LIMITED

(Affiliated to the P & O Banking Corporation Ltd.)

Pay to B. Ganga Prasad, M. A or Bearer, Rupees Two hundred & Fifty only.

Rs. 250/- Ramakant, B. A., LL. B.,
Manager,
D. A. V. High School, Allahabad.

इसका भाषानुवाद हुआ:—

नं० बी० ८५४०१

इलाहाबाद १४ फर्वरी १९२३

इलाहाबाद बंक लिमिटड

दिया जाय बा० गंगाप्रसाद एम. ए. अथवा वाहक को रु० दो सौ पचास केवल।

रु० २५०) रमाकान्त, बी.ए., एल-एल, बी,
मैनेजर,
डी० ए० वी० हाई स्कूल,
इलाहाबाद।

इस चेकके पीछे हस्ताक्षर करनेपर २५०) इलाहाबाद बंकसे बा० गंगाप्रसादको मिल जायँगे। बंक वाले इस रुपयेको देते समय बा० रमाकान्तके हिसाबमेंसे २५०) रु० काट लेंगे।

पर बङ्क रुपया उसी समय देगा जब उनके हिसाबमें रुपया हो। यदि रुपयेका पाने वाला उसी नगरमें रहता है तो वह स्वयं बंक जाकर या नौकरको भेजकर रुपया मंगा लेता है। यदि अन्य किसी ऐसे नगरमें रहता है जहाँपर इलाहाबाद बंककी शाखा है तो वहांसे रुपया मिल जाता है। यही रुपया अन्य किसी बंकको चेक देनेपर भी मिल जाता है। पर अन्य बंक कुछ कमीशन ले लिया करते हैं। चेक भेज देनेसे रुपया भेजनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि बंक आपसमें अपने हिसाबको तय कर लिया करते हैं। उनका हिसाब इस प्रकार तय हो जाता है। जिस प्रकार दूसरा बंकका इलाहाबाद बंक ऋणी है उसी प्रकार अन्य बंक भी इसके ऋणी होते हैं। और वे आपसमें इस ऋणका समझौता कर लेती हैं। बड़े बड़े बङ्कोंमें तो एक दूसरेका हिसाब होता है। इस प्रथामें रुपया नहीं भेजना पड़ता। बड़े बड़े नगरोंमें इस कार्य्यके लिये विशेष प्रबन्ध रहता है। एक स्थानपर सब बंकोंके एजेन्ट आकर जमा होते हैं। इसको निकासी कोठी (Clearing houses) कहते हैं। सब एजेंट मिलकर एक कोष [Clearing houses fund] बनाते हैं। इसी कोषसे एक दूसरेके ऋण चुका दिये जाते हैं। मान लिया जाय कि नगरमें छः बंक हैं। अ, ब, स, क, ख और ग से उनका सम्बोधन कर लीजिये। अ बंकपर ब,स,क,ख,ग प्रत्येकका ऋण है क्योंकि जिनका हिसाब अ बैङ्कमें है उनके कटे हुये चेकपर ब, स, क, ख, ग बङ्कने रुपये दिये हैं। इसी तरह शेष पांच बङ्क भी एक दूसरेके ऋणी है। प्रतिदिन एजेंट इस हिसाबको तय कर लेते हैं।

भारतवर्षमें भी चेकका प्रयोग बढ़ता जाता है। हमनीचे एक सारणी देते हैं जिससे इस बातका अनुमान हो सकता है कि निकासी कोठियों [Clearing houses] के द्वारा कितने रुपयोंका लेन देन चेकसे हुआ है।

[यह हिसाब करोड़ रुपयों में है]

सन्	कलकत्ता	बम्बई	मद्रास	करांची	रंगून	योग
१९००	१३९	६१	१२	...	...	२१२
१९०५	१७५	१०९	१६	३	...	३०३
१९१०	२२२	१६७	२१	७	४८	४६५
१९११	३२३	१६७	१९	१३	४१	५६३
१९१८	७४४	५३४	२५	२४	६९	१,३९६
१९१९	९०२	७५८	३०	२२	८८	१,८०१
१९२०	१,५३४	१,२८४	७५	३२	१०८	३,१४५

हुंडी (Bills of Exchange)

हुँडी भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे प्रचलित है। हम यहाँ एक हुंडीको उद्धृत करते हैं:—

"श्री सिद्ध कानपुर शुभस्थान श्रीपत्री भाई रामलाल हरनारायन जोग लिखी प्रयाग जी से रामनाथ चंदूलालकी राम राम बांचना। आगे हुंडी किता एक आप ऊपर किया रुपया ५०० अंकन पांच सौ के नीचे दो सौ पचास के दून पूरे देना। यहां रक्खा भाई इम्पीरियल बंक आफ़ इंडिया, अलाहाबाद वालेके मिती कातिक सुदी तेरससे पहुँचे दाम धनी जोग बिना ज़ब्त रुपया बाज़ार चालान हुँडीकी रीति ठिकामे लगाय दाम चौकस कर देना। मिती क्वार सुदी तेरस सम्बत् १९७८"

एक उदाहरण द्वारा इसकी उपयोगिता समझमें आ सकती है। मान लीजिये कि एक कानपुरके सौदागरने बम्बईके सौदागरके हाथ रुई बेची। कानपुरका सौदागर एक हुँडी उस

रुपयेकी जितनेकी रुई होती है लिख देता है। वह उस हुँडीको रेलकी बिल्टी रसीदके साथ किसी बम्बईके बंकको भेज देता है। बम्बईका बंक उस हुँडीको उस सौदागरके पास भेजता है। सौदागर उसके पृष्ठपर अपने हस्ताक्षर कर देता है। प्रायः हुँडीका रुपया ६० दिवसके उपरान्त दिया जाता है। अब यदि कानपुरके सौदागरको रुपयेकी शीघ्र आवश्यकता नहीं होती है तो वह ६० दिन ठहर जाता है और समयके समाप्त होनेपर बम्बईका बंक उस सौदागरसे रूपया लेकर उसके पास भेज देता है। यदि उसे रुपयेकी आवश्यकता होती है तो उस हुँडीको लेकर बंकको जाता है और सूद काटकर बंक उसे रुपया दे देता है। बंक ६० दिनका सूद काट लेते हैं। यदि इस बंककी कोई शाखा बम्बईमें होती है तो उसके द्वारा, नहीं तो अन्य किसी बंकके द्वारा रुपया वसूल हो जाता है।

बंक हुंडियोंको क्रय करनेमें किसी प्रकारकी आना कानी नहीं करते। वे केवल यह देख लेते हैं कि हुँडीका भेजने वाला और पाने वाला समृद्धशाली हैं या नहीं। राजनियमके अनुसार यदि बम्बई वाले सौदागरका दिवाला निकल जाय तो बङ्क हुंडी भेजने वालेसे वह रुपया ले सकता है। हुँडीका उत्तरदायित्व दोनोंपर मिल कर और अलग अलग भी है। यही कारण है कि बंक उसे प्रसन्नतासे लेलेती है। दूसरी बात यह है कि इन हुँडियोंका रुपया थोड़े दिनोंके बाद मिल जाया करता है और बंककी आवश्यकताओंको समय समयपर पूरा किया करता है।

बेंकर्स ड्रफ्ट (Banker's draft)

इसमें और चेकमें बहुत कम अन्तर है। चेकमें एक पुरुष जिसका हिसाब बंकमें होता है बंकको आज्ञा देता है। बंकर्स ड्रफ्टमें एक बंक दूसरे बंकको आज्ञा देता है। जब एक लाहौरका सौदागर कलकत्तेसे माल मंगाता है तो उसे रूपया भेजना पड़ता है। यदि वह चेक भेजे तो उसमें देर हो जाती है। बात यह है कि कलकत्तेका बंक उस समयतक रूपया न देगा जब तक कि वह लाहौर बंकसे न पूछ ले कि अमुक पुरुषके हिसाबमें रुपया है या नहीं। इसके मालूम करनेमें कई दिन लग जाते हैं। इसलिये लाहौरका सौदागर बंकमें जाकर रुपया जमा कर देता है। लाहौरका बंक एक बेंकर्स ड्रफ्ट लिख देता है जिससे यह पता चलता है कि अमुक पुरुषका रुपया जमा है। इसको देखते ही कलकत्तेका बंक उस सौदागरको रुपया दे देता है और वह लाहौरके सौदागरको माल भेज देता है।

पोस्ट-आफिस (Post Office)

भारतवर्षमें पोस्ट आफिस बहुत कार्य्य करता है। इसमें लोग जाकर रुपया जमा कर देते हैं और जिस समय चाहें अपना रुपया वापिस ले सकते हैं। ब्याज भी ३ प्र. श. मिल जाता है। मनियार्डर (Money order) के द्वारा बहुत सा रुपया भेजा जाता है। इन्श्योर्ड (Insured) करके भी भेजनेकी प्रथा है। इसमें मनियार्डरसे कम व्यय होता है।

तारसे रुपया भेजना (Telegraphic transfers)

यदि अपने देशमें रुपया शीघ्र भेजना हो तो तारसे रुपया भेजा जा सकता है। अन्य देशोंसे केबिल (Cable) द्वारा रुपया भेजा जाता है।

एक्सचेंज बङ्क (Exchange banks)

दूसरे देशोंको रुपया भेजनेका कार्य्य एक्सचेंज बङ्क करते हैं। इनके कार्य्यालय देशीय बड़े बड़े नगरों तथा सभी देशोंमें होते हैं। लोग इनमें जाकर रुपया जमा कर देते हैं और ये उस रुपयेको भेज दिया करते हैं। इन बेंकोंसे दूर रहने वाले अपने समीपके बङ्कके द्वारा इस कार्य्यको कर लेते हैं।

बङ्कका पक्का चिट्ठा (Balance sheet)

नियमानुसार प्रत्येक बङ्कको वर्षमें दो बार पक्का चिट्ठा बना कर सरकारको भेजना पड़ता है। इसके देखते ही बङ्क की दशाका ज्ञान हो जाता है। यह पक्का चिट्ठा रुपया जमा करने वाले भी मांग सकते हैं। इसके दो भाग होते हैं (१) ऋण (२) वर्त्तमान सम्पत्ति। ऋणमें उस धनका वर्णन होता है जिसका उत्तरदायित्व बङ्कपर है। सम्पत्तिसे पता चलता है कि ऋण चुकानेके लिये कितनी सम्पत्ति है और ऋण चुकाया जा सकता है या नहीं। यहाँ एक बङ्कका पक्का चिट्ठा उद्धृत किया जाता है।

एक संयुक्त बङ्क (Joint Stock Bank) का पक्का चिट्ठा (Balance sheet) ३१ दिसम्बर १९१९

देना—ऋण (Liabilities)

(१) हिस्सोंसे बनी पूँजी (अ) सरकारसे आज्ञा मिली हुई		१,००,००,०००
(ब) हिस्से क्रय किये गये		८०,००,०००
(२) " हिस्सेदारों ने दिया		४०,००,०००
(३) स्थायी कोष		१८,००,०००
(४) चालू हिसाबका रुपया (CurrentAccount)		२,४७,१४,७८८
(५) अधिक कालके लिये जमा किया रुपया (fixed deposit)		१,८४,२३,५६१
(६) हुंडियां जिनका मूल्य देना है		८६,४१४
(७) हुंडियां जिनका मूल्य आनेवाला है (जिनकी जमानत बंकके ग्राहकोंने ली है)		२४१,५८३
(८) लाभ तथा हानिका हिसाब		
गत वर्षका हिसाब	४,३१,१४२	
१९१९ का लाभ	२१,४१,५७३	
योग	२५,७३,७१५	
१० प्र० श० के हिसाबसे ६ महीने-का हिस्सेदारोंको दिया गया	२,००,०००	
शेष		१३,७३,७१५
योग		५,०६,४३,०६१

पावना—सम्पत्ति (Assets)

(१) स्थायी कोषमें		
अ—नक़द	५१,०७,४१८	
ब—अन्य बंकोंमें जो कि आवश्यकता पड़नेपर शीघ्र मिल सकता है	३२,१५,४६९	
स—सरकारी तथा अन्यकी सिक्योरिटीज़ (securities)	७२,४५,१५१	१,५५,६८,०४०
(२) हुंडियां जो क्रयकी गई हैं		१,६३,४०,५११
(३) ब्याजपर दिया हुआ धन		१,८३,२१,४४६
(४) हुंडियां जिनका रुपया आने वाला है (जिसकी जमानत बंकके ग्राहकोंने ली है)		२,४१,१८३
(५) बंकका मकान, फर्नीचर आदि		१,०१,४८१
योग		५,०६,४३,०६१

बंकका दिवाला निकलना (Liquidation of a Bank)

जिस समय कोई बंक रुपयेको समयपर नहीं देता, उसका दिवाला निकल जाता है। बंकोंके दिवालिया होनेके अनेक कारण हैं। बंकके कार्य्य-कर्त्ता जब कभी लालचमें आकर अपने ग्राहकोंका ख्याल नहीं करते और अधिक रुपया ब्याजपर उठा देते हैं तो घोर अन्धेर हो जाता है। कभी कभी बंकके कार्य्यकर्त्ता या डाइरेक्टरर्स अपने मित्रों या सम्बन्धियोंको बिना अच्छी ज़मानतके ब्याज दिला देते हैं, जिसके मिलनेकी कोई आशा नहीं रहती। जब कभी बंकपर विश्वास टूट जाता है तो लोग यकायक सब रुपया निकालने लगते हैं जिसके फलस्वरूप बंक टूट जाते हैं। सन् १६१४ में जब महायुद्ध आरम्भ हुआ लोग यह समझने लगे कि पोस्ट आफिसमें उनका धन सुरक्षित नहीं है। वे रुपयेको निकालने लगे जैसा कि इस सारिणीसे पता चल जावेगाः—

	रु० करोड़ोंमें
३१ जुलाई १६१४ को पोस्टआफिसमें था	२४.५
३१ मार्च १९१५	१४.६
३१ मार्च १९१६	१५.३
३१ मार्च १९१७	१६.६
३१ मार्च १६१८	१६.६
३१ मार्च १९१९	१८.८
३१ मार्च १६२०	२१.३
३१ मार्च १९२१	२२.४

बंकके दिवाला निकलनेकी बहुत कम सम्भावना है यदि बंकके कार्य्यकर्त्ता सदाचारी तथा विशेषज्ञ हों।

बंकका देशोन्नतिपर प्रभाव

बंकका कार्य्य तथा उनके लाभोंका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इन्हींसे यह अनुमान किया जा सकता है कि इनके होनेसे कितनी सुविधा हो जाती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है बङ्कके मुख्य दो कार्य्य होते हैं।

(१) ब्याजपर रुपया लेना और देना

(२) रुपयेका एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजना।

प्रत्येक सभ्य देशमें इन दोनों कार्य्योंकी आवश्यकता पड़ती है। ब्याजपर रुपया लेनेसे देशमें पूँजी इकट्ठी हो जाती है। यही पूँजी देशके कला-कौशलकी वृद्धिमें सहायक होती है। नई नई वस्तुएँ देशमें बनने लगती हैं और बढ़ियासे बढ़िया मशीनसे लोग कार्य्य करने लगते हैं। अधिक बंकोंके होनेसे पूँजीके मिलनेमें विशेष सुविधा होती है। इसीका अनुभव करके गाँवोंमें सहकारी बंक खुलने लगे हैं। सरकार इन बंकोंका प्रचार करके इनको स्थापित कराती है। ऐसे बंकोंके होनेसे गाँवके लोग भी धनकी आवश्यकता पड़नेपर धन ले लेते हैं।

इसके अतिरिक्त रुपयेको एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजनेमें बड़ी सुविधा होती है। व्यापाशील देशमें रुपयेका आना जाना ही लगा रहता है। एक स्थानसे दूसरे स्थानको वस्तुयें भेजी जाती हैं और वस्तुओंके बदले रुपया भेजा जाता है।

इस कारण देशके समृद्धशाली होनेके लिये यह आवश्यक है कि बंक सुलभ तथा सम्पत्तिशाली हों।

वायव्य सम्बन्धी सिद्धान्त

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

(गतांकके आगे)

यही कारण है कि यदि कर्बनद्विओषिद गैस भरकर बर्तनको खुला छोड़ दिया जाय तो थोड़ी देरके बाद बर्तनमेंसे कर्बन-द्विओषिद निकल जायगा और उसके स्थानमें वायुमण्डलका वायु आजावेगा।

इन सब प्रयोगोंसे यह स्पष्ट है कि वायव्यमें निस्सारण diffusion [बहकर बाहर निकल आनेका] का गुण है। अब प्रश्न यह है कि क्या सब वायव्य एक ही गतिसे निस्सरित

होते हैं या कोई वायव्य जल्दी निस्सरित होता है और कोई धीरे। इस प्रश्नका यथोचित उत्तर ग्रैहम नामक वैज्ञानिकने सं० १८६० वि० में दिया था। यह साधारण सी बात है कि भारी वस्तुकी गति धीमी होती है और हलकी चीज़ें भागनेमें तेज़ होती हैं। मोटा आदमी धीरे धीरे क़दम बढ़ाता है पर दुबला पतला व्यक्ति तेज़ दौड़ सकता है। बस यही बात गैसोंके भी सम्बन्धमें है। जिन गैसोंका घनत्व अधिक है वे धीरे धीरे निस्सरित होती हैं और हलकी गैसें अधिक गतिसे निस्सरित होती हैं। सिद्धान्त है कि वायव्योंके निस्सरणकी आपेक्षिक गतियों और उनके घनत्वोंके वर्गमूलोंमें व्युत्क्रम अनुपात है। अर्थात् यदि एक वायव्य दूसरे वायव्यसे १६ गुना भारी है तो उसके निस्सरणकी गति उस वायव्यकी गतिका $\frac{१}{\sqrt{१६}} = \frac{१}{४}$ भाग होगी। नीचेकी सारिणीमें दिये हुए अंकोंसे यह बात स्पष्ट है:—

वायव्य	घनत्व (वायु=१)	$\frac{१}{\sqrt{घनत्व}}$	निस्सरण-की गति वायु=१
उद्जन	०·०६९	३·७८	३·८३
दारेन	०·५५९	१·३४	१·३४
नोषजन	०·९७१	१·०१५	१·०१४
ओषजन	१·१०५६	०·९५१	०·९५०
कर्बन द्विओषिद	१·५२९	०·८०९	०·८१२

वायव्योंके निस्सरणका यह गुण हमारे लिये बड़ा उपयोगी है। जब नगरोंमें किसी एक स्थानकी हवा गन्दी हो जाती है तो यह गन्दी हवा धीरे धीरे समस्त वायुमण्डलमें निस्सरित हो जाती है और हम इसके हानिप्रद प्रभावसे बच जाते हैं। ग्रैहमके सिद्धान्त द्वारा वायव्योंका आपेक्षिक घनत्व निकाला जा सकता है। प्रयोग द्वारा केवल इतना निकालनेकी आवश्यकता पड़ेगी कि इन गैसोंकी निस्सरण गतिमें क्या अनुपात है।

उदाहरण—वायुकी अपेक्षा एक अज्ञात वायव्यकी निस्सरण गति १·८५ है तो इस वायव्यका आपेक्षिक घनत्व (वायुकी अपेक्षासे) क्या होगा?

ग्रैहमके सिद्धान्तानुसार—

$$निस्सरण\ गति = \frac{१}{\sqrt{घनत्व}}$$

$$\therefore \sqrt{घनत्व} = \frac{१}{निस्सरण\text{-}गति}$$

$$\therefore घनत्व = \frac{१}{(निस्सरण\text{-}गति)^२}$$

$$\therefore अज्ञात\ वायव्यका\ घनत्व = \frac{१}{(१·८५)^२} = ·२९$$

वायव्योंका द्रवीकरण—

साधारणतः हम दो प्रकारके वायव्य देखते हैं। एक जैसे भाप। भापको हम बहुत सरलतासे द्रवीभूत कर सकते हैं। यदि भापके ऊपर कोई बर्तन ठण्डे जलसे भर कर रख दिया जाय तो भापके स्थानमें जलकी बूँदें दिखाई पड़ेंगी। पर कुछ गैसें ऐसी हैं जिन्हें हम आसानीसे द्रवीभूत नहीं कर सकते हैं। जैसे हवा, कर्बनद्विओषिद, उद्जन, नोषजन आदि। पर वैज्ञानिकोंने इन पदार्थोंको भी द्रवीभूत करके दिखा दिया है।

द्रवीकरणके सिद्धान्तके पूर्व एक बात समझ लेनी चाहिये। जब किसी गैसपर एकदम दबाव अधिक डाला जाता है तो सिकुड़नेके साथ उसमें कुछ गरमी भी पैदा होती है। इसी प्रकार यदि गैसपरसे दबाव एकदम बहुत कम कर दिया जाय तो तापक्रम भी कम हो जाता है अर्थात् गैस पहलेकी अपेक्षा ठंडी हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक गैसको ठण्डी करनेकी दो विधि हैं:—१—तापक्रमको किसी ठण्डी वस्तुके संसर्गसे रखकर कम कर देना, और २—गैसके दबावको एकदम कम कर देनेसे।

वायव्योंके द्रवीकरणमें ये दोनों सिद्धान्त काममें लाये जाते हैं। द्रवावस्था और वायव्यावस्थामें केवल इतना ही तो भेद है कि द्रवोंके परमाणु एक दूसरेके बहुत निकट होते हैं और वायव्योंमें परमाणु अलग अलग होते हैं। वायव्यपर जितना अधिक दबाव डाला जायगा उतना ही इसका आयतन घट जायगा और इसके परमाणु अधिक निकट आजायँगे। इससे अनुमान लगाया जासकता है कि यदि गैस को ठण्डा न भी किया जाय और इसपर दबाव बहुत अधिक डाला जाय तो गैस द्रवीभूत हो जावेगी। पर यह अनुमान सदा ठीक नहीं होता है। कर्बनद्विओषिद पर प्रयोग करके देखा गया है कि दबाव चाहें कितना ही अधिक क्यों न करो, यह तबतक द्रवीभूत नहीं होगी जबतक इसका तापक्रम ३१°·३५ का न होजाय। ५०° के तापक्रम पर हम कर्बनद्विओषिद को केवल दबावको बढ़ाकर द्रवीभूत नहीं कर सकते। अतः इस गैसको द्रवीभूत करनेके लिये दो बातोंकी आवश्यकता है—१. अधिकसे अधिक तापक्रम ३१°·३५ का हो और २. दबाव लगभग ५० वायुमंडलके हो। ०°श पर कुछ गैसें साधारण दबाव डालनेसे ही द्रवीभूत हो जाती हैं। यह दबाव निम्न अंकों द्वारा स्पष्ट है—

गन्धक द्विओषिद—१·५३ वायुमंडल
हरिन् " ३·६६ "
अमोनिया " ४·२६ "
कर्बनद्विओषिद ३४·५५ "

ओषजन, उदजन, नोषजन आदि वायव्योंके शून्य तापक्रमपर २००० वायुमंडल दबावके अन्दर रखा गया। तब भी ये द्रवीभूत न हुए। सं० १९२६ वि० में एण्ड्रूज़ नामके वैज्ञानिकने यह घोषणा की कि कोई भी वायव्य तबतक द्रवीभूत नहीं हो सकता है चाहें कितना भी दबाव क्यों न डाला जाय जबतक इसे एक निश्चित तापक्रमतक ठण्डा न कर लिया जायगा। इस निश्चित तापक्रमको विपुल-तापक्रम (critical temperature) कहते हैं। विपुल-तापक्रमके नीचे निश्चित दबाव डालकर वायव्य द्रवीभूत किया जा सकता है। इस निश्चित दबावको विपुल-दबाव कहते हैं। इस प्रकार विपुल तापक्रम वह उच्चतम (maximum) तापक्रम है जिसपर वायव्य द्रवीभूत हो सकता है और विपुल दबाव वह निम्नतम (minimum) दबाव है जो वायव्यके द्रवीभूत करनेके लिये आवश्यक है। प्रत्येक वायव्यके लिये विपुल दबाव और विपुल तापक्रम भिन्न भिन्न हैं। कुछ वायव्योंके विपुल दबाव और विपुल तापक्रम यहाँ दिये जाते हैं:—

वायव्य	विपुल दबाव	विपुल तापक्रम
उद्जन	१२·८	−२३६°·६
ओषजन	५०·२	−११८°·७५
नोषजन	३३·४६	−१४७°·१३

इन वायव्योंको द्रवीभूत करने की सूक्ष्म विधि यह है कि इन्हें किसी बर्तनमें बड़े भारी दबावके अन्दर रखते हैं। फिर एक छेद द्वारा इन्हें एक दम बाहर निकालते हैं। ऐसा करने से इनका तापक्रम स्वयं ही बहुत कम हो जाता है। इस प्रकार ठण्डा करके इनपर फिर विपुल दबाव डाला जाता है। बस वायव्य द्रवीभूत हो जाते हैं।

तत्वोंकी मीमांसा

[ले० श्री० सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

आरम्भ

कई तत्वोंसे मिलकर एक यौगिक बनता है। प्रकृतिमें यों तो ९० के लगभग तत्व पाये जाते हैं पर कर्बनिक रसायनमें केवल उन्हीं यौगिकोंका वर्णन किया गया है जिनमें कर्बन तत्व अवश्य हो। संसारमें जितनी वस्तुएँ मनुष्यके उपयोगमें आती हैं उनमेंसे अधिकमें कर्बन विद्यमान है। आटा, शक्कर, रंग, फल, फूल, लकड़ी, रुई, रेशम कहाँतक गिनाया जाय, ये सब चीज़ें कर्बनसे बनी हुई हैं। इसलिये कर्बन तत्व अन्य तत्वोंकी अपेक्षा अधिक आवश्यक माना गया है। इसके यौगिक बड़े विलक्षण हैं, उनके निर्माणकी सृष्टि ही निराली है। इसीलिये रसायनका एक पृथक् विभाग कर दिया गया है जिसे कर्बनिक रसायन कहते हैं।

कर्बनिक यौगिक बहुधा कर्बन और उदजन तत्वोंके बने होते हैं। ऐसे यौगिकोंका नाम ही उद-कर्बन पड़ गया है जैसे दारेन, ज्वलेन, सिरकिलीन, बनज़ावीन आदि।

कर्बनिक-यौगिकोंमें बहुधा निम्न तत्व होते हैं:—

१. कर्बन	५ लवणजन
२. उदजन	[हरिन, अरुणिन् और नैलिन्
३. ओषजन	६ गन्धक
४. नोषजन	७ स्फुर
	८ संक्षीणम्

इनमेंसे पहले ४ तत्व तो बहुत पाये जाते हैं पर अन्तिम चार तत्व कुछ थोड़ेसे यौगिकोंमें ही होते हैं।

तत्वोंकी पहिचान

जब हमको कोई भी नई वस्तु दीजाती है तो हमें सबसे पहले यह जाननेकी इच्छा होती है कि इसमें कौन कौनसे तत्व विद्यमान हैं। इन तत्वोंके पहिचाननेकी अनेक विधियां हैं जिनमेंसे कुछ यहाँ दी जाती हैं।

१. कर्बनकी पहिचान—(अ) नलिकामें थोड़ासा उस पदार्थको रखो जिसमें यह सन्देह हो कि इसमें कर्बन है। बुन्सन दग्धककी लौसे गरम करो। ऐसा करनेसे यदि वह पदार्थ जलकर काला पड़ जाय तो समझना चाहिये कि इसमें कर्बन विद्यमान है।

(आ) कभी कभी अज्ञात पदार्थमें थोड़ा सा तीव्र गन्धकाम्ल डालकर गरम करते हैं। यदि ऐसा करनेसे पदार्थ जलकर काला पड़ जाय तो समझना चाहिये कि इसमें कर्बन है।

(इ) बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं जो ज़रा सा गरम करनेसे ही उड़ जाते हैं अर्थात् उड़नशील हैं। उनमें उपर्युक्त विधियाँ सफलीभूत नहीं होसकती हैं। मद्य, हरोपिपील (क्लोरोफार्म) सिरकाम्ल आदि ऐसे ही पदार्थ हैं। अतः कर्बनकी पहिचानके लिये यह किया जाता है कि इन पदार्थोंकी वाष्पोंको एक बन्द नलीमें ख़ूब ज़ोरसे रक्त-तप्त किया जाता है। ऐसा करनेसे कर्बनके काले कण नलीमें जम जाते हैं।

(ई) इन सब विधियोंसे उपयोगी विधि यह है कि अज्ञात पदार्थको किसी ऐसे पदार्थके साथ गरम करना चाहिये जो ओषजन दे सके। बहुधा अज्ञात पदार्थको ताम्रओषिदके साथ गरम किया जाता है। ऐसा करनेसे कर्बन तत्व कर्बन-द्विओषिद नामक गैसमें परिणत होजाता है। यह गैस यदि चूनेके पानी [खटिक-उदोषिद] में प्रवाहित की जाय तो खटिक-कर्बनेतका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। अतः यदि अवक्षेप प्राप्त होजाय तो समझना चाहिये कि अज्ञात पदार्थमें कर्बन विद्यमान है। इस प्रयोगके लिये, एक नलिकामें थोड़ासा अज्ञात पदार्थ और उसका तीन गुना ताम्रओषिद लेते हैं, फिर नलिकाके अग्रभागको गरम करके

खींच कर सूची नली बना लेते हैं। सूची नलीको समकोणपर झुकाकर एक दूसरी परीक्षा-नलीमें डुबाते हैं जिसमें चूनेका पानी भरा होता है। फिर उस पदार्थको खूब गरम करते हैं। यदि अज्ञात पदार्थमें कर्बन होगा तो वह कर्बन द्विओषिद गैस देगा और चूनेके पानीमें खटिक कर्बनेत-के सफ़ेद कण दिखाई देने लगेंगे।

२. उद्जनकी पहिचान – उद्जनकी पहिचान भी उसी प्रकारकी जाती है जिसप्रकार कर्बन की। कर्बन ओषजनके संसर्गसे कर्बन-द्विओषिद बनाता है पर उद्जन ओषजनके साथ पानी बनावेगा। अतः यदि अज्ञात पदार्थ को ताम्रओषिदके साथ गरम करें तो पानीकी भाप बनकर नलीके ठण्डे भागमें द्रवित हो जायगी और पानीकी बूंदें दिखाई पड़ेंगी। इस प्रकार यदि पानीकी बूंदे दिखाई पड़ें तो समझना चाहिये कि अज्ञात पदार्थमें उद्जन है। इस प्रयोगके करते समय यह सावधानी रखनी चाहिये कि ताम्रओषिद अच्छी तरह सुखा लिया गया है और उसमें जल कण विद्यमान नहीं हैं। इस कामके लिये यह उचित समझा गया है कि ताम्रओषिद को पहले गरम करके रक्ततप्त कर लेना चाहिये और इसे अभिशोषक (dessicator) में रखकर ठण्डा कर लेना चाहिये।

३. ओषजनकी पहिचान—ओषजनकी पहिचानके लिये कोई भी स्पष्ट विधि नहीं है। जिस पदार्थमें ओषजनका सन्देह हो उसे उद्जनके वायुमण्डलमें गरम करो। यदि कर्बन द्विओषिद गैस या भाप (जल) के चिह्न दिखाई पड़ें तो ओषजनका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। पर यह विधि अधिक उपयोगी नहीं है।

४. नोषजनकी पहिचान—(अ) कभी कभी अज्ञात पदार्थको गरम करनेपर जले हुए बाल (केश) की सी गन्ध आती है। यह गन्ध नोषजनके अस्तित्वकी सूचक है।

(आ) कभी कभी अज्ञात पदार्थको गरम करनेपर लाल धुँआ उठने लगता है या पटाखाकी सी आवाज़ सुनाई देती है। इनसे भी नोषजनका अनुमान लगाया जा सकता है।

(इ) कभी कभी यदि पदार्थमें नोषजन हो तो सैन्धकाचूना (soda lime) के साथ गरम करनेसे अमोनिया गैस निकलती है।

(ई) पर इन सब विधियोंसे उत्तम विधि वह है जिसका अब वर्णन किया जावेगा। अज्ञात पदार्थको सैन्धकम् और कभी कभी पांशुजम्के साथ गरम किया जाता है। इस कामके लिये छोटी छोटी काँचकी पतली नलियाँ जिन्हें तप्तक नली (ignition tube) कहते हैं ली जाती हैं। सैन्धकम्का एक छोटा सा टुकड़ा काट और सुखाकर तप्तक नलीमें रखते हैं। टुकड़ेके ऊपर थोड़ा सा अज्ञात पदार्थ (एक चनेके बराबर) रखते हैं और उसके ऊपर सैन्धकम्का दूसरा टुकड़ा रक्खा जाता है। तप्तक-नली को चिमटीसे पकड़ कर सावधानीसे बुन्सन दग्धककी लौमें रख कर गरम करते हैं। बहुधा यह होता है कि सैन्धकम्का टुकड़ा नलीके बाहर निकलनेकी कोशिश करता है और कभी कभी जल भी जाता है। अतः बड़ी सावधानीसे गरम करना चाहिए। इस नलीका मुँह किसी मनुष्य या लड़केकी ओर न करना चाहिये क्योंकि दुर्घटना होनेकी आशंका है। अस्तु, तप्तक नलीको इतना गरम करना चाहिये कि वह बिल्कुल रक्ततप्त हो जावे।

जब नली गरम होकर लाल पड़जाय तो एक चीनी मिट्टीकी प्यालीमें जिसमें शुद्ध पानी हो डुबो दो। ऐसा करनेसे नली टूट जावेगी। और गरम पदार्थका कुछ घोल बन जावेगा। इसमेंसे अघुल कोयलेके कण और काँचके टुकड़ोंको छानकर अलग कर दो। छन्यद्रवमें लोहस गन्धेतके घोलकी एक दो बूँदें डालो। और एक बूँद लोहिक-हरिद घोलकी भी डाल दो। यदि अज्ञात पदार्थमें नोषजन विद्यमान था तो

ऐसा करनेसे नीले रंगका घोल प्राप्त होगा। इस सारी विधिमें रासायनिक प्रक्रिया इस प्रकार हैं :—

(अज्ञात् पदार्थका कर्बन + नोषजन)
+ सैन्धकम् = सैकनो (सैन्धक श्यामिद)
६ सैकनो + लो ग ओ$_{४}$ = सै$_{२}$ ग ओ$_{४}$ +
सै$_{४}$ लो (कनो)$_{६}$
सै$_{४}$ लो (कनो)$_{६}$ + लोह$_{३}$ = ३ सैह +
सै लो [लो (कनो)$_{६}$]

इस प्रकार पहले सैन्धक श्यामिद बनता है जो लोहसगन्धेतके साथ सैन्धक लोहोश्यामिद बनाता है। पर यह पदार्थ लोहिक हरिदके साथ सैन्धक-लोहिक-लोहो-श्यामिद बनाता है जो नीले रंगका है। इस विधिसे नोषजनकी पहिचान बड़ी सरलतासे की जा सकती है।

५—लवणजनकी पहिचान—लवणजनसे तात्पर्य्य हरिन्, अरुणिन् और नैलिन् तत्त्वोंसे है। साधारण यौगिकोंके घोलमें यदि रजतनोषेतका घोल डाला जाय तो लवणजनका श्वेत, पीला, या भूरा अवक्षेप प्राप्त होगा। पर कर्बनिक यौगिकोंका लवणजन इस विधिसे नहीं ज्ञात हो सकता है। उदाहरणके लिये, यदि हरोपिपील (क्लोरोफार्म) में रजतनोषेत डाला जाय तो रजत हरिदका श्वेत अवक्षेप नहीं प्राप्त होगा यद्यपि इसमें हरिन् तत्त्व विद्यमान है। अस्तु, इसकी पहिचानके लिये निम्न विधियाँ काममें लायी जाती हैं:—

(अ) अज्ञात पदार्थमें थोड़ा सा ताम्रिकओषिद मिलाया जाता है और इस मिश्रणको पररौप्यमके तारपर रखकर बुन्सन दग्धककी लौमें गरम करते हैं। इस प्रकार करनेसे लौमें पहले नीला रंग और फिर हरा रंग दिखाई पड़ेगा। यदि अज्ञात पदार्थ उड़नशील हो तो उसकी वाष्पोंको रक्त तप्त ताम्रकी जाली (gauge) पर प्रवाहित करते हैं। यदि इसमें हरिन् हो तो नीले और फिर हरे रंग की लौ दिखाई पड़ेगी। यदि नैलिन् तत्त्व होगा तो हरी लौ प्रत्यक्ष होगी।

(आ) अज्ञात पदार्थको कभी कभी शुद्ध चूनेके साथ ज़ोरोंसे गरम करते हैं। यदि इसमें हरिन् विद्यमान होगा तो खटिक हरिदका घोल बन जावेगा और इस घोलमें रजतनोषेत डालनेसे रजत-हरिदका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा।

(इ) एक बन्द नलीमें अज्ञात पदार्थमें धूम्रित (Fuming) नोषिकाम्ल और रजत नोषेत मिलाकर गरम करते हैं। ऐसा करनेसे रजत-हरिद प्राप्त होगा।

(ई) पर इन सब विधियोंकी अपेक्षा निम्न विधि अधिक सुगम मानी जाती है। नोषजनकी पहिचानके लिये जो चौथी विधि दी गई है उसका ही यहां भी उपयोग किया जाता है। अर्थात् अज्ञात पदार्थको सैन्धकम्के साथ गरम करते हैं और फिर उसका पानीमें घोल बनाकर लवणजनकी पहिचानके लिये क्रिया करते हैं। यदि अज्ञात पदार्थमें नोषजन न विद्यमान हो तो उसमें रजतनोषेतका घोल डाल कर अवक्षेप प्राप्त करते हैं। यदि अवक्षेप श्वेत हुआ तो हरिन् तत्त्वकी विद्यमानताका अनुमान होता है और यदि पीला अवक्षेप हो तो अरुणिन या नैलिन हो सकता है।

पर यदि उक्त अज्ञात पदार्थमें नोषजन भी विद्यमान है तो परीक्षा इस प्रकार नहीं की जा सकती है क्योंकि रजनोषेत घोलके डालनेसे रजतश्यामिदका भी अवक्षेप प्राप्त हो जायगा। अतः सैन्धकम्के साथ तप्त करके जो घोल बनाया गया है उसे पहले चीनी की प्यालीमें नत्रिकाम्लके साथ गरम करके सुखाते हैं। ऐसा करनेसे श्यामिद विच्छिन्न हो जाता है। अब इस सूखे हुए प्राप्त पदार्थको शुद्ध जलमें घोल कर यदि रजतनोषेत डाला जाय तो लवणजनका अवक्षेप प्राप्त होगा।

६—गन्धककी पहिचान—(अ) बहुधा अज्ञात पदार्थ-में सीस-ओषिदका क्षारीय घोल डाल कर गरम करते हैं। यदि पदार्थमें गन्धक होगा तो सीस-गन्धिदका काला अवक्षेप प्राप्त होगा।

(आ) सैन्धकम्के साथ तप्त करके जो घोल बनाया गया था उसमें यदि चाँदीका कोई सिक्का डाला जाय और सिक्केपर काले दाग दिखाई पड़ें तो समझना चाहिये कि इसमें गन्धक विद्यमान है।

(इ) सैन्धकम्के साथ तप्त करके जो घोल प्राप्त हुआ था उसमें सैन्धकम्-नोषो-प्रशिद का घोल डालते हैं। ऐसा करनेसे यदि लाली लिये हुए नीला रंग दिखाई पड़े तो समझना चाहिये कि अज्ञात पदार्थमें गन्धक है। यह विधि सब विधियों-से अधिक उपयोगी और विश्वसनीय है।

७—स्फुर और संक्षीणम्की पहिचान—ये तत्त्व बहुत कम पाये जाते हैं। इनकी पहिचानके लिये अज्ञात पदार्थको सैन्धककर्बनेत और पांशुजनोषेत-के साथ गरम करके पिघलाते हैं। ऐसा करनेसे स्फुर और संक्षीणम् सैन्धक स्फुरेत और संक्षीणेतमें परिणत हो जाते हैं। इनके घोलोंमें यदि नोषिकाम्ल और अमोनियम-मुलागेतका घोल डाल कर थोड़ासा गरम करें तो पीला पीला अवक्षेप प्राप्त होगा जो स्फुर और संक्षीणम् दोनोंका सूचक है। संक्षीणेतके घोलमें यदि उद-गन्धिद नामक वायव्य प्रवाहित किया जाय तो पीला अवक्षेप प्राप्त होगा। स्फुरेतमें उद-गन्धिद प्रवाहित किया जाय तो कोई अवक्षेप नहीं मिलेगा।

अज्ञात पदार्थमें तत्वोंकी मात्रा निकालना

इन सब तत्वोंकी पहिचानमें नोषजन, गन्धक और लवणजन तत्वोंकी पहिचान अधिक आवश्यक है अतः विद्यार्थियोंको इनका विशेष अभ्यास कर लेना चाहिये।

अब तक हमने यह बताया है कि पदार्थके तत्त्वोंकी पहिचान किस प्रकार की जाती है, अब यहाँ यह मालूम करनेकी विधि बतलायी जायगी कि किसी अज्ञात पदार्थमें कौन कौन तत्त्व किस अनुपातमें विद्यमान हैं।

१. कर्बन और उद्जन—इनके पहिचाननेकी विधि पहले दी गई है। उसीके सिद्धान्तके आधारपर इन तत्त्वोंकी सापेक्षिक मात्रा निकाली जा सकती है। ओषदीकरण द्वारा कर्बनको कर्बन-द्विओषिदमें परिणत करते हैं और उद्जनको जलमें। जितना कर्बन-द्विओषिद बनता है वह पांशुज-उदोषिदके घोल द्वारा अभिशोषित कर लिया जाता है और जलको खटिक हरिद द्वारा अभिशोषित कर लेते हैं। प्रयोगकी विधि इस प्रकार है।

एक गज़ लम्बी सख़्त कांचकी नली लो। इसका दो तिहाई भाग साधारण ताम्र ओषिदसे भरदो। फिर इसके पीछे एक छोटी सी नौकामें अज्ञात पदार्थकी ज्ञात मात्रा तौल कर रखो। और इसके बाद तांबेकी जालीका पोंगना बनाकर रखो। अब इस नलीको भट्टीमें रखो। (इस कामके लिये विशेष प्रकारकी भट्टी बनाई जाती हैं) । अज्ञात पदार्थके निकट वाले सिरेको गैसकी दो बोतलोंसे संयुक्त करदो। एक बोतलमें ओषजन भरो और दूसरीमें साधारण वायु। इन गैसोंको शुद्ध करनेके लिये नली और बोतलोंके बीचमें सैन्धका चूना और तीव्र गन्धकाम्लसे भरी हुई चूल्हा-कार नलियाँ भी संयुक्त की जाती हैं। नलीके दूसरे सिरेको एक दूसरी चूल्हाकार नलीसे जिसमें खटिक हरिद भरा होता है और जिसका भार पहले तौलकर निकाल लिया जाता है, संयुक्त करते हैं। और फिर इसको दूसरे कांचके विशेष बल्बसे संयुक्त करते हैं जिसमें पांशुज उदोषिद-का संयुक्त घोल भरा होता है। इस बल्बका भी उदोषिद सहित भार पहले निकाल लेते हैं।

इतना प्रबन्ध करनेके उपरान्त नलीको भट्टी-में रखकर ताम्रओषिदको रक्ततप्त करते हैं और

ओषजन वाली बोतलमेंसे ओषजन प्रवाहित करते हैं। इसके पश्चात् अज्ञात पदार्थको धीरे धीरे गरम करके जला देते हैं। ऐसा करनेसे जो कुछ पानी बनता है वह खटिक हरिद्‌की नलीमें अभिशोषित हो जाता है और जो कुछ कर्बनद्विओषिद बनता है वह पांशुजओषिद वाले बल्बमें अभिशोषित हो जाता है। जब अज्ञात पदार्थ सम्पूर्णतः जल जाय तो ओषजनका प्रवाहित करना बन्द कर देते हैं और वायुकी बोतलसे वायु प्रवाहित करते हैं। खटिक हरिद् और पांशुजउदोषिद्‌की नली और बल्बको पृथक निकाल कर फिर तौल लेते हैं। ऐसा करनेसे पता चल सकता है कि कितना पानी और कितना कर्बनद्वि ओषिद बना है।

कर्बन और उद्‌जनका अनुमान निम्न विधिसे निकालते हैं :—

१. अज्ञात पदार्थ की मात्रा = म ग्राम

२. पांशुज उदोषिद वाले बल्बका भार = ब ग्राम

पांशुज उदोषिद वाले बल्बका कर्बनद्वि ओषिद अभिशोषणके बाद का भार } = $ब_१$ ग्राम

∴ कर्बनद्वि-ओषिदका भार = ($ब_१$—ब) ग्राम

३. खटिक हरिद्‌की नलीका भार = $ख_१$ ग्राम

पानी अभिशोषणके बाद इसका भार = $ख_२$ ग्राम

∴ पानी का भार = ($ख_२$-$ख_१$) ग्राम

(क) कर्बनद्वि-ओषिद (क $ओ_२$) का अणुभार = १२+३२=४४

∴ ४४ भाग कर्बन-द्विओषिदमें १२ भाग कर्बन है

∴ ($ब_१$-ब) ,, $\frac{१२}{४४}$ × ($ब_१$-ब) ,,

∴ म ग्राम अज्ञात पदार्थमें $\frac{१२}{४४}$ × ($ब_१$-ब) कर्बन है

∴ १०० ,, $\frac{१२ \times (ब_१-ब) \times १००}{४४ \times म}$ कर्बन है।

(ख) पानीका ($उ_२$ओ) अणुभार (२+१६)= १८

∴ १८ भाग जलमें उद्‌जन २ भाग है।

∴ ($ख_२$-$ख_१$) ,, ,, $\frac{२}{१८}$ ($ख_२$-$ख_१$)

∴ म ग्राम अज्ञात पदार्थमें उद्‌जन $\frac{२}{१८}$ ($ख_२$-$ख_१$) ग्राम है

∴ १०० ,, $\frac{२ \times (ख_२-ख_१) \times १००}{१८ \times म}$ ग्राम है।

इस प्रकार यह निकाला जा सकता है कि अज्ञात पदार्थ में प्रतिशतक कितना कर्बन और कितना उद्‌जन है।

उदाहरण—किसी पदार्थका ·०५६ ग्राम जलानेसे ०·१९८ ग्राम कर्बन द्विओषिद निकला और ०३५ ग्राम पानी निकला तो बताओ कि उस पदार्थ में कितने प्रतिशतक उद्‌जन और कर्बन है।

$$उद्‌जन = \frac{२ \times ·०३५ \times १००}{१८ \times ·०५६} = ३·४ \text{ प्रतिशतक}$$

$$कर्बन = \frac{१२ \times ०·१९८ \times १००}{४४ \times ·०५६} = ९६·४ \text{ प्रति शतक}$$

यदि अज्ञात पदार्थ उड़न शील द्रव हो तो उसे बन्द छोटेसे कांचके विशेष बल्बमें रखकर तौलते हैं। इस बल्बके आगे एक टोटी लगी होती है जो पिघला कर बन्द कर दी जाती है। नलीमें रखनेके पूर्व बल्बकी टोटीको ज़रा सा तोड़ देते हैं। यदि अज्ञात पदार्थमें नोषजन भी है तो एक कठिनाई पड़ती है। ओषदीकरण करनेसे नोषजनके भी ओषिद बन जाते है जो पांशुज उदोषिदमें अभिशोषित होजाते हैं। अतः नलीके मुँहके आगे तांबेकी एक और जाली संयुक्त करके रखी जाती है। यह नोषजनके ओषिदों को विभाजित कर देती है और नोषजन पांशुज उदोषिदमें अभिशोषित नहीं होसकता है।

नोषजनकी सापेक्षिक-मात्रा—इसके लिये भी पहलेकी सी एक लम्बी नली ली जाती है। इसमें पहले थोड़ा सा साधारण ताम्र-ओषिद रखते हैं। इसके पश्चात् महीन पिसे हुए ताम्रओषदिमें अज्ञात पदार्थकी ज्ञात मात्रा तौलकर मिलाकर रखते हैं तत्पश्चात् फिर साधारण ताम्रओषिद भर दिया

जाता है, और अन्त में तांबेकी जालीका पोंगना बनाकर रखते है। तांबेकी जाली इस लिये रखी जाती है कि यदि नोषजन-ओषिद् बने तो वह विभाजित होजाय। पहले वाले सिरेको कर्बनद्वि-ओषिद्की बोतलसे संयुक्त कर देते हैं। इस बोतलमें इस प्रकारका प्रबन्ध रहता है कि जब चाहें तो कर्बन द्विओषिद् नलीमें प्रवाहित करदें और जब चाहें तब रोकदें। नलीके दूसरे सिरेको नोषजन-मापक (azotometer or Nitrometer) यंत्र से संयुक्त कर देते हैं।
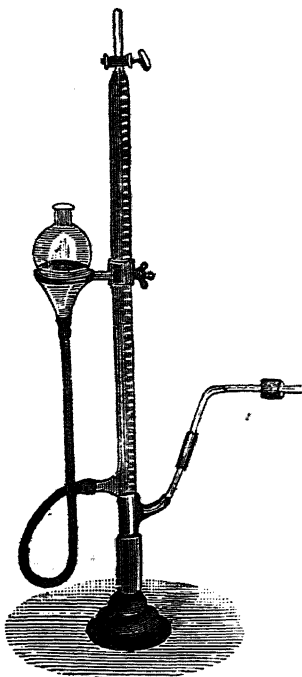
चित्र नं० १३

इस यंत्रमें निशान लगी हुई एक लम्बी नली होती है जिसमें ऊपर एक टोंटी होती है। नीचेकी ओर बगलमें दो और नलियाँ होती हैं। ऊपर कहे हुए नलीके दूसरे सिरेको इनमेंसे एक नलीसे संयुक्त कर देते हैं।

दूसरी नली एक संचक (reservoir) से संयुक्त रहती है जिसमें पांशुज उदोषिद्का घोल भरा रहता है। निशान लगी हुई नलीकी ऊपरी टोंटीको खोल कर और संचकको ऊंचा नीचा करके घोल निशान लगी हुई नलीमें भरा और निकाला जा सकता है। संचकको पहले नीचे कर लेते हैं और निशान लगी हुई नलीको घोलसे खाली कर लेते हैं। तत्पश्चात् कर्बन-द्विओषिद्को प्रवाहित करते हैं। इस प्रकार भस्मक नलीमेंसे वायु पूर्णतः निकाल ली जाती है। तत्पश्चात् नोषजनमापक को पांशुज-उदोषिद्से भरते हैं और ताम्रओषिद् पूर्वके अनुसार गरम करते हैं। जब यह रक्त तप्त हो जाय और अज्ञात पदार्थ पूर्णतः भस्म हो जाय तो नोषजनको नोषजन-मापकमें संचित कर लेते हैं। भस्मकनलीमें कर्बन द्विओषिद् फिर प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे नलीका सब नोषजन नोषजन-मापकमें आ जायगा। नोषजन-मापकमें नोषजनका आयतन पढ़ लिया जाता है। आयतन पढ़नेके पूर्व यह अवश्य करना चाहिये कि पांशुज-उदोषिद् घोलकी सतह संचक और निशान लगी हुई नलीमें एक ही हो। वायुमंडलका दबाव और तापक्रम भी जानलेना चाहिये।

नोषजनके आपेक्षिक अनुपातका हिसाब इस प्रकार लगाना चाहिये :—

म = अज्ञात पदार्थका भार

अ = नोषजनका आयतन

द = वायुमंडलका दबाव (मिलीमीटरमें)

त = वायुमंडल का तापक्रम

फ = पांशुजउदोषिद्के घोलका तनाव-(tension) (पानीका तनाव इस तनावके बराबर समझा जा सकता है)

∴ ०°श तापक्रम और ७६० मि. मी. दबाव पर नोषजनका आयतन

$$= \frac{\text{अ} \times २७३ \times (\text{द} - \text{फ})}{(२७३ + \text{त})\ ७६०}$$

१ घन. श. मी. नोषजन का ०°श और ७६० मि. मी दबावपर भार ०.००१२६ ग्राम होता है अतः उपर्युक्त आयतन का भार

$$= \frac{\text{अ} \times २७३ \times (\text{द—फ}) \times ०.००१२६}{(२७३ \times \text{त})\ ७६०} \text{ ग्राम}$$

इतना नोषजन म ग्राम अज्ञात पदार्थमें है अतः इस पदार्थमें

$$\frac{\text{अ} \times २७३ \times (\text{द} - \text{फ}) \times ०.००१२६ \times १००}{(२७३ + \text{त}) \times ७६० \times \text{म}} \text{प्रतिशतक}$$

उदाहरण—०.४१२ ग्राम अज्ञात पदार्थके भस्म करनेपर ७५·२ घन. श. मी. नम नोषजन मिला। तापक्रम १७° और दबाव ७५६ मि० मी० तथा तनाव १७° श पर १४·५ मि० मी था, नोषजन उक्त पदार्थमें कितने प्रतिशतक था ?—

$$\text{नोषजन} = \frac{७५·२ \times २७३ \times (७५६ - १४·५) \times .१२६}{(२७३ + १७) \times ७६० \times ०.४१२}$$

= २१.१२ प्रतिशतक

लवणजनकी सापेक्षिक मात्रा (केरियसकी विधि):—लवणजनकी सापेक्षिक मात्रा निकालनेके लिये यों तो कई विधियाँ हैं पर केरियसकी विधि सबसे मुख्य है। उस विधिमें अज्ञात पदार्थका धूम्रत नोषिकाम्लके द्वारा ओषदीकरण करते हैं और साथमें रजतनोषेत भी रखते हैं। ऐसा करनेसे रजत लवणिद (हरिद, अरुणिद आदि) बनता है जिसे छान और सुखाकर तौल सकते हैं। इसको तौलकर लवणजनकी मात्राका हिसाब लगाया जा सकता है। इस कामके लिये मोटे काँचकी नली ली जाती है। और इसमें रजत नोषेत और दो तीन घन. शी. मी. नोषिकाम्ल लिया जाता है। एक पतली नलीमें अज्ञात पदार्थ तौलकर रखा जाता है। यह पतली नली पूर्व नलीमें फिसला दी जाती है। पूर्व नलीका ऊपरीभाग पिघलाकर बन्दकर दिया जाता है। फिर इसे गरम वायुकी भट्टीमें कुछ घंटे गरम करते हैं। फिर नलीको तोड़कर रजतहरिद्की मात्राको छान लेते हैं और सुखाकर तौल लेते हैं।

उदाहरण—०·१२१ ग्राम अज्ञात पदार्थ द्वारा ·११४ ग्राम रजत हरिद प्राप्त होता है तो बताओ कि इसमें कितने प्रति शत हरिन् है ?

रजत हरिद्का अणुभार = १०७·६+३५·५ = १४३·४

∴ १४३·४ भाग रजत हरिद में हरिन है —३५·५ भाग

$$०·११४ \;\;,,\;\; ,,\;\; , \;— \frac{३५·५ \times ०·११४}{१४३·४}$$

$$\therefore \text{उक्त पदार्थमें हरिन्} = \frac{३५·५ \times ०·११४ \times १००}{१४३·४ \times ०·१२१}$$

प्रतिशत

गन्धककी सापेक्षिक मात्रा—केरियसकी विधि इस काममें भी उपयोगी है। इसमें भी अज्ञात पदार्थका ओषदीकरण नोषिकाम्ल द्वारा करते हैं पर रजत नोषेत नहीं डाला जाता। ओषदीकरणसे गन्धकाम्ल उत्पन्न होता है। भार-हरिद डाल कर भार-गन्धेतका अवक्षेप प्राप्त होता है जिसे छान, सुखाकर तौल लेते हैं। ऐसा करनेसे गन्धककी मात्राका अनुमान किया जा सकता है।

उदाहरण—०·१२१ ग्राम अज्ञात पदार्थ द्वारा ०·११४ ग्राम भारगन्धेत प्राप्त हुआ तो बताओ कि इसमें कितने प्रति शतक गन्धक है ?

$\text{भगओ}_४$, भार-गन्धेत का अणुभार = १३७·४+३२+६४=२३३·४

२३३·४ भाग भार गन्धेतमें ३२ भाग गन्धक है।

$$०·११४ \;\;,,\;\; ,,\;\; \frac{३२ \times ०·११४}{२३३.४} \text{ गन्धक है।}$$

$$\text{उक्त पदार्थमें गन्धक} = \frac{३२ \times ०·११४ \times १००}{२३३·४ \times ०·१२१}$$

प्रतिशतक

भारतीय संगीत

[ले०—श्री हरिनारायण मुकर्जी]

[इस लेखमें जो चित्र आये हैं वह इस लेखके दूसरे भागके-साथ दिये जायँगे]

गीतका आदि अथवा मूल ग्रन्थ वेद हैं परन्तु उसके अनुसार आजकल कोई भी शिक्षा प्राप्त नहीं करता। जिस प्रकार सृष्टिका प्रसार अणु व परमाणुके संयोगसे पंचभूतादिसे हुआ है उसी प्रकार संगीत भी आदि शब्दके प्रसारसे हुआ है यह कोई असंभव विश्वास नहीं है। "आदि नाद प्रणव रूप"—सुरतसेनके इस गानसे मालूम होता है कि प्रणवध्वनि सारे जगत्में व्याप्त है और इसी प्रणवध्वनिके प्रसारसे छः स्वर उत्पन्न हुए हैं। ईश्वरका कोई रूप नहीं है परन्तु वह सर्व प्रकारके रूपमें विराजमान है। इसीलिए मानव-स्वरके उच्चारणके विचारसे मान लिया गया है कि ईश्वरके शीर्ष, नेत्र, मुख, कण्ठ, नाभि और गुह्य से क्रमानुसार ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये छः स्वर उत्पन्न हुए और हिंडोल, दीपक, भैरव, मालकोष, श्री और मेघ ये छः राग उत्पन्न हुए।

प्रणव शब्द पहले तीन भागमें विभक्त होकर पुनः तीन और भागोंमें विभक्त हुआ है। सुरतसेनके ऊपर लिखे हुए गानमें जो 'त्रिविध गुण-निधान' उक्ति है उससे विदित होता है कि ओड़व षाड़व और सम्पूर्ण यही तीन आदि राग हैं। इन्हीं ओड़व, षाड़व और सम्पूर्णकी प्रतिकृतिसे मालकोष, मेघ और भैरव रागोंकी सृष्टि हुई और इन तीनोंके प्रसारसे हिंडोल, दीपक और श्री रागोंकी उत्पत्ति हुई। तथा इन्हीं मूल रागोंसे क्रमशः बहुत से रागों का विस्तार हुआ है। (देखिए चित्र १)।

ब्रह्माके मतानुसार महादेवजीके सद्योजात मुखसे श्रीराग, वामदेव मुखसे वसन्त, अघोर मुखसे भैरव; तत्पुरुष मुखसे पंचम, ईशान मुखसे मेघ, और गिरिजा मुखसे नट नारायण रागोंकी उत्पत्ति हुई और निषाद गान्धार, मध्यम, धैवत, ऋषभ और पंचम स्वरके द्वारा क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, शरद्, वर्षा और हेमन्त ऋतुके नाट्यारम्भमें गीत आरम्भ हुआ था अर्थात् शिव-पार्वती ने एक साथ नृत्य करते करते इन रागोंको गाया था। किसी किसीका मत है कि भैरव राग प्रथम राग है। इसी आशयका एक गीत है—"प्रथम गाइए सद्योजात मुख सों"। राजबहादुर नामके किसी भक्तने भैरवीकी रागमालामें "पंच-वदन पंचराग सर्वप्रथम उक्ति कीन्हि" यह कहा है और यह भी कहा है कि इसीसे क्रमशः भैरव, मालकोष, हिंडोल, मेघ और श्रीराग उत्पन्न हुए हैं। इससे मालूम होता है कि सबका यही मत है कि महादेवजीके पंचमुखसे पाँच रागोंकी सृष्टि हुई है। परन्तु किस मुखसे किस रागकी उत्पत्ति हुई है इस विषयमें जो मतभेद देखा जाता है उसकी मीमांसाका कोई उपाय अब नहीं दिखाई देता। भरतका मत यह है कि महादेव और पार्वतीके मुखसे भैरव, श्री, मेघ, दीपक, हिंडोल और मालकोष यह छः राग उत्पन्न हुए हैं। वह कहते हैं कि अघोर (दक्षिण) मुखसे भैरव, तत्पुरुष (पश्चिम) मुखसे श्री, सद्योजात (आकाश) मुखसे मेघ, वामदेव (पूर्व) मुखसे दीपक, ईशान (उत्तर) मुखसे हिंडोल और पार्वतीजी के मुखसे मालकोष रागकी सृष्टि हुई है। यह छः राग छः स्वरसे अर्थात् मध्यम, निषाद, धैवत, गांधार, ऋषभ और पंचम स्वरोंसे गाये गये थे। केवल यही नहीं वरन् छः राग छओं ऋतुओंमें गानेकी विधि है और इसके परिणाम स्वरूप वर्षा (मेघ का), अग्नि (दीपक का) इत्यादि भिन्न भिन्न प्राकृतिक क्रियाओंकी उत्पत्ति होती है, लोगोंका यही विश्वास है। चित्र २ से इसी बातको स्पष्ट सम-

भानेका प्रयत्न किया गया है। बैजूबावरे के "प्रथम आदि शिवशक्ति नाद परमेश्वर"—इस गीतसे भी मालूम होता है कि महादेव और पार्वतीजी-का गीतही आर्यसंगीतका आदि अथवा मूल है।

आजकलके वैज्ञानिक लोग कदाचित् इस चित्रको देखकर हँसेंगे और कहेंगे कि रागोंके सम्बन्धमें जो परिणाम बतलाया गया है वह असंभव है या मत्तप्रलाप है। परन्तु जब हम आधुनिक वैज्ञानिक क्रियाकलापोंकी चर्चा करते हैं तब देखते हैं कि इनकी अपेक्षा हमारी उपर्युक्त बात कुछ अधिक असम्भव नहीं है। सूखी लकड़ीमें अथवा लोहे पत्थरमें अथवा वैद्युतिक वा रासायनिक क्रियाओंमें अणु, परमाणु के सन्निवेशसे अग्निकी उत्पत्ति कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। और यह भी देखा गया है कि आकाशमें तोपके गोलेसे पानी बरसाना असम्भव नहीं है। इससे यही प्रतीत होता है कि यह परिणाम नादके द्वारा अणु परमाणुओंका संघर्षणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि इस बातको मान लिया जाय तो संगीतनादके द्वारा आकाशके अणु परमाणुओंके संश्लेषण अथवा विश्लेषणसे उपर्युक्त फलोंकी उत्पत्ति होना कुछ असम्भव नहीं है। किस प्रकारसे अथवा किन किन नियमोंसे आकाशमें संगीत नादके द्वारा घात प्रतिघात हो सकता है इसका सूक्ष्मतत्व नहीं जानते हैं इसलिए उसको असंभव कहके उड़ा देना वैज्ञानिकको कदापि उचित नहीं है। थोड़ा सा gun-cotton या nito-glycerine से बड़ेबड़े चट्टानचूर्ण किये जाते हैं; तुच्छ आणविक शक्ति molecular force से बड़े २ भार व चापको सहजमें ही वशमें ला सकते हैं, थोड़ी सी विद्युत् शक्तिसे बड़े बड़े मकानोंको तोड़ सकते हैं, थोड़ेसे गैसके द्वारा बड़े बड़े शहर नष्ट हो सकते हैं, केवल रेडियम (Radium) के द्वारा कितने आश्चर्यजनक कार्य किये जारहे हैं! एक बूँद औषधिके सेवन अथवा Injection से कठिन से कठिन रोग सहज में ही दूर हो सकते हैं। बात तो यह है कि आजकलका विज्ञान स्थूलको त्याग कर सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थों और शक्तियोंका अनुशीलन कर रहा है। रसायन शास्त्रमें रेडियमके किरण और Ion और Electron; जीवविज्ञान में जीवाणु Bacilus; वनस्पति शास्त्रमें वैद्युतिक प्रतिक्रिया, चिकित्सा शास्त्र में आणविक Injection आदि व्यापारोंमें आजकलके वैज्ञानिक लोग अपना मस्तिष्क लगा रहे हैं। परन्तु अणु-परमाणुओंके घात-प्रतिघातका शेष तत्व अभीतक किसीने किसी विषयमें नहीं जाना। इसलिए अणु परमाणुओंके विशेष प्रकारसे संश्लेषण अथवा विश्लेषण द्वारा क्या हो सकता है और क्या नहीं हो सकता है, इसे हर अवस्थामें सिद्ध करना आवश्यक है। अतः मेरे इस चित्रमें हँसीकी क्या बात हो सकती है?

महादेवजीके पंचमुखसे पाँच स्वर और पार्वतीजीके मुखसे छठा स्वरके द्वारा जो छः राग गाये गये उनका मूल वा आदि कारण प्रणव ही है और यह प्रणवध्वनि सारे विश्वमें व्याप्त है। शिव पार्वतीके मुखसे निःसृत छओं स्वरों की समष्टि इस विश्वव्याप्त स्वरमें मिलकर षड्ज् नामसे प्रसिद्ध हुई है। और यही प्रथम अथवा आदि स्वर है। आत्मतत्वदर्शी सुधी इसीको अनाहतोपन्न प्रणवध्वनि अथवा षड्ज स्वर कहते हैं। इसी षड्जसे ऋषभ आदि स्वरोंकी सृष्टि हुई है और वे इसी में मिले हैं। इसीलिए इसका नाम षड्ज है। शास्त्रमें इसको मयूरध्वनि कहा है। बैजू बावराने जो "षड्ज सुर मेंह" गीत बनाया है उसमें मेंह शब्दसे वृष्टिका शब्द ही समझा जाता है।

नादविन्दु उपनिषद्में प्रणवको चार मात्राओं में विभक्त करके उसकी हर एक मात्राका एक एक अधिष्ठाता देवता मान लिया गया है। जैसे अकारका, देवता अग्नि, उकारका देवता वायु, मकारका देवता सूर्य और नाद विन्दुका देवता वरुण। फिर इनमेंसे हर एक मात्राको तीन तीन

भागोंमें विभक्त करके कुल १२ खंड-मात्राओं-में विभक्त किया गया है। इसी प्रकार खंड-मात्राओं-को लेकर प्रणव १२ भागोंमें विभक्त हुआ है। यथा—

अ	उ	म	ँ
अग्नि	वायु	सूर्य	वरुण
।	।	।	।
घोषिणी	वायुवेगिनी	वैष्णवी	ध्रुवा
विद्युन्माली	नामधेया	शांकरी	मौनी
पतंगी	ऐन्द्री	महती	ब्राह्मी

जब यह प्रणव शरीरस्थ वाह्याकाश (ether) में आहत होकर अपना रूप गोपन करके ध्वनिका रूप धारण करता है तब वह ध्वनि संगीतका मूल धातु स्वर माना जाता है। प्रत्येक सप्तक में ५ तीव्र ५ कोमल और २ अच्युत स्वर अर्थात् १२ स्वरांश अथवा भाग रहनेके कारण उपनिषद्में लिखे हुए प्रणवके १२ अंशोंके साथ बहुत सुन्दर सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है।

चित्र ३ को देखनेसे प्रतीत होगा कि सबसे पहले केवल ३ ही राग अर्थात् ओड़व, षाड़व और सम्पूर्ण गाये जाते थे। ओड़व रागमें मालकोष (स गा मा धा ना) षाड़व रागमें मेघ (स र मा प ध ना) और सम्पूर्ण रागमें भैरव (स रा ग मा प धा न) प्रचलित थे। हिंडोल राग मालकोष रागका व्यत्यपय मात्र है। अर्थात् हिंडोल रागमें जितने स्वर प्रयोग किये जाते हैं वह तीव्र हैं परन्तु मालकोषमें वह सब कोमल हैं। श्री और भैरव रागमें मध्यम स्वर का भेद है अर्थात् भैरव-में कोमल मध्यम और श्री रागमें तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है। दीपक राग प्रचलित नहीं है। परन्तु इसके रूपके सम्बन्धमें हम कुछ अनुमान कर सकते हैं। जिस प्रकार एक ही प्रस्तारके अर्थात् ओड़व प्रस्तारके कोमल और तीव्रसे दो राग मालकोष और हिंडोल बने हैं और सम्पूर्ण प्रस्तारमें मध्यमके भेदसे भैरव और श्री, उसी प्रकार षाड़व प्रस्तारमें मेघ और दीपक का होना कुछ असम्भव नहीं है। यदि दीपक राग प्रचलित होता तो यह बात ठीक ठीक समझमें आती। सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि इस विषयपर ठीक ठीक विचार करें।

ऊपर जो तीन चित्रके विषयमें लिखे गये हैं वह मुझे वाराणसीके प्रसिद्ध वीणकार स्वर्गीय महेश चन्द्र सरकार महाशयसे प्राप्त हुए थे।

षट् चक्रादि विषयपर विचार करनेसे देखा जाता है कि प्रथम चक्रके दो अंगुल ऊपर और द्वितीय चक्रके दो अंगुल नीचे एक अंगुलके बरा-बर अग्निशिखावत एक चक्र है जिसके ६ अंगुल ऊपर एक वर्गाकार स्थान है जिसकी हर एक भुजा ४ अंगुल है। इसीको नाभिकन्दर* अथवा ब्रह्म-ग्रन्थि कहते हैं। शेष चक्र मस्तिष्क के नीचे और मुखगह्वरके ऊपरके स्थानमें स्थित है। इसको ब्रह्म-तालु कहते हैं। बाकी चक्र शरीरके विभिन्न स्थानों-में स्थित हैं। शरीरमें बहुतसे नाड़ी हैं जिनमें इड़ा, सुषुम्ना, और पिंगला प्रधान हैं और इनमें भी सुषुम्ना सर्वप्रधान है, क्योंकि प्राणवायु सुषुम्ना के आश्रय से ब्रह्मग्रन्थिसे ब्रह्मतालुतक चढ़ती और उतरती है। जिस प्रकार मकड़ी अपने जालेका विस्तार करके उसके बीचमें रहती हैं, निकल नहीं सकती उसी प्रकार जीव मनुष्य शरीर-में जन्म, मृत्यु रूप जालेमें फँसकर आता जाता रहता है, बाहर निकल नहीं सकता। इस भव-बन्धन (यम जाल) से मुक्त होनेके लिए नाना प्रकारकी उपासना हैं और उनमें नादोपासना एक मुख्य है। अनाहत नादोपासना (प्राणायाम क्रियादियोग) कठिन और नीरस होनेके कारण लोगोंको पसन्द नहीं होती। आहत नादोपासना (संगीत क्रियादि योग) मनोरंजक और भवभय-भंजक और सुखदायक समझी जाती है। नादो-पासना करनेसे ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी उपा-

* महाशक्ति का यही केन्द्रस्थान है। परमः सहज-स्तद्वदानन्दोवीर पूर्वकः । योगानन्दश्च तत्रस्या दैशानादि दले फलम् (संगीतरत्नाकर)

सना होती है और इसके द्वारा चारों फल प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार सुषुम्ना प्राण वायु न रहनेसे इड़ा, पिंगलाका कार्य नहीं हो सकता उसी प्रकार षड्ज न रहनेसे मध्यम, पंचम आदि स्वरोंका व्यवहार नहीं हो सकता। इसलिए षड्जका निश्चय करना और उससे छ स्वरोंका ज्ञान और अभ्यास करना सबसे अधिक आवश्यक है। इन्हीं ७ स्वरोंके आधारपर मूर्च्छना आदि विषयोंकी सृष्टि हुई है। रचना कौशलके द्वारा इसको सजानेसे और इसमें पदोंकी योजना करके कण्ठसे गान और वाद्ययंत्रोंसे वादन करनेसे संगीत होता है। नृत्य भी इसका एक अंग है। शिव-पार्वतीने पहले नृत्य करते करते स्वर और रागकी सृष्टि की और संगीत किया यह पहले ही कहाजा चुका है। आजकल योगनृत्य प्रायः लुप्त हो गया है। इसीको नादोपासना कहते हैं। प्राचीन गीतोंसे प्रतीत होता है कि इसका प्रयोग आरम्भमें भगवान्की आराधना में ही और सात्विक भावसे होता था। धीरे धीरे इसका रूप परिवर्त्तित हो गया है और ख्याल, टप्पा, ठुमरी, ग़ज़ल आदि उत्पन्न हुए हैं। यह भी एक प्रकारकी नादोपासना कही जा सकती है परन्तु इसमें राजसिक और तामसिक भाव ही अधिक दिखाई पड़ते हैं। मूल अथवा आदि ग्रन्थ आजकल कोई भी नहीं मिलता और जो कुछ मिलता है वह भी भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न टीकाकारों के बनाये हुए हैं। परन्तु सबके सब नाद ही को आदि मानकर शिव शक्ति के संयोगसे संगीतकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

श्रुति और स्वर

नादसे श्रुति और श्रुतिसे स्वरकी उत्पत्ति हुई है। अणु-परमाणुओंकी जिस समष्टिसे आकाश बना है उसके कम्पनसे नादकी उत्पत्ति हुई है। एकाधिक नादके प्रकम्पनसे अनुरणन होता है और चूँकि एकाधिक अनुरणन सुना जा सकता है इसलिए उसे श्रुति कहते हैं। कई श्रुतियोंकी समष्टिको स्वर कहते हैं। सब स्वरोंको यंत्र अथवा कंठके द्वारा प्रकाश करना असम्भव है इसलिए उन स्वरोंको जिनका व्यवहार सहज है संगीतका आदि अथवा मूल स्वर मानते हैं। ये ७ हैं, यथा—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। इनकी संज्ञा क्रमशः स र ग म प ध और न हैं। गानेके समय र और न को रि और नि उच्चारण करते हैं। इन सातों स्वरोंके किसी दोके बीचमें जिन नादोंका अनुरणन होता है अर्थात् एक स्वरसे द्वितीय स्वरतक उच्चारण करनेमें जो आंशिक स्वर कंठ अथवा यंत्रमें निहित रहते हैं वे भी संगीत शास्त्रमें श्रुति कहलाते हैं। ये आंशिक स्वर (पर्याय) गानेके समय स्पष्ट रूपसे यद्यपि प्रकाशित नहीं होते परन्तु जिन लोगोंको संगीतमें विशेष ज्ञान है, उनके कानोंमें और वाद्य यंत्रोंमें (वीणा आदिमें) प्रतीत होते हैं।

संगीतरत्नाकर ग्रन्थमें लिखा है—"रंजयति यस्मात् श्रोतृचित्तं तस्मात् सस्वरः इतिनिरुक्तिः।" अपि च "स्वयं हि राजते यस्मात् तस्मात् स्वर इति स्मृतः।" इससे मालूम होता है कि स्वरमें स्निग्धत्व गुण न रहनेसे अनुरणनहीन प्रतीत होता है और उससे रंजकक्रिया नहीं हो सकती। श्रुति अथवा अनुरणनयुक्त स्वरके व्यवहार करनेसे स्निग्ध अथवा मधुर भाव उत्पन्न होता है। किसी किसी संगीत ग्रन्थमें लिखा है कि नासिका कंठ, हृदय, तालु, जिह्वा और दंत इन ६ स्थानोंसे नाभिस्थ वायु आहत होकर उच्चारित होता है इसलिए इसको षड्ज कहते हैं। नाभिसे वायु उत्थित होकर कंठ और शीर्षमें आहत होकर ऋषभकी सी ध्वनि पैदा होती है इसलिए उसे ऋषभ कहते हैं। इसी प्रकार और और स्वरोंकी उत्पत्तिके विषयमें जो बातें इन ग्रन्थोंमें लिखी हैं उनसे हम लोगोंका कोई काम नहीं निकलता। कदाचित योगियोंको इन बातोंसे अपने साधनमें सहायता मिल सकती होगी। स्वरोंके नामके विषयमें गुरुके पास हम लोगोंकी जो शिक्षा प्राप्त हुई है वह यह है—सप्त

स्वरके पहले स्वरसे बाकी छ स्वर क्रमशः निकलते हैं इसीलिए उसको षड्ज कहते हैं। सप्त स्वरके प्रथमार्द्ध स र ग म के चार स्वरोंमें द्वितीय स्वर उसी प्रकार बलवान है जैसे कि गाभीदलमें वृषभ। इसीलिए गोपालक आर्य ऋषियोंने उसका नाम ऋषभ रखा है। षड्ज स्वरमें तृतीय स्वरका स्वरूप स्वयं प्रकाशित अथवा झंकृत होता है इसलिए उसे गांधार (झंकार अथवा गंकार) कहते हैं। सप्तस्वरके बीचके अर्थात् मध्यम और पंचम स्थानके स्वरोंको मध्यम और पंचम कहते हैं। प्रथमार्द्धमें जैसा ऋषभ वैसा ही द्वितीयार्द्ध, प ध न स, में धैवत स्वर बलवान् है। षड्जके अनुवर्त्ती सातों स्वरोंके शेष स्वरको निषाद कहते हैं। सप्त स्वरोंका अर्थ चाहे कुछ भी हो संगीतक्रियामें उनका प्रयोग ठीक ठीक होना चाहिए। चाहे जिस विधिसे चलें, अपना लक्ष्य स्थिर रखके साधना करनेसे उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। यही गुरुमुखी शिक्षा का प्रथम सोपान है। शिष्योंको चाहिए कि गुरुके समीप बैठकर स्वरकी साधना करें। ऐसा करनेसे धीरे धीरे स्वरका ठीक ठीक बोध हो जायगा। प्राचीन गुरुओंसे सुना है कि एक हो स्वरको एक हज़ार बार साधना करनेसे उसका स्वरूप मालूम होता है। और इसी प्रकार किसी एक गीतको एक हज़ार बार साधना करनेसे उस रागकी मूर्त्ति अथवा छाया दिखाई देती है। आजकल इस प्रकारकी साधना किसीको रुचती नहीं। हरमोनियमकी सहायतासे स्वरकी शिक्षा और साधना करते हुए आज कल लोग दिखाई पड़ते हैं। सातों स्वरोंके बीचमें जितने अनुरणन होते हैं उनको संगीतशास्त्रमें यद्यपि श्रुति कहते हैं परन्तु उनमेंसे जिनको कंठ अथवा यंत्रमें स्थापित कर सकते हैं संगीतके आचार्योंने उनके भिन्न भिन्न नाम रक्खे हैं। स और प को अचल अथवा (Standard) कहते हैं और र ग म ध और न इनमेंसे हर एकके चार चार पर्याय मान लिये हैं, यथा अति कोमल, कोमल, तीव्र और अतितीव्र। इससे यही मालूम होता है कि हमारे संगीतशास्त्र में सब मिलाकर २२ श्रुतियोंका व्यवहार किया जाता है। कोई कोई कहते हैं कि अति कोमल और अतितीव्र स्वर हो नहीं सकता। परन्तु मैंने मुसलमान तंत्रकारोंसे यह स्वर सुना है और कुछ सीखा है। वे कहते हैं कि हमने हनुमन्त मत के अनुसार इन स्वरोंकी शिक्षा पाई है। पारिजात ग्रन्थकर्त्ता पंडित अहोबल शास्त्रीने भी अनेक स्थानपर हनुमन्त मतके अनुसार इन स्वरोंको लिपिबद्ध किया है। इस ग्रन्थमें लिखा है कि "पूर्वकोमल तीव्रश्च तथा तीव्रतरेणच। अतितीव्रतमेनैव सर्वेरागा उदीरिताः ॥" प्राचीन हिन्दुस्तानी नियमके अनुसार स्वर स्थापना इसी प्रकार होती है।

बाइसों स्वरोंका व्यवहार करना कठिन है इसलिए लोग १२ स्वरोंका व्यवहार करते हैं। यथा—षड्ज, (अचल), ऋषभ कोमल और तीव्र, गान्धार कोमल और तीव्र, मध्यम कोमल और तीव्र, पंचम (अचल), धैवत कोमल और तीव्र, निषाद कोमल और तीव्र। परन्तु इन सबका मूल सप्तस्वर हैं। और इन सातों स्वरोंके प्रस्तारसे राग-रूप अथवा राग-रंग प्रकट करनेका कौशल देखा जाता है। संगीतशास्त्रमें ऐसे कौशल अनेक प्रकार के हैं परन्तु उनमेंसे मूर्च्छना, तान, और अलंकार यहीतीन प्रधान हैं। ये पृथक् होते हुए भी तुल्यार्थ बोधक हैं। मूर्च्छनाके माने हैं संक्षेप करना और तानका विस्तार करना। तान और मूर्च्छनासे अलंकार बनता है। यह सबके सब स्वरके काम हैं।

शिक्षार्थीको पहले पहल इन्हीं तीन विषयोंका साधन करना कर्त्तव्य है। इनमेंसे चाहे जिसको वह अभ्यास कर सकते हैं परन्तु सबसे पहले स्वर अर्थात् षड्जका निश्चय करना उनका कर्त्तव्य है। उसके बाद साधनाके द्वारा और और विषयोंकी ओर बढ़ना चाहिए।

मूर्च्छना*

पहले षड़जके निश्चय होनेसे ऋषभ आदि छओं स्वरोंका क्रमोच्चारण (उच्च भावसे) स्वभावतः प्रतीत होता है और इसीको "आरोहण" कहते हैं। इसके विपरीत क्रमको (निम्नभावसे) "अवरोहण" कहते हैं। शिक्षार्थीका कर्त्तव्य है कि इन स्वरोंकी शिक्षा व अभ्यास किसी तंत्रकार अथवा गायकके समीप करें, न कि अन्य किसी उपायसे। आरोहावरोह क्रमयुक्त सप्तस्वर को मूर्च्छना कहते हैं। प्रायः संगीत पुस्तकोंमें "स र ग म प ध न स— स न ध प म ग र स" इस क्रमको मूर्च्छना कहा गया है परन्तु वास्तवमें यह केवल सप्तस्वरोंका आरोहण और सप्तस्वरोंका आवरोहण ही है, न कि आरोहावरोह क्रमयुक्त सप्तस्वर। सप्तस्वरोंका आरोहांश म प ध न और अवरोहांश म ग र स है। मध्यम स्वर दोनों अंशोंमें होनेके कारण उसको एक ही बार रखनेसे और दोनों अंशोंको एकत्र करनेसे सप्तस्वर स र ग म प ध न होता है और आरोहावरोह क्रमयुक्त भी होता है। केवल यही नहीं परन्तु इस प्रकारसे मूर्च्छनाका साधन करनेसे निम्न और उच्च 'मन्द्रतार' सप्तकोंका ठीक ठीक बोध व ज्ञान होता है अर्थात् आरोहणांश (म प ध न) में स' र' ग' मिला देनेसे उच्च सप्तक और अवरोहणांश (म ग र स) में नं धं पं मिला देनेसे निम्नसप्तकका बोध होता है। इसी प्रकार मूर्च्छनाके विचारही से वीणादि यंत्रोंकी सृष्टि हुई है। पहले त्रितंत्रीका व्यवहार था फिर धीरे धीरे बहुतंत्रीयुक्त यंत्रोंका व्यवहार होने लगा। अब देखते हैं कि संगीतमें भी भावका परिवर्त्तन और यथेच्छाचार आ गया है।*

मूर्च्छनाके अभ्यास करनेसे मीड़का ज्ञान होता है। कंठमें एक स्वर को अव्यक्त रखकर उसके परवर्त्ती अथवा पूर्ववर्त्ती स्वरके उच्चारणको मीड़ कहते हैं। तारके यंत्रमें इसको आकर्षणान्तर आघात और आघातान्तर आकर्षण कहते हैं। जैसे प म ग अथवा प ग के उच्चारण करनेके लिए पंचम स्वर कंठमें अव्यक्त रहता है फिर ग व्यक्त होता है अथवा तारके यंत्रमें गान्धारके स्थानपर आकर्षण करके पंचम स्वरको निकालकर गान्धारमें स्थित और गान्धार स्थानपर आघात

*इसके सम्बन्धमें संगीतरत्नाकर ग्रन्थकी मतंग और भरतकी टीकाओंको देखनेसे यथार्थ ज्ञान होगा। पूना निवासी पं० अन्ना पुरुषोत्तम घारपुरे जीका भी यही मत है।

आरोहावरोहेन क्रमेण स्वरसप्तकम्।
मूर्च्छना शब्द वाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः॥

—संगीत पारिजात

*प्राचीनकालमें भिन्न भिन्न प्रकारके वीणादि यंत्रोंकी सहायतासे संगीत होता था। और ध्रुपदको छोड़कर और किसी प्रकारका गाना रुचिविरुद्ध समझा जाता था। धीरे धीरे सितार, एसरार इत्यादिका व्यवहार और ख्याल, टप्पा, ठुमरी, गजल, इत्यादि गानोंका प्रचार होगया। केवल ध्रुपद को सम्मान दिखानेके लिए ख्याल टप्पा गानेके पहिले थोड़ी सी आलाप और दो एक ध्रुपदका स्थायी गाते हैं। कोई अच्छे सितारी हों तो सितार हीके आलापसे रागका विस्तार दिखाते हैं। परन्तु उनको वीणकार नहीं कह सकते। वीणाका काम और ही प्रकारका है और इसीलिए वीणाकारोंको तंत्रकार कहते हैं। तंत्रकार आलाप ध्रुपद ख्याल, टप्पा आदि सब प्रकारकी शिक्षा दे सकते हैं। परन्तु आजकल कुछ विपरीत ही नियम दिखलाई देता है अर्थात् जो सितारी हैं वे अपनेको ध्रुपदी कहते हैं और ध्रुपदकी शिक्षा भी देते हैं। सुनने में आता है कि बनारसके स्वर्गीय महेशचन्द्र-सरकार महाशयजीकी वीणाको सुनकर प्रसिद्ध वीणाकार बन्दे अलीखाँ ने उसको "सितारकी तालीम" कहा था। महेश बाबूने नामी सितारी बाजपेयीजी के पास वीणावादन सीखा था। फिर खाँ साहबोंसे उपदेश लेकर वीणाका हाथ तैय्यार किया था। अमीर खुसरो, अदारंग, सदारंग, आदि गुणी ख्याली थे और सितार बजाते थे। इन्होंने ध्रुपदकी भी रचनाकी है परन्तु ये ध्रुपदी नहीं हो सके थे। इनके रचित ध्रुपदमें और उनके पहलेके ध्रुपद में बहुत भेद दिखाई पड़ता है।

करके पंचम स्वरतक आकर्षण करना। इसीको अनुलोम (आघातान्तर आकर्षण) और विलोम (आकर्षणान्तर आघात) कहते हैं।

मूर्च्छना कुल ६३ हैं और उनमें प्रधान ७ हैं। चित्र ४ देखिये।

सप्तस्वरके आरोहण और सप्तस्वरके अवरोहणके क्रमको मूर्च्छना प्रस्तार कहते हैं। इसके शुद्ध व मिश्र दो भाग हैं और फिर शुद्धके ३ और मिश्रके ६ भाग होते हैं। और ये ही रागोंके मूल अथवा हेतु हैं। चाहे कोई भी राग गाया या बजाया जाय उसका परिचय इन १२ प्रस्तारोंमें किसी न किसीमें पाया जायगा।

१ शुद्ध ओड़व १५ } कोमल मिलानेसे
२ शुद्ध षाड़व ६ } बहुत होते हैं।

३ शुद्ध सम्पूर्ण १ कोमल मिलानेसे ३१
४ मिश्र ओड़वौड़व २१०
५ " ओड़व षाड़व ६०
६ " ओड़व सम्पूर्ण १५
७ " षाड़वौड़व ६०
८ " षाड़वषाड़व ३०
९ " षाड़व सम्पूर्ण ६
१० " सम्पूर्णौड़व १५
११ " सम्पूर्ण षाड़व ६
१२ " संपूर्ण १ कोमल मिलाने से ३२

विस्तारित विवरणके लिए देखिये चित्र ५।

दृष्टान्त स्वरूप दो चार रागोंके ठाठ नीचे दिये गये हैं—

शुद्धोड़व

मा न हीन, भूपाली स र ग प ध विभाष स रा ग प धा

र प हीन, हिंडोल स ग म ध न मालकोष स गा मा धा ना

र ध हीन, मालश्री स ग म प न पलश्री स गा मा प ना

ग न हीन सामन्त स र मा प ध गुणकेली स रा मा प धा

म ध हीन, हंसध्वनि स र गा प ना दुर्गा स र ग प न

र न हीन, नागध्वनि स गा मा प धा

ग प हीन पुलिन्दिका स र मा ध ना

ग ध हीन, सारंग स र मा प न

शुद्ध षाड़व

र हीन, टंक स गा म प ध ना

ग हीन, मेघ स र मा मप ना—इस ठाटमें गौड़ भी गाते हैं

म हीन, देशकार स र ग प ध न
धवलश्री स रा ग प धा न

प हीन, ललित स रा ग मा म धा न
पुरिया, मारुवा स रा ग म धा न
सोहिनी स रा ग मा ध न

ध हीन, तिलक स र ग मा प न
कुमारी स रा ग म प न

न हीन, मेघनाद स र ग मा प ध
मालवी स र गा मा प धा

पूनानिवासी अन्ना साहब ने टंक, जेतक, कुमारी, मेघनाद और मालवी राग मुझे सुनाया था। परन्तु समयाभावके कारण मैं भली भाँति सीख नहीं पाया।

शुद्ध सम्पूर्ण कुल ३१ हैं। उनमेंसे प्रथम तीव्र स र ग म प ध न यह शुद्ध कल्याणका ठाट है और शेष कोमल स रा गा मा प धा ना मह भैरवी का ठाट है। रा गा मा धा और ना इन पाँचोंके योगसे पाँच मेल होते हैं। उनमेंसे दोका नाम मुझे मालूम है। मा के योगसे बेलावल और ना के योगसे हरश्रृंगार। दो कोमलके योगसे १० मेल होते हैं। उनमें रा धा से श्री, पुरवी और धनाश्री और मा नासे झिंझिट हुआ है। तीन कोमलके योगसे ६ मेल होते हैं। उनमें रा गा धा से बिलासखानी टोड़ी; गा मा नासे सिन्धु, बागश्री; रा मा धासे भैरव, रामकेली, गौरी हुए हैं। चार कोमलके योगसे ५ मेल होते हैं जिनमें रा गा धा नासे बहादुरी टोड़ी; रा मा धा नासे जोगिया (योगिया);

गा मा धा नासे दरबारी कानड़ा हुए हैं। शुद्ध सम्पूर्ण रागोंके यही ३१ मेल होते हैं। और इन्हीं सम्पूर्णोंको षाड़व अथवा ओड़व कर सकते हैं। जैसा कल्याण मेल (स र ग म प ध न) से "र प" गिरा देनेसे हिंडोल रागका ठाट (स ग म ध न) होता है; "र ध" गिरा देनेसे मालश्रीका ठाट (स ग म प न), "म न" गिरा देनेसे भूपालीका ठाट (स र ग प ध) होते हैं। भैरव मेल (स रा ग मा प धा न) मेंसे "म न" निकाल देनेसे विभाष रागका ठाट होता है। भैरवी मेल (स रा गा मा प धा ना) मेंसे "र प" निकाल देनेसे मालकोष रागका ठाट बन जाता है। इसी प्रकार ग गिरा देनेसे गौड़, मेघ; प निकाल देनेसे मारूवा, ललित, पुरिया हो जाते हैं। मिश्र मेलसे भी बहुतसे रागोंका विस्तार हो सकता है। और इसी प्रकार प्रस्तारके द्वारा दिन और रातके रागोंका भेद माना गया है।

स र ग मा प ध न (यमन बेलावल) दिनका कल्याण
स र ग म प ध न (शुद्ध कल्याण) रातका कल्याण
स रा ग मा प धा न (दिनका) भैरव
स रा ग म प धा न (सन्ध्याकी) श्री
स र गा मा प ध ना (सिन्धु) (दिनका) कानड़ा
स र गा मा प ध ना (रातकी) बागश्री

इसी प्रकार दिनमें असावरी रातमें दरबारी कानड़ा, दिनमें गौड़ सारंग रातमें विहाग, दिनमें सुहा, सुघराई और रातमें अाड़ाना समझना चाहिये।

स्वर प्रस्तार अथवा तान

सप्तस्वरोंको हर एक प्रकारसे विस्तार करनेसे ५०४० सम्पूर्ण तान होते हैं और इसी प्रकार छ स्वरोंके ७२० षाड़व तान, पाँच स्वरोंके १२० ओड़व तान, चार स्वरोंके २४, तीन स्वरोंके ६, दो स्वरोंके २ और एक स्वरका १ होता है। एक और दो स्वरसे तान नहीं होता। तीन और चार स्वरसे खंड तान होता है। पाँच, छ और सात स्वरसे ओड़व, षाड़व और सम्पूर्ण तान होते हैं। जिस प्रकार राग तीन जातिके होते हैं इसी प्रकार तान भी तीन श्रेणीके होते हैं। तान दो प्रकार होते हैं, शुद्ध तान और कूट तान। शुद्ध तानमें कूट तान निहित है। सप्तकोष्ठमें उसको श्रेणीबद्ध करना पड़ता है और एक ही तान दो बार किसी कोष्ठमें न आवे इसका विचार रखना चाहिए, इसीको कूट तान कहते हैं। अन्ना साहब ने मुझे यह उपदेश व संकेत बतलाया है। देखिये चित्र ६।

मूर्च्छनालंकार व वर्णालंकार

पहले कह चुके हैं कि सप्तस्वरोंके उच्चारणसे उनका क्रमोच्च भाव समझमें आ जाता है। और इसके विपरीत करनेसे निम्नक्रम भी समझमें आ सकता है। और इसीको आरोहण व अवरोहण कहते हैं। पहले ही सातों स्वरोंका आरोहण न करके यदि स्वरके स्थितिकालको दीर्घ उच्चारण करें तो उसे स्थायी वर्ण कहते हैं; फिर उसके बाद आरोहण और अवरोहण आना चाहिए। इन दोनोंके मेलसे संचारी वर्ण होता है। आलापमें यही चार वर्ण प्रयोग किये जाते हैं। मुख्य वर्णालंकार ३६ हैं। इन अलंकारोंके व्यवहारसे नाना प्रकारके छन्द व ताल बनते हैं। देखिये चित्र ७।

गुरुके समीप छ ऋतुओंमें छ रागोंके गानेका नियम जो हमने सीखा है वह नीचेके दो चित्रोंमें दिखाया गया है।
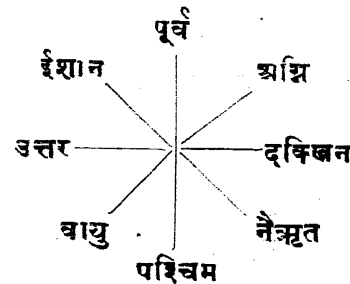
संख्या	पंचवक्त्र	योगिनीतंत्र		लिंगार्चनतंत्र		महेशचंद्र सरकार की किताब		उपासना पद्धति		स्वर
		राग	दिशा	राग	दिशा	राग	दिशा	राग	दिशा	
१	सद्योजात	श्री	पूर्व	श्री	पश्चिम	मेघ	ऊर्ध्व	श्री	पश्चिम	निषाद
२	वामदेव	वसन्त	पश्चिम	हिंडोल	उत्तर	दीपक	पूर्व	हिंडोल	उत्तर	गान्धार
३	अघोर	भैरव	उत्तर	भैरव	दक्षिण	भरव	दक्षिण	भैरव	दक्षिण	मध्यम
४	तत्पुरुष	पंचम	दक्षिण	दीपक	पूर्व	श्री	पश्चिम	दीपक	पूर्व	धैवत
५	ईशान	मेघ	ऊर्ध्व	मेघ	ऊर्ध्व	हिंडोल	उत्तर	मेघ	ऊर्ध्व	ऋषभ
६	पार्वती	नट-नारायण	—	माल-कोष	—	माल-कोष	—	माल-कोष	—	पंचम

राग		रागके अनुसार गानेके ऋतु व समय (दिन और रात)			ऋतुके अनुसार गानेके राग व समय (दिन और रात)			शिव पार्वतीके मुख निसृत राग		जाति	ठाट
नाम	गुण	ऋतु	मास	समय	काल	ऋतु	समय	पञ्चानन	राग		
मेघ	रज	वर्षा	श्रावण भाद्र	रात्रि तृतीय १० दंड	अपराह्न	वर्षा	दिनके तृतीय १० दंड	ऊर्ध्व	मेघ	शुद्ध षाड़व	स र मा प ध नां
भैरव	सत्व	शरत्	आश्विन कार्त्तिक	दिनके प्रथम १० दंड	प्रदोष	शरत्	रात्रिके प्रथम १० दंड	दक्षिण	भैरव	शुद्ध सम्पूर्ण	स रा गमा पधान
हिंडोल	तम	हेमन्त	अग्रहायण पौष	रात्रिके प्रथम १० दंड	अर्द्ध-रात्रि	हेमन्त	रात्रिके द्वितीय १० दंड	उत्तर	हिंडोल	शुद्ध औड़व	स ग म ध न
माल-कोष	सत्व	शिशिर	माघ फाल्गुन	दिनकेद्वितीय १० दंड	शेष-रात्रि	शिशिर	रात्रिके तृतीय १० दंड	पार्वती	माल-कोष	शुद्ध औड़व	स गा मा धा ना
दीपक	तम	बसन्त	चैत्र वैशाख	रात्रिके द्विती-य १० दंड	पूर्वाह्न	बसन्त	दिनके प्रथम १० दंड	पूर्व	दीपक	*	अप्रचलित
श्री	रज	ग्रीष्म	ज्येष्ठ आषाढ़	दिनके तृतीय १० दंड	मध्याह्न	ग्रीष्म	दिनके द्वितीय १० दंड	पश्चिम	श्री	शुद्ध सम्पूर्ण	स रा ग म पधान

*संगीत पारिजातके मतसे दीपक "मा न" हीन औड़व जातीय है। किसी किसीका मत है कि यह मिश्र षाड़व है अर्थात् आरोहणमें ऋषभ और अवरोहणमें निषाद वर्जित है।

परमाणु वाद

(ले० श्रीसत्यप्रकाश बी० एस० सी० विशारद)

निश्चित अनुपात का सिद्धान्त

थम अध्यायमें तत्वों तथा उनके संकेतोंका कुछ परिचय कराया गया है। यह भी बताया जा चुका है कि कई तत्वों से मिलकर एक यौगिक बनता है। जब हम सैन्धकम् को हरिन् में जलाते हैं तो हमको एक सफेद चूर्ण सा पदार्थ मिलता है। जब समुद्रका पानी औटाया जाता है तब भी इसी प्रकारका चूर्ण प्राप्त होता है। ये दोनों चूर्ण नमकीन होते हैं और पानीमें एक ही प्रकारसे घुलते हैं। इन दोनों-के यदि रवे बनाये जावें तो उनकी आकृति भी एकसी होगी। गुरुत्व आदि अन्य जितने भी गुण हैं, वे सब इन दोनों पदार्थोंमें एक से होंगे। अतः यह कहा जासकता है कि दोनों पदार्थ एक ही हैं, और समुद्रके जलसे प्राप्त चूर्ण भी सैन्धकम् और हरिन्से मिलकर बना है। इस पदार्थको साधारणतया हम नमक कहते हैं पर रसायन शास्त्रके शब्दोंमें इसे सैन्धक हरिद कह सकते हैं क्योंकि इसमें सैन्धकम् और हरिन् नामक दो तत्व हैं।

दोनों प्रकारके उक्तचूर्णों का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि दोनोंमें सैन्धकम् और हरिन् तत्वोंकी मात्राका अनुपात एक ही है। इनके १०० भागमें ३९.३ भाग सैन्धकम् है और ६०.७ भाग हरिन् है। चाहे कभी और कहीं क्यों न बनाया जाय, सैन्धक हरिदमें इनदोनों तत्वों का अनुपात यही रहेगा। यह कभी नहीं होसकता है कि यदि २३ भाग सैन्धकम् ३५.५ भाग हरिन्के साथ मिलकर यौगिक बनाता है तो कभी ३५ भाग सैन्धकम् ३५ भाग हरिन् से मिल जाय। इसी प्रकार यदि १६ भाग ओषजन को २ भाग उद्जनके साथ संयुक्त करें तो १८ भाग जल मिलेगा। पर यदि हम चाहें कि १० भाग ओषजन २ भाग उद्जन से संयुक्त होकर १२ भाग जल देदे तो यह असम्भव है। १२ भाग जलके बनाने के लिये हमें १०$\frac{2}{3}$ भाग ओषजन और १$\frac{1}{3}$ भाग उद्जन लेना पड़ेगा। अर्थात् पहलेके समान ओषजनका भार उद्जन के भारका ८ गुना रखना पड़ेगा। यही बात अन्य यौगिकोंके विषयमें भी है। इन सब उदाहरणों से यह सिद्धान्त निकालता है कि प्रत्येक यौगिकके तत्वोंमें एक निश्चित अनुपात रहता है।

कभी कभी यह होता है कि दो तत्व कई अनुपातोंमें संयुक्त हो सकते हैं। पर इस प्रकारके संयोग से भिन्न भिन्न यौगिक बनेंगे और इन यौगिकोंके गुण भी भिन्न होंगे। उदाहरणके लिये लोहेके टुकड़ेमें जब जंग लगता है तो लोहम् और ओषजन में संयोग होकर एक विशेष यौगिक बनता है जिसे लोहिक ओषिद कहते हैं। पर जब लोहेको ओषजनमें जलाते हैं तो एक दूसरा यौगिक बनता है जिसे लोहेका चुम्बकी-ओषिद कहते हैं। इन दोनों ओषिदों के गुण भिन्न भिन्न हैं। पहले ओषिदमें ७० प्रतिशतक लोहा और ३० प्रति शतक ओषजन है। पर दूसरे यौगिकमें ७२.४ प्रति शतक लोहा और २७.६ प्रति शतक ओषजन है। तात्पर्य्य यह है कि एक ही प्रकारके तत्वोंसे बने हुए भिन्न भिन्न यौगिकोंमें यदि तत्वोंकी मात्रा का अनुपात भिन्न भिन्न हो तो उनके गुण भी भिन्न भिन्न होंगे।

कोई कोई तत्व ऐसा होता है जो अन्य अनेक तत्वों से मिलकर यौगिक बना सकता है। ओषजन लगभग सब तत्वोंके साथ संयुक्त होकर ओषिद बनाता है। २१५ भाग पारदओषिदको गरम करनेसे हमको २०० भाग पारदम् और १६ भाग ओषजन मिलेगा। इसी प्रकार ४० भाग मगनीस-ओषिदमें २४ भाग मगनीसम् और १६ भाग ओषजन है। यदि हम ८० भाग काले ताम्रम्ओषिदमेंसे सब ताम्रम् और ओषजन अलग करलें तो हमें ६४ भाग ताम्रम् और १६ भाग ओषजन मिलेगा।

इस प्रकार इन ओषिदोंसे प्रकट होता है कि १६ भाग ओषजन से संयुक्त होनेके लिये २०० भाग पारदम्, २४ भाग मगनीसम् और ६४ भाग ताम्रम् का लेना आवश्यक है।

पारदम्	२००	मगनीसम्	२४	ताम्रम्	६४
ओषजन	१६	ओषजन	१६	ओषिजन	१६
पारदओषिद	२१६	मगनीसओ	०४०	ताम्रओषिद	८०

पारदम्, मगनीसम्, और ताम्रम्, ये तीनों पदार्थ गन्धकसे संयुक्त होकर गन्धिद भी बनाते हैं। इन गन्धिदोंकी परीक्षा करने पर एक विचित्र बात प्रकट होती है। २०० भाग पारदम् ३२ भाग गन्धक से संयुक्त होकर पारद गन्धिद बनाता है। साथ ही साथ २४ भाग मगनीसम् भी ३२ ही भाग गन्धकके संयोगसे मगनीस गन्धिद बनाता है। इसी प्रकार ६४ भाग ताम्रम् ३२ भाग गन्धक के साथ ताम्र गन्धिद बनाता है।

पारदम्	२००	मगनीसम्	२४	ताम्रम्	६४
गन्धक	३२	गन्धक	३२	गन्धक	३२
पारदगंधिद	२३२	मगनीसम् गन्धिद	५६	ताम्रम्गंधिद	९६

इसी प्रकार हरिदोंके विषय में पाया जाता है जैसा कि निम्न अङ्कों से स्पष्ट है:—

पारदम्	२००	मगनीसम्	२४	ताम्रम्	६४
हरिन्	७	हरिन्	७१	हरिन्	७१
पारद हरद	२७१	मगनीसहरिद	९५	ताम्र हरिद	१३५

इन उदाहरणोंसे पता चलता है कि यदि हम तीनों तत्त्वोंको एक निश्चित अनुपातमें लें तो हमको दूसरे तत्त्व जो तीनों से संयुक्त हो सकते हैं, एक स्थिर मात्रा में मिलते हैं। अर्थात् २०० भाग पारदम्, २४ भाग मगनीसम् या ६४ भाग ताम्रम् १६ भाग ओषजन ३२ भाग गन्धक या ७१ भाग हरिन् के साथ संयुक्त हो सकते हैं।

गुणक अनुपातका सिद्धान्त

प्रत्येक यौगिक के तत्त्वों की मात्रा का पारस्परिक अनुपात तो स्थिर रहना ही है पर यह भी बहुधा देखा गया है कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्वोंसे दो या अधिक प्रकारकी मात्रामें भी संयुक्त हो सकता है। कर्बन और ओषजनसे संयुक्त दो भिन्न गुणों वाले यौगिक पाये गये हैं। एक यौगिकके १०० भाग में ४२.८६ भाग कर्बन और ५७.१४ भाग ओषजन है। दूसरे प्रकारके यौगिकके १०० भागमें २७.२७ भाग कर्बन और ७२.७३ भाग ओषजन है। कर्बन और उदजन भी कई अनुपातोंमें संयुक्त होते हुए पाये गये हैं। एक यौगिकके १०० भागमें ८५.६८ भाग कर्बन और १४.३२ भाग उदजन है। दूसरे यौगिकके १०० भागमें ७४.९५ भाग कर्बन और २५.०५ भाग उदजन है।

	(१)	(२)
कर्बन	४२.८६	२७.२७
ओषजन	५७.१४	७२.७३
	१००.००	१००.००

	(१)	(२)
कर्बन	८५.६८	७४.९५
उदजन	१४.३२	२५.०५
	१००.००	१००.००

इन उदाहरणोंसे यह तो स्पष्ट है कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्वसे एकसे अधिक मात्रामें भी संयुक्त हो सकता है। ऊपर दी हुई संख्याओंसे कोई ऐसा सिद्धान्त प्रकट नहीं होता है जिससे दो तत्त्वोंके भिन्न भिन्न योगिकों में कोई नियम स्थापित हो सके। डाल्टन नामक वैज्ञानिकने इन संख्याओंके रूपको थोड़ासा परिवर्त्तित कर दिया, और इस प्रकार उसने उपयोगी सिद्धान्त की खोज की।

(क) कर्बन और ओषजन के एक यौगिक में:—
जब कर्बन ४२.८६ भाग है तो ओषजन ५७.१४ भागहै
∴ ,, १ ,, १.३३ ,,

दूसरे यौगिक मेंः—

" २७.२७ " ७२.७३ "

" १ " २.६६ "

इस प्रकार यदि दोनों यौगिकों में कर्बनकी मात्रा समान हो तो ओषजनकी मात्रा एक यौगिकसे दूसरेमें दुगनी है।

(ख) कर्बन और उद्जनके एक यौगिक मेंः—
जब कर्बन ८५.६८ भाग है तो उद्जन १४.३२ भाग है

∴ " १ " " ०.१६७ "

दूसरे यौगिक मेंः—

" ७४.९५ " " २५.०५ "

" १ " " ०.३३४ "

इस उदाहरणसे भी स्पष्ट है कि यदि दोनों यौगिकोंमें कर्बनकी मात्रा समान ली जाय तो उद्जनकी मात्रा एक यौगिकसे दूसरेमें दुगनी है।

इसी प्रकार नोषजन और ओषजनमें पांच प्रकारसे संयोग पाया गया है। इन पांचों यौगिकों में से प्रत्येकके १०० भागमें नोषजन और ओषजनका परिमाण निम्न प्रकार है:—

	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
नोषजन	६३.६	४६.६	३६.८	३०.४	२५.९
ओषजन	३६.४	५३.४	६३.२	६९.६	७४.१
	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०

इन पांचों यौगिकोंमें नोषजनकी मात्रा समान लेनेसे पता चलता है कि ओषजनकी मात्राओंमें एक नियम व्यापक है। नोषजन यदि एक भाग लिया जाय तो क्रमानुसार—

ओषजन—०.५७, १.१४, १.७१, २.२८, २.८५ होगा। इस प्रकार ओषजनकी संख्याओंसे प्रतीत होता है कि इनमें १: २: ३: ४: ५ का अनुपात है। इसी प्रकारके अनेक उदाहरणोंकी परीक्षा करनेके उपरान्त डाल्टन महोदयने 'गुणक-अनुपातका सिद्धान्त' निकाला कि जब दो तत्त्व संयुक्त होकर एक से अधिक यौगिक बनाते हैं और उन तत्त्वोंमें से यदि एककी मात्रा सब यौगिकोंमें स्थिर हो तो दूसरे तत्त्वकी मात्रामें गुणक अनुपात होता है।

व्युत्क्रम अनुपातका सिद्धान्त

बहुतसे तत्त्व ऐसे होते हैं कि वे दो भिन्न तत्त्वोंसे संयुक्त होकर भिन्न यौगिक बनाते हैं। उदाहरण के लिये, १ भाग उद्जन ३५.१८ भाग हरिन्से संयुक्त हो सकता है और यही एक भाग उद्जन १०.२५ भाग स्फुरसे भी संयुक्त हो सकता है। प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि स्फुर भी हरिन्से मिलकर यौगिक बनाता है। इस यौगिकके हरिन् और स्फुरमें ३५.१८ : १०.२५ का अनुपात है। हम यह कह सकते हैं कि ३५.१८ भाग हरिन् १ भाग उद्जनके तुल्य शक्तिक है, और स्फुरका १०.२५ भाग उद्जनके १ भागके तुल्य शक्तिक है। अतः यह भी कहा जा सकता है, कि ३५.१८ भाग हरिन् १०.२५ भाग स्फुरके तुल्य-शक्तिक है। इस प्रकार सिद्धान्त यह निकला कि दो तत्त्वोंकी जो मात्रायें किसी तीसरे तत्वकी किसी स्थिर मात्राके तुल्यशक्तिक होती हैं वह मात्रायें परस्परमें भी तुल्य शक्तिक होती हैं। यह बात निम्न चित्रसे स्पष्ट है : -
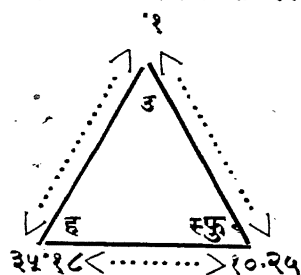
इस त्रिकोणमें उ, ह और स्फु क्रमानुसार उद्जन, हरिन् और स्फुरके संकेत हैं। चित्रमें तीर-चिह्नोंसे स्पष्ट है कि १ भाग उ १०.२१ भाग स्फुसे संयुक्त हो सकता है, १०.२५ भाग स्फु ३५.१८ भाग ह से संयुक्त हो सकता है। अर्थात् १ भाग उद्जन, ३८.१८ भाग हरिन् और १०.२५ स्फुर परस्परमें तुल्य शक्तिक हैं। रासायनिक यौगिकों के दो सिद्धान्त निश्चित अनुपात और गुणक अनुपातके अभी दिये जा चुके हैं। व्युत्क्रम

अनुपातका सिद्धान्त इस रूपमें प्रकट किया जा सकता है :—

भिन्न तत्त्वोंकी जो मात्रायें पृथक पृथक किसी अन्यतत्व की एक निश्चित मात्रासे संयुक्त हो सकती हैं, वे उन मात्राओंके समान होंगी या उनकी गुणक होंगी, जिन मात्राओंमें वे तत्व परस्पर में मिल सकते हैं।

इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। १ भाग उदजन ८ भाग ओषजन और १६ भाग गन्धकसे पृथक् पृथक् संयुक्त हो सकता है। प्रयोगसे पाया गया है कि १६ भाग गंधक १६ भाग ओषजनसे संयुक्त हो सकता है। उदजनका १ भाग ओषजनके ८ भागसे संयुक्त होता था अतः इस उदाहरणमें उदजन और ओषजनके यौगिकमें जितना ओषजन उपयुक्त होता था उसका गुणक दो गुना ओषजन गंधकके यौगिकमें लगता है।

डाल्टनका परमाणुवाद

रासायनिक यौगिकोंके उपर्युक्त तीन सिद्धान्तों को दृष्टिमें रखते हुए डाल्टन (सं० १८२३-१९०१ वि०) नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिकने अपने परमाणुवादका उद्घाटन किया। इनका सिद्धान्त रसायनशास्त्रमें सर्वोपरि विराजमान है।

परमाणुओंका विचार भारतवर्ष और यूनानमें बहुत प्राचीनकालसे प्रसिद्ध था। उसी भावका आधार लेकर डाल्टन ने परमाणुवादको प्रयोगात्मक उपयोगी रूप प्रदान किया। उसका कथन है कि प्रत्येक तत्व और प्रत्येक पदार्थ असंख्यों छोटे छोटे कणोंसे मिलकर बना है। यदि हम नमकके किसी टुकड़ेके विभाग करने आरम्भ करें तो हमें बहुत छोटे छोटे कण प्राप्त होंगे। प्रत्येक कणमें नमकके गुण होंगे। हम लिख चुके हैं कि नमक सैन्धकम् और हरिन् तत्वोंसे मिलकर बना है। अतः विभाजन करते करते एक ऐसी अवस्था आसकती है जब आगे विभाजन करनेपर नमकसे सैन्धकम और हरिन् दोनों अलग अलग हो जावें और उपलब्ध पदार्थोंमें नमकके गुण न मिलें अतः प्रत्येक यौगिकका विभाजन करके ऐसा सूक्ष्म कण मिल सकता है जिसमें फिर थोड़ा सा भी और विभाग करनेपर यौगिक का गुण न रहे। इस सूक्ष्म कणका नाम अणु है। प्रत्येक यौगिक छोटे छोटे ऐसे अणुओंसे मिलकर बना हुआ है जिसमें उस यौगिक के तत्त्व संयुक्त हैं।

इसी प्रकार इन अणुओंको भी आगे विभाजित करनेपर बहुतही छोटे कण रह जाते हैं यह माना गया है कि अणु भी कई परमाणुओं से मिलकर बने हैं। और ये परमाणु प्रकृतिकी वह सूक्ष्मतम अवस्था है जिससे रसायनज्ञोंको काम पड़ता है। नमकके एक अणुमें दो परमाणु हैं, एक सैन्धकम् और दूसरे हरिन्का इसी प्रकार जलके अणुमें तीन परमाणु होते हैं—दो उदजनके और एक ओषजनका। गन्धकाम्लमें ७ परमाणु होते हैं:—दो उदजनके, एक गन्धकका और और ४ ओषजन के।

यौगिकोंको तत्वोंके संकेतों द्वारा प्रकट करने की कुछ विधि पहले अध्यायमें लिखी जा चुकी है। यौगिकके एक अणुमें प्रत्येक तत्वके जितने परमाणु होते हैं वे तत्वोंके संकेत के समीप नीचे लिखे जाते हैं। नमक या सैन्धिकहरिदमें १ परमाणु सैन्धकम् का और एक हरिनका है। एक परमाणु बतानेके लिये कोई संख्या नहीं दी जाती। अतः जिस तत्वसंकेतके सामने कोई संख्या नहीं है वहाँ समझना चाहिये कि एक अणुमें उस तत्वका एक परमाणु है। कुछ यौगिक संकेतसूत्रों सहित लिखे जाते हैं:—

सैन्धक हरिद—	(सैह)
जल (उदौषिद)—	($उ_2ओ$)
गन्धकाम्ल—	($उ_2गओ_4$)
ताम्रहरिद—	($ताह_2$)
अमोनिया—	($नोउ_4ओउ$)
खटिककर्बनेत—	($खकओ_3$)

इस प्रकार इन संकेत सूत्रोंसे यह भी पता चल सकता है कि यौगिकके एक अणुमें कितने परमाणु हैं। इस प्रकार परमाणु वादके विषयमें डाल्टन का यह सिद्धान्त है:—

(१) प्रत्येक तत्व एक रूपके अविभाजनीय परमाणुओंसे मिलकर बना हुआ है, और प्रत्येक परमाणुकी मात्रा या भार बराबर है। यह परमाणु भार प्रत्येक तत्त्वके लिये भिन्न भिन्न है। तात्पर्य्य यह है कि सैन्धकम्के प्रत्येक परमाणुका भार आपसमें बराबर है। इसी प्रकार गन्धकके परमाणुओं का भार आपसमें बराबर है। पर गन्धकका परमाणु भार सैन्धकम् के परमाणुभारसे सर्वथा भिन्न है। जो उद्जनका परमाणु भार है वह ओषजनका नहीं और जो ओषजनका है वह हरिन्, खटिकम्, मगनीसम् आदिका नहीं।

(२) भिन्न भिन्न तत्त्वोंके परमाणुओं के संयोग से रासायनिक यौगिक बनते हैं। परमाणुओं की संख्यामें एक निश्चित अनुपात होता है। उदाहरणतः खटिक कर्बनेत एक यौगिक है जिसके अणु में एक खटिकम् का परमाणु, एक कर्बनेतका और तीन ओषजनके परमाणु होते हैं। अतः खटिक कर्बनेतका स्थिर संकेत सूत्र (खक ओ$_3$) है।

संयोग तुल्यांक निकालने की विधि

जब सैन्धकम् का टुकड़ा पानीमें डाला जाता है तो उद्जन वायव्य निकलने लगता है। इस उद्जन वायव्यको इकट्ठा करके तौला जा सकता है। प्रयोग द्वारा यह पाया गया है कि १ ग्राम उद्जन वायव्यके निकलने के लिये हमें २३ ग्राम सैन्धकम् पानीमें डालना पड़ेगा। इस प्रक्रिया को इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$\text{२उ}_2\text{ ओ} + \text{सै}_2 = \text{२ सै ओउ} + \text{उ}_2$$

इस समीकरण से यह स्पष्ट है कि सैन्धकम् के २ परमाणु उद्जनके २ परमाणुओं के स्थानापन्न होगये हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि सैन्धकम् का एक परमाणु उद्जनके एक परमाणु के तुल्य है। प्रयोग द्वारा हमें यह पता चला था कि २३ ग्राम सैन्धकम् १ ग्राम उद्जन देनेके लिये आवश्यक था। अतः इन सब बातोंसे मानना पड़ेगा कि सैन्धकम् का २३ भार उद्जन के १ भार के बराबर है। इसी बातको हम इस रूपमें कह सकते हैं कि सैन्धकम् का संयोग-तुल्यांक २३ है।

जब दस्तम् या मगनीसम् हल्के गन्धकाम्ल में घोले जाते हैं तो भी उद्जन निकलता है। प्रयोग करने पर यह विदित होता है कि १ ग्राम उद्जनके निकालने के लिये ३२·७ ग्राम दस्तम् या १२·१५ ग्राम मगनसीम् लेने की आवश्यकता पड़ेगी। अतः यह कहा जासकता है कि दस्तम् का संयोग तुल्यांक ३२·७ और मगनीगम् का संयोग तुल्यांक १२·१५ है।

संयोग तुल्यांक निकालने की दूसरी विधि इस प्रकार है। उद्जन अन्य कई तत्त्वोंके साथ मिलकर यौगिक बनाता है, अतः इन तत्त्वोंकी जितनी मात्रा एक ग्राम उद्जन से संयुक्त होजाय उतना ही उस तत्त्वका संयोग तुल्यांक समझना चाहिये जैसे पानी बनाने में १ ग्राम उद्जन के साथ ८ ग्राम ओषजन संयुक्त करने की आवश्यकता पड़ेगी। अतः यह कहा जासकता है कि ओषजन का संयोग तुल्यांक ८ है। उदहरिकाम्ल बनाने के लिये १ ग्राम उद्जन और ३५·५ ग्राम हरिन् लेना पड़ता है अतः हरिन् का संयोग तुल्यांक ३५. है।

पर बहुतसे तत्त्व ऐसे हैं जो न तो उद्जनसे साधारणतया संयुक्त ही होते हैं और न वह अम्लों के साथ आसानीसे उद्जन वायव्य ही देते हैं। इनका संयोग तुल्यांक भी निकाला जा सकता है। अभी हमने कहा है कि ओषजनका संयोगतुल्यांक ८ और हरिन्का ३५·५ है, अतः यदि यह ज्ञात हो जाय कि तत्त्वका कितना भार ८ ग्राम ओषजन या ३५·५ ग्राम हरिन्से संयुक्त हो सकता है तो यही भार संयोग-तुल्यांकका सूचक होगा, जैसे १०७·६

ग्राम रजतम् ८ ग्राम ओषजनसे संयुक्त होकर रजत ओषिद् बनाता है अतः इसका संयोग तुल्यांक १०७.६ है। खटिक हरिद बनाने के लिये ३५.५ भाग हरिन् २० भाग खटिक और लेनेकी आवश्यकता होगी। अतः खटिक का संयोग तुल्यांक २० है।

यौगिक के घोलमें विद्युत्धारा के प्रवाह करने से एक विद्युत्पटपर धातु जमा होने लगती है। यदि ऐसे दो विद्युत् घटोंमें विद्युत् की समान मात्रा प्रवाहित की जाय जिनमें भिन्न भिन्न धातु पटोंपर जमाहोते हैं तो उनकी संचित मात्रामें वही अनुपात होगा जो उनके संयोग तुल्यांकोंमें है। उदाहरणतः यदि ताम्रगन्धेतके घोलमें उतनीही विद्युत् प्रवाहित की जाय जितनी रजतहरिद्के घोलमें तो संचित ताम्रम् और रजतम् में ३१.८:१०७.८ का अनुपात पाया जायगा। रजतम् का संयोग तुल्यांक १०७.९ हैं अतः ताम्रम् का संयोग तुल्यांक ३१.८ होगा।

परमाणु भार निकालने की विधि

केवल संयोग तुल्यांक निकाल लेनेसे तत्त्वोंके परमाणु भार नहीं निकाले जा सकते हैं। अतः इसके लिये अन्य विधियां काममें लायी जाती हैं। इन विधियों का वर्णन करनेसे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि अणुभार कैसे निकालते हैं और वाष्पघनत्त्वसे इसका क्या सम्बन्ध है।

दूसरे अध्यायमें हमने ऐवोगैड्रोके वायव्य सम्बन्धी सिद्धान्त का वर्णन किया है। उसका सिद्धान्त है कि समान तापक्रम और दबावपर प्रत्येक वायव्यके बराबर आयतनमें अणुओंकी संख्या भी बराबर होती है। इस सिद्धान्तसे यह परिणाम निकालाजा सकता है कि वायव्योंके अणुभार और उनके घनत्व समानुपाती हैं। कल्पना करो कि किसी १ घन श० मी० आयतनमें 'क' वायव्य के ८ अणु हैं जिनका भार ३२ है। अतः इस वायव्य का घनत्व भी ३२ और प्रत्येक अणुका भार ४ हुआ। १ घन० श० मी० आयतन में ख वायव्यके भी ऐवोगैड्रो के सिद्धान्तके अनुसार ८ ही अणु होंगे। कल्पना करो कि इन ८ अणुओं का भार ६४ है अर्थात प्रत्येक अणु का भार ८ है। इसका घनत्व भी ६४ हुआ क्योंकि घनत्व= $\frac{\text{भार}}{\text{आयतन}}$ अतः इन अंकों से स्पष्ट है कि ख वायव्य का घनत्व क वायव्य की अपेक्षा दुगुना है, और ख का अणुभार भी क की अपेक्षा दुगना है। इससे स्पष्ट है कि वायव्योंके अणुभार और घनत्व समानुपाती हैं।

प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि जब उदजन और हरिन् बराबर आयतन में लेकर संयुक्त किये जाते हैं। तो उदहरिकाम्ल बनने पर आयतन में कोई भेद नहीं पड़ता है। थोड़ी देरके लिये यह कल्पना करलो कि उदजन और हरिन् प्रत्येकके एक अणुमें एकही परमाणु है। यदि ऐसा माना जाय तो उदहरिकाम्ल (उह) बनने पर अणुओंकी संख्या पहलेकी अपेक्षा अब आधी ही रह जवेगी क्योंकि हर एक अणुमें कमसे दो परमाणु (एक उदजन और दूसरे हरिन्का) होंगे। ऐसी अवस्था में ऐवोगैड्रो के नियमके अनुसार उदहरिकाम्ल का आयतन मूल तत्त्वोंके संयुक्त आयतन का आधा ही रह जायगा। पर प्रयोग इसके विपरीत बताता है कि आयतनमें कोई भेद नहीं पड़ता है। अतः हमारी यह कल्पना अशुद्ध ठहरती है कि उदजन और हरिन् के एक अणुमें एक परमाणु है। यदि यह मान लिया जाय कि उदजन और हरिन् के प्रत्येक अणुमें दो परमाणु हैं तो सब बात ठीक हो जावेगी। निम्न समीकरण से यह स्पष्ट है :—

उ +	ह =	उह	
१ आयतन	१ आयतन	१ आयतन	प्रयोगसे विरुद्ध
१ अणु	१ अणु	१ अणु	
$उ_2$ +	$ह_2$ =	२उह	
१ आयतन	१ आयतन	२ आयतन	प्रयोगके अनुकूल
१ अणु	१ अणु	२ अणु	

पहले समीकरण से स्पष्ट है कि यदि उद्जन और हरिन् के एक अणुमें एक परमाणु माना जावेगा तो दोनों के दो आयतन से एक आयतन ही उद्हरिकाम्ल मिलेगा पर यदि प्रत्येक अणुमें दो परमाणु मान लिये जायँ तो दो आयतन से२ आयतनही उद्हरिकाम्ल मिलता है जो प्रयोग के सर्वथा अनुकूल है।

यह कहा जा चुका है कि हरिन् का संयोग तुल्यांक ३५.५ है उद्हरिकाम्लके प्रत्येक अणुमें एक उद्जनका परमाणु एक हरिद्के परमाणुसे संयुक्त है। यदि उद्जनका परमाणु भार १ मान लिया जाय तो उद्जनका अणुभार २ होगा क्योंकि प्रत्येक अणुमें दो परमाणु हैं। दो भाग उद्जनसे संयुक्त होनेके लिये ३५.५ × २= ७१ भाग हरिन् लेना होगा अर्थात् हरिन् का अणुभार ७१ होगा। हरिन्के एक अणुमें दो परमाणु हैं अतः इसका परमाणु भार ३५.५ हुआ। अर्थात् हरिन्का परमाणु भार और संयोग तुल्यांक एक ही है।

यदि उद्जनका घनत्व १ माना जाय तो इसका अणुभार घनत्व का दुगुना होता है। अतः यदि वायव्यों के घनत्व उद्जनके घनत्व की अपेक्षासे निकाले जायँ और उन्हें दो से गुणा कर दिया जाय तो उनके अणुभार निकल आवेंगे क्योंकि एवोगैड्रोके सिद्धान्तानुसार वायव्योंके घनत्व और अणुभार समानुपाती हैं। उद्जनकी अपेक्षासे वायव्योंका जो घनत्व निकाला जाता है उसे वाष्प-घनत्व कहते हैं। इस प्रकार सिद्धान्त यह निकला कि अणुभार वाष्प-घनत्व का दुगुना होता है।

अब परमाणुभार निकालनेकी तीन विधियाँ नीचे दी जाती हैं:—

१. वाष्प घनत्वसे—वाष्प घनत्व निकालकर दोसे गुणा करके किसी वायव्य यौगिकका अणुभार निकाला जासकता है। मानलो कि नोषजनका हमें परमाणुभार निकालना है। इस कामके लिये नोषजनके कुछ यौगिक लो और वाष्प घनत्व निकाल कर उनका अणुभार निकालो। फिर यह निकालो कि उसमें नोषजनकी कितनी मात्रा है। कल्पना करो कि नोषजनका यौगिक अमोनिया वायव्य लिया। प्रयोगसे इसका वाष्पघनत्व ८.५ निकला। अतः अणुभार ८.५ × २=१७ हुआ। प्रयोगसे यहभी पता चला कि इसमें ८२ प्रतिशतक नोषजन है।

अतः १७ भाग अमोनियामें $\frac{८२ \times १६}{१००}$ =१४ भाग नोषजन है। इसी प्रकार नोषजनके अन्य यौगिकों को लो। निम्न अंकोंसे यह स्पष्ट है—

यौगिक—	नोषजन	अमोनिया
अणुभार—	२८	१७
नोषजनका अणुअनुपात—	२८	१४

अमोनिया	नोषसओषिद	परओषिद	शैलनोषिद
१०	४४	४६	९८.६
१४	२८	१४	४२

इन अङ्कोंसे यह स्पष्ट है कि नोषजनका अणुपात १४ से कभी कम नहीं पाया गया है। और जितने अणुअनुपात हैं वह इस १४ के ही गुणक हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि नोषजनका परमाणुभार १४ है। कमसे कम इतना तो निश्चित है कि १४ से अधिक नहीं होसकता है और जब तक किसी यौगिक में १४ से कम अणुअनुपात न मिले तब तक नोषजन का परमाणुभार १४ मानने में कोई हानि नहीं है।

२. आपेक्षिक तापसे—वाष्पघनत्व उन्हीं यौगिकों का निकाला जासकता है जो वायव्य रूपमें परिणत किये जासकते हैं। ठोस तत्वोंके परमाणुभार निकालनेकी विधि अति उपयोगी प्रमाणित हुई है। इस विधि में यह आवश्यक है कि ठोस तत्व का आपेक्षिकताप ज्ञात कर लिया जाय। डूलङ्ग और पेटीट नामक वैज्ञानिकोंने यह उपयोगी सिद्धान्त निकाला है कि 'ठोस तत्वके आपेक्षिकतापको यदि उसके परमाणुभारसे गुणाकर दिया जाय तो गुणनफल सदा ६.४ के लगभग आवेगा। इस गुणन फलको

परमाणु ताप कहते हैं। निम्न सारिणीसे यह बात स्पष्ट है।

तत्व	प परमाणुभार	आपेक्षिक ताप	प × त परमाणुताप
स्फटम्	२७.१	०.०२१६	५.६
दस्तम्	६५.४	०.०९४	६.१
सञ्जीणम्	७०.०	०.०८३	६.२
वङ्गम	११८.७	०.०५५	६.५
आञ्जनम्	१२०°.२	०.०५०	६.०
पारदम्	२००°.६	०.०३२	६.४
सीस	२०७.२	०.०३१	६.४
विशद	२०८.०	०.०३०	६.२

इस प्रकार यदि आपेक्षिक ताप निकाल लिया जाय और ६.४ को इससे भाग दे दिया जाय तो परमाणु भारका पता चल जायगा। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रकार करनेसे ठीक ठीक परमाणु भार नहीं निकाला जा सकता है। केवल कुछ अनुमान ही लग सकेगा क्योंकि ऊपर दिये हुए अंकोंसे स्पष्ट है कि परमाणु ताप ठीक ६.४ ही नहीं होता है। अतः ठीक ठीक परमाणुभार जानने के लिये संयोग तुल्यांकका निकालना आवश्यक है। संयोग तुल्यांकका कौनसा गुणक लेना चाहिये यह बात आपेक्षिक ताप निकालकर पता लग सकती है। इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

उदाहरण—१ मगनीसम्का आपेक्षिक ताप ०.२५ है तो परमाणु भार कितना होगा ?

$$\text{परमाणु भार} = \frac{६.४}{०.२५} = २५.६$$

मगनीसम्का संयोग तुल्यांक १२.१६ है। योग तुल्यांकको २ से गुणा करनेसे गुणन फल २५.६ के अधिक निकट आ जाता है अतः इसका परमाणु भार २४.३२ है।

२—पर रौप्यम का आपेक्षिक ताप ०.०३२ है अतः

$$\text{इसका परमाणु भार} = \frac{६.४}{०.०३२} = २०० \text{ हुआ।}$$

प्रयोग द्वारा पता चलता है कि ४८.८ भाग पर रौप्यम् ३५.५ भाग हरिन्से संयुक्त होता है। अर्थात् इसका संयोग तुल्यांक ४८.८ है। इसको ४ से गुणा करने पर गुणन फल २०० के अधिक निकट आ जाता है। अतः पररौप्यम्का परमाणु भार ४८.८ × ४=१९५.२ है।

बहुतसे तत्व ऐसे हैं जिनका परमाणुताप सामान्य तापक्रम पर ६.४ से बहुत ही कम हैं। पर यदि तापक्रम बढ़ा दिया जाय तो परमाणु ताप उपर्युक्त अंकके बहुत निकट पहुँच जाता है। यह तत्व डूलंग और पेटीटके नियमके अपवाद कहे जा सकते हैं। निम्न अकोंके यह बात स्पष्ट है—

तत्व	परमाणुभार	तापक्रम	आपे० ताप	परमाणु ताप	तापक्रम	आपे० ताप	पर० ताप
टंकम्	११	५०°	०.३०७	३.४	रक्त तप्त	०.५०	५.५
हीरा }	१२	५०°	०.१४६	१.८	९८५°	०.४५९	५.५
लेखनिक }	१२	५०°	०.१९०	२.३	९८५°	०.४६७	५.६
शैल	२८.३	५५°	०.१७३	४.९	२३२°	०.२०३	५.७

३—समाकृतित्व के सिद्धान्त से—रवों की परीक्षा करने पर एक उपयोगी सिद्धान्त निकला है। पांशुज स्फट फिटकरी के रवे और पांशुज-राग फिटकरी के रवे एक ही आकृतिके होते हैं। इन्हे समाकृत कहसकते हैं। मानलो कि हमें रागम् का संयोगतुल्यांक तो मालूम है पर इसका परमाणुभार नहीं मालूम, स्फटम् के संयोगतुल्यांक और परमाणुभार दोनों ज्ञात हैं। पांशुज-स्फट फिटकरी और पांशुज-राग-फिटकारी दोनों के संगठनमें कोई भेद नहीं है, केवल स्फटम्के स्थान में राग तत्व आ गया है। दोनों के रवे समाकृत हैं। स्फुटके संयोग तुल्यांकको ३ से गुणा करनेसे इसका परमाणुभार निकल आता है। अतः रागढ़के संयोगतुल्यांक को भी यदि इसे गुणाकरदें तो इसका परमाणुभार निकल आवेगा। इस समाकृतित्व के सिद्धान्तका सबसे पहले मि॰ शरलिचने उद्घाटन किया था। नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें तत्त्वोंके नाम संकेत और परमाणुभार दिये गये हैं। अधिक उपयोगी तत्त्व मोटे टाइप में हैं।

तत्त्व	संकेत	परमाणु भार
अन्यजन	अ	१३०·२
अरुणित	रु	७९·९२
आञ्जनम्	आ	१२०·२
आलसीम्	ल	३९·८८
इन्द्रम्	इ	११३·१
उद्जन	उ	१·००८
एरबम्	ए	१६७·७
ओषजन	ओ	१६·००
ओड्रम्	ड्	१०२·९
कर्बन	क	१२·००५
कोबल्टम	को	५८·९७
कौलम्बम्	कौ	९३·१
खटिकम्	ख	४०·०७
गन्दलम्	गं	१५७·३
गन्धक	ग	३२·०६
गालम्	गा	७०·१
गुप्तम्	गु	८२·९२
जर्मनम्	ज	७२·५
ज़िरकुनम्	ज़ि	९०·६
टंकम्	टं	१०·९
टरबम्	ट	१५९·२
टिटेनम्	टि	४८·१
तन्तालम्	त	१८१·५
ताम्रम्	ता	६३·५७
थलम्	थ	१२७·५
थूलम्	थू	१६०·५
थैलम्	थ	२०४·०
थोरम्	थो	२३२·१५
दस्तम्	द	६४·३७
दारुणम्	दा	१६२·५
नकुलम	न	५८·६८
नीलम्	नी	११४·८
नूतनम्	नू	२०·२
नैलिन	नै	१२६·९२
नोषजन	नो	१५·००८
नौलीनम्	नौ	१४४·३
परौप्यम	प	१९५·२
पलाशनोलम्	ल	१४०·६
पारदम्	पा	२००·६
पांशुजम्	पां	३९·१०
पिनाकम्	पि	२३८·२
पैलादम्	पै	१०६·७
पोलोनम् पो		
प्लविन्	प्ल	१९·०
बलदम्	ब	५१·०
बेरीलम्	बे	९·१
भारम	भ	१३७·३७
मगनीसम्	म	२४·३२
मांगनीज़	मां	५४·९२
मैसूरम्	मै	?
यित्रम	य	८९३३
योत्रम्	यी	१७३·५

तत्त्व	संकेत	परमाणुभार
रागम	रा	५२·०
रुथनम्	रु	१०१·७
रैनम्	रै	?
लालम्	ला	८५·४५
लीनम्	ली	१३९·०
लुटेशम्	लु	१५७ ०
लोहम्	लो	५५·८४
वङ्गम्	व	११८·७
वासम्	वा	१९०·९
विशद्म्	वि	२०८·०
वुल्फ्रामम्	वु	१८४·०
यौमम	वौ	१३२·८१
शशिम्	श	७९·२
शैलम	शै	२८·३
शोणम	शो	६·९४
यूरोपम	यू	१५२·०
रजतम्	र	१०७·८८
रश्मिम्	मि	२२६·०
संत्तीणम	त्त	७४९६
संदस्तम	सं	११२·४०
सामरम्	सा	१५०·४
सीसम	सी	२०७·२०
सुनागम	सु	९६·०
स्रजकम	स्र	१४०·२५
सैन्धकम	सै	२३·००
स्कन्दम	स्क	४५·१
स्त्रंशम	स्त्र	८७६३
स्फटम	स्फ	२७·१
स्फुर	स्फु	३१·०४
स्वर्णम	स्व	१९७·२
हरिन	ह	३५·४६
हिमजन	हि	४·००
हफनम	है	१७८ ?
हौल्मम	हौ	१६३·५

रबी की तैयारी के लिये वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र

[ले०—शीतलाप्रसाद तिवारी विशारद]
असिस्टेन्ट फार्म सुपरवाइज़र अग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट (नैनी) इलाहाबाद

जबसे भारतवर्षमें सरकार द्वारा देशकी कृषिमें समयोचित सुधार करके इस व्यवसाय-को पुनःसे शक्तिशाली बनाने की 'स्कीमें' सोची जाने लगी, और इस विषयके अनेकों विदेशी वैज्ञानिकोंके हाथोंमें यह कार्य्य सौंपा गया; तभीसे उन विदेशी वैज्ञानिकोंने भारतमें सारे नवीन वैज्ञानिक कृषि यन्त्रोंका प्रयोग करना आरम्भकर दिया। इन यन्त्रोंके प्रयोगका प्रधान कारण यह था कि देश-में उस समय तक अथवा इस समय तक जो कृषि-यन्त्र प्रचलित हैं और जिनके द्वारा भूमिकी तैयारी करके फ़सलोंको बोया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि-कोणसे इतने उपयुक्त न जँचे, जिनसे कि भारत भूमिसे फ़सलों द्वारा अधिकसे अधिक उपज प्राप्त की जा सके।

इसी विचारसे जिस प्रकारसे भारतमें विदेशों से नाना प्रकारके बीज पौधे, फल, फूलों,को मँगा कर भारतकी भूमिमें बोकर उनका अनुभव किया गया और जो देशके लिये लाभदायक जँचे, उनका प्रचार भी भारतके राजकीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग द्वारा देशमें किया गया।

सबसे पहिले विदेशोंसे वे नवीन मिट्टी पलटने वाले हल मँगाये गये जिनके द्वारा भूमिका धरातल तथा गर्भतल भली प्रकारसे जुत-खुद जानेके सिवाय उसकी मिट्टी भी उलट-पुलट जाती है, जिससे भूमिमें पौधोंके लिये अधिक मात्रामें खुराक तैयार होती है। इन हलोंका लाभदायक सचित्र वर्णन हमारे पाठक गण इस पत्रके पिछले
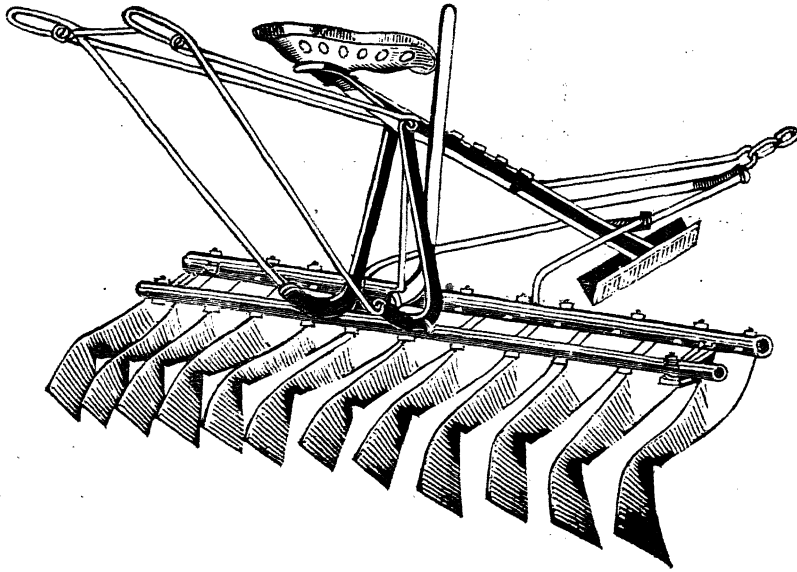
एकमी हैरो

अङ्कों में पढ़ चुके हैं। इस अङ्कमें हम कुछ ऐसे नवीन वैज्ञानिक कृषि-यन्त्रोंका वर्णन करेंगे जो कि बरसातके समाप्त हो जानेपर 'रबी' फ़सलकी तय्यारीके लिये व्यवहारमें लाये जासकते हैं।

ऊपर जिस यन्त्रका चित्र चित्रित किया गया है। उसका नाम 'एकमी हैरो' है। इसमें कई एक फार लगे हुये हैं जिनसे खेत की मिट्टी भली प्रकार जोती जा सकती है। बैलोंकी एक मज़बूत जोड़ी इसे खींच सकती है। हलवाहे को बैठकर चलानेके लिये एक लोहिया आसन भी बना हुआ है। आसन के पास में ही 'लीवर' का छड़ लगा हुआ है, जिसके द्वारा आसानीसे हलवाहा आवश्यकतानुसार खेतकी गहरी और उथला जुताई कर सकता है। उपर्युक्त यन्त्रको वर्षा कालकी समाप्ति पर जब कि 'रबी' की फ़सलोंके लिये खेतोंकी तैयारी करना आवश्यक हो जाता है। व्यवहारमें लाना चाहिये। क्योंकि खेतों की गहरी जुताईका समय ग्रीष्म और वर्षा काल है, तदनन्तर खेतोंकी गहरी जुताई करना व्यर्थ है। ऐसे समयमें ऐसे यन्त्रोंसे जुताई करनी चाहिये जिससे हलकी जुताई हो सके और साथ ही साथ खेतका खर, पतवार, घास, फूसभी इकट्ठा किया जा सके और इकट्ठा हो जाने पर खेतसे बाहर निकाल दिया जा सके। इतना ही नहीं खेतोंकी हलकी जुताई तथा अनेकों प्रकारकी घासोंको एकत्रित करनेके सिवाय बरसाती जुताइयोंके ढलोंका तोड़ना-फोड़ना और उन्हें महीन मिट्टीकी शक्लमें परिवर्तित कर देनाभी आवश्यक है, ऐसे कामोंके लिये उपर्युक्त यन्त्र अत्यन्त ही आवश्यक है। ऐसी दशामें भी जब कि वर्षाकी निरन्तर झड़ी लग रही हो और खेतोंकी पपड़ी तोड़ना अतीव आवश्यक प्रतीत हो रहा हो क्योंकि ऐसे समय अन्यान्य हलों और यन्त्रोंके प्रयोगसे खेतमें ढलोंका पड़ जाना संभव है। तो उस समयमें 'एक मी' हैरो को ही प्रयोग वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे लाभदायक है।
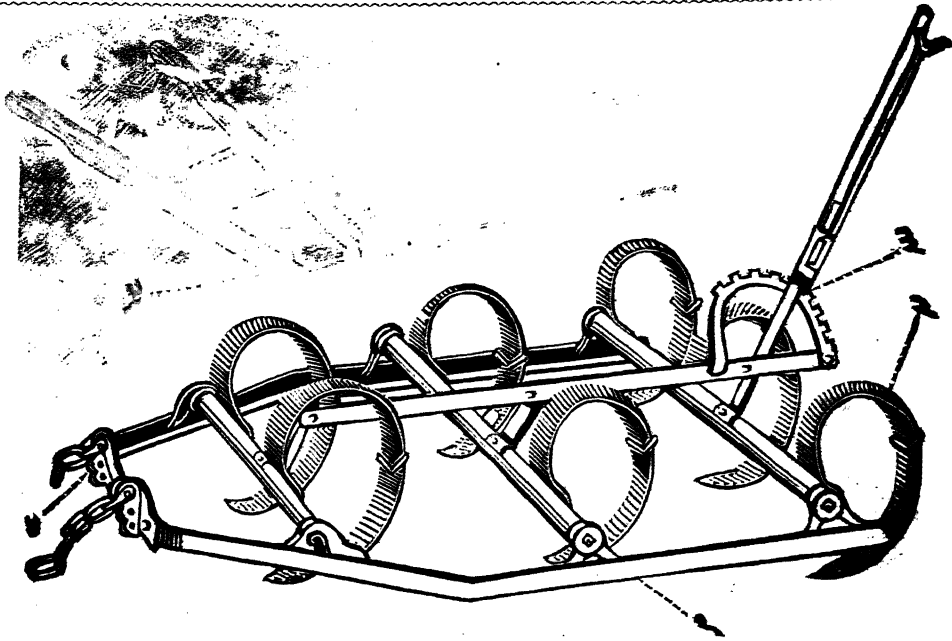
स्प्रिङ्ग टाइण्ड हैरो

इस उपर्युक्त चित्रका नाम 'स्प्रिंग टाइण्ड हैरो' (Spring Tined Harrow) है। 'एकमी' हैरोकी भाँति इसमेंभी कई एक फार या कमानियाँ लगी हुई हैं, इसीको विदेशोंमें 'स्प्रिंग' (Spring) कहते हैं। इसीसे इसका नाम 'स्प्रिंग टाइण्ड हैरो' रक्खा गया है। इसके भागोंका परिचय निम्न लिखित रीतिसे किया जा सकता है। भाग (१) ढाँचा है (२) फार या कमानी (३) लीवर

यह यन्त्र उन लोगोंके लिये अधिक लाभदायक है जो कि अधिक क्षेत्रफलमें खेती करते हैं। ऐसे लोगोंको बरसातके समयमें अथवा समाप्त होते समय इस यन्त्रका व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि उक्त समयोंमें इस यन्त्र द्वारा देशी हल अथवा अन्यान्य हलोंकी अपेक्षा अधिक क्षेत्रफलमें जुताई की जा सकती है। जब कभी ऐसा अवसर उपस्थित हो जाता है कि लगातार वर्षा कालमें पानी बरसता रहता है और खेतोंकी जुताईका समय नहीं मिलता; प्रत्युत इसके वर्षाभी देरीमें समाप्त होती है तो ऐसे समयोंमें रबीकी फ़सलके लिये खेतोंकी तयारी करना बड़ाही कठिन हो जाता है और जिन लोगोंके पास 'रबी' की बुवाईके लिये अधिक क्षेत्रफल है। उनकी तो दुर्गति हो जाती है। उन लोगोंको ऐसे मौक़ों पर चूकना नहीं चाहिये। वरन् उपर्युक्त यन्त्रको अवश्यही येन केन प्रकारेण ख़रीद करके व्यवहारमें लाना चाहिये। मेरा मतलब कहने का यह है कि यह यन्त्र अधिकतर लोहिये होते हैं, जो कि अधिक दिनों तक टिकाऊ होते हैं और इनके प्रयोगसे तत्काल ही प्रत्यक्ष लाभ भी प्राप्त होता है। जिससे उन हानियोंसे हम सुरक्षित हो जाते हैं जो कि अधिकतर हो जाया करती हैं।

वर्षाके निरन्तर होते रहनेसे और देरीमें समाप्त होनेसे देशी हल तथा अन्यान्य मिट्टी पलटने वाले हलोंके प्रयोगसे खेतोंमें अधिकतर डले पड़ जाते हैं, जो कि क्वार—कार्तिककी धूप में सूखकर कड़े हो जाते हैं और उनमें नमी की मात्राके भी अवशेष नहीं रह जाती। ऐसी अवस्थामें जो बीज खेतोंमें 'रबी' के मौसममें बोये
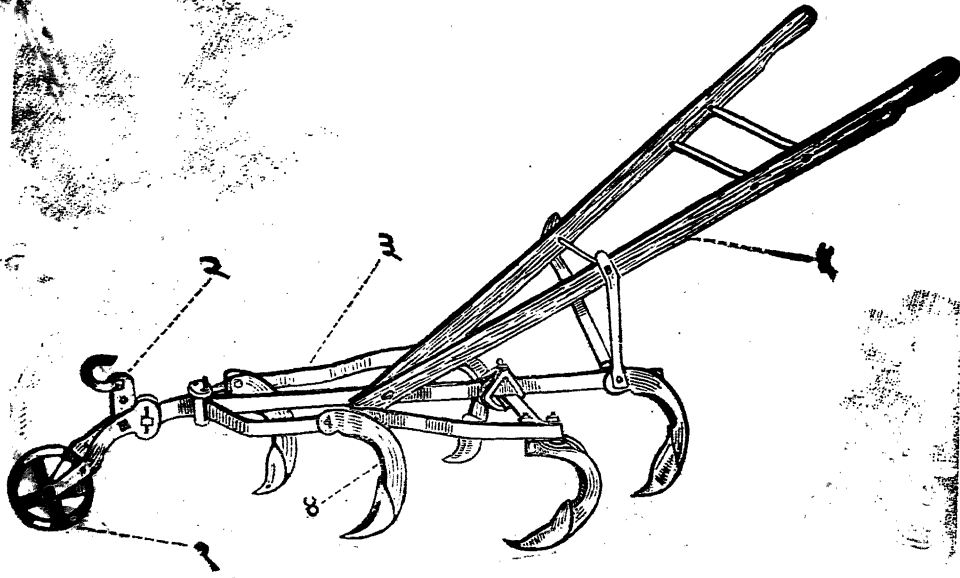
मैकारमिक कल्टीवेटर

जाते हैं, उनका अंकुरित होना पूर्ण रूपेण कैसे सम्भव माना जा सकता है? जो कुछ उगते भी हैं उनके कल्ले ढलोंसे अधिकतर टूट जाते हैं। सारांश यह कि ढेलके खेतोंमें बीजोंका अंकुरित होना कष्ठ-साध्य समस्या है। यदि बीजों को पूर्ण रूपसे अंकुरित होनेका मौका देना उपजकी दृष्टि से आवश्यक प्रतीत होता है तो उपर्युक्त यन्त्रका प्रयोग भी रबीकी फसलों की तय्यारीकी दृष्टिसे अतीव आवश्यक है।

उक्त दोनों यन्त्रों के अतिरिक्त वर्त्तमान कालमें कई एक प्रकारके 'कल्टीवेटर' भी भारतके सरकारी कृषि-विभाग के अनुभवोंसे लाभदायक सिद्ध हो गये हैं जिसका प्रचार प्रान्तीय कृषि-विभाग अपने अपने प्रान्तोंमें कर रहे हैं। ऊपर हम "मैकारमिक कल्टीवेटर" का चित्र चित्रित किया गया है।

यह कल्टीवेटर अत्यन्त मज़बूत बना हुआ है। इस यन्त्रमें जो नोकीले फार दिखलाई पड़ रहे हैं। वह खुर्पियाँ हैं। उनके द्वारा खेतोंकी गुड़ाई और जुताई की जा सकती है। वर्षा काल के समाप्त हो जाने पर हैरो के प्रयोग से खेतके धरातल का ऊपरी परत हलकी रीतिसे जुत जाता है और साथ ही साथ घास-फूस भी एकत्रित करके निकाल दिया जाता है। किन्तु तो भी धरातल के ऊपरी परत के नीचे वाला भाग जिसमें कि घासों तथा अन्यान्य प्रकारके पौधोंकी जड़ें छिछड़ी रहती हैं और भूमि के कणों को एक दूसरेसे कड़े रूप में बांधे रहती हैं। उनका पोला करना भी रबी की जुताइयोंका मुख्य उद्देश्य है। इन कामोंके लिये कल्टीवेटरोंका उपयोग करना अतीव लाभदायक है। इसलिये ऐसे मौकेपर कल्टीवेटरों का प्रयोग करके खेतके धरातलकी गुड़ाई भी भली प्रकारसे करके खेतोंको पोला और नरम बना देना चाहिये, जिससे खेतके धरातलमें सूर्य्य की किरणें और वायु भली प्रकारसे आ-जा सके। क्योंकि खेतों की जुताई और खुदाई के द्वारा हम लोग केवल भूमि को इस योग्य बना सकते हैं कि उसमें बीज बोया जासके। किन्तु

इतने ही से सारा कार्य्य सिद्ध नहीं हो जाता। इसका मुख्य कारण यह है कि जिस प्रकारसे बीजों के जमनेके लिये भूमिकी उत्तम रीतिसे तैयारी आवश्यक है। इसी प्रकारसे बीजोंके जमनेके लिये अन्यान्य भौतिक-शक्तियोंकी भी अनिवार्य्य रूपसे आवश्यकता होती है—जैसे बीजोंके जमनेके लिये पर्याप्त मात्रामें खेतके गर्भतलमें तथा धरातलमें निरन्तर वायुका आना-जाना आवश्यक है उसी प्रकारसे बीजोंके जमनेके लिये पर्याप्त मात्रामें 'ताप' की भी आवश्यकता होती है। यह ताप पौधोंको ऋतुओंके अनुसार सूर्य्य द्वारा प्राप्त होता रहता है। जब कभी अनेकों भौतिक शक्तियोंके प्रकोपसे यह ताप पौधों को नहीं प्राप्त होता तो पौधोंके उगाव या जमावकी अवस्था ख़राब हो जाती है और पौधे भली प्रकारसे नहीं उगते ऐसी अवस्था के ही घटित हो जाने पर फ़सलोंकी उपज मारी जाती है; पाश्चात्य देशोंमें जहाँ कि कृषि वैज्ञानिकों को वैज्ञानिक सुविधायें प्रस्तुत हैं कृत्रिम उपायों द्वारा भी पौधोंको ताप पहुँचाते हैं, किन्तु हम भारतवासी ईश्वर तथा भाग्यके ही भरोसे माथा ठोंकते हैं—नीचे कुछ फ़सलोंके उगनेके लिये कितने अंश तक तापक्रमकी आवश्यकता होती है इसकी एक सारिणी दी जाती है।

नाम फसल	कमसे कम ताप	पर्याप्त ताप	अधिकसे अधिक ताप
गेहूँ	४१°	८१°	१०८°
जौ	४१°	८४°	९९°
मक्का	५०°	९३°	११५°
सीता फल	५२°	९३°	११५°

चन्द्रग्रहणाधिकार

[गताङ्क से आगे]

लें०—श्रीमहावीरप्रसाद श्रीवास्तव ।

उदाहरण—संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमाके चंद्र-ग्रहणकी गणनाः—

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिनके सूर्य, चन्द्रमा, और राहुको स्पष्ट करना चाहिए। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि कलियुगसे इस दिन तकका अहर्गण क्या है।

कलियुगके आरंभसे विक्रमी संवत्के आरंभ तक ३०४४ वर्ष
विक्रमके आरंभसे १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक १९८१ "
कलियुगादि से " " " ५०२५ "

१ सौर वर्ष = ३६५·२५८७५६

∴ ५०२५ सौर वर्ष = ५०२५ × ३६५·२५८७५६ सावन दिन
= १८३५४२५·२४८९ "

कलियुगके आरम्भसे १९८१ वि० की मध्यम मेष संक्रान्तितकका समय है। स्पष्ट मेष संक्रान्ति २·१७०७ दिन पहले ही हो जाती है। इसलिये इसको घटा देनेपर १९८१ वि० के मेष संक्रान्ति कालतकका समय १८३५४२३.०७८२ सावन दिन हुआ।

अब यह देखना है कि मेष संक्रान्तिके दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्रमास = २९·५३०५८८ सावन दिन

इससे उपर्युक्त सावन दिनोंको भाग देनेपर लब्धि बीते हुए चान्द्रमासोंकी संख्या होगी और शेष ८·४४२२३६ सावन दिन चैत्रकी मध्यम अमावास्यासे मेष संक्रान्तितकका समय होगा। इसलिए चैत्रकी मध्यम अमावास्यासे ८·४४२२३६ दिन उपरान्त मेष की संक्रान्ति लगी। इससे यह सिद्ध होता है कि इस वर्ष मलमास नहीं लगेगा, क्योंकि जब वैशाख कृष्ण ४ के उपरान्त मेष संक्रान्ति होती है तब वर्षमें कोई महीना मलमासका पड़ता है। इस प्रकार चैत्रकी अमावास्यासे श्रावणी पूर्णिमा तक ४॥ चान्द्रमास होते हैं

१ चान्द्रमास = २९·५३०५८८ दिन
४ " = ११८·१२२३५२ दिन
आधा " = १४·७६५२९४ "
∴ ४॥ " = १३२·८८७६४६ "

इसलिए १९८१ वि० के चैत्रकी मध्यम अमावास्यसे १३२·८८७६४६ दिन उपरान्त श्रावणकी मध्यम पूर्णिमाका अन्त होगा। परन्तु चैत्रकी अमावास्यासे ८·४४२२३६ सावन दिन पर स्पष्ट मेष-संक्रान्ति होती है इसलिए स्पष्ट मेष-संक्रान्ति कालसे १३२·८८७६४६ − ८·४४२२३६ = १२४·४४५४१० दिन उपरान्त श्रावणकी मध्यम पूर्णिमाका अंत होगा।

कलियुगादिसे १९८१की मेष संक्रान्तितक १८३५४२३·०७८२ दिन
मेषसंक्रान्तिसे श्रावणी पूर्णिमातक १२४·४४५४ "
कलियुगादिसे श्रावणी पूर्णिमातक १८३५५४७·५२३६ दिन

इस लिए १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमाकी मध्यरात्री का अहर्गण १८३५५४७ हुआ। इसकी शुद्धताकी परीक्षा करनेके लिए यह जानना चाहिए कि इस अहर्गणसे श्रावणी

पूर्णिमाका बार ठीक आता है कि नहीं। इस लिए इसको ७ से भाग देना चाहिए। सातसे भाग देनेपर २६२२२१ सप्ताह आते हैं और शेष कुछ नहीं बचता। इस लिए सिद्ध होता है कि श्रावणी पूर्णिमा गुरुवारको थी क्योंकि कलियुगका आरंभ सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार गुरुवारकी मध्यरात्रिको हुआ था। इस प्रकार संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा गुरुवारकी मध्यरात्रिका अहर्गण १८३५५४७ हुआ।

इसी अहर्गणसे श्रावणी पूर्णिमाकी अर्धरात्रि कालके सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च राहु इत्यादिके स्थान त्रैराशिकसे जानने चाहिए। मध्यमाधिकारमें बतलाया गया है कि एक महायुगमें १५७७९१७८२८ सावन दिन होते हैं जिनमें सूर्यके ४३२०००० भगण, चंद्रमाके ५७७५३३३६ भगण, चन्द्रोच्चके ४८८२०३ भगण और राहुके २३२२३८ भगण होते हैं, इस लिए १८३५५४७ दिनोंमें

	भगण	राशि	अंश	कला	
सूर्य के	५०२५	३	२९	५९·७५	हुए
चंद्रमाके	६७१८२	९	२३	५९·२१	”
चंद्रोच्च के	५८७	१०	२८	३४·०२	”
राहु के	२७०	१	२६	६·८	”

सूर्य और चंद्रमाके पूरे भगणोंके छोड़ देनेपर जो शेष रह जाते हैं वही श्रावणी पूर्णिमाकी मध्यरात्रि कालमें इनके मध्यम स्थान हैं। परन्तु चन्द्रोच्च और राहुके पूरे भगणोंको छोड़ देनेसे जो शेष बचते हैं उनमें कुछ संस्कार करना पड़ता है क्योंकि कलियुगके* आदिमें चन्द्रोच्च कर्कके आदि बिन्दु-पर थे और राहुकी गति उलटी होती है इसलिए श्रावणी पूर्णिमाकी मध्यरात्रिके समय।

चन्द्रोच्चका स्थान $३^{रा}$ राशि $+ १०^{रा} २८^\circ ३४'·०२ = १^{रा} २८^\circ ३४'·०२$

राहुका स्थान ६ राशि $- १^{रा}\ २६^\circ ६'·८ = ४^{रा}\ ३^\circ ५३'\ २$

सूर्य के मन्दोच्च की गति इतनी मन्द है कि इसका स्थान $२^{रा}\ १७^\circ १७' ५२$ ही मान लेना चाहिए†।

अब सूर्य और चंद्रमा का स्पष्टाधिकारके अनुसार स्पष्ट करना चाहिए।

सूर्य का मन्द केन्द्र $= २^{रा}\ १७^\circ १७'·५२ — ३^{रा}\ २९^\circ ५९·७५$

$= १०^{रा}\ १७^\circ १७·७७^{रा}$

$= ३$ पाद $+ {}^{रा}\ १७^\circ १·८$

∴ चौथे पादका गम्य भाग $= १^{रा}\ १२^\circ ४२·२$

$= ४२^\circ ४२'·२$

सूर्यकी स्फुट मन्द परिधि

$$= ८४० - २० \times \frac{\text{भुजज्या } ४२^\circ ४'}{३४३८}$$

$$= ८४०' - २०' \times \frac{२३३०}{३४३८}$$

---

* मध्यमाधिकार श्लोक ५७,५८ और पृष्ठ ७७

† स्पष्टाधिकार पृष्ठ २१६

=८४०′ − १४′

=८२६′

भुजफल = $\frac{\text{८२६ × २३३०}}{\text{२१६००}}$ = ८९′·१ = १°२९′·१

यही सूर्य का मन्दफल है क्योंकि इसका धनु इसीके समान होगा। यह ऋणात्मक है क्योंकि मन्द केंद्र तुलादि है। इस लिए मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य

= ३$^{\text{रा}}$ २९°५९′· ७५ − १°२९′·१

= ३$^{\text{रा}}$ २८°३०′· ६५

= ११८°३०′· ६५

चंद्रमाका मन्दकेन्द्र = १ रा२८° ३४′· ०२ − ९ रा२३°३९′· २१

= ४$^{\text{रा}}$ ४°५४′· ८१

= १ पाद + ३४°५४′· ८१

∴ दूसरे पादका गम्य भाग = ५५°५′·२

चंद्रमाकी स्फुट मन्द परिधि

= ३२° − २०′ × $\frac{\text{भुजज्या ५५°५′·२}}{\text{३४३८}}$

= ३२° − २०′ × $\frac{\text{२८१८}}{\text{३४३८}}$

= ३२° − १६′ = ३१°४४′ = १९०४′

∴ चंद्रमा का भुजफल = $\frac{\text{१९०४ × २८१८}}{\text{२१६००}}$

= २४८′०४ = ४°८०′′४

इसका धनुभी इतना ही होगा।

इसलिए चन्द्रमा का मन्दफल = ४°८′·४

यह धनात्मक है क्योंकि चन्द्रमा का मन्द केन्द्र मजादि ६ राशियों में है। इसलिए मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

= ९ रा२३°३९′·२ + ४°८′·४

= ९ रा२७°४७′·६ = ९ रा२७°४८′

सूर्य और चंद्रमा के स्पष्ट स्थानों से ज्ञात होता है कि चन्द्रमा सूर्य से १८०° आगे नहीं है वरन् कुछ कम है इसलिए पूर्णिमान्तकाल मध्य रात्रि से कुछ पहले होगा जब चन्द्रमा और सूर्य का अन्तर ठीक १८०° होता है। यह जानने के लिए कि पूर्णिमान्तकाल कब होगा हमें सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियां जाननी चाहियें। हमें यह मालूम है कि

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८,″

चन्द्रमा का " ७९०′३५″,

चन्द्रोच्च की " ६′४१″, = ६′·७,

और चन्द्रमा की दैनिक केन्द्र गति ७८३′५४″ होती है

इसलिए सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति (देखो स्पष्टाधिकार पृ० २३३)

= ५९′८″ − $\frac{\text{८२६}}{\text{२१६००}}$ × $\frac{\text{१६४ × ५९′८″}}{\text{२२५}}$

= ५९′८″ − १′३९″

= ५७′२९″ = ५७′·५

चन्द्रमाकी दैनिक गति उपर्युक्त रीतिसे नहीं निकल सकती क्योंकि चन्द्रमाकी गति बहुत तीव्र होती है। इस लिए चन्द्रमाकी दैनिक गति जाननेके लिए पूर्णमासीके उपरान्त शुक्रवारकी मध्यरात्रिका चन्द्रमा स्पष्ट करना अच्छा है।

पूर्णमासीकी अर्धरात्रिका मध्यमचंद्र=९ रा २३° ३९′·२१

चंद्रमाकी दैनिक मध्यमगति=१३° १०′·५८

∴ प्रतिपदाकी मध्यम रात्रिका चन्द्रमा=१० रा ६° ४९′·७९

=१० रा ६° ४९′·८ =१० रा ६° ५०′

" " का चन्द्रोच्च=१ रा २८° ३४′ + ६′·७

=१ रा २८° ४०′·७

∴ प्रतिपदाकी मध्य रात्रिका चंद्र मन्द केन्द्र

=१ रा २८° ४०′·७ — १० रा ६° ४९′·८

=३ रा २१° ५०′·९

=१ पाद + २१° ५१′ स्वरूपान्तरसे

∴ दूसरे पादका गम्य भाग=६८° ९′

चंद्रमाकी स्फुट परिधि=३२° — २०′ × भुजज्या ६८° ९′ / ३४३८

=३२° — २०′ × ३१९१ / ३४३८

=३२° — १९′

=१९०१′

∴ भुजफल= (१९०१ × ३१९१) / २१६०० =२८१′

इसका धनु भी इतनाही होगा।

इसलिए मन्दफल=२८१′=४° ४१′

∴ प्रतिपदाकी मध्यमरात्रिका स्पष्ट चंद्र=१० रा ६° ५०′ + ४° ४१′

=१० रा ११° ३१′

और पूर्णिमाकी " " =९ रा २७° ४८′

दोनोंका अन्तर = १३° ४३′

इस प्रकार चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति १३° ४३′=८२३′

सूर्यकी " " ५७′·५

इसलिए १ सावन दिनमें चंद्रमा सूर्यकी अपेक्षा ७६५′·५ अधिक चलता है।

पूर्णिमाकी मध्यरात्रिका चंद्रमा ९ रा २७° ४७′·६

" " सूर्य ३ रा २८° ३०′·७

दोनोंका अंतर =५ रा २९° १६′·९

यह अंतर ६ राशिसे ४३′·१ कम है। इसलिए जब चंद्रमा सूर्यसे इतना और आगे बढ़ेगा तब पूर्णिमान्त काल होगा। परन्तु ६० घड़ीमें चंद्रमा सूर्यसे ७६५′·५ आगे बढ़ता। इसलिए ४३′·१ वह (४३·१ × ६०) / ७६५·५ घड़ीमें पूरा करेगा जो ३ घड़ी २३ पल होता है। इसलिए गुरुवारकी मध्यरात्रिसे ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमाका अंत हुआ।

अब पूर्णिमान्त कालके सूर्य और चंद्रमाको स्पष्ट करना चाहिए।

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति = ५७′ · ५

∴ ३ घड़ी २३ पलकी गति=३′१४″·५=३′·२४

मध्यरात्रिकालिक सूर्य=३ रा २८°३०′·७

∴ पूर्णिमान्तकालिक सूर्य=३ रा २८°३३′·९=११८°३४′

चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति=८२३′

∴ ३ घड़ी २३ पलकी गति=४६′२४″

=४६′·४

मध्यरात्रिकालिक चन्द्रमा=९ रा २७°४७′·६

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रमा=९ रा २८°३४′=२९८°३४′

राहुकी दैनिक गति ३′११″

∴ ३ घड़ी ३ पलकी गति=११″=·२′

मध्यरात्रिकालिक राहु=४ रा ३°५३′·२

राहुकी गति उलटी होती है इसलिए इसमें से ३ घड़ी ३ पलकी गति घटानेसे पूर्णिमान्तकालिक राहु=४ रा ३°५३′= १२३°५३′

राहुसे चन्द्रमा २९८°३४′ − १२३°५३′=१७४°४१′ आगे है।

$$∴ \text{ चंद्र शरकी ज्या}=\frac{\text{ज्या } १७४°४१′ \times \text{ज्या } ४°३०′ \ *}{३४३८}$$

$$=\frac{\text{ज्या } ५°१९′ \times \text{ज्या } ४°३०′}{३४३८}$$

$$=\frac{३१९ \times २७०}{३४३८}=२५′$$

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर=२५′

यह शर क्रान्तिवृत्तिसे उत्तर है क्योंकि राहु ा चंद्रमा ६ राशिसे कम दूर है। (स्पष्टा० श्लोक ७,)

पूर्णिमान्तकालिक राहु =१२३°५३′

" " सूर्य =११८°३४′

दोनों का अंतर = ५°१९′

जो चन्द्रग्रहणकी लघुतम सीमा ९° से कम है। इसलिए चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। (चन्द्रग्रहण पृष्ठ ६६०)

चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक १७३ के अनुसार,

$$\text{सूर्य बिम्बका स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times ५७′२९″}{५९′८″} \text{योजन}$$

$$\text{चंद्र " " "} = \frac{४८० \times ८२३′}{७८०′३५″} \text{योजन}$$

$$=\frac{४८० \times ८२३}{७५०·५८३} \times \frac{१}{१५} \text{कला}$$

$$=\frac{३२ \times ८२३}{७९०.५८३} \text{कला}$$

=३३·३१ कला

श्लोक ४, ५ के अनुसार चन्द्रकक्षामें भूछायाका योजनात्मक व्यास

$$=\frac{१६०० \times ८२३}{७९०·५८३} - \left(\frac{६५०० \times ५७′२९″}{५९′८″} - १६००\right) \times \frac{४८०}{६५००} \text{ योजन}$$

---

* चन्द्रमाका शर उसी प्रकार निकाला जाता है जिस प्रकार सूर्य की क्रान्तिस्पष्टाधिकारके १८ वें श्लोकके अनुसार निकाली जाती है। ४°३० सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार चन्द्रमाका परमशर है।

इसको १५ से भाग देकर सरल करने पर चंद्रकक्षा में भूछायाका कलात्मक व्यास अथवा भूभाबिम्ब $=१०६\frac{२}{३}\times$

$$\frac{८२३}{७९०\cdot५८३}-३२\times\frac{५७'२९''}{५४'८''}+७\cdot८७७$$

$$=१११\cdot१७-३१\cdot११+७\cdot८८$$

$$=८७\cdot९४$$

चंद्रग्रहणमें भूछाया ही छादक होती है। इसलिए छादक का व्यासार्ध $=८७'\cdot९४\div२=४३'\cdot९७$

चन्द्रमाका स्फुट व्यास $=३३'\cdot३१$

$\therefore$ छाद्यका व्यासार्ध $=३३'\cdot३१\div२=१६'\cdot६६$

$\therefore$ मानैक्यखंड $=४३'\cdot९७+१६'\cdot६६=६०'\cdot६३$

और मानान्तर खंड $४३'\cdot९७-१६\cdot६७=२७'\cdot३१$

ग्रासका परिमाण $=६०'\cdot६३-२५'$ (श्लोक १०)

$$=३५\cdot६३$$

यह चन्द्रबिम्बके व्याससे बड़ा है। इसलिए सर्वग्रास ग्रहण लगेगा (देखो पृ० ६५६ और श्लोक ११)।

पृष्ठ ६६८ के अनुसार,

$$\text{स्थित्यर्ध}=\frac{६०\ \text{घड़ी}\times\sqrt{\{(६०\cdot६३+२५)(६०\cdot६३-२५)\}}}{७६५\cdot५}$$

$$=\frac{६०\times\sqrt{\{८५\cdot६३\times३५\cdot६३\}}}{७६५\cdot५}\ \text{घड़ी}$$

$$=\frac{६०\times५५\cdot२३६}{७६५\cdot५}\ \text{घड़ी}$$

$$=४\ \text{घड़ी}\ २०\ \text{पल}$$

$$\text{विमर्दार्ध}=\frac{६०\ \text{घड़ी}\times\sqrt{\{(२७\cdot३१+२५)(२७\cdot३१-२५)\}}}{७६५\cdot५}$$

$$=\frac{६०\times\sqrt{\{५२\cdot३१\times२\cdot३१\}}}{७६५\cdot५}\ \text{घड़ी}$$

$$=\frac{६०\times१०\cdot९९२}{७६५\cdot५}\ \text{घड़ी}$$

$$=५१\cdot७\ \text{पल}=५२\ \text{पल}$$

यह पहले बतलाया जा चुका है कि गुरुवारकी मध्यरात्रि से ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमान्तका अन्त हुआ। इस समयसे स्थित्यर्धकाल घटानेपर ग्रहणका स्पर्श काल होगा और विमर्दार्ध काल घटानेसे सम्मीलन काल आजायगा।

$\therefore$ स्पर्श काल $=३$ घड़ी २३ पल—४ घड़ी २० पल

$$=-५७\ \text{पल}$$

अर्थात् मध्यरात्रिसे ५७ पल पहले ग्रहणका स्पर्श होगा।

सम्मीलन काल $=३$ घड़ी २३ पल—५२ पल

$$=२\ \text{घड़ी}\ ३१\ \text{पल}$$

अर्थात् मध्यरात्रिके २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ होगा अथवा पूरा चन्द्रबिम्ब छायामें प्रवेश हो जायगा।

इसी प्रकार उन्मीलनकाल $=३$ घड़ी २३ पल $+$ ५२ पल

$=४$ घड़ी १५ पल, मध्यरात्रिके उपरान्त

और मोक्षकाल $=३$ घड़ी २३ पल $+$ ४ घड़ी २० पल

$=७$ घड़ी ४३ पल मध्यरात्रिके उपरान्त

यह समय उज्जैन का मध्यमकाल है अर्थात् उज्जैनमें मध्यम

मध्यरात्रिसे ५७ पल पहले ग्रहणका स्पर्श २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सम्मीलन ४ घड़ी १५ पल उपरान्त उन्मीलन और ७ घड़ी ४३ पल उपरान्त मोक्ष होंगे। किसी अन्य स्थान में किस समय स्पर्श सम्मीलन इत्यादि होगा। उस स्थानका देशान्तर काल मध्यमाधिकार श्लोक ६३, ६४ के आधारपर जोड़ना चाहिए यदि स्थान उज्जैनसे पूर्व हो और घटाना चाहिए यदि स्थान उज्जैनसे पच्छिम हो। ऐसा करनेसे उस स्थानके मध्यम कालके अनुसार स्पर्शकाल, सम्मीलन काल इत्यादि ज्ञात होंगे। यदि यह जानना हो कि उस स्थानमें सूर्योदयसे कितनी घड़ी पल उपरान्त स्पर्श, सम्मीलन इत्यादि होगा तो मध्यमकालमें काल समीकरणका संस्कार करके स्पष्टकाल निकालना होगा और उस दिनकी सूर्यकी क्रान्ति निकालकर चरकालका भी संस्कार करना होगा।

इस दिनका काल-समीकरण—

सूर्यका मध्यम भोगांश=प्रायः ४ राशि=१२०°

अयनांश= लगभग २२ ४०′

∴ सूर्यका सायन भोगांश= १४२°४०′

इसलिए त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५०८ के सूत्र (८) अथवा ५१२ के सूत्र (क) के अनुसार कालसमीकरण सहज ही निकाला जा सकता है। सूत्र (क) के अनुसार,

कालसमीकरण = ११५·१६५ ज्या (१४२°४०′+७८°२४′)
− १४७·९९५ ज्या (२ × १४२°४०′)
= ११५·२ ज्या (१८०°+४१°४′)
= − १४८ ज्या २८५°२०′
= — ११५·२ ज्या ४१°४′
—१४८ ज्या (३६०° — ७४°४०′)
= — ११५·२ × ·६५७ + १४८ ज्या ७४°४०′
= — ११५·२ × ·६५७ + १४८ × ·९६४४
= — ७५·७ + १४२·७ ६७ असु
= + ·१ पल

धनका चिह्न यह प्रकट करता है कि इस दिनके किसी स्पष्टकालमें ११ पल जोड़नेसे जो आता है वहाँ उस समयका मध्यमकाल है। इसलिए इस दिन जब धूप घड़ीके अनुसार रात के १२ बजेंगे तब मध्यम घड़ी में १२ बजकर ११ पल अधिक बीता रहेगा।

प्रातःकाल की सूर्य की क्रान्ति—

मध्यरात्रिका सूर्यका स्पष्ट भोगांश ३ रा २८°३०′·७ अथवा ३ रा २८°३१′ है। परन्तु मध्यम प्रातःकाल ६ बजे माना जाता है इस लिए मध्यम प्रातःकाल के ४५ घड़ी उपरान्त मध्यरात्रि होती है। सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′·१ है। इसलिए ४५ घड़ी में इस की गति ४३′ के लगभग होती है। इस प्रकार उदयकाल में सूर्य का भोगांश ३ रा २८°३१′ − ४३′ = ३ रा २७°४८′ इसमें अयनांश २२°४०′ जोड़ा तो आया ४ रा २०°२८′ यही सूर्य का उदय कालिक सायन भोगांश है। इस लिए पृष्ठ ४५१ के अनुसार सूर्यकी उदयकालिक क्रान्ति ज्या = ज्या ४ रा २०°२८′ × ·३९७९

=ज्या ३९°३२′ × ·३९७९

=·६३३६ × ·३९७९

=·२५२१

∴ सूर्यकी उदयकालिक क्रान्ति=१४°३६′

काशीका अक्षांश २५°२०′ है। इसलिए इस दिन काशीमें उदयकालिक सूर्यकी चरज्या=स्परे १४°३६′ × स्परे २५°२०′

=·२६०५ × ·४७३४

=·१२३३

∴ चरांश=७°५′

∴ चरकाल=७१ पल

यह धनात्मक है क्योंकि क्रान्ति उत्तर है।

उज्जैनसे काशीका पूर्व देशान्तर १ घड़ी १२ पल ५० वि० (देखो पृ० १०४) अथवा १ घड़ी १३ पल।

उज्जैनके स्पर्शकालमें काशीका देशान्तर १ घड़ी १३ पल जोड़नेपर काशीकी मध्यरात्रिसे −५७ पल + १ घड़ी १३ पल-पर अर्थात् १६ पलपर काशीमें ग्रहणका स्पर्श देख पड़ेगा।

परन्तु मध्यम मध्यरात्रिसे ११ पल ऊपर स्पष्ट मध्यरात्रि होती है। इसलिए स्पष्ट मध्यरात्रिसे १६ पल − ११ पल = ५ पल उपरान्त काशीमें ग्रहणका स्पर्श देख पड़ेगा।

इस दिनका चरकाल + ७१ पल = + १ घड़ी ११ पल है। इसलिए सूर्योदयसे १ घड़ी ११ पलपर धूप घड़ीमें ६ बजेगा। इसलिए सूर्योदयसे प्रातःकालके ६ बजे तक = १ घड़ी ११ पल

प्रातःकालके ६ बजेसे मध्यरात्रि तक	=४५ घड़ी	० पल
मध्यरात्रिसे स्पर्शकाल तक	=० घड़ी	५ पल
योग	४६	१६

इस प्रकार यह सिद्ध होगया कि सूर्य सिद्धान्तके अनुसार काशीमें चन्द्रग्रहणका स्पर्श सूर्योदयसे ४६ घड़ी १६ पलके उपरान्त होगा।

काशीमें सर्वग्रास ग्रहणका आरम्भकाल इस प्रकार जाना जाता है:—

	घड़ी	पल
उज्जैनकी मध्यम मध्यरात्रिसे सम्मीलन-काल तकका समय*	२	३१
काल-समीकरण घटाया		−११
उज्जैनकी स्पष्ट मध्यरात्रिसे सम्मीलनकाल तकका समय	२	२०
काशीका पूर्व देशान्तर	=+१	१३
६ बजे प्रातःकालसे मध्यरात्रि तक	= ४५	०
चरकाल	+ १	११
योग	४९	४४

* काल समीकरण यद्यपि धनात्मक है तथापि यहाँ घटाया गया है इसका कारण यह है कि जब स्पष्टकाल ज्ञात रहता है तब उसमें धनात्मक काल-समीकरण जोड़नेसे जो आता है वह मध्यमकाल होता है परन्तु जब मध्यमकाल ज्ञात हो और स्पष्टकाल जानना होता है तब धनात्मककाल समीकरण मध्यमकालसे घटाना पड़ता है क्योंकि स्पष्टकाल मध्यमकालसे कम होता है।

अर्थात् काशीमें सूर्योदयसे ४६ घड़ी ४४ पल पर सर्वग्रास ग्रहणका आरम्भ होगा और पूरा चन्द्रबिम्ब अन्धकारमय हो जावगा।

स्पर्शकालमें स्थित्यर्धकालका दूना जोड़ देनेसे मोक्षकाल और सम्मीलनकालमें विमर्दार्धका दूना जोड़ देनेसे उन्मीलन-काल ज्ञात हो जायंगे।

स्थित्यर्ध=४ घड़ी २० पल

∴ ग्रहणकी स्थिति = ८ घड़ी ४४ पल

स्पर्शकाल ४६ " १६ " सूर्योदय से

∴ मोक्षकाल ५४ घड़ी ५६ " "

विमर्दार्ध = ५० पल

∴ विमर्द अथवा सर्वग्रास ग्रहणकी स्थिति=१ घड़ी ४४ पल

सम्मीलनकाल सूर्योदयसे ४४ " ४४ " पर

∴ उन्मीलनकाल सूर्योदयसे ५१ " २८ " पर

सबका सार

उपर्युक्त गणनाके अनुसार बापूदेव शास्त्रीके पत्राके अनु०

	घ०	पल	घ०	पल
स्पर्श	४६	१६	४६	८
सम्मीलन	४९	४४	४८	३६
मध्य	५०	३६	५०	४०
उन्मीलन	५१	२८	५२	४३
मोक्ष	५४	३६	५५	११

म० म० बापूदेव शास्त्री के पत्रे में ग्रहणकाल के सम्बन्धमें जो समय दिये हैं वे नाविक पञ्चाङ्ग (Nautical almanac) से बिलकुल मिलते जुलते हैं। इसलिए ये समय बिल्कुल शुद्ध हैं। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार निकाले हुए समय इनसे बहुत भिन्न हैं। इसलिए अब यह देखना है कि इस भिन्नताका कारण क्या है।

सूर्यसिद्धान्तके अनुसार ग्रहणके जो मूलाङ्क आये हैं उनकी तुलना ज्योतिर्गणितसे निकाले हुए मूलाङ्कोंसे करने पर देख पड़ता है कि सूर्य और चंद्रमाके भोगांश दोनों रीतियोंके अनुसार प्रायः एकसे हैं परन्तु राहुके भोगांशोंमें बड़ा अन्तर है जिसके कारण चंद्रमाके शरमें महान् अन्तर पड़ जाता है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि यदि राहुका यथार्थ भोगांश नवीन रीतिसे जानकर चन्द्रमाका शर जाना जाय और इसी शरसे चन्द्र ग्रहणकी गणनाकी जाय तो क्या आता है।

ज्योतिर्गणितके अनुसार राहुका भोगांश १२०°४'·५ होता है। इस ग्रन्थके अनुसार इस वर्षका अयनांश २२°-४७' होता है परन्तु सूर्यसिद्धान्तके अनुसार १४७८ वि० की मेष संक्रान्ति जिस समय हुई थी उस समय अयनांश २२°३७'३८"·१ था (देखो पृ०३७१)। दो वर्ष में अयनांश की वृद्धि

=५८"·६६३३४४+२+·०००१११×३²

=११७"·३२६७+·००१

=११७"·३२७७

=१५७"·३३

१९८१ वि० की मेष संक्रान्ति से १२४ दिन बाद श्रावणकी पूर्णिमा हुई इसलिए १२४ दिनमें अयनांशकी वृद्धि १९"·९३ होगी। इसलिए श्रावणी पूर्णिमाके दिन अयनांश = २२°३७'-३८"·१+१' ५७"·३+१९"·९

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०

भाग २३ } सिंह, संवत् १९८३ { संख्या ५

अणुभार निकालने की विधि

[ले० श्री सत्यप्रकाश बी. एस-सी., विशारद]

गत अध्यायमें यह लिखा जा चुका है कि प्रयोग द्वारा यह निकाला जा सकता है कि किसी अज्ञात यौगिकमें कौन कौनसे तत्व हैं और उन तत्वोंकी उस यौगिकमें सापेक्षिक मात्रा क्या है। कल्पना करो कि किसी यौगिकमें परीक्षा करनेपर कर्बन, उदजन और ओषजनकी मात्रायें प्रतिशतक निम्न हिसाबसे मिलीं:—

कर्बन=४०%
ओषजन=५३·३%
उदजन=६·७%
१००·०

पर इन अङ्कोंसे साधारणतया यह नहीं प्रकट होता है कि इस यौगिकमें कर्बनके कितने परमाणु हैं, ओषजन और उदजनके कितने। एक काम किया जा सकता है। कर्बनकी मात्राको कर्बनके परमाणु भारसे, ओषजनकी मात्राको ओषजनके परमाणु भारसे और उदजनकी मात्राको उदजनके परमाणु भारसे भाग दो। ऐसा करनेपर हमको यह पता चल जावेगा कि उक्त यौगिकमें कर्बन,

उद्जन और ओषजनके परमाणुओंकी संख्यामें क्या अनुपात है।

कर्बन—$\frac{४०}{१२}$=३·३३

ओषजन—$\frac{५३.३}{१६}$=३·३३

उद्जन—$\frac{६.७}{१}$=६·७

इन अङ्कोंसे यह स्पष्ट है कि यौगिकमें तत्वोंके परमाणुओंकी संख्या में ३·३३:३·३३:६·७ अर्थात् १:१:२ का अनुपात है। यदि यौगिकमें कर्बनका एक परमाणु है तो ओषजनका भी एक होगा और उद्जनके २ परमाणु होंगे पर यदि उक्त यौगिकमें कर्बनके ४ परमाणु हैं तो ओषजनके ४ और उद्जनके ८ होंगे। इस प्रकार उक्त यौगिकको हम (क ओ $उ_२$)$_य$ सूत्रके सूचित कर सकते हैं। यदि य का मूल्य किसी प्रकार ज्ञात हो जाय तो यौगिकका अणुभार ठीक ठीक ज्ञात हो सकता है। क ओ $उ_२$ इतने रूपको यौगिकका अनुमानित सूत्र कहा जा सकता है। उपर्युक्त विधि से अनुमानित सूत्र आसानीसे निकाला जा सकता है।

उदाहरण—किसी यौगिकमें कर्बन ५२·२% उद्जन ४·४%, नोषजन २०·४% तथा ओषजन २३% है तो उस यौगिकका अनुमानित सूत्र बताओ।

कर्बन=$\frac{५२.२}{१२}$=४·३५

उद्जन=$\frac{४.४}{१}$=४·४

नोषजन=$\frac{२०.४}{१४}$=१·४६

ओषजन=$\frac{२३}{१६}$=१·४४

इससे स्पष्ट है कि क : उ : नो : ओ=४·३५ : ४·४ : १·४६ : १·४४ अर्थात् ३:३:१:१। अतः उक्त यौगिकका अनुमानित सूत्र ($क_३$ $उ_३$ नो ओ) हुआ।

यदि यौगिकका अणुभार भी ज्ञात हो जाय तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उसके एक अणुमें किस तत्वके कितने परमाणु हैं। अणुभार निकालनेकी अनेक विधियाँ हैं पर यहाँ चार मुख्य विधियाँ दी जावेंगी ये विधियाँ इस प्रकार हैं:—

१—ड्यूमाकी विधि

२—विक्टरमेयरकी विधि

३—हिमांककी अवकर्ष विधि

४—क्वथनांककी उत्कर्ष विधि

ड्यूमाकी विधि

ड्यूमाकी विधिसे यौगिकका अणुभार बड़ी आसानीसे निकाला जा सकता है। एवोगैड्रोके सिद्धान्तसे (देखो साधारण रसायन द्वितीय अध्याय) हमें यह पता चलता है कि समान तापक्रम और दबाव पर प्रत्येक वायव्यके समान आयतनमें अणुओंकी संख्या बराबर रहती है। कल्पना करो कि उद्जन और अन्य अज्ञात वायव्य क के समान आयतनको एक ही तापक्रम और दबावपर तौला। यदि उस आयतनमें उद्जनके ४ अणु होंगे तो अज्ञात वायव्यके भी चार ही अणु होंगे। अतः उद्जन और अज्ञात वायव्यके अणुभारमें जो अनुपात होगा वही दोनोंके समान आयतनके भारमें भी होगा। अर्थात्—

$$\frac{\text{अज्ञात वायव्यका अणुभार}}{\text{उद्जन का अणुभार}} = \frac{\text{सम आयतनमें अज्ञात वायव्यकी तौल}}{\text{सम आयतनमें उद्जनकी तौल}} = \frac{त_१}{त_२}$$

पर उद्जनका अणुभार २ माना गया है क्योंकि इसका परमाणुभार एक है और इसके एक अणुमें दो परमाणु हैं।

$$\therefore \text{अज्ञात वायव्यका अणुभार} = २ \times \frac{त_१}{त_२}$$

$$= २ \times \text{वाष्प घनत्व।}$$

ड्यूमाकी विधिमें इसी सिद्धान्त का उपयोग किया गया है। इस विधिमें एक काँचका गोला लेते हैं जिसमें २०० घन. श. मी के लगभग द्रव या गैस आसके। इस गोलेको तौल लेते हैं। तौलनेसे पहले यह आवश्यक है कि इसे अच्छी तरहसे सुखालिया जाय। इसविधिसे उनका ही अणुभार निकाला जा सकता है जो साधारण

तापक्रमपर ही वाष्पी भूत किये जा सकते हैं। ऐसे अज्ञात पदार्थके १० घन. श. मी इस गोले में डाल दिये जाते हैं। चित्र में देखनेसे पता चलेगा कि
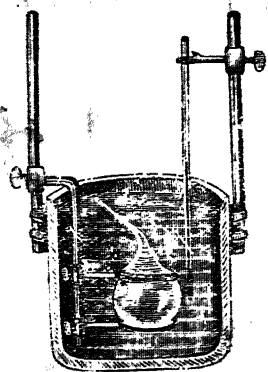
इस गोलेमें एक पतली टोंटी होती है। जब अज्ञात पदार्थ गोलेमें डाल दिया गया तो फिर इसे पानी में रखकर गरम करते हैं। गरम करनेसे अज्ञात पदार्थ वाष्पी भूत होता है। इस पदार्थको कथनांकसे ३०°–४०°श अधिक ही गरम करना चाहिये गरम करते समय पदार्थकी भाप टोंटीसे बाहर निकलती हुई दिखाई पड़ेगी। जब भाप निकलना बन्द हो जाय तो टोंटीको पिघला कर बन्द कर दो। ऐसी सावधानीसे बन्द करना चाहिये कि कहीं भी छेद न रह जाय। इस समय पानीका तापक्रम भी ले लो। गोलेको पानीसे निकालकर और पोंछ सुखाकर तौल लो। तौलनेके पश्चात् गोलेकी टोंटीको शुद्ध पानीमें डुबोकर थोड़ा सा तोड़ दो। तोड़नेसे गोलेके अन्दर पानी अपने आप घुस आवेगा क्योंकि अन्दरकी भाप द्रवी भूत हो जावेगी और शून्यकी पूर्ति जलसे हो जावेगी। अस्तु, इस प्रकार गोलेको जलसे भरकर फिर तौल लो। वायुमंडलका दबाव और तापक्रम भी मालूम करो।

इस प्रकार प्रयोग करनेसे अज्ञात पदार्थके अणुभारकी गणनाकी जा सकती है। हरोपिपील या क्लोरोफार्मके अणुभारका हिसाब निम्न प्रकार लगाया गया था।

उदाहरण–१. क्यूमाके गोलेका भार=४०·६५५५ ग्राम

२. क्यूमाके गोले और हरोपिपीलकी वाष्पका भार=४१·७३१८ "

३. पानीका तापक्रम =८६°श

४. पानीसे भरे हुए गोलेका भार=३०६·६१ ग्राम

५. वायुमण्डलका दबाव=७५२·३ मि. मी.

६. वायुमण्डलका तापक्रम=३०·६°श

∵ गोलेमें जितना पानी आया उसका भार=३०६·६१—४०·६५५५ ग्राम

=२६८·६५४५ ग्राम

∴ ३०·६°श तापक्रम और ७५२·३ मि. मी. दबावपर गोलेकी समाई=२६८·६५४५ घन. श. मी.

सारिणियोंके देखनेसे पता चलता है कि इस तापक्रम और दबावपर वायुका आपेक्षिक घनत्व ०·००११४३ होता है।

अतः गोलेमें जितना वायु आवेगा उसका भार=२६८·६५४५ × ०·००११४३

=०.३०७० ग्राम

अतः खाली (वायु-शून्य) गोलेका भार=४०.६५५५—०·३०७०

=४०·६४८५ ग्राम

अतः हरोपिपीलकी वाष्पका भार=४१·७३१८—४०·६४८५

=१·०८३३ ग्राम

१ घन. श· मी उदजनका ७६० मि. मी दबाव और ०°श (या २७३° परमांश) तापक्रम पर भार ०·००००६ ग्राम होता है अतः २६८·६५४५ घन. श. उदजनका ७५२·३ मि. मी· दबाव और ८६° श (या ३६२° परमांश) पर भार

$$=\frac{७५२ \times २६८·६५४५ \times २७३ \times ०·००००६}{७६० \times ३६२}$$

=०·०१८४७ ग्राम।

अतः हरोपिपीलका वाष्पघनत्व

$$=\frac{१·०८३३}{·०·०१८४७}=५८·६$$

अतः हरोपिपीलका अणुभार=५८.६×२=११७.२
हरोपिपील (क उ ह$_3$) का वास्तविक

अणुभार=११९.५

अतः १.८°/$_0$ त्रुटि

ड्यूमाकी विधिसे यदि सावधानीसे प्रयोग किया जाय तो ५-१० प्रति शतकसे अधिक त्रुटि नहीं आती है। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि उन्हीं पदार्थों का अणुभार इस विधिसे निकाला जा सकता है जो आसानीसे वाष्पीभूत हो सकते हैं, जैसे ज्वलक, कर्बन चतुर्हरिद, हरोपिपील, बानजावीन आदि।

विक्टर मेयरकी विधि

विक्टरमेयरकी विधि भी लगभग उसी सिद्धान्तके आश्रित है, जिसके आश्रित ड्यूमाकी विधि थी। यह विधि अत्यन्त उपयोगी है।

इसकी अच्छाई इस बातमें है कि अणुभार बहुत शीघ्रतासे निकाला जा सकता है और अज्ञात पदार्थकी मात्रा भी अधिक नहीं लेनी पड़ती है। इस प्रयोगका सारांश यह है कि अज्ञात पदार्थका ज्ञात भार लेकर उसे वाष्पी भूत करते हैं। इस की वाष्प जितना स्थान घेरेगी उतना वायु बाहर निकल आवेगा। इस वायुका वायु-मण्डलके दबाव और तापक्रम पर आयतन नाप लेते हैं। इस प्रकार वाष्पका आयतन और भार दोनों ज्ञात हो जाता है। और पहिली विधिके अनुसार वाष्पघनत्व और अणुभारकी गणनाकी जा सकती है।

इस कामके लिये जो यन्त्र काममें लाया जाता है वह चित्रमें प्रदर्शित किया गया है। इसमें शीशेका लम्बा बल्ब होता है जिसमें एक मोटी नली होती है। बल्बमें थोड़ीसी कांचकी रुई रक्खी होती है। इस नलीके ऊपरके सिरेके पास एक मुड़ी हुई पतली पार्श्वनलिका लगी रहती है इसके मुंहको पानी की टबमें डुबोते हैं। मोटी नलीके मुँहमें रबरका काग कस दिया जाता है। इस बल्ब युक्त नलीको फिर एक बड़े काँचके खोलके अन्दर रखते हैं। इस खोलके भी नीचे एक गोल बल्ब होता है। इसके मुंहमें भी काग कसा होता है और भाप बाहर आनेके लिये एक पतली नली भी लगी होती है।
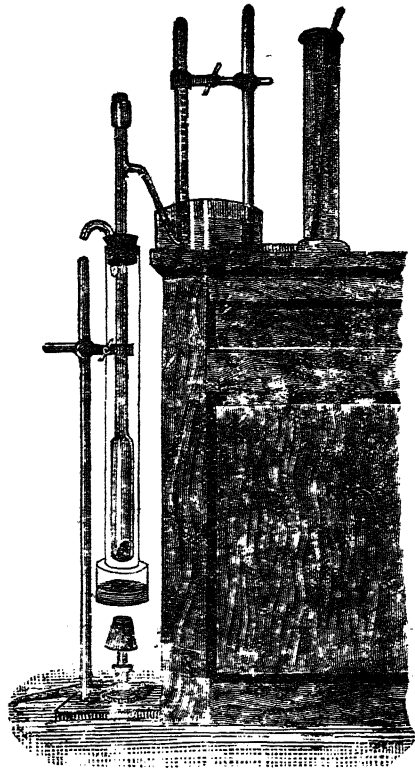
खोलके बल्बमें पानी भर कर गरम करते हैं और इसे तब तक उबालते रहते हैं जब तक पार्श्व नलिकासे हवाके बुदबुदे निकलते रहते हैं। जब बुदबुदे निकलने बन्द हो जायं तो समझना चाहिये कि यन्त्रमें तापक्रम स्थिर है। जब ऐसा हो जाय तो पार्श्व नलीके मुंहपर निशान लगा हुआ बेलन पानीसे भर कर रख देते हैं।

अज्ञात पदार्थको, जिसका अणुभार निकालना है, एक छोटीसी पतली शीशीमें जिसमें

कांचकी डाट लगी होती है लेते हैं। इस पतली शीशीको होफमैनकी शीशी कहते हैं। इसमें अज्ञात पदार्थ भर कर तौल लेते हैं। नलीके ऊपरी सिरेमेंसे रबर काग को निकालकर 'होफमेन की शीशी' को इसके अन्दर फिसला देते हैं। और काग फिर बन्द कर देते हैं। बल्बमें कांच की रुई रक्खी रहने के कारण होफमेन की शीशी डालते समय यन्त्रके टूटने की आशंका नहीं रहती है।

होफमेनकी शीशी ज्योंही बल्ब में पहुँचेगी, उसकी डाट खुल जायगी और उसमें भरा हुआ द्रव वाष्पीभूत होने लगेगा। इसकी वाष्प यन्त्रकी वायुको बाहर निकालेगी। वायु निशान लगे हुए बेलन में चढ़ेगा। जब वायु का और निकलना बन्द होजाय तो निशान लगे हुए बेलन के मुंह को हथेली से दबाकर सावधानी से पानी से भरे हुए एक बड़े टब में डुबोदो, और बेलन के अन्दर और बाहरके पानीकी सतह एक करके वायुका आयतन पढ़ लो। टबके पानी का तापक्रम भी मालूम कर लो।

इस विधि से कर्बनचतुर्हरिद का अणुभार निकाला गया प्रयोग के दृष्टांक निम्न प्रकार थे।

दृष्टांक—१. होफमेन की शीशी का भार= ०·५५६० ग्राम

२. होफमेन की शीशी + कर्बन चतुर्हरिद= ०·७३७६"

∴ कर्बन चतुर्हरिदका भार =०·१६१६"

३. निकाली हुई वायु = २८ घन. श. मी

४. पानी का तापक्रम = ३०°श

५. वायुमंडल का दबाव—७५२.७ मि. मी.

६. ३०°श तापक्रम पर जलका वाष्प दबाव = ३१·७ मि. मी.

गणना—

३०° श (या ३०३° परमांश) तापक्रम और (७५२·७—३१·७=)७२१ मि. मी. दबाव पर २८ घन. श.मी उद्जन का भार

$$\frac{२८ \times ७२१ \times २७३ \times ·००००९}{७६० \times ३०३} = ०·००२१५५ \text{ ग्राम}$$

∴ कर्बन चतुर्हरिदका वाष्पघनत्व=

$$\frac{०·१६१६}{०·००२१५५} = ७५$$

∴ कर्बन चतुर्हरिदका परमाणुभार=७५ × २=१५०

कर्बन चतुर्हरिद (क ह४) का ठीक अणुभार १५४ है अतः त्रुटि २·६%

हिमांककी अवकर्ष विधि

पानी या बर्फका हिमांक साधारणतया ०°श है पर इसमें यदि कोई अन्य पदार्थ मिला दिया जाय तो हिमांक कुछ कम हो जायगा। हिमांकके कम होनेको अवकर्ष कहते हैं। बर्फमें यदि शर्करा १ ग्राम डाल दी जाय तो इसमें कुछ अवकर्ष होता है पर यदि शर्कराकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो अवकर्ष पहलेकी अपेक्षा कुछ अधिक होगा। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि यदि प ग्राम पानीमें ऐसे पदार्थके भ ग्राम डाले जायं जिसका अणुभार अ हो और हिमांकमें व° अवकर्ष हो तो

$$अ = \frac{क \times भ}{व \times प}$$

इसमें क स्थिर मात्रा है जो पानीके लिये १८५० मानी गई है। यदि पानीके स्थानमें अन्यद्रव लिये जायं तो उनके लिये क की मात्रा भिन्न भिन्न होगी। कुछ घोलकोंके लिये क का मूल्य नीचे दिया जाता है:—

घोलक	क	हिमांक
जल	१८५०	०°
बानजावीन	५०००	५·४८°
सिरकाम्ल	३९००	१६·७५°
नफथलीन	६९००	७९·६°
द्विन्योल	७२००	३९·६°
नोषोबानजावीन	६९१०	५·२८°

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि हिमांक में इतना कम अवकर्ष हुआ करता है कि साधारण तापमापकोंसे यह ठीक ठीक पढ़ा भी नहीं जा सकता है। इस कामके लिए विशेष प्रकारका

तापमापक बनाया गया है जिसे 'बेकमेन तापमापक' कहते हैं। इस तापमापकमें ५°—६° के ही अंक रहते हैं और हरएक अंश १०० भागों में विभाजित रहता है। इस ताप मापक के सिरे पर पारद का एक संचकअ रहता है जिसको हिलाकर तापमापकमें पारद उपयुक्त स्थान पर कर लिया जाता है।

हिमांकका अवकर्ष निकालनेके लिये प्रयोग इस प्रकार किया जाता है। इसका यंत्र चित्रमें दिखाया गया है। इसमें एक बड़ा कांचका घट
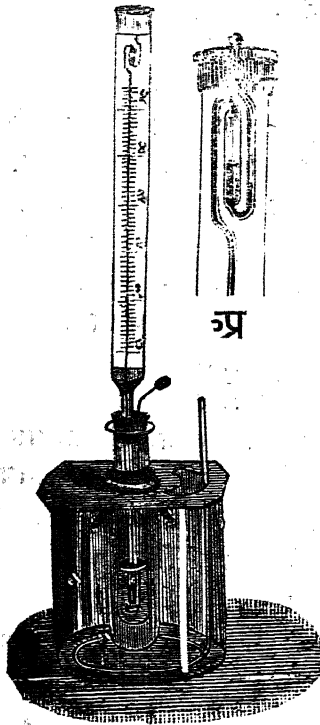
होता है जिसमें एक विक्षोभक लगा रहता है। घटके मुँहपर ढकनेमें विक्षोभकसे टारनेके लिये एक बड़ा छेद होता है। और ऐसा गोल सुराख होता है जिसमें मोटी परखनली कसी जा सकती है। इस मोटी परखनलीके अन्दर एक पतली परखनली होती है। इस नलीमें अज्ञात पदार्थ डालने के लिये एक पार्श्वनली लगी रहती है। इस नलीमें भी बिह्न लगे रहते हैं जिससे इसमें भरे हुए द्रव घोलकका आयतन ज्ञात हो सकता है। टारनेके लिये एक विक्षोभक भी लगा रहता है। इसी पतली नलीमें बेकमेन तापमापक द्रवमें डुबो देते हैं।

बाहरके घटमें बर्फ़ और नमकके टुकड़े पीस कर ख़ूब ठसाठस भर देते हैं। बेकमेन तापमापक से तापक्रम पढ़ लिया जाता है। तत्पश्चात् उस पदार्थको जिसका अणुभार निकालना होता है तौलकर घोलक द्रवमें पार्श्वनली द्वारा सहारेसे डाल देते हैं। यह याद रखना चाहिये कि तापक्रम लेते समय द्रवके टारनेकी सदा आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह पता चल सकता है कि हिमांकमें कितना अवकर्ष हुआ है।

इस विधिसे गन्नाशर्करा ($क_{१२}$ $उ_{२२}$ $ओ_{११}$) का अणुभार निकालने पर दृष्टांक इस प्रकार मिले—

१· जल घोलक=२५ घन. श. मी=२५ ग्राम
२. (गन्ना शर्करा + नली) की पहली तौल= ३·४४४८ ग्राम
३. ,, ,, दूसरी तौल=२·८२४४ ,,
अतः शर्करा =०·६२०४ ग्राम
४. पानी का हिमांक =४·२३° श
५ शर्करा डालनेके बाद हिमांक=४·०९५°
हिमांक में अवकर्ष=०·१३५° श

∴ गन्ना शर्कराका अणुभार = १८५० × ०·६२ ४ / २५ × ०·१३५
=३४०

इसका ठीक अणुभार ३४२ है अतः त्रुटि ०·६% है।

क्वथनांककी उत्कर्ष विधि

इस विधि का भी सिद्धान्त वही है जो हिमांककी अवकर्ष विधि का है। घोलकमें जब कोई अन्य पदार्थ डाल दिया जाता है तो उसका क्वथनांक पहलेकी अपेक्षा बढ़ आता है। प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि यदि प ग्राम घोलकमें ऐसे पदार्थके भ ग्राम डाले

जायँ जिसका अणुभार अ हो और यदि क्वथनांकमें उ उत्कर्ष हो तो—

$$अ = \frac{क \times म}{उ \times प}$$

इसमें क स्थिर मात्रा है जिसका मूल्य भिन्न भिन्न घोलकों के लिये भिन्न भिन्न है जैसा कि निम्न अङ्कों से प्रकट है:—

जल—५२०
मद्य—११५०
ज्वलक—२११०
सिरकाम्ल—२५३०
बानजावीन—२६७०
नीलिन—३२२०

इस प्रयोग के करने के लिये निम्न प्रकारसे सामिग्री प्रबन्धित करनी पड़ती है। यन्त्रमें एक

कांचका बाहरी खोलक होता है जिसमें एक पार्श्व-नली लगा रहती है। इसके अन्दर दूसरी निशान लगी नली होती है जिसमें घोलक भरा जाता है। इसीमें एक तापमापक ख जिसमें ०·१° और ·०१° तक के अङ्क पढ़े जाते हैं लगाया जाता है और एक नली द्वारा शुद्ध घोलक की भाप इसमें प्रवाहित की जाती है। यह भाप ऊपर बताई हुई पार्श्वनली द्वारा स्रवित कर दी जाती है। भाप बनाने के लिये घोलक को एक बोतलमें गरम करते हैं जिसमें एक ऊँची रक्षक नली लगा देते हैं। जब घोलक उबलने लगे तो इसका तापक्रम पढ़ लिया जाता है। फिर जिस पदार्थ का अणु-भार निकालना हो उसे तौलकर इसमें डाल देते हैं। क्वथनांकमें जितनी वृद्धि हो वह भी पढ़ली जाती है। घोलक का आयतन निशान लगी हुई नलीमें पढ़ लेते हैं।

इस विधिसे अणुभार निकालते समय गन्ना शर्करा के लिये निम्न दृष्टांक प्राप्त हुए—

१. नली + शर्करा की पहली तौल=४·६५६६ ग्राम

२   ,,   ,,   दूसरी ,, =३·२३३६ ,,

∴ शर्करा =१·७२६० ,,

३ पानी का क्वथनांक=९९·१° श

४ शर्करा डालनेके बाद क्वथनांक=९९·३२६° श

∴ क्वथनांकमें=०·२४६° श उत्कर्ष

५ घोलक जलका आयतन=११ घन. श. मी

६   ,,   ,,   भार=११ ग्राम

∴ शर्करा का अणुभार=

$$\frac{५४० \times १·७२६०}{११ \times ०·२४६} = ३४$$

उत्पादन (Production)

भूमकी उपज

[ले० श्री विश्वप्रकाश, विशारद]

मनुष्यकी शक्तियां परिमित हैं परन्तु यदि परिमित शक्तियोंका उचित उपयोग किया जाय तो उन्हींसे मनुष्य बहुत कुछ कृतकार्य हो सकता है। मनुष्यकी शक्तिके बाहर

है कि वह किसी वस्तुका निर्माण कर सके। वह तो केवल उपयोगिता की ही वृद्धि करता है और जिसको हम नाश हो जाना कहते हैं वह भी केवल उपयोगिता का ही नाश हो जाना है न कि उस वस्तुका। लकड़ी सृष्टिने हमको दी है, परन्तु लकड़ी होने की अवस्थामें उसकी उपयोगिता बहुत कम है। यदि उसी लकड़ीसे हम मेज़ या कोई सन्दूक बनालें तो उसकी उपयोगिता कई गुनी हो जाती है—क्योंकि लकड़ीके मूल्यसे मेज़ या सन्दूकका मूल्य कई गुना अधिक है। इसी प्रकारसे पृथ्वीमें उत्पन्न करनेकी शक्ति विद्यमान है; मनुष्य का कार्य्य केवल यही है कि पृथ्वीमें बीज बोकर उस शक्तिका उपयोग करे। मेज़के टूट जानेपर हम कहते हैं कि मेज़ नामक वस्तुका नाश होगया। ऐसा अनुचित ही है क्योंकि जिस लकड़ीकी मेज़ बनी थी वह अब भी विद्यमान है। अन्तर केवल इतना ही है कि उसकी उपयोगिता पूर्वकी अपेक्षा कम है।

उत्पादनके साधन

अर्थशास्त्र वेत्ताओंने उत्पादनके चार साधन माने है

(१) भूमि
(२) मज़दूरी
(३) पूंजी
(४) व्यवस्था।

इन चारों साधनोंपर अब विशेष रूपसे विचार किया जायगा।

उत्पादनमें भूमिका स्थान

उत्पादनके लिये भूमिका होना अनिवार्य है। पूंजी तथा व्यवस्थाके बिना मनुष्यका कार्य्य चल सकता है। परन्तु भूमि ऐसा साधन है बिना जिसके कार्य्यका आरम्भ ही नहीं हो सकता। कार्य्य करनेके लिये स्थानकी आवश्यकता होती है। वर्त्तमान फैक्टरी मीलोंका स्थान घेरती है। जर्मनी, इङ्गलैंड और अमरीकामें फैक्टरीके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक जाना सरल कार्य्य नहीं है। एक एक पुतलीघरोंमें हज़ारोंकी संख्यामें मज़दूर कार्य्य करते हैं। कृषिमें तो भूमि मुख्य वस्तु है। भूमिमें ही अनाज बोते हैं और उससे अन्न उत्पन्न करते हैं।

भूमिके गुण

अर्थशास्त्रमें भूमिसे तात्पर्य है उन वस्तुओंसे जो प्रकृतिने हमको दी हैं। प्रकृतिकी दी हुई वस्तुयें परिमित मात्रामें हैं। उनका घटना या बढ़ना सम्भव नहीं है। भूमिकी भी एक मात्रा है जो बढ़ नहीं सकती। एक देशमें जितनी भूमि होगी उससे अधिक होना सम्भव नहीं। हम अन्य वस्तुओंका निर्माण कर सकते हैं पर भूमि जितनी हमारे पास है उसीसे हमको कार्य्य निकालना है। यह दूसरी बात है कि देशका बहुत सा हिस्सा जंगल या दलदलोंसे घिरा हो। उनको दूर करके हम उस भूमिका उपयोग अवश्य कर सकते हैं पर इसके यह माने नहीं है कि देशमें पूर्वकी अपेक्षा अधिक भूमि आगई क्योंकि भूमिकी मात्रा बढ़ नहीं सकतीं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति ने सभी भूमिके भाग समान उपजाऊ नहीं बनाये। किसी स्थानपर कम पानी बरसता है; कहींपर दलदल भरे रहते हैं; कहीं सूर्य्यकी किरणोंके न पहुँचनेके कारण उपज पक नहीं पाती, कहीं उष्णताकी अधिकतासे कोई भी पदार्थ नहीं उग सकता। कहनेका तात्पर्य है कि प्रत्येक भागको सृष्टि ने निश्चित जल, वायु, सर्दी, गरमी, तथा प्रकाश दिया है। इनमें भी किसी प्रकारका अन्तर नहीं पड़ सकता। क्योंकि न हम जल वर्षा सकते हैं और न प्रकाशका प्रबन्ध कर सकते हैं। तिसपर भी यदि उद्योग किया जाय तो पूर्वकी अपेक्षा अधिक लाभ हो सकता है।

भूमिका प्रत्येक भाग समान उपजाऊ नहीं है। कहींकी भूमि पथरीली, कहींकी बालू मिली, कहींपर दलदल इत्यादिक होते हैं। अन्न उत्पन्न करनेके लिये ज़मीनमें कुछ रासायनिक पदार्थ पाये जाते

हैं। सभी जगह यह समुचित मात्रामें नहीं होते। इसमें मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है।

अर्थशास्त्र वेत्ताओंका विचार है कि भूमिकी उत्पादन शक्तिका नाश नहीं होता। जो शक्ति उनमें पूर्व थी वह सदा विद्यमान रहेगी।

मनुष्यका कौशल

भूमिके उपजाऊ बनानेमें मनुष्य बहुत कुछ सफल हुये हैं। भूमिमें दो प्रकार के गुण होते हैं (१) जो प्रकृतिने भूमिको दिये हैं (२) जो मनुष्यके प्रयत्नोंके फल हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है भूमिको प्रकृतिने कुछ गुण दिये हैं। प्रकाश, जल, ऊष्णता आदि सभी भूमिके भागोंको समान नहीं मिले हैं। परन्तु इनमें मनुष्य बहुत कम सफल हो सका है। जल-की कमीको दूर करनेके बहुतसे उपाय किये गये हैं। कई स्थानोंपर जंगल बसाये गये हैं जिससे जल अधिक बरसनेकी सम्भावना हो। नहर इत्यादिकके खुलनेसे जलकी कठिनाई तो बहुत कुछ दूर हो गई है। नदीके किनारेके खेत अधिक उपजाऊ होते हैं और दूरके खेत जलके न मिलने-के कारण ऊसर पड़े रह जाते हैं। इसके दूर करनेके लिये नहरें खोदी गई हैं और जो खेत दूर थे वे अब जलके समीप आगये हैं।

ज़मीनमें रसायनिक पदार्थ विद्यमान होते हैं जिनसे अन्न उत्पन्न होता है। पाश्चात्य देशके वैज्ञानिकोंने इस बातको अध्ययन किया है कि किन वस्तुओंके पैदा करनेके लिये कौनसा पदार्थ किस मात्रामें होना चाहिये। जो पदार्थ कम मात्रामें पाया जाता है वह उस ज़मीनमें लाकर मिला दिये जाते हैं, जैसे कि सोडा और पोटाश (Soda & Potash) की यदि कमी पायी गई तो ये वस्तुयें मिट्टीमें मिलाकर ज़मीनको उपजाऊ बना लिया जाता है।

अभाग्यवश हमारे देशमें इस विषयके अन्वेषण नहीं होते। सौ वर्षके लगभग हुये कि इङ्गलैंड देशमें कृषि-सम्बन्धी अनेकों अन्वेषण किये गये। इन अन्वेषणोंके फल स्वरूप एक ही खेत-से अनेकों फ़सलें काटी गईं और ऐसा करनेसे भी पृथ्वीकी उपजपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वहांपर गाजर बोकर देखा गया कि इसके बोनेसे पृथ्वी] अपनी खोई हुई शक्तिको पा लेती है। साथ ही गाजरकी खेती भी हो जाती है। जो भूमि अनावश्यक तथा ऊसर समझी जाती थी उसपर मट्टीकी तहें बिछा बिछा कर खेती होने लगी है।

यहीं नहीं हमारे देशके लोग उन यंत्रोंका उपयोग नहीं करते जिनका उपयोग अमरीका आदिमें होता है। हमारे हल छोटे और भद्दे बने होते हैं। वहांपर उन यंत्रोंसे एक मनुष्य उतना कार्य्य कर सकता है जितना यहांपर हज़ारों नहीं कर पाते। हमारे देशके किसान कंजूस हैं और जिसमें उनको रुपया व्यय करना चाहिये उसमें व्यर्थ कंजूसी करके अपनी हानि करते हैं। बुरी तरहसे खेती करनेसे पृथ्वीकी उपजमें भी कमी आजाती है।

न्यून प्राप्तिका सिद्धान्त

(Law of Diminishing Returns)

इस सिद्धान्तके अनुसार यदि हम पूंजी और श्रममें वृद्धि करदें तो उपज अनुपातसे अवश्य ही कम होगी। एक क्षेत्रपर ५०) वार्षिक व्यय करनेसे १०० मन अन्न उत्पन्न होता है। यदि उसी क्षेत्रपर हम ५०) के स्थानमें १००) व्यय करें तो अन्न २०० मन हिसाबसे होना चाहिये। पर ऐसा नहीं होता क्योंकि दूसरी बार १०० मनसे कम अन्न पैदा होता है।

इसी कारणसे खेती करने वाले बहुत सी भूमि ले लेते हैं। थोड़ी भूमिपर अधिक व्यय करनेसे आयका वह अनुपात नहीं रहता। भूमिके पाने-के लिये वह अधिक भी व्यय करनेको तैयार रहते हैं। पर यह तभीतक संम्भव है जब कि भूमिकी अधिकता हो। यह कहा जा चुका है कि भूमिकी

मात्रा नियमित है और बढ़ नहीं सकती। इसी लिये जब कि देशकी सब भूमि घिर जाती है तो उसका मिलना कठिन हो जाता है। मनुष्योंकी जन संख्या बहुत जल्दी बढ़ती है। इङ्गलैन्ड देश पहले अपने निवासियोंको भोजनका प्रबन्ध कर सकता था। पर जनसंख्याके बढ़नेसे इनका प्रबन्ध होना दुर्लभ हो गया। जब देशकी सब भूमि घिर जानेपर भी भोजनका प्रबन्ध नहीं हो पाता तो लोग दो ही बातें कर सकते हैं:—

(१) नये अन्वेषणोंसे पैदावारकी वृद्धि की जाय।

(२) अन्य देशोंमें जाकर लोग बस जांय।

नये अन्वेषणोंका उद्देश्य होता है कि पूर्वकी अपेक्षा अधिक उपज पैदा हो। उसी भूमिसे हमको उपजमें इतनी वृद्धि करनी है जो कि नये पैदा हुए मनुष्योंके लिये समुचित हो। जिस भूमिपर हमने पहले ५०) व्यय किया था उससे १०० मन अनाज पैदा होता है। यदि इसीपर दुबारा हम ५०) और व्यय करें तो १०० मनसे कम अनाज पैदा होगा। मानलिया जाय कि ८० मन पैदा हुआ। इस प्रकार २० मनकी हानि हुई। अन्नकी आवश्यकता होनेसे इस हानिके होते हुये भी हम ५०) उसपर और व्यय करेंगे। ऐसा करनेपर भी थोड़ेसे मनुष्य रह जांयगे जिनको भोजन न मिलैगा। उनके लिये भोजनका प्रबन्ध होना आवश्यक है। इसलिये लोग १००) व्यय करनेके स्थानमें १५०) व्यय करेंगे। तीसरी बार ५०) अधिक करनेसे केवल ६० मन अधिक अनाज उत्पन्न होगा। इसकी सारणी बनेगी:—

व्यय	प्राप्ति (मनमें)
५०)	१००
५०) + ५०) = १००)	१०० + ८० = १८०
५०) + ५०) + ५०) = १५०)	१०० + ८० + ६० = २४०
५०) + ५०) + ५०) + ५०) = २००	१०० + ८० + ६० + ४० = २८०

इस सारणीके देखनेसे यह पता चलता है कि एक क्षेत्रपर अधिक पूंजी व्यय करनेसे हमारी प्राप्तिका अनुपात कम होता जाता है।

सृष्टिकी आदिसे अबतक मनुष्य जिस स्थानपर अधिक सुगमतासे भोजन पा सकते हैं वहींको चले जाते हैं। इतिहास इस बातका प्रमाण है कि मध्य एशियामें बसी हुई जातियां उस स्थानमें भोजनकी कमीका अनुभव करके वहांसे सारे संसारमें जाकर बस गईं। इंग्लैंडमें जब अधिक मनुष्य होगये तो वे ही जाकर अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदि देशमें जाकर बस गये इन सबका कारण है यह सिद्धान्त।

सिद्धान्तकी अटलता:—यह सिद्धान्त इतना अटल है जिसका रुकना असम्भव है। यह संभव है कि खेतीके नये अन्वेषणोंके प्रयोगमें लानेसे यह थोड़े दिनोंतक रुका रहे पर अन्तमें इसका होना स्वाभाविक ही है। पाश्चात्य देशके विशेषज्ञोंके मस्तिष्क बहुत दिनोंसे लगेहुये हैं कि इस सिद्धान्तको जहांतक दूर हो सके दूर किया जाय। आरम्भमें कुछ सफलता होती है पर अन्तमें यह हो ही जाता है जैसा कि इस सारणीसे पता चलेगा:—

व्ययकी मात्रा प्रत्येक ५०) की	प्राप्ति (मनमें)	
१	१००	अधिक प्राप्ति (Increasing Returns)
२	११०	
३	११५	
४	११०	
५	१०५	न्यून प्राप्ति (Dininishing Returns)
६	१००	
७	९०	
८	८०	
९	६०	

यह सिद्धान्त कृषि ही नहीं प्रत्युत अन्य वस्तुओंपरभी लागू है। सोने, चाँदी, लोहे, कोयले, नमक इत्यादिकी खानोंपर भी इसी नियमका आधिपत्य है। कृषि और खानोंमें अन्तर इतना है कि खाने बहुत शीघ्र समाप्त हो सकती हैं पर भूमिकी कृषि सम्बन्धी उत्पादकताका अन्त नहीं होता। बहुतसे लोगोंका विचार है कि समुद्री मछलियोंको पकड़ते जाओ वे और बढ़ती जायंगी। पर यदि बड़ी बड़ी मशीनोंसे यह कार्य किया जाय तो उसमें भी न्यून प्राप्ति हो जायगी। मकान बनानेमें यदि छोटी ज़मीन लेकर उसमें एक मंजिल दो मंजिल बनाते जाओ तो प्रथम तो लाभ होगा परन्तु कई मंजिलों के बाद उसमें अधिक व्यय होता जायगा।

भूमिकी उपज

कौनसी भूमि उपजाऊ है इसका निश्चय करना सरल कार्य्य नहीं है। वैसे तो इतना कह देना पर्याप्त है कि जिस भूमि पर अधिक अन्न उत्पन्न होसकता है वह अधिक उपजाऊ है। रिकार्डो (Ricardo) तथा अन्य अंग्रेज़ी अर्थ शास्त्र विशेषज्ञोंका कथन है कि जो भूमि अधिक उपजाऊ होगी वहां पर लोग सबसे पहले बसेंगे। अमरीकाका उदाहरण देते हुए एक विशेषज्ञने रिकार्डोके सिद्धान्तको काटना चाहा है। अमरीकामें सबसे पहले नदियोंकी तरेटियां नहीं बसी परन्तु पहाड़ियोंकी घाटियां बसाई गई। इसके होनेका कारण यह था कि नदियोंकी तरेटियोंमें जंगली जानवर बसते थे। पहाड़ों पर रहनेसे इन भयंकर जन्तुओंसे रक्षा हो सकती थी।

वही भूमि सबसे अधिक उपजाऊ है कि जिससे अधिक प्राप्ति हो। अमरीकाके पहाड़ोंकी घाटियां अधिक उपजाऊ थी। नदियोंकी तरेटीपर रहनेसे जितनी अधिक प्राप्ति होती उससे अधिक उनको जंगली जानवरोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये व्यय करना पड़ता। भूमिके अधिक उपजाऊ होने के लिये यह भी आवश्यक है कि खेत बाज़ारके समीप हो।

अ, ब, स, क चार खेत हैं जिनकी पैदावार क्रमसे ५३०, ५५०, ५२० और ५०० मन है। परन्तु ब को बाज़ार माल लानेमें ५० मन व्यय होता है, अ को ३० मन और स को २० मन। क खेत
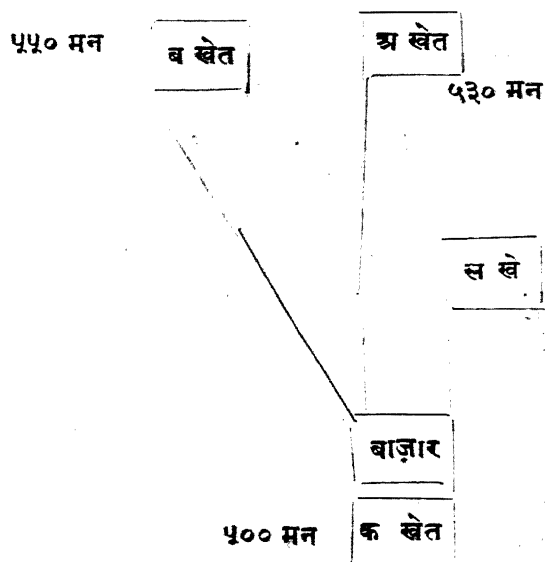
बाज़ारके पास है इसलिये उसको व्यय नहीं उठाना पड़ता। इन चारों खेतोंकी भिन्न भिन्न पैदावार हैं पर ऐसा होनेपर भी वे समान उपजाऊ हैं।

——

फोटोसिन्थेसिस

अर्थात्

पौधोंका भोजन निर्माण।

[पञ्चानन माहेश्वरी, बी. एस-सी.]

धों और प्राणियोंमें प्रधान भेद यही है कि पौधे अपना भोजन, जल, वायु, और सूर्य के प्रकाश से ही अपने आप बना सकते हैं, किन्तु हम लोग अपना भोजन आप नहीं बना सकते। बिना पौधों के प्राणी मात्र का जीवन असम्भव है। क्या मांसाहारी और क्या शाकाहारी सभी अन्त में पौधों ही पर निर्भर हैं। प्रत्येक हरे पौधेमें Chlorophyll क्लोरोफिल नामक एक विशेष वस्तु विद्यमान है जिसके बल से पौधे प्राणी मात्रको जीवनदान दिये हुये हैं। सूर्यकी किरणोंका शोषण करके यह वस्तु पत्तों में एक अद्भुत रासायनिक क्रिया उत्पन्न कर देती है। इस क्रियामें मुख्य बात यही है कि वायुमें विद्यमान Corbon dioxide कारबन डाइक्साइड नामक गैस पत्तोंमें Stomata 'स्टोमेटा निमी अति सूक्ष्म छिद्रों द्वारा प्रवेश करती है और Oxygen 'आक्सीजन' नामी गैस पृथक होकर बाहर निकलती है। यही "कार्बन डाईआक्साइड" अनेक रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्राणी भोजनका सम्पादन करती है।

परीक्षा करनेपर Willstatter विलस्टेटर साहब ने पता लगाया है कि जितने molecule अणु 'कार्बनडाइआक्साइड' के प्रवेश करते हैं, उतने ही अणु आक्सीजन के बाहर निकलते हैं, अर्थात्—

$$CO_2 = O_2 + C$$

कार्बन डाइआक्साइड आक्सीजन कारबन

यही 'कारबन' पौधेमें रह जाता है और इसीसे पौधेका भोजन बनता है।

Elodea "इलोडिया" या Potamogeton पोतामोजीटन जैसे जल में डूबे हुए पौधोंमेंसे धूपमें कुछ गैसके बुदबुदे निकलते हुये देखे जा सकते हैं। इस गैसको इकट्ठा करके, इसकी रासायनिक परीक्षा करनेपर यह पता चलता है कि यह आक्सीजन ही है। इन्हीं पौधोंको यदि प्रकाशसे वञ्चित कर दिया जाय तो इनमेंसे कुछ भी नहीं निकलता है।

क्योंकि यह क्रिया पौधोंके केवल हरे भागोंमें ही हो सकती है, इसलिये इस हरे तत्व अर्थात् Chlorophyll क्लोरोफिलकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। इसके रासायनिक विश्लेषणमें अधिक भाग Willstatter विलस्टेटर साहब और उनके विद्यार्थियोंका ही है। उन्होंने यह भली भांति दिखला दिया है कि क्लोरोफिल एक वस्तु है नहीं किन्तु इसमें चार वस्तुयें (Pigments) मिश्रित हैं:—

(१) $C_{55} H_{72} O_5 N_4 Mg$— क्लोरोफिल 'a'	}	क्लोरोफिलका
(२) $C_{55} H_{70} O_6 N_4 Mg$— क्लोरोफिल 'b'	}	हरा भाग
(३) $C_{40} H_{56}$— Carotin कैराटीन	}	क्लोरोफिलका
(४) $C_{40} H_{56} O_2$ Xanthopqyll ज़ैथोफिल	}	पीला भाग

क्लोरोफिल पानीमें नहीं घुल सकती, परन्तु alcohol स्पिरिट और कुछ अन्य द्रव पदार्थोंमें भली भाँति घुल जाती है।

क्लोरोफिलके निर्माण के लिये नीचे लिखी हुई वस्तुएं आवश्यक हैं:—

(१) प्रकाश—अंधेरेमें पौधोंको उगानेसे उनके पत्ते पीले ही रहते हैं, परन्तु प्रकाशमें लानेसे वे फिर हरे हो जाते हैं। इस दशामें पौधोंको etiolated "ईटिओलेटेड" कहते हैं। क्लोरोफिलके लिये सामान्य प्रकाशकी ही आवश्यकता है। अत्यधिक प्रकाशमें इसका धीरे धीरे विनाश प्रारम्भ होने लगता है।

(२) गरमी—अत्यधिक गरमी वा अत्याधिक ठंड हानिप्रद है। औसत दरजेका तापक्रम tempeature ही सबसे अच्छा है।

(३) लोहू—बिना लोह के लवणों Iron salts के पौधे पीले पड़ जाते हैं। इसको Chlorosis क्लोरोसिस की बीमारी कहते हैं।

फोटोसिन्थेसिसके लिए आवश्यक वस्तुएं

कार्बन डाइआक्साइड और जल हैं। वायुमें सब जगह सब देशोंमें लगभग १०,००० भागोंमें तीन भाग कार्बन डाइआक्साइडके ही हैं। केवल बड़े बड़े शहरोंके पास पास कोयला इत्यादि जलनेसे, अथवा बहुतसे प्राणियोंके श्वाससे इसका परिमाण कुछ अधिक हो जाता है परंतु अधिकतर एकसा ही रहता है। जलके पौधे जलमें घुली हुई कार्बनडाइक्साइडको ही काममें लेते हैं। कार्बनडाइआक्साइड Stomata स्टोमेटा नाली छिद्रों में होकर पत्तोंमें प्रवेश करती है और जड़ों द्वारा लाए हुए ऊपर चढ़ते हुए पानीसे मिलती है।

प्रकाश—चन्द्रमाका प्रकाश पर्याप्त नहीं है इस लिये रातमें फोटोसिन्थेसिस नहीं हो सकता। तौभी सूर्यका प्रकाश नितान्त आवश्यक नहीं है क्योंकि गैसकी अथवा बिजली की बहुत तेज़ रोशनीमें भी फोटोसिन्थसिस हो सकता है परन्तु इन विधियोंका उपयोग मामूली तौरपर नहीं किया जा सकता जबतक कि बिजलीका मूल्य बहुत ही कम न हो जाय।

फोटोसिन्थेसिसमें होने वाली रसायनिक क्रियाएं—

यह अभी ठीक पता नहीं चल सका है कि पहिले बना हुआ पदार्थ क्या है। इस विषयमें विज्ञानवेत्ताओंमें मतभेद है। जहाँतक अनुमान किया जाता है पहिले कार्बनडाइआक्साइड पत्तोंके अन्दर कोषोंमें जलमें मिल कर कार्बोनिकएसिड बनाती है—

$$CO_2 + H_2O = H_2CO_3$$
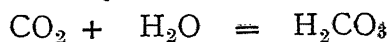
कार्बनडाइआक्साइड + जल = कार्बोनिक एसिड

दूसरी क्रिया यह है कि प्रकाशके तेज से यह कार्बोनिक एसिड किसी तरह reduce 'रिड्यूस' होकर formaldehyde 'फारमेल्डिहाइड' नामक पदार्थमें परिणत हो जाती है और आक्सीजन पृथक होकर बाहर निकल जाती है:—

$$H_2CO_3 = H.COH + O_2$$
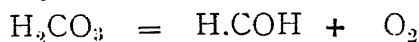
कार्बोनिकएसिड = फारमेल्डिहाइड × आक्सीजन

प्रश्न यह है कि क्या फारमेल्डिहाइड सचमुच ही बनता है? आधुनिक समयमें यह पदार्थ पौधेसे बाहर भी कार्बोनिकएसिड और जलके प्रयोग से ही रासायनिक क्रियाओं द्वारा बनाया जा चुका है, किन्तु पत्तोंके कोषोंमें इस वस्तुके अस्तित्वका कोई प्रमाण अबतक नहीं दिया जा सका है। यह वस्तु जब तक कि बहुत थोड़े परिमाण में न हो कोषोंके लिए बड़ा भीषण विष है और इसलिए यदि यह बनती भी होगी तो बहुत क्षणिक समय के लिए और शीघ्र ही इससे अन्य पदार्थ बन जाते हैं। तौ भी विलस्टैटर साहब बहुत ज़ोर देकर कहते हैं—जितनी कार्बनडाइ आक्साइड पौधे के अन्दर प्रवेश करती है ठीक उतनी ही

आक्सीजन बाहर निकलती है इसलिये फारमेल्डिहाइडके सिवा दूसरा कोई पदार्थ बन ही नहीं सकता।

अनेक विज्ञानवेत्ताओंके परिश्रम करनेपर भी इस विषयमें वैसी ही उलझन बनी हुई है क्योंकि यह मानते हुए भी कि फ़ारमेल्डिहाइडके सिवा दूसरा पदार्थ ऐसी हालतमें बन ही नहीं सकता, इसके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं और फिर यह भी बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि यदि विल्स्टैटर और डिक्सन साहबके मतके अनुसार केवल क्लोरोफिल 'a' और क्लोरोफिल 'b' ही इस क्रियाके लिए आवश्यक हैं तो ऊपर लिखी हुई केराटीन (carotin) और जैन्थोफिल (xanthophyll) नामी वस्तुओं pigments की आवश्यकता ही क्या है। यह नहीं हो सकता कि प्रकृति ने निरर्थक ही इन चारोंको एक ही स्थानपर संयुक्त कर रक्खा हो।

जो कुछ भी हो यदि फ़ार्मेल्डिहाइड बनता ही है तो शीघ्र ही polymerise पालीमेराइज़ होकर इससे शर्करा sugar वा ग्लूकोस glucose बन जाता है:—

$$6H.COH = C_6H_{12}O_6$$

Formaldehyde. glucose
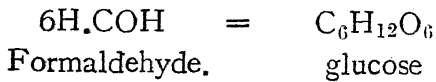
वनस्पति भोजनमें बनने वाली वस्तुओंमें यही प्रथम है जिसके अस्तित्वके रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्रमाण दिये जा सकते हैं और दिए जा चुके हैं। इसीसे पौधेकी अन्य वस्तुएं बनती हैं। यही ग्लूकोज़ glucose धीरे धीरे पौधेके नीचे के भागमें नसों vein द्वारा जाता रहता है। जब यह कोषोंमें बहुत अधिक परिमाणमें इकट्ठा हो जाता है तब इससे स्टार्च starch बन जाता है।

बस यह शर्करा sugar और स्टार्च starch ही वृक्षों और पौधों तथा उनके कारण हम लोगोंके मुख्य खाद्य पदार्थ हैं और रात्रिकालमें जब कि फोटोसिन्थेसिस नहीं हो सकता तब वे पानीमें रसके रूपमें घुल घुल कर पौधोंके सारे भागोंमें पहुँच जाते हैं और जो कुछ आवश्यकतासे अधिक बच रहते हैं वे जड़ और तनेमें ही सुरक्षित रहते हैं।

यह तो है मामूली पौधों की बात। अब हमें भूल न जाना चाहिए कि कुछ मांसभक्षी पौधे भी संसारमें विद्यमान हैं। प्रयागके निकट यूट्रिक्युलेरिया ultricularia और दक्खिन में ड्रोसेरा drosera इनके अच्छे उदाहरण हैं। हो सका तो इनका वृत्तान्त आगेके लेखमें दिया जायगा।

सर्वसिद्धान्तसंग्रह।

[ले० श्री गङ्गा प्रसाद उपाध्याय, एम० ए०]

प्रारम्भ

रतवर्षके लोग आदि सृष्टिसे ही दर्शनशास्त्रके प्रेमी रहे हैं। ऐहिक सम्पत्तिपर लात मारकर जीवन-जगत की गूढ़ समस्याओंके समाधानकी चिन्ता इनको विशेष आनन्द देती है। आजकल भी यह विशेषता सर्वथा लुप्त नहीं हुई।

जिस प्रकार अन्य देशोंमें फ़िलासफ़ीकी उन्नतिका एक क्रमबद्ध और श्रेणीगत इतिहास मिलता है उस प्रकार भारतवर्षमें नहीं मिलता। इसका विशेष कारण यह है कि भारतवर्ष इतना विशाल देश है और आर्य्यजातिकी भिन्न भिन्न स्थानोंमें एक ही युगमें इतनी भिन्न भिन्न अवस्था पाई गई है कि भिन्न भिन्न दार्शनिक सिद्धान्तोंके आधारपर उनका कालक्रम निश्चय करना असम्भव और दोषयुक्त है। परन्तु समस्त संसारके दर्शन-शास्त्रमें शायद ही कोई ऐसा सिद्धान्त हो

जिसके आदि चिह्न हमारे दर्शनोंमें पाये नहीं जाते।

इन सिद्धान्तोंको कालक्रमसे नहीं किन्तु अवस्थाक्रमसे उत्तरोत्तर श्रेणीबद्ध करनेका सबसे पहला काम "सर्वसिद्धान्त संग्रह" में किया गया है। इसमें बारह प्रकरण हैं। और अनात्मवादी चार्वाकसे लेकर केवल-आत्म-वादी शंकराचार्य्यतकके सिद्धान्त दिये गये हैं।

इस पुस्तकके लेखक प्रसिद्ध शारीरिक भाष्य-कार श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी विख्यात हैं। संस्कृत-विद्वानोंकी भी यही सम्मति है। मुझे इसके अन्वेषणका अधिक अवसर नहीं मिला। यद्यपि एक दो श्लोकोंको देखनेसे मुझे कुछ सन्देह अवश्य हुआ है। जैसे पहले अध्यायके २२ वें श्लोकोंमें "भगवत्पाद" शब्द श्रीशङ्करा-चार्य्यके लिये आया है। यदि इसके रचयिता वह स्वयं हैं तो उन्होंने अपने ही लिये "भगवत्पाद" शब्द क्यों लिखा? पहले अध्यायके १७वें श्लोकमें मीमांसाके बीस अध्याय गिनाये हैं अर्थात् पूर्व मीमांसाके बारह और उत्तर मीमांसाके आठ। उत्तर मीमांसाके दो भाग हैं। पहला देवता काण्ड जिसमें चार अध्याय हैं और जिसको सङ्कर्षणने लिखा है। दूसरा वेदान्त जिसमें चार अध्याय हैं और जिसका भाष्य "भगवत्पाद" (श्रीशंकरा-चार्य्यजी) ने किया है। इससे भी प्रतीत होता है कि इसको श्रीशङ्कर स्वामीने नहीं लिखा। क्योंकि शंकर स्वामी पूर्व और उत्तर मीमांसाको एक नहीं मानते। यह मत तो शंकर-मतके विरोधी श्रीरामानुजाचार्य्यका है। वह श्रीभाष्यमें लिखते हैं:—कर्मब्रह्ममीमांसयोरैकशास्त्र्यं (सूत्र१)। अर्थात् कर्म और ब्रह्म मीमांसा मिलाकर एक ही शास्त्र है।

हम इस समय इस विषयपर अधिक नहीं कहना चाहते। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि "सर्व सिद्धान्त संग्रह" पुस्तक उन लोगोंके बड़े लाभ-की है जो थोड़ासा पढ़कर सब दर्शनकारोंके मोटे मोटे सिद्धान्त जानना चाहते हैं।

इससे भी उत्तम और विस्तृत पुस्तक "सर्व दर्शन संग्रह" है जो बहुत पीछे बनी है और जिसमें कई अन्य मतोंका भी वर्णन है। परन्तु वह क्लिष्ट है।

हम इस पुस्तकमें दिये हुये सभी सिद्धान्तोंसे सहमत नहीं हैं। तथापि पुस्तक बहुत उपयोगी है। इसीलिये हमने हिन्दी भाषामें इसका भाषा-न्तर किया है। जहाँतक हमें ज्ञात है कोई भाषान्तर पाया नहीं जाता। हमारा विचार तो यह था कि सर्वदर्शनसंग्रह और सर्व सिद्धान्त संग्रह दोनों-पर एक विस्तृत पुस्तक हिन्दी भाषामें लिख दें। परन्तु अन्यान्य कार्य्योंमें संलग्न रहनेके कारण इतना महत्वपूर्ण कार्य्य किया नहीं जासका। सम्भव है कि किसी समय वह इच्छा पूर्ण हो सके। इसलिये इस समय बिना टिप्पणीके ही केवल भाषान्तर देते हैं।

अथ उपोद्घातप्रकरणम्।

वादिभिर्दर्शनैः सर्वैर्दृश्यते यस्त्वनेकधा।
वेदान्तवेद्यं ब्रह्मेदमेकरूपमुपास्महे ॥ १ ॥

जिस (ईश्वर) को भिन्न भिन्न दर्शनकारोंने भिन्न भिन्न प्रकारसे माना है और जिसको वेदा-न्तमें एक रूप ब्रह्म कह कर समझा गया है उस-की हम स्तुति करते हैं। १।

अङ्गोपाङ्गोपवेदाःस्युर्वेदस्यैवोपकारकाः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाश्रयाः स्युश्चतुर्दश ॥२॥

अङ्ग, उपाङ्ग, उपवेद यह चौदह वेदका अर्थ जाननेमें उपकारक और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके देने वाले हैं।२।

वेदाङ्गानि षडेतानि शिक्षाव्याकरणं तथा।
निरुक्तं ज्योतिषं कल्पश्छन्दोविचितिरित्यपि ॥३॥

वेदके अङ्ग छः हैं शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष, कल्प तथा छन्द ॥ ३ ॥

मीमांसा न्यायशास्त्रं च पुराणं स्मृतिरित्यपि।
चत्वार्येतान्युपाङ्गानि बहिरङ्गानि तानि वै ॥ ४॥

वेदोंके उपाङ्ग या बहिरङ्ग चार हैं अर्थात् मीमांसा, न्यायशास्त्र, पुराण और स्मृति ॥ ४ ॥

आयुर्वेदोऽथर्ववेदश्च धनुर्वेदस्तथैव च ।
गान्धर्ववेदश्चेत्येवमुपवेदाश्चतुर्विधाः ॥ ५ ॥

चार उपवेद हैं आयुर्वेद, अथर्ववेद, धनुर्वेद और गान्धर्व वेद । ५ ।

शिक्षा शिक्षयति व्यक्तं वेदोच्चारणलक्षणम् ।
व्यक्ति व्याकरणं तस्य संहिता पदलक्षणम् ॥६॥

शिक्षासे वेदोंके उच्चारणके नियम ठीक ठीक मालूम होते हैं और व्याकरणसे शब्दोंके लक्षण और शब्दोंके मिलानेके नियम मालूम होते हैं ॥६॥

वक्ति तस्य निरुक्तं तु पदनिर्वचन स्फुटम् ।
ज्योतिश्शास्त्रं वदत्यत्र कालं वैदिक कर्मणाम् ॥७॥

निरुक्तसे वैदिक शब्दोंकी ठीक ठीक व्युत्पत्ति मालूम होती है और ज्योतिषसे वैदिक कर्म करनेका समय मालूम होता है । ७ ।

क्रमं कर्मप्रयोगाणां कल्पसूत्रं प्रभाषते ।
मात्राक्षराणां सङ्ख्योक्ता छन्दोविचितिभिस्तथा ॥८॥

कल्पसूत्रमें वैदिक कर्म करनेका क्रम दिया हुआ है । छन्द शास्त्रमें कौनसा छन्द कितनी मात्राओंका है अथवा कितने अक्षरोंका है यह बात दी गई है ।८।

मीमांसा सर्ववेदार्थ प्रविचार परायणा ।
न्यायसूत्रं प्रमाणादि सर्वलक्षण तत्परम् ॥ ९ ॥

मीमांसामें वेदोंके अर्थोंपर विचार किया गया है और न्याय सूत्रके प्रमाण आदिके लक्षण बताये गये हैं । ९ ।

पुराणं नष्ट शाखस्य वेदार्थस्योद्धृं हणम् ।
कथारूपेण महता पुरुषार्थ प्रवर्धकम् ॥ १० ॥

पुराणोंमें बड़े पुरुषोंकी कथा रूपसे वेदोंके उन अर्थोंके विषयमें जो वेदोंकी खोई हुई शाखाओंके कारण स्पष्ट नहीं है पुरुषार्थको ठीक ठीक बताया गया है । १० ।

वर्णाश्रमानुरूपेण धर्माधर्म विभागतः ।
धर्मशास्त्रमनुष्ठेयधर्माणां तु नियामकम् ॥ ११ ॥

वर्ण और आश्रमके अनुसार धर्म और अधर्मको अलग अलग करके भिन्न भिन्न धर्मोंके नियमका बताने वाला धर्मशास्त्र है । उसका पालन करना चाहिये ॥११॥

हेतुलिङ्गौषधस्कन्धैरायुरारोग्यदर्शकः ।
आयुर्वेदोह्यनुष्ठेयः सर्वेषां तेन बोध्यते ॥ १२ ॥

आयुर्वेदमें रोगोंके कारण, चिह्न तथा औषधियोंका वर्णन करके आयुको नीरोग रखनेका विधान किया गया है । सबको इसका अनुष्ठान करना चाहिये ।१२।

अथर्ववेदोऽन्नपानादि प्रदान मुख तत्परः ।
दक्षिणाज्य पुरोडाश चरु सम्पादनादिभिः ॥ १३ ॥
तत्पालनाच्चतुर्वर्गपुरुषार्थ प्रसाधकः ।

अथर्ववेदमें अन्न, पान, आदिके विभागका वर्णन है । तथा दक्षिणा, आज्य, पुरोडाश, और चरुके सम्पादन तथा उनको पालन करनेसे धर्म, अर्थ काम, मोक्ष रूपी चार पदार्थोंकी प्राप्तिका साधक भी है ॥१३॥

धनुर्वेदो भवत्यत्र परिपन्थि निरासकः ॥ १४ ॥

और धनुर्वेदमें शत्रुको परास्त करनेका विधान है ॥१४॥

सप्तस्वर प्रयोगो हि सामगान्धर्ववेदयोः ।
समेतो लौकिक योगो वैदिकस्योपकारकः ॥ १५ ॥

सामवेद और गान्धर्ववेद दोनोंमें सातों स्वरोंका वर्णन है । गान्धर्वमें कहे हुये लौकिक स्वरोंका समावेश वेदोंका भी उपकारक है ।।१५॥

अङ्गोपाङ्गोपवेदनामेवं वेदैक विशेषता ।
चतुर्दशासुविधासु मीमांसैव गरीयसी ॥ १६ ॥

इस प्रकार अङ्ग, उपाङ्ग और उपवेद सभी वेदोंके आश्रय हैं । सब चौदह विद्याओंमें मीमांसा सबसे बड़ी या उच्च है ।। १६।।

विंशत्यध्याय युक्ता सा प्रतिपाद्यार्थतोद्विधा ।
कर्मार्था पूर्वमीमांसा द्वादशाध्याय विस्तृतः ॥ १७ ॥

मीमांसामें बीस अध्याय हैं और अर्थके विचारसे उसके दो विभाग हैं । पूर्व मीमांसामें कर्मका विषय है और उसमें बारह अध्याय हैं ॥१७॥

अस्यां सूत्रं जैमिनीयं शावरं भाष्यमस्त्वतु ।
मीमांसा वार्त्तिकं भाट्टं भट्टचार्यकृतं हितत् ॥ १८ ॥

इस विषय में जैमिनी के सूत्र हैं और उन पर शवर मुनिका भाष्य है। भट्ट जी का मीमांसा वार्त्तिक है क्योंकि वह (कुमारिल) भट्ट का बनाया है।१८।

तच्छिष्योऽप्यल्पभेदेन शवरस्य मतान्तरम् ।
प्रभाकर गुरुश्चक्रे तद्धि प्रभाकरं मतम् ॥ १९ ॥

कुमारिल भट्ट के शिष्य प्रभाकर गुरु ने शबर मुनि के मतसे कुछ भेद करके एक अलग मत स्थापित किया जिसको प्राभाकर मत कहते हैं।१६।

भवत्युत्तर मीमांसा त्वष्टाध्यायी द्विधा च सा ।
देवताज्ञानकाण्डाभ्यां व्याससूत्रं द्वयोस्समम् ॥२०॥

उत्तर मीमांसमें आठ अध्याय हैं। उसके भी दो भाग हैं देवता काण्ड और ज्ञान काण्ड। इन दोनों पर व्यास के सूत्र हैं।२०।

पूर्वाध्यायचतुष्केण मन्त्रवाच्यात्र देवता ।
सङ्कर्षणोदिता तद्धि देवता कांड मुच्यते ॥ २१ ॥

पहले चार अध्यायोंमें मन्त्रों के देवताओं का वर्णन है। इनको सङ्कर्षण ने वर्णन किया है। इसको देवता काण्ड कहते हैं।२१।

भाष्यं चतुर्भिरध्यायैर्भगवत्पानिर्मितम् ।
चक्रे विवरणं तस्य तद्वेदान्तं प्रचक्षते ॥ २२ ॥

चार अध्यायोंमें भाष्य भगवान् (शङ्कर) ने किया है। इसके सम्बन्धमें जो विवरण किया गया उसे वेदान्त कहते हैं ॥२२॥

अक्षपादः कणादश्च कपिलो जैमिनिस्तथा ।
व्यासः पतञ्जलिश्चैते वैदिकाः सूत्रकारकाः ॥ २३ ॥

अक्षपाद (गोतम), कणाद, कपिल, जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि वैदिक सूत्रकार हैं।२३।

बृहस्पत्यार्हतौ बुद्धो वेद मार्ग विरोधिनः ।
एतेऽधिकारितां वीक्ष्य सर्वे शास्त्र प्रवर्तकाः ॥ २४ ॥

बृहस्पति, अर्हत (जैन) और बुद्ध वेदके विरोधी हैं। अधिकारिता को विचार करके यह यह सब शास्त्र बनाये गये हैं।२४।

वेदाप्रामाण्यसिद्धान्ता बौद्धलोकायतार्हताः ।
युक्तया निरसनीयास्ते वेद प्रामाण्य वादिभिः ॥ २५ ॥

बौद्ध, लोकायत (बृहस्पतिके अनुयायी), अर्हत जैन का सिद्धान्त है कि वेद प्रामाणिक नहीं हैं। इसलिये वेद को प्रमाण माननेवालों को चाहिये कि वह युक्तिसे इनका खण्डन करें।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्व दर्शन ।
सिद्धान्तसंग्रहे प्रथममुपोद्घात प्रकरणम् ॥ २६ ॥

यहां श्री शङ्कराचार्य रचित सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रहका पहला उपोद्घात नामी प्रकरण समाप्त हुआ।

द्वितीयोऽध्यायः

अथ लोकायतिक पक्ष प्रकरणम् ।

लोकायतिकपक्षे तु तत्त्वं भूतचतुष्टयम् ।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुरित्येव नापरम् ॥ १ ॥

लोकायतिक अर्थात् बृहस्पति के मतमें केवल चार भूत ही तत्व हैं अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। इनके सिवाय कुछ नहीं ॥१॥

प्रत्यक्षगम्यमेवास्ति नास्त्यदृष्टमदृष्टतः ।
अदृष्ट वादिभिश्चापि नादृष्टं दृष्टमुच्यते ॥ २ ॥

जो प्रत्यक्ष है वही है। जो प्रत्यक्ष नहीं वह है भी नहीं क्योंकि जब प्रत्यक्ष ही नहीं तो उसका होना माना कैसे जाय ? जो लोग अदृष्ट वादी हैं अर्थात जो उन चीज़ों के अस्तित्व को भी मानते हैं जो प्रत्यक्ष नहीं हैं वह भी अदृष्ट को दृष्ट कहकर नहीं पुकारते। अर्थात् वह अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष तो कहते नहीं फिर उसको मानने के लिये ही क्या हेतु है।२।

क्वापि दृष्टमदृष्टं चेददृष्टं ब्रुवते कथम् ।
नित्यादृष्टं कथंसस्यात् शशशृङ्गादिभिस्समम् ॥ ३ ॥

अगर कहीं अदृष्ट दृष्ट होजाय तो उसे अदृष्ट क्यों कहा जाय। जो नित्य ही अदृष्ट है उसका होना कैसे माना जाय क्योंकि वह खरगोश के सींग आदि के समान है। अर्थात् किसी ने कभी खरगोश के सींग नहीं देखे इसलिये खरगोश के सींग

कोई नहीं मानता। इसी प्रकार जो प्रत्यक्ष नहीं है उसको भी नहीं मानना चाहिये।

न कल्प्यौ सुख दुःखाभ्यां धर्माधर्मौपरेरिह।
स्वभावेन सुखी दुःखी जनोऽन्यत्रैव कारणम्॥ ४॥

लोगों को सुख और दुःखसे धर्म और अधर्म की कल्पना नहीं करना चाहिये। अर्थात् यह नहीं समझना चाहिये कि सुख धर्म करनेसे और दुःख अधर्म करनेसे होता है। मनुष्य स्वभावसे ही सुखी या दुखी होता है। इसका और कोई कारण नहीं है॥४॥

शिखिनश्चित्रयेत को वा कोकिलान् कः प्रकूजयेत्।
स्वभाव व्यतिरेकेण विद्यते नात्र कारणम्॥ ५॥

मोर को कौन चित्रित करता है और कोमल को कौन गाने वाला बनाता है? इसका स्वभाव के सिवाय और कोई कारण मालूम नहीं होता॥५॥

स्थूलोऽहं तरुणो वृद्धो युवेत्यादि विशेषणैः।
विशिष्टो देह एवात्मा न ततोऽन्यो विलक्षणः॥ ६॥

मैं मोटा हूं, बलवान हूं, बुड्ढा हूं, जवान हूं, इत्यादि विशेषणोंसे युक्त शरीर ही आत्मा है। इससे अन्य कोई विलक्षण आत्मा नहीं है॥६॥

जडभूतविकारेषु चैतन्यं यत्तु दृश्यते।
ताम्बूल पूग चूर्णानां योगाद्रागइवोत्थितम्॥ ७॥

जड़ भूतों के मिलनेसे जो चेतनता दिखाई देती है वह उसी प्रकार है जैसे पान, सुपारी और चूने को मिलाने से लाली उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् चेतनता शरीरसे अलग आत्मा का गुण नहीं है किन्तु जड़ पदार्थों के मिलनेसे ही उत्पन्न हो जाती है॥७॥

इहलोकात्परो नान्यः स्वर्गोऽस्ति नरका न च।
शिवलोकादयो मूढैः कल्प्यन्तेऽन्यैः प्रतारकैः॥ ८॥

इस लोकसे परे न तो कोई स्वर्ग है न नरक। शिवलोक आदि की कल्पना उन अज्ञानी मूढ़ों ने की है जो हमारे सिद्धान्त को नहीं समझते॥८॥

स्वर्गानुभूतिर्मृष्टाष्टिद्वं यष्टवर्षवधूगमः।
सूक्ष्मवस्त्र सुगन्धस्रक् चन्दनादिनिषेवणम्॥ ९॥

मीठा भोजन, सोलह वर्ष की युवतियों के साथ समागम, बारीक कपड़े, सुगन्ध, माला, चन्दन आदि का सेवन इन्हीं सब सुखों का नाम स्वर्ग है।९।

नरकानुभवो वैरिशस्त्र व्याध्याद्युपद्रवः।
मोक्षस्तु मरणं तच्च प्राणवायुनिवर्तनम्॥ १०॥

दुश्मन, हथियार, रोग आदि उपद्रवों का अनुभव ही नरक है। प्राणवायुके निकलने पर जो मरना है उसीका नाम मोक्ष है॥१०॥

अतस्तदर्थं नायासं कर्तुमर्हति पण्डितः।
तपोभिरुपवासाद्यैर्मूढ एव प्रशुष्यति॥ ११॥

इसलिए बुद्धिमानों को चाहिये कि इसके लिये प्रयत्न न करें। तप और उपवास आदिसे शरीर को सुखाना अज्ञानियों का काम है॥११॥

पातिव्रत्यादि सङ्केते बुद्धिमद्दुर्बलैः कृतः।
सुवर्णभूमितानादि मृष्टा मंत्रणभोजनम्॥ १२॥
क्षुत्क्षाम कुक्षिभिर्लोकैर्दरिद्रैरुप कल्पितम्।
देवालय प्रपासत्रकूपारामादि कर्मणाम्॥ १३॥
प्रशंसा कुर्वते नित्यं पान्था एव न चापरे।
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्॥१४॥
बुद्धि पौरुषहीनानां जीवकेति बृहस्पतिः।
कृषिगोरक्ष वाणिज्यं दण्डनी त्यादिभिर्बुधः॥ १५॥
दृष्टैरेव सदोपायैर्भोगाननुभवेद्भुवि॥१५३॥

पातिव्रत आदि संकेत दुर्बल बुद्धिमानों को गढ़न्त हैं। स्वर्ण, भूमि आदि का दान निमंत्रणों में मीठा भोजन आदि निर्धन भूखे तथा ख़ाली पेट वाले लोगों ने बना लिये हैं। मन्दिर, प्याऊ, धर्मशाला, कुआं, बाग़ आदि बनाना, इनकी प्रशंसा केवल पथिक (मुसाफिर) लोग ही करते हैं अन्य नहीं। अग्नि होत्र, तीन वेद, तीन दण्ड, भस्म आदि के ढकोसले बुद्धि और पुरुषार्थ हीन मनुष्यों ने जीविका के लिये बनाये हैं। यह बृहस्पति का मत है।

बुद्धिमान लोगों को चाहिये कि खेती, गोरक्षा, व्यापार, प्रबन्ध, नीति आदि प्रत्यक्ष उपायोंसे सुखों को भोगें॥१२—१५३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्वदर्शन सिद्धान्तसंग्रहे लोकायतिकपक्षो नाम द्वितीयं प्रकरणम् ।

यहाँ श्रीशङ्कराचार्य रचित सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रह का लोकायतिक पक्ष नाम दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

भारतीय संगीत

दीपकराग

(श्री हरिनारायण मुकर्जी)

यद्यपि यह अप्रचलित है तथापि इसके षाड़व होनेमें कोई सन्देह नहीं है । जिस प्रकार भैरव-श्री का सम्बन्ध है और मालव-हिंडोलका उसी प्रकार दीपक और मेघका होना ही संभव है । आजकल दीपकके विषयमें कोई विशेष तत्व निकालना कठिन है तथापि उसके आकार और मूर्त्तिके विषयमें पर्यालोचना होना अत्यावश्यक है । जिस प्रकार गान्धार ग्राम केवल देवलोकमें प्रचलित है और मर्त्यलोकमें लुप्त है इस प्रवादके रहते हुए भी तीनों ग्रामोंका व्यवहार सर्वत्र प्रचलित है अर्थात् त्रितंत्री (षड्ज, मध्यम और पंचम) यत्र पहले भी था, अब भी है और भविष्यमें भी रहेगा, उसी प्रकार यदि स्वर प्रस्तार ही रागोंका हेतु माना जाय तब उस प्रस्तारमें दीपक राग अवश्य ही रहना चाहिए। क्योंकि इन प्रस्तारोंके बाहर किसी रागका रहना असम्भव है । भैरव, मालकोष, मेघ, इत्यादि जो छः स्वर रागके नामसे माने जाते हैं वे ओड़व, षाड़व और सम्पूर्ण स्वरोंके प्रस्तारको छोड़कर और कुछ भी नहीं हैं। तब क्या कारण है कि ओड़व प्रस्तारमें मालकोष और हिंडोल सबसे श्रेष्ठ राग कहे जाते हैं ? षाड़व प्रस्तारमें दीपक और मेघ रागको सर्वप्रधान क्यों कहते हैं। और इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रस्तारमें भैरव और श्रीको क्यों श्रेष्ठ कहते हैं ? वास्तवमें मेरे विचारमें ओड़व प्रस्तारोंमें भूपाली, विभाष, मालश्री, सारंग इत्यादि उपर्युक्त ओड़व रागोंसे कुछ हीन नहीं हैं । षाड़व प्रस्तारोंमें पुरिया, मारूवा, ललित वसन्त इत्यादि उक्त षाड़व रागोंसे किसी प्रकार कम नहीं है । सम्पूर्ण प्रस्तारोंमें भी कानड़ा, टोड़ी, जोगिया, कल्याण इत्यादि भैरव और श्रीकी अपेक्षा कुछ कम नहीं हैं । सच तो यह है कि मैं राग रागिनियोंके गुण में कुछ भी प्रभेद नहीं पाया । इसलिए यही अनुमान कर सकते हैं कि ऊपर लिखे हुए छः राग सबसे पहले महादेव और पार्वतीजीके कंठसे गाये गये थे इसी कारण उनको लोग श्रेष्ठ मानते हैं। हमने गुरुसे सुना और सीखा है कि ४ प्रकारके भैरव, ५ प्रकारके श्री, ६ प्रकारके बेलावल, ७ प्रकार के सारंग, ८ प्रकार के कल्याण, ९ प्रकारके नट, १० प्रकारके टोड़ी, १२ प्रकारके मल्लार और १८ प्रकारके कानड़ा होते हैं । वे नीचे दिये जाते हैं—

भैरव—४ प्रकार—भैरव, रामकेलि, जोगिया और विभाष ।

श्री—५ प्रकार—श्री. गौरी, पुरवी, धानश्री, और मारूवा ।

बेलावल—६ प्रकार—यमन, कोकव, देवशाख, लच्छुनशाख, अलहिया और देवगिरि

सारंग—७ प्रकार—वृन्दावनी, मधुमाधवी, सामन्त इत्यादि

कल्याण—८ प्रकार—कल्याण, हम्बीर, केदारा कामोद, पुरिया, भूपाली, हरश्रृंगार और जयन्ती ।

नट—९ प्रकार—नट, छायानट इत्यादि ।

टोड़ी—१० प्रकार—विलासखानी, आशावरी, गुर्जरी, देशी, गान्धारी,

लाचारी, बहादुरी, देवगान्धार, हुसेनी और जौनपुरी।

मल्लार—१२ प्रकार—मेघ, सुरट, देश, धुरिया, गौर, सुर, जयजयन्ती, मियाँ इत्यादि

कानड़ा—१८ प्रकार—सिन्धु, आशावरी, सुहा, सुघराई, भीमपलश्री, सहाना, आड़ाना, बहार, वागश्री, नायकी, दरबारी, हंसध्वनि, सिन्धुड़ा; इत्यादि।

बहुत प्राचीन कालमें हमारी जातीय भाषाओंमें अर्थात् पहले संस्कृत फिर हिन्दी, बङ्गला आदि भाषाओंमें संगीत होता था। मुसलमानोंके समयमें भाषान्तर होकर "वाणी या घराना" शब्दो का व्यवहार होने लगा अर्थात् उस्ताद (गुरु) के अनुसार उनका घराना ढङ्ग व कायदा होने लगा। पठानोंके समयमें फीरोज खाँ नामके एक वीणकार थे। बहादुर खाँ, नासिर अहमद खां उनके शिष्य थे और उन्हींके घरानेकी वीणा बजाते थे और ध्रुपद भी गाते थे। इस घरानेकी वाणी का नाम खंडार (कंधार) वाणी है*। उसके बाद मुगलोंके समयमें तानसेन आदि गुणी और जाफर खाँ, प्यार खाँ, बासत अलीखाँ आदि तंत्रकार वीणा व सुरशृङ्गार बजाते थे और ध्रुपद भी गाते थे। इस घराने की वाणी का नाम गौरहार (गौड़ीय) वाणी है। उसके बाद साहब खाँ, सदर खाँ आदि कलाविद लोग डागर वाणी और मोहर वाणीके ध्रुपद गाते थे। ये सब उस्ताद अपने अपने ढङ्ग स्थिर किये और उसी ढङ्ग पर स्वर लगानेसे नया मधुर भाव उत्पन्न होता है इसीलिए उसी प्रकारकी वाणीका प्रचलन है। इसीको घराना कहते हैं। आजकल इसके बदले नकल ही का व्यवहार हो चला है और इसका कारण यह है कि संगीत विद्या और रचना के नियम (art of composition) की शिक्षा कोई नहीं करता बल्कि सब कोई नकल करते हैं।

उक्त चार वाणियोंको छोड़कर दो और घराने हैं जिनके नाम ढाड़ी और कौवाल हैं। चांद खाँ, सूरज खाँ, ताज खाँ इत्यादि ढाड़ी थे। इस ताज खाँ के बाद और ढाड़ी नहीं हुए।

वाणी चाहे कोई भी हो, मेरी रायमें केवल शुद्ध वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए। यदि शुद्ध शब्दों का व्यवहार किया जाय तो संगीत का अर्थ स्पष्ट समझ सकते हैं और फिर शुद्ध शब्दों के साथ स्वर का ठीक ठीक व्यवहार होनेसे गायक और श्रोता दोनोंके चित्तमें हर्ष, विषाद, उल्लास, क्षोभ आदि नाना प्रकार के भाव उदय होते हैं। अशुद्ध व दुर्बोध, कठोर शब्दोंके साथ मधुर स्वर की योजना करनेसे गायक व श्रोता केवल स्वर ही का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं परन्तु उनके चित्तमें भावकी प्रक्रिया ठीक ठीक नहीं हो सकती।

नीचे छ भागोंमें उक्त छ राग और उनके सम सामयिक और कुछ राग क्रमसे दिये जाते हैं—

१ दिन के प्रथम १० दंड

भैरव, आशावरी, देशकार, विभाष, अलहिया, कोकव, देवगीर, देवशाख, लच्छुन शाख, यमन, जोगिया, रामकेलि, शुक्ल बेलावल इत्यादि।

२ दिन के द्वितीय दण्ड

मालकोष, तिलक, तिलक कामोद, देव गंधार भैरवी, विलास खानी टोड़ी, देशी टोड़ी, गौड़ सारंग, वृन्दाबनी सारंग, सामन्त, सुहा इत्यादि।

३ दिन के तृतीय १० दण्ड

श्री, गौरा, गौरी, जयतश्री, धनाश्री, पलश्री, पुरवी, बरारी, भीमपलश्री, मालश्री, मुलतान, मारुवा इत्यादि।

४ रात्रिके प्रथम १० दंड

हिंडोल, कल्याण, यमनकल्याण, कामोद,

*खंडार वाणीके दो ही तीन ध्रुपद मुझे मालूम हैं। बाकी सबके सब गौरहार वाणीके हैं।

केदारा, छायानट, पुरिया, भूपाली, वसन्त, सिन्धु, सिन्धुड़ा, हरश्रृंगार, हम्बीर इत्यादि

५ रात्रिके द्वितीय १० दंड

आड़ाना, आड़ानाबहार, कौशिकी कानड़ा, वागश्री, हंसध्वनि, हुसेनी, पंचम, पुलिन्दिका, बहार, बेहाग, सोहनी, शंकरा इत्यादि।

६ रात्रिके तृतीय १० दंड

मेघ, खम्बाज, खम्बाजी कानड़ा, जयजयन्ती, परज, भैरव बहार, गौड़मल्लार, देशमल्लार, सुरटमल्लार, नटमल्लार इत्यादि।

पूर्वोक्त मूर्च्छना प्रस्तारोंके साथ इन रागोंका सामंजस्य नीचे दिखाये जाते हैं—

१

भैरव, रामकेलि—शुद्ध सम्पूर्ण— स रा ग मा प धा न

देशकार —शुद्ध षाड़व— स र ग प ध न

विभाष —शुद्ध ओड़व— स रा ग प धा

अलहिया, कोकव, देवगीर, यमन }—शुद्ध सम्पूर्ण— स र ग मा प ध न

देवशाख, लच्छन-शाख, रामशाख } —शुद्ध षाड़व— कोई कोई ओड़व षाड़व कहते हैं } स र ग मा प न

जोगिया —शुद्ध सम्पूर्ण— स रा ग मा प धा ना

लुक्क बेलावल—मिश्र सम्पूर्ण— स र ग मा प ध ना न

२

तिलक —शुद्ध षाड़व— स र ग मा प न

तिलक कामोद—ओड़ब षाड़व— स ग मा प न—न प मा ग र स

देवगान्धार —मिश्र सम्पूर्ण— स रा र गा मा प धा ना

आशावरी टोड़ी—मिश्र सम्पूर्ण— स रा र गा मा प धा ना

विलासखानी टोड़ी, लाचारी टोड़ा }—शुद्ध सम्पूर्ण— स रा गा म प धा न

भैरवी षट टोड़ी, गुर्जरी टोड़ी, गान्धार टोड़ी }—शुद्ध सम्पूर्ण— स रा गा मा प धा ना

बहादुरी टोड़ी—शुद्ध सम्पूर्ण— स रा गा मा प धा न

हुसेनी टोड़ी—सम्पूर्ण षाड़व— स रा गा म प धा न—न धा म गा रा सा

गौड़सारंग —मिश्र सम्पूर्ण— स र ग मा म प ध न

वृन्दाबनी सारंग—शुद्ध ओड़व— स र मा प न

सुहा, सुघराई—शुद्ध षाड़व— स र गा मा प ना

३

श्री, पुरवी, धनाश्री—शुद्ध सम्पूर्ण— स रा म म प धा न

गौरी, गौरा —शुद्ध सम्पूर्ण— स रा ग मा प धा न

राग	जाति	स्वर
जयतश्री	—शुद्ध षाड़व—	स रा ग म ध न
पतश्री	—शुद्ध श्रोड़व—	स गा मा प ना
मालश्री	—शुद्ध श्रोड़व—	स ग म प न
भीम पलश्री	—श्रोड़व सम्पूर्ण—	स गा मा प ना—ना धा प मा गा र स
मुलतान	—श्रोड़वसम्पूर्ण—	स गा म प न—न धा प म गा रा स
मारूवा	—शुद्ध षाड़व—	स रा ग म धा न
	४	
हिंडोल	—शुद्ध श्रोड़व—	स ग म ध न
कल्याण	—शुद्ध सम्पूर्ण—	स र ग म प ध न
यमनकल्याण, कामोद, हम्बीर, केदारा	मिश्र सम्पूर्ण—	स र ग मा म प ध न
छाया नट*	—शुद्ध सम्पूर्ण—	स र ग मा प ध ना
पुरिया	—शुद्ध षाड़व—	स रा ग म ध न
भूपाली	—शुद्ध श्रोड़व—	स र ग प ध
वसन्त	—मिश्र षाड़व—	स रा ग मा म ध न
सिन्धु	—शुद्ध सम्पूर्ण—	स र गा मा प ध ना
सिन्धुड़ा	—मिश्र सम्पूर्ण—	स र गा मा प ध ना न
हर शृंगार	—शुद्ध सम्पूर्ण—	स र ग म प ध ना
	५	
मालकोष	—शुद्ध श्रोड़व—	स गा मा धा ना
श्राड़ाना	—षाड़वौड़व—	स र गा मा प धा—ना प मा र स
दरबारी कानड़ा	—शुद्ध सम्पूर्ण—	स र गा मा प धा ना
नायकी कानड़ा	—शुद्ध षाड़व—	स र गा मा प ना
बागश्री	—शुद्ध सम्पूर्ण—	स र गा मा प ध ना
बहार	—षाड़व षाड़व—	स गा मा प धा ना—ना धा प मा र स
पंचम	—मिश्र षाड़व—	स रा गा ग मा म धा ध ना न
पुलिन्दिका	—शुद्ध श्रोड़व—	स र मा ध ना
बेहाग	—श्रोड़व सम्पूर्ण—	स ग मा प न—न ध प मा ग र स
सोहनी	—शुद्ध षाड़व—	स रा ग मा ध न
शंकरा	—षाड़व सम्पूर्ण—	स ग म प ध न—न ध प म ग र स
	६	
मेघ	—शुद्ध षाड़व—	स र मा प ध ना
खम्बाज	—षाड़व सम्पूर्ण—	स ग मा प ध ना—ना ध प मा ग र स

* कोई कोई तन्त्रकार छायानाट में दो मध्यम और दो निषाद का व्यवहार करते हैं।

जयजयन्ती —मिश्र सपूर्म्ण—स र गा ग मा प धा ध ना न
परज —षाड़व सम्पूर्ण—स ग मा प धा न–न धा प मा ग रा स
गौड़ मल्लार —शुद्ध षाड़व—स र मा प ध न
देश मल्लार —ओड़व सम्पर्ण—स र मा प न–ना ध प मा ग र स
धुरिया मल्लार —मिश्र सम्पूर्ण—स र ग मा प ध ना न
सुरट मल्लार —ओड़व षाड़व— स र मा प न–ना ध प मा र स
ललित —मिश्र षाड़व— स रा ग मा म धा न
मियाँ मल्लार —सम्पूर्ण ओड़व—स र गा मा प धा ना=ना प मा र स

संगीत पारिजातके और संगीतरत्नाकरके निम्न लिखित श्लोकों को अच्छी तरह समझना चाहिए।

चतुर्धाः स्वरा वादी सम्वादी च विवाद्यपि।
अनुवादीति वादी तु प्रयोगे वहुल स्वरः॥
श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा तयोरन्तर गोचराः।
मिथः संवादिनौ तौस्तो निगावन्यो विवादिनौ॥
रिधयोरेव वा स्यातां तौ तयोर्वारिधावपि।
शेषानामनुवादित्वं वादी राजाऽत्र गीयते॥

—संगीत रत्नाकर।

प्रयोगो वहुधा यस्य वादिनंतं स्वरं जगुः।
राजत्वमपि तस्येति मुनयः संगिरन्तिहि॥
श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा तयोरन्तरगोचराः।
मिथः संवादिनौ तौस्तः सपौस्यातां पसौ तथा॥
तस्या मात्यस्तु संवादी वादिनो राजसंज्ञिनः।
भृत्य तुल्यानुवादी स्याद् विवादी शत्रुवद्भवेत्॥

—संगीत पारिजात।

इन वचनों के अनुसार सप्त कोष्ठ चक्रमें सम्पूर्ण षाड़व और ओड़व स्वरों को विस्तारसे स्थापना करनेसे देखा जाता है कि 'स' वादी होने से 'मा' अथवा 'प' संवादी होंगे और इसी प्रकार र, ग, म, प, ध और न 'वादी होनेसे' प ध, ध न, न स, स र, र ग, ग म इनमेंसे प्रत्येक दोनों का एक स्वर क्रमसे संवादी होगा। सप्त स्वरों के प्रथमार्द्ध (स र ग मा) में जिस प्रकार 'स' अचल अथवा अच्युत है उसी प्रकार द्वितीयार्द्ध (प ध न स) में 'प' अचल अथवा अच्युत है। इसलिए 'स र' और 'प ध' आपसमें विवादी न होकर सहायक हुए हैं। 'र ग' 'ग मा' 'मा प' और 'ध न' परस्पर विवादी हैं। किसी किसीने विवादी स्वर को 'वर्जित' कहा है। परन्तु इस बातको भूलना उचित नहीं है कि विवादी स्वरको बिलकुल लोप करनेसे 'सम्पूर्ण' रागका होना असंभव हो जाता है। अथवा जहाँ दो स्वर वर्जित हैं जैसा कि 'ओड़व' रागोंमें वहाँ उन दोनोंको विवादी कहना पड़ता है। इससे सांगीतिक तात्पर्य सिद्ध नहीं होता। विवादीका ठीक अर्थ राग नष्टकारी है। जिस स्थान पर 'र' वादी है अर्थात् उसका वहु प्रयोग किया गया है वहाँ 'ग' के वहु प्रयोग करनेसे 'र' स्वतः ही दुर्बल हो जाता है और उसका वादीत्व नष्ट हो जाता है इसलिए 'ग' स्वरका इस प्रकार थोड़ा सा व्यवहार करना चाहिए जिससे 'र' स्वरका अवस्थान्तर न हो।

वादी स्वर प्रस्तारके अनुसार ग्रह अंश और न्यास स्वरयुक्त होते हैं। सातों स्वरोंके हर एक प्रकारसे विस्तार करनेसे ५०४० तान होते हैं। जिनका पहला तान "स र ग म प ध न," बीचमें ५०३८ तान और शेष तान "न ध प म ग र स" हैं। इन तीनोंको ग्रह अंश और न्यास स्वर कहते हैं। वादी विवादी और संवादी स्वरोंके व्यतीत जो स्वर बाकी रहते हैं वे उक्त स्वरोंके अनुवादी होंगे।

न्यास स्वरमें वादी स्वर अंशस्वरसे मिलकर सहायता करता है इसलिए उसको विन्यास और सन्यास शब्दसे सम्बोधन करते हैं। और इसी प्रकार यदि विवादी स्वर न्यास स्वरमें अंशस्वर युक्त हो तो उसे अपन्यास कहते हैं।

मूर्च्छना और तान दोनों आरोहावरोह क्रमयुक्त हैं। परन्तु दोनोंमें अन्तर यह है कि मूर्च्छना स्वाभाविक आरोहावरोह क्रमयुक्त होता है उद्देश्य संक्षेप करना, संख्या ७) और तान हर एक प्रकारसे आरोहावरोह क्रमयुक्त होता है (उद्देश्य—विस्तार करना, संख्या ५०४०) चित्रमें दिये हुए सम्पूर्ण, षाडव और ओड़व स्वरोंको स्वाभाविक आरोहावरोह क्रमयुक्त करनेसे मूर्च्छना बनती है और इसका साधन करना पड़ता है।

यदि किसी वस्तुमें ऐसा गुण हो कि उसके देखने सुनने अथवा पढ़नेसे हृदयके भावका परिवर्त्तन हो तो उसको रस कहते हैं। प्रकृतिके अनुकरण करनेसे भी रसका परिचय मिलता है जैसा कि नाना वर्ण (रंग) के द्वारा चित्रकारका कार्य सम्पादित होता है। और नाना वर्ण (वाक्य) के संयोगसे कविका कार्य सम्पन्न होता है इसी प्रकार नाना वर्ण (स्वर) के विन्याससे संगीतका कार्य सिद्ध होता है। साधारण प्रकारसे जिन वाक्योंका व्यवहार होता है उनमें रस नहीं है। केवल कंठ भंगी ही के द्वारा शोक, आनन्द, प्रेम, क्रोध, स्नेह आदि भावोंका प्रकाश हो सकता है। इसी प्रकार केवल ताल व स्वरके द्वारा विशेष व्यक्तियोंके मानसिक भावोंका परिवर्त्तन हो सकता है। व्यवहारिक नियमसे देखा गया है कि सप्तस्वरोंके आरोहणके उच्चारणसे उत्साह, हर्ष, तेज, इत्यादि तीव्र या कठिन भाव व्यक्त होते हैं और अवरोहणके उच्चारणसे निराशा, शान्ति, विराम इत्यादि कोमल भाव उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीके सब कामोंमें संगीतकी आवश्यकता दिखाई पड़ती है। यदि कोई विशेष कारण अथवा उद्देश्य न होता तो संगीतका व्यवहार दिखाई न पड़ता। बनारसके स्वर्गीय चिन्तामणि बापुली महाशयजी कभी ज्वर रोगियोंको संगीत सुनाकर आराम करते थे। उनसे ये तीन श्लोक मुझे मिले हैं—

आनन्दोत्सवे यज्ञे अन्य मंगल कर्मणि।
चतुर्वर्ग फलार्थाय गायेत् रागाः सम्पूर्णकाः॥
संग्रामे वीरतारूपं लालयन् गुणकीर्त्तनम्।
गाने षट् स्वरानाञ्च गदितं पूर्वसूरिभिः॥
व्याधिनाशे शत्रुनाशे भयशोकविनाशने।
पंचस्वराःप्रगातव्या ग्रहशान्त्यर्थं कर्मणि॥*

सप्तकोष्ठस्थित स्वरोंके मूर्च्छना, तान अथवा अलंकार रूपसे साधना करनेसे भिन्न भिन्न भाव अथवा रसोंका संचार होता है।

---

*इसी प्रकारके श्लोक मैंने "कोहलीय" ग्रन्थ में पाया है। यथा—

आयुर्धर्मोयशः कीर्त्तिर्बुद्धिसौख्यधनानि च।
राज्याभिवृद्धिसन्तानः पूर्णरागेषु जायते॥
संग्रामे वीरतारू लावण्यगुणकीर्त्तनम्।
गाने षड़वानांच गदितं पूर्वशूरिभिः॥
व्याधिनाशे शत्रुनाशे भयशोकविनाशने।
ओड़वास्तु प्रगातव्या ग्रहशान्त्यर्थ कर्मणे॥

विद्युत् पृथक्करण और आवर्त्त संविभाग

(ले० श्रीसत्यप्रकाश बी० एस० सी० विशारद)

विद्युत पृथक्करणका सिद्धान्त

जब नमक अर्थात् सैन्धक हरिद् पानी में घोला जाता है तो घोलमें इसके दो विभाग हो जाते हैं। एक विभाग पर धन-विद्युतकी मात्रा संग्रहीत रहती है और दूसरे विभाग पर ऋण विद्युतकी मात्रा। ऐसी अवस्थामें यह घोल विद्युत का चालक होता है। यदि शुद्ध स्रवित जलमें दो विद्युत् ध्रुव डालकर बाटरीसे संयोग कर दें तो कोई विद्युत धारा प्रवाहित नहीं होगी क्योंकि शुद्ध जल विद्युतका चालक नहीं है। इस शुद्ध जलमें नमक का थोड़ा सा चूर्ण घुला देनेसे विद्युत् धारा प्रवाहित होने लगेगी। इसी प्रकार यदि इसमें तूतिया डाला जाय तब भी घोल विद्युतका चालक हो जायगा।

पर तूतिया या नमक डालनेके बजाय शुद्ध जलमें चीनी (शर्करा) डाली जाय तो घोलमें होकर विद्युत धारा प्रवाहित न होगी। इसी प्रकार यदि पानीमें मद्य डाला जाय तो भी घोल विद्युतका चालक नहीं होता है। अतः हम सम्पूर्ण पदार्थोंके दो विभाग कर सकतेहैं। एक तो वे जो पानीमें घुलनेसे ऐसा घोल बनाते हैं जो विद्युत चालक होते हैं। ऐसे पदार्थोंको विद्युत वाही (Electrolyte कहते हैं। पर जिन पदार्थोंके घोल विद्युत्के चालक नहीं होते वे विद्युत-अवरोधी (non-electrolyte) कहलाते हैं।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिये। नमक या तूतिया जब पानीमें घोले जातेहैं तब तो घोल विद्युत्के चालक होतेहैं। पर यदि पानी न डाला जाय, और शुद्ध सूखे नमक या तूतियामें विद्युत् धारा प्रवाहित करना चाहें तो ऐसा नहो सकेगा। अतः जब तक पानीमें घोल न बनेगा तब तक विद्युत्का चालन न होगा। खड़िया मिट्टी अर्थात् खटिक कर्बनेत पानीमें घुलनशील नहीं है अतः पानी और खटिक कर्बनेतको मिलाकरभी क्यों न रक्खें, विद्युत् धारा प्रवाहित न होगी।

जब नमकके घोलमें विद्युत्ध्रुव रखकर विद्युत् धारा प्रवाहितकी जाती है तो एक ध्रुव पर हरिन् के बुलबुले और दूसरे ध्रुव पर उदजनके बुलबुले दिखाई पड़ेंगे। जिस ध्रुवके पास उदजनके बुलबुले निकल रहे हैं वहाँ लाल द्योतक पत्र रखनेसे यह नीला हो जायगा। इस बातसे यह प्रमाणित होता है कि यहाँ कोई क्षार उत्पन्न हुआ है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि विद्युत् धारा प्रवाहित करनेसे पहले घोलमें नीला या लाल कैसा ही द्योतक पत्र क्यों न रखते, इसके रंगमें कोई परिवर्तन न होता। अब प्रश्न यह है कि एक ध्रुवके पास क्षार कहाँसे आगया ?

इन प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिए ही विद्युत्-पृथकरण-सिद्धान्त निकाला गया है। सं० १६४४ वि० में अरहीनस नामक प्रसिद्ध रसायनज्ञ ने इसकी खोजकी थी उसने उपर्युक्त बातोंका उत्तर इस प्रकार दियाः—

नमक जब पानीमें घोला जाता है तो उसके दो विभाग हो जाते हैं जिन्हें ध्रुव-गामी (ion) कहते हैं। एक पर ऋण-विद्युत् मात्रा होती हैं और दूसरे पर धन विद्युत्-मात्रा। अतः हम एक को ऋण-ध्रुव-गामी या ऋणगामी और दूसरेको धन-ध्रुव-गामी या धन-गामी कह सकते हैं। इसको इस प्रकार लिख सकते हैं।

सैन्धकहरिद घोलमें = सै$^{+}$ + ह$^{-}$

या = स$^{\circ}$ + ह$'$

(+) और (−) ये चिह्न धन विद्युत् मात्रा और ऋण विद्युत् मात्राके सूचक हैं। बहुधा धनके लिये (°) और ऋणके लिये (') चिह्न भी उपयोग में लाये जाते हैं।

अतः जब घोलमें विद्युत् धारा प्रवाहितकी जाती है तो धन ध्रुव-गामी एक ध्रुवकी ओर चलने लगते हैं और ऋण ध्रुव गामी दूसरे ध्रुवकी ओर इस बातको इस प्रकार दिखाया जा सकता है:—

धनध्रुव ऋणध्रुव

| + — + — + — + — + — + — |
| + — + — + — + — + — + — |
| + — + — + — + — + — + — |

(विद्युत् धारा प्रवाहित करनेसे पहले)

धनध्रुव ऋणध्रुव

— — — — — — —	+ + + + + + +
— — — — — — —	+ + + + + + +
— — — — — — —	+ + + + + + +

(विद्युत् धारा प्रवाहित करने के बाद)

इस प्रकार ऋण-गामी धन-ध्रुवकी ओर और धन गामी ऋण ध्रुवकी ओर विद्युत धाराके प्रभाव से आगये। अर्थात् नमकका (सै$^{+}$) गामी ऋण ध्रुव पर चला गया और ह$^{-}$ धन ध्रुवकी ओर आगया। ध्रुवोंके पास आकर इन गामियोंने अपनी विद्युत् मात्राको छोड़ दिया। इस प्रकार सै$^{+}$ गामी ध्रुव पर आकर सैन्धकम् अणु बन गया और ह$^{-}$ गामी ध्रुव पर हरिन्‌का अणु बन गया। इसी लिये धन ध्रुव के समीप हरिन् गैसके बुलबुले दिखाई देते हैं।

सैन्धकम्‌के अणु जलके संसर्गसे सैन्धक उदौषिद क्षार और उदजन गैस बनाते हैं जैसा कि निम्न समीकरणसे स्पष्ट है—

२सै + २उ$_{२}$ओ=२ सै ओ उ + २ उ$_{२}$
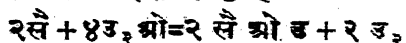
इसीलिये एक ध्रुवपर (ऋण ध्रुव पर) उदजनके बुलबुले दिखाई देते हैं। ध्रुवके पासके पानीमें सैन्धक उदौषिद घुल जाता है, यह क्षार है अतः घोलमें लाल द्योतक पत्र डालनेसे पत्रका रंग नीला हो जावगा।

तूतियाको पानीमें घोलकर जब विद्युत् धारा प्रवाहित करते हैं तो एक सिरे पर ताम्र जमा होने लगता है और दूसरे सिरे पर ओषजनके बुलबुले निकलते दिखाई पड़ते हैं। जहाँ ओषजनके बुलबुले हैं वहांके पासका जल अम्लीय होगा और नील द्योतक-पत्रको लाल कर देगा। ये बातें इस प्रकार सूचितकी जा सकती हैं:—

तूतिया = ताम्र गन्धेत, ता ग ओ$_{४}$

घोलमें = ता$^{\circ\circ}$ + ग ओ$_{४}''$

ध्रुव पर = ता + विद्युत शक्ति + ग ओ$_{४}$ + विद्युत् शक्ति

ग ओ$_{४}$ + पानीके संसर्गसे—

ग ओ$_{४}$ + उ$_{२}$ ओ = उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$ + ओ

इस प्रकार धन ध्रुव पर गन्धकाम्ल और ओषजनके चिह्न दिखाई देंगे।

इसी प्रकारके प्रयोग अन्य पदार्थोंसे भी किये गये हैं। इनसे सिद्ध है कि विद्युत् वाही पदार्थ पानीमें घुलने पर ऋण गामी और ध्रुव गामीमें विभाजित हो जाते हैं। इसे ही विद्युत् पृथक्करण कहते हैं। शुद्ध शर्करा, मद्य आदि पदार्थ इसलिये विद्युत् अवरोधी हैं क्योंकि घोल बनने पर इनमें विद्युत् पृथक्करण नहीं होता है।

गन्धकाम्ल, उदहरिकाम्ल, नोषकाम्ल आदि भी जलमें दो-दो गामियोंमें पृथक् हो जाते हैं। नीचेकी सारिणीमें कुछ अम्लों, कुछ क्षारों और कुछ लवणोंके वे रूप दिये जाते हैं जब वे घोलमें होते हैं:—

अम्ल

१. उदहरिकाम्ल (उ ह) = उ$'$ + ह$'$

२. नोषकाम्ल (उ नो ओ$_{३}$) = उ$^{\circ}$ + नो ओ$_{३}'$

३. गन्धकाम्ल (उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$) = उ$^{\circ}$ + उ ग ओ$_{४}'$
= उ$_{२}^{\circ}$ + ग ओ$_{४}''$

४. नत्रसाम्ल (उ नो ओ$_{२}$) = उ + नो ओ$_{२}'$

५. कर्बनिकाम्ल (उ$_{२}$ क ओ$_{३}$) = उ + उ क ओ$_{३}'$
= उ$_{२}^{\circ}$ + क ओ$_{३}''$

क्षार

१. कास्टिक पोटाश
या पांशुज उदौषिद (पां ओ उ) = पां$^{\circ}$ + ओ उ$'$

२. कास्टिक सोडा
या सैन्धक उदौषिद (सै ओ उ) = सै + ओ उ$'$

३. अमोनिया (नो उ४ ओ उ)=नो उ४° + ओ उ'

४. खटिक उदौषिद्, ख (ओउ)२=ख°° + २ओउ'

लवण

१. रजतनोषेत (र नो ओ३)=र° + नोओ३'

२. खटिक हरिद् (ख ह२)=ख°° + २ ह'

३. पांशुज कर्बनेत (पां२क ओ३)=२पां° + कओ३'

४. सैन्धक स्फुरेत (सै३ स्फु ओ४)=३सै° + स्फुओ४'''

५. सैन्धक अर्धकर्बनेत (सै उ क ओ३)=सै° + उ क ओ३'

इन उदाहरणोंसे तीन बातें प्रकट होती हैं।

१. प्रत्येक अम्लमें धन गामी उद्जन होता है। अतः अम्लकी सबसे उत्तम पहिचान यह है कि इसमें (उ°) हो। अम्लकी पहिचान यह है कि नील द्योतक पत्र अम्लके संसर्गसे लाल हो जाता है। अम्लकी दूसरी पहिचान यह है कि यह द्विव्योलथलीन Phenolphthalein को लाल कर देता है।

२. प्रत्येक क्षारमें ऋण गामी (ओ उ') होता है। क्षार लाल द्योतक पत्रको नीला कर देते हैं। द्विव्योलथलीनके साथ ये कोई रंग नहीं देते हैं।

३. लवण अम्ल और क्षारोंके संयोगसे बनते हैं। अतः इसके दो भाग होते हैं एक क्षार गामी और दूसरे अम्ल गामी। अम्ल और क्षारके संसर्ग से लवण किस प्रकार बनते हैं यह नीचेके सूत्रोंके स्पष्ट है:—

१. सैन्धक उदौषिद् + उदहरिकाम्ल = सैन्धक हरिद् + पानी

सै ओ उ + उ ह = सै ह + उ२ ओ

२. अमोनिया + गन्धकाम्ल = अमोनियम गन्धेत + पानी

२ न उ४ ओ उ + उ२ गओ४ =(न उ४)२ गओ४ + २ उ२ ओ

३. खटिकउदौषिद् + कर्बनिकाम्ल = खटिक कर्बनेत + पानी

ख (उ ओ)२ + उ२ क ओ३ = ख क ओ३ + २ उ२ ओ

जब एक लवणके घोलमें दूसरा घोल डाला जाता है तो क्या होता है यह भी विचारना चाहिये। रजतनोषेतके घोलमें सैन्धक हरिद्का घोल डालो तो श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा। यह क्यों? यह बात नीचेके समीकरणोंसे स्पष्ट है:—

रजत नोषेत का घोल = र° + नो ओ३'

सैन्धक हरिद्का घोल = सै° + ह'

अतः (रजत नोषेत + सैन्धक हरिद्) के घोल = र° + नो ओ३' + सै° + ह' = (र ह) + सै नो ओ३

रजत-हरिद् पानीमें अन-घुल है अतः र° गामी ह' गामीसे संयुक्त होकर रजतहरिद् बनावेगा। अनघुल होनसे इसका श्वेत अवक्षेप दिखाई पड़ेगा, और इसका विद्युत् पृथक्करण न होगा। इस उदाहरणमें हमने देखा कि रजतनोषेत का धन गामी सैन्ध कहरिद्के ऋण गामीसे संयुक्त होगया। ऐसी आपसकी अदलबदलको पारस्परिक विनिमय (Double decomposition) कहते हैं।

पांशुज नैलिद् और पारद नोषेतमें पारस्परिक विनिमय होकर पांशुजनोषेत और अनघुल पारद नैलिद् बनता है जिससे नारंगी रंगका अवक्षेप प्राप्त होता है—

२ पां नै + पा (नो ओ३)२ = २ पां (नो ओ३) + पा नै२

इस प्रकारका पारस्परिक विनियम रसायन शास्त्रमें बड़े महत्वका है।

संयोग शक्ति

परमाणुभारका वर्णन गत अध्यायमें किया जा चुका है। प्रत्येक तत्वका परमाणु भार अनेक विधियोंसे निकाला गया है। उद्जनका परमाणु भार १ है और हरिन्का ३५.४। प्रयोग द्वारा पता चलता है कि उदहरिकाम्ल उह बनानेके लिये १ ग्राम उद्जन और ३५.४ ग्राम हरिन्की आवश्य-

कता होगी। इससे सिद्ध है कि उदहरिकाम्ल के एक अणुमें एक परमाणु उदजनका और १ परमाणु हरिन् का है, ओषजनका परमाणुभार १६ है पर जल बनानेके लिये २ ग्राम उदजन और १६ ग्राम ओषजनकी आवश्यकता होगी। अतः ओषजनका एक परमाणु उदजन के दो परमाणुओंको अपने साथ बांधे रखता है। इसलिये यदि हरिन्को एक शक्तिक कहा जाय तो उदजनको द्विशक्तिक कहना पड़ेगा। नोषजनका एक परमाणु उदजनके तीन परमाणुओं से संयुक्त होकर अमोनिया बनाता है अतः नोषजन त्रि-शक्तिक है। इसी प्रकार स्फुर चतुश्शक्तिक है क्योंकि इनका एक परमाणु उदजनके ४ परमाणुओंसे संयुक्त हो सकता है।

सैन्धकम्, खटिकम् आदि तत्व सरलतया उदजनसे संयुक्त नहीं हो सकते हैं पर ये हरिन्से संयुक्त होते हैं। सैन्धकम्का एक परमाणु हरिन्के एक परमाणुसे संयुक्त होकर सैन्धक हरिद बनाता है। अतः सैन्धक एक-शक्तिक है। खटिकका एक परमाणु हरिन्के दो परमाणुओंसे संयुक्त होता है अतः यह द्वि-शक्तिक है। टंकम् त्रि-शक्तिक और कर्बन चतुर्शक्तिक हैं। तत्वोंके इस मिलनेकी शक्तिको संयोग-शक्ति कहते हैं।

तत्वोंकी संयोग शक्ति परिवर्त्तित भी होती रहती है। ताम्रम्का एक परमाणु हरिन्के एक परमाणु से भी संयुक्त हो सकता है और दो परमाणुओंसे भी। अतः यह एक शक्तिक भी है और द्वि-शक्तिक भी। यही अवस्था पारदम्, लोहम्, स्वर्णम् आदि अनेक तत्वोंकी है।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिये। सैन्धक-गन्धेत, खटिक गन्धेत, मगनीस गन्धेत आदिमें गन्धेत (ग ओ$_4$'') भाग समान है। इसी प्रकार पांशुज कर्बनेत, सैन्धक कर्बनेत, खटिक कर्बनेत आदिमें कर्बनेत (क ओ$_3$'') समान है। इन भागोंको मूल कहते हैं। ये होते तो कई तत्व से मिलकर बने, पर साधारण-तया रासायनिक प्रक्रियामें इस प्रकार काममें आते हैं मानों एक ही तत्व हैं। हरेत, नोषेत, स्फुरेत आदि इसी प्रकारके अम्लीय मूल हैं। अमोनियामें (न उ$_4$) मूल क्षारीय मूल कहलाता है और यह उसी प्रकार उपयोगमें आता है जैसे सैन्धकम् या पांशुजम्का एक अणु।

इन मूलोंकी भी संयोग-शक्तियां होती हैं। नोषेत, हरेत आदि एक-शक्तिक हैं; गन्धेत, कर्बनेत आदि मूल द्विशक्तिक हैं, स्फुरेत मूल त्रिशक्तिक है। अमोनियम् मूल एकशक्तिक है।

यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि संयोग शक्तियाँ भी दो प्रकारकी होती हैं, एक धन-संयोग शक्ति और दूसरी ऋण संयोग शक्ति। धातुओंकी संयोग शक्तियाँ बहुधा धन होती है और अधातुओंकी ऋण। यौगिक बनानेमें धनशक्तिक तत्व ऋण शक्तिक तत्वसे संयुक्त हुआ करता है। सैन्धकम्, ताम्रम्, खटिकम् आदि धन-शक्तिक हैं और हरिन्, नैलिन्, ओषजन, स्फुर आदि ऋण शक्तिक हैं।

आवर्त्त संविभाग

समस्त तत्वोंकी संख्या ९२ के लगभग है। प्रत्येक तत्वके गुण एक दूसरेसे किन्हीं किन्हीं बातोंमें भिन्न भिन्न हैं और कुछ बातोंमें समान भी हैं। अध्ययनके लिये यह आवश्यक है कि तत्वोंको किसी क्रमके अनुसार समूहोंमें विभाजित कर लिया जाय। पहला विभाग तो यह किया जा सकता है कि कुछ तत्व धातु हैं और कुछ अधातु। इसके पश्चात् संयोग शक्तिके अनुसार भी हम निम्न समूह बना सकते हैं—

	धातु तत्व				अधातु तत्व		
संयोग शक्ति	१	२	३	४	३	२	१
	उ सै पा ला र वो स्व	म ख द स्त सं भ पा मि	टं स्फ	क शै व सी	न स्फु त्त आ वि	ओ ग रा	स ह ब्र नै

बरज़ीलियस नामक वैज्ञानिक ने सबसे पहले तत्त्वोंको उनकी विद्युत-शक्तिके अनुसार क्रमबद्ध किया था। यह ठीक है कि पांशुजम्, सैन्धकम्, भारम् आदि तत्त्व सभी धनात्मक शक्तिके हैं पर इनमें भी एक तत्त्व दूसरेकी अपेक्षा अधिक प्रबल है। इस प्रकार विद्युत् शक्तिके अनुसार तत्वोंका यह क्रम किया गया—

पां, सै, भं, स्त, ख, म, स्फ, द, लो, वं, सी, उ, श्रा, त्त, ता, पा, र, स्व

इस क्रममें पहला तत्व पांशुजम् सबसे अधिक धनात्मक शक्तिक है और स्वर्ण सबके कम। इस क्रम विभागके पश्चात् डोबरीनर, ड्यूमा आदि वैज्ञानिकों ने समान गुणों वाले तीन-तीन तत्वोंको एक एक समूहमें रक्खा। उन्होंने इस प्रकार निम्न समूह बनाये:—

१. शोणम्-प. भा. ६.९४	२. खटिकम्—४०.०७
सैन्धकम्-" . २३	स्त्रंशम् —८७.६३
पांशुजम्—" . ३९.१	भारम् —१३७.३७

३ हरिन—३५.४६

अरुणिन्—७९.९२

नैलिन् —१२६.९२

इन समूहोंमें यह बात विचारणीय है। पहले समूह को लीजिये। सैन्धकम्के गुण शोणम् और पांशुजम्के गुणोंके बीचमें हैं। यही नहीं, सैन्धकम् का परमाणुभार भी शोणम् और पांशुजम्के परमाणुभारोंके जोड़का आधा है अर्थात $\frac{३९.१+६.९४}{२}$=२३

यही बात स्त्रंशम्के विषयमें भी है। खटिकम् और स्त्रंशमके भारोंमें ४७.५६ का अन्तर है और स्त्रंशम और भारम्के भारमें भी लगभग उतना ही अन्तर अर्थात् ४९.७४ है। हरिन् अरुणिन् और नैलिनके गुण परस्परमें बहुत समान हैं और अरुणिन् का परमाणु भार भी हरिन् और नैलिन्के बीचमें है।

इसके पश्चात् सं० १९२१ वि०में न्यूलैण्ड नामक वैज्ञानिकने अपना अष्टक सिद्धान्त (law of octave) प्रस्तुत किया। इसने परमाणु भारके विचारसे तत्त्वोंको क्रमबद्ध किया। उदजनका परमाणुभार सबसे कम है, उसको उसने श्रेणीमें सबसे पहले स्थान दिया और फिर परमाणुभारकी वृद्धिके अनुसार तत्त्वोंको इस प्रकार लिखा।

१. उ	शो	बे	टं	क	नो	ओ	स
१	६.९४	९.१	११	१२	१४	१६	१९

प्लविन्के पश्चात् दूसरा नम्बर सैन्धकम्का है क्योंकि इसका परमाणुभार २३ है (न्यूलैण्डके समय हिमजन, नूतनम् आदि तत्त्वों की खोज नहीं हुई थी)। इस समय उसे यह बात सूझीकि सैन्धकम्के गुण शोणम्से मिलते जुलते हैं। अतः उसने सैन्धकम्को दूसरी श्रेणीमें शोणम्के नीचे रखा। इसके बाद वाला तत्त्व मगनीसम् बेरीलम्से गुणोंमें मिलता था। दूसरी श्रेणी इस प्रकार हुई—

२. सै	म	स्फ	शै	स्फु	ग	ह
२३	२४.३२	२७.१	२८.३	३१.०४	३२.०६	३५.४६

इसमें स्फ, शै, स्फु, ग, हके गुण पहली श्रेणीके टं, क, नो, ओ, सके गुणोंसे क्रमानुसार मिलते गये। हरिन् के बाद वाला तत्त्व पांशुजम् है वह सैन्धकम् से मिलता है। अतः इस स्थानसे तीसरी श्रेणी इस प्रकार बनाई गई।

३. पां	ख	रा	मा	लो	को
३९.१	४०.०७	५२—५४.९		५५.८४	५९

न्यूलैण्डने पहली और दूसरी श्रेणीको देखकर यह सिद्धान्त निकाला कि परमाणुभारके हिसाबसे क्रमबद्ध करने पर प्रत्येक आठवें तत्त्वके गुण परस्परमें मिलेंगे जैसे हारमोनियममें 'सरगम पधनि स' र' ग' म' प' ध' नि') प्रत्येक आठवां स्वर समान गुणका होता है। उसने आंख मूंदकर इस प्रकार सब तत्त्वों को क्रमबद्ध कर दिया। उसने तत्त्वोंके गुणोंकी अवहेलना की। उपर्युक्त तीसरी श्रेणीमें रागम् स्फटसे, मांगनीज़ स्फुरसे, लोहम् गन्धकसे गुणोंमें सर्वथा भिन्न हैं। इस

मैण्डलीफ़ का आवर्त्त संविभाग

खंड		समूह ०	समूह १	समूह २	समूह ३	समूह ४	समूह ५	समूह ६	समूह ७	समूह ८
उच्चतम ओषिद उच्चतम उदिद			$र_2 ओ$ र उ	र ओ $र उ_2$	$र_2 ओ_3$ $र उ_3$	$र ओ_2$ $र उ_4$	$र_2 ओ_5$ $र उ_3$	$र ओ_3$ $र उ_2$	$र_2 ओ_7$ र उ	$र ओ_4$ —
प्रथम लघु खंड		हि २ ४·०	उ १ १.००८ शो ३ ६.९४	बे ४ ९·१	टं ५ १०.९	क ६ १२.००	नो ७ १४.०१	ओ ८ १६.००	प्ल ९ १९.०	
द्वितीय लघु खंड		नू १० २०·२	सै ११ २३.००	म १२ २४·३२	स्फ १३ २७.१	शै १४ २८.३	स्फु १५ ३१.०४	ग १६ ३२.००	ह १७ ३५.४६	
प्रथमदीर्घ खंड	सम श्रेणी	आ १८ ३९·९	पां १९ ३९.१	ख २० ४४.०७	स्क २१ ४५·१	टि २२ ४८.१	ब २३ ५१.०	रा २४ ५२	मा २५ ५४.९३	लो २६ को २७ न २८ ५५.८४ ५८.९७ ५८.६८
	विषमश्रेणी		ता २९ ६३.५७	द ३० ६५.३७	गा ३१ ७०.१	ज ३२ ७२.५	न्न ३३ ७४.९६	श ३४ ७९.२	रु ३५ ७९.९२	
द्वितीय दीर्घ खंड	सम श्रेणी	गु ३६ ८२.९२	ला ३७ ८५·४५	स्त ३८ ८७.६३	य ३९ ८९.३३	जि ४० ९०.६	कौ ४१ ९३·१	मु ४२ ९६.०	मै ४·३ ?	रु ४४ र्‌ ४५ पै ४६ १०१.७ १०२.९ १०६.७
	विषमश्रेणी		र ४७ १०७.८८	सं ४८ ११२.४	नी ४९ ११४.८	व ५० ११८.७	आ ५१ १२०.२	थ ५० १२७	नै ५३ १२६.९२	
तृतीयदीर्घ खंड	सम श्रेणी	अ ५४	वो ५५ १३२.८१	भ ५६ १३७.३८	ली ५७ १३९.०	सू ५८ १४०.२५				
	विषमश्रेणी			दुष्प्राप्य	तत्वल ५९	से लु ७१	तक			
चतुर्थ दीर्घ खंड	सम श्रेणी					हे ७२ ?	त ७३ १: १.५	व ७४ १८४.०	रै ७५ ?	वा ७६ इ ७७ प ७८ १९०. १९३.१ १९५·२
	विषम श्रेणी		स्व ७९ १९७.२	पा ८० २०००.६	थै ८१ २०४.०	सी ८२ २०७.२	वि ८३ २०८.०	—	—	
पञ्चमदीर्घ खंड		८६ ?	८७ ?	रे ८८ २२६	८९ ?	थो ९० २३२.१५	पिक ९१ ?	पि ९२ २३८.४		

कारण न्यूलैण्डके संविभागकी लोगोंने हंसी उड़ाई और इसे कुछ महत्व न दिया गया।

इसके पश्चात् रूस देशके रसायनज्ञ मैण्डलीफ़ ने सं० १९२६ वि०में आवर्त्त संविभागकी आयोजना की। इसके विभाग काभी वही सिद्धान्त है जो न्यूलैण्डके विभागका था। इसमें भी तत्वोंको परमाणुभारकी उत्तरोत्तर वृद्धिके अनुसार क्रम बद्ध किया गया है। पर साथ साथ उनके गुणों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह संविभाग पीछे वाली सारिणीमें दिया जाता है। इसमें तत्वोंके संकेत, परमाणु संख्या और परमाणुभार दिये गये हैं:—

इस संविभागके विषयमें इतनी बातें जानने योग्य हैं:—

१. इसमें ८ समूह हैं और दो लघु खंड और पांचदीर्घखंड हैं। दीर्घखंड दो श्रेणियोंमें विभक्त है जिन्हें सम और विषम श्रेणी कहते हैं। इस विभागमें जो स्थान रिक्त हैं, उनमें वे तत्व रक्खे जायंगे जिनका अभी तक अन्वेषण नहीं हुआ है। प्रत्येक तत्वके दाहिनी ओर १, २, ३,.....९२, संख्या लिखी हुई हैं। इन्हें परमाणु संख्या कहते हैं। जब हम कहते हैं कि स्फुरकी परमाणु संख्या १५ है तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि यदि उद्जनसे हम गिनना आरम्भ करें तो संविभागमें १५वां तत्व स्फुर मिलेगा। परमाणु संख्या एक प्रकार की क्रम संख्या है। ८४, ८५, ८६, ८७, ८६ परमाणु संख्यावाले तत्व अभी खोजे नहीं गये हैं।

२. विषम श्रेणीके तत्व समूहमें दाहिनी ओर हटाकर रक्खे गये हैं और समश्रेणीके बायीं ओर हटाकर। एक ही समूहके समश्रेणीके तत्वोंके गुण आपसमें मिलते जुलते हैं और विषम श्रेणीके तत्वोंके गुणोंमें भी परस्परमें समानता है। पर समश्रेणीके तत्व विषम श्रेणीके तत्वोंसे भिन्न गुण वाले हैं। पहले समूहसे तीसरे समूह तक लघुखंडों के तत्व उसी समूहके समश्रेणीके तत्वोंसे अधिक मिलते हैं जैसे शोणम्, सैन्धकम्, पांशुजम्, लालम् और व्योमम्के गुण एकसे हैं। इसी प्रकार द्वितीय समूहमें बेरीलम्, मगनीसम्, खटिकम्, स्त्रंशम् और भारम्के गुण एकसे हैं। ५, ६, और ७वें समूहमें लघुखंडोंके तत्व विषम श्रेणीके तत्वोंके समान गुणी हैं जैसे प्लविन्, हरिन्, अरुणिन्न और नैलिन् ७वें समूहमें; ओषजन, गन्धक, शशिम्, धल्लम् ६ठे समूहमें इत्यादि। चौथे समूहमें बीचकी अवस्था है। इसके अतिरिक्त प्रथम समूहके ताम्रम् रजतम् और स्वर्णम् एकसे गुणके हैं, द्वितीय समूही विषम तत्व, दस्तम् संदस्तम् और पारदम् एकसे गुणके हैं।

३. इस संविभागमें संयोग शक्ति भी भली प्रकार दिखाई गई है। शून्य समूहके तत्वों-हिमजन नूतनम्, आलसीन्, गुप्तम् और अन्यजनकी संयोग शक्ति शून्य है। ये किसी तत्वसे संयुक्त नहीं होते। प्रथम समूहके सब तत्वोंकी संयोग शक्ति एक है, द्वितीय समूहके तत्वोंकी २, तृतीय को ३, चतुर्थ समूहके तत्वोंकी ४ है। प्रथम तीन समूहमें धातु-तत्व हैं। अतः इनकी धनात्मक संयोग शक्ति है। ५, ६, और ७वें तत्व अधातु हैं अतः इनकी संयोग शक्ति धीरे धीरे ऋणात्मक होती जाती है। प्लविन् हरिन् आदि प्रबल ऋणात्मक हैं। उद्जनकी अपेक्षासे ७वें समूहकी संयोग शक्ति १ है, ६ठे समूहकी २, और पांचवें की ३ है। तात्पर्य्य यह यह है कि यदि हम किसी श्रेणीमें पहले समूहसे ७वें समूह तक आवें तो धनात्मक विद्युत् शक्ति कम होती जावेगी और ऋणात्मक शक्ति बढ़ती जावेगी। इसी प्रकार किसी समूहमें हम नीचेकी ओरसे ऊपर की ओर आवें तो ऋणात्मक शक्ति अधिक होती जावेगी और धनात्मक शक्ति कम होती जावेगी।

उदाहरणतः—

बो, ला, पां, सै, शो, बे, टं क,

——————→ ——————→

नो, ओ, स

——————→

तीरके मुखकी ओर बढ़नेसे ऋणात्मक शक्ति बढ़ रही है और धनात्मक शक्ति कमहो रही है।

४. यदि किसी तत्वके गुण जानने हों तो संविभागमें उसके चारों ओर वाले तत्वों के गुणों पर ध्यान रखनेसे इनका अनुमान लगाया जा सकता है। मैण्डलीफ़के समय स्कन्दम् (परमाणु संख्या २१), गालम् (प० सं० ३१) और जर्मनम् (प० सं० ३२)के तत्व वैज्ञानिकोंको ज्ञात न थे। ऐसी अवस्थामें इन तत्वोंके चारों ओरके ज्ञात तत्वोंके गुणोंके सहारेसे मैण्डलीफ़ ने इनके गुणों-गुणों का ठीक ठीक अनुमान कर लिया था।

५. यहभी बात ध्यान देने योग्य है कि पांशुजम् का परमाणुभार ३६.१ आलसीम् के परमाणु ३६.६से कम है अतः इसे आलसीम्के पहले स्थान मिलना चाहिये था ऐसी ही बात थलम्-नैलिन्के विषयमें है परमाणुभारके हिसाब से नैलिन्को छठे समूहमें और थलम्को ७ वें समूहमें रखना चाहिये था। परमाणुभारके हिसाब से नकलम्को लोहम् और कोबल्टम्के बीचमें रखना चाहिये था। पर गुणोंकी समानता पर ध्यान देने के कारण ऐसा नहीं किया गया है। अतः संविभागमें इनकी स्थिति अपवादजनक प्रतीत होती है। उद्जनको प्रथम समूहमें रखना चाहिये या सप्तममें यह भी बात विवादग्रस्त है। भौतिक गुणोंमें उद्जन सप्तम समूही तत्वोंसे मिलता जुलता है पर रासायनिक गुणोंमें प्रथम समूही तत्वोंसे।

६. आठवें समूहमें तीन तीन तत्व एक एक स्थान पर रखे गये हैं। यह केवल उनके गुणोंके कारण किया गया है। ये तत्व एक ओर तो अपने से पहले सप्तम समूहके तत्वोंसे मिलते हैं और दूसरी ओर आगे आने वाले प्रथम समूहके तत्वों से। लोहम् कोबल्टम् और नकलम सप्तम् समूही मांगनीज़से और प्रथम समूही तत्व ताम्रम्से मिलते जुलते हैं। इनके यौगिक रंगदार होते हैं।

इनके अतिरिक्त इस संविभागमें अनेक अन्य विशेषतायें हैं जिनका यहां वर्णन नहीं किया जा सकता है। अब आगे हम पहले उद्जनका वर्णन देंगे। और फिर सातवें समूहके कुछ उपयोगी तत्वोंका, फिर ६ ठे समूहके तत्वोंका, और इसी प्रकार बारी बारीके अन्य तत्वोंका वर्णन किया जावेगा।

अमैथुनिक पुरुष

[कविराज श्री अत्रिदेव गुप्त, विद्यालङ्कार
भिषग्रत्न (बनारस) आयुर्वेदाचार्य्य]

प्राणियोंकी सृष्टि चार प्रकारसे उत्पन्न होती है—कोई तो जरायु (एक झिल्ली Mawlraue) में लिपटे होते हैं-जैसे पशु, मनुष्य आदि; दूसरे अण्डोंसे उत्पन्न होते हैं जैसे—सर्प, पक्षी आदि; तीसरे पसीने या मलसे उत्पन्न होते है जैसे चूला—जूं आदि; चौथे उद्भिद हैं जो कि एकसे दूसरे बन जाते हैं, जैसे समुद्रकी तहमें प्रवाल, मूंगा आदि। इन चारके सिवाय और कोई पांचवाँ क्रम इस संसारमें नहीं है।

इस चतुर्वर्गमें प्रथम दोनों अवस्थाओंमें मैथुन-सम्भोगकी आवश्यकता है। वैज्ञानिक शब्दोंमें शुक्राणु और डिम्बका आपसमें संयोग आवश्यक है। अर्थात् स्त्री और पुरुषका संयोग आवश्यक है। तृतीयावस्थामें भी संयोगकी आवश्यक्ता है। चूंकि संयोगके बिना कुछ भी नहीं हो सकता (संयोगाद्वर्त्तते सर्वम् नमते नास्ति किंचनाभि)। परन्तु यह संयोग इतने सुक्ष्म रूपमें होता है कि उसका ज्ञान नहीं हो सकता। यह सत्य है कि पसीने और स्वेद-से चूला उत्पन्न होती है इसी प्रकार रक्तसे भी अन्य कृमि उत्पन्न होते हैं जिनको कि मलजा या रक्तजा संज्ञा मिलती हैं। परन्तु यदि कारणमें कार्य्य उपस्थित न हो तो वह उत्पन्न नहीं हो सकता। तन्तुवोंमें यदि रंग होगा तो वस्त्रमें रंग आता है। इसी प्रकार यदि मल-पसीने और रक्त में यह उपस्थित हों तो कहांसे उत्पन्न हो जावें? अथवा जो कृमि रक्तसे उत्पन्न होता है। वह स्वेद से क्यों न उत्पन्न हो जावे? जब दोनों मल-पदार्थ एक ही व्यक्तिके भागहों अतः बलात् स्वीकार करना पड़ता है कि उन कृमियोंका माध्यम भिन्न भिन्न है उनके घटक कारण भिन्न भिन्न हैं। उनके संयोगके लिये पृथक् पृथक् माध्यम की आवश्यकता है। जिस प्रकारकी यदि स्त्री की योनिमें अम्ल पदार्थ या क्षार माध्यम अधिक होगा तो शुक्राणु या डिम्ब उसमें जीवित नहीं रह सकता। प्रत्येक कृमि एक नियत माध्यम, नियत ताप-क्रम परिमाण और नियत परिस्थितिमें रहता है। अतः जिनका संयोग स्वेद-पसीनेमें होता है वह स्वेदज हैं। जिनका रक्तमें होता है उनको रक्तज कृमि कहते हैं। कृमियोंका संयोग आपसमें आवश्यक है। उदरमें कई कृमि ऐसे हैं जिनको हम आँखसे नहीं देख सकते परन्तु अणुवीक्षणकी सहायतासे उनके भिन्न भिन्न लिंगोंका पता लग जाता है। जिससे स्पष्ट है कि उनमें भी स्त्री और पुरुषका संयोग होता है।

इसी भेदमें एक भेद और भी है। इसमें एक प्राणीके अन्दर ही स्त्री और पुरुष दोनोंके लिंग पाये जाते हैं। यह प्राणि उत्पत्तिके समय फूलता है अर्थात् शुक्राणु और डिम्बका आपसमें संयोग होता है। फिर फटकर दो भाग हो जाते ही दो प्राणी बन जाते हैं। इस प्रकार दोके चार, चारके आठ, आठके सोलह, इस प्रकार बढ़ते जाते हैं यही विभजनकी प्रक्रिया शुक्राणु और डिम्बके संयोगके पश्चात् भी कुछ समयतक होती है। एक अन्य भेद हैजो कि शुक्राणु और डिम्बके संयोगके समय फूलकर दो नहीं होता अपितु एक सूत्र उत्पन्न करता है। वह सूत्र बढ़कर प्राणी बन जाता है, इसमें भी संयोग उसके अन्दर ही होता है, अर्थात् उपरोक्त दोनों भेदोंमें शुक्राणु और डिम्ब एक ही व्यक्तिमें उपस्थित हैं। इनको अमैथुनिक सृष्टि कहते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ कृमि हैं जिनमें नर और मादाका संयोग आवश्यक है। इनमें प्रत्येक स्त्री-डिम्ब पुरुष-शुक्राणु पृथक् पृथक होते हैं। उनके संयोगसे प्रजा उत्पन्न होती है।

एवं तीसरा भेद इन उपरोक्त दोनों भेदोंका संयोग है। अर्थात् कृमि कुछ सममयके लिये अमै-

थुनिक सृष्टि उत्पन्न करता है, और किन्हीं अवस्थाओंमें मैथुनिक सृष्टि उत्पन्न करता है। इसका उदाहरण मलेरियाका कृमि है जो कि शरीर के अन्दर अमैथुनिक सृष्टि उत्पन्न करता है, और शरीरके बाहर मैथुनिक सृष्टि उत्पन्न करता है।

चतुर्थ प्रकारकी उत्पत्ति अर्थात् उद्भिद् जगत् भी तृतीय भेदका एक भेद है। यह एक प्रकारका कली फूटना Budding है। अर्थात् जिस प्रकार एक वृक्षकी शाखामें नई शाखा फूट पड़ती है और फिर उससे दूसरी तीसरी शाखा निकलती हो जाती है इसी प्रकार प्रवाल, मूंगे आदिमें भी एकसे दूसरी शाखा निकलती जाती है और बढ़ती जाती है।

जिस प्रकार वृक्षोंमें नर-मादाकी आवश्यकता है। पृथक् नर अथवा मादा फल उत्पन्न नहीं कर सकते उसी प्रकार इनमें भी बिना नर और मादाके उत्पत्ति-वृद्धि नहीं हो सकती। नर और मादाके संयोगसे चेतना धातु प्रविष्ट होता है और उसकी वृद्धि आदि करता है। बिना चेतना धातुके वृद्धि असम्भव है, जैसे मल शरीरमें और बिना नर और मादाके संयोगके बिना चेतना धातुका प्रविष्ट होना असम्भव है। विज्ञानके शब्दोंमें बिना शुक्राणु और डिम्बके मिले जीव-प्राणि उत्पन्न नहीं होता। अतः प्रत्येक उत्पत्तिके लिये नर और मादाका संयोग अवश्य है।

साधारणतः प्रत्येक रचनामें नर और मादा पृथक् दो वस्तुएं हैं। जिस प्रकार पुरुषोंमें नर और मादा का भेद है उसी प्रकार पशुवों और लताओं में भी है। जिस प्रकार शुक्राणु और डिम्ब पुरुषों और पशुओं में मिलते हैं उसी प्रकार लताओंमें भी मिलते हैं। लताओंमें यह संयोग, भ्रमर, मक्खी और वायुके द्वारा होता है। बिना नर और मादाके संयोगके उत्पत्ति असम्भव है अतः जो एक कोष्ठके प्राणि हैं और जो कि अमैथुनिक सृष्टि उत्पन्न करते हैं उनमें नर और मादाका अंश एक ही प्राणिमें होता है जिनका अनुकूल समयमें आपसमें संयोग होता है।

जिस प्रकार प्रकृतिमें कृमियोंके ऐसे उदाहरण उपस्थित हैं जिनमें नर और मादा दोनोंका भाग मिला रहता है और सन्तानोत्पत्ति करते हैं उसी प्रकार इस भगवानकी सृष्टिमें ऐसे पुरुष भी उपस्थित हैं जिनमें दोनों भाग अर्थात् नर और भागके अङ्ग उपस्थित हैं एवं सन्तानोत्पत्ति भी करते हैं।

सन्तानोत्पत्तिके अतिरिक्त कई उदाहरण ऐसे उपस्थित हैं जिनमें कि स्त्री पुरुषमें परिवर्त्तित होगई। यह परिवर्त्तन युवावस्थामें स्पष्ट होता है—ऐसी स्त्रीके वाह्य अङ्ग स्त्री जैसे होते हैं। परन्तु कोष्ठमें अण्ड (Testis) भी उपस्थित होते है—इनके साथ किसी किसीमें अण्ड और डिम्ब-कोष (ovary) भी होते हैं, जिससे कि समयमें स्वयं गर्भाधान होनेकी सम्भावना है। धन्वन्तरि-ने सुश्रुत के शारीरमें "सण्ढ्य" शब्दसे ऐसे पुरुषों की उत्पत्ति बताई है। अङ्गरेज़ोंमें ऐसे पुरुषों को Hampidotias कहते हैं। इनके अन्दर एक अण्ड और एक डिम्ब होता है, अथवा अतः स्त्रियोंके अवयववाह्य पुरुषके अवयव या इसके विपरीत होते हैं।

इसीका एक भेद यह है कि शरीर का आधा भाग (Vertical) स्त्री का और आधा पुरुषका हो। अतः न्याय वैद्यकमें पुरुष और स्त्री का निम्न लक्षण किया है।

पुरुषके एक अण्ड अवश्य होना चाहिये एवं वह अण्ड शुक्राणु उत्पन्न कर सके।

स्त्री के एक डिम्बकोष तथा आर्त्तव उपस्थित होना चाहिये।

युवावस्था (Pubertiy) के समय जब डिम्ब-कोषसे डिम्ब उत्पन्न होने लगता है और अण्ड शुक्राणु बनाने के योग्य हो जाते हैं तो आपसमें संयोग होनेसे गर्भधृति हो जाती है।

सुश्रुतमें लिखा है कि जब स्त्रियाँ आपसमें मैथुन करें तो भी गर्भधृति हो जाती है परन्तु उस गर्भ में अस्थियों का अभाव रहेगा, अथवा कोमल अस्थियां होंगी। अस्थि शब्द केवल उपलक्षण मात्र ही। अस्थिशब्द का अभिप्रायः पिताके कठिन भागसे है चूंकि पितृ भाग नहीं मिलता अतः कठोर भाग भी नहीं आता।

इसी प्रकार यहां आपसमें संयोग हो जाता है परन्तु यहां अण्ड उपस्थित हो और यह अण्ड शुक्राणु अर्थात् पितृ अंश नर भाग को उत्पन्न करता है, अतः नर और मादाके संयोगसे उत्तम संतान उत्पन्न हो सकती है।

उपरोक्त विचार के अनुसार नर और मादा के डिम्ब और शुक्राणु के संयोग कराने के लिये नर के वीर्य को पिचकारी के साथ योनिमें डाल देते हैं जिससे भी गर्भाधान हो सकता है। इसके अतिरिक्त गुदमार्ग के मैथुनसे भी गर्भोत्पत्ति हो सकती है, ऐसा सुश्रुतमें कहा है।

उपरोक्त अमैथुनिक सृष्टिमें एक सन्देह हो सकता है, कि जिस प्रकार विरुद्ध विद्युत आपसमें समीप एकत्रित रहनेसे उदासीन हो जाती है। उसी प्रकार कहीं यह भी उदासीन न हो जायँ। चूंकि पुरुष सौम्य गुणी है, स्त्री आग्नेय गुणी है—इन दोनों के मिलनेसे ही संसार उत्पन्न होता है। परन्तु जिस प्रकार कृमियोंमें तथा शुक्र और डिम्ब के मिलने पर उदासीनता नहीं होती अपितु क्रिया बढ़ती जाती है—अतः यहां पर भी दोनों शक्तियोंमें उदासीनता होनी असम्भव हो।

जिस प्रकार लोहे को चुम्बकसे प्रेम है, अथवा आकर्षण है और जिस प्रकार संखिया को आमाशयसे लगाव-खींचाव है उसी प्रकार शुक्राणुको डिम्बसे प्रेम या आकर्षण है। डिम्ब शुक्राणु को अपनी तरफ़ खींच लेगा, शुक्राणु शरीरमें कहीं भी क्यों न पड़ा हो और फिर गर्भधृति हो जायगी, इसी प्रकियाको अमैथुनिक चक्र कहते हैं। भगवानने सृष्टिको अमैथुनिक चक्रसे उत्पन्न किया।

उपरोक्त अमैथुनिक सृष्टि उत्पत्ति के उदाहरण कृमियों को छोड़कर पक्षी जगतमें भी उपस्थित है। उदाहरणतः वलाका नामका पक्षी बादलकी गर्जनके सुननेसे ही गर्भवती हो जाती है। (देखिये मेघदूत—ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य) उसे मैथुनकी आवश्यकता नहीँ पड़ती।

इस प्रकारकी अमैथुनिक प्रजोत्पत्तिके उदाहरण प्राचीन इतिहासमें पर्याप्त हैं। उदाहरणं के लिये उपनिषदोंमें सत्यकाम का उदाहरण है। उसके पिताका नाम ज्ञात नहीँ जब कि सब उपनिषदोंमें एवं प्राचीन ग्रन्थोंमें पितृ नाम एवं तद्धित प्रत्यय करके नाम बताया जाता है। यथा गार्ग्यः सौश्रुतायनः आत्रियः आदि हैं।

अमैथुनिक प्रजोत्पत्तिका होना असम्भव नहीँ। पक्षी एवं कृमि संसारमें जब यह प्रक्रिया उपस्थित है तो मनुष्य संसारमें असम्भव होनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। आशा है कि बन्धुवर्ग इस प्रश्नपर कुछ विचार प्रगट करेगा।

कृषि-विज्ञान

[लेखक-श्री पं० शीतलाप्रसाद जी तिवारी 'विशारद' असिस्टेन्ट फार्म सुपरवाइजर, इलाहाबाद अग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट, नैनी।]

सु शिक्षाके ही प्रभावसे संसारान्तर्गत समग्र वस्तुओंका पूर्ण रूपेण बोध होता है। सुशिक्षाके ही व्यवहार तथा प्रयोग एवं अभ्याससे भारतके पूर्व पुरुषोंने ईश्वरके विराट रूप तकका साक्षात दर्शन किया था। संसार की आधि-भौतिक बातोंका जिसमें "कृषि-विज्ञान" का भी समा-

वेश है, हमारे पूर्वजोंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था, इस विषयकी प्रमाणिकताके लिये भारतकी सर्वोत्तम मासिक पत्रिकाओंमें कई बार लेख निकल चुके हैं--कि भारतीय ऋषियोंके आश्रमोंके निकट 'कृषि-क्षेत्र'का पूराप्रबन्ध रहता था; जिसमें ब्रह्मचारियोंको अन्यान्य शास्त्रीय शिक्षाओंके साथ साथ 'कृषि-विज्ञान' की व्याहारिक शिक्षाभी दी जती थी। जिस प्रकारसे समयके प्रभावसे भारतवासी आज अपनी अनेकों विद्यायोंके ज्ञानसे हाथ धो चुके हैं; उसी प्रकार वह वर्तमानकाल में 'कृषि-विज्ञान'के ज्ञानसे भी हाथ धो चुके हैं। धन्य हैं, विदेशी वैज्ञानिक-गण--कि जिन्होंने अपने सतत परिश्रमके पश्चात् 'कृषि विज्ञान' को पुनः जन्म देकर लोकका कल्याण किया है।

इस लेखमें हमने अपने पाठकोंको 'कृषि-विज्ञान ज्ञानके संपादनार्थ कुछ बातोंका संक्षेपमें दिग्दर्शन कराऊँगा। जिससे हमारे देशवासी किसान भी 'कृषि-विज्ञान' के चमत्कारसे परिचित होजावें, और जहां तक हो सके अपने व्याहारिक कृषि-कर्ममें वैज्ञानिक आविष्कारोंका प्रयोग भी यथासंभव किया करें; क्योंकि 'कृषि-विज्ञान' के खोज और अविष्कारके लिये हमारी सरकार ने अनेकों वैज्ञानिकों को उचित वेतन पर रखकर अनेकों अनुसंधान किये हैं। जिसमें हमारे देश वासियोंका बहुतसा धन व्यय हुआ है और होरहा है। परन्तु हम इतने अविश्वासी और निपट मूर्ख हैं कि इन वैज्ञानिक आविष्कारोंसे तिल मात्र भी लाभ नहीं उठा रहे हैं। मेरी समझ में तो इसका मुख्य कारण यहा है कि अभी तक हमारे देशवासी किसान इन नये नये आविष्कारों के लाभ से पूर्ण परिचयही नहीं प्राप्त कर सके हैं। वैसे तो संसारका वैज्ञानिक-कोष इतना विस्तीर्ण है-कि उसका ज्ञान संपादन करना किसी भी वैज्ञानिकके लिये इस जीवनमें असंभव है। 'विज्ञान' का प्रधान अंग 'कृषि-विज्ञान'ही ऐसा साधन है, जिससे मनुष्य बहुतसी वैज्ञानिक बातोंकी जानकारी प्राप्त कर लेता है, और इसी कृषि-विज्ञान के ज्ञान से निर्द्वन्द्व होकर अपनी जीवन-यात्रा सुख और यश के साथ व्यतीत करके अन्त में मोक्ष पदवीको भी प्राप्त हो जाता है।

कृषि-कर्मका सम्बन्ध अनेक विद्याओं से है। जब तक इन विद्याओं का व्यावहारिक और सैद्धान्तिक ज्ञान कृषि-व्यवसाइयों को नहीं प्राप्त हो जाता है; तब तक वह इस कृषि-व्यावसाय द्वारा न तो पूर्ण लाभ ही अर्जन कर सकते हैं, न वह इस व्यवसायद्वारा संतोष पूर्वक जीवनही व्यतीत कर सकते हैं इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण में हम भारतीय किसानोंके ही जीवन से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसी के प्रतिकूल अमेरिकन कृषि-व्यवसाइयों के जीवन को देखिये कि किस प्रकारसे इस व्यवसाय द्वारा वह सुखी हैं और संतोष-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हुये अपने राष्ट्र को गौरवान्वित कर रहे हैं। इन तमाम बातोंका मुख्य कारण यही है। कि वहांके कृषि व्यवसायी "कृषि-विज्ञान" के प्रत्येक अंगो के ज्ञान से पूर्णतया परिचित हैं; साथ ही साथ कृषि के व्यावहारिक कर्म को भी वैज्ञानिक रीतियों द्वारा करने में संलग्न रहते हैं। जहां देशके किसी भी कृषि-विज्ञान वेत्ताने किसी लाभकारी नई बात की सूचना कृषि-पत्रों द्वारा देश के किसानोंको दी- कि शीघ्र ही कृषिक्षेत्रके अधिकारियों ने उस नई बातसे लाभ प्राप्त करनेके हेतु-अथवा उसकी सत्यताकी परखके लिये कसौटी पर धर कसा; और देशने उस नई बातसे लाभ प्राप्त करके राष्ट्र की—आर्थिकावस्था मेंभी संतोष जनक परिवर्तन कराकरके राष्ट्रको सुखी बना दिया।

'कृषि-विज्ञान'के आवश्यक अंग "वनस्पति-विज्ञान" के बारेमें विदेशोंमें नित्य नये-नये आविष्कार हो रहे हैं। जिन वनस्पतियोंको लोग स्वप्नमें भी विचार नहीं करते थे कि यह कभी भी मनुष्यों अथवा जानवरोंके लिये उपयोगी सिद्ध होंगी। उन्हीं वनस्पतियोंको मनुष्य-समाजके लिये उपयोगी बनानेके लिये पाश्चात्य देशिक वैज्ञानिकों

ने प्राचीन भारतीय ऋषियों की भांति अरण्य-वास कर; उन पर लगातार अपने जीवन-का अधिकांश समय समर्पण कर कुछ ही दिनों बाद उन्हें देश और समाजके लिये उपयोगी बना दिया; अधिक न मंटक कर यही जान लेना पर्याप्त है कि अब वैज्ञानिक-संसारमें केवल गन्ने से ही शक्कर न तैयार होकर अनेकों बनस्पतियों द्वारा शक्कर प्राप्त करनेको विधियोंका आविष्कार किया गया है, जिसमें से 'चुकन्दर' द्वारा वर्तमान कालमें गन्नेकी अपेक्षा अधिकांशमें शक्कर तैयारकी जा रही है। यह सारा फल है देशके वैज्ञानिकोंके त्यागका कि जिन्होंने अपने मानुषोय सुखोप भोग की परवा न करके संसारके प्राणियोंके हित चिंतन में अपना जीवन निछावर कर दिया। जग तकी आने वाली संतान इन्हीं वैज्ञानिकाकी आराधना में अपना जीवन समर्पण करेगी।

भारतीय किसानों! 'बनस्पपति-विज्ञान' कृषि-विज्ञानका एक प्रधान अंग है आजकल बनस्पतियोंका ज्ञान प्राप्त करने केलिये अनेकों स्वदेशी तथा विदेशी विद्वान अपनो अपनी बुद्धिका परिचय दे रहे हैं। इस सम्बन्धमें इतना और जान लेना आवश्यक है कि हमारे प्राचीन कृषि-विज्ञान-वेत्ता भारतीय बनस्पतिओं के विषयमें निरीक्षण परीक्षण-करके इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि उसीके फल स्वरूप आज तक हम उपयोगी वनस्पतियों से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। जिन बनस्पतिओंको हमारे पूर्व वैज्ञानिकों ने हमें उपयोग में लाने केलिये शिक्षा दी थी आज तक वही बनस्पतियाँ हमारे काम में आरही हैं; निःसंदेह यह बात सत्य है कि अर्वाचीन कालमें विदेशी वैज्ञानिकों ने आधुनिक पद्धतिके अनुसार बनस्पतियोंके बारे में अच्छा ज्ञान संसार को प्रदान किया, पर तोभी भारतकी बनस्पतियोंके विषय में अभी तक वैसी छान-बीन नहीं की गई जैसी कि पश्चिमी देशोंमें की गई है। भारतमें केवल उन्हीं बनस्पतियोंके सुधारका काम किया गया है जो कि अत्यन्त प्राचीनकाल से हमारे देश के किसानों के व्यवहार तथा प्रयोग में आ रही हैं। अब भी हमारे देशमें स्वनाम धन्य डाक्टर जगदीश चन्द्र बसु ऐसे-ऐसे बनस्पति-विज्ञान-वेत्ता उपस्थित हैं-कि जिनके शिष्यत्वके लिये प्रसिद्ध २ बनस्पति-विज्ञानवेत्ता अहोभाग्य समझते हैं। ईश्वर वह दिन लायेगा, जब कि हमारे देश की आने वाली संतान बनस्पतिके ज्ञान से मंडित होगी और हम देशको बनस्पतियों द्वारा मनमाना लाभ उठा सकेंगे।

वनस्पति-विज्ञानकेअन्तर्गत काई सेलेकर बड़े २ वृक्षों तक का समावेश है। जिसका ज्ञान भिन्न २ रीतियों द्वारा अर्जन किया जासकता है। किसानोंको इस सम्बन्धमें इतना ही जान लेना आवश्यक है कि, गन्ना, आलू, गेहूँ, जौ मटर, मूंगफली, इत्यादि जितनी फसलें हैं, यह बनस्पति विज्ञानकी प्रधान-प्रधान वनस्पतियां हैं इनके जीवन-का वैज्ञानिक ज्ञान जब हमारे देशके किसानोंको विदेशी किसानोंकी भांति हो जावेगा। तब हम भी इनसे मानमानी पैदावार ही नहीं ले सकेंगे। बरन् इसके ही बल पर हम वनस्पतियों के फलों, फूलों, कोभी अपनी रूचिके अनुसार परिवर्तित कर सकेंगे। बनस्पथियोंके सुधारके हेतु तथा वनस्पतियोंके रोगोंकी चिकित्साके लिये हर एक प्रान्तों में सरकार की ओरके विज्ञानवेत्ता अपना कार्य्य किया करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर देश अथवा प्रान्तका हरेक किसान इन से बनस्पति-विज्ञानके विषय में आवश्यकतानुसार पूछताछ भी कर सकता है।

जिस प्रकारसे 'कृषि'का प्रधान अंग 'बनस्पति-विज्ञान' है। उससेभी आवश्यक अंग कृषिके लिये "रसायन विज्ञान" है। रसायन-विज्ञानकी बातें सुनकर हमारे देशके बहुतसे किसान चौकन्ने हो उठेंगे-कि कृषि-कर्म्म करनेके लिये यह 'रसायन विज्ञान' कौन सी ऐसीबात है कि जिसका जानना परमावश्यक है। इस सम्बन्धमें हम यहां पर यही कहेंगे कि वास्तबमें 'रसायन-विज्ञान' कृषि-विज्ञान

का मूल है। क्योंकि कृषि सम्बन्धी सारी फ़सलें जो कि 'वनस्पति विज्ञान' की ही अंग-प्रत्यंग है। वह भी भूमिपर उगती हैं और उगकर तथा बढ़ कर फल-फूल देती हैं। यदि हम भूमिकी ही वैज्ञानिक बातोंका ज्ञान न संपादनकर सकेंगे, तो बताइये कृषि-कर्म्म के बारेमें क्या जान सकेंगे? भूमि का ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पहिले हमें कृषि-विज्ञान के अंग भूगर्भ-विज्ञान (जिआलोजी) का अध्ययन करना चाहिये; 'जिआलोजिकल' बातें भी रसायन-विज्ञानकी ही सहायता से सीखी जा सकती हैं।

'रसायन-विज्ञान' वह विज्ञान है जिसके ज्ञानसे हम यह जान सकते हैं कि भूमिके कौन कौनसे तत्त्व कृषिकी फ़सलोंके लिये लाभप्रद हैं। साथही साथ कौनसे हानिकारक। रसायन-विज्ञानकी ही सहायतासे हम भूमिके धरातलका परीक्षण करके उसे अपनी कृषिके लिये उपयोगी बना सकते हैं। साथही साथ कृषिकी फ़सलोंके लिये जो जो खादें आवश्यक होती हैं। वह भी फ़सलोंकी दृष्टिसे रसायन विज्ञानकी ही सहायतासे जांचकर दी जाती हैं। अन्धाधुन्ध-अर्थात बिना वैज्ञनिक विचारानुसार खादों का व्यवहार करादेनेसे कभी भी वास्तविक लाभ कृषि-कर्म्म द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता

इतना ही क्यों 'वनस्पति-विज्ञान' (Botany) के अध्ययनार्थ भी 'रसायन-विज्ञान' (Chemistory) का जानना आवश्यक है। क्योंकि जब हम वनस्पतियों का रासायनिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें वनस्पतियोंका विश्लेषणकरना पड़ता है। वनस्पतिओंका रासायनिक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् हम वनस्पतियोंसे जिस तत्त्वको अधिक चाह करें वह भी हम रासायनिक खादों द्वारा बढ़ा सकते हैं। 'रसायन-विज्ञान' का अध्ययन 'फ़िजिक्स' अर्थात भौतिक-विज्ञानकी सहायता से किया जा सकता है। रसायन विज्ञान और भौतिक-विज्ञान जो कि एक दूसरेके अंग है; 'कृषि विज्ञान'के स्तम्भ हैं। कृषिकारोंके लिये रसायन-विज्ञान की मोटी २ बातों को जानकारी आवश्यक है। रसायन-विज्ञान सम्बन्धी बातों की सहायताके लिये प्रान्तीय केमिस्टसे हम हर समय सहायता ले सकते हैं।

उल्लिखित पंक्तियों में हमने कृषि-विज्ञानके प्रधान-प्रधान अंग अर्थात 'वनस्पति-विज्ञान (Botany, और रसायन-विज्ञान (Chemistry) के विषयमें चर्चाकी है। कि यह कृषि-विज्ञानके मूल स्तम्भ हैं। कृषिके लिये इनका कुछ न कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। अब हम कृषि-विज्ञान के व्यावहारिक पहलुओं पर भी कुछ चर्चा करेंगे। कृषि करनेके लिये यद्यपि वर्तमान कालमें अनेकों प्रकारकी मशीन (कृषि-यन्त्र) आविष्कृत हो गई हैं। तथापि भारतमें अभी तक पशुओंकी सहायता कृषि-कर्म्ममें अधिकतासे ली जा रही है। इसलिये कृषि-यन्त्रों (Implements) का ज्ञान तो भारतीयों को सीखना अनिवार्य्यही है। परन्तु पशु-विज्ञानके व्यावहारिक ज्ञानकी तरफ़भी भारतवासियों को पुनः दत्तचित्त होना चाहिये।

वर्तमानकालमें भारतमें पशुओंकी दशा इतनी हीन होगई है। जिसके कारण कृषि अधोमतिको प्राप्त होती चली जा रही है। न तो हम विदेशी किसानों की भाँति अभी मनमाना धन व्यय करके कृषि-यन्त्रों की सहायतासे ही अपनी कृषिका कारोबार चला सकते हैं। न पशुओंके ही सुधार की ओर ध्यान देते हैं तो समझमें नहीं आता कि भारतके किसानोंके भाग्यमें क्या लिखा हुआहै। जब हम अपने देशके कृषि-पशुओं पर निगाह डालते हैं। तो सिवाय पछतानेके और कोई उपायही नहीं सूझता। जो विदेशी किसान अधिकतर कृषि का सारा कार्य्य आज मशीनों की सहायतासे कर रहे हैं। वह भी आज गऊओंका पालन-पोषण इस रीतिसे कर रहे हैं कि उनसे अधिकाधिक लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं। साथ ही पशु-विज्ञानके ज्ञान द्वारा इस मात्रामें खाद तैय्यार कर रहे हैं कि पशुओं के मल-मूत्रके उचित सिर्जनसे वह कृषिसे अकूत लाभ कर रहे हैं, भारत में कृषि का भारतो

अभी बैलों परही है। परन्तु हमारे देश अथवा प्रान्त के किसानोंके बैलोंकी जो दशा है। उसका रोमांचकारी वर्णन न करना ही अच्छा है। कृषि-विज्ञान का एक आवश्यक अंग पशु-शास्त्र भी है जिसे महाभारत काल तकमें पांडवके पुत्र सहदेवने भली प्रकार से अध्ययन किया था और व्यवहारमें लाया था; पर वह आजकलके ज़मानेमें भारतीयोंके लिये लुप्त सा हो गया है। हमें आंखे खोलकर विदेशी पशु-वैज्ञानिकोंकी बातों को मानना चाहिये और यदि हम अपनी कृषि तथा उसके सहायक अंगोंसे लाभ बढाना चाहते हैं तो हमें पशुओंकी उन्नतिकी ओर ध्यान देना चाहिये।

कृषि-विज्ञान विषयक कुछ वैज्ञानिक विषयोंके बारेमें सूक्ष्म दृष्टिसे विवेचन कर चुके; अब हम अन्यान्य बातों के सम्बन्धमें भी कुछ कहेंगे। सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ साथ व्यावहारिक ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है। जबकि उसे व्यवहारमें लाया जाय। हमारे देशका किसान समुदाय कृषि का व्यवसाय अपने प्राचीन ढंगपर कर रहा हैं। परन्तु आजकल इस वैज्ञानिक युगमें कृषि व्यावसायिक ढङ्गसे ही करनेमें लाभ है किसानोंकी भांति लगभग पचास एकड़के भूमि एक चकमें चाहिये। एक चकमें होनेसे वह अपने सारे खेतों की देखभाल तथा उसका प्रबन्ध ठीकसे कर सकेगा। यदि यह ५० एकड़ भूमि एक चकमें न हो करके फुटफैरकी दशामें होगी, तो उस वैज्ञानिक-किसानके लिये इस ५० एकड़ भूमिसे कभी भी उतना लाभ नहीं प्राप्त हो सकता, न वह कर ही सकता है। जितना कि एक चकमें होनेसे कर सकता है।

जब किसी कृषि-वैज्ञानिक पुरुष को कृषि-कर्म करनेके लिये आवश्यक भूमि एक चकमें मिल जाती है। तोउसे उस भूमिका प्रबन्ध करना पड़ता है। सम्भव है कि कोई भाग्यशाली किसान भारतमें दो चार सौ एकड़में कृषि करना चाहेतो उन्हें अपने इस 'कृषिक्षेत्र' को कई भागोंमें बांट देना होगा और हर एक 'ओवरसियर' अर्थात प्रबन्ध कर्त्ताके आधीन ५० एकड़का एक खंड दे देना होगा क्योंकि एक कृषि-वैज्ञानिक ५० एकड़ भूमिके कृषिक्षेत्र का ही प्रबन्ध कर सकता है। यदि कृषि क्षेत्रमें भूमि अधिक क्षेत्रफल में हो जावेगी, तो उसके प्रबन्धमें अवश्य ही त्रुटि पड़ जावेगी और वह वास्तविक लाभ नहीं प्राप्त कर सकेगा। ५० एकड़के कृषिक्षेत्र का भी प्रबन्ध करना कोई सरल बात नहीं है। ऐसे-ऐसे कृषिक्षेत्रोंके प्रबन्धके लिये अनेकों बातोंकी जानकारीका होनी अत्यन्तावश्यक है। वैसेतो अपनी बुद्धिके अनुसार सभी कुछ न कुछ प्रबन्ध कर सकते हैं। परन्तु उसी कृषिक्षेत्रका प्रबन्ध श्रेष्ठ कहा जासकता है जोकि कृषिक्षेत्र का सारासे खर्चबर्च निकाल कर सालाना ४ अथवा ५ हज़ार रुपया बना सके। तभी वह कृषिक्षेत्र व्यवसायिक कृषिक्षेत्र कहा जा सकता है। कृषिक्षेत्रों का प्रबन्ध करना भी कृषि-विज्ञान का एक आवश्यक अंग है। इस विषयमें फिर कभी लिखेंगे।

राग-भूपाली-तीनताल

[ले० श्रीविष्णु अन्नाजी कशालकर सङ्गीत प्रवीण]

इस राग में मध्यम और निषाद यह दोनों स्वर वर्जित हैं, बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं। यह पाँच ही स्वरों का राग होने से इसको "आढेव" कहते हैं। इस गीत का ताल-तीन ताल है। इसकी आठ मात्रा होती हैं। एक मात्रा पर सम होती है, पाँचवीं पर खाली होती है। पहिली, तीसरी और सातवीं पर ताली दी जाती है।

गीत—मनोजवं मारुत तुल्य वेगं।
जितेंद्रियं बुद्धिमतां वरिष्टं॥
वानात्मजं वानरयूथ मुख्यं।
श्रीराम दूतं शरणं प्रपद्ये॥

तार		
मध्य	ग रे ग प रे सा ० ० ० ० — —	सा ग रे रे ग ग ग ग प प प | प ध ० ० ० ० ० ० ० — ० — — | ० ०
मन्द		ध ध ० ०

म नो . ज वं मा रू त तु . ल्य वे . गं जि तें द्रि यं बु द्धम
० — + — ० — +

तार	सा सा — ०	सा सा सा रे सा सा रे सा ० ० — ० — ० ० —
मध्य	ध प रे सा ग प ध ध — ० — ० — ० ० ०	ध प ध ० — ०
मन्द		

तां व रि ष्टं वा ता . त्म जं वा न र यू त मु ख्यं श्री रा . म दू
— ० — + — ० —

तार		
मध्य	ध ०	प ध प ग प रे सा ० ० ० ० ० — ०
मन्द		

तं श र णं . प्र प द्ये

चिह्नों का खुलासा

तार, मध्य, मन्द, यह तीन सप्तकोंके नाम हैं, जिस खाने में जो स्वर लिखा है वह उस खानेमें जो सप्तक का नाम दिया है उसी सप्तक का समझना स्वरों के नीचे जो चिह्न हैं वह मात्रा के लिए है। ० यह चिन्ह आधी मात्रा के लिये है और — यह चिह्न एक मात्रा के लिये है।

प्रत्येक स्वर के नीचे गीत के अक्षर लिखे हैं उनको उसी स्वर पर गाना चाहिये।

गीतके अक्षरके नीचे तालके चिन्ह दिये हैं उनमें — यह और + यह चिन्ह् तालीके लिये हैं। जिस अक्षरके नीचे इनमें से कोई चिन्ह हो वहाँ पर ताली होती है। उनमें जहाँ + यह चिन्ह है वहाँ पर सम होती है और जहाँ ० चिन्ह है वहां पर खाली होती है।

चन्द्रग्रहणाधिकार

[गताङ्क से आगे]

= २२° ३६′ ५५″
= २२°४०′ स्वल्पान्तर से

इससे प्रकट है कि ज्योतिर्गणितका मेषविन्दु सूर्यसिद्धान्तके मेषबिन्दुसे इस वर्ष ७′ आगे था। इसलिए जब ज्योतिर्गणितके अनुसार राहुका भोगांश १२०°४·′५ है तब सूर्यसिद्धान्तके मेष-विन्दुसे स्पष्ट राहु का भोगांश १२०°११′·५ होगा राहुके इसी। भोगांशसे चन्द्रमाका शर जानकर ग्रहणकाल जाननेसे यह पता चलेगा कि केवल राहु की गति में संशोधन कर देने से सूर्य-सिद्धान्तके अनुसार निकाला हुआ ग्रहणकाल यथार्थता से कितना भिन्न है।

पूर्णिमान्तकालका स्पष्ट चंद्रमा सूर्यसिद्धान्तानुसार
२६८°३४′

,, राहु दृग्गणितानुसार १२०°११″५

,, राहुसे चंद्रमाका अन्तर १७८°२२′.५

दृग्गणित अथवा ज्योतिर्गणित के अनुसार चन्द्रमाका परमशर ५°९′ होता है न कि ४°३०′ जैसा कि सूर्य सिद्धान्तमें लिखा है। इसलिए चन्द्रमा की पूर्णिमान्तकालिक

$$\text{शरज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°९' \times \text{ज्या} १७८°२२''५}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या}५°९ \times \text{ज्या } १°३७.५}{३४३८}$$

$$= \frac{३०९ \times ९७.५}{३४३८}$$

$$= ८'.७६$$

इसलिए पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर भी ८′.७६ हुआ चन्द्रशरके इसी मानको मानैक्यखण्ड और मानान्तरखण्डके

इसलिए पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर भी ७६′.८ ही हुआ। चन्द्रशरके इसी मानको मानैक्य खंड और मानान्तर खंडके साथ रखकर गणना करनेसे पहलेकी तरह

ग्रास का परिमाण = ६०″६३ − ८″७६ = ५१″८७

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\left\{(६०'६३ + ८'७६)(६०'६३ - ८'७६)\right\}}}{७६५'५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\left\{६९'३९ \times ५१'८७\right\}}}{७६५'५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times ५९'९९}{७६५'५} \text{ घड़ी}$$

= ४ घड़ी ४२ पल

इसलिए ग्रहण स्थिति काल = ९ घड़ी २४ पल

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\left\{(२७·३१ + ८·७६)(२७'३१ - ८'७६)\right\}}}{७६५'५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\left\{३६'०७ \times १८'५५\right\}}}{७६५'५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times २५'८६७}{७६५'५} \text{ घड़ी}$$

= २ घड़ी १′६५ पल

इसलिए विमर्द सर्वग्रास स्थिति काल = ४ घड़ी ३ पल-के लगभग

	घ.	पल	
पूर्णिमान्त काल =	३	२३	मध्यरात्रि के उपरान्त
स्थित्यर्ध घटाया	– ४	४२	
स्पर्श काल	– १	१९	

ऋण चिह्न प्रकट करताहै कि १ घड़ी १९ पल मध्य रात्रिसे पहलेका समय है।

पहले लिखे हुए सब संस्कार संक्षेपमें यों लिखे जाते हैं:—

	घड़ी	पल	
स्पर्श काल	–१	१९	
काशीका देशान्तर	+१	१३	
काल समीकरण	–०	११	
चरकाल	+१	११	
मध्यम प्रातःकालसे मध्यम मध्यरात्रितक	+४५	०	
काशीके सूर्योदयके स्पर्शकालका आरंभ	४५	५४	पर होगा।
पूर्णिमान्त काल	३	२३	मध्यरात्रिके उपरान्त
विमर्दार्ध	–२	१'७	
सम्मीलन काल	१	२१'३	मध्यरात्रिके उपरान्त
काशीका देशान्तर	+१	१३	
काल समीकरण	–०	११	
चरकाल	+१	११	
प्रातःकालके मध्य रात्रितक	४५	०	
काशीके सूर्योदयके सर्व ग्रासका आरंभ	४८	३४'३	पर होगा।
विमर्द काल	४	३'४	
∴ काशीके सूर्योदयसे उन्मीलन	५२	३७'७	पर होगा

इसी प्रकार स्पर्शकालमें ग्रहण स्थितिकाल जोड़नेसे काशीके सूर्योदयसे ५५ घड़ी १८ पलपर ग्रहणका मोक्ष होगा।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्तके राहु-के भोगांशकी जगह राहुका यथार्थ भोगांश प्रयोग करनेसे सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ और अंत यथार्थताके बहुत निकट होजाता है। इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्त-में राहुका भगण काल बहुत अशुद्ध है। इसकी अपेक्षा ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्यके अनुसार राहुकी गणना बहुत शुद्ध है और यथार्थताके बहुत निकट है।

यह पहले बतलाया गया है कि ग्रहणकी गणना करनेके लिए सूर्य और चन्द्रमाके लंबन, बिम्ब, दूरी, इत्यादिकी जानकारी जितनी सूक्ष्म हो ग्रहण काल उतना ही शुद्ध आते हैं। यह भी दिखलाया गया है कि सूर्यसिद्धान्तके अनुसार सूर्य और चन्द्रमाकी गति बिम्बमान इत्यादि निकलते हैं वह स्थूल हैं। यदि इन सबका विचार दृग्गणितके अनुसार किया जाय तो ग्रहण प्रत्यक्षकाल और गणित सिद्ध कालमें कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। इसलिये कमसे कम ग्रहणकाल-का शुद्ध समय जाननेके लिए अपने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें ऐसे संशोधनोंका समावेश करना चाहिए जो दृग्गणितसे सिद्ध होते हैं। ऐसे संशोधनोंकी पूरी जानकारी करानेके लिये यह आवश्यक है कि हमारे यहां एक वेधशाला ऐसी हो जिससे

अर्वाचीन ज्योतिषका पठन पाठन सुगमता पूर्वक हो सके। मेरी समझमें यह अधर्म है कि हम अपने पंचांगोंमें ग्रहण, शृङ्गोन्नति, ग्रहोदय, ग्रहास्त, इत्यादिकी गणना करनेके लिए पाश्चात्य देशोंमें बने हुए नाविक पंचांगोंके आश्रित हों परन्तु इनके सिद्धान्तोंके पठन पाठनका स्वतन्त्र प्रबन्ध न करें।

अब संक्षेपमें यह दिखलाया जायगा कि ज्योतिर्गणितके अनुसार इस ग्रहणके मूलाङ्क क्या हैं:—

पूर्णमान्तमलिक मूलाङ्क:—

स्पष्ट रवि ११८°५६'"२३
स्पष्ट चन्द्र २६८°५६''२३
रवि दिन गति ५७''६
चन्द्रदिन गति १४°८''१
राहु १२०°४''५
रवि लम्बन ०'.१५
चंद्र परमलम्बन ५९''३
चन्द्र बिम्ब ३२''४
भूभा बिम्ब ८७''०
मानैक्य खंड ५६''६
मानान्तर खंड २७''२
अयनांश २२°४७'
चन्द्र शर उत्तर ६''६
प्रातःकालकी सूर्य क्रान्ति १४°११''१

यह पहले बतलाया गया है कि अयनांशोंमें भिन्नता क्यों है। इस भिन्नताके कारण रवि राहु और चन्द्रमाके भोगांशोंमें भी ७' का अन्तर हो जायगा। इन मूलाङ्कोंसे यदि ग्रहणकी गणना की जाय तो नाविक पञ्चांगमें दिये हुए समय से २ या ३ पलका अन्तर रह जाता है। इसका कारण यह है कि ऊपर सूर्य और चन्द्रमाकी दैनिक गतियां ही ली गयी हैं जबकि सूक्ष्म गणनाके लिये इनकी प्रत्येक घड़ीकी गति स्पर्श, सम्मीलन, उन्मीलन कालोंको जानकर काम लेना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमाकेकारकी भी गणना करनी चाहिए जैसा कि चित्र ६८ के सम्बन्धमें बतलाया गया है। ऐसा करनेसे गणनाका विस्तार बहुत हो जायगा इसलिए वह नहीं दिखलाया जाता।

स्पर्शकाल और मोक्षकालके स्फुट वलनोंकी गणना—

स्फुट वलनके लिए आक्षवलन और आयनवलनका जानना आवश्यक है। आक्षवलनके लिए चन्द्रमाका तात्कालिक क्रान्ति और नतकाल जानना चाहिए।

क्रान्तिकी गणना—

ऊपर बतलाया गया है कि स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पल है जिसमें चन्द्रमा १°४'२८" अथवा १°४'५ चलता है क्योंकि चन्द्रमाकी दैनिक गति ८२१' है।

पूर्णिमान्त कालिक चंद्र भोगांश २६८°१४'
स्थित्यर्धमें चंद्रमाकी गति १°४''५
∴ स्पर्शकालिक चंद्र भोगांश २६७°२६''५
और मोक्षकालिक चंद्र भोगांश २६६°१६''५
राहुका भोगांश दोनों कालोंमें १२०°११''५
∴ स्पर्शकालमें राहुसे चंद्रमाका अन्तर १७७°१८'
मोक्षकालमें राहुसे चन्द्रमाका अन्तर १७६°२७'

स्पर्शकालिक चंद्र शरज्या = $\frac{\text{ज्या } ५°६' \text{ ज्या } १७७°१८'}{३४३८}$

$$= \frac{\text{ज्या } ५^\circ ६' \text{ ज्या } २^\circ ४२'}{३४३८}$$

$$= \frac{३०६ \times १६२}{३४३८}$$

$$= १४'.६$$

∴ स्पर्शकालिक चंद्रशर=१४'.६

$$\text{मोक्षकालिक चंद्रशरज्या} = \frac{\text{ज्या } ५^\circ ६' \text{ ज्या } १७६^\circ २७'}{३४३८}$$

$$= \frac{३०६ \times ३३}{३४३८} = ३'$$

∴ मोक्षकालिक चंद्रशर=३'

स्पर्शकालिक चंद्रभोगांश=२९७°२६'.५

अयनांश $= २२^\circ ४०'$

स्पर्शकालिक चंद्र सायन भोगांश $= ३२०^\circ ६'.५$

इसी प्रकार मोक्षकालिक चंद्र सायन भोगांश=३२२°१८'.५

स्पर्शकालिक चंद्र मध्यम क्रान्ति ज्या=ज्या २३°२७' ज्या ३२०°६'.५

$= .३६७६ \times .६४०५$

$= .२५४६$

∴ मध्यम क्रान्ति=१४°४६' दक्षिण

चंद्रशर=०°१४'.६ उत्तर

∴ स्पर्शकालके चंद्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति=१४°३१'.४ दक्षिण

यह स्पष्टाधिकार श्लोक ५८ के अनुसार है। यदि शुद्ध गणना करनी हो तो पृ० २६५ में बतलायी गयी रीतिसे काम लेना चाहिए जो विस्तार भयसे यहाँ छोड़ दी जाती है।

इसी प्रकार मोक्षकालिक चंद्र मध्यम क्रान्ति=१४°५' दक्षिण

शर = ३' उत्तर

∴ ,, चन्द्र स्पष्ट क्रान्ति= १४°२' दक्षिण

नतकालकी गणना—

चन्द्रमाका नतकाल जाननेके लिए पहले सूर्यका नतकाल जानना पड़ता है। मध्याह्न कालमें सूर्य याम्योत्तरवृत्तपर रहता है और मध्यरात्रि कालमें भी वह क्षितिजके नीचे याम्योत्तर वृत्तपर रहता है इसलिए पृथ्वीकी छायाका केन्द्र मध्यरात्रिकालमें ठीक याम्योत्तर वृत्तपर रहता है क्योंकि पृथ्वीकी छायाका केन्द्र सूर्यसे ठीक १८०° पर रहता है। इसलिए मध्यरात्रि कालमें पृथ्वीकी छाया केन्द्रका नतकाल शून्य होता है। यदि यह जान लिया जाय कि स्पर्शकालमें मध्यरात्रिसे कितना पहले या पीछे है तो यह सहजही जाना जा सकता है कि स्पर्शकालमें पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नतकाल कितना पूर्व या पश्छिम है। चन्द्रग्रहणके समय चन्द्रमा पृथ्वीकी छायाके बहुत पास रहता है और यह मालूम ही रहता है कि चंद्रमा पृथ्वीकी छायासे कितने अंतरपर है इस लिए चंद्रमाका नतकाल सहज ही जाना जा सकता है।

		घड़ी	पल
उदयकालिक सूर्यकी चरकाल	=	१	११
मध्यम प्रातःकालसे मध्यरात्रितक	=	४५	०
सूर्योदयसे मध्यरात्रितक	=	४६	११
सूर्योदयसे स्पर्श कालका समय	=	४५	५४
मध्य रात्रिसे पहले स्पर्शकालका समय	=	०	१७

इसलिए जो कुछ ऊपर कहा गया है उसके अनुसार स्पर्शकालके समय पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नतकाल १७ पल=१०२ पल है अर्थात् स्पर्शके आरंभके उपरान्त १७ पलपर पृथ्वीकी छायाका केन्द्र ठीक याम्योत्तर वृत्तपर आ जावेगा।

		घड़ी	पल
सूर्योदयसे मोक्षका समय	=	५५	१८
„ मध्यरात्रिका समय	=	४६	११
मध्यरात्रिके उपरान्त मोक्षका समय	=	९	७

इसलिए मोक्षकालिक पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका नत-काल ९ घड़ी ७ पल या ५४७ पल या ३२८२ असु है।

अब यह देखना है कि स्पर्शकालके समय भूभाकेन्द्र का भोगांश क्या है:—

पूर्णिमान्त कालिक सूर्यका भोगांश = ११८°३४'
स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पलमें सूर्यकी गति = ४'·५
∴ स्पर्श कालिक सूर्यका भोगांश = ११८°२९'·५
सूर्यसे भूभाकेन्द्रका अंतर = १८०°०
∴ स्पर्श कालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश = २९८°२९'·५
चंद्रमाका भोगांश = २९७°२९'·५
∴ स्पर्श के समय भूभाकेन्द्र चंद्रमाका अंतर = १°

इसको विषुवकालमें बदलनेके लिए स्पष्टाधिकारके श्लोक ५९ से काम लेना चाहिए। चंद्रमा सायन कुम्भ राशि-में है जिसके लंकाके उदयासु १७९४ * हैं (देखो पृष्ठ ४६२) इसलिये १° के उदयासु १७९४ + ३०=५९·८=६०

स्पर्शकालिक भूभाकेन्द्रका पूर्व नतकाल = १०२ असु
भूभाकेन्द्रसे चन्द्रमाका अंतर पच्छिमकी ओर= ६० असु
स्पर्शकालिक चंद्रमाका नतकाल = ४२ असु
४२'
पूर्णिमान्त कालिक सूर्य का भोगांश = ११८°३४'

स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पलमें सूर्यकी गति = ४'·५
∴ मोक्ष कालिक सूर्यका भोगांश = ११८°३८'·५
सूर्यसे भूभाकेन्द्र का अंतर = १८०°
∴ मोक्षकालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश = २९८°३८'·५
„ चंद्रमाका भोगांश = २९९°३८'·५
„ भूभाकेन्द्रसे चंद्रमाका अंतर पूर्वकी ओर } १°

इसके उदयासु भी पूर्ववत् ६० असु होंगे।
मोक्ष कालिक भूभाकेन्द्र का पच्छिम नतकाल = ३२८२ असु
भूभाकेन्द्रसे चंद्रमाका अंतर पूर्वकी ओर = ६० असु
∴ मोक्ष कालिक चंद्रमाका नतकाल = ३२२२ असु
= ३२२२'
= ५३°४२'

चंद्रमाकी स्पर्शकालीन चरज्या = स्परे २५°२०' + स्परे १४°३१'·४
= '४७३४ × '२५९०
= '१२२६
∴ स्पर्शकालीन चरांश = ७°२'

पृष्ठ ४३१ के समीकरण (ग) के अनुसार,

नतांश कोटिज्या=(कोज्या ४२'-ज्या ७°२) कोज्या २५°२०' कोज्या १४°३१'·४
= ('९९९९-१२२६) × '९०३८ × '९६८०
= '८७७३ × '९०३८ × '९६८
= '७६७५
∴ स्पर्शकालीन नतांश=३९°५३'

पृष्ठ ४०७ के अनुसार

---

* नतकाल जाननेके लिये लंकाके उदयासुओंसे काम लेना चाहिये क्योंकि मध्यलग्नका विचार लंकाके उदयासुओंसे ही किया जाता है, देखो पृष्ठ ४८३-४८४

होता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी। इसलिए आयनवलन भी उत्तर होगा।

∴ पृष्ठ ६८४ के सूत्र (२) के अनुसार

ज्या (आयनवलन) = ज्या २३°२७′ × कोज्या ३२०°९′·५ / कोज्या १४°३१′·५

= ३९७९ × ·७६७९ / कोज्या १४°३१′

= ·३१५७

∴ आयनवलन = १८°२४′ उत्तर

∴ स्पर्शकालीन स्फुटवलन = १८°२४′ + ०°४६′

= १९°१०′ उत्तर

चंद्रमाकी मोक्षकालीन चरज्या = स्परे २५°२०′ स्परे १४°२′

= ·४७३४ × ·२४९९

= ·११८३

∴ मोक्षकालीन चरांश = ६°४८′

∴ मोक्षकालीन नतांश कोटिज्या।

= (कोज्या ५३°४२′ ज्या ६°४८′) कोज्या २५°२० / कोज्या १४°२′

= (·५९२० − ·११८३) × ·९०३८ × ·९७०२

·४७३७ × ·९०३८ × ·९७०२

= ·४१५४

∴ मोक्षकालीन नतांश = ६५°२७′

ज्या अग्रा = ज्या १४°२′ / ज्या ६५°२७′ कोज्या २५°२०′ + को स्परे ६५°२७′ + स्परे २५°२०′

ज्या अग्रा = ज्या १४°३१.′४ / ज्या ३९ ५२′ × कोज्या २५°२०′

× को स्परे १९°५२′ × स्परे २५°२०′

= ·२५०८ / ·६४१२ × ·९०१८ + १·१९९७ × ·४७३४

= ·४३२८ + ·५६६५

= ·९९९३

∴ अग्रा = ८७°४५′

∴ पूर्वबिन्दुसे चंद्रमा का दिगंश = ८७°४५′ दक्षिण

और उत्तर बिन्दुसे " = ९०° + ८७°५४′

= १७७°५४′ दक्षिण

∴ स्परे (खउग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

= कोज्या ८७°५४′ × स्परे ३९°५३′

= ·०३६६ × ·८३५६

= ·०३०६

समप्रोत वृत्त का नतांश = १°४५′

ज्या (आक्षवलन) = ज्या २५°२०′ ज्या १°४५′ / कोज्या १४°३१′

= ·०१३१ / ·९६८ = ·०१३५

∴ आक्षवलन = ०°४६′ उत्तर

स्पर्शकालीन चंद्रमाका भोगांश	२९७°२९′·५
अयनांश	२२°४०·५
स्पर्शकालीन चन्द्रमाका सायन भोगांश	३२०°९·५

इसमें ९०° जोड़नेसे चंद्रमाका सायन भोगांश ५०°९′·५

= '२४२५ / ('९०९६ × '९०३८) + '४५६८ × '४७३४

= '२९५० + '२१६३

= '५११३

∴ अग्रा = ३०°४५'

∴ पश्चिम बिन्दुसे चंद्रमाका मोक्षकालीन दिगंश = ३०°४५' दक्षिण

∴ स्परे (खउग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

= कोज्या ३०°४५' स्परे ६५°२७'

= .८५९५ × २'१८९३

= १'८८१७

समप्रोतवृत्तका नतांश = ६२°१'

∴ ज्या (आक्षवलन) = (ज्या २५°२०' ज्या ६२°१') / कोज्या १४°२'

= ('४२७९ × '८८३०) / .९७०२

= '३७७८ / ९७०२ = .३८९४

∴ आक्षवलन = २२°५५' दक्षिण

मोक्षकालीन चंद्रमाका भोगांश = २९९°३८''५

अयनांश = २२°४०'

चंद्रमाका सायन भोगांश = ३२२°१८''५

इसमें ९०° जोड़नेसे सायन भोगांश ५२°१८''५ होगा जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है।

इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

ज्या (आयनवलन) = (ज्या २३°२७' कोज्या ३२२°१८''५) / कोज्या १४°२'

= ('३९७९ × कोज्या ३७°४१''५) / .९७०२

= ('३९७९ × '७९१३) / '९७०२

= '३१४९ / '९७०२

= '३२४६

∴ आयनवलन = १८°५६'

∴ स्फुटवलन = −२२°५५' + १८°५६'

= ३°५९' दक्षिण

इसी प्रकार सम्मीलन, मध्य और उन्मीलन कालोंके स्फुटवलन जाने जा सकते हैं।

स्फुटवलनों और ग्रह बिम्बोंके अंगुलात्मक मान जाननेका जो नियम २६वें श्लोकमें बतलाया गया है। उसकी आवश्यकता परिलेखाधिकारमें पड़ेगी इसलिए वहीं इसका उदाहरण भी दिया जायगा।

इस प्रकार चन्द्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अधिकारका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

कंटाई डिवीजन में घोर दुर्भिक्ष

सैकड़ों ग्रामों में फसल नष्ट।

(२५० वर्ग मील जमीन जलमग्न)

हजारों नर-नारी तथा पशु चारे और अन्न, वस्त्र बिना मृत्यु के मुख में जा रहे हैं।

सज्जनो !

समाचार पत्रों द्वारा कंटाई निवासी अकाल पीड़ितों के करुण-क्रन्दन का आर्त्तनाद आपके कानों तक पहुंच चुका हो, इस पर भी सोसाइटी ने अपने एक प्रतिनिधि को जलमग्न स्थानों में भेज कर वहां की दशाका दिग्दर्शन कराया है; जिससे पता चलता है कि २५० वर्ग मील जमीन एक दम जलमग्न हो गई है, जो प्राण रक्षार्थ छप्परों तथा वृक्षों पर निवास कर रहे हैं, अन्न बिना सैकड़ों मनुष्य मृत्यु के मुख में जा चुके हैं तथा बाकी मृत्यु की अन्तिम घड़ियां गिन रहे हैं। इसके अतिरिक्त पशुओंकी तो बड़ी ही शोचनीय दशा हो रही है जिसे देखकर रोमाञ्च हो आता और कलेजा दहलाने लगता है। अस्तु ऐसी अवस्थामें यदि अन्न वस्त्र और चारा (बिचाली आदि) की सहायता अति शीघ्र न पहुँचाई गई तो बहुत सम्भव है कि हजारों मनुष्यों और पशुओंको असमय ही कराल काल का ग्रास बनना पड़े।

अतः दानी सज्जनों से निवेदन है कि शिघ्रातिशीघ्र जो कुछ जिससे बन पड़े पीड़ितों की सहायतार्थ मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी में भेजने की कृपा करें।

सोसाइटीका सेवा-दल जलमग्न स्थानों में पहुँच चुका है जो शीघ्र ही भिन्न भिन्न स्थानोंमें अपना केन्द्र नियत कर सहायता देना प्रारम्भ कर देगा।

निवेदक—

मोतीलालजाजोदिया,

मन्त्री—मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी,

७।१, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २३ } कन्या, संवत् १९८३ { संख्या ६

भारतीय सङ्गीत

विद्यार्थियोंके लिये उपदेश

[ले० श्री हरिनारायण मुखोपाध्याय]

र—प्रायः देखा जाता है कि संगीतके शिक्षार्थी इसीलिए प्रयत्न करते हैं कि उनका कंठस्वर ऊँचा और मीठा हो और इस उद्देश्यसे वे हरमोनियमके साथ अपना कंठ मिलाकर स्वरका अभ्यास करते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि कंठस्वर हारमोनियमके स्वरकी तरह बन जाता है अर्थात् स्वाभाविक कंठ-स्वर विकृत हो जाता है। केवल यही नहीं किन्तु दो स्वरोंके बीचकी श्रुति* अप्रकाश रहनेके कारण और हारमोनियमका स्वर ऊँचा होनेके कारण कर्णगोचर नहीं हो सकते। गुरुओंसे सुना है कि जिस प्रकार कंठस्वर है उसको उसी प्रकार अभ्यास करनेसे तंत्री-के स्वरके समान होता है और अपने स्वरको पहले

---

* स्वरूप मात्र श्रवणान्नादो ऽनुरणनात्मकः ।
श्रुतिरित्युच्यते भेदास्तस्य द्वाविंशतिर्मताः ॥
नादाच्च श्रुतयो जातास्ततो षड्जादयः स्वराः ।
तेभ्यश्च मूर्च्छना प्रोक्ता स्तानाख्या ग्रामसंभवाः ॥

—संगीतरत्नाकर ।

कानमें प्रतिष्ठित करके फिर किसी तारके यंत्रके साथ मिलाकर स्वरकी साधना (कर्तव) करनी चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करनेसे कंठस्वर मार्जित होता है और साधकको भी स्वरका ज्ञान और दृष्टि प्राप्त होते हैं। इसके बाद स्वर सप्तक (स र ग म प ध न) के बोधके लिए तंत्रीक सहायता लेनी पड़ती है। मनुष्यकंठ वातज गुणके कारण रूखा और ऊँचा स्वर उत्पन्न करता है और पित्तज गुणके कारण भारी और गम्भीर और कफज गुणके कारण स्निग्ध और मधुर स्वरको उत्पन्न करता है। यह सम्भव नहीं है कि वातज गुण प्रधान कंठसे मधुर स्वर या पित्तज गुण प्रधान कंठसे उच्च स्वर निकाला जाय। तंत्री की ही सहायतासे कंठस्वर मार्जित और प्रिय हो सकता है। यही प्रथा प्राचीन कालसे चली आरही है। परन्तु आजकल हारमोनियाका व्यवहार हो चला है। इस यंत्रमें बारह स्वर बँधे हुए हैं। किसीको दबानेसे ही स्वर निकलता है और थोड़ी सी चेष्टासे ही कंठस्वर मिला सकते हैं। परन्तु परिणाम यही होता है कि कर्ण और कंठ यंत्रके दास बन जाते हैं। तारके यंत्रोंमें किसी तारपर आघात करनेसे कम्पन (अनुरणन युक्त ध्वनि (स्वर) निकलती है और कुछ कालतक स्थायी रहती है। हारमोनिया यंत्रसे इस प्रकारका स्वर नहीं निकल सकता। कारण, दबानेसे केवल अनुरणनहीन स्वर निकलता है और अंगुलि हटा लेनेसे स्वर निकलना बन्द हो जाता है। सारांश यह है कि इस यंत्रमें स्वर असम्पूर्ण रहनेके कारण साधनाके लिए यह विशेष प्रकारसे अनुपयोगी है।

तम्बुरा और स्वर साधना—स्वर साधनाके लिए तंत्री युक्त यंत्र विशेष प्रकारसे उपयोगी है और तम्बुरा यंत्रका व्यवहार प्राचीन कालसे होता आया है। प्रवाद है कि गन्धर्व-पति तम्बुरुने इस यंत्रका आविष्कार किया था और इसी यंत्रसे तम्बुरु, नारद और अन्यान्य ऋषिगण गीत वाद्य करते थे। आजकल इस यंत्रका अपव्यवहार प्रायः देखा जाता है किसी तारका स्वर आघातके बाद लीन होते न होते ही उसपर फिर आघात किया जाता है। गुरुओंसे सुना है कि तम्बुराके तारोंमेंसे सप्तकके सब स्वर निकलते हैं और सब मिलकर एक ही स्वरकी* उत्पत्ति होती है। तम्बुराको यत्न अथवा मनोयोगसे न बजानेसे स्वरोंकी ठीक ठीक व्युत्पत्ति नहीं होती है। "तम्बुरा छोड़ने" का नियम गुरुसे निम्न प्रकारसे सीखा है। निम्न सप्तकके षड्ज (१) पर आघात करके एक दो तीन उच्चारण करनेमें जितनी देर लगती है उतनी देरतक प्रतीक्षा करनी चाहिए। ध्यान देनेसे प्रतीत होगा कि इस षड्ज स्वरके लय स्थानपर उसका अन्तः स्वर गान्धार गूँजने लगता है। इसके बाद एक दो उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उसी निम्नसप्तक के (२) मध्यम (अथवा पंचम, जैसा तार बँधा है) पर आघात करके उतनी देरतक प्रतीक्षा करनी चाहिए। फिर मध्य सप्तक के दोनों षड्ज (३-४) तारों पर एक एक आघात करके (एक उच्चारण करने में जितनी देर लगती हो उतने समयका अन्तर देकर) फिर निम्न सप्तकके षड्ज तारपर आघात आरंभ करना चाहिए। नीचेके चित्रसे यह सब बातें स्पष्ट मालूम होंगी।

किसी किसी तंत्रकारको मैंने तम्बुरा बाँधनेके समय मध्य सप्तकके दो षड्जके बदले एक षड्ज और एक निषादपर बाँधते हुए देखा है। इससे भी सब स्वर स्पष्ट निकलने लगते हैं।

कंठस्वरके साथ तम्बुराके तारके स्वरको मिलाकर यंत्र को 'छेड़ना' और गाना कर्त्तव्य है। कंठ से जो स्वर निकलता है तम्बुराके तारके उसी स्वरपर आघात भी पड़ता है। दाहिने हाथकी तर्जनीके अग्रभागसे तारोंपर नरम आघात करके निकलते हुए स्वरोंको स्थिरचित्तसे सुनना चाहिये। बड़े बड़े तंत्रकार

---

* श्रुत्यनन्तर भावी यः स्निग्धो ऽनुरणनात्मकः।
स्वतो रंजयति श्रोतृ चित्तं स स्वर उच्यते॥
श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभ गान्धार मध्यमाः
पंचमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्तते॥
(संगीतरत्नाकर)

वीणादि यंत्र बजानेके समय तम्बूरा छेड़नेके लिये अपना एक खास आदमी, जो स्वरका ज्ञाता होता था

निम्न सप्तकका षड्ज	मध्य सप्तकका षड्ज	मध्य सप्तकका षड्ज	निम्नसप्तकका मध्यम (या पंचम)
१, २, ३	७	६	४, ५
(१)	(४)	(३)	(२)
गरस,	न,	ध,	प मा,

सातों स्वर इसी क्रमसे व्यक्त होते हैं।

साथ रखते थे और उनको छोड़कर किसी दूसरे आदमीको तम्बूरा छूने नहीं देते थे।

आलाप और गान—हारमोनियममें मध्यवर्ती स्वरोंके अभाव होनेके कारण मूर्च्छना और गमक नहीं निकल सकते और इसीलिये इस यंत्रकी सहायतासे स्वरका अभ्यास करनेसे आलाप अधूरा रह जाता है। प्राचीन तंत्रकार आलापकी चार विशेषताएँ* अर्थात् प्रथम "स्थायी" विलम्ब लयसे द्वितीय "आरोही" और तृतीय "अवरोही" मध्य लयसे और चतुर्थ "संचारी" द्रुत लयसे वर्णालङ्कार युक्त करके "सरगम" या "स्वर वर्ण" के द्वारा दिखलाते थे। उसके बाद गान (ध्रुपद) को भी उसी प्रकार चार पद युक्त करके नाना छन्दके अंतर्गत करके उक्त तीन प्रकारके लयके साथ दिखाते थे। आज कल आलापका लोप हो गया है। यहाँतक कि किसी किसीका विचार है कि ध्रुपद जाननेसे आलाप स्वयं ही आजाता है। आलापके लक्षणपर कोई ध्यान नहीं देता वरन केवल "ने ते ते री ने री तुम् तुम्" इत्यादि अपशब्दोंके द्वारा कुछ देरतक स्वरोंका विचार करके गवैये लोग गाना आरम्भ कर देते हैं और दो चार बार अस्थायी और अन्तरा गाकर द्विगुण, चतुर्गुण, आड़ि, कुआड़ि इत्यादि कौशल दिखाने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि थोड़े ही समयमें बहुतसे राग गाये जाते हैं परन्तु एक भी रागका रूप ठीक ठीक दिखाई नहीं पड़ता। स्वरकी प्रतिष्ठा कायम करना गवैयोंका प्रधान कर्त्तव्य है। आजकल स्वरकी ही प्रतिष्ठा नहीं होती, रागोंका स्वरूप दिखाना तो दूर रहा।

हिन्दीमें ध्रुपद गानकी शिक्षा कंठ परम्परासे होती चली आरही है। इसी लिये और कोई विशेष ग्रन्थके न होनेके कारण लोग अपना अपना मत चलाते आ रहे हैं। इससे संगीत कहीं कहीं परिवर्तित, कहीं असम्पूर्ण और कहीं यथेच्छाचार

---

* आलापो गमकालप्ति स्वरे वर्जिता मताः।
ग्रहांश तार मन्द्राणां न्यासाय न्यासयोस्तथा॥
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्ट स रागालाप उच्यते॥
† प्रवेशाक्षेप निष्काम प्रासादिक मथान्तरम्।
गीतं पञ्चविधं यत्नात् रागैरेभिः प्रयोजयेत्॥
संगीत रत्नाकर।

हो गया है। मैंने देखा है कि कहीं तो अर्थहीन शब्दोंका प्रयोग किया गया है, कहीं केवल दो तुक (पाद) का व्यवहार हुआ है और कहीं गायक अपनी इच्छानुसार लय व तालका सामञ्जस्य करके ध्रुपद गाते हैं। इस प्रकारका अर्थहीन, असम्पूर्ण और अशुद्ध संगीतका लोप हो जाना ही उत्तम है। जिस प्रकार आलापमें चार वर्णोंके द्वारा स्वरकी योजना होती है उसी प्रकार संगीत* में भी चार पद होते हैं अर्थात् उद्‌ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग। किसी किसीने चारों पादोंके अतिरिक्त भी रचना किया है। परन्तु इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि ध्रुपदमें चारों तुक न होनेसे वह असम्पूर्ण रह जाता है।

गीत रचना करनेके लिए अनेक विषयोंका ज्ञान आवश्यक है। गण † का विचार, लघु गुरु भेद, दण्ड, छन्द इत्यादि विषयोंका सम्पूर्ण ज्ञान व शिक्षा होनी आवश्यक है। इनका विचार रखते हुए संगीत रचना करनेके बाद उसमें स्वरकी योजना करनेके लिए दस* विषयोंको आवश्यकता होती है। ये सबासांगीतिक विषय गायकोंको जानना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि गानेके समय गायक उत्तेजित हो जाते हैं और नाना प्रकारके मुद्रादोष दिखाई पड़ते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उद्दिष्ट स्वरका प्रकाश अथवा चलित स्वरका सामंजस्य नहीं होता। संगीत (गाना-बजाना) स्वर और लययुक्त होना चाहिये और एकांगी भी होना चाहिए अर्थात् जिस लयमें गाना हो रहा है उसी लयमें वादन भी होना चाहिए।

अनेक गवैये जनसाधारणके समीप रुपयेके लिए आते हैं और लोगोंको स्वरके बाहरी भावोंके विस्तार-से चमत्कृत करते हैं। परन्तु इन लोगोंमें गुणी बहुत कम होते हैं और अपनेको उस्तादके नामसे प्रचार करके लोगोंको और अपनेको प्रतारित करते हैं। गायकमें किन किन विषयोंका ज्ञान होना चाहिए वह निम्नलिखित गानमें दिखाया गया है। स्वर्गीय वीणकार महेशचन्द्र सरकार महाशयजीने यह गाना मुझे सिखाया था।

[सामन्त—ढीमा तिताला]

आदि सप्तसुर, सप्त प्रकार तीव्रतम, तीव्रतर, तीवर, शुद्ध कोमल, अति कोमल, सुकार ॥१॥ शुद्ध अन्तरीत, काकली, कैशिकी भेद, द्वादश विकृत, ग्रह अंश न्यास द्रुत, मध्य, विलम, आलाप चार ॥२॥ श्रुति मुरछन, ग्राम गमक, खंडमेरु, गिरभंजन, रागलिप्त, समलिप्त, कूटतान, अलंकार ॥३॥ पचीस दोष, त्यागे दशगुन लेवे, गायक होय. काव्यमें धरे तो रिझावे, शाहजहान गुण अपार ॥४॥

प्रचलित रागोंमें एक ही प्रकृतिके रागोंका भेद और कुछ उपदेश जो मैंने गुरुसे सीखा है नीचे दिये जाते हैं। जो लोग कंठ अथवा तारके यंत्रसे संगीत

---

* आद्यावुद्ग्रहते गीते येनोद्ग्राहस्ततो भवेत्।
मेलापको द्वितीयस्तूद्ग्राहस्तो मेलनात्॥
ध्रुवत्वाद्ध्रुवसंज्ञस्तु तृतीयो भाग उच्यते।
आभोगस्त्वन्तिमो भागो गीत पूर्णत्व सूचकः॥
संगीत रत्नाकर।

† शब्दानुशासन ज्ञानमभिधान प्रवीणता।
छन्दप्रभेद वेदित्वमलंकारेषु कौशलम्॥
उद्ग्राहे [ ] दकारश्च भकारश्चान्तरे तथा।
आभोगे तु तकारश्च त्रयोलक्षो फलप्रदा॥
नगणो नाषयेल्लक्ष्मी हकारस्तु हरेद्यशः।
मकारः सर्वहृत्तस्माद् गीतादौ तत्परित्यजेत्।
द्विजवर्णोऽक वर्गाभ्यां चटाभ्यां चत्रियो भवेत्।
तपाभ्यां वैश्य वर्णश्च यशाभ्यां शूद्रसंज्ञकः॥
अकचटतप यश वर्गास्तेषा मेतास्तु देवता क्रमः।
सोमो भौतः सौम्यो जीवः शुक शनिः राहुः॥

* क्वचिदंशः क्वचिन्यासः षाड्वौडविते क्वचित्।
अल्पत्वञ्च बहुत्वञ्च ग्रहांश न्यास संयुतम्॥
मन्द्रतारौ तथा ज्ञात्वा योजनीया मनीषिभिः।
ग्रामराग प्रयोक्तव्या विधिवद् दशरूपकाः॥

चर्चा करते हैं वे इन बातोंको सहजमें ही समझ सकेंगे। परन्तु हारमोनियम वालोंके लिए यह बातें असाध्य रहेंगी।

आड़ाना—रगा, धानासं (बहारको आशंका), नाधाप, गार (दरबारी कानड़ाकी आशंका) नहीं लगेंगे। तंत्रकार लोगोंने कहा है कि इस रागमें सारंग राग-की छाया रहेगी।

बहार—रगा, गार, नाधाप (दरबारी कानड़ाकी आशंका नहीं लगेंगे। इसमें भी सारंगकी थोड़ी सी छाया रहेगी।

बागश्री—र गा (दरबारी कानड़ाकी आशंका) नहीं लगेगी। अवरोह में 'र' थोड़ा सा लगेगा। प्रायः 'प' का व्यवहार नहीं होता (सिंधुकी आशंका), तंत्रकार लोग स्वाधीन भावसे पंचमका व्यवहार नहीं करते, केवल मीड़से जितना पंचमका स्वर निकलता है उसका आरोहणमें व्यवहार करनेसे अवरोहणमें छोड़ देते हैं और अवरोहण-में छोड़ देनेसे अवरोहणमें व्यवहार करते हैं।

दरबारी कानड़ा—सब स्वर स्वाधीन भावसे लगेंगे। तंत्रकार लोग कहते हैं कि सब कानड़ा सारंग रागसे निकले हैं।

हम्बीर—माध (निषाद युक्त धैवत) मग, मर का व्यवहार होता है परन्तु माप, माग, मार का व्यवहार नहीं होता।

केदारा—गान्धारका व्यवहार बहुत सावधानीके साथ करना चाहिये। अवरोह में 'म' का व्यव-हार नहीं होता (हम्बीर की आशंका)। आरो-हणमें 'गमामप' और अवरोहणमें 'पमागमारस' का व्यवहार होता है।

छायानट—निषादका व्यवहार बहुत कम होता है। किसी किसीका मत है कि आरोहणमें तीव्र और अवरोहणमें कोमल निषाद लगाना चाहिये।

अलहिया—तंत्रकार लोग कहते हैं कि इस रागमें कोमल 'न' लगानेसे छायानट और छायानटमें तीव्र 'न' देनेसे बेहागकी आशंका है।

भीमपलश्री—अवरोहणमें 'र' और 'ध' बहुत कम लगेंगे और आरोहणमें कोई भी नहीं लगेंगे। इस रागका गान्धार मध्यमाश्रित है।

भैरव, श्री और पुरिया—अति कोमल 'र और ध' लगेंगे। पुरिया और कल्याणमें ऋषभ संयुक्त गांधार।

ललित—आरोहमें मा म मी और अवरोहमें मी म मा का व्यवहार होता है। धैवतका स्वाधीन भाव-से व्यवहार नहीं होता। केवल उतना ही होता है जितना पूर्व और परवर्त्ती स्वरोंके मोड़से प्रकाशित हो। पुरवी और ललित का धैवत अत्यन्त सावधानीसे लगाना चाहिए। कोई कोई तंत्रकार पुरवी में "ग मा म ग मा ग रा स" इस रूपका व्यवहार करते हैं।

दरबारी टोड़ी—अति कोमल गांधार "रा संयुक्त" का व्यवहार होता है। कामोद आरोहणमें "म प" और अवरोहण में "मार" का व्यवहार होता है। इस रागमें विशेषता यह है कि ऋषभ-से पंचमतक सब स्वर मीड़में लगते हैं नहीं तो केदाराकी आशंका है।

मालकोष—अतिकोमल गान्धार और कोमल मध्यम का व्यवहार होता है और यह मध्यम कोमल गांधार संयुक्त होता है।

हिंडोल—इसके गांधार और धैवत अति तीव्र होते हैं। आरोहमें निषाद स्वाधीन भावसे नहीं लगता। केवल उतना ही लगता है जितना धैवत-के मीड़से निकले। अवरोहणमें निषाद स्वाधीन भावसे लगता है।

हम्बीर, भूपाली, कल्याण छायानट और गौड़ मल्लार } —अति तीव्र धैवत-का व्यवहार होता है। तंत्रकारोंने विभाष रागमें कोमल "र और ध" लगाकर भूपालीसे पृथक कर दिया है।

शंकरा, खम्बाज, मालश्री और बेहाग } अतितीव्र गांधार, धैवत और निषाद का व्यव-हार होता है।

गांधार टोड़ी—भैरवीके ठाट में दरबारी टोड़ी है।

देवगांधार—आसावरीके ठाटमें दरबारी टोड़ी है।
लाचारी टोड़—मुल्तानी और दरबारी टोड़ीका मेल है।
देशी टोड़ी—भीमपलश्री और आसावरीका मेल है।
पुरिया, मारूवा और जयेत } —ये तीनों राग प्रायः एक ही ठाटके हैं। तंत्रकार लोग पुरियाको कल्याणांग मारूवाको श्री अंग और जयेतको हिंडोलांग कहते हैं और नँ रा ग (कल्याण). नँ रा (श्री और धमग हिंडोल) का व्यवहार करके क्रमशः पुरिया, मारूवा और और जयेत रागोंका विस्तार दिखाते हैं।
वसन्त—इसमें दोनों मध्यमका एक साथ व्यवहार करनेसे ललितकी आशङ्का है। इसलिए तंत्रकार लोग आरोहणमें कोमल मध्यम लगानेसे, अवरोहणमें तीव्र मध्यम लगाते हैं। अथवा आरोहणमें तीव्र मध्यम लगानेसे अवरोहणमें कोमल मध्यम लगाते हैं। कोई कोई यह भी कहते हैं कि इसमें ललितकी छाया लगानी चाहिए।
सोहिनी—कोमल मध्यमका व्यवहार होता है कोई कोई दोनों मध्यम लगाते हैं परन्तु इसमें रजकी आशंका है।

ग्राम—जैसे मनुष्य जिस स्थानपर अपने कुटुम्ब और स्वजन और आवश्यक सामग्रीके साथ वास करता है उसको ग्राम कहते हैं उसी प्रकार २२ श्रुति, सप्तस्वर, मूर्च्छनादिको आश्रय करके जिस स्थानपर स्थापित होते हैं उसको भी ग्राम कहते है। संगीतशास्त्र में षड्ज, मध्यम और गांधार केवल इन तीनों ग्राम-का उल्लेख है। और उनके भी केवल षडज और मध्यम प्रचलित हैं, गांधार ग्राम अप्रचलित है। तीनों ग्रामोंमें सप्तस्वरोंकी स्थापना देखनेसे प्रतीत होता है कि ये केवल तीन भिन्न भिन्न स्वरग्राम अथवा ठाठ हैं। और इनमें सप्तस्वरोंके विन्याससे जो राग बनते थे उनके द्वारा ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरके अभ्युदयके लिए हेमन्त ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओंमें तथा पूर्वाह्न मध्याह्न और अपराह्न कालोंमें गाये जाते थे*। यही दैवकालका संगीत कहा गया है।

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरोंसे सामगान होता था। गान्धार और निषाद यह दोनों स्वर उदात्त और उच्च; ऋषभ और धैवत स्वर अनुदात्त और निम्न; षड्ज, मध्यम और पंचम ये तीनों स्वर स्वरित और मध्य हैं। एक अथवा दो स्वरोंसे गान नहीं हो सकता। पाँचसे कम स्वरोंसे कोई राग नहीं बनता। उक्त दोनों स्वरोंको "ग और न" मान लेनेसे "स ग मा प ध न" समझते हैं। ये उच्च हैं (उच्च सप्तक नहीं)। "र" और "ध" मान लेने से "स र ग मा प ध" समझते हैं और यह निम्न हैं (निम्न सप्तक नहीं)। और "स" "मा" और "प" मान लेनेसे "स र ग मा प" समझते हैं और इसको दोनोंका मध्यम अथवा विश्राम स्थान मान सकते हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरितमें २२ श्रुति† अन्तर्गत रहनेके कारण वैदिक गानोंमें उनका प्रयोग षष्ठ स्वर विशिष्ट (षाड़व और ओड़व) ध्वनिके द्वारा होता था, अनुमान कर सकते हैं। आधुनिक वैदिक गानसे इसका कोई सामंजस्य नहीं है। कहते हैं कि उक्त दैव व वैदिक संगीत गन्धर्व लोकमें दे दिया गया था।

त्रितंत्री—प्राचीन कालमें इस यंत्रका व्यवहार होता था। तम्बूरा भी एक त्रितंत्री है जिसमें षड्जका एक दूसरा तार भी लगा लिया गया है। प्रवाद है कि मुहम्मद तुगलकके समयमें निज़ामुद्दीन औलिया (जैसे बैजू बावरा) के नामके एक संगीत सिद्ध महात्मा थे।

---

* क्रमाद् ग्रामत्रये देवा ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः।
हेमन्त ग्रीष्मवर्षास्तु गातव्यास्तु यथाक्रमम्॥
पूर्वाह्नकाले मध्याह्नेऽपराह्नेऽभ्युदयार्थिभिः॥
—संगीतरत्नाकर।

† चार श्रुति—स्वरित—स मा प—मध्य—१२ श्रुति
३ श्रुति— अनुदात्त र ध — निम्न — ६ श्रुति
२ श्रुति — उदात्त ग न — उच्च — ४ श्रुति
बाईस श्रुतियुक्त सप्तस्वर स र ग मा प ध न।

अमीर खुसरूने अपने त्रितंत्री यंत्रमें राग अलाप करके उनको सन्तुष्ट किया था और उसी समयसे वह सितार (तीन तार) के आविष्कर्ताके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। इस यंत्रमें सांगीतिक सब विषय अर्थात् वादी, सम्वादी, अनुवादी, वेवादी, मूर्च्छना; तान, गमक, अलंकार इत्यादि गूढ़ भावसे निहित हैं और सप्तस्वरोंके आरोहण और अवरोहणके द्वारा निकाले जा सकते हैं।

गमक—पहले कह चुके हैं कि मूर्च्छनाका उद्देश्य संक्षेप करना और तानका उद्देश्य विस्तार करना है और मूर्च्छना और तानसे अलंकार बनता है। तान दो प्रकारके होते हैं एक गमक युक्त (कम्पनयुक्त दूसरा (कम्पन हीन। एक ही स्वरको दो बार उच्चारण करनेसे एक तीसरे स्वरका आभास मिलता है जो कि आरोही (परवर्ती स्वर) अथवा अवरोही (पूर्ववर्ती स्वर) वर्ण होता है। इसी प्रकार से दो तीन बार एक स्वर अथवा दो तीन स्वरोंका बार बार उच्चारण करनेसे कम्पनयुक्त स्वर निकलता है जिसको गमक कहते हैं। तिरिप, स्फुरित कम्पित लीन, गुम्फित, मुद्रित आदि अनेक प्रकारके गमक होते हैं। इनमेंसे कोई तो डमरूध्वनिवत् कोई नाना प्रकारके वक्रयुक्त कोई वेगयुक्त और कोई द्रुत होता है। इन सब विषयोंका ज्ञान केवल गुरूके उपदेश हीसे हो सकता है। पुस्तक या स्वरलिपिसे नहीं हो सकता।

पेट्रोलियम

[ले० श्री धीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, एम. एस-सी.]

केस्पियन समुद्रके चारों ओर की पृथ्वी बहुत विचित्र है। प्राचीन कालमें यह समुद्र मेरु सागरसे (arctic ocean) मिला हुआ था। समय बीतनेपर यह सूख कर वर्तमान दशामें हो गया, और इसी कारणसे कहीं कहीं मरुस्थल और कहीं दलदल पाये जाते हैं। इन मरुस्थलियों में काँटों के बन और बालू के अतिरिक्त और कुछ नहीं पाये जाते। दलदल बड़े भयानक हैं।

सूर्यास्तके पश्चात् हम विशाल मरुभूमिकी ओर भाषण अंधकार देखते हैं और दूसरी ओर दलदलोंमेंसे असंख्य प्रज्वलित अग्नि शिखायें उठती हुई दिखाई पड़ती हैं। वास्तव में कोल गैस (Coal gas) की भाँति एक प्रकारकी गैस इन दलदलोंमेंसे निकल कर और वायुके संसर्गसे जलकर अग्निशिखाके रूपमें दिखाई पड़ती है। इसका नाम मार्श गैस (marsh gas) है। प्राचीन कालमें लोगों का यह विश्वास था कि यह आग रातमें भूत प्रेतादि जलाया करते हैं। और यही कारण है कि ईसाके ६०० वर्ष पहिलेसे लोग अग्निकी उपासना करते चले आ रहे हैं। कैस्पियन सागरके किनारे अबसे लगभग २४०० वर्ष पहिले सुराखनमें लोगोंने एक अग्नि उपासक मन्दिर बनाया था जो कि अबतक विद्यमान् है। इस मन्दिरके आँगनमें एक बड़ा गहिरा कूप है। इस कूपसे गैस अधिक परिमाणमें निकलती है और ऊपर ईंटका चिमनीके बाहर निकल कर हवाके संसर्गसे प्रज्वलित होती है। इसको जब चाहें बन्द कर सकते हैं।

काक (Koch) नामी एक जरमनने इस मन्दिरके निकटस्थ एक दूसरे कूपके विषयमें एक आश्चर्य जनक बात बतलाई है। वह यह कि इस मन्दिरके पुजारी और उनके शिष्य इस कूपके ऊपर एक मोटा क़ालीन बिछा देते थे और थोड़ी देर बाद उसे हटा कर कूपके भीतर एक काग़ज़का गोला फेंक देते थे। भीतरकी गैस उस गोलेको तुरन्त जला देती थी और बड़े वेगसे ऊपर उड़ा देती थी। इस विचित्र घटनाको देखकर लोग विस्मित होते थे और पुरोहितको बहुत दान दिया करते थे। सन् १७५४ ई० में बृटिश सरकारने हैन्वे (Han way) को इस विचित्र स्थानको देखनेके लिये भेजा था। उसने वहाँ बहुतसे मन्दिर देखे जिनका निर्माण-कौशल भारतीय कला कौशलसे मिलता जुलता था। उसने वहाँ अनेक भारतीय पुजारी और तीर्थ यात्री

भी पाये। हैन्वेका कथन है कि इन मन्दिरोंके चारों ओरसे मार्श गैस निकला करती थी। पृथ्वीकी ऊपरी कठोर तहको खोद देनेपर नीचेसे गैस निकल कर जल जाया करती थी और इसीकी सहायतासे वहाँके लोग भोजनादि पकाते और अन्य आगका काम करते थे। इसीसे पत्थरको जलाकर चूना भी बनाया करते थे परन्तु कभी कभी वे बड़े खतरेमें पड़ जाया करते थे जिसे वे अपने पापका परिणाम समझते थे। एक बार की बात है कि एक गृहस्थके घरके पिछले भागमें एक घोड़ा बंधा था। संयोगवश घोड़ेकी नालकी ठोकरसे पृथ्वीकी ऊपरी तह खुद गई और गैसके निकलनेसे आग प्रकट हो गई। परिणाम यह हुआ कि घोड़ा और सब जल कर नष्ट हो गए।

कैस्पियन सागरसे लगभग एक सौ मीलकी दूरी-पर बाकू (Baku) नगर है। यह रूसियोंके अधिकारमें है। यहाँकी तेलकी खान रूसियोंकी बहुमूल्य सम्पत्ति है। यहाँ लगभग ७५ सहस्र मनुष्य बसे हैं परन्तु पीनेका पानी दुर्लभ होनेके कारण उन्हें बड़ा कष्ट है। कैस्पियन सागरका पानी ऐसा खारी है कि पिया नहीं जा सकता इसलिये मीठा पानी बहुत दूरसे ऊँटोंपर लाद कर यहाँ लाया जाता है। वहाँ पानी हमारे यहाँके दूधसे भी अधिक बहुमूल्य है।

ऐसे गैसके कुएं बाकूके अतिरिक्त अन्य देशों में भी पाये जाते हैं विशेषतः उत्तरीय अमेरिकामें जहाँके कुओंमें यह विचित्रता है कि इनसे निकलने वाली गैसका वेग अत्यन्त प्रबल होता है। इसका दबाव (pressure) प्रति वर्ग इञ्च लगभग एक सहस्र पौंड वा साढ़े बारा मन होता है। पूर्व कालमें मर्किन देशके डोलामीटर नगरमें एक बड़ा गैस-का कुआँ था जिसके द्वारा लोग भोजन पकाते, इञ्जिन चलाया करते और नगरमें रोशनी किया करते थे।

जैसे जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग भी अवश्य होती है इसी प्रकार यह भी समझना चाहिये कि जहाँ गैस है वहाँ पेट्रोलियमकी खान भी अवश्य है। इसके अतिरिक्त चर्बी (Paraffin wax), शिलाजतु (Bitumen), ऐशफाल्ट (Ashphalt) इत्यादि मुख्य व तुयें भी इसीके साथ पाई जाती हैं। गैसकी अपेक्षा तेल कहीं अधिक परिमाणमें पाया जाता है और इससे हम समझ सकते हैं कि पृथ्वी-के नीचे कितना तेल संचित है।

इञ्जीनियर लोग जहाँ गैसका पता पाते हैं वहीं पेट्रोलियमका होना निश्चय जान लेते हैं और खोदना आरम्भ कर देते हैं परन्तु पेट्रोलियमके कुओंका खोदना सरल काम नहीं है। इनके खोदने-में बहुत धन, रासायनिक बुद्धि, काम करने वालों और बहुमूल्य यन्त्रोंकी आवश्यकता पड़ती है। भीतर खोदते समय उन्हें बहुत सावधान रहना पड़ता है कि कहीं कुआँ ऊपरसे बैठ न जाय। तेल पम्प करके पाइप द्वारा समुद्रतट तक ले जाया जाता है और वहाँ इसका संशोधन होता है। खान-के भीतर तेलके सोते इतने दबावमें (compressed) रहते हैं कि यदि थोड़ी भी असावधानता हो जाय तो सब तेल वेगके साथ बाहर निकल जाय। इस प्रकार प्रायः बहुत सा तेल नष्ट हो चुका है। सन् १८८३ ई० में बाकू प्रांतके ड्रूब्जा (Droobja) स्थान में एक ऐसी दुर्घटना हुई थी। तेलका सोता फूट कर बाहर निकल पड़ा और एक मोटी धारा जिसका व्यास १८ इञ्च था लगभग २०० फ़ीट ऊँची उबल पड़ी और तेल ऊपर पृथ्वीपर नदी-की भाँति बह निकला। इञ्जीनियर लोग २ महीने तक इस धाराको नहीं रोक सके और परिणाम यह हुआ कि पाँच लाख टन (१ टन=२७ मन) तेल नष्ट हो गया। इस धाराको रोकनेके पश्चात् उसी खान से ग्यारह सहस्र पौंड (१ पौंड=१५ रुपया) का तेल प्रति दिन निकलता था। इसी प्रांतमें बीबी ईबिल Bibi Eibil नामक स्थानमें इससे भी अधिक शोकप्रद दुर्घटना हुई थी। इसमें सारा देश तेलमें डूब गया था और लगभग एक करोड़ गैलन (१ गैलन= ३ ½ सेर) तेल कैस्पियन सागरमें बह गया था। सन् १८९३ ई० में बाकू जिलाके एक दूसरे कूपसे

से लगभग १७७४२ टन तेल निकाला गया था। इन प्रमाणोंसे यह पता चलता है कि रूस देशमें कितना तेल निकलता है।

तेलके साथ बालू भी अधिक परिमाणमें निकलती है। सन् १८८७ ई० में बाकूमें एक कूपसे इतनी बालू निकली कि आस पासके दस एकड़ ज़मीनके सारे एक मंजिले मकान बालू से ढक गये थे। इञ्जीनियर लोग इसके रोकनेका अथक प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु अभीतक सफल नहीं हुये। भूकम्पसे भी बाकूका बड़ा अनिष्ट हुआ है। सत्रहवीं शताब्दीमें भूकम्पके कारण स्चमका (Schemokla) नामक नगरमें स्थान स्थानपर पृथ्वी फट जानेके कारण और दरारोंसे जलते हुए तेल निकलनेके कारण सारा देश भस्म हो गया था।

अमेरिकामें पेट्रोलियम तेलका एक विचित्र इतिहास है। वहाँ पहिले पहिल मिट्टीके भीतरसे झीमकर बाहर तेल धरातलपर चुचुहाया हुआ और पानीके ऊपर तैरता हुआ दिखाई पड़ा। वहाँके प्राचीन निवासी Red Indians अपने शरीरमें मला करते थे और उनका अनुभव था कि वह उनके फुर्तीलेपनको बढ़ा देता है। इसके संग्रह करनेका विचित्र ढंग था। जिस धरातलपर तेल दिखाई पड़ता था उसपर एक कम्बल बिछा देते थे और फिर उसे किसी बर्तनमें निचोड़ लेते थे। उस समय वे इसे सेनिका (Seneca) या इण्डियन (Indian) तेल कहते थे और इसे गठियाकी बीमारीमें लगाते थे। पश्चिम वर्जिनियामें (West Virginia) में खान से नमक निकालने वालोंने पहिले पहिल खारे पानी (Brine) में पेट्रोलियम प्रचुर परिमाणमें पाया था और इस कारण नमकको स्वच्छ करना बहुत कठिन था। उस समय लोगोंको यह नहीं ज्ञात था कि यह तेल गठियाके औषधिके अतिरिक्त और किसी अन्य कार्यमें भी आ सकता है। सन् १८४८ ई० में सैमुयल कायर (Samuel Kier) ने खनिज तेलसे परिस्रवन (distill) करके एक प्रकारका तेल निकाला जो कि दीपक जलानेके काम आता था। परन्तु इसमें दुर्गन्ध बहुत थी उस समय इसे कार्बन तेल कहते थे। तत्पश्चात् लोगोंने कुएं खोदकर तेल निकालनेका प्रयत्न किया परन्तु यह रीति ऐसी भयप्रद थी कि यह काम धीमा पड़ गया। प्रथम अब्राहम गेसनर (Abraham Gesner) ने सन् १८४६ ई०में कोयलेसे एक प्रकारका तेल निकाला था जिसे आजकल केरोसिन तेल कहते हैं। येल कालेज (Yale college) के अध्यापक डा० सिलीमन (Sillimon) ने पहिले पहिल दिखाया था कि यह कार्बन तेल और पेट्रोलियम एक ही वस्तु हैं और जलाने के लिये अच्छी प्रकारसे काममें लाये जा सकते हैं। सन् १८५० ई० में जेम्स यङ्ग (Games Young) ने शेल (Shale) से एक प्रकारका जलानेका तेल निकाला था।

इस तेलकी आवश्यकता क्रमशः बढ़नेपर सन् १८५८ ई० में इस तेलकी एक कम्पनी स्थापित हुई और कर्नल ड्रेक (Drake) इसके प्रबन्धकर्त्ता मैनेजर नियुक्त हुये। इन्होंने ३ मई सन् १८५६ ई० सोमवार को टाइटस विली (Titus Ville) में एक कुआँ खोदा था। १८६१ ई० तकमें २० लाख पीपा तेल निकाला गया था परन्तु अब प्रतिवर्ष दो करोड़ चालीस हज़ार पीपेसे भी अधिक तेल निकाला जाता है। इससे ज्ञात होता है कि यह व्यवसाय इतने थोड़े समय में कितना उन्नत होगया। आजकल अमेरिकामें इस व्यवसायसे करोड़ों रुपया उपार्जन किया जाता है परन्तु कर्नल ड्रेक स्वयं इससे लाभ नहीं उठा सके। इसी कारण वहाँके धनी तेल व्यवसायी गणों ने उनके नामको जीवित रखनेके लिये स्मारक रूपसे प्रत्येक वर्ष पाँच सहस्र रुपयेका पारितोषक प्रदान करनेका नियम उनके नाम पर रखा है।

आज कल संसारमें जितना तेल व्यय होता है उसका ९० प्रति सैकड़ा अमेरिका और रूससे मिलता है। किन्तु इन दोनों प्रदेशोंमें यह अन्तर है कि रूसकी खानोंसे अमेरिकाकी खानोंकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें तेल निकलता है। जब कोई खान

बन्द हो जाती है अर्थात् उसमेंसे तेल निकलना बन्द हो जाता है तो उसके आस पासके लोग जो वहाँ बस गये थे उस स्थानको छोड़कर किसी अन्य स्थान को चले जाते हैं।

इन कुओंकी गहराई भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न होती है। गैलेशियाके कूप ३००० से ४००० फ़ीटतक गहरे होते हैं। अमेरिकामें साधारणतः कुओंमें डिनमाइट (Dynamite) देकर नीचेसे तेल निकालते हैं। इससे कुआँ शीघ्र तेलसे भर जाता है। इस क्रियाको टार पीडोइङ्ग (Torpedoing) क्रिया कहते हैं। पेन्सिल वेनिया (Pensylvania) में २००० से ३००० फ़ीट तक और कनाडा Canada में १००० से १५०० फ़ीटतक गहरे कुएं दिखाई पड़ते हैं लेकिन रूस (Russia) में कुएं बहुत कम गहरे होते हैं। यह लगभग ७०० से ८०० फ़ीटतक गहरे होते हैं।

यह तेल लोहेके बड़े बड़े चहबच्चों में रक्खा जाता है। इनमें २५०० टनसे भी अधिक तेल समा सकता है। इन चहबच्चोंके ऊपर बन्द छत होती है क्योंकि सूर्यके तापसे आग लग जानेका भय रहता है। आजकल अमेरिकामें एक नये प्रकार का चहबच्चा काममें लाया जाता है। पृथ्वीको खोद कर चारों ओरसे लकड़ीकी लाइनिङ्ग (lining) अर्थात् अस्तर कर देते हैं और इनके जोड़में कीचड़का लेप दे देते हैं।

तेल चहबच्चोंसे पम्प करके लोहेके नल द्वारा समुद्रके किनारे संशोधनागारमें ले जाया जाता है। इन नलोंका व्यास ६ से ८ इञ्च तक और लम्बाई सैकड़ों मीलकी होती है, परन्तु लगभग प्रत्येक १०० मीलके पश्चात् एक गुदाम और पम्प करनेका स्थान बना होता है। तेल निकालने वालोंको इन गुदामोंमें तेल नाप कर सर्टीफ़िकेट दिया जाता है और यह सर्टीफ़िकेट अमेरिकामें यहाँके नोटकी भाँति समझा जाता है। तेलके लगातार बहनेसे इन नलोंमें बहुत मैल जम जाता है और इसके साफ़ करनेके लिये एक प्रकारका लोहेका ब्रुश होता है जिसको रूसमें गोडेविल (godevil) कहते हैं। समुद्रमें एक मुख्य स्टीमर द्वारा यह तेल बाहर भेजा जाता है और इन जहाजोंको टङ्कस्टीमर (tank steamer) कहते हैं, किन्तु इसमें कभी कभी आपत्तिकी भी आशङ्का रहती है।

सन् १९१४ ई० में १७ अप्रैलको रूसके एक तेल ले जाने वाले जहाजमें रोवेन (Roven) जाते समय आग लग गई और १५ मल्लाह जहाजके साथ डूब गये।

अब हम कच्चा तेल (Crude oil) के संशोधनके विषयमें कुछ बतलायेंगे।

अमेरिकामें आंशिक परिस्रवन करनेके लिये दो पात्रोंकी आवश्यकता पड़ती है। ये पात्र ढोलकी नाईं लोहेके होते हैं। पहले पात्रसे ताप द्वारा तेल कथनांक (Boiling point) के अनुसार दो भागोंमें बँट जाते हैं। प्रथम पात्रमें १५०° तक का अंश और द्वितीय पात्रमें १५० से ३००° तक का अंश एकत्रित किया जाता है। इस परिक्रियाके पश्चात् हलके और घने भाग विभक्त हो जाते हैं. लेकिन यदि बहुत साफ़ जलानेके तेलकी आवश्यकता हो तो विशेष क्रियाकी आवश्यकता है।

१५०° तक के हिस्सेको आंशिक परिस्रवन करके कथनांकके उच्चतानुसार अलग किया जाता है और निम्नाङ्कित प्रयोजनीय वस्तुयें मिलती हैं:-

(१) साइमोजीन गैस (Cymogene) यह बर्फ़ बनाने में प्रयोग की जाती है।

(२) रिगोलीनगैस (Rhigolene) १०८° उत्तापमें पाई जाती है और यह सड़ने को रोकने और इञ्जन चलानेमें व्यवहृत होती है।

(३) गैसोलीन गैस (Gasolene) ६०° उत्तापमें पाई जाती है, कत्था और दूसरे तेल इसमें घुल जाते हैं।

(४) नेप्थागैस (Nahhtha) ८०° से १००° उत्तापमें मिलती है, इसमें तेल और राल (resin) इत्यादि घुलते हैं।

(५) बानजाईन गैस (Benzene) १५०° उत्तापमें

होती है, यह तारपीन तेलके बदले प्रयोगकी जाती है।

१५०°से ३००° तकके हिस्सेको पहले २६ प्रति शतके गन्धकाम्लसे धोया जाता है। तत्पश्चात् तरल वस्तु को अलग करके और तीक्ष्ण क्षारके पानीसे अच्छी तरह धोकर विशुद्ध पानीसे धोया जाता है। और अंतमें ताम्रोषिद (Copper oxide) द्वारा शोधित किया जाता है और यही हमारा पूर्व परिचित "किरोसिन" तेल है।

पात्रको अवशिष्ट वस्तुओंको पुनः आंशिक परिस्रवन करने पर और भी बहुतसी कामकी वस्तुयें मिलती हैं। पहले पहल गाढ़ा तेल निकलता है और यह उत्कृष्ट जलाने वाला तेल है। इसको शोध करके बहुत अच्छा "केरोसेन" तेल बनाया जा सकता है। इसके बाद इससे भी एक प्रकार का गाढ़ा तेल मिलता है। जिसको चर्बी (Paraffin oil कहते हैं इस तेल को एक ऐसे बर्तनमें रखते हैं जिसके चारों ओर प्रत्येक समय गर्म पानी भरा रहता है और इससे यह चर्बी तरल अवस्थामें रहती है और तब इसको गन्धकाम्ल, क्षार पानी और स्वच्छ पानी से बार बार धोया जाता है। अंतमें इसको ठंडा करके एक दाबनेके यन्त्रसे दबाकर इसने लुब्रीकेटिंग (Lubricating) तेल निकला जाता है और इसके साथ ही साथ मामूली चर्बी रह जाती है।

पात्रमें जो गाढ़ा तेल अवशिष्ट रह जाता है वह हड्डीके कोयले (Bone char coal) के भीतरसे छाना जाता है। इससे वसलीन (Vasclin, बनता है।

यदि अधिक परिमाणमें लुब्रीकेटिंग तेलकी आवश्यकता होती है तो वायु शून्य पात्रमें परिस्रवन किया जाता है।

रूसमें शोधन कार्य (Method of fractionation and purification) कुछ भिन्न प्रकारसे होता है किन्तु दोनोंमें रासायनिक क्रिया एक ही प्रकारकी है।

रूसमें खानिज तेलसे चर्बी बहुत कम मिलती है। इसी लिये यहाँका बनाया हुआ लुब्रीकेटिंग तेल बहुत अच्छा होता है। क्योंकि थोड़ी सी भी चर्बी रहनेपर यह तेल खराब हो जाता है। एक रूसके तेलसे "ऐस्टटकी" (Astatki) नामक एक गाढ़ा तेल मिलता है। यह कोयलेके बदले इञ्जन चलानेमें प्रयोग होता है। और यह कोयलेसे डेढ़गुना शक्तिशाली होता है। इसको वायु शून्य पात्रमें परिस्रवन करनेपर इससे बानजावीन (Benzene) नफथलीन (Naphthalene) अंथरिन (Anthracene) पिच (Pitch) इत्यादि मूल्यवान् और प्रयोगनीय वस्तुयें मिलती हैं।

गैलेशिया देशमें ओजोकराइट (Ozokerite) नामक एक प्रकारके वस्तुकी खानि है। इस वस्तुको शोधन करके जो चर्बी मिलती है वह हमारी मामूली मोम बत्ती बनानेके लिये प्रयोगकी जाती है। ट्रीनीडाड (Trinidad) में दुनियाका सबसे प्रधान पिचका सरोवर है। पिचसे जलने वाली वस्तुओंको निकाल कर ऐस्फाल्ट (Asphalt) बनाया जाता है। लगभग चार हजार वर्ष पहले निनेवा (Ninevah) के निवासी इस पिचसे धूलिशून्य मार्ग बनाते थे। प्राचीन कालमें ऐस्फाल्टको केरोसीन तलके साथ गर्म करके और मिलाकर रास्तेमें गर्म गर्म बिछाया जाता था और रोलर द्वारा बराबर किया जाता था।

भुजयुग्म रेखागणित

या

बीज ज्यामिति

[ले० श्री सत्यप्रकाश, बी. एस.-सी., विशारद]

प्रथम अध्याय

§ १. वर्गात्मकसमीकरण—भुज युग्म रेखागणित का परिचय प्राप्त करनेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि बीजगणित के साधारण सिद्धान्तों का परिज्ञान हो। बीजगणित द्वारा वर्गात्मक समीकरण चक^2 + छक + ज=० के मूल निकालने की विधि विद्यार्थियों ने

पड़ी होगी। सूक्ष्मरूप से उसी का यहाँ फिर निर्देश किया जाता है—

$$\text{च}\text{क}^2 + \text{छ}\text{क} + \text{ज} = 0$$

$$\therefore \text{च}\text{क}^2 + \text{छ}\text{क} = -\text{ज}$$

$$\therefore \text{क}^2 + \frac{\text{छ}}{\text{च}}\text{क} = -\frac{\text{ज}}{\text{च}}$$

$$\therefore \text{क}^2 + \frac{\text{च}}{\text{छ}}\text{क} + \frac{\text{छ}^2}{4\text{च}^2} = -\frac{\text{ज}}{\text{च}} + \frac{\text{छ}^2}{4\text{च}^2}$$

$$\therefore \left(\text{क} + \frac{\text{छ}}{2\text{च}}\right)^2 = -\frac{\text{ज}}{\text{च}} + \frac{\text{छ}^2}{4\text{च}^2} = \frac{-4\text{ज}\text{च} + \text{छ}^2}{4\text{च}^2}$$

$$\therefore \text{क} + \frac{\text{छ}}{2\text{च}} = \pm \frac{\sqrt{\text{छ}^2 - 4\text{ज}\,\text{च}}}{2\text{च}}$$

$$\text{क} = -\frac{\text{छ} \pm \sqrt{\text{छ}^2 - 4\text{ज}\text{च}}}{2\,\text{च}}$$

इस प्रकार उपर्युक्त वर्गात्मक समीकरण के दो मूल हैं—(१) $\frac{-\text{छ} + \sqrt{\text{छ}^2 - 4\text{ज}\text{च}}}{2\,\text{च}}$ और

(२) $\frac{-\text{छ} - \sqrt{\text{छ}^2 - 4\text{ज}\text{च}}}{2\,\text{च}}$। यदि $\text{छ}^2 = 4\,\text{ज}\,\text{च}$, तो दोनों मूल समान होंगे, तथा यदि $\text{छ}^2 > 4$ जच तो दोनों मूल वास्तविक और भिन्न होंगे पर यदि $\text{छ}^2 < 4\text{ज}$ च, तो दोनों मूल काल्पनिक होंगे।

§२. किसी बीज-समीकरण के मूलों और समीकरण के पदों के गुणकों में सम्बन्ध।

यदि कोई समीकरण इस प्रकार लिखा जाय कि महत्तम पदका गुणक इकाई हो, तो बीजगणित द्वारा यह स्पष्ट है कि—

(१) मूलों का योग द्वितीय पदके गुणक के बराबर होगा पर ऋण अथवा धन संकेत परिवर्तित हो जायगा।

उदाहरण—$\text{क}^2 - 7\text{क} + 12 = 0$ समीकरण के मूल ४ और ३ हैं। द्वितीय पद का गुणक (-7) है जो स्पष्टतः मूलों का योग है और संकेत परिवर्त्तित हो गया है।

$$[-(4+3) = -7]$$

(२) दोनों मूलों का गुणनफल तीसरे गुणक के बराबर होगा। उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट ही है। तृतीय पद का गुणक १२ है और दोनों मूलों का गुणन फल भी बारह ही है।

अभ्यास १—यदि $\text{च}\text{क}^2 + \text{छ}\text{क} + \text{ज} = 0$ के प और फ मूल हैं, तो $\text{क}^2 + \frac{\text{छ}}{\text{च}}\text{क} + \frac{\text{ज}}{\text{च}} = 0$ के भी प और फ मूल होगें। उपर्युक्त कथनानुसार—

$$\therefore \text{प} + \text{फ} = -\frac{\text{छ}}{\text{च}},\ \text{तथा}\ \text{प}\text{फ} = \frac{\text{ज}}{\text{च}}$$

§३. $\text{च}\text{क}^2 + \text{छ}\text{क} + \text{ज} = 0$, यह द्वितीय शक्ति का वर्गात्मक समीकरण है, इसी प्रकार $\text{च}\text{क}^3 + \text{छ}\text{क}^2 + \text{ज}\text{क} + \text{झ} = 0$ तृतीय शक्ति का वर्गात्मक समीकरण है। सूक्त §२ के दिये हुए सिद्धान्त इस तृतीय शक्ति के समीकरण में भी कुछ परिवर्तन के साथ उपयुक्त हो सकते हैं।

यदि प, फ, और ब, इस तृतीयशक्ति के वर्गात्मक समीकरणके मूल हैं तो ये $\text{क}^3 + \frac{\text{छ}}{\text{च}}\text{क}^2 + \frac{\text{ज}}{\text{च}}\text{क} + \frac{\text{झ}}{\text{च}} = 0$, इस समीकरण के मूल भी हैं। इसके महत्तम पद का गुणक इकाई है अतः $\text{प} + \text{फ} + \text{ब} = -\frac{\text{छ}}{\text{च}}$, $\text{प}\text{फ} + \text{फ}\text{ब} + \text{ब}\text{प} = \frac{\text{ज}}{\text{च}}$, और $\text{प}\,\text{फ}\,\text{ब} = -\frac{\text{झ}}{\text{च}}$

उदाहरण:—$\text{क}^3 + 3\text{क}^2 - 10\text{क} + 24 = 0$ समीकरण के मूल (-4), ३, (-2) हैं।

इसमें स्पष्ट है कि $(-4+3-2) = -3$, $(-4)3 + (-4)(-2) + 3(-2) = -10$, तथा $(-4)(3)(-2) = 24$

४. यदि दो समीकरण इस रूप के दिये जायँ—

$$\text{च}_1\text{क} + \text{छ}_1\text{ख} + \text{ज}_1\text{ग} = 0$$
और
$$\text{च}_2\text{क} + \text{छ}_2\text{ख} + \text{ज}_2\text{ग} = 0$$

$$\text{तो स्पष्टतः}\ \frac{\text{क}}{\text{छ}_1\text{ज}_2 - \text{ज}_1\text{छ}_2} = \frac{\text{ख}}{\text{ज}_1\text{च}_2 - \text{ज}_2\text{च}_1} = \frac{\text{ग}}{\text{च}_1\text{छ}_2 - \text{छ}_1\text{च}_2}$$

उदाहरण: $8\text{क} + 4\text{ख} - 52 = 0$

और २ क − ६ख + ८=० इन दो समीकरणों का हल निकालने के लिये:—

$$\frac{\text{क}}{४.८-(-५२)(-६)}=\frac{\text{ख}}{(-५२).२-८.८}=\frac{\text{ग}}{(८)(-६)-४.२}$$

अतः क = ५, और ख = ३. है। अतः इन समीकरणों के हल ५, ३ है।

संक्षिप्तकरण के संकेत

§५. $\text{च}_1\text{छ}_2-\text{छ}_1\text{च}_2$ को दूसरे रूप में लिखने की एक और प्रणाली है। इसे $\begin{vmatrix}\text{च}_1 & \text{च}_2\\ \text{छ}_1 & \text{छ}_2\end{vmatrix}$ रूप में भी लिख सकते है। इसमें $\text{च}_1, \text{च}_2$ की प्रथम पंक्ति है और $\text{छ}_1, \text{छ}_2$ की दूसरी पंक्ति है, इसी प्रकार $\text{च}_1, \text{छ}_2$ को प्रथम श्रेणी कह सकते हैं और $\text{च}_2, \text{छ}_2$ को द्वितीय श्रेणी। $\text{च}_1, \text{च}_2, \text{छ}_1, \text{छ}_2$, ये पद कहलाते हैं। प्रथम पंक्ति के प्रथम पद को द्वितीय पंक्ति के द्वितीय पद से गुणा करो; और फिर इस गुणनफलमें से प्रथम पंक्तिके द्वितीय पदको द्वितीय पंक्तिके प्रथम पद से गुणा करके घटाओ तो $\text{च}_1\text{छ}_2-\text{छ}_1\text{च}_2$ होगा अतः $\begin{vmatrix}\text{च}_1 & \text{च}_2\\ \text{छ}_1 & \text{छ}_2\end{vmatrix}$ इसका संक्षिप्त करण है। इसकी प्रत्येक पंक्ति या प्रत्येक श्रेणी में दो पद हैं अतः यह संक्षिप्त करण द्वितीय श्रेणी का है।

अभ्यास—(१) $\begin{vmatrix}५ & ७\\ ६ & ९\end{vmatrix}=५.९-७.६=४५-४२=३.$

(२) $\begin{vmatrix}४\text{क} & ८\text{ख}\\ ३\text{क} & ५\text{ख}\end{vmatrix}=४\text{क}.५\text{ख}-८\text{ख}.(-३\text{क})=२० \text{कख}+२४\text{कख}$

(३) $\begin{vmatrix}५\text{क} & -३\text{प}\\ ८\text{ज} & -५\text{फ}\end{vmatrix}=-२५ \text{क फ}+२४\text{जप}$

§६ $\begin{vmatrix}\text{च}_1 & \text{च}_2 & \text{च}_3\\ \text{छ}_1 & \text{छ}_2 & \text{छ}_3\\ \text{ज}_1 & \text{ज}_2 & \text{ज}_3\end{vmatrix}$ यह तृतीय रूप का संक्षिप्त करण है। इसका मान निकालने के लिये पहले प्रथम पंक्ति के प्रथम पद को लेकर उसको उस द्वितीय रूप के संक्षिप्त करण से गुणा करना चाहिये जो उस पंक्ति और उस श्रेणी को छोड़ देने के उपरान्त शेष रहता है। इसमें से फिर प्रथम पंक्ति के द्वितीय पद और अवशिष्ट* द्वितीय रूप के संक्षिप्तकरण के गुणनफल को घटाना चाहिये। इसी प्रकार फिर प्रथम पंक्तिके तृतीय पद को अवशिष्ट द्वितीय रूपके संक्षिप्तकरण से गुणा करके जोड़ना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त तृतीय रूप के संक्षिप्तकरण का मान यह है:—

$$\text{च}_1\times\begin{vmatrix}\text{छ}_2 & \text{छ}_3\\ \text{ज}_2 & \text{ज}_3\end{vmatrix}-\text{च}_2\begin{vmatrix}\text{छ}_1 & \text{छ}_3\\ \text{ज}_1 & \text{ज}_3\end{vmatrix}+\text{च}_3\begin{vmatrix}\text{छ}_1 & \text{छ}_2\\ \text{ज}_1 & \text{ज}_2\end{vmatrix}$$

सूक्त § ५ के अनुसार द्वितीय रूप के संक्षिप्त करणों का मान निकालने पर—

$$=\text{च}_1(\text{छ}_2\text{ज}_3-\text{छ}_3\text{ज}_2)-\text{च}_2(\text{छ}_1\text{ज}_3-\text{छ}_3\text{ज}_1)+\text{च}_3(\text{छ}_1\text{ज}_2-\text{छ}_2\text{ज}_1)$$

अर्थात् $=\text{च}_1(\text{छ}_2\text{ज}_3-\text{छ}_3\text{ज}_2)+\text{च}_2(\text{छ}_3\text{ज}_1-\text{छ}_1\text{ज}_3)+\text{च}_3(\text{छ}_1\text{ज}_2-\text{छ}_2\text{ज}_1)$

§७—अभ्यास—१ $\begin{vmatrix}२ & -३ & -१\\ -४ & ४ & -२\\ ५ & -६ & ३\end{vmatrix}=२\begin{vmatrix}४ & -२\\ -६ & ३\end{vmatrix}-३\begin{vmatrix}-४ & -२\\ ५ & ३\end{vmatrix}+-१\begin{vmatrix}-४ & ४\\ ५ & -६\end{vmatrix}$

$=[२\{४.३-(-२)(-६)\}+३\{(-४)(३)-(-२)(५)\}-१\{-(४)(६)-(४२)(५)\}]$

$=[२\{१२-१२\}+३\{-१२+१०\}-१\{२४-२०\}]$

$=-६-४=१०$

(२) $\begin{vmatrix}\text{च} & \text{ज} & \text{छ}\\ \text{छ} & \text{छ} & \text{च}\\ \text{ज} & \text{च} & \text{ज}\end{vmatrix}=\text{च}(\text{छज}-\text{च}^2)-\text{ज}(\text{छज}-\text{चच}^2)+\text{छ}(\text{छच}-\text{छच})=\text{चछज}-\text{च}^3-\text{छज}^2+\text{जच}^2$

---

* अवशिष्ट से तात्पर्य उस बचे हुए संक्षिप्तकरण से है जो उस पंक्ति और श्रेणी को छोड़ देने से बनता है जिसमें वह पद है।

§८. $\begin{vmatrix} च_१ & च_२ & च_३ & च_४ \\ छ_१ & छ_२ & छ_३ & छ_४ \\ ज_१ & ज_२ & ज_३ & ज_४ \\ झ_१ & झ_२ & झ_३ & झ_४ \end{vmatrix}$ —यह चतुर्थरूप का संक्षिप्त-करण है।। इसका मान निकालने के लिये पहले इसे तृतीय रूप के संक्षिप्तकरण में उसी प्रकार परिवर्तित करना चाहिये जिस प्रकार तृतीय रूप को द्वितीय रूप में सूक्त § ६ में परिवर्तित किया गया था। इस संक्षिप्त-करण का मान—

$$= च_१ \begin{vmatrix} छ_२ & छ_३ & छ_४ \\ ज_२ & ज_३ & ज_४ \\ झ_२ & झ_३ & झ_४ \end{vmatrix} - च_२ \begin{vmatrix} छ_१ & छ_३ & छ_४ \\ ज_१ & ज_३ & ज_४ \\ झ_१ & झ_३ & झ_४ \end{vmatrix} + च_३ \begin{vmatrix} छ_१ & छ_२ & छ_४ \\ ज_१ & ज_२ & ज_४ \\ झ_१ & झ_२ & झ_४ \end{vmatrix} - च_४ \begin{vmatrix} छ_१ & छ_२ & छ_३ \\ ज_१ & ज_२ & ज_३ \\ झ_१ & झ_२ & झ_३ \end{vmatrix}$$

सूक्त§६ के उपयोग से इस संक्षिप्तकरण का मान पूर्ववत् अब निकाला जा सकता है।

§९. किसी संक्षिप्तकरण में पंक्तियोंको श्रेणियों में और श्रेणियों को पंक्तियों में परिवर्तित करने से मानमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। अर्थात—

१— $\begin{vmatrix} च_१ & छ_१ \\ च_२ & छ_२ \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} च_१ & च_२ \\ छ_१ & छ_२ \end{vmatrix}$

$\because \begin{vmatrix} च_१ & च_२ \\ छ_१ & छ_२ \end{vmatrix} = च_१ छ_२ - च_२ छ_१ = \begin{vmatrix} च_१ & छ_१ \\ च_२ & छ_२ \end{vmatrix}$

२— $\begin{vmatrix} च_१ & छ_१ & ज_१ \\ च_२ & छ_२ & ज_२ \\ च_३ & छ_३ & ज_३ \end{vmatrix} = \begin{vmatrix} च_१ & च_२ & च_३ \\ छ_१ & छ_२ & छ_३ \\ ज_१ & ज_२ & ज_३ \end{vmatrix}$

$\begin{vmatrix} च_१ & च_२ & च_३ \\ छ_१ & छ_२ & छ_३ \\ ज_१ & ज_२ & ज_३ \end{vmatrix}$ का मान सूक्त § ६ में निकाला गया है। $\begin{vmatrix} च_१ & छ_१ & ज_१ \\ च_२ & छ_२ & ज_२ \\ च_३ & छ_३ & ज_३ \end{vmatrix}$ का भी मान निकाल कर पूर्व मान के बराबर प्रमाणित किया जा सकता है।

§१०—द्वितीय रूप के संक्षिप्त करण का मान निकालने पर मान में दो पद थे, तृतीय रूप के मान में २×३ पद थे। इसी प्रकार चतुर्थ रूप के मान में ४×३×२=२४ पद होते हैं पंचम रूप में ५×४×३×२=१२०। इसी प्रकार औरों का समझना चाहिये।

११ अभ्यास :— प्रमाणित करो कि—

(१) $\begin{vmatrix} ५ & -९ \\ ८ & -७ \end{vmatrix} = -१०२$ (२) $\begin{vmatrix} १ & २ & ३ \\ ४ & ५ & ६ \\ ७ & ८ & ९ \end{vmatrix} = ०$

(३) $\begin{vmatrix} -च & छ & ज \\ च & -छ & ज \\ च & छ & -ज \end{vmatrix} = ४ च छ ज$

(४) $\begin{vmatrix} च & ढ & ड \\ ढ & छ & ठ \\ ड & ठ & ज \end{vmatrix} = च छ ज + २ ठ ड ढ - च ठ^२ - छ ड^२ - ज ढ^२$

निराकरण

§११. $च_१ क + च_२ ख = ०$ ··· (१)

$छ_१ क + छ_२ ख = ०$ ··· (२)

ये दो समीकरण हैं जिसमें क और ख अज्ञात हैं। इनके चारों गुणक $च_१$, $च_२$, $छ_१$, $छ_२$ में कोई सम्बन्ध अवश्य होगा क्योंकि समीकरण १ से—

$\frac{क}{ख} = -\frac{च_२}{च_१}$ और समीकरण २ से—

$\frac{क}{ख} = -\frac{छ_२}{छ_१}$

$\frac{क}{ख}$ के इन दोनों मानों को तुलना देने पर—

$\frac{च_२}{च_१} = \frac{छ_२}{छ_१}$

अर्थात् $च_१ छ_२ - छ_१ च_२ = ०$ ....(३)

$\therefore \begin{vmatrix} च_१ & च_२ \\ छ_१ & छ_१ \end{vmatrix} = ०$ (सूक्त § ५ के अनुसार)

परिणाम (३) की अवस्था पूर्ण होने पर दोनों समीकरणोंमें क और ख का मान तुल्य ही होगा। इस अवस्था के निकालनेकी विधिको समीकरणों में से क और ख का निराकरण करना कहते हैं और परिणाम ३ का समीकरण १ और २ का निराकृत कहते हैं।

यह स्पष्ट है कि परिणाम ३ को संक्षिप्तकरण के रूप में रख सकते हैं, और यह संक्षिप्तकरण (१)

और (२) के गुणकोंको पदों से पृथक करके रख देने और उनको शून्यके तुल्य कर देने से मिल सकता है।

§१२. इन तीन समीकरणोंकी परीक्षा करनी चाहिये—

$च_१ क + च_२ ख + च_३ ग = ०$ ... (१)

$छ_१ क + छ_२ ख + छ_३ ग = ०$ ... (२)

$ज_१ क + ज_२ ख + ज_३ ग = ०$ ... (३)

इसमें क, ख, ग अज्ञात हैं।

समीकरण २ और ३ से—

$$\frac{क}{छ_२ ज_३ - ज_२ छ_३} = \frac{ख}{छ_३ ज_१ - ज_३ छ_१} = \frac{ग}{छ_१ ज_२ - ज_१ छ_२}$$

इनमानों को समीकरण (१) में स्थापित करने पर—

$च_१ (छ_२ ज_३ - छ_३ ज_२) + च_२ (छ_३ ज_१ - ज_३ छ_१) + च_३ (छ_१ ज_२ - ज_१ छ_२) = ०$ ...(४)

समीकरण (४) वह परिणाम है जो क, ख, और ग को तीनों समीकरणोंमें से निराकरण करने पर उपलब्ध होता है।

सूक्त § ६ के अनुसार समीकरण (४) इसरूपमें लिखा जा सकता है:—

$$\begin{vmatrix} च_१ & च_२ & च_३ \\ छ_१ & छ_२ & छ_३ \\ ज_१ & ज_२ & ज_३ \end{vmatrix} = ०$$

यह संक्षिप्तकरण तीनों समीकरणों के गुणकों को पृथक करने पर शून्य से तुल्यता देके प्राप्त हो सकता है।

§१३ अभ्यास—बताओ कि च को क्या मान देने से निम्न तीनों समीकरणों में क, ख और ग का एक ही मान होगा—

$चक + ५ख - ३ग = ०$ ...(१)

$४क - २ख - २ग = ०$ ...(२)

$क - ५ख + ग = ०$ ...(३)

सूक्त § १२ के अनुसार क, ख और ग का निराकरण करने पर—

$$\begin{vmatrix} च & ५ & -३ \\ ४ & -२ & -२ \\ १ & -५ & १ \end{vmatrix} = ०$$

अर्थात $च [-२-१०] + ५ [-२-४] - ३ [-२० + २] = ०$

$\therefore -१२ च = ३० - ५४ = -२४$

$\therefore च = २$.

§ १४ निम्नसमीकरणों में ४ अज्ञात क, ख, ग, घ हैं:—

$च_१ क + च_२ ख + च_३ ग + च_४ घ = ०$ ...(१)

$छ_१ क + छ_२ ख + छ_३ ग + छ_४ घ = ०$ ...(२)

$ज_१ क + ज_२ ख + ज_३ ग + ज_४ घ = ०$ ...(३)

$झ_१ क + झ_२ ख + झ_३ ग + झ_४ घ = ०$ ...(४)

इनमें क, ख, ग, और घ का निराकरण करने पर निम्न चतुर्थरूप का संक्षिप्तकरण उपलब्ध होगा।—

$$\begin{vmatrix} च_१ & च_२ & च_३ & च_४ \\ छ_१ & छ_२ & छ_३ & छ_४ \\ ज_१ & ज_२ & ज_३ & ज_४ \\ झ_१ & झ_२ & झ_३ & झ_४ \end{vmatrix} = ०$$

इसी प्रकार अन्य समीकरणों के विषयमें भी कहा जासकता है। यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि इन समीकरणोंके दाहिने भाग में सदा शून्य विद्यमान रहता है। यदि शून्य न होगा, तो उपर्युक्त नियमोंका प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

उदाहरण माला १

निम्न समीकरणों के मूल निकालो।

१ $३क^२ - १७क + २४ = ०$

२ $- ९क^२ + २५ = ६क - १०$

३ $२क^३ + ५क^२ - ४क - ३ = ०$

४ $क^३ + क^२ - ४क - ४ = ०$

५. उन वर्गात्मक समीकरणों को लिखो जिनके मूल नीचे दिये हुए हैं—

(अ) ३ और २ (आ) ८ और —१३ (इ) ३ और $-\frac{३}{२}$

निम्न समीकरण हल करो—

६. $८क + ३ख = ३१$

$३क - ५ख = ३०$

७. $३क - २ख + च + २छ = ०$

$चक + छख = च^२ + २चछ + छ^२$

८. निम्न संक्षिप्तकरणोंका मान निकालोः—

(अ) $\begin{vmatrix} ८ & -४ \\ ६ & ३ \end{vmatrix}$ (आ) $\begin{vmatrix} \text{क} & \text{२ख} \\ -\text{३ख} & \text{२क} \end{vmatrix}$

(इ) $\begin{vmatrix} ४ & ५ & ६ \\ ४ & ५ & ६ \\ २ & ३ & ७ \end{vmatrix}$ (ई) $\begin{vmatrix} \text{क} & \text{ख} & \text{ग} \\ \text{२क} & \text{२ख} & \text{३ग} \\ \text{३क} & \text{३ख} & \text{३ग} \end{vmatrix}$

९. निम्न समीकरणों का संक्षिप्तकरणकी विधि से हलकरोः—

(अ) २ क + ३ख = ४७ (आ) ३क + ४ख — ग = १६
४ क — ख = ४५ ५क + ३ख + ग = १५
२क + ३ख + २ग = ११

——

सर्वसिद्धान्त संग्रह

[गताङ्क से आगे]

[ले० श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, एम. ए.]

तृतीयाध्याय

अथ आर्हत पक्ष प्रकरणम् ।

लोकायतिकपक्षोऽयमाक्षेप्यस्सर्व वादिनाम् ।
स्वपक्षेण क्षिपत्येषः तत्पक्षं क्षपणोऽधुना ॥ १ ॥

लोकायतिक अर्थात् वृहस्पतिके इस सिद्धान्त का अन्य सब दर्शनकारों ने खण्डन किया है। क्षपण अर्थात् जैन अपने पक्ष को स्थापित करके इस लोकायत पक्ष का यों खण्डन करता है ॥ १ ॥

अग्नेरौष्ण्यमपां शैत्यं कोकिले मधुरः स्वरः ।
इत्याद्येक प्रकारः स्यात् स्वभावो नापरः कचित् ॥२

अग्नि की गर्मी, जल की ठण्डक, कोयल का मधुर स्वर इत्यादि सब स्वभावसे हैं। इनसे परे कुछ भी नहीं।

कादाचित्कं सुखंदुःखं स्वभावो नात्मनो मतः ।
धर्माधर्मावतस्ताभ्यामदृष्टाविति निश्चितौ ॥ ३ ॥

क्षणिक सुख और दुःख आत्मा के स्वभाव नहीं हो सकते। इस लिये सुख और दुःखसे निश्चित होता है कि इनके कारण धर्म और अधर्म हैं जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं।

अदृष्टस्यात्र दृष्टत्वे नादृष्टत्वं भवेदिति ।
त्वयोक्तदोषो न स्यान्मे तत्सिध्यत्यागमाद्यतः ॥४॥

तुमने (लोकायतने) जो यह दोष दिखलाया कि यदि अदृष्ट दृष्ट हो जाय तो अदृष्ट कहाँ रहा। यह दोष हमारे मतमें नहीं घटता क्योंकि हम अदृष्ट को शास्त्र के द्वारा मानते हैं न कि प्रत्यक्ष के द्वारा ॥ ४ ॥

अदृष्टमग्निमादातुं धूमं दृष्ट्वोपधावता ।
धूमेनाग्न्यनुमानन्तु त्वयाप्यङ्गीकृतं ननु ॥ ५ ॥

जब तुम धुआंको देखकर अदृष्ट अग्नि को लेने के लिये दौड़ते हो। तो मालूम होता हैकि तुमनेभी धूएंके द्वारा अग्निका अनुमान कर लिया। अर्थात् तुमतो केवल प्रत्यक्षवादी थे परन्तु तुम्हारा व्यवहार बताता है कि तुम अनुमानवादी भी हो क्योंकि केवल धुएं को देखकर अग्नि के लेनेके लिये दौड़ते हो ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षेणानुमानेन पश्यन्त्यत्रागमेन च ।
दृष्टादृष्टं जनः स्पष्टमार्हतागमसंस्थिताः ॥ ६ ॥

जो लोग जैन शास्त्रोंको मानते हैं। वह प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम अर्थात् शास्त्र द्वारा दृष्ट और अदृष्ट को सिद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

सिद्धा बद्धा नारकीया इति स्युः पुरुषास्त्रियाः ।
केचित्परमसिद्धाः स्युः केचिन्मन्त्रैर्महौषधैः ॥७॥

तीन तरह के लोग होते हैं (१) सिद्ध (२) बद्ध (३) नारकीय। कुछतो स्वयं ही परमसिद्ध होते हैं और कुछ मन्त्र और औषधियोंके बलसे।

गुरूपदिष्टमार्गेण ज्ञानकर्मसमुच्चयात् ।
मोक्षो बन्धाद्विरक्तस्य जायते भुविकस्यचित् ॥८॥

संसारमें गुरुके उपदेश द्वारा ज्ञान और कर्मके होनेसे किसी विरक्त पुरुष की बन्धसे मोक्ष होती है। अर्थात् जो गुरुके उपदेशसे ज्ञान प्राप्त करता है और उसके अनुकूल कर्म करता है वही बन्धसे छूटकर मुक्ति पाता है ॥ ८ ॥

अर्हतामखिलं ज्ञातुं कर्मार्जितकलेवरैः ।
आवृतिर्बन्धनं मुक्तिः निरावरणतात्मनाम् ॥ ९ ॥

जैनोंके मतमें बन्ध इसका नाम है कि अपने

कर्मोंके कारण जो शरीर मिलता है उससे एक प्रकार का ऐसा आवरण हो जाता है कि सब वस्तुओंका ज्ञान छिप जाता है। आत्मा परसे इस आवरणके हटजानेको मुक्ति कहते हैं ॥ ९ ॥

पुद्गलापरसंज्ञैस्तु धर्माधर्मानुगामिभिः।
परमाणुभिराबद्धाः सर्वदेहाः सहेन्द्रियैः ॥ १० ॥

सब शरीर और इन्द्रियां धर्म और अधर्म के अनुगामी परमाणुओंसे मिलकर बनी हैं जिनको पुद्गल भी कहते हैं। परमाणुओं का दूसरा नाम पुद्गल है। यह परमाणु धर्म और अधर्मके पीछे चलते हैं और इन्हींसे शरीर बनता है।

स्वदेहमाना ह्यात्मानो मोहाद् देहाभिमानिनः।
क्रिमि कीटादि हस्त्यन्त देह पञ्जर वर्त्तिनः ॥ ११ ॥

क्रिमि और कीड़ीसे लेकर हाथी पर्य्यन्त शरीर रूपी पिंजड़ेमें रहने वाले आत्मा अपनी देहके बराबर परिमाण वाले होते हैं और अज्ञान द्वारा शरीरमें बंधे रहते हैं ॥ ११ ॥

आत्मावरणदेहस्य वस्त्राद्यावरणान्तरम्।
न ह्ययं यदि गृह्णाति तस्यापीत्यनवस्थितिः ॥ १२ ॥

आत्मा का आवरण (ढकन) देह है। देह का दूसरा आवरण कपड़ा आदि नहीं होना चाहिये। यदि ऐसा होगा तो फिर वस्त्रका भी आवरण होना चाहिये और उस आवरणका फिर दूसरा आवरण इस प्रकार आवरणोंकी शृंखला जारी होकर अनवस्था दोष आयेगा * ॥ १२ ॥

प्राणिजातमहिंसन्तो मनोवाक्काय कर्मभिः।
दिगम्बराश्चरन्त्येव योगिनो ब्रह्मचारिणः ॥ १३

दिगम्बर (कपड़ा न पहनने वाले) योगी ब्रह्मचारी मन वाणी तथा कर्म द्वारा किसी प्राणीकी हिंसा न करते हुये संसारमें विचरते हैं ॥ १३ ॥

मयूरपिच्छहस्तास्ते कृतवीरासनादिकाः।
पाणिपात्रेण भुञ्जाना लूनकेशाश्च मौनिनः ॥ १४ ॥

* इसीलिये दिगम्बर जैन वस्त्र नहीं पहिनते।

मुनयो निर्मलाश्शुद्धाः प्रणतायौघभेदिनः।
तदीयमन्त्रफलदो मोक्षमार्गे व्यवस्थितः ॥१५॥
सर्वैर्विश्वसनीयः स्यात् ससर्वज्ञोजगद्गुरुः ॥१५ई॥

उनके हाथ में मोर के पंख रहते हैं और वह वीर आसन आदि लगाते हैं। हाथ में ही खाते हैं। केश नहीं रखते और मौन धारणकिये रहते हैं ॥ १४ ॥

यह मुनि निर्मल और शुद्ध होते हैं। उनमें इतनी शक्ति होती है कि जो उनके सन्मुख शिर नवावे उसके पापों को नष्ट करदें। उनके मंत्रों का फल देने वाला और मोक्षमार्ग में ठहरा हुआ, सर्वज्ञ और जगद्गुरु सभी का विश्वासपात्र हो ।१५ई

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य्यविरचिते सर्व दर्शन-सिद्धान्त संग्रहे आर्हतपक्षो नाम तृतीयं प्रकरणम् ॥

यहाँ श्री शंकराचार्य्य रचित सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रहका आर्हत पक्ष नामी तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ।

चतुर्थ अध्याय

अथ बौद्धपक्ष प्रकरणम्।

[१]

माध्यमिकमतम्

बौद्धाः क्षपणकाचार्य्य प्रणीतमपि साम्प्रतम्।
पक्षं प्रतिक्षिपन्त्येव लोकायतमतं यथा ॥१॥

अब बौद्ध लोग जैन आचार्य के मत का भी उसी प्रकार खण्डन करते हैं जैसे जैन आचार्य ने लोकायत [बृहस्पति] केमत काखण्डन किया था ॥१॥

चतुर्णां मतभेदेन बौद्धशास्त्रं चतुर्विधम् ॥
अधिकारानुरूपेण तत्र तत्र प्रवर्त्तकम् ॥२॥

चार *प्रकारके बौद्धोंमें भिन्न २ मेल होने के कारण चार भिन्न २ शास्त्र हैं और वह अधिकार के विचार से अपने अपने मतमें लोगोंकी प्रवृत्ति कराते हैं ॥ २॥

* बौद्धों के चार भेद हैं माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। इनका अलग अलग वर्णन है।

ज्ञानमेव हि सा बुद्धिर्न चान्तःकरणं मतम् ।
जानाति बुध्यते चेति पर्यायत्वप्रयोगतः ॥३॥

ज्ञानका ही नाम बुद्धि* है । अन्तःकरण कोई चीज़ नहीं । 'जानता है' और "समझता है" एकही अर्थ में आते हैं ॥ ३ ॥ तात्पर्य यह है कि समझने के लिये अलग अन्तःकरण या मन को मानने की ज़रूरत नहीं । ज्ञानका नाम ही बुद्धि है ।

त्रयाणामत्र बौद्धानां बुद्धिरस्त्यविवादतः ।
बाह्यार्थोऽस्ति द्वयोरेव विवादोऽन्यत्र तद्यथा ॥४॥

तीन बौद्ध तो निस्सन्देह बुद्धि को मानते हैं । दो अर्थों (पदार्थों) का बाहर होना मानते हैं । अन्य बातों में उनमें विवाद है जिनका आगे वर्णन है ॥४॥

प्रत्यक्षसिद्धं बाह्यार्थमसौ वैभाषिको ऽब्रवीत् ।
बुद्ध्याकारानुमेयोऽर्थो बाह्यस्सौत्रान्तिकोदितः ॥५॥

वैभाषिक का यह मत है कि पदार्थों का बाहर होना प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है । सौत्रान्तिक कहता है कि नहीं । पदार्थ बाहर हैं अवश्य परन्तु उनका अस्तित्व प्रत्यक्ष से नहीं किन्तु अनुमान से जाना जाता है । हम बुद्धि के आकार को देखकर अनुमान करते हैं कि इसी प्रकार का आकार बाह्य पदार्थों का होगा । जिसप्रकार किसी अदृष्ट पदार्थकी छाया जल या दर्पण में पड़े तो उस छायाको देखकर उस अदृष्ट पदार्थका ज्ञान होता है इसी प्रकार पदार्थों की छाया हमारी बुद्धि में पड़ती है और बुद्धि तदाकार हो जाती है । उस प्रकार को देखकर हम पदार्थों के आकारका भी अनुमान करलेते हैं । यह सौत्रान्तिकका मत है ॥५॥

बुद्धिमात्रं वदत्यत्र योगाचारो न चापरम् ।
नास्ति बुद्धि रपीत्याह वाद माध्यमिकःकिलः ।६।

योगाचार कहता है कि अब सौत्रान्तिकों के मतानुसार बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होते तो उनका अनुमान करने की भी क्या आवश्यकता है । केवल बुद्धि को ही मानना चाहिये । वस्तुतः बाह्य पदार्थ कुछ नहीं । वह केवल बुद्धि में ही भासते हैं (cf-Berkley) । माध्यमिक कहता है कि बुद्धि भी स्थायी नहीं है । कभी एक बातका आभास होता है, कभी दूसरीका, इसलिये बुद्धिका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होता (cf-Hume) ॥६॥

न सन्नासन्न सदसन्न चोभाभ्यां विलक्षणम् ।
चतुष्कोटि विनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः ॥७॥

माध्यमिकों का मत है कि तत्त्व (१) न तो सत् है (२) न असत् है, (३) न सत्—असत् है (४) न सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है । इस प्रकार तत्त्व चारोंमें से किसी कोटिमें नहीं आता ॥ ७ ॥

यदसत्कारणैस्तन्न जायते शशशृङ्गवत् ।
सतश्चोत्पत्तिरिष्टा चेज्जनितं जनयेदयम् ॥ ८ ॥

जो चीज़ असत् है वह किसी से पैदा नहीं हो सकती जैसे खरगोशके सींग । और जो सत् है वहतो है ही। वह किससे पैदा होगी ? माध्यमिक उत्पत्तिका खण्डन करता है । वह कहता है कि जो चीज़ है नहीं, जैसे खरगोशके सींग, वह पैदा भी नहीं हो सकती । और जो है वह तो है ही । इस प्रकार न सत्की उत्पत्ति होती है न असत्की । अर्थात् किसीकी नहीं ॥ ८ ॥

एकस्य सदसद् भावो वस्तुनोनोपपद्यते ।
एकस्य सदसद्भ्योऽपि वैलक्षण्यं युक्तिमत् ॥ ९ ॥

एक ही वस्तु सत् और असत् दोनों नहीं हो सकती । और यह कहना भी ठीक नहीं है कि यह वस्तु सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है । इस प्रकार माध्यमिकके मतमें ऊपर कही चारों बातों का खण्डन हो गया ॥ ९ ॥

चतुष्कोटि विनिर्मुक्तं शून्यं तत्त्वमिति स्थितम् ।
जातेर्जातिमतो भिन्ना न वेत्यत्र विचार्यते ॥ १० ॥

इस प्रकार चारों बातोंसे रहित केवल शून्य ही तत्त्व ठहरता है । अब इस बातका विचार किया जाता है कि जाति और व्यक्ति भिन्न २ हैं या नहीं ॥ १० ॥

*न्याय सूत्र बुद्धि, उपलब्धि ज्ञान अर्थानन्तरम् ।

भिन्ना चेत्सा न गृह्येत व्यक्तिभ्योऽङ्गुष्ठवत् पृथक्।
अविचारित संसिद्धा व्यक्तिः सा पारमाणुकी ॥ ११ ॥

यदि कहो कि जाति और व्यक्ति भिन्न २ हैं तो वह इस प्रकार अलग २ क्यों नहीं दिखाई देतीं जैसे अंगूठा शरीरसे। यदि कहाजाय कि परमाणुओं का व्यक्तित्व तो स्पष्ट और स्वयंसिद्ध है क्योंकि वह अलग अलग हैं।

स्वरूपं परमाणूनां वाच्यं वैशेषिकादिभिः।
षट्केन युगपद्योगे परमाणोष्षडंशता ॥ १२॥

तो यह आक्षेप होता है कि जो परमाणुओंपर विश्वास रखते हैं जैसे वैशेषिक आदि उनको परमाणुओं का स्वरूप बतलाना चाहिये। वैशेषिक मतानुसार एक परमाणु जब अन्य परमाणुओंसे मिलता है तो छओ तरफ़ मिल जाता है। जिस परमाणु की छः तरफें हैं वह परमाणु कैसा। उसके तो छः हिस्से हो गये। इस प्रकार यदि यह माना जाय कि संसार परमाणुओंके मिलने से बना है, तो परमाणुका होना सिद्ध नहीं होता।१२।

षण्णां समान देशत्वे पिण्डः स्यादणुमात्रकः
ब्राह्मणत्वादि जातिः किं वेदपाठेन जन्यते ॥ १३॥

अगर कहो कि परमाणुओं में जो छः तरफें हैं वह एक देशीय हैं तो ऐसे परमाणुओंमें के मिलने से परमाणु के बराबर ही चीज़ बनेगी स्थूल नहीं। अब प्रश्न यह है कि क्या ब्राह्मणत्व आदि जाति वेद पाठसे होता है ? ।१३।

संस्कारैर्वा द्वयेनाथ तत्सर्वं नोपपद्यते।
वेदपाठेन चेत्कश्चित् शूद्रो देशान्तरगतः ॥१४॥

सम्यक् पठितवेदोपि ब्राह्मणत्वमवाप्नुयात्।
सर्वसंस्कारयुक्तोऽत्र विप्रो लोके न दृश्यते ॥१५॥

चत्वारिंशत्तु संस्कारा विप्रस्य विहिता यतः।
एक संस्कार युक्तश्चेद्विप्रः स्यादखिलोजनः॥१६॥

या संस्कारसे या दोनोंसे। इनमें से कोई बात ठीक नहीं। अगर कहो कि वेद पाठसे ब्राह्मण होता है तो वह शूद्र जो दूसरे देशोंमें जाकर वेद पढ़ आवे ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता। अगर कहो कि सब संस्कारों से ब्राह्मणत्व होता है तो ब्राह्मणके चालीस संस्कार लिखे हैं। ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं मिलता जिसके चालीसों संस्कार हुये हों। अगर कहो कि एक ही संस्कारसे भी ब्राह्मणत्व आजाता है तो सभी ब्राह्मण हो जायँगे।

जातिव्यक्त्यात्मकोऽर्थोऽत्र नास्त्येवेति निरूपिते।
विज्ञानमपि नास्त्येव ज्ञेयाभावे समुत्थिते।

इति माध्यमिकेनैव सर्वं शून्यं विचारितम् ॥ ७॥

इति बौद्धपक्षेमाध्यमिकमतम् ॥

जब यह सिद्ध होगया कि जाति और व्यक्ति कुछ नहीं तो विज्ञान भी नहीं ठहरता क्योंकि ज्ञान तब होता है जब ज्ञेय (जानने के लिये पदार्थ हो)। जब ज्ञेय न हो तो ज्ञान कैसा और किसका। इसलिये माध्यमिक के मत में सर्वशून्य ही सिद्ध है।

यह बौद्ध पक्ष में माध्यमिक मत हुआ।

अथ योगाचारमतम्।

इति माध्यमिकेनोक्तं शून्यत्वं शून्यवादिना।
निरालम्बनवादी तु योगाचारो निरस्यति ॥१॥

शून्य वादी माध्यमिकके शून्यत्व का निरालम्बन वादी योगाचार खण्डन करता है। निरालम्बन वादी उसको कहते हैं जो बाह्य ज्ञेय पदार्थके बिना ज्ञानका अस्तित्व माने। योगाचारके मत में ज्ञेय बाह्य पदार्थ ज्ञान के अतिरिक्त कोई नहीं।

त्वयोक्तसर्वशून्यत्वे प्रमाणं शून्यमेव ते।
अतोवादेऽधिकारस्ते न परेणोपपद्यते ॥२॥

अपने कहे हुये शून्यवादके लिये तुम्हारे पास शून्य से इतर कोई प्रमाण ही नहीं। इसलिये तुमको दूसरोंके साथ वाद करनेका भी अधिकार नहीं ॥२॥

जो शून्यको मानता है वह प्रमाणोंको भी नहीं मानता। जो प्रमाणोंको नहीं मानता वह वाद ही कैसे कर सकता है ?।

स्वपक्षस्थापनं तद्वत् परपक्षस्य दूषणम्।
कथं करोत्यत्र भवान् विपरीतं वदेन्नकिम्॥३॥

तुम यहां अपने पक्षकी स्थापना और दूसरेके पक्षका खण्डन कैसे करोगे ? विपरीत भी क्यों नहीँ बोलते ॥३॥

अविभागो हि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः।
ग्राह्य ग्राहक संवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥४॥

वस्तुतः बुद्धि (ज्ञान) एक ही वस्तु है। उसके खण्ड नहीं हो सकते। जो लोग समझते नहीं उनको उसके तीन भेद मालूम पड़ते हैं अर्थात् ग्राह्य या ज्ञेय, ग्राहक या ज्ञाता और संवित्ति या ज्ञान। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान यह तीनों अलग २ नहीं हैं सब एक ही हैं।

मानमेयफलाद्युक्तंज्ञानदृष्ट्यनुसारतः।
अधिकारिषु जातेषु तत्वमप्युपदेक्ष्यति ॥

मान अर्थात् ज्ञानका साधन, मेय अर्थात् जिसको सिद्ध किया जाय और फल यह सब साधारण लोगोंके ज्ञानकी दृष्टिसे कहे जाते हैं। बात यह है कि जब अधिकारी पुरुष हों तो उनको तत्व भी समझाया जायगा ॥५॥

बुद्धि स्वरूपमेकं हि वस्त्वस्ति परमार्थतः।
प्रतिभानस्य नानात्वान्न चैकत्वं विहन्यते ॥६॥

ठीक तो यह है कि बुद्धि स्वरूप एक ही वस्तु है। भिन्न भिन्न प्रतीत होनेसे एकत्वका नाश नहीं होता ॥६॥

परिव्राट् कामुक शुनामेकस्यां प्रमदातनौ।
कुणपं कामिनी भक्ष्यमिति तिस्रो विकल्पनाः ॥७॥

एक स्त्रीके शरीरको परिव्राजक सन्यासी तो शरीर मात्र ही समझता है। कामी पुरुषको कामिनी मालूम होती है और कुत्तेको खानेका पदार्थ मालूम होता है। वस्तु एक है परन्तु भिन्न भिन्न लोग उसे भिन्न भिन्न प्रकारसे देखते हैं ॥७॥

अथाप्येकैव सा बाला बुद्धितत्वं तथैवनः।
तदन्यद्यत्तु जात्यादि तन्निराक्रियतां त्वया ॥८॥

जैसे वह स्त्री एक ही है इसी प्रकार बुद्धि भी एक ही है। इसके अतिरिक्त जो तुमने (माध्यमिकने) जाति, व्यक्ति आदिका खण्डनकिया, वह ठीक है।

क्षणिका बुद्धिरेवातस्त्रिधाभ्रान्तैर्विकल्पिता।
स्वयम्प्रकाशतत्वज्ञैर्मुमुक्षुभिरुपास्यते ॥९॥

इति बौद्धपक्षे योगाचार मतम्।

स्वयम् प्रकाश रूपतत्वके जाननेवाले मोक्षके इच्छुक लोग इस क्षणिक बुद्धिकी ही उपासना करते हैं जिसको भ्रान्तिसे तीन प्रकारकी समझ लिया गया है। यह बौद्धपक्षमें योगाचार मत हुआ।

(३)

अथ सौत्रान्तिक मतम्

विज्ञान मात्रमत्रोक्तं योगाचारेण धीमता।
ज्ञानं ज्ञेयं विना नास्ति बाह्यार्थोऽप्यस्ति तेननः ॥१॥

बुद्धिमान योगाचारने यहां केवल विज्ञानको माना है। परन्तु ज्ञान बिना ज्ञेयके होता ही नहीं। इसलिये हम मानते हैं कि बाह्य पदार्थ भी हैं ॥१॥

नील पीतादिभिश्चित्रैर्बुद्ध्याकारैरिहान्तरैः।
सौत्रान्तिकमते नित्यं बाह्यार्थस्त्वनुमीयते ॥२॥

बुद्धिमें जो अनेक प्रकारके नीले पीले आदि भिन्न भिन्न चित्र बनते रहते हैं उनसे अनुमान होता है कि बाह्य पदार्थ भी हैं। यही सौत्रान्तिकों का मत है ॥२॥

क्षीणानि चक्षुरादीनि रूपादिष्वेव पञ्चसु।
न षष्ठमिन्द्रियं तस्य ग्राहकं विद्यते बहिः ॥३॥

आंख आदि पांच इन्द्रियां तो रूपादि देखनेमें खर्च हो जाती हैं। छठी कोई इन्द्रिय नहीं जो बाह्य पदार्थोंकी बाह्यताको प्रत्यक्ष करे। इसलिये

पदार्थों को बाह्यता के लिये प्रत्यक्ष नहीं किन्तु अनुमान प्रमाण हैं ३।

षडंशत्वं त्वयापाद्य परमाणोर्निराकृतिः ।
युक्तस्तेनापि बाह्यार्थो न चेद्ज्ञानं न सम्भवेत् ॥४॥

यह तो तुमने ठीक किया कि परमाणुके छः भाग मान कर उनका खण्डन कर दिया। परन्तु उसी युक्तिसे बाह्य पदार्थोंका मानना जरूरी है क्योंकि अगर बाह्यपदार्थ न हों तो ज्ञान किसका होगा ? ॥४॥

आकाशधातुरस्माभिः परमाणुरितीरितः ।
स च प्रज्ञप्ति मात्रं स्यान्न च वस्त्वन्तरं मतम् ॥५॥

हम आकाशके ही परमाणु मानते हैं। वह केवल प्रज्ञप्ति मात्र (ज्ञान मात्र) है। अन्य वस्तु नहीं।

सर्वे पदार्थाः क्षणिका बुद्ध्याकार विजृम्भितः ।
इदमित्येव भावास्तेप्याकारानुमितास्सदा ॥६॥

सब पदार्थ क्षणिक हैं और बुद्धिके आकारसे मालूम होते हैं। 'यह ऐसा है' 'वह वैसा है' यह भाव भी बुद्धिके आकारसे ही अनुमान किये जाते हैं ॥६॥

विषयत्वविरोधस्तु क्षणिकत्वेऽपि नास्ति नः ।
विषयत्वं हि हेतुत्वं ज्ञानाकारार्पण क्षमम् ॥७॥

हमारे मतमें यद्यपि वस्तुएं क्षणिक हैं तो भी हमको इस बातसे विरोध नहीं कि वह बुद्धिका विषय है। बुद्धिका विषय होना ही इस बातका कारण है कि बुद्धिमें आकार बनता है। इसीलिये बुद्धिके आकारसे बाह्य पदार्थोंका अस्तित्व अनुमान करते हैं ॥७॥

इति बौद्धपक्षे सौत्रान्तिकमतम् ।

यह बौद्धपक्षमें सौत्रान्तिक मत हुआ।

उद्जन

(उ=१.००८)

[ले॰ श्री सत्यप्रकाश बी. एस. सी.। विशारद]

प्राप्ति स्थान

दुनियाकी जितनी उपयोगी वस्तुएँ हैं उनमें उद्जन अधिक मात्रामें उपस्थित रहता है। इस भूमण्डल का तीन चौथाई भाग जल है। यह जल मनुष्यके जीवनके लिये बड़ा आवश्यक है। इस जलमें नवाँ भाग उद्जनका है। अर्थात् १८ भाग पानीमें २ भाग उद्जन है। इसके अतिरिक्त भोजनके लिये आटा, चीनी तरकारी, फलफूल, इन सबमें यह तत्त्व विराजमान है ? पर एक बात अवश्य है कि इन पदार्थोंमें यह यौगिकोंके अन्दर विद्यमान है। साधारण तथा उद्जन तत्त्वरूपमें बहुतही कम पाया जाता है। ज्वालामुखी पर्वतके ऊपरके वायव्योंमें इसकी कुछ मात्रा अवश्य रहती है। वायुमण्डलमें यह केवल १० लाख भागमें १ भाग है। अमरीकाके मिट्टीके तेलके कुओंसे निकलने वाले प्राकृतिक-वायव्यों में यह आयतनके हिसाबसे २० प्रति शत तक पाया गया है।

गत अध्यायमें यह दिखाया जाचुका है कि उद्जन अम्लोंमें और क्षारोंमें भी होता है। अतः हम उद्जन तीन स्थानोंसे सरलतया पा सकते हैं—१. पानीसे, २. अम्लोंसे, ३. क्षारोंसे।

जलसे उपलब्धि

१. अब हम यहाँ उद्जन बनानेकी विधियाँ देंगे। पानीसे उद्जन विद्युत्-विश्लेषण द्वारा बनाया जा सकता है। इस कामके लिये कांचका एक विशेष विद्युत्-घट लिया जाता है जिसमें

परसौपम्के दो ध्रुव लगे होते हैं। इस घटमें पानी भरदो। पानीमें थोड़ासा हलका गन्धकाम्लभी डाल दो। गन्धकाम्ल डालनेसे पानी विद्युत का अच्छा चालक हो जावेगा। अब ध्रुवोंको बाटरीके ध्रुवोंसे तार द्वारा संयुक्त करदो। घटके ध्रुवों पर एक एक परख नली उसी अम्लीय जलसे भरकर उलटी खड़ी करदो। विद्युत्-धाराके प्रवाह से जल विभाजित होने लगेगा और दोनों ध्रुवों पर वायव्योंके बुलबुले दिखाई पड़ेंगे। थोड़ी देरके पश्चात् दोनों परखनलियोंमें यह बुलबुले ऊपर चढ़ने लगेंगे और नलियोंमें वायव्य भर जावेंगे।

ध्यान पूर्वक देखनेसे पता चलेगा कि एक नलीमें जितना वायव्य है उसका आधा दूसरी नलीमें है। यह आधा भाग ओषजनका है और दूसरी नलीमें उद्जन है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

$$२ उ_२ओ = २उ_२ + ओ_२$$

(२ आयतन) (१ आयतन)

उद्जन वाली परखनलीके मुँहको पानीके नीचेही अंगूठेसे बन्द करो और बाहर निकाल लो। इसके मुँहके पास दियासलाई लाकर जलाओ। परखनलीके अन्दरकी गैस शान्ति पूर्वक जलने लगेगी।

(२) पानीसे उद्जन बनानेकी दूसरी विधि यह है। सैन्धकम् टुकड़ेको चाकूसे सावधानीसे काटो (सैन्धकम् मिट्टीके तैलके अन्दर रक्खा जाता है) और सुखाकागज़से इसे सुखालो। तारके टुकड़ों को पैन्सिलके चारों ओर कई बार लपेटकर पोंगनासा बनालो। हाथसे पकड़नेके लिये थोड़ासा तार बिना लपेटा छोड़ दो। एक प्यालीमें पोंगनेमें सैन्धकम्का टुकड़ा रखकर पानीमें डुबाओ। एक परखनलीको पानीसे भरकर सैन्धकम् के ऊपर उलटा खड़ा करदो। सैन्धकम् जलका विभाजन करेगा और उद्जनके बुलबुले परखनलीमें चढ़ने लगेंगे। जब नली भर जाय तो उसके मुखको अंगूठेसे बन्द करके पानीसे बाहर निकाललो। दियासलाई मुँहके सामने जलाकर लातेही उद्जन जलने लगेगा। इसप्रयोगमें प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$२उ_२ओ + २सै = २सै ओ उ + उ_२$$

सैन्धकम् उदौषिद (सै ओ उ) या कास्टिक सोडा पानीमें घुल जाता है। यह क्षार है इसकी पहिचानके लिये लाल—द्योतक-पत्र पानीमें डुबोओ। पत्र नीला हो जायगा।

सैन्धकम्के स्थानमें पांशुजम् का टुकड़ाभी लिया जा सकता था—

$$२ उ_२ ओ + २ पां = २ पां ओ उ + उ_२$$

मगनीसम्का चूर्ण, तथाधातु खटिकम्भी पानीमेंसे उद्जन इसी प्रकार देते हैं।

(३) लोहेकी एक बड़ी नली लो और इसमें लोहे का बुरादा रखदो। इस नलीका एक सिरा एक पतीलीसे संयुक्त करदो जिसमें पानी उबलकर भाप बनता हो। लोहेके बुरादेको भट्टीमें रक्त-तप्त करो और भापको लोहेपर प्रवाहित करो। भापका ओषजन लोहा लेलेगा और उद्जन नलीके दूसरे सिरेसे बाहर निकलेगा। इस सिरेमें कांचकी नली लगाकर पानीमें डुबो दो। कांचकी नलीके इस सिरेमें से जो पानीके अन्दर है, उद्जनके बुलबुले ऊपर निकलने लगेंगे जिन्हें पहलेके समान परखनलीमें भरा जा सकता है। इस प्रयोगमें प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$४ उ_२ ओ + ३ लो = लो_३ ओ_४ + ४उ_२$$

$लो_३ ओ_४$ को लोहेका चुम्बकी ओषिद या लोहोसोलोहिक ओषिद कहते हैं।

मगनीसम् चूर्ण या स्फटम् चूर्ण भी उबलते हुए पानीको विभाजित कर देता है। ताम्र-दस्तम् मिथुन भी इस काममें लाया जा सकता है। तूतियेको गरम करके इसमें दस्तम्का टुकड़ा डालो। दस्तम्के सतहपर ताम्रम् जमा होने लगेगा। टुकड़ेको बाहर निकाललो। इसे ताम्र—दस्तम्

मिथुन कहते हैं। ताम्रम् की उपस्थितिमें दस्तम्का पानीपर इस प्रकार प्रभाव पड़ता है:—

२ द+२ $उ_२$ओ=२ द (ओ उ)$_२$+२ $उ_२$

अम्लसे उपलब्धि

१. प्रयोग शालाओंमें उद्जनके प्राप्त करनेकी सबसे सरल विधि इस प्रकार है। कोई अम्ल लो। बहुधा इस कामके लिये हलका गन्धकाम्ल या हलका उदहरिकाम्ल लिया जाता है। दस्तम्के खुरखुरे टुकड़े अम्लमें डाल दिये जाते हैं। बस उद्जन ज़ोरोंसे निकलने लगता है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

१. २ $उ_२$ ग $ओ_४$+२ द=२ द ग $ओ_४$+२$उ_२$
(दस्त गन्धेत)

२. २ उ ह+द=द $ह_२$ +$उ_२$
(दस्त हरिद)

इस कामके लिये दस्तम्के खुरखरे टुकड़े लेने चाहिये। खुरखुरे टुकड़े लेने का कारण यह है कि अम्लके प्रभावके लिये दस्तम्की अधिक सतह मिलती है। दस्तम् बहुत स्वच्छ न होना चाहिये। साधारण दस्तमकी अशुद्धियाँ गन्धकाम्लके विभाजनमें सहायक होती हैं।

प्रयोगके लिये काँचकी बोतल लो। इसके मुंहमें एक काग लगादो जिसमें दो छेद हों। बोतलकी पेंदीमें दस्तम्के टुकड़े रख दो। कागके एक छेदमें लम्बी नली वाला पेचदार कीप लगा दो। इसकी नली बोतलकी पेंदीके पास तक पहुंचती होनी चाहिये। कीपमें हलका अम्ल भर दो। कागके दूसरे छेदमें एक वाहक नली मोड़कर लगा दो। इस नलीके बाहरका मुड़ा हुआ सिरा पानीकी टबमें डुबाओ। इसके मुँह पर पानीसे भरकर बेलन उलटे खड़े करो। कीपका पेंच दबाकर बूँद बूँद करके दस्तम्के ऊपर अम्ल डालो। उद्जन वाहक नलीमें होकर बेलनमें भरने लगेगा।

आरम्भके उद्जनमें वायुका ओषजन भी मिश्रित रहेगा। अतः अच्छा यह होगा कि थोड़ा-सा उद्जन निकल जाय। अब कई बेलन उद्जनसे भरे जा सकते हैं। यह सावधानी रखनी चाहिये कि उद्जनकी बोतलके निकट किसी प्रकारका दग्धक, लैम्प इत्यादि न हो, नहीं तो उद्जन जल उठेगा और आग लग जानेका भय होगा।

(२) दस्तम्के स्थानमें लोह-चूर्ण भी लिया जा सकता है। पर ऐसा करनेसे अधिक शुद्ध उद्जन प्राप्त नहीं हो सकता है क्योंकि लोहेमें बहुतसी अशुद्धियाँ विद्यमान रहती हैं। लोहेके साथ प्रक्रिया इस प्रकार है:—

$उ_२$ ग $ओ_४$+लो=लो ग $ओ_४$+$उ_२$
(लोहस-गन्धेत)

२ उ ह+लो =लो $ह_२$+$उ_२$
(लोहस हरिद)

क्षारोंसे उपलब्धि

सैन्धक उदौषिद या पांशुज उदौषिदके घोलमें दस्तम् या स्फटम् सरलतासे घुल जाते हैं। और गरम करनेसे उद्जन निकलने लगता है। प्रक्रियायें इस प्रकार हैं:—

१. द+२ पां ओ उ=$पां_२$ द $ओ_२$+$उ_२$
(पांशुज दस्तेत)

२. २ स्फ+२ सै ओ उ+२ $उ_२$ ओ
=२ सै स्फ $ओ_२$ +३ $उ_२$
(सैन्धक स्फटेत)

इस प्रक्रियासे बहुत शुद्ध उद्जन प्राप्त हो सकता है। प्रयोग इस प्रकार किया जा सकता है। एक काँचकी बोतलमें दस्तम्के टुकड़े लो और ३० प्रति शत कास्टिक सोडा (सैन्धक उदौषिद) का घोल इसमें डालो। बोतलमें काग लगाकर एक वाहक नली लगा दो जिसका बाहरी सिरा पानीमें डूबा हो। काग, नली आदि बिलकुल कसी रहनी चाहिये जिससे उद्जन बाहर न निकल आवे। अब सावधानीसे गरम करो और उद्जनको इकट्ठा कर लो।

यदि दस्तम्के साथ साथ लोहेका बुरादाभी

डाल दिया जाय तो उदजन बड़ी शीघ्रतासे उत्पन्न होता है। लोहेके बुरादेमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह क्षारके विभाजनमें दस्तम्को केवल सहायता मात्र देता है।

भौतिक गुण

शुद्ध उदजनका न तो कोई रंग है, न स्वाद और न गन्ध। यह प्राण लेनेमें सहायक नहीं होता, अर्थात् जीव केवल उदजनमें जीवित नहीं रह सकता है। पर यह विषैला नहीं है। इसके समान कोई अन्य वायव्य हलका नहीं है। एक लीटर उदजनका सामान्य दबाव और तापक्रम पर भार ०.०८६८७ ग्राम है। यह पानीमें बहुत कम घुलनशील है। शून्य तापक्रमपर इसकी घुलनताका गुणक केवल ०.०२१५ है। अन्य वायव्योंकी अपेक्षा यह तापका अच्छा चालक है। वायुकी अपेक्षा यह पांचगुना चालक है।

उदजन द्रवीभूत भी किया जा सकता है। इसका विपुल दबाव १२.८ वायुमंडल और विपुल तापक्रम—२३६.४° है। द्रव उदजन बेरंगका पारदर्शक द्रव है। इससे कम घनत्वका कोई द्रव नहीं पाया गया है। ७४५.५२ मि. मी दबाव और −२५२.८° तापक्रम पर इसका घनत्व ०.०७१०५ है। यह −२५२.७८° तापक्रम पर उबलने लगता है और −२५६° तापक्रम पर ठोस हो जाता है।

उदजनके रासायनिक गुण

उदजनके पास दियासलाई जलाकर लानेसे यह धीरे धीरे जलने लगेगा। यदि उदजन शुद्ध नहीं है और इसमें वायु मिला हुआ है तो दियासलाई लानेपर बड़े ज़ोरका विस्फुटन होगा। उदजनके जलनेका तात्पर्य यह है कि यह बड़े ज़ोरसे ओषजनमें संयुक्त होकर पानी बना रहा है—

$$२ उ_२ + ओ_२ = २ उ_२ ओ$$
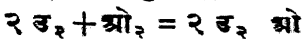
एक सूखी नलीमें उदजन भरो और इसे जलाओ। नलीकी दीवारपर पानीकी बूँदें दिखाई पड़ेंगी।

उदजन हरिन्, प्लविन् आदिसे भी बड़ी शीघ्रतासे संयुक्त होकर उदहरिकाम्ल, उदप्लविकाम्ल बनाता है।

$$उ_२ + ह_२ = २ उ ह$$
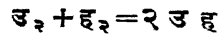
उदजन स्वयं तो जल जाता है पर उदजन दूसरी चीज़ोंके जलनेमें साधक नहीं होता। दियासलाई जलाकर उदजनसे भरे बेलनमें जल्दीसे नीचे डाल दो। दियासलाई बुझ जावेगी।

उदजन दूसरे यौगिकोंमेंसे ओषजन खींच सकता है। इस क्रिया को अवकरण (reduction) कहते हैं। जैसे यदि ताम्रओषिद्‌को गरम करके उस पर उदजन प्रवाहित किया जाय तो ताम्रम् प्राप्त होगाः—

$$२ ता ओ + २ उ_२ = २ ता + २ उ_२ ओ$$

इस प्रकार उदजनमें अवकरणके गुण हैं।
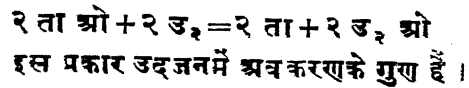
अङ्क गणना

[लेखक श्रीयुत बी. यल. जैन, चैतन्य, सी. टी.]

द्या के दो मुख्य भेदों—शब्द जन्य विद्या और लिङ्ग जन्य विद्या—मेंसे शब्दजन्य विद्याके अन्तर्गत जो अक्षरात्मक शब्दजन्य-विद्याके अनेक भेद हैं उन मेंसे ही एक मुख्य भेद गणित-विद्याभी है। इस गणित-विद्या कोही कभी कभी अङ्कविद्या भी बोलते हैं जिसकी अङ्कगणित बीज गणित, रेखा गणित क्षेत्रगणित आदि कई शाखा और उपशाखाएँ हैं।

गणित-विद्या या अङ्कविद्याकी उपर्युक्त अनेक शाखाओंमेंसे अङ्क-गणितका जो अङ्क-गणना मूल अङ्क है, इस लेखमें उसीके सम्बन्धमें कुछ संक्षिप्त रूपसे लिखना अभीष्ट है।

"अङ्कगणना" अङ्कगणितका वह अंग है जिसमें शून्यसे लेकर उत्कृष्ट अनन्त (Infinity) तककी संख्याओंपर विचार किया जाता है। इस अंङ्कगणना कोही "संख्यामान" या "गणिमान" भी कहते हैं। "अङ्कगणना" लौकिक और लोकोत्तर भेदोंसे निम्नोक्त दो प्रकारकी है:—

१. लौकिक अंकगणना

"लौकिक अङ्कगणना" को हम अनेक देशवासी मनुष्योंने अपनी अपनी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर अपनी अपनी बुद्धि बविचारानुसार कुछ स्थानों (Places तक यथा आवश्यक अनेक प्रकार या रीतिसे नियत करलिया है। उदाहरणके लिये कुछ विद्वानोंकी नियत संख्याकी इकाई, दहाई निम्न प्रकार है:—

(१) अरबी फ़ारसी संख्या—इकाइ, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दसहज़ार, लाख, दसलाख; केवल ७ स्थान प्रमाणहैं अरबी नाम हैं—अहाद, अशरात, मिआत, अल्फ़, उलूफ़, लक, लुकूक। फ़ारसी नाम हैं—यक, दह, सद, हज़ार, दह-हज़ार, लक, दह-लक।

(२) लीलावती—एक, दश, शत, सहस्र; अयुत, लक्ष प्रयुत, कोटि, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महा-पद्म, शंकु, जलधि, अन्त्यज, मध्य, परार्ध; १८ स्थान प्रमाण।

(३) हिन्दी उर्दू—इकाई, दहाई, सैकड़ा, सहस्र, दश-सहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि, दश कोटि, अर्ब, दस अर्ब, खर्व, दश खर्व, नील, दश नील, पद्म, दश पद्म, शंख, दश शंख; १९ स्थान प्रमाण।

(४) श्री महावीराचार्यकृत "गणितसारसंग्रह"* एक, दश, शत, सहस्र, दस सहस्र—लक्ष, दश, लक्ष, कोटि, दश कोटि, शत कोटि, अर्बुद, न्यर्बुद, खर्व, महाखर्व, पद्म, महापद्म, क्षोणी, महाक्षोणी, शंख, महा शंख, क्षित्य, महा क्षित्य, क्षोभ, महा क्षोभ; २४ स्थान प्रमाण।

(५) अंग्रेज़ी भाषा—इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार, दश हज़ार, सौ हज़ार, मिलियन, दश मिलियन, सौ मिलियन, हज़ार मिलियन, दश हज़ारमिलियन, सौ हज़ार मिलियन;

---

* गणक चक्रवर्ती "श्री महावीराचार्य" अपने समयके गणित विद्याके एक सुप्रसिद्ध जैन विद्वान थे। लीलावती और सिद्धान्त-शिरोमणि आदि कई गणित व ज्योतिष ग्रन्थोंके रचयिता गणक चक्र-चूडामणि ज्योतिर्विद श्री भास्कराचार्यसे (जिनका समय सन् १११४—११८४ ई० है) यह श्री महावीराचार्य लगभग ३०० वर्ष पूर्व सन् ८१४—८७८ ई० में दक्षिण-भारतमें राष्ट्रकूट बंशी शर्वदेव महाराज-अमोघवर्ष नृपतुंग" के शासनकालमें विद्यमान थे। इन जैनाचार्य रचित ग्रन्थमेंसे एक "गणितसारसंग्रह" नामक गणित ग्रन्थ है जो अंग्रेजी अनुवाद सहित मद्रास सरकारकी आज्ञासे मद्रास गवर्न्मेंट प्रेस (Madras government press) से सन् १९१२ ई० में प्रकाशित हो चुका है। गणित-विद्याका यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ जो प्राचीन महान जैन गणित ग्रन्थोंका बड़ा उत्तम और उपयोगी सार है ११३१ संस्कृत छन्दोंमें संकलित है, जो दो अँग्रेजी भूमिकाओं व अँग्रेजी अनुवाद सहित तथा विषय सूची, कठिन पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ, अंक-संदृष्टि वाचक शब्दोंकी व्याख्या और बहुतसे फुटनोटों आदि युक्त २०×२६ साइजके अठपेजी ५२० बड़े पृष्ठोंपर सजिल्द प्रकाशित हुआ है। साइज और ग्रन्थ परिमाण आदिको देखते हुए इसका मूल्य केवल २।) बहुत कम रख गया है। इस ग्रन्थके अँग्रेजी अनुवाद कर्ता हैं मि० रङ्गाचार्य, एम. ए., रावबहादुर जो मद्रास प्रेसीडेंसी कॉलिजके संस्कृत व दार्शनिक प्रोफ़ेसर व पूर्वी हस्तलिखित ग्रन्थोंके सरकारी ग्रन्थालयके मुख्य ग्रन्थाध्यक्ष हैं। दो भूमिका लेखकोंमेंसे एक तो यही प्रोफ़ेसर महाशय हैं और दूसरे डाक्टर डैविड यूजीन स्मिथ (Dr. David Eugine Smith, professor of Mathe atics in Teachers College, Columbia

बिलियन, दश बिलियन, सौ बिलियन, हज़ार बिलियन, दशहज़ार बिलियन, सौ हज़ार बिलियन; ट्रिलियन दश ट्रिलियन, सौ ट्रिलियन, हज़ार ट्रिलियन, दश हज़ार ट्रिलियन, सौ हज़ार-ट्रिलियन। २४ स्थान प्रमाण।

यह इकाई, दहाई आवश्यकता पड़नेपर "क्वाड्रिलियन" आदि शब्दों द्वारा उपर्युक्त रीतिसे छः छः स्थान प्रमाण २४ स्थानोंसे कुछ आगे भी बड़ी सुगमतासे बढ़ाई जा सकती है।

(६) उत्संख्यक गणना—इसकी इकाई दहाई, अत्यन्त अधिक अर्थात् चार सौ स्थान प्रमाण (400 places) तक है। यह इकाई दहाई एक एक नवीन शब्द द्वारा छः छः स्थान प्रमाण बढ़ने और २४ स्थानसे भी आगे को दूरतक बढ़ सकने वाली अँग्रेज़ीकी इकाई, दहाईके समान केवल एक एक ही संख्यावाचक शब्द द्वारा बीस बीस स्थान प्रमाण बढ़कर ४०० स्थानतक नियत है और इसी प्रकार ४०० स्थानसे आगे को भी यथा आवश्यक बहुत दूरतक अर्थात् सहस्रों स्थान (places) तक बड़ी सुगमतासे बढ़ाई जा सकती है।

जिस प्रकार अँग्रेज़ी की इकाई दहाईमें पहिले छः स्थान थाउज़ेंड्ज़ (thousands) के, दूसरे छः स्थान मिलियन्ज़ (Millions) के, तीसरे छः स्थान बिलियन्ज़ (Billions) के, चौथे छः स्थान ट्रिलिमन्ज़ (Trillions) के हैं और पाँचवें छटे आदि छः छः स्थान काड्रिलियन्ज़ (quadrillions) एक एक शब्द द्वारा अन्य भी कुछ स्थानोंतक बढ़ाये जासकते हैं, ठीक उसी प्रकार इस उत्संख्यक इकाई दहाईमें पहिले बीस स्थान परार्द्ध के, दूसरे २० स्थान शंख के, तीसरे २० स्थान महाशंख के, चौथे २० स्थान महामहाशंख के, पांचवें २० स्थान महानशंख के, छुठे २० स्थान महामहानशंख के, सातवें २० स्थान महानमहानशंख के, आठवें २० स्थान परमशंख के, नवें २० स्थान महापरमशंख के, दशवें २० स्थान महामहापरमशंख के, ग्यारहवें २० स्थान महानपरमशंख के, बारहवें २० स्थान महानपरमशंख के, तेरहवें २० स्थान महानमहानपरमशंख के, चौदहवें २० स्थान ब्रह्मशंख के, पन्द्रहवें २० स्थान महाब्रह्मशंख के, सोलहवें २० स्थान महामहाब्रह्मशंख के, सत्रहवें २० स्थान महानब्रह्मशंख के, अठारहवें २० स्थान महामहानब्रह्मशंख के, उन्नीसवें २० स्थात महानमहान ब्रह्मशंख के और बारहवें २० स्थान परमब्रह्मशंखके हैं।

इस प्रकार ४०० स्थान (400 places) तक इस उत्संख्यक गणनाकी इकाई दहाई है

इस लौकिक उत्संख्यक गणनाकी इकाई दहाई के मूल २० स्थान अर्थात् पहिले २० स्थान जो "परार्द्ध" के २२ स्थान हैं निम्नोल्लिखित हैं :—

एक, दश, शत, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, दशलक्ष, कोटि दशकोटि, अर्बुद, दशअर्बुद, खर्ब, दशखर्ब, नियल, दशनियल, पद्म, दशपद्म, परार्द्ध दशपरार्द्ध; शत परार्द्ध।

इसके आगेसे शंख के २० स्थान शंख, दश-

University Neyw York हैं। येदोनों महानुभाव अपनी २४ पृष्ठों में लिखी हुई सविस्तर दोनोंही भूमिकाओंमें "ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त" के रचयिता "श्री ब्रह्मगुप्त," सूर्य-सिद्धान्तके टीकाकार व अन्य कई गणित ज्योतिष ग्रन्थोंके रचयिता "श्री आर्यभट्ट," और सिद्धान्त शिरोमणि आदि कई ग्रन्थोंके रचयिता "श्री भास्कराचार्य" आदिका समय-निर्णय और उनके रचे ग्रन्थोंकी तुलना "श्री महावीराचार्य रचित "गणितसार संग्रह" के साथ करते हुए कई स्थलोंपर "श्री महावीराचार्य" के कार्यकी अधिक सराहना करते और उदाहरण दे देकर गणित सम्बन्धी इनके कई करण सूत्रों (Formulas) को अधिक सुगम, अधिक सही और पूर्ण बतलाते हैं। अतः "विज्ञान" के पाठकोंमें से गणित प्रेमी संस्कृत या अँग्रेज़ी भाषाके ज्ञाता इस प्राचीन गणित ग्रन्थको मैनेजर, मद्रास गवर्नमेंट प्रेससे मंगाकर एकबार अवश्य अवलोकन करें।

शंख, शतशंख, सहस्रशंख, दशसहस्रशंख, लक्षशंख दशलक्षशंख कोटिशंख, दशकोटिशंख, अर्बुदशंख दश अर्बुदशंख, खर्वशंख, दशखर्वशंख, नियलशंख, दश नियल शंख, पद्मशंख, दशपद्मशंख, परार्द्धशंख, दश-परार्द्धशंख, शतपरार्द्धशंख हैं। यह शंख शब्द के पहिले प्रथम के २० स्थानोंके नाम क्रमसे जोड़ देनेसे बन जाते हैं। इसी प्रकार महाशंख शब्दके पूर्वमें यही प्रथमके मूल २० स्थानोंके नाम क्रम से जोड़ देनेसे अगले २० स्थानोंके नाम (upto 60 places बन जाते हैं। इत्यादि, इसी रीति से ४०० स्थानतकके सब नाम हैं।

इस उत्संख्यक गणना के ४०० स्थानतक तो क्या सौ पचास स्थानतककी भी साधारणतः अपने सांसारिक कार्योंमें यद्यपि हमें कोई आवश्यकता नहीं पड़ती तथापि उच्च कोटिके गणित या ज्योतिष (Mathematical or astronomical सम्बन्धी सूक्ष्म विचारोंमें मुख्यतः प्राचीन जैन ग्रन्थोंमें, जहां कालमान, क्षेत्रमान आदि (Time & spac &c.) पर बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया गया है और वैज्ञानिक रीतिसे विश्वंभरकी रचनाकी अनेक प्रकारसे नाप तोल और परिमाण आदिका बड़े विस्तारके साथ निर्णय है और जिनमें विश्वंभरके अगणित चन्द्र या सूर्य-परिवारों (Innumerable solar systems) के विस्तार आदि का निरूपण हैं, केवल इस उत्संख्यक गणना की ही नहीं किन्तु इससे भी संख्यातीत असंख्य गुणित से भी अधिककी अलौकिक या लोकोत्तर गणनाका भी स्थान स्थानपर काम पड़ता है। 'विज्ञान' के पाठकों की यदि इस विषयकी ओर कुछ रुचि होगी तो अगले किसी अङ्क में "लोकोत्तर अङ्कगणना" का भी संक्षिप्तरूपसे दिग्दर्शन कराया जायगा।

भैरवी।

[श्री पं० हरिनारायण मुकर्जी]

कुछ दिनों पहिले मैंने प्रयागके किसी संगीत सभामें एक भैरवी सुना था परन्तु गायक ने केवल उसकी आस्थायी और अन्तरा गाया था। किसी किसी पुस्तकमें भी मैंने इस विशेष गीत को इसी असम्पूर्ण अवस्थामें पाया था। गुरुके समीप मैंने यही सीखा था कि चार तुक से ही ध्रुपद हो सकता है परन्तु आज कल की पुस्तक व सभाओंमें दो तुकका ध्रुपद सुन कर मुझे बड़ा शोक हुआ। इस प्रकारकी भ्रमपूर्ण शिक्षाके प्रचारसे भारतीय संगीतकी हानि हो रही है कि नहीं इसका विचार सहजही में हो सकता है।

संगीत रत्नाकरके मतानुसार भैरवीका स्वर-व्याख्यान यह है—

धांशन्यास ग्रहातार मन्द्रगान्धार शोभिता।
भैरवी भैरवोपांगं समशेषस्वरा भवेत्॥

संगीत पारिजात का मत यह है—

सरोवरस्थे स्फटिकस्यमंडपे
सरोरुहे शंकरमर्चयन्ती।
वीणा विनोदी कमलायताक्षी
पीताम्बरा धारिणी भैरवीयं॥

इसी मत के अनुसार भैरवी का ठाट सम्पूर्ण है। यथा—स र ग मा प धा न, परन्तु आजकल इन दोनों मतों का कोई भी गाना सुनने में नहीं आता। इस देशमें कोमल ठाटकी भैरवी ही गाई जाती है। परन्तु उसमें भी उक्त प्रकार की अशुद्धि व असम्पूर्णता दिखाई पड़ती है।

जिस भैरवीके विषयमें पहिले कहा गया था वह

यह है—शुद्ध सम्पूर्ण। भैरवी।—स रा गा मा प धा ना। चौताल।

गीत।

जो तुम रचेउ समान।
दया ते नाना प्रकार॥
ताहे न विसरो सदा हरि गुण गाय गाय॥
जाकी माया निरंकार, कहीं न जात अपरम्पार।
सुरनरमुनि कर विचार, हरि हरि हरि ध्याय ध्याय॥
दुख सुख की अन्त अपार, तुरन्त न कोउ पावे पार।
शुक सनकादि कर अधार ज्ञान हित चित पाय पाय॥
प्रेमदास श्री निवास, पूर्ण घट घट प्रकाश।
जलस्थल त्रिभुवन विलास रहे प्रभु छाय छाय॥

ऊर्द्ध रेखा शिरा—तार।—स गा मा (with | marks above)
विन्दु शिरा—मन्द्र।—पं गां रां

चौताल का ठेका—धाधे (+), दिनताता (०), केटेताग (१), दिनता (०), तेटेकता (२), गदिधेन (३)।

+	०	१	०	२	३
मा मा	गां गा	गा गा	मा गा रा	स रा नां	स स
जो ०	तु म	० ०	र चे उ	० ० स	मा न
प प	मा मा	धा धा	प गा मा प	गा गा	रा स
द या	ते ०	ना ०	ना ० ० ०	प का	० र
	|	| |	| | |	|	
धा धा	ना स	स स	गा रा स ना	स ना	धा प
ता हे	ना ०	वि स	ऐ ० ० ०	स दा	० ०
मा प मा	ना धा प	प प	गा मा	प मा गा	रा स
ह रि ०	गु ण ०	० ०	गा ०	य गा ०	० य
		|	| |	| |	
प प	मा धा	ना स	स स	स स	ना स
ज ०	की मा	या ०	नि रं	० का	० र
| |	| |	| | |		| | |	|
गा गा	गा मा	गा रा स	ना ना	स ना स ना रा	स ना धा प
क ही	न जा	० ० त	अ प	रं ० ० ० ०	पा ० ० ०
प प	प प	प प धा	प ना धा धा	प प	धा मा
सु र	न र	मु नि ०	० ० क र	वि चा	० [illegible]
मा प मा	ना धा	प प	गा मा	प मा गा	रा स
ह रि ०	ह रि	ह रि	ध्या ०	य ध्या ०	० य

गा	गा	गा	गा	मा	गा	मा	मा	मा	मा	मा	मा
दु	ख	सु	ख	की	०	अं	०	त	अ	पा	र
गा	गा	गा	गा	मा	गा	रा	गा	रा	स	स	स
तु	र	त	न	को	उ	पा	वे	०	०	पा	र
धा	प	प	प	प	प	ना	धा	प	पा	धा	मा
शु	क	श	न	का	दि	क	र	अ	०	धा	र
मा	प	धा	प	प	प	गा	मा	प	मा गा	रा	स
ज्ञा	न	हि	त	चि	त	धा	०	य	पा ०	०	य

धा	धा	धा	ना	स	स	गा रा	स	स	स	स	स
प्र	०	म	दा	०	स	श्री •	०	नि	वा	०	स
गा	गा	गा	मा	गा रा	स	रा	स	ना	स	ना धा	प
पू	०	ण	घ	ट ०	०	घ	ट	प्र	का	० ०	श
प	प	धा	प	धा	ना	धा	प	प	प	धा	मा
ज	ल	स्थ	ल	त्रि	भु	व	न	वि	ला	०	स
मा	पमा	ना	धा	प	प	गा	मा	प	मा गा	रा	स
र	हे ०	प्र	भु	•	०	छा	०	य	छा ०	०	य

भारतीय कृषि-व्यवसाय

लेखक—श्री पं० शीतलाप्रसाद जी तिवारी 'विशारद'
असिस्टेन्ट फार्म सुपरवाइज़र इलाहाबाद अग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट नैनी।

सृष्टि के समस्त राष्ट्रों की एक दूसरे के प्रति प्रतिदिन बढ़ती हुई वैमनस्यताका प्रधान कारण प्रत्येक देशोंका निजी व्यवसाय है, जिस प्रकारसे हरेक प्राणी को जीवन निर्वाह के लिये किसी न किसी व्यवसाय का सहारा लेना ही पड़ता है, ठीक उसी प्रकारसे सृष्टिके उन समस्त राष्ट्रों को जो कि राष्ट्रके नाम से सम्बोधित करनेके योग्य हैं, राष्ट्रीय-जीवन व्यतीत करनेके लिये तथा राष्ट्रको औरों की अपेक्षा शक्तिशाली बनानेके लिये अपने व्यवसायकी उन्नति तथा संरक्षता में लीन रहना पड़ता है। इसी के फल-स्वरूप हम नित्य प्रति अपनी आंखों से देख रहे हैं कि जहाँ पाश्चात्य राष्ट्रोंके व्यवसाय को किसी भी प्रकारसे धक्का पहुँचनेकी संभावना प्रतीत हुई-अथवा उनके व्यवसायको धक्का लग गया तो तुरन्त ही राष्ट्रके एक कोनेसे दूसरे कोने तकमें खलबली मच जाती है और व्यापारी-वर्ग इसका भयङ्कर परिणाम देशके लिये दिखला कर राष्ट्र के राजनीतिज्ञोंका मस्तिष्क चिंता-सागर में डाल देता है। इन्हीं राजनीतिज्ञों द्वारा देशका व्यवसाय सदैव उन्नतिके शिखर पर चढ़ता रहता है। जिससे राष्ट्र शक्तिशाली होकर अन्य राष्ट्रोंके व्यवसाय पर अपना आधिपत्य जमा कर, उस राष्ट्रको मटियामेट कर देता है। ठीक यही दशा इस समय भारत की है। भारतका सारा व्यवसाय योरोपवासियोंके हाथों में चला गया है। उन्हींका बनाया हुआ हम कपड़ा पहिन रहे हैं, उन्हींकी बनायी हुई अधिकांश वस्तुओंको हम अपने नित्यके व्यवहार में लाते हैं। इसी कारण वश हमारे देशका सारा व्यवसाय निर्जीव होगया है।

वास्तवमें भारतका मुख्य व्यवसाय 'कृषि' है और सारे व्यवसाय गौण हैं, भारत सदैव से ही अपने प्रधान व्यवसाय के ही बल पर संसार में अपनी सत्ता तथा धाक को जमाए हुये था। इसी व्यवसाय की बदौलत भारत शक्तिशाली था। परन्तु अब धीरे-धीरे वह बात भी जाती रही, भारतीय कृषि-व्यवसाय इस समय संसारके अन्य राष्ट्रोंकी अपेक्षा अत्यन्त ही हीन दशामें है। यदि इस हीनावस्थाको मृतकावस्था कहा जाय तो मेरी समझ में कुछ अत्युक्ति न होगी। जिस प्रकारसे भारतके अन्य व्यवसायों पर विदेशी व्यवसायी-वर्ग ने अपनी धाक जमा ली है, उसी प्रकार से यदि हम सचेत होकर अपने इस व्यवसाय को भी तथा उन्नत औरोंके मुक़ाबिले में बलिष्ट न बना लेंगे तो बहुत कुछ संभव है कि निकट भविष्य में ही अन्य राष्ट्र वालों का वैज्ञानिक-कृषिका व्यवसायी समुदाय हमारे इस व्यवसाय पर भी अपना प्रचंड आतंक जमा बैठे।

उपर्युक्त संभावना मैंने इसलिये प्रकट की है कि अभी थोड़े दिन भी व्यतीत नहीं हो पाये हैं, जब कि हमारेही देशसे शक्कर आदि पदार्थ पाश्चात्य देशोंकी बजारोंमें पहुँचकर भी इतने सस्ते भाव बिका करते थे कि उक्त देशवासी भारतको ही बनी हुई शक्कर खरीदते थे, इसी प्रकार अनेकों प्रकार की कृषि द्वारा प्राप्त होने वाली बहुतसी वस्तुएँ भारतीय व्यापारियों द्वारा विदेशोंमें जाकर बिका करती थीं। अब अवस्था बिलकुल विपरीत है—जावा इत्यादि स्थानों की बनी हुई शक्कर हमारे देश में आकर इतनी सस्ती पड़ती है कि हमारे देशकी बनी हुई शक्करों का भाव उनसे कुछ न कुछ मँहगा रहता ही है।

अर्थलोलुप देशका व्यवसायी-वर्ग भी दिनों दिन विदेशी व्यापारोंसे अपना घना सम्बन्ध जोड़कर बहुत सा धन विदेशोंको भेज रहा है; जिसमें से थोड़ा ही धन व्यक्ति-गत रूप में वह पाता है

इस व्यवसाय से वास्तव में देश को हानि है। परंतु तो भी व्यापारी वर्ग करें क्या? जब भारतका सम्बन्ध विदेशी राष्ट्रों से इतना घना हो गया है कि सारी बातोंमें घोर संघर्षण हो रहा है तो भला कृषि-व्यवसायही अकेला क्यों बच जाये? इसे भी एक न एकदिन पूर्ण रूपसे मैदाने जंगमें उतरना पड़ेगा और सांसारिक व्यावसायिक होड़मे बाजी मार ले जानेके लिये अपनी सामर्थ्यका परिचय देना होगा।

वर्तमान कालीन जगत में दो ही राष्ट्रों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। शेषअन्य राष्ट्रों का मुख्य व्यवसाय कृषि नहीं है। यदि किसी राष्ट्र का व्यवसाय कृषि के कारण प्रतिष्ठित हो गया है, तो वह अपनी कौशलता के कारण, इस कारण उस देशका प्रधान व्यवसाय कृषि नहीं कही जा सकती। उपर्युक्त राष्ट्रों का नामकरण, अमेरिका और भारतसे किया जाता है, जिनका कि प्रधान व्यवसाय कृषि है।

अमेरिका ने तो अपने इस व्यवसाय को इतना उन्नतिशील बना लिया है कि उसीके बदौलत आज वह संसारके अच्छे २ राष्ट्रोंका राजा बन बैठा है। बहुत से राष्ट्र उसके ऋणी हैं—और उस के ऋण के बोझ से दबे जा रहे हैं। भारत राष्ट्रभी ऋण से मुक्त नहीं है उसके ऊपर भी ऋण है। उसे भी अपने व्यवसायके ही द्वारा चुकाना होगा। संसार के शेष अन्य राष्ट्रों ने भी अपने इस व्यवसाय को इतना उन्नत बना लिया है कि यदि औसर पड़ जाय तो अपने देश की 'कृषि' से वे अपना काम चला ले जॉयगे। उन्हें अन्य देशों के मुंह ताकने की आवश्यकता न पड़ेगी। परन्तु भारत की कृषि तथा कृषि सम्बन्धी व्यवसाय दिनों-दिन अवनति के गर्त में गिरता जा रहा है। इसके प्रधान २ कारणों में से कुछ निम्न लिखित हैं।

जब हम भारतीय कृषि-व्यवसाय पर और विदेशी कृषि-व्यवसाय पर तुलनात्मक दृष्टि डाल कर विचार करते हैं तो हमें दोनों के व्यावसायिक उद्देशोंमें जमीन आसमान का अन्तर दिखलाई पड़ता है। भारत में सदैवसे ही कृषिका उत्तम व्यावसायिक उद्देश्य से नहीं किया जाता था। कृषक-समुदाय कृषि-कर्म को केवल अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के हेतु ही करता था—अर्थात् कृषि-व्यवसाय द्वारा वह सम्पत्ति-शाली पुरुष हो जाने की चेष्टा में कभी भी निमग्न नहीं देखा गया। क्योंकि भारतीय कृषिकों की कृषि-सम्बन्धी सारी रीति-रिवाजें अभी तक वहीहैं जो प्राचीन कालमें थीं, इन रीति-रिवाजों में अभी तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ वही दशा कृषकों के कृषि-सम्बन्धी उद्देश्योंमें है। जब किसी भी कृषक के कृषि व्यवसाय सम्बन्धी उद्देश्यकी खोजकी जाती है तो यही पता चलता है कि उसकी यही भावना रहती है कि हमारी कृषिमें इतनी उपज हो जाय कि हम वर्ष भर सारे आवश्यक कार्य तथा सारे पारिवारिक कार्य्य इसी उपज के द्वारा निबाह सकें इसीकी पूर्ति को वह धन्य समझता है। शिक्षाके अभावसे वह कभी यह विचारही नहीं सकता कि हम इसी व्यावसायसे ही लखपती हो सकते हैं। इसके विरुद्ध विदेशी कृषकोंके उद्देश्यों में और ही बात पाई जाती है। वह इसी व्यवसाय से सम्पत्तिशाली होनेका प्रयत्न करते हैं। कृषि को व्यावसायिक ढंग पर करनेकी सदैव चिन्ता करते हैं। यही कारण है कि विदेशी कृषकों द्वारा विदेशों में कृषि कर्म्मको पूर्ण रूप से व्यावसायिक ढंग प्राप्त हो गया है।

अमेरिकादि सारे विदेशी राष्ट्रों में कृषि-कर्म को पूर्ण रूपसे वैज्ञानिक-जामा पहिना दिया गया है। वैज्ञानिक प्रभुताके प्रतापसे ही विदेशी राष्ट्रोंका कृषि-व्यवसाय आज उन्नतिके शिखर पर दिखाई दे रहा है। उक्त राष्ट्रोंके सारे कृषि कर्म्मों में पूर्णरूपसे वैज्ञानिक रीति रस्मोंका तथा वैज्ञानिक कृषि यन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है। इसके प्रतिकूल भारतकी कृषि अपनी पुरानी ही लीक पर घसिटी हुई चली जारही है। उसमें वैज्ञानिक रीतियोंका अनुकरण तथा प्रयोग करना तो दूर रहा अभी तक उपयोगी तथा उन्नति-प्राप्त वैज्ञानिक कृषि पत्रों का प्रचार भी नहीं हो पाया है। विदेशी राष्ट्रों की कृषि-अवस्था की

तुलना यदि भारतके कृषि-अवस्था सेकी जाय तो यही कहना पड़ेगाकि अभी भारतकी कृषि जंगली अवस्थामें ही है।

विदेशी राष्ट्रोंका सारा व्यवसाय शिक्षित जनताके हाथों में है; यहां तक की कृषि-क्षेत्रोंमें काम करनेवाले एम. एस. सी. और बी. एस. सी से कम पढ़े-लिखे हुये नहीं होते। यह दशा तो साधारण कृषि-फार्मों की विदेशोंमें बहुतसे कृषि-क्षेत्रऐसे हैं जिनपर विशेष रूप ही कृषि-सम्बन्धी विषयों का अनुसंधान तथा आविष्कार किया जाता है, जिसके द्वारा दिनों-दिन उनकी कृषिमें निरन्तर उन्नति होती जा रही है। इसके सिवाय पश्चिमी राष्ट्रोंकी सरकार भी 'कृषि' व्यवसाय को उन्नतिशील बनाने के हेतु बहुत सा धन व्यय किया करती है। उक्त राष्ट्रों में इस धनका प्रजा द्वारा सदुपयोग भी किया जाता है और उनकी खोजों तथ राम्रों को प्रजा कार्य्यरूपमें परिणित करके उसकी सच्चाईकी जाँचकर लेती हैं। साथ ही साथ वहाँ का सरकारी कृषि-विभाग भी निरन्तर इस उद्योगमें लगा रहता है। कि प्रजा उनके विशद कार्य्यों द्वारा लाभ प्राप्त करने में दत्तचित्त रहे।

भारत का कृषि-व्यवसाय विशेषतथा वर्तमान काल में अशिक्षित जनताके हाथोंमें हैं। कृषि कर्म्मके करने वाले अधिकतर स्त्रियां, बच्चे और बुड्ढे लोगहैं। कृषकों का युवक-समुदाय अधिकतर इस व्यवसाय से मुंह मोड़कर शहरों में जाकर गुलामीके फंदेमें पड़ जाता है। विदेशी प्रजाकी भांति, हमारे देश की प्रजा में ऐसे कृषि-क्षेत्रों का अभाव ही है, जिसमें नई-नई बातों की खोज की जाती हो। भारत सरकार द्वारा स्थापित प्रत्येक प्रान्तोंके कृषि-विभागों द्वारा जो कुछ कार्य्य किया जाता है। वहकेवल रिपोर्टों में दिखानेके लिये है वास्तवमें उससे प्रजाको किसी भी प्रकारका लाभ अभी पहुँचा, प्रजा उससे लाभ ही क्या प्राप्तकर सकती है? जब कि उनमें इतनी भी आकर्षकशक्ति नहीं हैं कि वह अपने प्रभावसे अपने पासके ही कृषकोंपर अपना कुछ प्रभुत्व जमा सकें।

भारत में इस व्यवसायको शिक्षाके हेतु अभी तक पर्याप्त रूप में कार्य्य नहीं किया गया है। यह बात दूसरी है कि दिखावेके अथवा राज्य शासन प्रणालीको उत्तम सिद्ध करने के हेतु लगभग प्रत्येक प्रान्तोंमें इस शिक्षा के हेतु एकाध शिक्षालय अवश्य स्थापित कर दिये गये है। जिसमें गहरी तनख्वाह पाने वाले सरकारी कर्म्मचारी अधिकतर विदेशी पद्धित के अनुसार शिक्षा देकर अपने विभागका कार्य्य संचालन करने के हेतु गुलाम ठोंक ठोंक कर सीधे कर लेते हैं। इन शिक्षालयों में से निकले हुयेविरले ही इस व्यवसाय को स्वतंत्र रूपसे करके अपना तथा देश का कुछ कार्य्य संपादन कर सकते हैं। अमेरिका में प्राइमरी स्कूलों से ही कृषि-कर्म्म की व्यावहारिक शिक्षा दी जाने लगती हैं; इसी कारणसे वहांके छोटे छोटे बच्चे भी इस कार्य्यसे रुचि रखते हैं और बड़े होने पर भी इसी व्यवसायसे स्वतंत्रता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं। हमारे देशके प्राइमरी स्कूल के बच्चे जहां मिडिल तक पढ़ गये तहाँ कृषि कर्म्म द्वारा जीवन व्यतीत करना घृणित समझते हैं। चाहे दस रुपये मासिक वेतन पर प्राइमरी स्कूलोंमें 'टीचरी' भले ही करें। यह दोष शिक्षा-प्रणाली का है। यदि हमारे देश में भी अमेरिका की भांति प्राइमरी स्कूलोंसे ही कृषि-शिक्षाकी व्यवस्था करदी जाय, और किसानोंके बच्चोंके लिये यह शिक्षा अनिवार्य्य कर दी जाय तो अवश्य ही बच्चें इस व्यवसाय से लड़कपन ही से रुचि पैदा करने लगेंगे और घरों पर अपने खेतों में नई-नई बातों का प्रयोग करके इसीके द्वारा अपना जीवन व्यतीत करेंगे।

कृषि-सम्बन्धी अन्यान्य वाणिज्यों का तो अभी हमारे देश में श्रीगणेश भी नहीं हुआ है। जैसे "डेरी फारमिङ्ग" अर्थात् दूध देने वाले पशुओं की नस्लों को सुधार कर तथा उनके द्वारा दूध सम्बन्धा सारे पदार्थोंका वाणिज्य, देशमें फैला करके देशवासियों को उत्तम दूध-घी पहुँचाया जाय, और उनकी आय से देश को सम्पत्तिशाही बनाया जाय, एव पशुओंकी

नस्लोंको सुधार कर तथा उनके द्वारा दूध सम्बन्धी सारे पदार्थोंका वाणिज्य, देशमें फैला करके देशवासियोंको उत्तम दूध घी पहुँचाया जाय, और उनकी आयसे देशको सम्पत्ति शाली बनाया जाय, एवं पशुओंकी नस्लोंको सुधारकर अपने देशके पशु-पालन उद्यमसे कुछ लाभ उठाया जाय। विदेशोंमें यह व्यापार अपनी चरमावस्थाको पहुँच गया है। इसी व्यापारकी बदौलत कितने मनुष्योंको वहां रोजी चल रही है और देशवासी शुद्ध दूध-घी प्राप्त कर रहे हैं। जिससे देशका धन-जन दोनों ही वृद्धि प्राप्त कर रहा है।

कृषि-सम्बन्धी वनस्पतियोंके विषयमें निरन्तर खोज तथा सुधार हो रहा है। अच्छे-अच्छे धुरन्धर वनस्पति वैज्ञानिक वर्तमान कालीन फसलोंके बीजों तथा फल, फूलों एवं रेशोंके विषयमें ऐसे आश्चर्य्य-जनक परिवर्त्तन कर डाले हैं कि उनके इस परिवर्तन ही से उन चीजों का मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया है क्योंकि वे पदार्थ अब इन परिवर्तनों के कारण मनुष्य समाज के लिये अधिक उपयोगी हो गये हैं। उदाहरणार्थ अमेरिकन कपासके रेशेमें अमेरिकन वनस्पति-शास्त्रज्ञोंने इतना परिवर्तन कर दिया है कि उसका रेशा हमारी देशी कपास की अपेक्षा लम्बा तथा मुलायम होता है और उससे बना हुआ वस्त्र भी आजकलकी सभ्यता के अनुकूल चमकीला-भड़कीला होता है, इस कारण उसकी मांग मिलों में अधिक है; जिसका फल यह हो रहा है कि उसके मुक़ाबिले में देशी कपासका क्षेत्र-फल दिनोदिन घटता जा रहा है और अमेरिकन कपास का इसके विपरीत बढ़ता जा रहा है।

चुकन्दर इत्यादि से शक्कर पैदा करके 'ईख' की शक्करके भाव को गिरा ही दिया गया है। इसी प्रकार यदि और कोई ऐसी वनस्पति मिल जायगी, जिससे शक्कर अधिकांश में मिल सकेगी तो कुछ दिनों में स्यात् गन्नेकी खेतीही संसारसे उड़ जाय, क्योंकि पश्चिमी देशोंके उन देशोंमें जहां गन्ना नहीं पैदा होता है। इस बातका घोर प्रयत्न किया जा रहा है कि कोई ऐसा पौधा मिल जाय, जिससे हम चुकन्दर की भांति शक्कर पैदा कर सकें। इसी भांति उल्लिखित देशों में व्यावहारिक वनस्पतियोंमें सुधार तथा नई वनस्पतियोंकी खोजका काम बड़े तेजीसे हो रहा है। हमारे देशमें खोज सुधार की कौन कहे जो व्यवहार में आ रही है। वह भी दिनों दिन जंगल दशा में परिवर्तित होती जा रही हैं। इन वनस्पतियोंके सुधारके विषयकी अभी कुछ चर्चाही नहीं है। वास्तव में वनस्पतियोंका सुधार तथा नई नई खोजें, कृषि-व्यवसायकी उन्नतिके प्रधान अंग है।

पश्चिमी देशोंके वे समस्त भूमिके भाग जो किसी समयमें कृषिके लिये अनुपयोगी थे। वर्तमान कालमें वे ही भू-भाग सुधार कर कृषि के लिये उपयोगी बना लिये गये हैं, जिनके द्वारा कृषि व्यवसाय अत्यन्त ही चमक गया है कृषि विज्ञानके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक नियमों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि हर प्रकारकी भूमि सुधारने से कृषि के लिये उपयुक्त हो सकती है; यही नहीं समुद्रोंके किनारे २ अमेरिका में जहाजों तथा नावों पर धान की अच्छी फसल पैदा कर ली जाती है। भारतमें सहस्रों एकड़ भूमि बंजरके नामसे पड़ी है, जिस में कृषि-कर्म्म थोड़े ही सुधारोंके करने से किया जा सकता है और इन भू-भागों द्वारा कृषि का व्यवसाय बढ़ाया जा सकता है। यह कार्य साधारण किसानोंके पहुंचके बाहर है। ऐसे कार्य्योंको सम्पादन करनेके लिये धनी-मानी जमींदारों को आगे बढ़ना चाहिये।

खाद पाँस जो कि कृषि-व्यवसायके अंग हैं इनका उचित रीति से न तो संकालन ही किया जाता है और न व्यवहार ही। भारतवासी [illegible]आग ही साधारणतया साधारण खाद-पांस का [illegible]लिये पर्याप्त अभी तक करते हैं वह भी उन्हीं [illegible] पाँस की मा[illegible] नहीं होती। परंतु विदेशों में [illegible]रण खादों का व्यवबाजार सदैव गर्म रहती है[illegible] है। अब वैज्ञानिक हार तो प्रचुरता से होती हुई खादें भी बाजारों में पद्धतियों द्वारा तैयार कि भारत की बाजारों में पहुंच गई हैं

भी खादों की कमी नहीं है। यह रामायनिक खादें तत्काल ही अपना प्रभाव दिखाती हैं। परन्तु इनके व्यवहार के लिये व्यवहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर लेना पहिले ही से आवश्यक है। खाद-पांस की बहुत सी विदेशी दूकाने भारत से धन खींच रही हैं।

कृषि यन्त्रों के नये-नये नमूने भी हमारे देश में आगये हैं। इनकी दूकाने विदेशी ही तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले मनुष्यों या एजंटों के हाथ में है। इनकी बिक्री भी यथायोग्य होरही है। परन्तु पहिले जैसी आशा की जाती थी वैसी नहीं हुई। क्योंकि भारतवासी कृषक अभी उन वैज्ञानिक कृषि यन्त्रों से भली प्रकार परिचित नहीं हो पाये हैं।

उल्लिखित अनेकों प्रकार के कृषि-सम्बन्धी व्यवसायों के प्रधान २ अंगों का व्यवसाय भारतमें अभी निर्जीव सा होकर पड़ा है। अन्य देशवासी इस व्यवसायके उन्नतिकी पराकाष्ठा कर रहे हैं। कभी कभी चित्तको ऐसा संशय हो जाया करता है कि कहीं ऐसा न हो कि अन्य देशोंका नाज इत्यादि भी हमारे देश से सस्ता पड़े और भारत की बाजारों में आकर हमारे इस व्यवसाय का मटियामेट करदे।

मद्यमज्जिक यौगिक

(Aliphatic Compounds)

विषम योगी या संपृक्त उद-कर्बन

(Paraffins or Saturated Hydro-car bons)

[ले० श्रीसत्यप्रकाश बी. एस. सी. विशारद]

(प)रीक्षा करनेसे पता चलता है कि कर्बनिक-रसायनके यौगिक कई श्रेणियोंमें विभाजित किये जा सकते हैं। इन यौगिकों-के अणुभार निकालने की विधि पहले दी जा चुकी है। समान गुण वाले यौगिकोंको एक ही कक्षामें रखा जा सकता है। इन यौगिकोंके संगठनमें भी कुछ एकता पाई जाती है। उदाहरणतः कर्बन और उदजनसे संयुक्त निम्न यौगिकोंकी परीक्षा करनी चाहिये इनके सूत्र भी यहां दिये जाते हैं:—

[१] सूत्र	—यौगिक	[२] सूत्र	—यौगिक
कउ$_४$	—दारेन	ज्वलीलिन	—क$_२$उ$_४$
क$_२$उ$_६$	—ज्वलेन	अग्रीलिन	—क$_३$उ$_६$
क$_३$उ$_८$	—अग्रेन	नवनीतीलिन	—क$_४$उ$_८$
क$_४$उ$_{१०}$	—नवनीतेन	केलीलिन	—क$_५$उ$_{१०}$
क$_५$उ$_{१२}$	—पंचेन		

यहां दो प्रकारके यौगिक दिये गये हैं। दारेन, ज्वलेन, अग्रेन आदि यौगिकोंके गुण एक समान हैं। और ज्वलीलिन, अग्रीलिन आदि के गुण भी पहले कहे हुए यौगिकों कि गुणों से तो भिन्न हैं पर परस्परमें बहुत कुछ समान हैं। इन दोनों श्रेणियोंके सूत्रों को भी देखनेसे पता चलता है कि प्रत्येक श्रेणीके सूत्रोंमें कोई न कोई नियम अवश्य है। पहली श्रेणीमें प्रत्येक यौगिकमें उदजनके परमाणुओं की संख्या कर्बनके परमाणुओंके दुगनेसे दो अधिक है। अर्थात् यदि पंचेनमें कर्बनके ५ परिमाणु हैं तो उदजनके ५×२+२=१२ हैं। इसी प्रकार नवनीतेनमें कर्बनके ४ परमाणु और उदजनके ४×२+२=१० परमाणु हैं। दूसरी श्रेणीमें उदजनके परमाणु कर्बनके परमाणुओंके ठीक दुगुने हैं। केलीलिनमें कर्बनके ५ परमाणु और उदजनके ५×२=१० परमाणु हैं। अग्रीलिनमें कर्बनके ३ परमाणु और उदजनके ३×२=६ परमाणु हैं।

कर्बन और उदजनसे संयुक्त होकर जो यौगिक बनते हैं उन्हें उदकर्बन-कहते हैं। उदकर्बनोंके भी कई विभाग हैं जिनका वर्णन आगे कहीं दिया जावेगा। कर्बन, उदजन और ओषजन तीनोंके बने हुए भी अनेक यौगिक हैं। इनको भी गुणों और संगठनके अनुसार कई विभागोंमें बांटा जा सकता है जैसा कि निम्न उदाहरणोंमें स्पष्ट है:—

[१] मद्य

कउ$_४$ओ—दारीलमद्य

क उ$_६$ओ—ज्वलील मद्य

क$_३$उ$_८$ओ—अग्नील मद्य

[२] मद्यानार्द्र

कउ$_२$ओ—पिपील मद्यानार्द्र

क$_२$उ$_४$ओ—सिरक मद्यानार्द्र

क$_३$उ$_६$ओ—अग्न मद्यानार्द्र

[३] अम्ल

कउ$_२$ओ$_२$—पिपीलिकाम्ल

क$_२$उ$_४$ओ$_२$—सिरकाम्ल

क$_३$उ$_६$ओ$_२$—अग्नोनिकाम्ल

इन सब यौगिकोंका विस्तृत वर्णन आगे दिया जावेगा। यहां केवल मुख्य उदकर्बनोंकी व्याख्या की जावेगी। नीचेकी सारणीमें कुछ उदकर्बन दिये जाते हैं। इनमें उदजनके परमाणुओंकी संख्या कर्बनके परिमाणुओंकी संख्याके दुगुनेसे दो अधिक है। इनका सामान्य सूत्र (क$_न$ उ$_{२न+२}$)है। इनके कुछ भौतिक गुणभी दिये गये हैं।

परसङ्खन्धिन – क$_न$ उ$_{२न+२}$

सूत्र	नाम	द्रवांक	क्वथनांक	विशिष्ट गुरुत्व
क उ$_४$	दारेन	—१८६°	—१६४°	०.४१५ (क. पर)
क$_२$ उ$_६$	ज्वलेन	—१७२°	—९०°	.४४६ } ०° पर
क$_३$ उ$_८$	अग्नेन		—३८	.५३६ } ०° पर
क$_४$ उ$_{१०}$	सामान्य नवनीतेन		+१°	.६०० } ०° पर
	सम नवनीतेन		– १७°	—
क$_५$ उ$_{१२}$	पंचेन		+३६°	.६३३ (१५° पर)
क$_६$ उ$_{१४}$	षष्ठेन		६९°	.६५७ } ०° पर
क$_७$ उ$_{१६}$	सप्तेन		९८°	.७०० } ०° पर
क$_८$ उ$_{१८}$	अष्ठेन		१२५°	.७१८ } ०° पर
क$_९$ उ$_{२०}$	नवेन		१५०°	.७३३ } ०° पर
क$_{१०}$ उ$_{२२}$	दशेन		१७	.७४१ } ०° पर
क$_{२०}$ उ$_{४४}$	विंशेन	७°	२०५° }*	.७७८ } द्रवांक पर
क$_{३०}$ उ$_{४६}$	सप्त विंशेन	६०°	२५० }*	.७८० } द्रवांक पर
क$_{३५}$ उ$_{७२}$	पंच त्रिंशेन	७५°	३३१° }*	.७८२ } द्रवांक पर
			* १५ मि. मी दबाव पर	

इस सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि उत्तरोत्तर यौगिकके अणुमें (–कउ$_२$)का भेद है। प्रारम्भके कुछ उदकर्बन सामान्य ताप क्रम पर वाष्पव्य अवस्थामें उपलब्ध होते हैं जैसे दारेन, ज्वलेन आदि। पर ज्यों ज्यों कर्बन की संख्या अधिक होती जाती है त्यों त्यों क्वथनांकमें वृद्धि होती जाती है। फिर कुछ यौगिक द्रवावस्था वाले प्राप्त होते हैं। इस श्रेणीके अन्तिम यौगिक ठोस हैं। मिट्टीका तैल (पैट्रोलियम), पैराफीन तैल वैसलीन आदि द्रव उद-कर्बनोंके उदाहरण हैं। मोम ठोस उदकर्बन है।

पैट्रोलियमका व्यवसाय।

आज कल मिट्टीके तैल और पैट्रोलियम के समान उपयोगी बहुत कम पदार्थ हैं। पृथ्वीको कई स्थानों पर गहरे खोदने पर मिट्टीके तैलके कुए पाये गये हैं। बर्मा प्रदेशमें इसका व्यवसाय खूब हो रहा है। बाहर रूस, अमरीका, स्काटलैण्ड आदिमें भी इसका व्यापार बड़ी मात्रामें किया जाता है। यहाँ हम इस बातकी मीमांसा नहीं करेंगे कि भूमिके अन्दर मिट्टीका तैल किस प्रकार कहां से आगया क्योंकि यह विषय अत्यन्त कठिन और विवादास्पद है। कुछ लोगोंका यह विचार है

कि भूमिके भीतर लोहकर्बिद होता है जो जलके संसर्गसे उद्कर्बनोंको जनित कर देता है। मैण्डलीफ़ वैज्ञानिक इस मतका पोषक है। नकलम् धातुकी मात्राभी भूमिमें सूक्ष्म अंशोंमें विद्यमान है, जिसके कारण भी उद्कर्बन उत्पन्न हो सकते हैं।

पैन्सिलवेनिया प्रदेशमें संवत् १६१६ वि०में कर्नल डे्कने अमरीकन-पैट्रोलियमकी खोजकी। उसके पश्चात् ओहिओ, कैलीफोर्निया कनाडा और कोलोरडो आदि स्थानोंमें भी यह प्राप्त हुआ है। साधारण मैला तैल १०००मील लम्बी नलियोंमें जिनका व्यास ४—८ इंच होता है समुद्रीतट पर पहुँचाया जाता है। यहां लोहेके बड़े बड़े बर्तनोंमें स्रवित करके यह शुद्ध किया जाता है। गन्धकाम्ल और सैन्धक उदौषिद द्वारा इसे और स्वच्छ करते हैं। पचास पचास मीलकी दूरी पर तालाब बनाये गये हैं। इस प्रकार तैलकी अशुद्धियों को दूर किया जाता है। अमरीका प्रदेशके इस व्यवसाय द्वारा निम्न पदार्थोंकी उपलब्धि होती है:—

	कथनांक	मात्रा
स्निग्धजन	०°	} १६·५%
रिगोलिन	१८°	
पैट्रोलियम ज्वलक	१४°-६०°	
लिग्रोइन	६०°-१२०°	
पैट्रोलियन बानज़िन (बानज़ाबोलिन)	१२०°—१५०°	
कैरोसिन	१५०°—३००°	५४%
स्निग्धतैल		१७·५%
वैसलिन		} २%
पैराफ़ीन मोम द्रवांक ४५—६५°		

स्निग्धजनको खूब दबाया जाता है और यह द्रवावस्थामें परिणत हो जाता है। इसका उपयोग बर्फ़ के बनाने में किया जाता है क्योंकि तीव्रतासे वाष्पीभूत होने के समय यह जल का ताप खींच लेता है। रिगोलिन, पैट्रोलियम ज्वलक (गैसोलिन) और लिग्रोइन, इनका उपयोग मज्जा के निष्कर्षण में और वस्तुओं के स्वच्छ करने के काम में भी आता है। पैट्रोल का उपयोग मशीनों के चलाने में मोटर आदि में आता है।

कैरोसीन तैल सामान्यतः जलाने के उपयोग में आता है। जलाने का तैल दो प्रकार का होता है। एक सफ़ेद तैल और दूसरा लाल तैल। सफ़ेद तैल लाल तैल की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। लाल तैल में धुँआ बहुत निकलता है। स्निग्धतैलसे जलानेकी गैस बनाई जाती है और इससे मशीन आदिके चिकनानेका भी काम लिया जाता है।

कैरोसीन तैल को गन्धकाम्ल और सैन्धक उदौषिदसे स्वच्छ करनेके उपरान्त उच्च तापक्रम तक गरम करते हैं जिससे कुछ अशुद्धियोंका विच्छेद हो जाता है। इसे विच्छेद—प्रक्रिया (Cracking) कहते हैं। इस तैल का विशिष्ट गुरुत्व ०·८०० —०·८७० होता है। प्रतिवर्ष २५००० लाख गैलन तैल इस विधि से तैयार किया जाता है।

रूसी पैट्रोलियम—कैस्पियन सागरके तटस्थ एपशीरन प्रायद्वीप के निकटस्थ बाकू प्रदेश में भी कैरोसीन तैल पाया जाता है। इस प्रान्त में लगभग २५०० वर्ष पूर्व भी लोग अग्नि-पूजा करते पाये गये हैं। मिट्टीके तैलकी वाष्पोंके एकदम जलनेसे यह अग्नि उत्पन्न होती थी और निवासियोंको आश्चर्य प्रतीत होता था। संवत् १८७० वि० से मिट्टीके तैलका व्यवसाय आरम्भ किया गया। पर राजकीय स्वत्वके कारण यह अधिक मात्रा में न चल सका। संवत् १६२६ वि० में इस प्रकारकी बाधा दूर हो गई और धनाढ्य नोबेल बन्धुओं ने इस काम को विस्तार पूर्वक आरम्भ किया। अब प्रतिबर्ष २२५०० लाख गैलनतैल यहाँ से प्राप्त होता है।

यह तैल भूमि के अन्दर बहुत दबाव में स्थित रहता है अतः ज्यों ही सूराख किया जाता है, तैल

को तीव्रधार ऊपर आती है। डुब्बा के कुएमें एक बार लगातार चार मास तक १०० से ३०० फ़ीट ऊँची धार बहती रही जिसके कारण १००० लाख गैलनके लगभग तैलकी हानि होगई, जब कभी कुँओंमे आग लग जाती है तो फिर किसीके बुझाए नहीं बुझती और सप्ताहों तक दग्ध यज्ञ प्रज्वलित रहता है।

यह तैल भी अमरीकन पैट्रोलियमके समान स्वच्छ किया जाता है। इसमें पदार्थों की मात्रा इस प्रकार है।

३० प्रति. शत.	जलाने का तैल
३० प्रति. शत.	स्निग्धतैल
३५ प्रति. शत.	भारी तैल जो ईंधनके काम में आता है।
५ प्रति. शत.	मोम आदि

इस तैल का विशिष्ट गुरुत्व ०·८२०—०·८२५ होता है अर्थात अमरीकन तैल की अपेक्षा यह कुछ भारी होता है।

स्काटलैण्डका विषमयोगी व्यवसाय—विषमयोगी के व्यवसाय का प्रारम्भिक श्रेय जेम्सयंग को है जिन्होंने सं० १६०५ वि. में डर्बीशायर में पैट्रोलियम का एक स्रोत देखा था। यह स्रोत थोड़े ही समय के उपरान्त खाली होगया। इस कारण तैल के अन्य साधनों के खोज करने की आवश्यकता हुई। जैम्स यंग ने 'जलनशीलखनिज' (Bituminous hale) की खोजकी जिसको स्रवित करनेसे विषमयोगी तैल प्राप्त हो सकता है। इस खनिज को लम्बे लोहेके भपकों में स्रवित किया जाता है। ऐसा करनेसे जलने वालीगैसें अमोनिया, तैल आदि प्राप्त हो जाता है। इन्हें ठण्डा किया जाता है जिससे कोलतार दूर हो जाता है। अमोनिया कोभी अलग द्रवित कर लेते हैं और जलने वाली गैसों को जलाने के उपयोग में लाते हैं। १ टन खनिज में से ३० गैलन तैल प्राप्त हो सकता है। स्रवित करके कम क्वथनांक वाले पदार्थोंको इसमेंसे अलग कर लिया जाता है। फिर तीव्र गन्धकाम्ल और सैन्धक उदौषिद द्वारा इसका शुद्धिकरण हो जाता है। स्रवित भागमें निम्न पदार्थ रहते हैं जिन्हें पृथक कर लेते हैं:—

विषमयोगी नफथा तैल

हलका खनिज तैल

अवशिष्ट भाग

अवशिष्ट भागमें मोम होता है। इसके प्राप्त करनेके लिये इसे जमाया जाता है और जब अर्द्ध ठोस पदार्थ बन जाता है तब इसे दबाव डाल कर छान लिया जाता है। इस प्रकार एक गाढ़ा द्रव पदार्थ प्राप्त हो जाता है जो स्निग्ध तैलके समान चिकनानेमें काम आता है। ऊपर मोम शेष रह जाता है। इस मोममें कई विषमयोगी होते हैं जिनका क्वथनांक ४५°—७०° होता यह मोम बत्तियोंके बनानेमें काम आता है। आजकल लगभग ४०००० टन मोम बनाया जाता है जिसमें से अधिकांश स्काटलैण्डके खनिजोंसे प्राप्त होता है।

विषम योगियों के गुण

विषमयोगी जलसे हल्के होते हैं और ये जलमें घुलन शील नहीं है। इस लिये जलपर उतराते हैं। कुछ यौगिकोंमें विचित्र गन्ध होती है। तीव्र और हल्के अम्ल दोनोंका इनपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है ओषदीकरण वाले रसों का भी इस पर कुछ प्रभाव नहीं होता है। इन गुणोंके कारण ही इनका नाम विषमयोगी (विषम-कम, योगी-संयुक होने वाला) पड़ा है।

इस प्रकार गन्धकाम्ल, नोषिकाम्ल, पांशुजद्विरागेत, आदि रसोंका उदकर्षनों पर कुछ अधिक असर नहीं होता है। हरिन्, नैलिन, आदि तत्व भी इनके साथ जुड़ नहीं सकते हैं। कर्बन-एक-ओषिद, कओ, हरिन्‌से निम्न प्रकार संयुक्त होता है—

$$\text{कओ} + \text{ह}_2 = \text{कओ ह}_2 \text{ (कर्बनील हरिद)}$$

(कर्बनील हरिद)

पर दारेन $कउ_4$ और हरिन्में संयोग इस प्रकार नहीं होता है—

$$कउ_4 + ह_2 = कउ_4ह_2$$
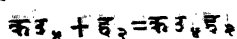
(कल्पित)

इस प्रकारसे संयुक्त होनेवाले यौगिकों का युक्त (Additive) यौगिक कहते हैं। दारेन पर हरिन्का प्रभाव निम्न प्रकार होता है—

$$कउ_4 + ह_2 = कउ_3ह + उह$$
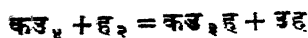
इस प्रक्रियामें उदहरिकाम्ल की वाष्पें निकलने लगती हैं। $कउ_3ह$ यौगिक को दारील हरिद कहते हैं। दारेनके एक उद्जन का स्थान हरिन् ने ले लिया है। इस प्रकार स्थान लेने को स्थापन प्रक्रिया Substitution) कहते हैं और उपलब्ध पदार्थ को स्थापित यौगिक कहते हैं। निम्न प्रयोग द्वारा उपर्युक्त प्रक्रिया प्रदर्शित की जा सकती है।

कांचकी एक लम्बी नली लो जिसका एक सिरा बन्द हो और इसे नमकके संपृक्त घोलसे भरदो। इसे नमकके घोलमें उलटा करके खड़ा करो फिर हरिन् गैस इसके अन्दर प्रवेश करदो। हरिन् गैससे एक तिहाई नली भर जानेदो। कागज के टुकड़ेको चिपकाकर इस जगह निशान लगा दो। इसके उपरान्त उतना ही आयतन दारेन वायव्य का भरदो। नलीको ऐसे स्थानमें रखदो जहां सामान्य प्रकाश हो (धूपमें रखनेसे बड़े ज़ोरसे विस्फुटन होनेकी आशंका है) कुछ घंटे के पश्चात् संयुक्त वायव्योंसे नलीका आधा भाग भर आवेगा दोनों गैसोंके समान आयतनमें अणुओंकी समान संख्या होती है अतः प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$कउ_4 \quad + ह_2 = \quad कउ_3ह + \quad उह$$
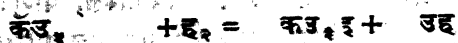
१ आयतन १ आयतन १ आयतन १ आय

उदहरिकाम्ल नमकके घोलमें घुल जाता है अतः अवशिष्ट दारील हरिद केवल पूर्वके आधे आयतनमें भर जाता है।

वे यौगिक जो हरिन् या अन्य लवणजनके संसर्गसे उदहरिकाम्ल आदि जनित करते हैं संपृक्त-यौगिक (Saturated) कहलाते हैं।

दारील हरिद, $कउ_3ह$, अधिक हरिन्के साथ निम्न प्रकारके यौगिक देता है:—

$$कउ_3ह + ह_2 = कउ_2ह_2 + उह$$

दारीलिन हरिद

या द्विहरो दारेन

$$कउ_2ह_2 + ह_2 = कउह_3 + उह$$

त्रिहरो दारेन

या हरो पिपील

$$कउह_3 + ह_2 = कह_4 + उह$$
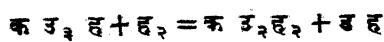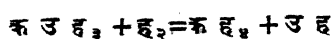
चतुर्हरो दारेन

या कर्बन चतुर्हरिद

कर्बन की चतुर्शक्ति

मैण्डलीफ़के आवर्त संविभागमें कर्बनका स्थान चौथे समूह में है। इसके अनुसार इसकी संयोग शक्ति ४ है। प्रथम, द्वितीय, तथा तृतीय समूह के तत्वों की संयोग शक्ति धनात्मक है और अन्तिम तीन समूहोंकी संयोग शक्ति ऋणात्मक है। कर्बनकी संयोग शक्ति न तो धनात्मक ही कही जासकती है न ऋणात्मक हीं। क्योंकि यह धनात्मक उद्जनके और चार परमाणुओंसे भी संयुक्त हो सकता है और ऋणात्मक हरिन्के भी चार परमाणुओं से।

$$कउ_4 - कह_4$$

केकुले नामक वैज्ञानिकने यह बात प्रयोगों द्वारा सिद्धकी कि कर्बनिक रसायनके यौगिकों में अधिकतर कर्बन चतुर्शक्तिक है। अर्थात् यह ४ एक-शक्तिक तत्वोंसे, और २ द्वि-शक्तिक तत्वोंसे संयुक्त हो सकता है। इसकी चतुर्शक्तिको निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—

|

—क—

|

इस प्रकार दारेन, दारीलहरिद, दारीलिन हरिद, हरोपिपील, तथा कर्बनचतुर्हरिद निम्न प्रकार प्रदर्शित किये जा सकते हैं: –
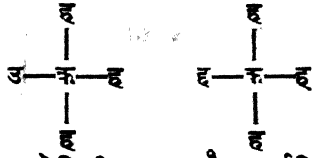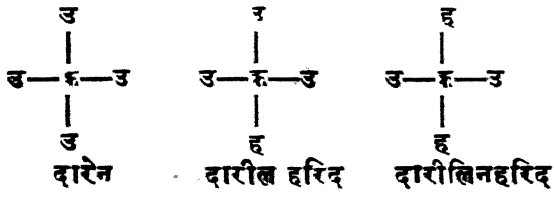
कर्बन द्विओषिद; कर्बन द्विगन्धिद, उदश्या-मिकाम्ल निम्न प्रकार से प्रदर्शित किये जावेंगे—

या नो≡क—उ (उदश्यामिकाम्ल)
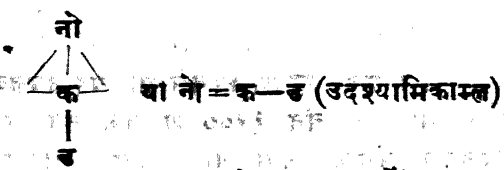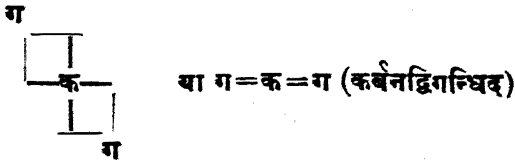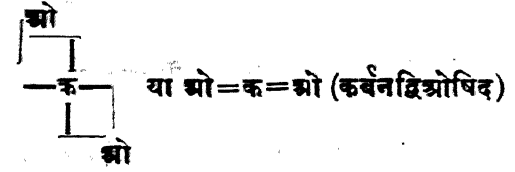
अब हम यह दिखानेका यत्न करेंगे कि एक कर्बन दूसरे कर्बनसे किस प्रकार संयुक्त होता है। वस्तुतः यह विशेषता केवल इसी तत्वको प्राप्त है कि आठ आठ दस दस कर्बन तक एक दूसरे से संयुक्त हो सकते हैं –

दो कर्बन निम्न प्रकार से परस्पर में संयुक्त होते हैः—

—क—क—
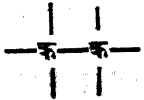
इससे स्पष्ट है कि दोनोंका एक एक संयोग-शक्ति सूचक बन्ध परस्परके जोड़नेमें खर्च होगया है। इस प्रकार अवद बन्ध स्वतंत्र हैं और ये अन्य तत्वोंसे संयुक्त हो सकते हैं। ज्वलेन, क$_२$ उ$_४$, इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता हैः—
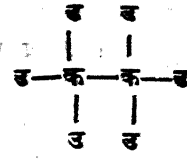
तीन कर्बन परस्परमें संयुक्त होकर निम्न प्रकार से अग्नेन, क$_३$ उ$_८$, बनाते हैंः—
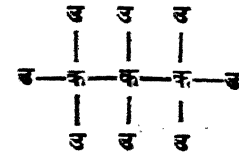
प्रत्येक कर्बन के चार बन्ध होते हैं। अग्नेनके बनानेमें तीनों कर्बनोंके १२ बन्धोंमेंसे ४ बन्ध परस्पर कर्बनों को संयुक्त करनेमें व्यय हो गये हैं। ८ बन्ध स्वतंत्र हैं जो उदजन आदि अन्य तत्त्वोंसे संयुक्त होसकते हैं। जब (न) कर्बन परस्पर में संयुक्त होंगे तो उनके २ न+२ बन्ध स्वतंत्र रहेंगे और शेष बन्ध परस्परके संयुक्त होनेमें लग जावेंगे।

वह यौगिक जिसमें कर्बनके सब बन्ध उप-युक्त हो जांय संयुक्त यौगिक कहलाता है। पर वह यौगिक जिसमें कर्बनके सब बन्ध उपयुक्त न हों असम्पृक्त यौगिक कहलाता है। ज्वलेन संपृक्त यौगिक है पर ज्वलीलिन, क$_२$ उ$_४$, तथा सिरकी-लिन क$_२$ उ$_२$, असम्पृक्तयौगिक हैंः—
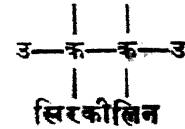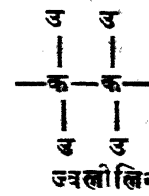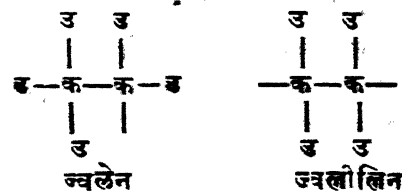
इन प्रदर्शित चित्रों द्वारा स्पष्ट है कि ज्वलेन हरिन्के साथ युक्त-यौगिक नहीं बना सकता है-क्योंकि इसका कोई बन्ध स्वतंत्र नहीं है। यह केवल स्थापित-यौगिक ही बनावेगा पर ज्वलीलिन और खिरकीलिन युक्त यौगिक बना सकते हैं:—
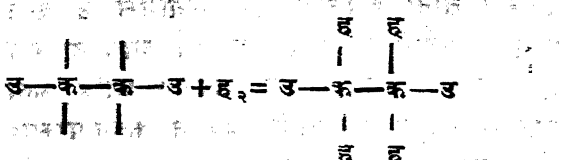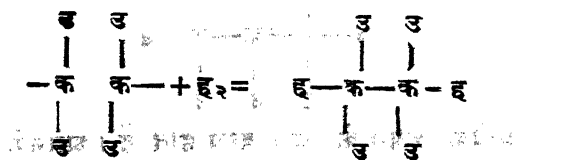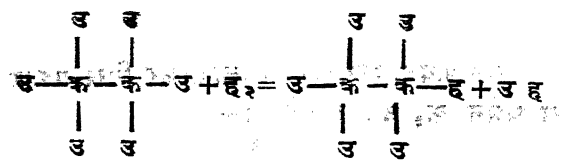
कर्बन-एकौषिद् पर हरिन्का प्रभाव निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है;—
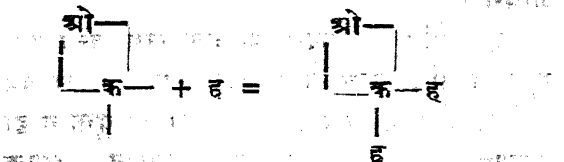
इसके दो बन्ध स्वतन्त्र थे अतः यह हरिन्के दो परमाणुओंसे संयुक्त हो सकता है।

रसायनमें निम्न मूलोंका प्रयोग एक-शक्तिक तत्त्वोंके समान होता है क्योंकि इनमें कर्बनके एक एक बन्ध स्वतंत्र हैं—

दारील मूल क उ₃' उ—क—

ज्वलीलमूल क₂ उ₅'

मद्यनाद्रं मूल, क ब ओ'

कर्बोषील मूल, क ओ ओ ब'

श्यामजन मूल, क नो'
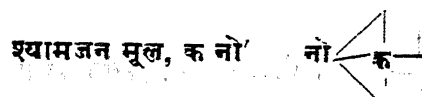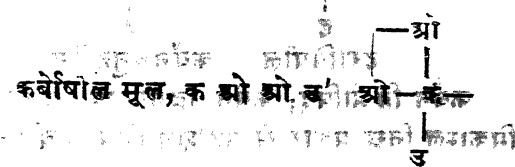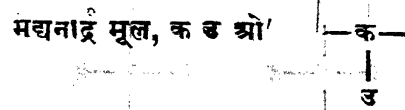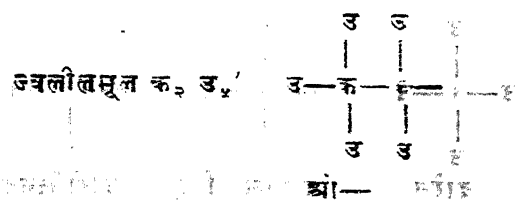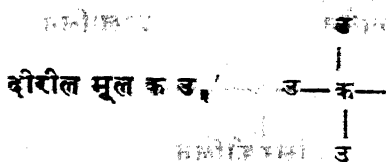
अब हम कुछ मुख्य संपृक्त उदकर्बनोंके बनाने की विधि और उनके गुण देंगे।

दारेन क उ₄

मिट्टीके तैलके कुओंसे निकलने वाले वायव्योंमें दारेनभी होता है। कोयलेकी खानोंमें भी यह पाया गया है। कोयलेके स्रवण करनेसे भी यह उपलब्ध हो सकता है। कर्बन १२००° श तक तप्त करके उद्जनसे संयुक्त किया जा सकता है और इस प्रकार दारेन प्राप्त हो सकता है। कर्बन ध्रुवोंके बीचमें उद्जनके वायुमंडलमें विद्युत्-संचार करके भी यह यौगिक बनाया जा सकता है। इसके बनानेकी तीन मुख्य विधियाँ नीचे दी जाती हैं:—

(१) कर्बन-एकौषिद, क ओ, को उद्जनके साथ ३००° श तक गरम करनेसे दारेन प्राप्त हो सकता है। इस संयोगके लिये नकलम्के महीन चूर्णका उपयोग किया जा सकता है। नकलम्के चूर्णको ३००° तक गरम करते हैं और उस पर कर्बनएकौषिद और उद्जन वायव्योंका मिश्रण प्रवाहित करते हैं। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

क ओ + ३ ब$_2$ = क उ$_4$ + उ$_2$ ओ

दारेन

(२) पांशुज-या सैन्धकसिरकेत, क$_2$ उ$_3$ ओ$_2$ सै, को पिघला कर सैन्धका-चूनाके साथ गरम करनेसे भी यह प्राप्त हो सकता है। प्रक्रिया इस प्रकार है।

क$_2$ उ$_3$ ओ$_2$ सै + सै ओ उ = क उ$_4$ + सै$_2$ क ओ$_3$

इस कामके लिये एक कांच या तांबेकी कुप्पी लो। इसमें (२०-३०) ग्राम पांशुज सिरकेत पिघलाकर पीसकर भरो और साथमें इसका तिगुना सैन्धका-चूना भी मिलाकर भर दो। कुप्पीके मुँहमें एक काग लगाकर एक वाहक नली लगादो जिसका एक सिरा पानीमें डूबाहो। कुप्पीको ज़ोरोंसे गरम करो और जब वायु निकल जाय तब दारेनको गैस भरनेके बेलनोंमें भर लो। बेलनमें गन्धकाम्ल डालकर हिलाकर इसे शुद्ध किया जा सकता है।

(३) स्फटकबिंद और जलके संसर्गसे दारेन अति शीघ्रतासे बनाया जा सकता है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

स्फ$_4$ क$_3$ + १२ उ ओ = ३ क उ$_4$ + ४स्फ (ओ उ)$_3$

एक बड़ी कुप्पीमें थोड़ी सी बालू बिछाओ और उस पर स्फट-कबिंद रख दो। एक रबरका काग लो जिसमें दो छेद हों। एक छेदमें लम्बी नलीका पेचदार कीप लगाओ और दूसरेमें वाहक नली लगाओ। कीपसे हलका उद्हरिकाम्ल कबिंद के ऊपर चुआओ। ऐसा करनेसे दारेन उत्पन्न होता है, जो वाहक नली द्वारा संचित किया जा सकता है।

[शेष फिर]

उत्पादन (Production)

श्रम (Labour)

[ले०- श्री विश्वप्रकाश विशारद]
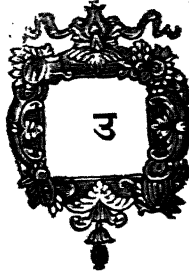
उत्पादनमें श्रमका सबसे बड़ा भाग है श्रम दो प्रकार का होता है-शारीरिक और मानसिक। परन्तु अर्थ-शास्त्रमें प्रत्येक परिश्रमको श्रम नहीं मानते। घोड़े पर चढ़नेमें श्रम होता है, खेल इत्यादिकमें भी श्रम होता है, परन्तु ये श्रम नहीं कहे जायंगे क्योंकि श्रमका करने वाला किसी प्रकारके उत्पादनमें सहायक नहीं होता। वह स्वयं अपने आनन्दके लिये श्रम करता है।

किसी देशके श्रम-विभागकी विवेचना करने के लिये हमको तीन बातोंका विचार करना चाहिये।

(१) जन संख्या
(२) स्वास्थ्य
(३) शिक्षा

इन तीनोंपर अब हम विचार करेंगे।

जनसंख्या (Population)

जन-संख्याका प्रश्न कोई नया नहीं है। माल्थस (Malthus) नामक एक विद्वानने सारे यूरोपका भ्रमण करके भिन्न २ देशोंकी जन-संख्यापर विचार किया है। सन् १७९८ ई० में उसने जनसंख्याके सिद्धान्तपर एक निबन्ध लिखा। सन् १८०३ ई०में उसका संशोधन निकला। उसने अपने निबन्धको तीन भागोंमें बांटा है।

(१) उसका कहना है कि प्रत्येक जात की संख्या, जिसका इतिहास हमें मिल सकता है, अधिक बढ़ती गई जब तक कि उसकी उन्नतिमें आवश्यक वस्तुएं, रोग, युद्ध आदिकने बाधा नहीं डाली।

(२) प्रत्येक देशमें जहांकी जन संख्या बढ़ती है, वहां पर व्यवसायकी मांग उतनी शीघ्रतासे नहीं बढ़ती। जनसंख्या थोड़े दिनोंमें दुगनी चौगुनी हो जाती है पर व्यवसाय दुगने चौगुने नहीं होते।

(३) जनसंख्या थोड़े दिनों तकतो अवश्यही बढ़ेगी, पर अन्तमें भोजनकी कमी, रोग, युद्ध आदिसे उसकी वृद्धि रुक जायगी। इसलिये यह आवश्यक है कि मनुष्य सन्तान निग्रह आरम्भ कर दे। क्योंकि उत्पन होकर मर जानेसे यही अच्छा है कि वह उत्पन्न न हों। जनसंख्याकी वृद्धि दो प्रकारसे हो सकती है। एकतो मृत्युकी संख्यासे अधिक मनुष्य जन्म लेवे। दूसरे किसी अन्य स्थानसे वह आकर बस जावें।

मनुष्य-जन्मका सम्बन्ध विवाह प्रणालीसे है। जिस देशमें जल्दी विवाह होगें वहाँ यह स्वाभाविक है कि सन्तान अधिक हों। प्रायः यह देखा जाता है कि गर्म देशोंमें विवाह बहुत जल्दी कर दिया जाता है। भारतवर्षमें लड़कोंका विवाह प्रायः १५ या १६ वर्षमें और लड़कियों का ६ या १० वर्षमेंहो जाता है। हमारे देशमें इस अवस्थामें यदि विवाहहो जाय तो उचित समझा जाता है। बहुत से इसके पूर्वभी विवाह कर देते है।

विवाहकी यह आयु सभी जातिमें समान नहीं पाई जाती। नीच जातिमें विवाह जल्दी कर देनेकी प्रथा है मध्यम अवस्थाके पुरुषोंमें विवाह देरसे किया जाता है। इसकाभी कारण है। नीच जातिके मनुष्य जल्दी कमाने लगते हैं। हमारे देशमें बढ़ई, सुनार, चमार, राज इत्यादिकके लड़के १० या ११ वर्षकी आयुसे धन कमाना आरम्भ कर देते हैं। उनका रहनसहनभी इस प्रकारका होता है कि अधिक धनके बिना वह अच्छी तरहसे रह सकते हैं। पर मध्यम अवस्थाके पुरुषोंमें यह बात नहीं पाई जाती। उस अवस्थामें रहनेके लिये अधिक धनकी आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त थोड़ेसे पेशोंको छोड़ कर नीच पेशोंमें वह काम नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा करनेमें उनकी मानहानि होती है। हमारे देशमें तो मानहानिका प्रश्न बहुतही जटिल है। दूसरे अधिक धन कमानेके लिये विशेष योग्यताकी अवश्यकता होती है। मध्यम अवस्थाके पुरुष अपने सभी पुत्रोंके लिये प्रबन्ध करना चाहते हैं। यह उसी अवस्थामें हो सकता है जब कि वे अधिक आयु पर विवाह करें। यही कारण है कि सभी देशमें मध्यम अवस्थाके पुरुष देरसे विवाह करते हैं।

जनसंख्याका प्रश्न बड़ाही जटिल है और इसका सुलझाना कोई आसान काम नहीं है। साधारण अवस्थाके पुरुषों में यह देखा गया है कि लगभग ३० वर्षमें दुगने, छः सो वर्षमें १,०००,००० गुना, बारह सो वर्षमें १,०००,०००,०००,००० गुनाहो जाते हैं। इनके भोजनका प्रबन्ध होना कोई सरल बात नहीं है। इस जन संख्या को नियममें रखनेके लिये समय समय पर भिन्न २ उपाय किये गये हैं। देरसे विवाह करना तो बहुत प्रचलित होरहा है। इसके अतिरिक्त धार्मिक पुरुष अपने जीवन भर विवाह नहीं करते। बौद्ध कालमें बहुतसे भिक्षु जीवन भर ब्रह्मचारी रह कर ईश्वराधना करते थे। इस समय भारतवर्षमें कई लाख साधू हैं जिनको गृहस्थसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यूरोपमें कई स्थानोंमें यह प्रथा है कि बड़े लड़केको छोड़कर अन्य कोई विवाह नहीं करने पाता। यदि कोई कर लेता है तो उसको स्थान छोड़कर चला जाना होता है।

स्वास्थ्य (Health)

मजदूरोंके लिये स्वास्थ्यका होना भी अत्यन्त आवश्यक है। बिना स्वास्थ्य हुये कोई भी काम नहीं कर सकता। मशीनोंके चलाने फैक्टरी इत्यादिक में कार्य करनेके लिये बल और पौरुषकी आवश्यकता होती है।

बहुत सी जातियां स्वाभाविक तौरसे बड़ी हट्टी कट्टी तथा परिश्रमी होती हैं। काबुली, अफगानी, नेपाली तथा अन्य पर्वत पर रहने वाली

जातियोंमें बलकी अधिकता होती है। शीत जलवायु मनुष्यको बली तथा परिश्रम शील बनाता है। गर्म देशमें रहनेके कारण मनुष्य आलसी हो जाते हैं जलवायुके बाद भोजनका स्थान है। भोजन भी हमारे शरीरकी पुष्टि करता है। इसलिये भोजन खानेके पूर्व इस बात का विचार अवश्य करना चाहिये कि भोजन लाभ दायक होगा या नहीं। अपने धनका उपयोग इस प्रकारसे करना चाहिये जिससे कि अधिकसे अधिक लाभ हो सके।

बहुतसे कार्य्य ऐसे हैं जिनसे स्वास्थ्य शीघ्र खराब हो जाती है। यह देखा गया है कि खानोंमें काम करनेवाले शीघ्र मर जाते हैं। वहाँ की अशुद्ध वायुका सेवन करनेसे उनके फेफड़े खराब हो जाते हैं। दियासलाईके कारखानोंमें कार्य्य करना बड़ा जोखम है। इसमें भी मनुष्यका स्वास्थ्य जल्दी खराब हो जाता है।

मजदूरोंकी इतनी आय नहीं होती है कि जीवनकी समस्त आवश्यक सामग्री उनको मिल सके। स्त्रियां भी परिश्रम करती हैं और धनकमाती है। परन्तु स्त्री पुरुष दोनोंकी मिलकर इतनी आय नहीं होती कि अच्छा भोजन मिल सके। वस्त्र घर आदिका मिलना भी बहुत आवश्यक है। पर इसके न मिलनेके कारण मजदूरोंकी दशा बड़ी शोचनीय हो रही है।

अधिक परिश्रम करनेसे मनुष्यकी शक्ति शीघ्र नष्ट हो जाती है। फैक्टरीके मैनेजर कुलियोंसे अधिक काम लेते हैं। वे तो अपना स्वार्थ साधते हैं पर बिचारे कुलियोंका जीवन दुःखप्रद हो जाता है। काम उतना ही लेना चाहिये जितना एक आदमी बिना स्वास्थ्य खराब किये कर सकता हो। कार्य्यके ऊपर भी स्वास्थ्य निर्भर है।

लंदन नगर वर्तमान समृद्धशाली नगर है। यहांके मजदूरोंकी यह दशा रहती है कि यदि वे प्रतिवर्ष दो या तीन महीने गांव में न रह जांय तो वे शीघ्र मर जाय। यहाँकी अशुद्ध जलवायुके कारण हट्टे कट्टे पुरुष जो गावोंसे आते हैं वे शीघ्र ही अपने स्वास्थ्यको खो देते हैं। उनके लड़के उनसे भी अधिक दुर्बल होते हैं। वहांके मजदूरोंमें अधिक से अधिक दो पीढ़ीके पुरुष पाये जाते हैं। यदि गावोंसे बराबर मजदूर लंदनमें न आते रहें तो वहांका काम बंद होजाय। भारतवर्षके बम्बई, कलकत्ता इत्यादिक नगरोंमें भी मजदूरोंके रहने के घर नहीं मिलते। एक एक कोठरीमें दस २ आदमी भरे रहते हैं।

भोजन, वस्त्र, गृह आदिके अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तुओंकी आवश्यकता होती है, मनुष्य दास बनकर या बन्धनमें पड़कर जितना कार्य्य वह करता है नहीं कर सकता। यदि उसको उन्नतिकी आशा बनी रहे तो वह अधिक कार्य करता है। शरीर-विज्ञान वेत्ताओंका विचार है कि जब कार्य प्रसन्नतासे नहीं किया जाता तो अधिक शक्ति नाश होती है इसके अतिरिक्त यदि कार्य्य बदलते रहें तो मनुष्य का मन नये काम करने में अधिक लगेगा।

शिक्षा (Industrial Teaching)

श्रम दो प्रकारका होता है—शिक्षित और अशिक्षित (skilled & unskilled labour)। यह दो ऐसे शब्द हैं जिनकी परिभाषा होना कठिन है। एक स्थानके लिये एक श्रम शिक्षित और अशिक्षित दोनों हो सकता। गांवका रहनेवाला जो लालटेन नहीं जला सकता उसके लिये उसे जलाना शिक्षित श्रम है। पर एक नगरका गंवार भी उसको जला देगा इसलिये नगरमें यह अशिक्षित श्रम कहा जायगा। इसी प्रकारसे एक नगर जिसमें मशीन आदिसे काम लिया जाता है वहाँ के निवासी मामूली मशीनको बिना किसी शिक्षा के चला सकते हैं इस लिये वह अशिक्षित श्रममें गिना जायगा कहनेका तत्पर्य यह है कि इन दो शब्दों में कोई विशेष भेद नहीं बताया जा सकता।

अशिक्षित श्रमको प्रत्येक पुरुष कर सकता है पर शिक्षित श्रम वे ही लोग कर सकते हैं जिन्होंने

यह कार्य सीखा हो। यही कारण है कि शिक्षित श्रमके लिये अधिक मज़दूरी दी जाती है शिक्षित श्रम करना निम्न वस्तुओं पर निर्भर है।

(१) योग्यता

सभी मनुष्य समान योग्य नहीं होते। कुछ तो ऐसे बुद्धू होते हैं कि बहुत समझाने पर भी किसी कार्यको नहीं कर सकते। ऐसे मनुष्य तो कठिन कार्योंको तो कभी भी नहीं कर सकते। बहुतसे मनुष्योंकी बुद्धि इतनी तीव्र होती है कि देखते देखते ही मशीनोंको समझ लेते हैं।

(२) घरका प्रभाव

घरमें मा बाप जिस कार्य्य को करते हैं उसको उनके पुत्र बहुत शीघ्र सीख जाते हैं। देखते और सुनते उनको बहुत सी बातें मालूम हो जाती हैं जिनको जाननेके लिये एक नवीन मनुष्य को बहुत समय व्यय करना पड़े।

(३) स्कूल की शिक्षा

बहुतोंका विचार है कि स्कूलोंमें अधिक शिक्षा देना व्यर्थ है क्योंकि उनको अन्य कार्य्य करना है पर यह बड़ी भूल है। शिक्षाके मिलने से लड़कोंकी बुद्धिका विकास हो जाता है और वह बहुत शीघ्र चीज़ों को समझने लगते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें नये अन्वेषण करने की शक्ति भी बढ़ जाती है।

(४) व्यवसायिक शिक्षा

व्यवसायिक शिक्षाका मिलना भी आवश्यक है। यदि यह शिक्षा उचित रीतिसे दी जाय तो मनुष्य अपने कार्य्य में बहुत शीघ्र उन्नति कर सकता है। पर देखनेसे यह पता चलता है कि मज़दूर अपने लड़कोंके लिये उतना ही करना चाहते हैं जो कि उनके पिता ने उनके लिये किया था। वे शीघ्र ही अच्छी तरह कार्य्य सीखे बिना कार्य्य आरम्भ कर देते हैं।

श्रम की अस्थिरता

Mobiligation of labour

यदि किसी प्रकारसे बन्धन न हो तो मजदूर अपनी उन्नतिके लिये सदा प्रयत्न करता रहता है। इसी कारणसे श्रमको अस्थिर कहा गया है। यह तीन प्रकार का होता है।

(१) स्थान परिवर्त्तन

(Local mobility)

जिस स्थान पर अधिक मजदूरी मिलती है वहां अन्य स्थानों से मजदूर आकर बसजाते हैं। जहां मजदूर अधिक हो जाते हैं वहां मजदूरी कम होजाती है। जहां मजदूरों की अधिक आवश्यकता होती है वहां मजदूरी अधिक मिलती है। लंदन नगरमें इंगलैंड देशके कोने कोनेसे मजदूर आते है।

(२) व्यवसाय परिवर्त्तन

(Horizontal mobility)

जिस व्यवसाय में अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती है उसमें मजदूरी अधिक मिलती हैं। अधिक धन कमानेकी लालचसे मजदूर एक व्यवसायको छोड़कर दूसरे व्यवसायमें कार्य्य करने लगते हैं।

(३) पद परिवर्त्तन

(Vertical mobility)

इसमें मजदूर रहता उसी व्यवसायमें है पर पद बदलता रहता है। एक मजदूर जब काम करना आरम्भ करता है तो उसे कुलीका काम करना पड़ता है। धीरे धीरे वह मशीनका काम करने लगता है। यह देखा गया है कि अगर किसी अन्य प्रकारकी बाधा न हो तो योग्य मनुष्य उच्च पद पर पहुँच जाता है।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक संपादक

प्रोफ़ेसर ब्रजराज,

एम-ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.

भाग २१

मेष—कन्या १९८३

प्रकाशक

विज्ञान—परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य, तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

अर्थ शास्त्र

उद्योग धन्धे

औद्योगिक रसायन

कृषि-शास्त्र

खगोल विद्या

गणित

जीव विज्ञान

ज्योतिष

दर्शन

भौतिक शास्त्र

रसायन शास्त्र

वनस्पति शास्त्र

संगीत शास्त्र

विज्ञानंब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २४ | तुला, संवत् १९८३ | संख्या १

उत्पादन (Production)

पूंजी (Capital)

[लेखक श्री विश्वप्रकाश विशारद]

पूंजी की महिमाः—

उत्पादनके लिये पूंजी कितनी आवश्यक है इसका अनुभव इसी नवीन युगमें हो सकता है। परन्तु पूंजीकी आवश्यकता सदासे होती आई है। अशिक्षितसे अशिक्षित जातियोंमें भी इसकी सत्ता विद्यमान है, यह दूसरी बात है कि उसका अनुभव न हुआ हो। एक मामूली घास काटनेवालेके पास भी पूंजी मिलेगी। उसका छोटासा हँसिया ही उसकी पूंजी है। यदि वह कुछ अधिक धनी हो जाय। तो मामूली हँसियेके स्थानमें वह एक अच्छा हँसिया ले लेता है जिससे वह पूर्वकी अपेक्षा दुगनी घास काटने लगता है। मामूली घास काटनेवाले इसीसे सन्तुष्ट हो जाते हैं। वे दिन भर घास काटकर शामको घास सिर पर रखकर बेचनेको चल देते हैं। इस प्रकार उनको खेतसे बाज़ार तक घास लानेमें कई घन्टे लग जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक घसियारा उतनी ही घास काटता है जितनी वह उठा सकता है। इससे अधिक काटी घास खेत पर पड़ी रह जाती है। यदि वह चतुर मनुष्य है तो वह एक बैल या एक घोड़ा खरीद लेगा। अब उसको घास काटनेके लिये अधिक समय मिलता है और वह बहुतसी घास बाज़ारमें बेचनेके लिये ले जा सकता है।

इस उदाहरणमें हँसिया थोड़ा उस घसियारेकी पूंजी है। खेती करनेके लिये हल, बैल आदि—वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। यह किसानकी पूंजी है।

इस नवीन युगमें तो पूंजीकी महिमा विशेष बढ़ गई है। अब तो प्रत्येक कार्य्य मशीनसे किया जाने लगा है। पृथ्वी मशीनोंसे जोती जाती है। यूरोप और अमरीकामें खेतीके जोतनेके लिये बड़े बड़े हल काममें लाये जाते हैं। इन हलोंका मूल्य हजारों रुपया होता है। इन हलोंसे मीलों पृथ्वी कुछ घंटोंमें ही जोतीजा सकती है। खेतके बोने और काटनेका काम भी मशीनोंसे ही होता है। काटकर बड़े बड़े गट्ठर बना लिये जाते हैं और यह गट्ठर मशीनके एक छेदमें डाले जाते हैं। अन्न शुद्ध होकर एक ओर गिरता जाता है, भूसा कट कर दूसरी ओर। ऐसा करनेमें बड़ी सुविधा होती है और हजारों मनुष्योंका कार्य्य एक मशीन से हो जाता है। कपड़े बुननेका कामभी मशीन से होने लगा है। कहनेका तात्पर्य यह है कि नवीन युग मशीन-का युग है और मशीनोंके मँगानेमें अधिक पूंजीकी आवश्यकता होती है।

मशीनसे कार्य्य करनेमें दो लाभ होते हैं कार्य्य (१) शीघ्र तथा उत्तम हो जाता है (२) कम व्यय करना पड़ता है। मशीनके कार्य्यमें सफाई होने-के कारण मनुष्य उसीको खरीदते है। यदि हाथसे वह कार्य किया जाय तो उतना साफ न होगा और उसमें श्रमकी अधिक आवश्यकता होगी। यही कारण हैं कि अधिक पूंजी वाले देश व्यवसायमें अधिक बढ़े चले हैं। रुपया रुपयेवालेके पास आता है। पूंजीभी पूंजी वालेके पास आती है।

पूंजीकी परिभाषा

पूंजीसे तात्पर्य्य है उन वस्तुओंसे जो उत्पादनके लिये अलग रखदी जाती हैं और जिनको उपयोग मनोरंजनके लिये नहीं किया जाता।

प्रत्येक धन पूंजी नहीं कहला सकता, पूंजी वही है जिससे कि हम उत्पादन कर सकें। हम भोजन करते हैं, सुन्दरसे सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं। गाड़ी और मोटर पर सवार होते हैं। इन सबमें भी धन लगता है पर वह धन पूंजी नहीं कहला सकता। हम अपनी आयका बहुत कम भाग उत्पादनमें लगाते हैं इसलिये धनका बहुत कम भाग पूंजी है।

पूंजी दो प्रकारकी होती है।

(१) स्थायी पूंजी (Fixed Capital)

(२) अस्थायी पूंजी (Circulating Capital)

स्थायी पूंजी एक बारसे अधिक उत्पादनके काममें आती है। घर और मशीन आदि स्थायी पूंजी है। कारखानेके मालिकको ये चीजें एक बार खरीदनी होती हैं और इसके बाद उसका काम बराबर चलता जाता है। एक कपड़े बुननेके कारखानेमें स्थायी पूंजी कारखानाका मकान, बिनौला निकालनेकी मशीन, सूत कातनेकी मशीन, सूत रंगनेकी मशीन और सूत बुननेकी मशीन होगी।

इस स्थायी पूंजीके अतिरिक्त भी अन्य चीजों की जरूरत होती है। कपड़ा बुननेके लिये रुईकी आवश्यकता होती है। सूत रंगनेके लिये रंग चाहिये। मशीनको चलानेके लिये कोयला अनिवार्य्य है। पर इस कोटिकी चीजें एक बार ही उत्पादनमें सहायक होती हैं। ये वस्तुयें बार बार खरीदनी पड़ती हैं। इन सबकी गणना अस्थायी पूंजीमें है।

पूंजीकी अपकर्षता

पूंजी समान नहीं रहती और थोड़े दिनों बाद अपकर्षता प्रतीत होने लगता है। यही कारण है कि पूंजीके मालिक उसको सदा स्थापित करते रहते हैं। अस्थायी पूंजी तो शीघ्र ही अपकर्षताको प्राप्त होती है। रुई, रंग और कोयला जिसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है एक बार ही उत्पादनके कार्य्यमें आते हैं। स्थायी पूंजीका भी अपकर्ष थोड़े दिनोंके बाद आरम्भ हो जाता है।

कारखानेका स्थान चाहे जितना भी मजबूत क्यों न बनाया जाय सदा विद्यमान नहीं रह सकता। उसकी आयु सौ वर्ष हो या दो सौ वर्ष हो। उसकी मरम्मत तो दस वर्ष बाद आरम्भ हो जायगी। इसी तरह कीमतीसे कीमती मशीनभी सदा नहीं चलती। इसके पुर्जे घिस जाते हैं और उनका बदलना अनिवार्य्य हो जाता है। मशीन चलानेका इंजनभी थोड़े दिन काम करनेके बाद जवाब दे जाता है।

पूंजीकी अपकर्षता जब होती ही है तो उसके स्थापन करनेका यत्न करना चाहिये। पूंजीमें अपकर्षता तीन प्रकारसे होती है —

(१) साधारण हानि।

(२) दैवयोगिक आघात।

(३) उत्तरोत्तर अपकर्ष।

मशीनका कोई साधारण पुर्जा घिस जाता है, मशीनकी सफाईकी आवश्यकता होती है, मकान आदिकी मरम्मत करनी होती है। यह सब साधारण हानि है। मामूली मरम्मतसे इनका काम चल सकता है।

कभी बिजली गिरनेसे मकान गिर पड़ते हैं, आग लगानेसे मकान इत्यादिक जल जाते हैं, पानीकी बाढ़से हजारोंकी हानि हो जाती है। यह सब दैवयौगिक आघात हैं जिन पर मनुष्यका कोई बल नहीं है। ऐसे आघातोंको आशा न होने पर भी आघात हो ही जाते हैं। इनसे बचनेका उपाय इन्श्योरेन्श (Insurance) है। इन्श्योर करानेमें कारखानेके मालिकको प्रतिवर्ष नियमित धन उस कम्पनीको देना होता है जो उसको इन्श्योर करती है। यदि नियमित समयके जिसपर कम्पनी और कारखानेके मालिकसे समझौता हो चुका है, भीतर कारखानेको कोई हानि पहुँचती है तो कम्पनी उस हानिकी पूर्त्ति करती है।

उत्तरोत्तर अपकर्षके लिये कारखानेके मालिक अपकर्ष निधि (Depreciation Fund) बनाते हैं। इसमें प्रति वर्ष रुपया वे जमा करते रहते हैं। ऐसा करनेसे जिस समय एक मशीन नष्ट हो जाती है उस समय उतना रुपया अपकर्ष-निधिमें जमा हो जाता है। इस प्रकार करनेसे नई मशीनके क्रय करनेमें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होती। अदूरदर्शी पुरुष अपनी आयको व्यय करते रहते हैं और अपकर्ष-निधिकी स्थापना नहीं करते। फलतः जिस समय उनकी मशीन खराब हो जाती हैं, या मकान गिर पड़ता है वे निर्धन हो जाते हैं और उनके व्यवसायका अन्त हो जाता है। भारतवर्षके किसान भी इस निधिकी परवाह नहीं करते हैं परन्तु जब उनके हल या बैल नष्ट हो जाते हैं उनको महाजनकी शरणमें जाना पड़ता है।

पूंजीका इकट्ठा होना

पूंजीके इकट्ठा होनेके लिये सबसे प्रथम तो यह आवश्यक है कि खानेके उपरान्त कुछ बच सके। जिस जातिमें इतनी निर्धनता है कि भोजन कठिनतासे मिलता है वहां धनके बचानेका प्रश्न तो बहुत दूर है। मनुष्यके लिये कुछ आवश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता होती है जिनके बिना जीवित रहना असम्भव है। जब तक यह चीजें मनुष्यको नहीं मिल जावेंगी वह उनकी प्राप्तिमें यत्न करता रहेगा। जब मनुष्यों को वह आवश्यक चीजें मिल जावेंगी वह भविष्यके लिये बचानेकी सोचेगा बहुतसी जातियां बचानेमें असमर्थ हैं चाहे जितनी उनकी आय हो जाय। ऐसी जातियोंमें तो पूंजी इकट्ठा ही न होगी।

ऐसे देशोंमें जहां जीवनकी प्रतिक्षण कोई आशा नहीं है, जहां लड़ाई झगड़ा लूट मार हुआ करते हैं वहां मनुष्य भविष्यका बहुत कम विचार कर सकता है। उसको तो वर्त्तमानकी आवश्यकतायें पूरी करनी हैं। वह धनको कहां इकट्ठा करे, और ऐसे जमा करनेसे क्या लाभ है जो कि उनके काम नहीं आ सकता। दास जातियां अपने मालिकके डरसे रुपया जमा नहीं करती।

रुपया अपनी सन्तान के लिए भी जमा किया जाता है। आयका बहुतसा अंश मनुष्य इसलिये जमा करते हैं कि उनकी सन्तान उसका भोग करेगी। सन्तान-प्रेम पूंजोके इकट्ठा करनेमें विशेष सहायक होता है।

प्रश्न यह है कि पूंजो क्यों इकट्ठा की जाय। पूंजोकी जितनी मांग होती है उतनी पूंजी इकट्ठा हो सकती है। पर पूंजीके उचित उपयोगमें लानेके लिये यह आवश्यक है (१) देश में अधिक व्यवसाय होता हो (२) देशमें पूंजीके सुचारु संचालक मिल सकें। पहले प्रायः धनी पुरुष ही व्यवसाय करते थे क्योंकि उनके पास धन होता था। पर अब यह आवश्यक नहीं कि व्यवसाय करनेके लिये मनुष्य धनी हों। यदि मनुष्यमें कार्य्य करनेकी शक्ति विद्यमान है तो उसको बंक और धनी पुरुष धन देनेको राजी हो जायंगे। जितना ही अधिक वह कार्य्यकुशल होगा उतने ही कम व्याज पर उसे रुपया मिल जायगा।

लवणजन तत्व

[लेखक०—श्री सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद]

हरिन्, ह;	अरुणिन्, रु; और	नैलिन्, नै;
३५·४६;	७९·९२;	१२६·९२

इस समूहमें जितने तत्व हैं उनमें स्रविन्, हरिन्, अरुणिन् और नैलिन् तत्व लवणजन तत्व कहलाते हैं क्योंकि ये लवणोंके बनानेके काममें आते हैं। इन लवणजन तत्वोंमें हरिन्, अरुणि और नैलिन् ये तीन अधिक उपयोगी हैं। अतः हम इन तीनका ही विशेष वर्णन करेंगे।

हरिन्की उपलब्धि

प्रकृतिमें हरिन् तत्व रूपमें नहीं पाया जाता है पर समुद्रके जलमें जितना नमक है, या खानोंसे और पहाड़ोंसे जो नमक निकाला जाता है उसमें हरिन् विद्यमान् रहता है। साधारण नमक जिसका हम व्यवहार करते हैं सैन्धक-हरिद, सैह, होता है। पांशुज हरिद, पां ह, भी जर्मनी आदि देशोंमें बहुत पाया जाता है। हरिन् वायव्यके उत्पन्न करनेकी मुख्य विधियाँ यहाँ दी जावेंगी। शील नामक वैज्ञानिकने सबसे पहले इसकी सं० १८३१ वि० में खोजकी थी।

(१) उद्हरिकाम्ल और मांगनीज़द्विओषिद्-द्वारा हरिन् गैस आसानीसे बनायी जा सकती है। हरिन् गैस बन्द शीशेकी अलमारीमें बनानी चाहिये क्योंकि इसकी गन्ध बड़ी दुःखदायी और हानिप्रद होती है। इस कामके लिये एक बड़ी बोतलमें मांगनीज़द्विओषिद् लो और उसपर थोड़ासा उद्हरिकाम्ल (संपृक्त) डालो। बोतलमें एक काग कसो जिसमें छेद करके वाहक नली लगादो जिसका बाहरी सिरा बेलनमें लटकाओ जिसमें गैस भरनी हो। ऐसा करनेके पश्चात् बोतलको गरम करो। हरिन्गैस उत्पन्न होगी। इसका रंग कुछ हरा होता है जिसके कारण इसका नाम हरिन् रखा गया है। बेलनमें इसे इकट्ठा करलो। इस प्रयोगमें प्रक्रिया इस प्रकार है:—

$$\text{मा ओ}_2 + 4\text{ उ ह} = \text{मा ह}_2 + 2\text{ उ}_2\text{ ओ} + \text{ह}_2$$

मांगनीज़ द्विओषिद्का ओषजन उद्हरिकाम्ल के उद्जनसे सयुक्त होकर पानी बनाता है, और हरिन मुक्त हो जाता है। कुछ हरिन मांगनीज़के साथ मांगनीज़ हरिद, माह$_2$ बनाता है।

इस प्रयोगमें, गरम करनेसे हरिन्के साथ कुछ वायव्य उद्हरिकाम्ल मिश्रित रह सकता है। यदि इकट्ठा करनेके पूर्व हरिन्को पानीके अन्दर प्रवाहित करके झांवा पत्थर और संपृक्त गन्धकाम्ल पर सुखा लिया जायतो शुद्ध हरिन् प्राप्त हो सकता है।

इस प्रयोगमें मांगनीज् द्विओषिद्के स्थानमें पांशुजपरमांगनेत, पांमाओ$_{४}$, या पांशुज द्विरागेत पां$_{२}$ रा$_{२}$ ओ$_{७}$ का भी उपयोग किया जा सकता है:—

(क) २ पां मा ओ$_{४}$ + १६ उ ह = २ पां ह + २ मां ह$_{२}$ + ८ उ$_{२}$ ओ + ५ ह$_{२}$

(ख) पां$_{२}$ रा$_{२}$ ओ$_{७}$ + १४ उह = २ पांह + २ राह$_{३}$ + ७ उ$_{२}$ ओ + ३ ह$_{२}$

(२) उदहरिकाम्ल न लेकर यदि साधारण नमक, सैह, लिया जाय और संपृक्त गन्धकाम्ल तथा मांगनीज् द्विओषिद्के साथ उसे गरम किया जाय तो भी हरिन् प्राप्त हो सकता है। ऐसा करनेमें प्रक्रिया इस प्रकार होगी—

४ सै ह + ३ उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$ + मा ओ$_{२}$
= सै$_{२}$ ग ओ$_{४}$ + २ सै उ ग ओ$_{४}$ + मा ह$_{२}$ + ह$_{२}$ + २ उ$_{२}$ ओ

इस प्रयोगके लिये ११ भाग नमकको ५ भाग मांगनीज् द्विओषिद्से मिलाओ और १४ भाग गन्धकाम्लमें उतना ही पानी मिलाकर गरम करो। ऐसा करनेसे हरिन् गैस आसानीसे निकलती रहेगी।

नमकके स्थानमें कोई भी हरिद लेकर यह प्रयोग किया जा सकता है।

(३) उदहरिकाम्लको वायुके साथ जोरोंसे गरम करनेपर भी हरिन् गैस प्राप्त हो सकती है।

४ उ ह + ओ$_{२}$ = २ ह$_{२}$ + २ उ$_{२}$ ओ

यह विधि रंग विनाशकचूर्णके तैयार करनेमें अधिक काममें लायी जाती है जिसका वर्णन आगे किया जावेगा। रंग विनाशकचूर्ण, ख ओ ह$_{२}$, पर कोई अम्ल डालनेसे हरिन् गैस प्राप्त हो सकती है:—

ख ओ ह$_{२}$ + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$ = ख ग ओ$_{४}$ + उ$_{२}$ओ + ह$_{२}$

(४) नमक या उदहरिकाम्लके विद्युत्-विश्लेषण करनेसे भी हरिन् गैस उत्पन्न हो सकती है:—

२ सै ह = २ सै + ह$_{२}$

हरिन्के गुण

हरिन् गैसका रंग कुछ पीलापन लिये हुए हरा होता है। इसका परमाणु भार ३५.४६ है। और अणुभार ७०.९२ है। एक लीटरका बोझ (सामान्य तापक्रम और दबावपर) ३.२१४ ग्राम है इसकी गन्ध दुःखदायी और कटु होती है। शुद्ध हरिन्को अधिक सूंघ लेनेसे मृत्यु तक हो सकती है। —३४.५° श तक ठंडा करने पर यह द्रवीभूत हो जाती है।

यह पानीमें घुलनशील है। एक भाग पानी २ भाग हरिन्को घुला सकता है। इस घोलको हरिन्-जल कहते हैं। प्रयोगशालाओंमें इसका बहुत उपयोग होता है। यह हवासे ढाई गुनी भारी है।

हरिन् उदजनसे बड़ी तीव्रतासे संयुक्त हो सकती है। हरिन्को उदजनके साथ मिलाकर सूरजकी रोशनी में रखदो। थोड़ी देरमें ही विस्फुटनके साथ दोनों मिलकर उदहरिकाम्ल बनावेंगे।

उ$_{२}$ + ह$_{२}$ = २उह

छन्ना कागजको तारपीनके तैलमें भिगोकर हरिन् गैसमें डाल दो। तारपीनके तैल, क$_{१०}$ उ$_{१६}$ में से हरिन् उदजनको इतनी तीव्रतासे खींचती है कि तैल जलने लगता है और कर्बनका काला धुआं छा जाता है। इसी प्रकार यदि मोमबत्ती जलाकर हरिन्में छोड़ी जाय तो बत्ती जलती रहेगी और मोमका उदजन हरिन्से संयुक्त होजायगा। इस प्रयोगमें भी बहुत काला धुंआ उठेगा।

नम हरिन् धातुओंसे भी आसानीसे अपने आप संयुक्त हो सकती है। किसी बर्त्तनमेंसे यदि हवा निकाललो जाय और हरिन् तथा ताम्रपत्र रख दिये जायँ तो ताम्र हरिद ताह$_{२}$ की पीली वाष्पें उठने लगेंगी। आञ्जनम् भी हरिन्से इस तीव्रतासे संयुक्त होकर आ ह$_{३}$ बनाता है कि चिनगारियाँ छूटने लगती हैं।

सैन्धकम् हरिन्में जलकर सैन्धक हरिद, सैह,

बनाता है और स्फुर हरिन्के साथ त्रिहरिद और पंचहरिद, स्फुह$_3$, स्फुह$_5$ बनाता है।

यदि हरी या किसी और रंगकी पत्ती पानीमें भिगोकर हरिन् गैसमें डाल दी जाय तो पत्तीका रंग उड़ जाता है। यह इसलिये होता है कि हरिन् पानीके संसर्गसे उदहरिकाम्ल बनाता है और ओषजन मुक्त होजाता है:—

$$४ह + २उ_2 ओ = ४उह + ओ_2$$
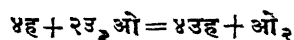
यह ओषजन पत्तीके रंगका ओषदीकरण करता है। इसलिये रंग नष्ट होजाता है। इस प्रकार हरिन् रंग-विनाशक है पर रंग-विनाशके लिये पानी होना अत्यावश्यक है।

अरुणिन्की उपलब्धि।

सं० १८८३ वि० में बैलर्ड नामक फ्रेंच वैज्ञानिकने इसकी खोजकी थी, यह लाल रंगका द्रव पदार्थ है अतः इसका नाम अरुणिन् पड़ा है। यह समुद्र जलमें ०.००६ प्रतिशतके लगभग सैन्धक-, पांशुज-, मगनीस-अरुणिदोंके रूपमें पाया जाता है और स्टैसफोर्टमें पांशुजम्के साथ विद्यमान है। इसके उत्पन्न करनेकी विधियां यहाँ दी जाती हैं।

(१) पांशुज अरुणिदको संपृक्त गन्धकाम्ल और मांगनीज़ द्विओषिदके साथ गरम करनेसे अरुणिन् प्राप्त हो सकता है। यह विधि हरिन्की विधिसे बिलकुल मिलती जुलती है।

$$२ पांरु + माओ_2 + ३उ_2 गओ_4$$
$$= रु_2 + पां उगओ_4 + मागओ_4 + उ_2 ओ$$
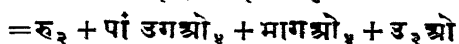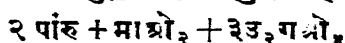
प्रयोगके लिये एक भपकेमें २.५ ग्राम पांशुज अरुणिद लो और इसमें ७ ग्राम मांगनीज़द्विओषिद मिलादो। १५ घन श. मी. गन्धकाम्लमें ६० ग्राम पानी डालकर भपकेमें डालो। भपकेको गरमकरो, एक बोतल लगादो जिसकी पेंदी पानीमें डूबी हो। भपकेको गरम करो, अरुणिन् बोतलमें स्रवित हो जावेगी। इस प्रयोगको बन्द खिड़कीमें करना चाहिये क्योंकि अरुणिन्की वाष्पें अत्यन्त ही दुःखदायी होती हैं, और हरिन्से भी अधिक कष्ट देती हैं। अरुणिन् द्रव यदि हाथ पर गिड़ पड़ेगा तो घाव कर देगा अतः प्रयोग बड़ीही सावधानीसे करना चाहिये।

(२) अरुणिन् उत्पन्न करनेकी दूसरी विधि इस प्रकार है—परखनलीमें १ ग्राम पांशुज हरिद्-को दो ग्राम पानीमें घोलो। और घोलको खूब ठंडा रखो। नलीमें हरिन् वायव्य धीरे धीरे प्रवाहित करो। ऐसा करनेसे अरुणिन्की लाल बूंदे नलीके तलमें बैठने लगेंगी। नलीको गरम करनेसे अरुणिन्की लाल वाष्पें निकल सकती हैं। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

$$२ पांरु + ह_2 = २पांह + रु_2$$
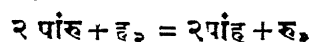
इसी विधिके अनुसार अरुणिन् व्यापारिक मात्रामें तैयारकी जाती है।

अरुणिन्के गुण

यह घोर लाल रंगका द्रव पदार्थ है जिसका ०°श पर घनत्व ३.११८ है। इसकी लाल रंगकी वाष्पें अत्यन्त विषमयी होती हैं, इसकी गन्ध दुखदायी होती है। यह ठोसाकार किया जा सकता है। ठोस अरुणिन्का द्रवांक—७.३° है। द्रवका क्वथनांक ५८.८° है।

२००°श पर अरुणिन्का वाष्पघनत्व ८० के लगभग है अतः इसका अणुभार ८० × २ = १६० हुआ। इसका परमाणुभार ७९.९२ है अतः इसके एक अणुमें दो परमाणु हैं। इसका सूत्र रु$_2$ है।

हरिन्के समान अरुणिन् भी अनेक तत्वोंसे आसानीसे संयुक्त हो सकता है। स्फुरके साथ संयुक्त होकर यह स्फुर पंच अरुणिद स्फुरु$_5$ बनाता है। संक्षोणम्के साथ क्षरु$_3$ यौगिक बनाता है। पांशुजम्से शीघ्रतापूर्वक संयुक्त होकर पांरु देता है। पर यह सैन्धकम्से आसानीसे संयुक्त नहीं होता। सैरु बनानेके लिये २००° तापक्रमकी या पानी की आवश्यकता पड़ेगी।

अरुणिन् हरिन्के समान रंग विनाशक है, रंग विनाशके लिये पूर्ववत् पानीका होना आवश्यक है।

$$२ रु_2 + २उ_2 ओ = ४उ रु + ओ_2$$
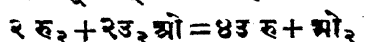
यह ओषजन फूल पत्तीके रंगका ओषदीकरण कर देता है।

नैलिन्की उपलब्धि

सं० १८६८ वि०में फ्रेञ्च रसायनज्ञ कुर्त्तुआने इस तत्वका अन्वेषण किया। समुद्री नरकुलोंके जलानेसे जो राख बची थी, उसमेंसे इसकी प्राप्ति की गई। इसका रंग नीला होता है अतः इसका नाम नैलिन् रक्खा गया है। यह समुद्रमें थोड़ीसी मात्रामें पाया जाता है, वहांसे ही इसका प्रवेश समुद्री नरकुलोंमें होता है। इनकी राखमें जिसे अंग्रेज़ी में केल्प कहते हैं नैलिन् ०.१ से ०.३ प्रति शत तक विद्यमान है। चिली देशके शोराके साथ साथ ०.२ प्रति शत सैन्धक नैलेत भी विद्यमान है। यह मछलियोंमें भी पाया गया है।

केल्पमें नैलिन् नैलिदोंके रूपमें रहता है। इसके साथ साथ बहुतसे गन्धेत, हरिद, अरुणिद आदि भी रहते हैं। घोल गरम करके रवा बनने के लिये रख दिया जाता है जिसमें गन्धेत, हरिद आदिके रवे पहले बन जाते हैं और वे पृथक् कर लिये जाते हैं। अवशिष्ट द्रवमें अब पांशुज नैलिद रह जाता है।

पांशुज नैलिदके घोलमें बूँद बूँद करके हरिन्-जल डालो। पहले लालभूरा रंग प्रतीत होगा क्योंकि नैलिन् मुक्त होकर पांशुज नैलिदमें घुल गया है। थोड़ासा हरिन् जल और डालनेसे और नैलिन् निकलता है। इस प्रकार धीरे धीरे सब नैलिन् निकलकर बर्त्तनमें (या परख नलीमें) काले अवक्षेपके रूपमें बैठ जाता है। नैलिन्के ऊपरका पानी थोड़ा पीलापन लिये होता है क्योंकि नैलिन् ३६१६ भाग जल में केवल १ भाग ही घुलनशील है। नैलिन्के रवे सुखाये जा सकते हैं। इनको गरम करनेसे नीले रंगकी वाष्पें उठेंगी। इस प्रयोगमें प्रक्रिया इस प्रकार थी—

$$\text{२ पां नै} + \text{ह}_2 = \text{२ पां ह} + \text{नै}_2$$

नैलिन्के उत्पन्न करनेकी दूसरी विधि वैसी ही है जैसी अरुणिन् और हरिन्की थी। अर्थात् पांशुज नैलिदको मांगनीज-द्विओषिदके साथ संपृक्त गन्धकाम्ल डालकर गरम करते हैं। ऐसा करनेसे नैलिन्की वाष्पें उठने लगतीं हैं। प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$\text{२ पां नै} + \text{मा ओ}_2 + \text{३ उ}_2 \text{ग ओ}_4 = \text{नै}_2 + \text{२ पां उ ग ओ}_4 + \text{मा ग ओ}_4 + \text{२ उ}_2\text{ओ}$$

आजकल नैलिन् सैन्धकम् नैलेत, सै नै ओ$_3$, से उत्पन्न किया जाता है। इस कामके लिये गन्धकाम्ल और सैन्धक अर्धगन्धित, सै ग उ ओ$_3$ काममें लाया जाता है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$(\text{क})\ \text{सै नै ओ}_3 + \text{३ उ}_2 \text{ग ओ}_3 = \text{सै उ ग ओ}_4 + \text{उ नै ओ}_3$$

$$(\text{ख})\ \text{उ नै ओ}_3 + \text{५ उ}_2 \text{ग ओ}_3 = \text{नै}_2 + \text{५ उ}_2 \text{ग ओ}_4 + \text{उ}_2\text{ओ}$$

इसमें सै उ ग ओ$_3$ से उ$_2$ ग ओ$_3$ उत्पन्न हो जाता है।

नैलिन्के गुण

यह काले खाकी रंगका ठोस पदार्थ है जो अपारदर्शी है। इसमें धातुकी सी कुछ चमक रहती है। इसका आपेक्षिक घनत्व ४.९४८ है, द्रवांक ११४.२° और क्वथनांक १८४.३५° है। इसकी वाष्पका बहुत सुन्दर नीला रंग होता है।

इसका वाष्प घनत्व १२६ है अतः अणुभार १२६ × २ = २५२ हुआ। इसका परमाणुभार १२६ है अतः इसके एक अणुमें २ परमाणु हैं। नैलिन्का वाष्प घनत्व ७००°श तक तो १२६ रहता है पर और अधिक गरम करनेसे इसमें कमी होती जाती है। यहाँ तक कि १७००°श पर जाकर घनत्वमें कमी होना बन्द होजाती है। १७००°श पर घनत्व केवल ६३ रह जाता है जिसके अनुसार ६३ × २=१२६ रह जाता है अर्थात् इस तापक्रमपर इसके एक अणुमें एक ही परमाणु रह जाता है। यह परिवर्त्तन इस प्रकार हुआ—

$$\text{नै}_2 \rightleftharpoons \text{२ नै}$$

हरिन् और अरुणिनके विषयमें ऐसा नहीं होता है।

नैलिन् पानीमें बहुत कम घुलनशील है। केवल ३६१३ भाग पानीमें १ भाग। अतः नैलिनको पानी के साथ हिलानेसे घोलमें थोड़ा सा पीलापन ही आता है। पांशुज नैलिदमें घुलकर यह पां नै$_3$ यौगिक बनाता है—

पां नै + नै$_2$ = पां नै$_3$

इस कारण इसका रंग लाल भूरा हो जाता है।

हरोपिपील (क्लोरोफार्म) और कर्बनद्विगन्धिद में नैलिन घुलकर नीले रंगका घोल देता है। यह मद्यमें भी घुलनशील है। ½ औंस नैलिनको ½ औंस पांशुज नैलिद और १ पिंट शोधित मद्यमें घोलनेसे एक ओषधि बनती है जिसे अंग्रेज़ीमें 'टिंक्चर आव् आयोडिन' (Tincture of Iodine) कहते हैं।

नैलिन् मांडीके घोलके साथ घोर नीला रंग देता है। मांड़ीको पीसकर परखनलीमें पानीके साथ उबाल लेना चाहिये। तब ठंडे घोलमें नैलिनकी एक बूंद डालनेसे नीला रंग प्राप्त होगा। नैलिन्की परीक्षा इसी प्रकारकी जाती है।

यह तत्व स्फुर, पारदम् आदि तत्वोंसे संयुक्त होकर अरुणिन और हरिन्के समान नैलिद बनाता है।

सर्व सिद्धान्त संग्रह

(गताङ्क से आगे)

[ले०—श्री गंगाप्रसादजी उपाध्याय, एम. ए.]

वैभाषिक मतम्।

सौत्रान्तिकमतादल्प भेदो वैभाषिके मते।
प्रत्यक्षत्वं तु बाह्यस्य क्वचिद्देवानुमेयता॥ १॥

सौत्रान्तिक मतसे वैभाषिक मतमें थोड़ा ही भेद है अर्थात् बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष है। अनुमान केवल कहीं कहीं ही लगता है॥ १॥

पूर्व परानुभावेन पुञ्जीभूतास्सहस्रशः।
परमाणु न एकत्वं एवात्र बाह्यार्थघनवत् स्थिताः॥२॥

परमाणुओंमें आगे पीछे रक्खे जा सकनेका स्वभाव है। इसीसे हज़ारों परमाणुओंका पुंज बनकर बाह्य पदार्थोंमें स्थूलता आती है॥ २॥

दूरादेव वनं पश्यन् गत्वा तस्यान्तिकं पुनः।
न वनं पश्यति क्वापि वल्लीवृक्षातिरेकतः॥ ३॥

दूरसे बनको देखकर जब उसके पास जाते हैं तो वहां वल्ली और वृक्षके अतिरिक्त कोई ऐसी चीज़ नहीं दिखाई देती जिसे बन कहा जासके॥ ३॥

मृदो घटत्वमायान्ति कपालत्वन्तु ते घटाः।
कपालानि च चूर्णत्वं ते पुनः परमाणुताम्॥ ४॥

मट्टीमें घटत्व आजाता है। घड़ोंमें कपालत्व। (कपाल कहते हैं, घड़ेके टुकड़ोंके) घड़ेके टुकड़े चूर चूर होकर फिर परमाणु के रूपमें हो जाते हैं॥ ४॥

चतुर्णामपि बौद्धानामैक्यमध्यात्मनिर्णये।
व्यावहारिक भेदेन विवदन्ते परस्परम्॥ ५॥

अध्यात्मके निर्णयमें चारों बौद्ध एक हैं। केवल व्यवहारकी बातोंमें उनमें परस्पर विवाद है॥ ५॥

बुद्धतत्वे स्थिता बौद्धा बुद्धिवृत्तिर्द्विधा मता।
ज्ञानाज्ञानात्मिका चेति तत्र ज्ञानात्मिकामिह॥ ६॥

प्रमाणत्वेन जानन्ति ह्यविद्यामूलिका प्रमा।
मूलाज्ञाननिमित्तान्या स्कन्धायतनधातुजा॥ ७॥

बौद्ध वह है जो बुद्धि तत्त्वको मानने वाले हैं। बुद्धिकी वृत्ति दो तरहकी है। एक ज्ञानात्मिक, दूसरी अज्ञानात्मिक। ज्ञानात्मिक बुद्धिसे यथार्थ तत्व जाना जाता है। दूसरी अज्ञानात्मिका बुद्धि है जो अविद्याका कारण है। यह बुद्धि स्कन्ध, आयतन और धातुसे पैदा होती है।

प्रपञ्चजातमखिलं शरीरं भुवनात्मकम्।
पञ्चस्कन्धा भवन्त्यत्र द्वादशायतनानि च॥ ८॥

सर्वेषामपि बौद्धानां तथाष्टादश धातवः।
ज्ञान संस्कार संज्ञानां वेदनारूपयोरपि॥ ९॥

समूहः स्कन्धशब्दार्थः तत्तत्सन्तति वाचकः ।
ज्ञानसन्ततिरेवात्र विज्ञानस्कन्ध उच्यते ॥ १० ॥

सब बौद्धों का यह मत है कि समस्त प्रपंच संसार रूपी शरीर है। उसमें पांच स्कन्ध हैं। बारह आयतन हैं और अठारह धातु हैं। पांच स्कन्ध यह हैं ज्ञानस्कन्ध, संस्कारस्कन्ध। संज्ञा-स्कन्ध, वेदनास्कन्ध, रूपस्कन्ध। स्कन्धशब्द का अर्थ है समूह। इस प्रकार जिस जिसका समूह है उसीके नाम पर वह स्कन्ध है। जैसे ज्ञानके समूह या धाराको विज्ञान स्कन्ध कहते हैं। ८—१०

संस्कार स्कन्ध इत्युक्तो वासनानान्तु संहतिः ।
सुख दुःखात्मिका बुद्धिस्तथा पेच्छात्मिका च सा ॥११
वेदनास्कन्ध इत्युक्तः संज्ञास्कन्धस्तु नाम यत् ।
रूपस्कन्धो भवत्यत्र मूर्तिभूतस्य संहति ॥ १२ ॥

वासनाके समूहको संस्कार स्कन्ध कहते हैं। सुख दुःख तथा इच्छा वाली बुद्धिको वेदना-स्कन्ध कहते हैं। नामको संज्ञा स्कन्ध कहते हैं। मूर्त्तिमान चीज़ोंके समूहका नाम रूपस्कन्ध है। ११—१२

रूपस्योपचयः स्तम्भकुम्भादिरणु कल्पितः ।
पृथिव्यास्सथैर्यरूपादि द्रवत्वादि भवेदयाम् ॥ १३ ॥

खम्भा, घड़ा आदि मूर्त्तिमान पदार्थ अणुओंसे बने हैं। पृथ्वीका गुण है कड़ापन तथा रूप। जल का द्रवत्व ॥ १३ ॥

उष्णत्वं तेजसोधातोर्वायुधातोस्तु शीतलः ।
एषां चतुर्णांधातूनां वर्णगन्धरसौजसाम् ॥ १४ ॥
पिण्डाज्जाताः पृथिव्याद्याः परमाणुचयाअमी ।
श्रोत्रन्त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं प्रत्ययपञ्चकम् ॥१५

अग्नि धातुका गुण गर्मी है और वायु का ठण्डक। इन चारों धातुओंके रूप, गन्ध, रस और गर्मीको मिलाकर यह पृथ्वी आदि बने हैं। कान, खाल, आँख, जिह्वा और नाक यह पांच प्रत्यय या ज्ञानेन्द्रियां हैं।

वाक्पाद पाणि पाय्वादि ज्ञेयं कारकपञ्चकम् ।
सामुदायिक चैतन्यं बुद्धिः स्यात्करणंमनः ॥१६॥

वाणी, पैर हाथ, मल त्यागने के स्थान यह कारक पंचक अर्थात् पांच कर्म-इन्द्रियां हैं। पर-माणुओंके समुदायमें जो चेतनता है उसका नाम बुद्धि है। मन करण या साधन है (जिसके द्वारा बुद्धि सुख तथा दुःखका अनुमान करती है) ॥ १६ ॥

नामजाति गुण द्रव्य क्रिया रूपेण पञ्चधा ।
कल्पितं भ्रान्तदृष्ट्यैव शरीरभुवनात्मकम् ॥ १७

संसार रूपी शरीरको भूलसे नाम जाति, गुण, द्रव्य, तथा क्रियाके विचारसे पांच रूप वाला मान लिया गया है ॥ १७ ॥

बौद्धशास्त्र प्रमेयन्तु प्रमाणं द्विविधंमतम् ।
कल्पनां पोढ़मभ्रान्तं प्रत्यक्षं कल्पना पुनः ॥ १८ ॥
नाम जाति गुण द्रव्य क्रियारूपेण पञ्चधा ।
लिङ्गदर्शनतो ज्ञानं लिङ्गन्यत्रानुमानता ॥ १९ ॥

बौद्धशास्त्रों के अनुसार प्रमाण दो प्रकार का है। पहला प्रत्यक्ष प्रमाण जो कल्पना और भ्रान्ति, से रहित हो। कल्पना पाँच प्रकारके रूपवाली है नाम, जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया। लिङ्ग (चिह्न) के देखने से लिङ्गी का जो ज्ञान होता है उसे अनु-मान कहते हैं। १८। १९।

चतुर्विधं यदज्ञानं प्रमाणाभ्यां निवर्त्तते ।
नष्टे चतुर्विधेऽज्ञाने मूला ज्ञानं निवर्तते ॥२०॥

जो चार प्रकार का अज्ञान है वह इन दो प्रमाणों से दूर हो जाता है। इस चार प्रकारके अज्ञानके दूर होने पर मूल अज्ञान दूर होता है ॥२०॥

मूलाज्ञाननिवृत्तौ च विशुद्ध ज्ञानसन्ततिः ।
शुद्ध बुद्ध्यविशेषो हि मोक्षो बुद्धमुनीरितः ॥२१॥

मूल अज्ञान के दूर होनेपर शुद्ध ज्ञानकी धारा उत्पन्न होती है। बुद्ध मुनि ने कहा है कि यह शुद्ध बुद्धि ही मोक्ष है ॥२१॥

उत्पत्तिस्थिति भङ्ग दोष रहितां सर्वाशयोन्मूलिनीं
ग्राह्योत्सर्गवियोगयोगजनितां नाभावाभावान्विताम् ।
तामन्तद्वयवर्जितां निरुपमामाकाशवन्निर्मलां
प्रज्ञां पारमितां धनस्य जननीं शरणवन्तु बुद्धयर्थिनः॥२२

हे बुद्धि के चाहने वालो! उस प्रज्ञा (बुद्धि) को सुनो जो उत्पत्ति, स्थिति और नाशके दोष से रहित है, जो सब इच्छाओंको जड़से काटने वाली है, जो ग्रहण करने तथा छोड़ने आदि द्वन्द्वों के झगड़ोंसे रहित योग से उत्पन्न होती है। जो भाव और अभाव दोनों से परे है, जिसके भीतर द्वन्द्व नहीं हैं। जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती, जो आकाशके समान निर्मल है, जो बड़ी है और धन को उत्पन्न करने वाली है ॥२२॥

अतिस्तुतिपरैरुक्तो यस्तु वैशेषिकादिभिः।
ईश्वरो नेष्यतेऽस्माभिः स निराक्रियतेऽधुना ॥२३॥

वैशेषिक आदि बहुत खुशामद करने वालोंने जो ईश्वर माना है उसे हम नहीं मानते। अब उसका खण्डन करेंगे ॥२३॥

हेयोपादेय तत्वञ्च मोक्षोपायञ्चवेत्ति यः।
स एव नः प्रमाणं स्यान्न सर्वज्ञस्त्वयेरितः ॥२४॥

हम उसीको प्रमाण मानते हैं जो त्याग ने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्त्वको तथा मोक्षके उपायको जानता है। तुम्हारे कहे हुये सर्वज्ञ ईश्वरको नहीं मानते ॥२४॥

दूरं पश्यतु वा मा वा तत्वमिष्टं प्रपश्यतु।
प्रमाणं दूरदर्शी चेद्वयं गृध्रानुपास्महे ॥२५॥

दूरकी वस्तु देख सके या न देख सके। मतलबकी बातको देखे। अगर दूरदर्शीको ही प्रमाण मानता हो तो हम गिद्ध की उपासना करेंगे क्यों कि गिद्ध बहुत दूर की वस्तु देख लेता है।

देशेपिपीलिकादीनां सङ्ख्याज्ञः कश्चिदस्तिकिम्।
सर्वकर्तृत्वमीशस्य कथितं नोपपद्यते ॥२६॥

क्या कोई देश में ऐसा है जो चींटियों वगैरः की संख्या जानता है। जो तुमने कहा कि ईश्वर सबको बनाता है। यह बात युक्ति शून्य है। ॥ २६ ॥

यदि स्यात् सर्वकर्त्ताऽसावधर्मेऽपि प्रवर्तयेत्।
अयुक्तं कारयन् लोकान् कथं युक्ते प्रवर्तयेत् ॥२७॥

अगर ईश्वर को सब चीज़ों का बनाने वाला कहो तो अधर्म में प्रवृत्तिकराने वाला भी वही हुआ। जब अनुचित चीज़ोंको आदमियों से कराता है तो उचित कार्यों में उनकी प्रवृत्ति कैसे करा सकता है ॥२७॥

उपेक्षैव च साधूनां युक्तासाधौ क्रियाभवेत्।
न क्षत क्षारविक्षेपः साधूनां साधुचेष्टितम् ॥२८॥

अच्छे पुरुषों को यही उचित है कि वह बुरे काम में उपेक्षा करें। अच्छे आदमियोंको यह शोभा नहीं देता कि घाव में नमक छिड़का करें ॥२८॥

ईश्वरेणैव शास्त्राणि सर्वाण्यधिकृतानिचेत्।
कथं प्रमाणं तद्वाक्यं पूर्वापर पराहतम् ॥२९॥

अगर सब शास्त्र ईश्वरके ही बनाये हैं तो उनको प्रमाण कैसा मानाजाय क्योंकि उनमें पूर्वापर विरोध है ॥२९॥

कारयेद्धर्ममात्रञ्चेदेकशास्त्रप्रवर्तकः।
कथं प्रादेशिकस्यास्य सर्वकर्तृत्वमुच्यते ॥३०॥

यदि वह केवल धर्म में ही प्रवृत्ति कराता है तो वह केवल एक शास्त्रका ही प्रवर्त्तक ठहरा। जो एक देशीय कर्त्ता हो उसको सबका बनाने वाला कैसे कह सकते हैं ॥३०॥

ईशः प्रयोजनाकाङ्क्षीजगत् सृजति वा न वा।
काङ्क्षते चेदसंपूर्णोना चेन्नैव प्रवर्तते ॥३१॥

ईश्वर जगतके बनाने में प्रयोजन रखता है या नहीं। यदि रखता है तो अपूर्ण है। यदि नहीं रखता तो बनाता कैसे है ॥३१॥

प्रवर्त्ततेकिमंशस्ते भ्रान्तवन्निष्प्रयोजने।
छागादीनां पुरीषादेर्वर्तुलीकरणेनकिम् ॥३२॥

क्या तुम्हारा ईश्वर भूले आदमियों के समान बिना प्रयोजन के काम करता है, भला बताओ कि बकरी आदिके मलको गोल गोल बनानेका क्या प्रयोजन है? ॥३२॥

क्रीडार्थेयं प्रवृत्तिश्चेत् क्रीडते किन्नु बालवत्।
अजस्र क्रीडतस्तस्य दुःखमेव भवेत्यलम् ॥३३॥

यदि कहो कि वह क्रीड़ा के लिये काम करता है तो क्या बच्चों के समान खेलता है। लगातार

खेलते रहने से तो अन्त में दुःख ही होता होगा ॥३३॥

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः ।
ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेवच ॥ ३४ ॥

(तुम्हारे कहने के अनुसार तो) यह मूर्ख जीव अपने आत्मा, मन, सुख और दुःख पर कोई वश नहीं रखता। ईश्वर की प्रेरणा से चाहे स्वर्ग जाय चाहे नर्क में ॥ ३४ ॥

तत्र लोहाभितापाद्यैरीशेनाल्प सुखेच्छुना ।
प्राणिनो नरके कष्टेवत्र प्राणैर्वियोजिताः ॥ ३५ ॥

ईश्वर अपनी थोड़ी से सुख की इच्छा से प्राणियों को नरक में डाल कर गर्म लोहे से कष्ट देकर उनके प्राण निकालता है॥ ३५ ॥

वरप्रदाने शक्तश्चेत् ब्रह्महत्यादि कारिणे ।
स्वर्गं दद्यात् स्वतंत्रः स्यान् नरकं सोमयाजिने ।३६

यदि ईश्वर में वर देने की शक्ति है तो ब्रह्म हत्यादि पाप करने वाले को स्वर्ग और सोमयज्ञ करने वाले को नरक क्यों नहीं देता। ३६ ॥

कर्मानुगुणदाता चेदीशः स्यादखिलोजनः ।
दाने स्वातंत्र्यहीनस्सन् सर्वेशः कर्मयुच्यते । ३७ ।

यदि कहो कि कर्मों के अनुसार फल देता है तो इस हिसाब से सभी लोग ईश्वर हैं। जो दान देने में स्वतंत्र नहीं उसको सर्वेश क्यों कहते हो ॥ ३७ ॥

एवं नैयायिकाद्युक्त सर्वज्ञेशनिराक्रिया ।
हेयोपादेय मात्रज्ञो ग्राह्य बुद्धमुनिस्ततः ।।३८।

इस प्रकार नैयायिक आदि लोगों के सर्वज्ञ ईश्वर का खण्डन हो गया। इसलिये बुद्ध मुनि को ही मानना चाहिये जो ग्रहण करने योग्य और छोड़ने योग्य वस्तुओं को जानता है ॥३८ ॥

चैत्यं वन्देतचैत्याद्या धर्मा बुद्धागमोदिताः ।
अनुष्ठेया न यागाद्या वेदाद्यागमचोदिता । ३९ ॥

चैत्य (स्तूप) को नमस्कार करना चाहिये स्तूप आदि सम्बन्धी धर्म बुद्ध शास्त्र में बताये गये हैं वेदादि शास्त्रों में बताये हुए यज्ञ आदि नहीं करने चाहिये। ३९।

क्रियायां देवतायाञ्च योगे शून्यपदे क्रमात् ।
वैभाषिकादयो बौद्धाः स्थिताश्चत्वारएवते ॥४०॥

वैभाषिक आदि चार प्रकार के बौद्ध हैं। वे क्रिया, देवता, योग और शून्य चार बातों पर बल देते हैं ॥ ४० ॥

इति बौद्धपक्षे वैभाषिक मतम् ।
यह बौद्धपक्ष में वैभाषिक मत हुआ ।

लोकायतार्हत माध्यमिक योगाचार सौत्रान्तिक
वैभाषिक मतानि षट् समाप्तानि ।

यह लोकायत, आर्हत, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक छः मत समाप्त हुये।

इति श्री मच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्वदर्शन
सिद्धान्तसंग्रहे बौद्धपक्षो नामचतुर्थप्रकरणम् ॥

यह श्री शंकराचार्य विरचित सर्वदर्शन सिद्धान्तसंग्रह का बौद्ध पक्ष नामी चौथा प्रकरण समाप्त हुआ।

पांचवां अध्याय

अथ वैशेषिक पक्षः

नास्तिकान् वेदबाह्यांस्तान बौद्धलोकायतार्हतान् ।
निराकरोति वेदार्थवादी वैशेषिकोऽधुना ॥१॥

बौद्ध, लोकायत और आर्हत जो वेद विरुद्ध नास्तिक मत हैं उनका अब वेदानुयायी वैशेषिक खण्डन करता है। १।

वेद मार्ग परिभ्रष्टा विशिष्टाः परदर्शने ।
बौद्धादयो विशिष्टास्ते न भवन्ति द्विजाः पुनः ।२।

वेद मार्ग से भ्रष्ट दूसरे दर्शनों में मान पाने वाले बौद्ध आदि लोग अपने ही दर्शनों तक मान के योग्य हैं। ब्राह्मण नहीं हैं। २।

अतो बुद्धादिभिर्नित्यं वेदब्राह्मणनिन्दया ।
आत्मवञ्चकता कष्टा सर्वत्रा घोषिता भुवि ।।३।।

इसलिये बुद्ध आदि लोगों ने वेद और ब्राह्मण की निन्दा करके हर जगह संसार में अपनी ही दयनीय आत्मवञ्चकता (अपनी आत्मा को धोखा

देना) प्रसिद्ध की है। अर्थात् यह लोग अपने ही आत्मा को धोखा देते हैं।

प्रमाणमेव वेदास्स्युः सर्वेश्वरकृतत्वतः।
स एव कर्मफलदो जीवानां पारिशेष्यतः ॥ ४ ॥

ईश्वर के बनाये होने से वेद प्रमाणिक हैं पारिशेष्य युक्ति से ही वही जीवों का फल दाता सिद्ध होता है। ४ ॥

पारिशेष्य युक्ति यह है:—सब जीव फल की इच्छासे कर्म करते हैं। जीवों में से कोई एक दूसरे को फल नहीं दे सकता। उसके लिये जीवों से भिन्न (पृथक् बचा हुआ) कोई फलदाता होना चाहिये। जो सब फल की इच्छा करने वाले जीवों को फल दे सके। वही ईश्वर है।

जीवा वा जीव कर्माणि प्रकृतिः परमाणवः ॥
नेशते ह्यत्र जीवानां तत्तत्कर्मफलार्पणे ॥ ५ ॥

न जीव, न कर्म, न प्रकृति, न परमाणु इस संसार में जीवों के किये हुए कर्मों के फल देने में समर्थ है। ५।

जीवाः कर्मफलावाप्तौ शक्ताश्चेत्स्वसुखेरताः।
अप्रार्थितानि दुःखानि वारयन्तु प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

अगर अपने सुख में रमे हुए जीव ही कर्म के फलके पाने में समर्थ होते तो वह परिश्रम करके न चाहे हुये दुःखों से दूर रह सकते। परन्तु ऐसा नहीं होता। कभी चाहे हुए सुख मिलते हैं कभी न चाहे हुये दुःख भी मिलते हैं ॥ ६॥

अशक्तान्यत्र कर्माणि जीवानां स्वफलार्पणे।
अचेतनत्वादगतेः स्वर्गादिफल भूमिषु ॥ ७ ॥

कर्म जीवों को स्वयं फल नहीं दे सकते। क्योंकि न तो वह चेतन हैं न उनकी स्वर्गादि फल क्षेत्र में गति है ॥ ७ ॥

नाचतेनत्वात्प्रकृतेः फलदातृत्वसम्भवः।
अचेतनाः फलं दातुमशक्ताः परमाणवः ॥ ८ ॥

अचेतन होने से प्रकृति भी फल देने में समर्थ नहीं है। इसी प्रकार अचेतन परमाणु भी देने में असमर्थ हैं ॥८॥

कालोऽप्यचेतनस्तेषां नहि कर्मफलप्रदः।
अतोऽन्यः फलदो लोकेभवत्येभ्यो विलक्षणः।९।

काल भी अचेतन है इसलिये वह भी कर्मों के फल का दाता नहीं होसकता। इसलिये संसारमें कोई और ही विलक्षण शक्ति फल देने वाली होनी चाहिये ॥६।

स तु प्राणि विशेषांश्च देशानपि तदाश्रयान्।
जानन् सर्वज्ञ एवेष्टो नान्ये बौद्धादि संमताः।१०।

वही ईश्वर भिन्न २ प्राणियों को और देशों को जहाँ वह रहते हैं जानता है। इसलिये उस को सर्वज्ञ मानना चाहिये। न कि बौद्ध आदि दूसरे लोगों के बताये हुये ॥१०॥

अजानन् प्राणिनो लोके हेयापादेय मात्रवित्।
प्रादेशिको न सर्वज्ञो नास्मदादि विलक्षणः ॥११॥

बौद्ध लोग जिसको मानते हैं वह केवल त्यागने और ग्रहण करने के योग्य बातों को जानता है। उसको सब प्राणियों का ज्ञान नहीं है। वह परिमित ज्ञानवाला है। सर्वज्ञ नहीं है। इसलिये हम जैसे लोगों से उसमें कोई भी विलक्षणता नहीं है ॥ ११॥

वेदैकदेशं दृष्ट्वा तु कारीरी वृष्टिबोधकम्।
अदृष्टयोश्च विश्वासः कार्यः स्वर्गापवर्गयोः।१२॥

वेद के एक देश को जिसमें कारीरीनामी यज्ञ के करने से वर्षा हो जाती है ऐसा जानकर स्वर्ग और मोक्ष आदि अदृष्ट चीजों पर भी विश्वास करना चाहिये ॥१२॥

कारीरीष्ट्युक्त वृष्टिश्च दृष्टव्यादृष्ट निर्णये।
चित्रादेः पुत्र पश्वाप्तिर्दृष्टव्यादृष्ट निर्णये ॥१३॥

अदृष्ट के निर्णय के लिये कारीरी यज्ञ से होने वाली वृष्टि का दृष्टान्त लेना चाहिये। अदृश्य के निर्णय के लिये चित्रा आदि यज्ञ से पुत्र और पशु आदि की प्राप्ति का दृष्टान्त लेना चाहिये। (वेद कहता है कि कारीरी यज्ञ करो तो वर्षा होगी यज्ञ किया गया और वर्षा हुई। इसी प्रकार चित्रा आदि यज्ञों से भी पुत्र पश्वादि की भी प्राप्ति हुई इससे सिद्ध है कि वेदों में ही

हुई अन्य बातें भी जिनका अनुभव यहाँ नहीं हो सकता ठीक ही होंगी) ॥१३॥

ज्योतिश्शास्त्रोक्तकार्यस्य ग्रहणं तन्निदर्शनम्।
दृष्टैक देशप्रामाण्यं प्रत्युक्तं सोगतादिभिः ॥१४॥
तच्च वेदादपहृतं सर्वं लोकप्रतारकैः।
मन्त्र व्याकरणं दृष्ट्वा मन्त्रा विरचिताः पुनः ॥१५॥

ज्योतिशास्त्रमें कहा बात ठीक होनेका प्रमाण ग्रहण (सूर्य और चन्द्रग्रहण) से मिलता है। और जो बुद्ध आदिने केवल उस चीज़को प्रमाणिक माना है जो देखी गई हो यह उन संसारके धोखा देनेवालोंने वेदोंसे लेली है। मंत्रोंका व्याकरण पढ़कर फिर मंत्र बना लिये हैं ॥१५॥

ऌपि सम्मिश्र जानास्ते सिद्ध मन्त्रस्तथाकृताः।
बौद्धागमेभ्यो दृष्टार्थो न हृता वैदिकैः कचित् १६

अक्षरोंके विशेष प्रकारसे जोड़नेसे (जादू टोने में जो असर हो जाता है) उसके मंत्र भी इन्होंने (वेदोंको देखकर ही) बना लिये हैं। वैदिक लोगोंने बौद्ध शास्त्रोंको देखकर कोई भी चीज़ नहीं ली है ॥१६॥

वेदस्यैव षडङ्गानि यतश्शीक्षादिकानिवै।
नान्यागमाङ्गता तेषां न काप्युक्ता परैरपि ॥१७॥

शिक्षा आदि छः अङ्ग वेदोंके ही हैं। अन्य जैन आदि ग्रन्थोंके नहीं और न कहीं किसी ने ऐसा कहा ही है ॥१७॥

अतो वेदबलीयस्त्वं नास्तिकागमसञ्चयात्।
षट्पदार्थपरिज्ञानान्मोक्षं वैशेषिका विदुः १८

इसलिये वेद नास्तिकोंके सब ग्रन्थोंसे बलवान हैं। वैशेषिकों का मत है कि छः पदार्थोंके ज्ञानसे मोक्ष होता है ॥१८॥

तदन्तर्गत एवेशो जीवास्सर्वमिदं जगत्।
द्रव्यं गुणस्तथा कमसामान्यं यत्परापरम् ॥ १९ ॥
विशेष स्समवायश्च षट् पदार्था इहेरिताः।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायु राकाशमेव च ॥२०॥
दिक्कालात्ममनासीति नवद्रव्याणि तन्मते।
पृथिवी गन्धवत्यापः सरसास्तेजसः प्रभा ॥ २१ ॥
अनुष्णाशतीतसंस्पर्शो वायुश्शब्द गुणं नमः।
दिक् पूर्वापरधीलिङ्गा कालः क्षिप्रचिरागतः ॥२२॥

उन्हींके अन्तर्गत ईश्वर, जीव तथा अन्य जगत् आ जाता है। पदार्थ छः हैं—द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। द्रव्य नौ हैं पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशा, काल, आत्मा, मन। पृथिवी गन्धवाली है। जल रसवाला है। अग्नि प्रकाश वाली है। गर्मी और सर्दी रहित स्पर्श वायुमें है। आकाशका गुण शब्द है। दिशा पूर्व और अपरके ज्ञानसे मालूम हो जाती है और काल जल्दी और देरके ज्ञानसे। १९–२२

आत्माहं प्रत्ययात्सिद्धो मनोन्तःकरणं मतम्।
अयोगमन्ययोगञ्च मुक्त्वा द्रव्याश्रितागुणाः ॥२३॥

अहं-भावसे आत्माकी सिद्धि होती है। मन भीतरी कारण अर्थात् इन्द्रिय है। गुण द्रव्यके आश्रित हैं। न कभी द्रव्योंसे अलग होते हैं और न दूसरोंके साथ मिलते हैं ॥२३॥

विषम योगी या संपृक्त उदकर्बन

(गताङ्क से आगे)

[ले० श्री सत्यप्रकाश बी० एस० सी० विशारद]

दारेनके गुण—दारेन बेरंगका वायव्य है। इसमें किसी प्रकारकी गन्ध नहीं होती है। पर यदि अन्य अशुद्धियाँ मिली हों तो दुर्गन्ध मालूम होगी। —१६४°श पर ७६० मि॰ मी॰ दबाव पर यह द्रवीभूत किया जा सकता है। यदि दबाव एक दम कम कर दिया जाय तो द्रव उबलने लगता है और फिर ठोस हो जाता है। तापक्रम—१८६°श हो जाता है। द्रवदारेनका आपेक्षिक घनत्व ०°श पर ०.५५४ है। यह वायव्य प्रकाश रहित लपकसे जलता है। यदि वायु या ओषजन से मिलाया जाय तो ज़ोरका विस्फुटन होता है। गन्धकाम्ल आदि अम्ल और ओषदीकरण वाले रसोंका इस पर कोई

प्रभाव नहीं होता है। यह लवणजनोंके साथ स्थापित यौगिक बनाता है।

दारेनका संगठन—गुद्गाना-मापक यंत्र (eudiometer) में दारेनका ज्ञात आयतन अधिक वायुके साथ भस्मित करो। ऐसा करनेसे आयतनमें कुछ कमी होगी जिससे उद्जनकी मात्राका परिमाण मालूम हो सकता है। फिर पांशुजउद्औषिद द्वारा कर्बनद्वि ओषिद्के अभिशोषण होनेके कारण जो आयतनमें कमी होगी उससे कर्बनकी मात्राका अनुमान लगाया जा सकता है।

$$\text{क उ}_{४} + \text{२ ओ}_{२} = \text{क ओ}_{२} + \text{२ उ}_{२}\text{ ओ}$$

१ आय. २ आय १ आय. २ आय.

इस प्रकार एक आयतन दारेनके भस्म करनेके लिये दो आयतन वायुकी आवश्यकता होती है। जल वाष्पका और उसमेंके ओषजनका आयतन बराबर होता है। इन सब बातोंसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दारेनमें एक परमाणु कर्बनका और ४ परमाणु उद्जनके हैं। संगठन अन्य अधिक उपयोगी विधियोंसे निकाला गया है जिनका यहां वर्णन देना सम्भव नहीं है।

ज्वलेन—क$_{२}$उ$_{६}$ या कउ$_{३}$ क उ$_{३}$—इसे दारील-दारील भी कह सकते हैं क्योंकि दारेन अणुके एक उद्जनके स्थानमें दारील मूल स्थापित किया गया है। यह दारीलनैलिद्पर दस्तम्के प्रभावसे बनाया जा सकता है। इस प्रक्रियाको फ्रैंकलैण्ड—कौल्बे की प्रक्रिया कहते हैं। दस्तम्के स्थानमें सैन्धकम्का भी उपयोग हो सकता है। (वुर्ज़ की प्रक्रिया)

```
     उ                 उ
     |                 |
  उ—क—उ             उ—क—उ
     |                 |
     नै   +सै        उ —क—उ+२स नै
     न    (या द)=      |        या द नै२
     |   + सै          उ
  उ—क—उ              (ज्वलेन)
     |
     उ
  ( दारील नैलिद )
```
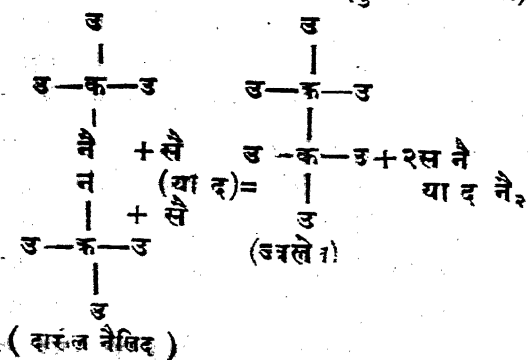
ज्वलील नैलिद्को दस्तम् और मद्यके साथ अवकृत करनेसे भी यह उत्पन्न हो सकता है—

$$\text{क}_{२}\text{उ}_{५}\text{नै} + \text{द} + \text{क}_{२}\text{ उ}_{५}\text{ ओ उ} = \text{द}\begin{matrix}<\text{नै}\\ \text{ओक}_{२}\text{उ}_{५}\end{matrix} + \text{क}_{२}\text{उ}_{६}$$
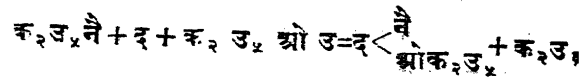
इस कामके लिये एक मोटी परखनली लो जिसमें कीप और वाहक नली लगा हुआ अच्छा काग लगा हो। कागको निकालकर ५ ग्राम दस्तम्का चूर्ण और १५ घन. श. मी. तूतियेका संपृक्त घोल डालो और कांचकी डंडीसे हिलाते रहो। ठंडा करने पर दस्तमके ऊपर ताम्रके कण जमा हो जावेंगे। घोलको सहारे निथारलो और १० घन. श. मी मद्यसे इसे धो लो। फिर ५ घन. श. मी. मद्य परख नलीमें लो। काग बन्दकरके कीप द्वारा ५ घन. श. मी. ज्वलील नैलिद धीरे धीरे छोड़ो। थोड़ा सा गरम करो। ज्वलेनके बुलबुले उठने लगेंगे। इसे पानीके ऊपर संचित किया जा सकता है।

अग्नेन या ज्वलील दारील-क$_{३}$ उ$_{८}$ या क उ$_{३}$ क उ$_{२}$ क उ$_{३}$—यह ऊपर बनाये हुए दस्तम-ताम्रम् मिथुन द्वारा अग्नील नैलिदको अवकृत करनेसे बनाया जा सकता है। ज्वलील नैलिद और दारील नैलिदके मिश्रण पर सैन्धकम्के प्रभावसेभी बनाया जा सकता है—

$$\text{क उ}_{३}\text{ क उ}_{२}\text{ नै} + \text{सै}_{२} + \text{नै क उ}_{३} = \text{क उ}_{३}\text{ क उ}_{२}\text{ क उ}_{३} + \text{२ सै नै}$$
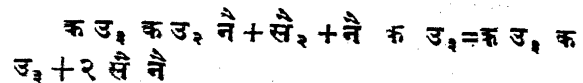
नवनीतेन—क$_{४}$ उ$_{१०}$—इस सूत्रके दो यौगिक पाये गये हैं जो क्वथनांकोंमें एक दूसरेसे भिन्न हैं। एकका नाम सामान्य-नवनीतेन है जो $+१^\circ$ पर द्रव है और दूसरा सम-नवनीतेन है जो -१७° पर द्रव किया जा सकता है। सामान्य-नवनीतेन निम्न प्रकार ज्वलील नैलिदसे बनाया जाता है।
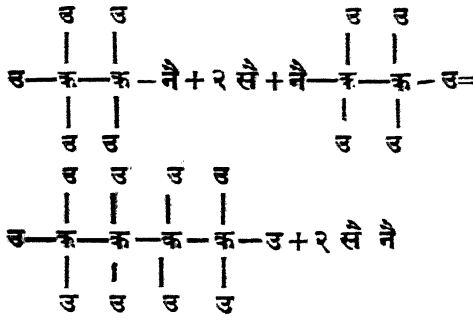
सम नवनीतेनका संगठन निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जाता है—

समनवनीतेन
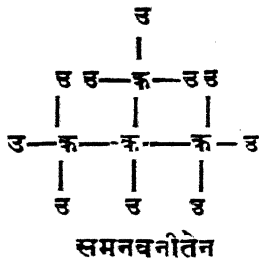
पंचेन—$क_5$ $उ_{12}$—जिस प्रकार नवनीतेन दो प्रकारके पाये गये हैं, पंचेन तीन प्रकारके होते हैं—सामान्य पंचेन, समपंचेन, नवपंचेन और

```
 उ   उ  उ  उ   उ
 |   |  |  |   |
उ—क—क—क—क—क—उ
 |   |  |  |   |
 उ   उ  उ  उ   उ
```

सामान्य पंचेन

```
        उ
        |
  उउ–क–उउउ
   |   |  |  |
उ–क–क—क–क–उ
   |   |  |  |
   उ   उ  उ  उ
```
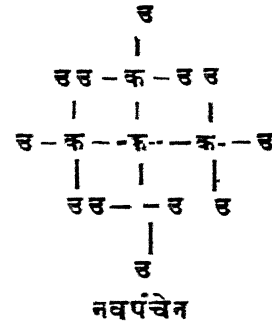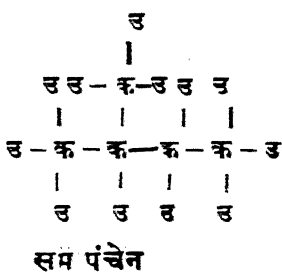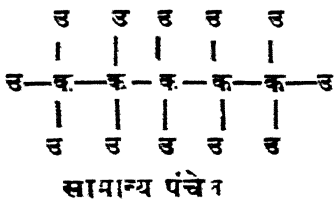
सम पंचेन

नवपंचेन

सम पंचेनको द्विद्वारील त्वलील द्वारेन, $क_2उ_4$ उ क· (क $उ_3$ $)_2$ भी कह सकते हैं। इसी प्रकार नवपंचेन चतुर्द्वारील द्वारेन, क (क $उ_3$ $)_4$ भी कहला सकता है।

अङ्क गणना

२ लोकोत्तर अङ्कगणना

[लेखक श्रीयुत बी· यल. जैन, चैतन्य, सी. टी.]
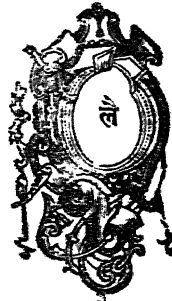
लौकिक-अङ्कगणना का विस्तृत वृत्तान्त गताङ्कमें दिया गया था। उसमें दिखलाया गया था कि लौकिक गणनामें तो यथा आवश्यक अनेक प्रकारके कुछ नियत स्थानोंतक रची गई है। वरन् दूसरी "लोकोत्तर-अंकगणना" दो की संख्यासे लेकर उत्अनन्ता-नन्त तक (upto infinity)अनन्तानन्त स्थान प्रमाण (Innumerable places में है।

इस "लोकोत्तर अंकगणना" को निम्नोल्लिखित २१ विभागों और १४ धाराओं (progres-ions &series) में प्राचीन जैनाचार्योंने विभाजित किया है:—

(क) लोकोत्तरअंकगणनाके २१ विभागोंके नाम

१. संख्यात के ३ विभाग—[१] जघन्य संख्यात् [२] मध्य संख्यात् [३] उत्कृष्ट-संख्यात।

२. असंख्यात के ६ विभाग—[१] जघन्य-परीता संख्यात,[२] मध्य-परीतासंख्यात, [३] उत्कृ-

ष्ट-परीता-संख्यात, [४] जघन्य-युक्तासंख्यात, [५] मध्य-युक्तासंख्यात, [६] उत्कृष्ट-युक्तासंख्यात, [७] जघन्य असंख्यातासंख्यात, [८] मध्य-असंख्यातासंख्यात, [६] उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात।

३. अनन्त के ६ विभाग—[१] जघन्य-परीतानन्त, [२] मध्य-परीतानन्त, [३] उत्कृष्ट-परीतानन्त, [४] जघन्य युक्तानन्त, [५] मध्य-युक्तानन्त, [६] उत्कृष्ट युक्तानन्त, [७] जघन्य-अनन्तानन्त, [८] मध्य अनन्तानन्त, [६] उत्कृष्ट-अनन्तानन्त।

इस प्रकार लोकोत्तर अंकगणना के ये २१ विभागों के नाम हैं जिनमें से प्रत्येककी संख्याका निरूपण आगे होगा।

[ख] लोकोत्तर अंकगणना की १४ धाराओं के नाम।

[ ] सर्वधारा [२] समधारा [३] विषमधारा [४] कृतिधारा या वर्गधारा [५] अकृतिधारा या अवर्गधारा [६] घन धारा [७] अघनगधारा [८] कृतिमातृकधारा या वर्गमातृकधारा [६] अकृति मातृकधारा या अवर्गमातृकधारा [०] घनमातृक धारा [११] अघनमातृकधारा [१२] द्विरूपवर्गधारा या द्विरूप कृतिधारा [१३] द्विरूपघनधारा [१४] द्विरूप घनाघन धारा।

पहले लौकिक अङ्क गणना के सम्बन्धमें बताया जा चुका है कि इसे हम संसारी मनुष्योंने अपनी अपनी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए अपनी अपनी बुद्धि व विचारानुसार अनेक प्रकार से नियत कर लिया है। किन्तु अलौकिक या लोकात्तर अङ्कगणनाके सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। यह गणना २ के अङ्क से प्रारम्भ होकर अनन्तानन्त (Infinity) तक अनन्तानन्त स्थान (endless places) प्रमाण है। दिव्य ज्ञान विशिष्ट पूर्वाचार्यों ने विश्वरचना सम्बन्धी अगणित पदार्थों व प्रत्येक पदार्थ की अगणित पर्यायों और उनके पारस्परिक अल्पबहुत्व आदि का दिग्दर्शन हम अल्पज्ञों को कराने के लिये इस लोकोत्तर अङ्क गणना को निम्नोलिखित ३ विभागों और २१ उपविभागों में विभाजित किया है:—

१. संख्यात—इसके ३ उपविभाग (१) जघन्य संख्यात (२) मध्य संख्यात और (३) उत्कृष्ट संख्यात हैं।

२. असंख्यात—इसके ६ उपविभाग (१) जघन्य-परीता संख्यात (२) मध्य-परीता संख्यात (३) उत्कृष्ट-परीतासंख्यात, (४) जघन्य-युक्तासंख्यात (५) मध्य-युक्तासंख्यात (६) उत्कृष्ट-युक्तासंख्यात, (७) जघन्य-असंख्यातासंख्यात (८) मध्य-असंख्याता संख्यात और (९) उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात हैं।

३. अनन्त—इसके भी ९ उपविभाग (१) जघन्य-परीतानन्त (२) मध्य-परीतानन्त (३) उत्कृष्ट-परीतानन्त (४) जघन्य-युक्तानन्त (५) मध्य-युक्तानन्त (६) उत्कृष्ट युक्तानन्त, (७) जघन्य-अनन्तानन्त (८) मध्य-अनन्तानन्त और (६) उत्कृष्ट अनन्तानन्त हैं।

इन जघन्य-संख्यात् आदि २१ विभागोंका स्वरूप निम्न प्रकार है:—

(१) जघन्य-संख्यात—२ का अङ्क है।

नोट—१ की संख्याको लोकोत्तर अङ्क गणना-में पूर्वाचार्योंने इसलिये नहीं गिनाया है कि १ को १ में गुणन करने या भाग देनेसे उसमें कुछ भी वृद्धि या हानि नहीं होती और न किसी भी अन्य संख्या-को १ से गुणन करने या १ पर भाग देनेसे उस संख्यामें वृद्धि हानि होती है और इसलिये "लोकोत्तर अंक-गणना"से जिन पदार्थोंके स्वरूपादि समझाने में सहायता ली जाती है उनमें १ के अङ्कसे कोई सहायता नहीं मिलती।

(२) मध्यसंख्यात—३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११.........इत्यादि उत्कृष्ट संख्यातसे १ कमकी संख्या तक।

(३) उत्कृष्टसंख्यात—जघन्य-परीतासंख्यातसे १ कम।

(४) जघन्य-परीतासंख्यात—यह संख्या यद्यपि इतनी अधिक बड़ी है कि इसे अङ्कों द्वारा लिखकर बताना तो नितान्त अशक्य है। केवल दिव्य ज्ञान या अतेन्द्रिय ज्ञान गम्य ही है। इसे अङ्कोंमें लिखकर

बतानेके लिये सैकड़ों सहस्रों मील लम्बे कागजकी आवश्यकता पड़ेगी तथापि इसका परिमाण हृदयङ्कित करनेके लिये पूर्वाचार्यों ने जो एक "कल्पित उपाय बताया है वह निम्नलिखित है जिसे भली प्रकार समझकर हृदयाङ्कित करने के लिये अलौकिक अङ्क गणनाके शेष २० भेदों या विभागोंको समझ लेना सुगम है:—

कल्पना कीजिये कि (१) अनवस्था (२) शलाका (३) प्रति शलाका और (४) महा शलाका नाम के ४ गोल कुंड हैं जिनमें से प्रत्येकका व्यास एक लाख महा योजन और गहराई एक सहस्र महा योजन है। एक महा योजन दो हजार कोस का होता है और एक कोस अंगरेजी मील के हुक्न्द से कुछ अधिक अर्थात् ४ हजार गज का होता है।

इनमें से पहिले अनवस्था कुंड को गोल सरसों के दानों से शिखऊ (पृथ्वी पर की अन्न राशि के समान शिखा बाँध कर) भरें। गणित शास्त्र के नियमानुकूल हिसाब लगाने से इस अनवस्था कुंड में १९ ९७ १ २९ ३८ ४५ १३ १६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ (४६ स्थान प्रमाण) सरसों के दाने समावेंगे।

अब इस सरसों को क्या किया जाय यह बतानेसे पहिले यह कल्पना कर लीजिये कि विश्वरचना के मध्य भाग का नाम "मध्य लोक" है और इस मध्यलोक के बीचों बीच एक लक्ष महायोजनके व्यास का स्थालीवत् गोलाकार एक जम्बूद्वीप है। इस द्वीपकी चारों ओर वलयाकार (कड़े के आकार) दो लक्ष महायोजन चौड़ा एक लवण समुद्र है। इस लवणसमुद्रके चारों ओर चार लक्ष महायोजन चौड़ा वलयाकार दूसरा द्वीप है। इस द्वीपके चारों ओर वलयाकार आठ लक्ष महायोजन चौड़ा दूसरा महा-समुद्र और इस महासमुद्रकी चारों ओर वलयाकार १६ लक्ष महायोजन चौड़ा तीसरा महाद्वीप है। इसी प्रकार आगे आगेको द्वीपसे दूना चौड़ा अगला समुद्र और फिर समुद्रसे दूना चौड़ा अगला द्वीप एक दूसरेकी चारों ओर वलयाकार स्थित गिनतीमें असंख्यात हैं।

स्मरण रहे कि किसी गोलाकार द्वीप या समुद्रकी परिधिके एक तटसे दूसरे ठीक सामनेकी दिशाके तटतक की चौड़ाइको "सूची" कहते हैं। अतः जम्बूद्वीपकी सूची तो उसका व्यास ही है जो एक लक्ष महायोजन है। और लवण समुद्र की सूची ५ लक्ष महा योजन है। दूसरे द्वीपकी सूची तेरह लक्ष महायोजनकी, दूसरे समुद्रकी सूची २९ लक्ष महायोजनकी, तीसरे द्वीपकी सूची ६१ लक्ष महायोजनकी और तीसरे समुद्रकी सूची १२५ लक्ष योजनका है। इसी प्रकार अगले अगले प्रत्येक द्वीप या समुद्रकी सूची अपने अपने पूर्वके समुद्र या द्वीपकी सूची से ३ लक्ष अधिक दुगुण होती गई है। अतः अब यह भी भले प्रकार ध्यानमें रखिये कि जब गणित करनेसे पहिले द्वीपकी सूची केवल एक लक्ष महायोजन होनेपर तीसरे ही द्वीपकी सूची ६१ लक्ष और तीसरे समुद्रकी सूची १२५ लक्ष महायोजनकी हो जाती है तो सैकड़ों, सहस्रों, लक्षों, संखों और असंखों द्वीप समुद्र आगे बढ़ कर उनकी सूची प्रत्येक बार दूनी दूनी से भी अधिक बढ़ती जानेसे कितनी अधिक बड़ी हो जायगी।

अब उपरोक्त दूसरे कुंड "शलाका" नामक में अन्य एक दाना सरसोंका डाल कर पहिले अनवस्था कुंडमें भरी हुई उपरोक्त ३६ स्थान प्रमाण सरसों से एक दाना जम्बू द्वीपमें, एक दाना लवण समुद्रमें, एक दाना दूसरे द्वीपमें, एक दाना दूसरे समुद्रमें डालिये, और इसी प्रकार अगले अगले द्वीपों और समुद्रोंमेंसे प्रत्येकमें एक एक दाना वहांतक डालते जाइये जहांतक कि वह "अनवस्था कुंड" रीता (खाली) हो जाय। सरसोंका अन्तिम दाना किसी समुद्रमें न कि द्वीपमें गिराया जायगा, क्योंकि सरसोंकी संख्याका अंक सम है, विषम नहीं है।

जिस अन्तके समुद्रमें अन्तिम दाना गिराया जाय उस समुद्रकी सूचीकी बराबर व्यास वाला एक १००० हजार महा योजन गहरा अब दूसरा अनवस्था कुंड बनाइये और उसे भी पूर्वोक्त प्रकार शिखाऊ सरसों से भरिये। अब एक और दूसरा दाना सरसों-

का उपरोक्त "शलाका कुंड" में डालकर इस दूसरे अनवस्था कुंडमें शिखाऊ भरी हुई सरसोंको भी निकाल कर जिस समुद्रमें पहिले अनवस्था कुंडकी सरसों समाप्त हुई थी उससे अगले द्वीपसे प्रारंभ करके एक एक सरसों प्रत्येक द्वीप और समुद्र में पूर्ववत् आगे आगेको डालते जाइये।

जिस समुद्र या द्वीप पर पहुँच कर यह सरसों भी समाप्त हो जाय उस समुद्र या द्वीप की सूची समान व्यास वाला १००० महायोजन गहरा अब तीसरा अनवस्था कुंड बनाकर इसे भी पूर्ववत् सरसों से शिखाऊ भरिये और उपरोक्त "शलाका कुंड" में फिर एक अन्य तीसरा दाना सरसों का डालकर और तीसरे अनवस्था कुंडकी सरसों भी निकालकर अगले अगले प्रत्येक द्वीप और समुद्रमें पूर्ववत् एक एक सरसों डालते जाइये।

जिस समुद्र या द्वीपपर यह सरसों भी समाप्त हो जाय उस समुद्र या द्वीपकी सूचीकी बराबर व्यास वाला १००० महायोजन गहरा चौथा अनवस्था कुंड सरसोंसे फिर शिखाऊ भर कर एक अन्य चौथा दाना सरसोंका उपरोक्त शलाका कुंडमें डालिये और पूर्ववत् इस चौथे अनवस्था कुंडको भी रीता कर दीजिये।

पूर्वोक्त प्रकार एकसे एक अगला अगला संखों गुण अधिक अधिक बड़ा नवीन नवीन अनवस्था कुंड बना बना कर और सरसोंमेंसे शिखाऊ भर भरके रीते करते जाइये और प्रति बार शलाका कुंडमें एक एक सरसों छोड़ते जाइये जबतक कि "शलाका कुंड" भी एक एक सरसों पड़ कर शिखाऊ ही न भरे। इस रीतिसे जब शलाका कुंड शिखाऊ भर जाय तब एक सरसों तीसरे कुंड 'प्रति शलाका" नामकमें डालिये।

पूर्वोक्त प्रकार प्रत्येक अगले अगले अधिक अधिक बड़े अनवस्था कुंडको सरसोंसे भर भर कर रीता करते समय एक एक सरसों अब दूसरे नवीन उतने ही बड़े शलाकाकुंडमें फिर बार बार डालते जाइये। जब फिर यह दूसरा शलाका कुंड भी शिखाऊ भर जाय तब दूसरा दाना सरसोंका प्रति शलाका कुंडमें डालिये। इसी प्रकार करते करते जब "प्रति शलाका कुंड" भी भर जाय तब एक सरसों चौथे कुंड "महा शलाका" नामकमें डालिये।

जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाका कुंड भरा गया है उसी क्रमसे जब दूसरा उतना ही बड़ा प्रति शलाका कुंड भी भर जाय तब दूसरा दाना सरसोंका महा शलाका कुंडमें डालिये। इसी प्रकार जब एक एक सरसों पड़ कर "महा शलाका कुंड" भी शिखाऊ भर जाय तब सबसे बड़े अन्तिम अनवस्था कुंडमें जितनी सरसों समावे उसके दानोंकी संख्याकी बराबर "जघन्य परीता संख्यात" का प्रमाण है।

(५) मध्य परीता संख्यात—जघन्य परीता संख्यात से १ अधिक से लेकर उत्कृष्ट परीतासंख्यात से १ कम तककी संख्याकी जितनी संख्यायें हैं वे सब ही "मध्य परीता संख्यात" की संख्यायें हैं।

(६) उत्कृष्ट परीतासंख्यात—जघन्य युक्तासंख्यात-की संख्या से १ कम।

(७) जघन्य युक्तासंख्यात—उपरोक्त जघन्यपरीता संख्यातकी संख्याका उसी प्रमाण घात (Power) करनेसे जो संख्या प्राप्त हो, अर्थात् जघन्य-परीता संख्यातकी महा संख्याको जघन्य-परीता-संख्यात जगह रखकर उन सबको परस्पर गुणन करनेसे जो महा महान् संख्या प्राप्त होगी वही जघन्य युक्ता-संख्यातकी संख्या है।

(८) मध्य युक्तासंख्यात—जघन्य युक्तासंख्यात-की संख्यासे १ अधिक से लेकर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात की संख्या से १ कम तककी जितनी संख्यायें हैं वे सब मध्य युक्तासंख्यात की संख्यायें हैं।

(९) उत्कृष्ट युक्तासंख्यात—जघन्य असंख्याता-संख्यातकी संख्यासे एक कम॥

(१०) जघन्य असंख्यातासंख्यात—उपरोक्त जघन्य युक्तासंख्यातका वर्ग (Square) अर्थात् जघन्य-युक्तासंख्यातको जघन्य युक्तासंख्यातमें गुणन करनेसे जो संख्या प्राप्त हो वही "जघन्य असंख्या-तासंख्यात" की संख्या है।

(११) मध्य—असंख्यातासंख्यात—जघन्य असंख्यातासंख्यातसे १ अधिकसे लेकर उत्कृष्ट

असंख्यातासंख्यातसे १ कम तककी सब ही संख्यायें।

(१२) उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात—जघन्य परीतानन्तकी संख्यासे १ कम।

(१३) जघन्य परीतानन्त—पूर्वोक्त जघन्य असंख्यातासंख्यातकी संख्याका उसी प्रमाण "घात" या "बल" (power) लें। उत्तरमें जो संख्या प्राप्त हो उसका उसी उत्तर प्रमाण "बल" लें। इस द्वितीय उत्तरमें जो संख्या प्राप्त हो उसका इसी द्वितीय उत्तर प्रमाण 'बल" फिर लें। इसी प्रकार प्रत्येक नवीन नवीन उत्तरकी संख्याओंका उसी उसी प्रमाण "बल" (power) इतनी बार लें जितनी "जघन्य असंख्यातासंख्यात" की संख्या है।

इस प्रकार जो अन्तिम संख्या प्राप्त होगी वह अभी असंख्यातासंख्यातकी एक मध्यम संख्या ही है। अब इस मध्यम असंख्यातासंख्यातकी संख्याका इसी संख्या प्रमाण फिर "बल" (घात power) लें। उत्तरमें जो संख्या प्राप्त हो उसका इस उत्तर प्रमाण फिर "बल" लें। इसी प्रकार प्रत्येक नवीन नवीन उत्तरकी संख्याका उसी उसी प्रमाण "बल" इतनी बार लें जितनी उपरोक्त "मध्यम असंख्यातासंख्यात" की संख्या है।

इस प्रकार कर चुकने पर जो अन्तिम उत्तर प्राप्त होगा वह भी "मध्यम असंख्यातासंख्यात" का ही एक भेद है। इस अन्तिम संख्याका फिर इसी संख्या प्रमाण "बल" लें और उपर्युक्त रीतिसे हर नवीन नवीन उत्तरका उसी उसी प्रमाण "बल" इतनी बार लें जितनी द्वितीय बार प्राप्त हुई उपर्युक्त "मध्यम असंख्यातासंख्यात" की संख्या है।

इस रीतिसे तीन बार उपरोक्त क्रिया कर चुकने पर भी जो अन्तिम संख्या प्राप्त होगी वह भी अभी "मध्यम असंख्यातासंख्यात" का ही एक भेद है।

इस क्रमानुसार तीन बार किये हुए गुणन-विधान, बल-विधान को, "शलाकात्रय-निष्ठापन" कहते हैं।

उपर्युक्त 'शलाकात्रय-निष्ठापन" विधानसे जो अन्तिम संख्या प्राप्त हो उसमें निम्नोक्त ६ महासंख्यायें और जोड़ें:—

१. लोक प्रमाण "धर्म्मद्रव्य" ※ के असंख्यात प्रदेशोंकी संख्या।

२. लोक प्रमाण "अधर्म्मद्रव्य" के असंख्यात प्रदेशों की संख्या।

३. लोक प्रमाण एक "जीवद्रव्य" के असंख्यात प्रदेशोंकी संख्या।

४. लोक प्रमाण "लोकाकाश द्रव्य" के असंख्यात प्रदेशोंकी संख्या।

५. लोकके असंख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात गुणित अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवोंकी संख्या।

६. असंख्यात लोकके असंख्यातसंख्यात प्रदेशोंसे असंख्यातसंख्यात गुणित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवोंकी संख्या।

पूर्वोक्त राशिमें इन छहों राशियोंको जोड़नेसे जो कुछ जोड़फल प्राप्त हो उस महाराशिका "शलाकात्रय निष्ठपन" विधान उसी रीतिसे करें जिस प्रकार कि "जघन्य असंख्यातासंख्यात" की संख्याका पहिले किया जा चुका है।

तत्पश्चात् इस महाराशिमें निम्नलिखित ४ महाराशियां और मिलावें:—

१. २० कोड़ाकोड़ि (२० करोड़का करोड़ गुणा अर्थात् २ पद्म सागरोपम। एक सागरोपम काल ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४६५१२१९२०००००० ०००००००००००००००००००००००००० २० अङ्क और ३५ शून्य, सब ६२ स्थान (places) वर्षोंका होता है॥

※ लोक धर्म्मद्रव्य, अधर्म्म द्रव्य, प्रदेश, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति, इत्यादि शब्दों के अर्थ व स्वरूप आदिकी व्याख्या लेख अधिक बढ़जानेके भयसे यहां नहीं की गई है। यदि "विज्ञान" के पाठक महोदयोंकी रुचिपूर्वक उत्कंठा होगी तो इन शब्दों पर किसी अन्य स्वतंत्र लेखमें विचार किया जायगा॥

प्रमाण एक महाकल्प कालके समयों ❀ की संख्या।

२. असंख्यात लोक प्रमाण "स्थिति-बन्ध्याध्यवसाय स्थान" (कर्मस्थिति बन्ध को कारणभूत आत्म-परिणाम)।

३. "स्थिति-बन्ध्याध्यवसाय" से असंख्यात गुणित "अनुभाग बन्धाध्यवसाय" स्थान (कर्म अनुभाग बन्ध को कारणभूत आत्म-परिणाम)।

४. अनुभाग बन्धाध्यवसाय स्थान से असंख्यात गुणित मन-वचन-काय योगों के उत्कृष्ट अविभाग-प्रतिच्छेद (गुणोंके अंश)।

पूर्वोक्त महाराशिमें इन चारों महाराशियोंको जोड़नेसे जो महान संख्या प्राप्त हो, उसका फिर उपर्युक्त विधिसे "शलाकात्रय निष्ठापन" करें। उत्तरमें जो अन्तिम महान् राशि प्राप्त होगी वही "जघन्य परीतानन्त" की संख्या है।

(१४) मध्य परीतानन्त—जघन्य परीतानन्तसे १ अधिकसे लेकर "उत्कृष्ट परीतानन्त" से १ कमतककी जितनी संख्यायें हैं वे सब।

(१५) उत्कृष्ट परीतानन्त-जघन्य युक्तान्तकी संख्या से १ कम।

(१६) जघन्य युक्तानन्त-ऊपर के "जघन्य परीतान्त" की संख्याका उसी संख्या प्रमाण "वल" जघन्य परीतानन्तकी संख्याके "ज० परीतानन्त" जगह रखकर सब को परस्पर गुणन करें।

(१७) मध्य युक्तान्त-जघन्य युक्तान्त से १ अधिक से लेकर उत्कृष्ट युक्तानत से १ कम तक की सर्व संख्यायें।

(१८) उत्कृष्ट युक्तानन्त-जघन्य अनन्तानन्तकी संख्यासे १ कम॥

(१९) जघन्य अनन्तानन्त—जघन्य युक्तानन्त-का वर्ग (spuare)॥

(२०) मध्य अनन्तानन्त—जघन्य अनन्तअनन्त-से १ अधिकसे लेकर उत्कृष्ट अनन्तान्तसे १ कम तकको सब संख्यायें॥

(२१) उत्कृष्ट अनन्तानन्त—"जघन्य अनन्तानन्त" की संख्याका उपर्युक्त विधिसे "शलाकात्रय निष्ठापन" करें। ऐसा करनेसे जो एक महाराशि प्राप्त हो गयी वह मध्य-अनन्तानन्तके अनन्तानन्त भेदोंमेंसे एक भेद है।

यहाँतकके मध्य अनान्तानन्तको "सक्षय अनन्त" कहते हैं। इससे आगे निम्नोलिखित मध्य-अनन्तानन्तके सर्व भेदों और उत्कृष्ट अनन्तानन्तको "अक्षय अनन्त" कहते हैं। और इस प्रकार अनन्तके पूर्वोक्त ९ भेदो की जगह इस दूसरी अपेक्षासे केवल यह दो ही सामान्य भेद हैं।

अब उपरोक्त मध्य अनान्तनन्त (उत्कृष्ट सक्षय अनन्त) में निम्नोक्त ६ "अक्षय अनन्त राशियाँ" जोड़ें :—

१. जीवराशि के अनन्तवें भाग "सिद्धराशि"

२. सिद्धराशिसे अनन्त गुणी "निगोदजीव राशि"

३. सिद्धराशि से अनन्त गुणी सर्व "वनस्पति कायिक जीवराशि"।

४. सर्व जीवराशि से अनन्त गुणी "पुद्गल-राशि" के परमाणुओं ❀ की संख्या (Material atoms❀ of the whole Universe)

५. सर्व पुद्गल राशि के परमाणुओं की संख्यासे भी अनन्तानन्त गुणी व्यवहारकालके त्रिकालवर्ती

❀एक "समय" कालद्रव्य का इतना अत्यन्त छोटा विभाग है जिसकी गिनती एक विपलमें उपरोक्त 'जघन्य युक्तासंख्यात" की महा संख्यासे भी बहुत अधिक है, अर्थात् जघन्य उक्तासंख्यातकी संख्या प्रमाण "समयों" का एक "आवली काल होता है और एक कोड़ा कोड़ी (१० नील) "आवली काल" से कुछ अधिकका एक नाड़ी फड़कन काल नब्जकी एक हरकत one Pulse-motioln होता है। कालके सूक्ष्म व स्थूल अंशकी पूर्णतालिका "धर्म द्रव्य" आदिकी व्याख्या सम्बन्धी किसी स्वतंत्र लेखमें फिर कभी दी जा सकेगी, यदि "विज्ञान" के पाठक महानुभाव चाहेंगे।

❀यह ध्यान रहे कि पूर्वाचार्यों ने अपनी दिव्य दृष्टिसे देखकर एक परमाणु (atom) का परिमाण प्रमाण अधिक

समयों की संख्या। (यह ध्यान रहे कि एक सैकंड या केवल एक विपल काल में असंख्यात "समय" होते हैं अर्थात् एक समय कालद्रव्यका इतना अत्यन्त सूक्ष्म विभाग है)।

६. सर्व अलोकाकाश (सर्व विश्वरचना या त्रिलोक सृष्टिके अतिरिक्त शेष सब असीम आकाश या शून्य स्थान (Space containing nothing) के अनन्तानन्त "प्रदेश" †।

उपरोक्त "उत्कृष्ट संख्य अनन्त" में इन छहों "अक्षय अनन्त" राशियोंको जोड़नेसे जो जोड़फल प्राप्त होगा वह भी 'मध्य अनन्तानन्त" का ही एक भेद है। इस योग फलका फिर "शलाकात्रय निष्ठापन करके उसमें निम्नलिखित दो महाराशि और मिलावें।

१. 'धर्म्मद्रव्य" के अगुरुलघुत्व गुणके अनन्तानन्त अविभागीप्रतिच्छेद।

२. "अधर्म द्रव्य" के अगुरुलघुत्व गुण के अनन्तानन्त अविभागी प्रतिच्छेद।

इस योग फलका फिर पूर्वोक्त रीति से 'शलाकात्रय निष्ठापन" करें। प्राप्त हुई यह महाराशि भी "मध्य अनन्तानन्त" के अनन्तानन्त भेदोंमेंसे एक भेद है।

इस अन्तमें प्राप्त हुई महान्राशिको "कैवल्य ज्ञान" (त्रिकालज्ञात्मक-सर्वज्ञता शक्ति*के अविभाग प्रतिच्छेदों के समूहरूप राशिमेंसे घटावें और जो शेष बचे उसमें वही महान राशि जिसे घटाई है जोड़ दें। जो कुछ योगफल प्राप्त हो वही "उत्कृष्ट अनन्तानन्त" की संख्याका प्रमाण है। अर्थात् "उत्कृष्ट अनन्तानन्त" का परिमाण "कैवल्यज्ञान शक्ति" के अविभागी प्रतिच्छेदोंके परिमाणकी बराबर ही है जिसका महत्व हृदयाङ्कित करनेके लिये उपर्युक्त विधान द्वारा उसका वास्तविक रूप समझा दिया जाता है।

नोट—संख्याके उपर्युक्त ३ मूल विभागोंमें से सख्यातकी गणना तो 'श्रुतिज्ञान" का प्रत्यक्ष विषय है। "असंख्यात" की गणना "अवधिज्ञान" (वाह्य इन्द्रियोंकी सहायतारहित सीमाबद्ध आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान) का प्रत्यक्ष विषय है।

...खोज बताया है कि जिस हाईड्रोजन गैस (Hydrogen gas) के साठलाख संख (६०००००००,०००००००००००-०००००० चौबीस स्थान प्रमाण) अणु मिलकर तोलमें केवल "एक रत्ती भर" प्रमाणित हो चुके हैं उसी गैसके एक एक अणुमें भी सहस्रासंख परमाणुओंकी संख्या होती है।

† "प्रदेश" आकाश (Space) के इतने अत्यन्त छोटे अंश को कहते हैं जिसमें पुद्गल (Matter) का केवल एक परमाणु समावे।

* सर्वोत्कृष्ट परम पवित्र निर्मल आत्मा परमात्मा की असाधारण पूर्ण ज्ञान शक्ति का नाम ही "कैवल्यज्ञान शक्ति" है।

भारतीय संगीत

[लेखक श्री हरिनारायण मुकर्जी]

चित्र १

ॐ ष

रे ग मा प ध न

शीर्ष	नेत्र	मुख	कंठ	नाभि	गुह्य
ऋषभ	गान्धार	मध्यम	पंचम	धैवत	निषाद
रे	ग	मा	प	ध	न
हिंडोल	दीपक	भैरव	मालकोष	श्री	मेघ
हेमन्त	वसन्त	शरत	शिशिर	ग्रीष्म	वर्षा
तम	तम	सत्व	सत्व	रज	रज
शृंगार	आग्नेय	रुद्र	करुण	हास्य	मोह
पीत	रक्त	श्वेत	नीळ	कर्व्बूर	कृष्ण

श्रीरागः प्रथमः पुत्र ईश्वरस्य विमोहकः। आज्ञा चक्रे भ्रुवोर्मध्ये परब्रह्मप्रदायकः ॥१॥
द्वितीयो माल कोषश्च कटिदेशान्महायशाः। महद्दंकश्च भूतानां चक्राश्चैव विशुद्धतः ॥२॥
हिंडोलस्तु तृतीयोऽभूत सुतो विश्व विभूषणः। महेश्वरात्ततो जातः चक्राश्चैवमनाहतात् ॥३॥
नासादेशात् समुद्भूतो भैरवो भैरवः स्वयम्। मणिपुर कनासेदं चक्रन्तत्सिद्धिमुक्तिदम् ॥४॥
पंचाशाच तथा वर्णा अङ्कानाम महेश्वराः। राशयो द्वादश तथा नक्षत्राणितथैवच ॥५॥
स्वाधिष्ठान समुद्भूता जगद्बीज समन्विताः। क्षणवृद्धिं समायान्ति ततो रेतः प्रवर्त्तते ॥६॥
रेतस्तु जगत्स्रष्टं मेघोहि जनने प्रियं। आधाराच महान् षष्ठो दीपकस्य समुद्भवः ॥७॥
महेशवल्लभः पुत्रोनीळो विष्णुपराक्रमः। भैरवो जायते वक्त्रे कंठे वै मालकोषिकः ॥८॥
शीर्षस्थले चहिंडोलो नेत्रे वै दीपकस्तथा। नभ्यस्ते किल श्रीरागो गुह्ये मेघः समाश्रितः ॥९॥
श्वेत नील पीत रक्त कर्बूर कृष्ण वर्णकः ॥

चित्र २

शिव शक्ति

नि	गा	मा	ध	र	प
सद्योजात	वामदेव	अघोर	तत्पुरुष	ईशान	पार्वती
पूर्व	पश्चिम	उत्तर	दक्षिण	ऊर्ध्व	शक्ति
मेघ	दीपक	भैरव	श्री	हिंडोल	मालकोष
निषाद	गान्धार	मध्यम	धैवत	ऋषभ	पंचम
हस्ति	छाग	वक	अश्व	गाभि	कोकिल
कृष्ण	रक्त	श्वेत	कर्बुर	पीत	नील
मोह	अग्नि	रुद्र	हास्य	शृंगार	करुण
वर्षा	ग्रीष्म	शरत	हेमन्त	वसन्त	शिशिर
निशान्त	मध्याह्न	उषा	दिनान्त	मध्यरात्रि	उदय
स्वतः वृष्टिपात	अग्निपात	स्वतः घानिघूर्णन	स्वतः विश्राम-दायक भाव	स्वतः दोलन भाव	स्वतः शिला का द्रव होना
अपराह्न	मध्याह्न	प्रदोष	अरात्रि	पूर्वाह्न	शेष रात्रि
वर्षा	ग्रीष्म	शरत्	हेमन्त	वसन्त	शिशिर
मेघ	श्री	भैरव	हिंडोल	दीपक	मालकोष

शरदि भैरवो रागः शिशिरे मालकोषिकः ।
हिंडोल राग हेमन्ते वसन्ते दीपकस्तथा ॥
ग्रीष्मकाले च श्रीरागो वर्षासु मेघरागकः
उषसि भैरवोरागः उदये मलकोषिकः ॥
रात्र्यर्द्धे हिंडोल रागो मध्याह्न दीपकस्तथा ॥
दिनान्ते चैव श्रीरागो मेघराग निशान्तरे ॥

चित्र ३

शिवशक्ति

र	मा	ना	ध	ग	प
ईशान	अघोर	सद्योजात	तत्पुरुष	वामदेव	शक्ति
आकाश १	उत्तर ६	पूर्व ५	दक्षिण ४	पश्चिम ३	पार्वती २
काग	तमचर	कुंजर	केकी	दादुर	कोकिल
ऋषभ	मध्यम	निषाद	धैवत	गांधार	पंचम
तम	सत्व	रज	रज	तम	सत्व
मध्यरात्रि	उषा	निशान्त	दिनान्त	मध्याह्न	उदय
हिंडोल	भैरव	मेघ	श्री	दीपक	मालकोष
अग्रहायण, पौष	आश्विन, कार्त्तिक	श्रावण, भाद्र	ज्येष्ठ, आषाढ़	चैत्र, वैशाख	माघ, फाल्गुन
हेमन्त	शरत्	वर्षा	ग्रीष्म	वसन्त	शिशिर
अर्द्धरात्रि	प्रदोष	अपराह्न	मध्याह्न	पूर्वाह्न	शेषरात्रि
१	६	५	४	३	२

सत्वांशभूतैः खलु सत्वसंघैर्निषेविते सत्वगुणैः समन्तात् । सत्वाँश भूतौ किल राग युग्म पूर्वस्मृतौ भैर व मालकोषै॥
॥ सत्व ॥ पूर्वाह्न ॥

संगरागयुक्तर्निशिसेव्यमानैर्विरागमिश्रैः स्वरमाश्रयद्भिः । रजोगुणौतौनिशिसेव्यमानो ।श्रीरागमेघौनिशिसंस्मृतौ तौ
॥ रज ॥ सायाह्न ॥

नैषँतमोभिर्वपुरावृतंहि ततो दिनानीह समुद्भवन्ति । तमोगुणौतौ परिसेव्यमानौ मध्येऽह्नि हिंडोलकदीपकौ च
॥ तम ॥ मध्याह्न ।

वसन्तश्चैव पूर्वाह्णे ग्रीष्म मध्याह्न उच्यते । वर्षाचापराह्णे स्यात् प्रदोषे शरदः स्मृतः ॥
मन्त्वार्द्ध रात्रे स्यात् शिशिरस्तु ततः परम् । दसदण्डप्रमाणेव जानीयात् ऋतुभेदकम् ॥

चित्र ४

मूर्च्छना

१—स र ग म स नं धं पं स र ग स नं धं स र स नं
२—र ग म प र सं नं धं र ग म र स नं र ग र स
३—ग म प ध ग र स नं ग म प ग र स ग म ग र
४—म प ध न म ग र स म प ध म ग र म प म ग
५—प ध न सं प म ग र प ध न प म ग प ध प म
६—ध न स' र' ध प म ग ध न स' ध प म ध न ध प
७—न स' र' ग' न ध प म न स' र' न ध प न स' न ध
१—स र ग म नं धं पं मं स र ग नं धं पं स र नं धं
२—र ग म प स नं धं पं र ग म स नं धं र ग स नं
३—ग म प ध र स नं धं ग म प र स नं ग म र स
४—म प ध न ग र स नं म प ध ग र स म प ग र
५—प ध न स' म ग र स प ध न म ग र प ध म ग
६—ध न स' र' प म ग र ध न स' प म ग ध न प म
७—न स' र' ग' ध प म ग न स' र' ध प म न स' ध प

पं धं नं स र ग म—षड्ज मूर्च्छना—मं पं धं नं स र ग म—षड्ज मूर्च्छना
धं नं स र ग म प—ऋषभ मूर्च्छना—पं धं नं स र ग म प—ऋषभ मूर्च्छना
नं स र ग म प ध—गांधार मूर्च्छना—धं नं स र ग म प ध—गांधार मूर्च्छना
स र ग म प ध न—मध्यम मूर्च्छना—नं स र ग म प ध न—मध्यम मूर्च्छना
र ग म प ध न स'—पंचम मूर्च्छना—स र ग म प ध न स'—पंचम मूर्च्छना
ग म प ध न स' र'—धैवत मूर्च्छना—र ग म प ध न स' र'—धैवत मूर्च्छना
म प ध न स' र' ग'—निषाद मूर्च्छना—ग म प ध न स' र' ग'—निषाद मूर्च्छना

इन मूर्च्छनाओंको एक साथ लिखनेसे पं धं नं स र ग म प ध न स' र' ग' अथवा म प ध न स र ग म प ध न स' र' ग' होता है। इन स्थानोंका व्यवहार वीणादि यंत्रोंमें मेरु अथवा सारिकाके द्वारा होता है। जिन यंत्रोंमें परदा नहीं है उनमें इन स्थानोंका विशेष विचार यदि वादक चित्तमें रक्खें तो सहज ही में सब स्वरों को निकाल सकेंगे।

ऊपर लिखे हुए मूर्च्छनाओंमें से हर एक के और ८ प्रस्तार नीचे दिये जाते हैं। इनकी साधना अच्छी तरह करनी चाहिये।

१ स र ग म स नं धं पं र ग म स नं धं र ग स नं
२ स र ग म स नं धं पं र ग म स नं धं ग म स नं
३ स र ग म स नं धं पं र ग म नं धं पं ग म धं पं
४ स र ग म स न धं पं र ग म नं धं पं र ग धँ पं
५ स र ग म स नं धं पं स र ग नं धं पं स र धँ पं
६ स र ग म स नं धं पं स र ग नं धं पँ स र नँ धं
७ स र ग म स नं धं पं र ग म नं धं पँ र ग नं धं
८ स र ग म स नं धं पं र ग म नं धं पं ग म नं धं

षड्जका एक मूर्च्छना पहले दे चुके हैं इस लिए इन आठोंको लेकर ९ मूर्च्छनाएँ हुईं, इसी प्रकार बाकी ६ स्वरोंमें से हर एकके ९ मूर्च्छनाएँ शिक्षार्थी स्वयं बनाकर कुल ६३ मूर्च्छनाओंका अभ्यास कर सकते हैं।

षड़ज ग्राम मूर्च्छना

उत्तर मन्द्रा	स	र	ग	म	प	ध	न
रजनी	नं	स	र	ग	म	प	ध
उत्तरायता	धं	नं	स	र	ग	म	प
शुद्ध षड़जा	पं	धं	नं	स	र	ग	म
मत्सरी कृता	मं	पं	धं	नं	स	र	ग
अश्वक्रान्ता	गं	मं	पं	धं	नं	स	र
अभिरुद्धता	रं	गं	मं	पं	धं	नं	स

मध्यम ग्राम मूर्च्छना

सौवीरी	म	प	ध	न	स'	र'	ग'
हरिणाश्वा	ग	म	प	ध	न	स'	र'
कलोपनता	र	ग	म	प	ध	न	स'
शुद्ध मध्या	स	र	ग	म	प	ध	न
मार्गी	नं	स	र	ग	म	प	ध
पौरवी	धं	नं	स	र	ग	म	प
हृष्यका	पं	धं	नं	स	र	ग	म

षड़ज ग्राम और मध्यम ग्राम के अन्तर्गत जो १४ मूर्च्छना संगति शास्त्र में दिखाई देती हैं उनमें षड़ज ग्राम में केवल २ स्थान (मध्य और मन्द्र) पाये जाते हैं और मध्यम ग्राममें भी दो स्थान (मध्य और तार) पाये जाते हैं। यह भी देखा जाता है। कि षड़ज ग्राम के प्रथम चार मूर्च्छना और मध्यम ग्राम के शेष चार मूर्च्छना एक ही है। मूर्च्छना प्रस्तार में ३ स्थानोंका व्यवहार होना उचित* है मन्द्र और तार सम्पूर्ण व्यवहार किये जायें तो अच्छा ही है नहीं तो कम से कम ३ हर एक से ३-४ स्वरों का रहना आवश्यक है। ग्रामोंमें षड़ज ग्राम ही मुख्य है। और आरोहण अवरोहण क्रमयुक्त सप्त स्वरको मूर्च्छना कहते हैं। इस प्रकार सप्तस्वर के विस्तार द्वारा ऊपर दिखाए हुए सप्त मूर्च्छना और शास्त्रोक्त मध्यम मूर्च्छना एकही हैं केवल विपरीत भावके हैं अर्थात् उल्लिखित षड़ज मूर्च्छना मध्यम ग्राम की हृष्यका मूर्च्छना है। किसी किसीने एक आठवां स्वर अर्थात् अन्य स्थानका प्रथम स्वरका भी प्रयोग किया है। क्यों कि इससे कुछ सहायता मिलती है। यह सब बातें साधन कालमें काममें आती हैं।

चित्र ५

मूर्च्छना प्रस्तार अथवा राग-हेतु

शुद्ध			मिश्र		
१	२	३	४	५	६
ओड़व	षाड़व	सम्पूर्ण	ओड़वौड़व	षाड़वौड़व	सम्पूर्णौड़व
१५	६	१	२१०	९०	१५
स र ग म प	स र ग म प ध	स र ग म प ध न	ओड़व षाड़व	षाड़व षाड़व	सम्पूण षाड़व
स र ग म ध	स र ग म प न		९०	३०	६
स र ग म न	स र ग प ध न		ओड़व सम्पूर्ण	षाड़व सम्पूर्ण	सम्पूर्ण
स र ग प ध	स र म प ध न		१५	६	६
स र ग प न	स ग म प ध न				
स र ग ध न	स र ग म म न				
स र म प ध					
स र म प न					
स र म ध न					
स र प ध न					
स ग म प ध					
स ग म प न					
स ग म ध न					
स ग प ध न					
स म प ध न					

* मध्यसप्तकेन मूर्च्छना निर्देश कार्यौ मन्द्रतार सिद्-..य (भरत टीका)

† मध्यम स्वरेण वैणनेव मूर्च्छना निर्देशः (संगीत रत्नाकर की मतङ्ग टीका)

१—१५ ओड़व मेलों में पहला, तीसरा, छठा दसवां और पन्द्रहवां मेल के विचार करने से देखा जाता है कि लगातार दो स्वर वर्जित होने के कारण बहुत सी श्रुतियों का अभाव होता है और इस अवस्था में राग बनाने से कर्ण कटु हो जाता है। कदाचित् मिश्र रागों में इनको व्यवहार में लाने से कर्ण प्रिय होसकते हैं बाकी १० ओड़व रागों में कुछ प्रचलित हैं जैसे चौथा (भूपाल, विभाष,) पाँचवा (हंसध्वनि) आठवाँ (सारंग) नवाँ (पुलिन्दिका) बारहवाँ (मालश्री) ग्यारहवाँ (हिंडोल, मालकोष)

२—तीसरा (देशकार) छठा (पुरिया, मारूवा,, सोहिनी) चौथा (गौड़, मेघ)

३—देखिये राग मेला चित्र (क)

मिश्र रागों में बहुत हो सकते हैं उनमें से कुछ प्रचलित हैं।

जैसे—

	आरोह		अवरोह	
ओड़व षाड़व	स र मा प न	......	ना ध प मा र स	(सुरट)
ओड़वसम्पूर्ण	स र मा प न	......	ना ध प मा ग र स	(देश)
ओड़वसम्पूर्ण	स र मा प ना	......	ना ध प म गा र स	(आसावरी)
षाड़वसम्पूर्ण	स र ग म प न	......	न ध प म ग र स	(श्याम)
ओड़वसम्पूर्ण	स ग मा प न	......	न ध प मा ग र स	(बेहाग)
ओड़वसम्पूर्ण	स गा म प ना	......	ना धा प मा गा र स	(भीम पलश्री)
ओड़वसम्पूर्ण	स गा म प न	......	न धा प म गा रा स	(मुलतान)

इत्यादि

इस प्रकार के औरकुछ रागमेला में दिखाये गये हैं।

ओडवौडव (२१०)

(१)

	आरोही	अवरोही
१	स र ग म प	ध म ग र स
२		न म ग र स
३		ध प ग र स
४		न प ग र स
५		न ध ग र स
६		ध प म र स
७		न प म र स
८		न ध म र स
९		न ध प र स
१०		ध प म ग स
११		न प म ग स
१२		न ध म ग स
१३		न ध प ग स
१४		न ध प म स

इसी प्रकार से आरोही और अवरोही में क्रमशः स्वरों के अदल बदल से १५×१४ अर्थात् २१० प्रस्तार बन सकते हैं।

ओड़व षाड़व—इसी प्रकार यदि हम आरोह में५ और अवरोह में ६ स्वरों को क्रम से रक्खें तोदेखेंगे कि ओड़व षाड़व के कुल ९० प्रस्तार हो सकते हैं।

ओड़व सम्पूर्ण—इसके १५ प्रस्तार हो सकते हैं।
षाड़वौड़व—इसके ९० प्रस्तार हो सकते हैं।
षाड़व षाड़व—इसके ३० प्रस्तार हो सकते हैं।
षाड़व सम्पूर्ण—इसके ६ प्रस्तार हो सकते हैं।
सम्पूर्णौड़व—इसके १५ प्रस्तार हो सकते हैं।
सम्पूर्ण षाड़व—इसके ६ प्रस्तार होते हैं।
मिश्र सम्पूर्ण—देखिये चित्र ५ (क)

चित्र ५ (क) शुद्ध

(आरोह और अवरोह दोनों समान)

संख्या		
१	स र ग म प ध न	कल्याण
२	स रा ग म प ध न	त्रिवन बरारी
३	स र गा म प ध न	
४	स र ग मा प ध न	बेलावल, अलाहिया
५	स र ग म प धा न	
६	स र ग म प ध ना	
७	स रा गा म प ध न	धवलश्री
८	स रा ग मा प ध न	जयन्ती
९	स रा ग म प धा न	श्री, पुरवी, धानश्री
१०	स र ग म प ध ना	
११	स र गा मा प ध न	
१२	स र गा म प धा न	
१३	स र गा म प ध ना	
१४	स र ग मा प धा न	
१५	स र ग मा प ध ना	झिंझिट
१६	स र ग म प धा ना	
१७	स रा गा मा प ध न	
१८	स रा गा म प धा न	दरबारी टोड़ी
१९	स रा गा म प ध ना	
२०	स रा ग मा प धा न	भैरव, रामकेलि
२१	स रा ग मा प ध न	
२२	स रा ग म प धा ना	
२३	स र गा मा प धा न	
२४	स र गा मा प ध ना	काफी, बागेश्री
२५	स र गा म प धा ना	
२६	स र ग मा प धा ना	
२७	स रा गा मा प धा न	
२८	स रा गा मा प ध ना	
२९	स रा गा म प धा ना	बहादुरी टोड़ी
३०	स रा ग मा प धा ना	जोगिया
३१	स र गा मा प धा ना	दरबारी कानड़ा
३२	स रा गा मा प धा ना	भैरवी

मिश्र

आरोह और अवरोह में भिन्न भिन्न

१	स रा र ग म प ध न	
२	स र गा ग म प ध न	
३	स र गा मा म प ध न	केदारा हम्बीर
४	स र ग म प धा ध न	
५	स र ग म प ध ना न	
६	स रा र गा ग म प ध न	
७	स रा र ग मा म प ध न	
८	स रा र ग म प धा ध न	
९	स रा र ग म प ध ना न	
१०	स र गा ग मा म प ध न	
११	स र गा ग म प धा ध न	
१२	स र गा ग म प ध ना न	खम्बाजी कानड़ा
१३	स र ग मा म प धा ध न	
१४	स र ग मा म प ध ना न	
१५	स र ग म प धा ध ना न	
१६	स रा र गा ग मा म प ध न	

१७ स रा र गा ग म प धा ध न
१८ स रा र गा ग म प ध ना न
१६ स रा र ग मा म प धा ध न
२० स रा र ग मा म प ध ना न
२१ स रा र ग म प धा ध ना न
२२ स र गा ग मा म प धा ध न
२३ स र गा ग मा म प ध ना न
२४ स र गा ग म प धा ध ना न
२५ स र ग मा म प धा ध ना न
२६ स रा र गा ग मा म प धा ध न
२७ स रा र गा ग मा म प ध ना न
२८ स रा र गा ग म प धा ध ना न { भैरव बहार
२९ स रा र ग मा म प धा ध ना न { बहार भैरवी
३० स र गा ग मा म प धा ध ना न पंचम, जय जयन्ती
३१ स रा र गा ग मा म प धा ध ना न रागसागर

चित्र ६

स्वर प्रस्तार

आर्चिक अथवा एक स्वर का प्रस्तार नहीं होता।
गाथिक अथवा दो स्वरों के २१ प्रस्तार होते हैं।

१	२	३	४	५	६
स र	स ग	स म	स प	स ध	स न
र स	ग स	म स	प स	ध स	न स

७	८	९	१०	११
र ग	र म	र प	र ध	र न
ग र	म र	प र	ध र	न र

१२	१३	१४	१५
ग म	ग प	ग ध	ग न
म ग	प ग	ध ग	न ग

१६	१७	१८
म प	म ध	म न
प म	ध म	न म

१६	२०
प ध	प न
ध प	न प

२१
ध न
न ध

सार्चिक अथवा तीन स्वरों के ३२ प्रस्तार होते हैं ।

१	२	३	४	५	६	७	८
स र ग	स र म	स र प	स र ध	स र न	स ग म	स ग प	स ग ध
र स ग	र स म	र स प	र स ध	र स न	ग स म	ग स प	ग स ध
स ग र	स म र	स प र	स ध र	स न र	स म ग	स प ग	स ध ग
ग स र	म स र	प स र	ध स र	न स र	म स ग	प स ग	ध स ग
र ग स	र म स	र प स	र ध स	र न स	ग म स	ग प स	ग ध स
ग र स	म र स	प र स	ध र स	न र स	म ग स	प ग स	ध ग स

इसी प्रकार से क्रमानुसार स ग न से आरम्भ करके स्वरों को रखने से और ८ प्रस्तार बनेंगे ।

र ग प से आरम्भ करके क्रमानुसार रखने से ७ और र ग न से और ७ अर्थात् कुल मिला कर १४ प्रस्तार बनेंगे फिर ग ध न से आरम्भ करके स्वरों को रखने से ५ प्रस्तार और बनेंगे इस लिये ३ स्वरों के कुल ८+८+१४+५ = प्रस्तार होते हैं ।

इसी प्रकार से हम ४ स्वरों के ३५ प्रस्तार (इसको स्वरान्तर कहते हैं), ५ स्वरों के १२० ओड़व प्रस्तार और ६ स्वरों के ७२० षाड़व प्रस्तार बन सकते हैं। ग्रन्थ विस्तार के कारण मैंने सबको यहाँ पर नहीं दिखलाया। अभ्यासार्थी को उचित है कि धैर्य के साथ इनको अभ्यास करे। ये सब के सब शुद्ध तान हैं। इनमें कुछ तान ऐसे हैं जिनको कूट तान कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि कूटतान का अर्थ कोटि तान है परन्तु मेरे विचार में शब्द को बदल कर उसका दूसरा अर्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नीचे ७ स्वरों के ४९, ६ स्वरों के ३६ और पाँच स्वरोंके २५ कूटतान का चित्र दिया जा रहा है।

(संख्याओं का संकेत— १ = स, २=र, ३=ग, ४=म, ५=प, ६=ध और ७=न)

१	४	७	३	६	२	५
३	२	५	१	४	६	७
६	५	३	२	७	४	१
७	१	६	४	२	५	३
४	६	१	७	५	३	२
५	३	२	६	१	७	४
२	७	४	५	३	१	६

२	३	६	४	५	१	७
४	१	७	२	३	५	६
५	७	४	१	६	३	२
६	२	५	३	१	७	४
३	५	२	६	७	४	१
७	४	१	५	२	६	३
१	६	३	७	४	२	५

४	७	१	६	३	५	२
६	५	२	४	७	३	१
३	२	६	५	१	७	४
१	४	३	७	५	२	६
७	३	४	१	२	६	५
२	६	५	३	४	१	७
५	१	७	२	६	४	३

५	३	२	७	१	६	४
७	६	४	५	२	१	३
१	४	७	६	३	२	५
३	५	१	२	६	४	७
२	१	५	३	४	७	६
४	७	६	१	५	३	२
६	२	३	४	७	५	१

७	५	४	१	२	३	६
१	३	६	७	५	२	४
२	६	१	३	४	५	७
४	७	२	५	३	६	१
५	२	७	४	६	१	३
६	१	३	२	७	४	५
३	४	५	६	१	७	२

३	६	२	५	७	४	१
५	४	१	३	६	७	२
७	१	५	४	२	६	३
२	३	७	६	४	१	५
६	७	३	२	१	५	४
१	५	४	७	३	२	६
४	२	६	१	५	३	७

६	१	५	२	४	७	३
२	७	३	६	१	४	५
४	३	२	७	५	१	६
५	६	४	१	७	३	२
१	४	६	५	३	२	७
३	२	७	४	६	५	१
७	५	१	३	२	६	४

किसी प्रकार से बनाया जाय सात स्वरों के कुल ४६ कूटतान होते हैं। इसकी विशेषता यह है कि हर एक तान नया होना चाहिए। इनका व्यवहार सब सम्पूर्ण रागों में हो सकता है।

सम्पूर्ण तानों से षाड़व और ओड़व तान निकाले जा सकते हैं। ये नीचे दिये जा रहे हैं।

६ स्वरके ३६ कूटतान

१	३	५	२	४	६
४	२	६	१	५	३
२	६	३	४	१	५
६	४	२	५	३	१
५	१	४	३	६	२
३	५	१	६	२	४

२	६	४	३	५	१
५	३	१	२	६	४
३	१	४	५	२	६
१	५	३	६	४	२
६	२	५	४	१	३
४	६	२	१	३	५

३	५	१	४	६	२
६	४	२	३	१	५
४	२	५	६	३	१
२	६	४	१	५	३
१	३	६	५	२	४
५	१	३	२	४	६

४	६	२	५	१	३
१	५	३	४	२	६
५	३	६	१	४	२
३	१	५	२	६	४
२	४	१	६	३	५
६	२	४	३	५	१

५	१	३	६	२	४
२	६	४	५	३	१
६	४	१	२	५	३
४	२	६	३	१	५
३	५	२	१	४	६
१	३	५	४	६	२

६	२	४	१	३	५
३	१	५	६	४	२
१	५	२	३	६	४
५	३	१	४	२	६
४	६	३	२	५	१
२	४	६	५	१	३

पहले दिखा चुके हैं कि ६ स्वरके ७ प्रस्तार होते हैं। उनमेंसे हर एकके ऊपर लिखे हुए प्रकारसे ३६ कूटतान होते हैं। षाड्व रागोंमें इन तानोंका प्रयोग किया जाता है।

५ स्वर के २५ कूटतान

१	३	४	५	२	१	४	३	५	२	१	५	३	४	२
३	२	५	१	४	२	१	५	३	४	२	४	५	१	३
५	४	३	२	१	३	२	१	४	५	३	१	२	५	४
२	५	१	४	३	५	३	४	२	१	४	३	१	२	५
४	१	२	३	५	४	५	२	१	३	५	२	४	३	१
५	१	३	२	४	५	२	१	४	३					
२	३	१	४	५	२	४	३	१	५					
४	[illegible]	२	३	१	३	१	५	२	४					
१	२	४	५	३	१	५	४	३	२					
३	४	५	१	२	४	३	२	५	१					

५ स्वर के २१ प्रस्तार होते हैं और उनमें से हर एकके उक्त प्रकार से २५ कूटतान होते हैं। ओड़व रागोंमें इन तानोंका प्रयोग किया जाता है।

यह तीन प्रकार के तान गमकयुक्त होनेसे "गमकतान" कहलाते हैं। विधि व नियम माननेवाले इन्हीं तानों का प्रयोग करते हैं, यों तो मनमाना तान सभी कोई व्यवहार करते हैं।

चित्र ७

वर्णालङ्कार

गानक्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपतः ।
स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम ॥
स्थित्वा स्थित्वा प्रयोगः स्यादेकस्यैव स्वरस्ययेः ।
स्थायी वर्णः स विज्ञेयः परावन्वर्थ नामकौ ॥
एतत्संमिश्रणाद्वर्णः संचारी परिकीर्तितः ।
विशिष्टवर्ण सन्दर्भमलंकारं प्रचक्षते ॥
येषामाद्यन्तयोरेकः स्वरस्ते स्थायी वर्णगाः ।
प्रसन्नादिः प्रसन्नान्तः प्रसन्नाद्यन्त संज्ञकः ॥
ततः प्रसन्नमध्यः स्यात् पंचमः क्रमरेचितः ।
प्रस्तारोऽथ प्रसादः स्यात् सप्तैता स्थायिनी स्थिता ॥

मन्द्र प्रकरणेऽत्र स्यान्मूर्च्छना प्रथमस्वरः ।
स एव द्विगुणस्तारः पूर्वः पूर्वोऽथवा भवेत् ॥
मन्द्रः परस्ततस्तारः प्रसन्नोमृदुरित्यपि ।
मन्द्रस्तास्तु दीप्तः स्यान्मन्द्रो विन्दु शिराभवेत् ॥
ऊर्ध्वरेखा शिरास्तारो लिपौ त्रिवचनात्प्लुतः ।

स्थायी वर्ण ७

१ सां सां सा'
२ सा' सा' सां
३ सां सा' सां
४ सां' सां सा'

५ सां रि सां, सां गम सां, सां पधनि सां
६ सां रि सां' सां' गम सां', सां' पधनि सां'
७ सां' रि सां, सां' गम सां, सां' पधनि सां

सङ्गीत पर्णजात में उक्त ७ स्थायी वर्णों को भद्र, नन्द, जित, सोम, ग्रीव, भाल और प्रकाश बताये गये हैं और कहीं कहीं इनको बोल में परिवर्तन किया गया है और "आंजनेयने कहा है" यह लिखा गया है। यहाँ दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

भद्र अलंकार—यमारभ्याग्रिमंगत्वा पुनः पूर्वस्वरं वदेत्
भद्रसंज्ञमलंकारमांजनेयो ऽवदत् सुधीः ॥
स र स, र ग र, ग म ग, म प म, प ध प, ध न ध।

नन्द अलङ्कार—(दीर्घ)
सा री सा, री गा री, गा मा गा, मा पा मा, पा धा पा, धा ना धा।

सँगीतरत्नाकर ग्रन्थमें स्थायी वर्णका ठीक ठीक अर्थ यह कहा है कि रुक रुककर स्वरोंका व्यवहार होगा और मन्द्र, मध्य और तार इनकाभी व्यवहार विचारके साथ करना पड़ेगा। पारिजात ग्रन्थोक्त स्थायी वर्ण और रत्नाकरके संचारी वर्ण एकही मालूम होते हैं क्योंकि स्थायी वर्ण पहले अलंकृत हुए हैं फिर उसके बाद आरोही और अवरोहीके (विपरीत) वर्ण और शेष संचारी वर्ण (आरोही और अवरोहीके मिश्रणसे)। स्थायी वर्णमें आरोहावरोह रीति रहनेसे उसे संचारी वर्ण कहते हैं। इसीलिए परिजातके स्थायी वर्ण आरोहावरोह रीतियुक्त होनेके कारण यही अनुमान कर सकते हैं कि वह संचारी वर्ण ही हैं।

आरोही वर्ण १२

स्यातां विस्तीर्ण निष्कर्षौ विन्दु अभ्युच्चयो परः
हसित प्रेंखिताक्षिप्त सन्धिप्रच्छादनास्तथा ॥
उद्गीतोद्ग्राहितौ तद्वत् त्रिवर्णो वेणिरीत्यमो।
द्वादशारोहिवर्णस्यालंकाराः परिकीर्त्तिताः ॥

१ सा री गा मा पा धा नी
२ { सस रिरि गग मम पप धध निनि
ससस सससस रिरिरि रिरिरिरि इत्यादि }
३ सासासा रि गागागा म पापापा ध निनिनि
४ स ग प नि
५ सा रीरी गागागा मामामामा पापापापापा धाधा धाधाधाधा नीनीनीनीनीनीनी।
६ सरी रिगा गमा मपा पधा धनी
७ सगा गपा पनी
८ सरिगा गमपा पधनी
९ ससस्रि गामामामा पधा
१० सरिरिरिगा मपपपधा
११ सरिगगगा मपधधधा
१२ ससस रिरिरि इत्यादि

अवरोही वर्ण १२

उपर्युक्त आरोही वर्णों को अवरोहक्रम से उच्चारण करने से १२ अवरोही वर्ण होंगे।

संचारी वर्ण २५

मन्द्रादिर्मन्द्रमध्यश्च मन्द्रान्तः स्यादतः परम्।
प्रस्तारश्च प्रसादोऽथ व्यावृत्तस्खलितावपि ॥
परिवर्त्ताक्षेप विन्दूद्वाहितोर्मि समासस्तथा।
प्रेङ्खनिष्कूजित श्येन क्रमोद्घाटित रञ्जिताः ॥
संनिवृत्त प्रवृत्तोऽथ वेणुश्चललिव स्वरः।
हुंकारो ह्लादमानश्चततः स्यादवलोकितः ॥
स्युः सञ्चारिन्यलंकाराः पञ्चविंशतिरित्यमी ॥

१ सगरी रिमगा गपमा मपधा पनिधा
२ गसरि मरिगा पगमा धमपा निपधा
३ रिगसा गमरी मपगा पधमा धनिपा

प्रस्तारानुसार इनके और तीन तीन तान होसकते हैं अथात् तीन स्वरोंके छः पूर्ण तान होते हैं। जैसे सरिग, रिसगा, सगरि, गसरि रिगसा, गरिसा।

इसी प्रकार प्रत्येक तीन स्वरोंके अर्थात् अपूर्ण ३५ तानोंके छ छ पूर्ण तान होते हैं।

४ सगा रिमा गपा मधा पनि
५ सरिसा रिगरी गमगा मपमा पधपा धनिधा
६ सागरिमासा रीमगपारी गापमधागा माधपनीमा
७ सगरिमा मरिगासा। रीमगाप पगमारी। गापमधा धमपागा। माधपनी निपधामा।
८ सगमा रिमपा गपधा मधनी

९ सगिगा रिगमा गमपा मपधा पधनी

१० सासासारिसा रीरीरीगरी गागागामगा मामा-मापमा पापापाधपा धाधाधानिधा

११ सरिगरि रिगमगा गमपमा मपधपा पधनिधा

१२ मामामासमा पापापारिपा धाधाधागधा नीनी-नीसनी

१३ सरिगमा मगरिसा, रीगमापा पमगरी, गमपधा धपमगा, मपधनी, निधपमा,

१४ सरीरिसा रिगागरी गमामगा मपापमा पधाधपा धनीनिधा

१५ सरिसागसा रिगरीमरी गमगापगा मपमाधमा पधनिधा

१६ सप रीध गनि ससा

१७ सरि सरिग सरिगम। रिग रिगम रिगमप। गम गमपा गमपधा। मप मपध मपधनी।

१८ सरिपमगरि रिगधपमगा गमनीधपमा

१९ सगरिसगरिसा। रिमग रिमगरी। गपम गपमगा। मधम मधप मा। पनिध पनिध पा।

२० सपामगरी रिधापमगा गनीधपमा

२१ सासरिमागारीरीगपामागागमधापामामपनीधा

२२सारी मरीसा रीगपगारी गमाधमागा मपनिपमा

२३ सरिसा सरिगरिसा सरिगमगरिसा सरिगम पमगरिसा सरिगमपधपमगरिसा सरिगमप धनिधपममरिसा

२४ सगरिसा रिमगरी गपमगा मधपमा पनिधपा

२५ सगमामरिसा रिमपापगरी गपधाधमगा मधनीनिपमा

एतेसंचार्यलंकारा आरोहेण प्रदर्शिताः।
एतानेवावरोहे तु प्राह श्रीकरणाग्रणीः॥

सप्तालंकार ७

अन्येऽपिसप्तालङ्कारा गीतज्ञैः रूपदर्शिताः।
तारमन्द्रप्रसन्नश्च मन्द्रतार प्रसन्नकः॥
आवर्त्तकः सम्प्रदानो विधू तोऽप्युपलोलकः।
उल्लासितश्चेति तेषामधुना लक्ष्य कथ्यते॥

१ सरिगमपाधनिसांसां

२ सांसांनिधपमगरिसां

३ ससरिरिससरिसा। रिरिगगरिरिगरी। गगमम-गगमगा। ममपपममपमा। पपधधपपधपा। धधनिनिधधनिधा।

४ ससरिरिसस, गिरिगगरिरि, गगममगग, ममपपमम, पपधधपप, धधनिनिधध।

५ सगसगा, रिमरिमा, गपगपा, मधमधा, पनिपनी

६ सरिसरिगरिगरि, गिरिगमगमग, गमगमपमपमा, मपमपधपधपा, पधपधनिधनिधा।

७ ससगसगा, रीरीमरिमा, गगपगापा, ममधमधा, पपनिपनी

शास्त्रमें इन ६३ वर्णालंकारों के विषयमें समझाया गया है परन्तु वास्तव में लोग इनमेंसे ४ ही ५ का अभ्यास करते हैं। हमने ३६ वर्णालङ्कार सीखा था। विद्यार्थी को उचित हैकि इनमेंसे जितने अलङ्कारों का हो सके कंठ व यंत्र के द्वारा अभ्यास करे।

शुभमिति

सुषुप्तावस्था तथा पसीना

[ले०—श्री० रामसरनदास, एम. एस-सी०]

हम सबको भली भांति मालूम है कि हमारे शरीरमें एक प्रकारकी गर्मी होती है। यह गर्मी केवल मनुष्य में ही नहीं होती वरन् कुछ पक्षियों और पशुओंमें भी होती है। यदि हम गायकी गर्दनपर हाथ फेरें तो गरम मालूम होगी। एक कबूतर को हाथ में लें तो और भी अधिक गर्मी हाथों में मालूम होगी। कारण यह है कि गाय या कबूतरकी गर्मी हमारे शरीरकी गर्मीसे अधिक होती है। इसके विरुद्ध यदि हम किसी नीची श्रेणीवाले पशुको जैसे सेही या औसट्रेलियाका एकिडना (Echidna), छुएं तो ठंडा मालूम होगा क्योंकि उसके शरीरकी गर्मी हमारे शरीरकी गर्मीसे कम होती है परन्तु एकिडनाको एक गरम कमरेमें ले जानेसे या उसको बहुत छेड़ने से उसके शरीरका तापक्रम बढ़ाया जा सकता है।

अब प्रश्न यह है कि यह गरमी जो मनुष्य या ऊँचे श्रेणी वाले पशुओंके शरीरमें होती है वास्तव में क्या है और इस गर्मीका रहस्य क्या है और उसका कारण क्या है? ऊंचे श्रेणीके पशुओंमें तो यह गर्मी शरीरके अन्दर कुछ चीज़ोंके जलनेसे उत्पन्न होती है। खासकर पेशियों (Muscles) के अन्दर यह गर्मी पैदा होती है। जब पशु आराम करता रहता है तब भी यह गर्मी पैदा होती रहती है। इसके पैदा होनेका कारण रासायनिक प्रक्रियाएँ हैं जो शरीरके अन्दर हर समय होती रहती हैं। गर्मी की उत्पत्तिका विचार करते हुए सबसे जरूरी रासायनिक प्रक्रिया भोजनीय पदार्थोंका जलना है। भोजन बहुधा पौधोंके द्वारा तय्यार होते हैं और पौधे अपनी ताक़त सूरजकी किरणोंके द्वारा लेते हैं दूसरे शब्दोंमें यह समझिये कि पौधे सूरजकी गर्मी को खाद्य पदार्थोंमें एकत्रित करते हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि हमारे शरीरकी गर्मी सूरजकी किरणोंसे आती है क्योंकि कोई भी नई गर्मी या नई शक्ति पैदा नहीं कर सक्ता। शरीरकी गर्मीका एक बड़ा भारी काम यह है कि वह शरीरके रसायनिक कार्य्य को बराबर जारी ही न रक्खे बलकि उसकी उन्नति भी करे। इस तरह पर अब हम समझ सकते हैं कि पक्षी और दूध पिलाने वाले जानवर जिनका शरीर सदा गरम रहता है और जिनकी गरमी सदा दिन व रात एक ही ही रहती है क्यों ठंडे खून वाले जानवरोंसे अच्छी दशा में रहते हैं। हम देखने में चाहे ठंडे या गरम मालूम हों परन्तु हमारे शरीरकी गर्मी कभी घटती बढ़ती नहीं सिवा उस समयके जब कि हम रोगी हों। इसके विरुद्ध ठंडे खून वाले पशुकी गर्मी बाहरी हवा या ऋतुकी गर्मी के अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

ईश्वरका नियम यह है कि गरम खून वाले पशुकी गर्मी सदा एक रहती है बल्कि यह कहना चाहिये कि खूनकी गर्मी के ही द्वारा शरीरकी गर्मी सदा एक दशामें रहती है। यदि किसी पक्षी या दूध पिलाने वाले पशुके शरीरकी गर्मी कम हो जावे तो ठंडा खून मस्तिष्क द्वारा (Brain) उस हिस्सेको खबर देता है जो सर्दी कम करने या बढ़ाने का मालिक है। ऐसी खबर पाकर मस्तिष्क तुरन्तु मांसपेशियों को आज्ञा देता है कि और गर्मी पैदा करो और साथ ही साथ खालमें खूनकी नलियों (Skin capillaries) को तङ्ग होने की आज्ञा देता है। इसके विरुद्ध जब शरीरका तापक्रम ज्यादा हो जाता है तब पशु चुपचाप पड़ रहता है या कुत्ते की तरह हांपने लगता है या बहुत पसीना निकलने लगता है। इन सब यत्नोंसे शरीरका तापक्रम कम हो जाता है। चुपचाप पड़ रहनेसे यह होता है कि शरीरके अन्दर गर्मी पैदा होना कम हो जाती है और हांपनेसे शरीरका पानी मुंहके द्वारा भाप बनके उड़ता है और भाप बननेमें शरीरकी गर्मी का कम होना अवश्यक है। पसीना निकलनेसे भी यह होता है कि जब पसीना शरीरपरसे सूखता है बल्कि यों कहना चाहिए कि जब पसीना भाप बनके उड़ता है तो शरीरको गर्मी कम होता है।

यदि एक कबूतरका छोटासा बच्चा थोड़ी देरके लिए ठंडकमें डाल दिया जावे तो उसका तापक्रम कम हो जाता है क्योंकि छोटी चिड़ियों में गर्मीको घटाने या बढ़ानेका प्रबन्ध पूरी तरहसे नहीं होता। इसी तरह कुछ दूध पिलाने वाले जानवर भी ऐसे होते हैं जो अपने ठंडे खून वाले पुरखों यानी सांप बिच्छू छिपकली घड़ियाल इत्यादि * की रीति अभी नहीं भूले हैं। और यह पूरी तरह से गरम खून वाले जानवर नहीं बन पाए हैं, यानी इनके शरीरका ताप क्रम सदा कसा नहीं रह सकता। छोटी चिड़ियों-की भांति इनमें भी तापक्रमके घटाने बढ़ानेका खूब अच्छा प्रबन्ध नहीं हो पाया है। यह पशु अपनी न्यूनताको पूरा करनेके लिए एक प्रकारकी सुषुप्तावस्था-में रहते हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

कड़ी गर्मी या सर्दीसे बचनेके लिए अनेक ढङ्ग होते हैं जिनके द्वारा केवल सर्दी या गर्मीसे बचने का ही सवाल हल नहीं होता बल्कि साथ ही साथ खाने-का भी सवाल हल हो जाता है। कुछ ठंडे खून वाले जन्तु जैसे कछुआ मेढ़क या बहुत कड़ी सर्दी या गर्मीके की ऋतुमें एक प्रकारकी सुस्ती या काहली धारण कर लेते हैं और अपना खाना पीना सांस लेना या तो बहुत ही कम कर देते हैं या बहुधा त्याग देते हैं। बलकि यह कहना अनुचित न होगा कि वह एक प्रकार-की सुषुप्तावस्थामें प्रवेश करते हैं वे इस दशामें कड़ी सी कड़ी सर्दी या गर्मीको सहन कर लेते हैं किन्तु अपना जीवन नहीं जाने देते। हां यदि सर्दी इतनी कड़ी होजावे कि शरीरके अन्दरका पानी बर्फ बनने लगे तो अवश्य इनकी मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ दूध पिलाने वाले पशु होते हैं जिनका खून कुछ गर्म होता है किन्तु यह गर्मी उनके लिये काफी नहीं होती, जैसे इकिडना (Echidna) सेही, चिमगादड़ इत्यादि। जब शरद ऋतु आती है तब इस सर्दीका सामना करनेके लिए यह पशु काफी गर्मी अपने शरीरमें पैदा नहीं कर पाते। तब वह इस सर्दीके कारण ऐसे किसी कोने अंतरमें जिसका तापक्रम उनके शरीरके तापक्रमकी अपेक्षा समान होता है, या अधिक होता है. जाकर आलसी होकर बैठ रहते हैं। अगर वह खुले हुए मैदानमें सो जावें तो सर्दीके द्वारा उनकी मृत्यु अवश्य हो जाती है। परन्तु किसी ढके स्थानमें वे अपने इस समयको कुशलता पूर्वक व्यतीत कर देते हैं। हां यदि कहीं वह कोना या गड्ढा जिसमें वह मौजूद हों बहुत ज़्यादा ठंडा हो जाय तो उनकी मृत्यु हो जाती है। इस सुषुप्तावस्थामें न वह खाना खाते हैं और न उनको पेशाब पाखानेकी आवश्यकता होती है, दिलकी धड़कन भी मन्द पड़ जाती है और सांसका आना जाना भी बन्द हो जाता है। शरीरके अन्दर जो चर्बी होती है वह घुल घुल कर थोड़ी बहुत गर्मी पैदा करती रहती है और इस प्रकार पशुको मृत्युके हाथसे बचा लेती है।

* विकासवाद द्वारा यह निश्चित है कि दूध पिलाने वाले पशुओंकी उत्पत्ति सांप या बिच्छू या छिपकली या इसी भांतिके जीवोंसे हुई है।

कुछ लोग सुषुप्तावस्थाकी इस विचित्र दशाका कारण यह बतलाते हैं कि जब पशुको कड़ी सर्दी ऋतुमें गर्म स्थान मिल जाता है तो गर्मीके कारण उनको गाढ़ निद्रा आजाती है और विकार युक्त तत्व-के एकत्रित होनेसे वह शरीरमें फैल कर एक प्रकार-के साधारण विषका काम करता है जिसके कारण पशुको एक प्रकारका नशा सा होजाता है। किन्तु यह बात कुछ ठीक सी नहीं मालूम होती क्योंकि सुषुप्तावस्थामें होनेकी आदत दोचार पशुओं में ही नहीं होती किन्तु कुछ पशुओंकी जातिकी जाति शरद ऋतुमें सुषुप्तावस्थामें हो जाती हैं इस स्थान पर यह बतला देना आवश्यक है कि पशु केवल सर्दी ही के दिनोंमें ही सुषुप्तावस्थामें नहीं रहते किंतु उन देशों-में जहां गर्मी अधिक पड़ती है जैसे मेडगासकर या हिन्दुस्तान, ऐसे देशोंमें बहुतसे पशु जब बहुत कड़ी गर्मी पड़ती है तो सुषुप्तावस्थामें लीन रहते हैं।

सुषुप्तावस्थामें रहने वाले पशुओंकी उस समय वही दशा होती है जैसी कि निद्रावस्थामें। हां बाजों-को गाढ़ निद्रा मालूम होती है दूसरों को हलकी सी।

साहीको जब सुषुप्तावस्थामें ही पानीमें देरतक डुबाए रखिये, चाहे उसको बदबूदार हवामें देर तक रखिये, तो भी वह होशमें नहीं आती। मरमुट Mormot इसी तरह बहुत गहरी नींदमें सोता है। Dormouse डारमाउस इसके विरुद्ध हलकी नींद सोते हैं और बहुतसे चमगादड़ ऋतुके बदलनेपर शीघ्र हो जग जाते हैं। गहरी नींद वाले पशुओंको यदि जबरदस्ती जगा भी जावे तो उनके स्वास्थ्य पर हानिकारक परिणाम होता है और यहांतक कि वह मर भी जाते हैं। जब ये पशु स्वयम्, जागते हैं तो यह स्वस्थ और फुर्तीले हो जाते हैं और उनके शरीरका ताप क्रम वास्तविक अवस्थामें आ जाता है। डाक्टर पेम्ब्रे (Pembrey)ने यह मालूम किया है कि डारमाउसका (Dormouse) जगनेपर ४२ मिनटके अन्दर १९ डिगरी तापक्रम अधिक बढ़ जाता है।

अब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि साही तो सुषुप्तावस्थामें रहती है किन्तु छछुन्दर नहीं इसका क्या कारण है। इसका कुछ तो उत्तर यह है कि छछुन्दर ज़मीन खोद खोद कर गहरे सूराखमें रहती हैं जहांपर उसको केंचुवे इत्यादि खानेको मिल जाते हैं, और जहांपर बर्फ, पाले, तथा कोहरेका प्रभाव नहीं पड़ता। तो यह भी प्रश्न हो सकता है कि चमगादर क्यों सुषुप्तावस्थामें रहते हैं और अन्य चिड़ियाँ क्यों नहीं रहती इसका तो कुछ अंशमें यह उत्तर है कि बहुत ठंडे मुल्कोंकी चिड़ियाँ उड़कर किसी कदर गरम देशोंमें चली जाती हैं और इस कारण उनको सुषुप्तावस्थामें रहनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। कुछ पशु ऐसे भी हैं, जैसे स्टोट (Stoot) जिनका यह नियम है कि जाड़ोंके दिनोंमें उनका रङ्ग बिल्कुल सफ़ेद हो जाता है और खाल मोटी हो जाती है। इस प्रकारसे वह सर्दीका सामना करते हैं। गिलहरी भी सुषुप्तावस्थामें नहीं रहती क्यों कि वह अपना खाना जाड़ोंके लिये पहिलेसे ही एकत्रित कर लेती है और जाड़ोंके दिनोंमें उसको बाहर इधर उधर घूमनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

उपरोक्त बातोंका सारांश यह हुआ कि सुषुप्तावस्थामें न रहने वाले जानवार सर्दीसे बचनेका विचित्र विचित्र उपाय करते हैं। और यदि वे कोई विचित्र उपाय नहीं कर पाते तो कमसे कम बहुत पुष्ट और हट्टे कट्टे होते हैं और अपनी आन्तरेक शक्तिके द्वारा मरने नहीं पाते, जैसे भेड़िया या लोमड़ी, जिनके ऊपर सर्दी गर्मीका ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता।

दूध पिलानेवाले जानवर ठंडे खून वाले पशुवोंसे पैदा हुए हैं। इसमें किसीको सन्देह करनेकी बात नहीं है। इनमेंसे कुछ दूध पिलाने वाले जानवरोंका खून कुछ कम गर्म होता है और किसीका कुछ ज़्यादा जिनका खून कुछ कम गर्म होता है उनमें कम या ज्यादा गर्मी करनेका प्रबन्ध अच्छी तरहसे नहीं होता। अतः उनके लिए आवश्यक होता है कि वह सुषुप्तावस्थामें रहें क्योंकि वह अपने शरीरकी सर्दी गर्मी जल्दी जल्दी ऋतुके अनुसार घटा बढ़ा नहीं सकते और उनका जीवन खतरेमें रहता है अतः वे सुषुप्तावस्थामें हो जाते हैं। तो इस प्रश्नका कि क्यों कुछ पशु सुषुप्तावस्थामें रहते हैं और कुछ क्यों नहीं रहते उत्तर यह भी हुआ कि जिनमें सर्दी गर्मी घटाने बढ़ानेका पर्याप्त प्रबन्ध नहीं रहता वह सुषुप्तावस्थामें हो जाते हैं और जिनमें रहता है वह नहीं होते। सुषुप्तावस्थामें पशुको बिना अन्न जलके ऋतु पर्यन्त रहना पड़ता है। किन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि सुषुप्तावस्था समाप्त हो जाने के पश्चात् कमज़ोरी होनेकी अपेक्षा एक प्रकार का बहुत बल आजाता है।

सबको मालूम है कि ग्रीष्म कालमें हम लोगोंके शरीरसे पसीना बहुत निकलता है। अब यह प्रश्न होता है कि पसीना क्या चीज़ है और इसके बाहर निकलनेसे क्या लाभ होता है। पसीना केवल दूध पिलाने वाले जानवरों में ही निकलता है और इनमेंसे भी कुछ ऐसे होते हैं जिनमें पसीना नहीं निकलता। पसीना निकलनेवाले जानवरोंका खालमें Corkscrew) कार्क निकालने वाले पेचकी तरह पसीना पैदा करने वाली Glands होतीं हैं। इनका काम यह होता

है कि वह खूनसे पानी और कुछ नमक या क्षार या और कुछ बेकार तत्व अपने अन्दर ग्रहण कर लेते हैं और खाल पर बारीक बारीक छिद्रोंके द्वारा इन चीजोंको बाहर निकाल देते हैं। ये बारीक छिद्र पसीनेकी ग्रन्थियोंके होते हैं। एक वर्ग इन्चमें दो या तीन हजार छिद्र होते हैं। इनके अतिरिक्त खालमें और भी ग्रन्थियां Glands होते हैं जिनका काम चर्बी बनाना है। यह चर्बी बाल और खालको मुलायम तथा चिकना रखती है।

जिन दिनोंमें पसीना कम निकलता है और हवा शुष्क होती है, पसीना शरीरपर निकलते निकलते सूख जाता है जैसा कि शरद ऋतुमें होता है किन्तु जब गर्मी अधिक पड़ती है और हवा नम होती है तो पसीना बड़ी बड़ी बूंदे बनकर गिरता है और कभी कभी हल्की धार भी बंध जाती है। आदमीके खाल पर बहुधा चमकते हुए पसीनेकी बूंदे दिखाई पड़ती हैं किन्तु हथेली आदि विशेष स्थानोंमें नमी ज्यादा रहती है। पसीने में बहुत ज्यादा अंश तो पानीका होता है किन्तु पशुके शरीरमें ही पानीका अंश बहुत ज्यादा होता है। कम से कम ६० प्रति सैकड़ा तो अवश्य ही होता है। पसीनेमें जो पानी आता है वह खूनसे आता है। और खूनसे अंतड़ीयोंके द्वारा आता है। २४ घण्टेमें पसीनेका परिमाण दो सेर के करीब होता होगा। यह कहा जा सकता है कि पसीना निकलनेसे शरीरमें पानीका परिमाण समान रहता है। यानी जब पानी ज्यादा होता है तो पसीना ज्यादा तथा जब पानी कम होता है तब पसीना कम निकलता है। किन्तु पसीनेका वास्तविक अर्थ पानीको समान परिमाणमें रखनेका नहीं है क्योंकि चिड़ियोंमें पसीना बिलकुल नहीं निकलता तथापि उनके खून में जल का परिमाण समान रहता है।

पानीके साथ साथ पसीनेमें कुछ चर्बी और कई प्रकारके तेजाब और कुछ Albumen एल्बूमेन, यूरिया Uria और कई प्रकार के नमक होते हैं। यह स्पष्ट है कि कुछ चीजें जो हम लोग भोजनके साथ खाते हैं वह यों ही पसीनेके रूपमें बनकर शरीरमें बाहर निकल जाती हैं तो पसीनेका दूसरा मतलब यह भी होता है कि वह शरीरके विकारयुक्त तत्वको को खूनसे छान कर बाहर निकाल देता है। मगर इसके अतिरिक्त पसीना निकलनेका कुछ और भी प्रयोजन है क्योंकि विकारयुक्त तत्वोंका परिमाण जो पसीनाके द्वारा बाहर निकलता है बहुत कम होता है। प्रायः ये विकारयुक्त तत्व पेशाबके द्वारा निकल जाते हैं। यह सदा देखा जाता है कि ग्रीष्मकी धपमें या जब मनुष्य खूब शारिरिक परिश्रम किये हो तब पसीना बहुत ज्यादा निकलता है। इन्जनमें कोयला झोंकनेवालोंके पसीनेका प्रमाण ४५ मिनटमें २ बोतल होता है। और सत्तर मिनटमें करीब तीन बोतलके होता है। सुननेमें यह कुछ गलतसा भी मालूम होता है। किन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है क्योंकि पसीनेकी Glands ग्रन्थियां बहुत ज्यादा होती हैं। एक मनुष्यकी सब ग्रन्थियोंकी संख्या २०,००,००० लाख से कम नहीं होती। यदि ये सब ग्रन्थियां एक पंक्तिमें फैलाकर रक्खी जांय तो क़रीब क़रीब २० मील तक फैल जांयगी। ग्रीष्म कालमें और अधिक परिश्रम करनेपर बड़ा भारी खतरा यह होता है कि शरीरका तापक्रम बहुत ज्यादा न हो जावे, तो इसीकी रक्षा करनेके लिये पसीना निकलता है। पसीनेके सूखनेसे खूनका तापक्रम खर्च हो जाता है और इस प्रकार शरीरमें गर्मीका अंश बढ़नेका भय भी नहीं रहता। कुछ दूध पिलाने वाले पशुओं में खून अच्छी तरह गरम रहता है, उनके शरीरका ताप क्रम सदा दिन रात क्या जीवन पर्यन्त सदा एक ही रहता है। जब बहुत ठण्डक पड़ती है तो मस्तिष्क मांसपेशियों Muncles को ज्यादा गर्मी पैदा करनेकी आज्ञा देता है और जब अधिक ग्रीष्म काल में गर्मी पड़ती है तो पसीनेकी ग्रन्थियों को Glands अधिक पसीना निकालनेकी और इस प्रकारसे शरीरके ताप-क्रमको कम करनेकीआज्ञा मिलती है। तो परिणाम यह होता है कि शरीरको गर्मी सदा एक ही मात्रा में रहती है और पसीने का वास्तविक अर्थ भी यही होता है कि शरीरके तापक्रमको सर्वदा एक ही मात्रामें रक्खे।

अब इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि ग्रीष्म कालमें या अधिक शारीरिक श्रम करनेके बाद जब कि तापक्रमके बढ़ जानेकी बहुत आशंका हो जाती है तब पसीनेकी मात्रा क्यों बहुत बढ़ जाती है। पसीनेके द्वारा हमारा शरीर खूनकी गर्मी बढ़नेकी आपत्तिसे वंचित रहता है। इससे पहले कहा ज चुका है कि Nerves पसीनेकी ग्रन्थियों Gland को इस अवसरपर अधिक पसीना पैदा करनेके लिये मस्तिष्कसे आज्ञा लाती हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि मस्तिष्क को ही शरीरकी दशाका समाचार कैसे मिलता है। बात यह है कि इस आपत्तिके पहुँचानेका काम खून ही करता है। जब गरम खून मस्तिष्ककी नलियोंके द्वारा घूमता है तब मस्तिष्क इस गर्मीको अनुभव करता है और शीघ्र ही इस बातका यत्न करता है कि गर्मी किसी प्रकार कम की जाय। ऐसी स्थिति में वह स्नायु Nerves के द्वारा पसीनेके glands ग्रन्थि को ज्यादा पसीना पैदा करनेके लिये शीघ्र ही आज्ञा भेजता है।

अब पाठकगणके हृदयमें सम्भवतः यह प्रश्न होगा कि चिड़ियाँ भी उसी क़दर गर्म खून वाली होती हैं जितना कि दूध पिलाने वाले जानवर और चिड़ियोंका भी तापक्रम प्रत्येक ऋतुमें दिन रात एक ही डिग्रीपर रहता है तो चिड़ियोंको पसीना क्यों नहीं निकलता। उनकी खालमें पसीनेकी एक भी ग्रन्थियाँ gland क्यों नहीं होती ? इसका उत्तर यह है कि शरीरके तापक्रमको एक ही डिगरीपर रखनेके लिये केवल एक यही उपाय नहीं है कि पसीना निकाला जाय किन्तु इसके अतिरिक्त इस अभिप्रायको पूरा करनेके निमित्त और भी साधन हो सकते हैं। अगर जानवर चुपचाप एक जगह बैठ जाँय जैसा कि चिड़ियाँ करती हैं कि वृक्षोंकी छायामें बैठ जाती हैं। उससे उनके खूनकी गर्मी कुछ न्यून हो जाती है अगर खालवाले खूनकी नलियाँ Skin capillaries मस्तिष्ककी आज्ञाके अनुकूल किसी प्रकार फूल जावें तो उससे भी कुछठण्डक पहुंचती है। या वही काम कुछ पक्षी या पशु हाँफहाँफ कर निकाल लेते हैं। जब वह हाँफते हैं या जल्दी जल्दी साँस लेते हैं तो फेफड़ेके अन्दरका खून जल्दी जल्दी हवा पानेसे कुछ ठण्डा हो जाता है। इन सब उपायोंके अतिरिक्त पक्षियोंमें बहुत अच्छा उपाय और होता है। उनके शरीरमें पतली झिल्लीकी बनी हुई हवाकी थैलियाँ होती हैं और इनका सम्बन्ध फेफड़ेसे होता है। जिस प्रकारसे हमारे शरीरके ऊपर पसीना सूख कर हमारे शरीरको ठंडक पहुँचाता है उसी प्रकारसे इन थैलियोंके भीतर वाली हवा इन थैलियोंकी झिल्लीकी नसोंको सुखाके ठण्डक पहुँचाती हैं और यह तप्त हवा फेफड़ेसे होकर बाहर निकल जाती है। तो सिद्ध हुआ कि केवल इतना ही अन्तर है कि हमारे शरीरके ऊपर पसीना निकलता है और उनके शरीरके भीतर निकलता है। दोनोंमें नियम एक ही है। यानी पानी का भापके रूपमें उड़ना तथा तापक्रमका कम होना। अब यह ज्ञात हुआ कि पसीनेका हम लोगोंके शरीरसे निकलना परमावश्यक है किन्तु पसीना निकालनेके अतिरिक्त इसी अभिप्रायको पूरा करनेके लिये और भी उपाय हैं जैसा कि अभी बताया गया है। कुछ दूध पिलाने वाले भी पशु ऐसे ही हैं जिनमें पसीना बिलकुल नहीं निकलता या कुछ कम निकलता है, जैसे आस्ट्रेलियाका एकीड्रिया (Echidria)। इसी वास्ते वह जाड़ोंके दिनोंमें सषुप्तावस्थामें रहता है और यह कहा जा सकता है कि यदि इस जानवरके पसीना निकलता होता तो इस जानवरकी जिन्दगी बहुत अच्छी

होती। ऊंचे श्रेणी वाले पशुओंमेंसे कुत्ता एक ऐसा जानवर है कि जिसकी खालमें पसीनेकी ग्रन्थियों (glands) बहुत कम होता हैं और इसी कमीको पूर्ण करनेके लिये कुत्तेको बहुत ज्यादा हाँफनेकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। यह सभीने देखा होगा कि कुत्ता जबान निकाल कर बहुत वेग से हाँफा करता है। इससे यह फल होता है कि उसका थूक भापके रूपमें उड़ता है और खून को ठण्डक पहुँचाता है।

कुछ लोग इस बात को बल पूर्वक कहते हैं कि उनके पसीना बिलकुल नहीं निकलता। वास्तव में उनका यह कथन बिलकुल ग़लत है। अन्तर केवल यह है कि वह अपनी खालको अच्छी हालतमें रखते हैं जिससे कि उनके पसीने वाले सुराख खुले रहते हैं और शरीरमें इतना पानी एकत्रित नहीं होते पता कि धारके रूप में या बड़ी बड़ी बून्दोंमें शरीरसे बाहर निकले। वे लोग कपड़े भी ढीले ढीले पहिनते हैं जिसमें पसीना भी निकलते निकलते सूख जाता है। किन्तु यह बात कि पसीना बिलकुल नहीं निकलता बिलकुल ग़लत है चाहे वह उनको मालूम पड़े या न पड़े। यों तो पसीना निकलना अच्छी बात है किंतु पसीनेका अत्यधिक आना लाभदायक नहीं होता। प्रायः देखा गया है कि बहुत दुर्बल रोगियोंको पसीना बहुत ज्यादा आता है और पसीनेके पश्चात् शरीर ठंडा पड़ जाता है। यानी शरीरकी गर्मी साधारण गर्मीसे कम हो जाती है। वास्तवमें यह बहुत बुरी बात है क्योंकि इसका अर्थ यह है कि आदमीका बल कम हो जाता है और शरीरके परमावश्यक अवयव जैसे मस्तिष्क हृदय इत्यादि अपना काम करना कम कर देते हैं और अन्तिम परिणाम मृत्यु होती है। इसी हेतु कहा जाता है कि ज्वरका एक दम उतर जाना अच्छा नहीं होता। एकदम गर्मी कम हो जानेसे यह ज़रूरी होता है कि शरीरमें गर्मी और जल्दीसे पैदा हो। इस वजहसे गर्मी पैदा करनेवाले अवयव यानी हृदय और मस्तिष्क की ग्रन्थियों glands पर ज्यादा ज़ोर पड़ता है। यह अवयव organ बहुत कमज़ोर होनेकी वजह से बहुत जल्द थक जाते हैं और अपना काम बन्द कर देते हैं यानी मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। रातको बहुत ज्यादा पसीना आना भी बहुत बुरी बात होती है। तपेदिकके रोगीको रातको बहुत पसीना आता है। इसके माने यह होते हैं कि शरीरसे धीरे धीरे आवश्यक वस्तु नष्ट होने लगते हैं और इस प्रकार रोगी कमज़ोर पड़ता जाता है।

इसलिये आवश्यक यह है कि मनुष्यको अपना शरीर खूब साफ़ रखना चाहिये जिससे पसीना वाले सुराख सदैव खुले रहें और पसीना स्वतंत्रतासे बाहर निकल कर शुष्क होता रहे। शरीरको साफ रखना स्वास्थ्यको ठीक रखनेके लिये परमावश्यक है। इन बातों पर ध्यान पूर्वक विचारने से यह ज्ञात होता है कि जो नियम हमारे प्राचीन ऋषियोंने बना रक्खे हैं वे बिल्कुल वैज्ञानिक तथा लाभदायक हैं। वह नियम यह हैं कि नित्य प्रति भोजनके पहिले स्नानका करना, तथा ढीले ढाले और साफ़ कपड़ोंका पहिनना। भोजन करनेसे शरीरमें ज्यादा गर्मी होती है और इसी कारण पसीना भी ज्यादा आता है तो हम लोगोंको भोजन करनेके पहिले स्नानके द्वारा पसीनेके छिद्र खूब अच्छी तरहसे साफ़ कर लेना चाहिये। हम लोगोंका प्राचीन पहिनाव भी इसी नियमके अनुकूल था। हमारे गरम मुल्कके लिये बहुत तंग कपड़ोंका पहिनना जैसे मोजा पतलून इत्यादि केवल दुःखदायी ही नहीं किन्तु हानिकारक भी हैं। इसके विरुद्ध हम लोगोंका पुराना ढीलाढाला पहिराव जैसे धोती, कुर्ता, साड़ी इत्यादि, हम लोगों जलवायुका विचार करते हुए और उपरोक्त नियमोंका ध्यान करते हुये बहुत ही उपयुक्त तथा लाभदायक हैं।

६

सूर्यग्रहणाधिकार

[लेखकः—श्रीमहावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य]

संक्षिप्त वर्णन

[श्लोक १—किस समय सूर्यके लंबन और नति शून्य होती हैं। श्लोक २-८-लंबन जानने के नियम। श्लोक ९-लंबन का संस्कार देकर असकृत्कर्मसे अमावास्यान्त काल निश्चय करना। श्लोक १०-११-नति जानने के नियम। श्लोक १२-नति और चन्द्रमाके शरके योग या अन्तर-से नति संस्कृत शर जाना जाता है। श्लोक १३-नति संस्कृत शर से स्थिति विमर्द इत्यादि जानना चाहिए। श्लोक १४-१७-स्पर्श और मोक्ष-कालके लंबनको जानकर असकृत्कर्मसे फिर स्पर्श और मोक्षकालकी की गणना करनी चाहिए।]

लंबन और नतिका अभाव कब होता है—

मध्यलग्न समे भानौ हरिजस्य न सम्भवः।
अक्षोदङ्मध्यभक्रान्तिसाम्ये नावनतेरपि ॥१॥

अनुवाद—(१) जब सूर्य त्रिभोन लग्नपर होता है तब उसमें भोगांश-लंबनका अभाव होता है। जब किसी स्थान-का उत्तर अक्षांश और त्रिभोन लग्नकी उत्तर क्रान्ति समान होती हैं अर्थात् जब सूर्य ख-स्वस्तिकपर रहता है तब उसमें नति अर्थात् शर-लंबनका अभाव होता है।

विज्ञानभाष्य—इस श्लोकके मध्य लग्न का अनुवाद त्रिभोन लग्न किया गया है यद्यपि पृष्ठ ४८३-४८४ में बतलाया गया है कि मध्य लग्न वित्रिभ लग्न अथवा त्रिभोनलग्न से भिन्न होता है। परन्तु यहाँ आचार्यने त्रिभोनलग्नको मध्य लग्न इस लिए लिख दिया कि यह उदय और अस्त लग्नोंके मध्यमें होता है, यद्यपि एक ही शब्दका प्रयोग दो अर्थोंमें संदिग्ध होता है। यदि मध्य लग्नका वह अर्थ लिया जाय जो कि त्रिप्रश्नाधिकारके श्लोक ४८ में माना गया है तो भाव अशुद्ध ठहरता है इस लिये यहाँ मध्य-लग्नका अर्थ त्रिभोन लग्न ही है। यदि सूर्य या कोई ग्रह त्रिभोन लग्न-पर हो तो भोगांश लंबन शून्य होता है। इसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकारमें विस्तारपूर्वक बतलायी गई है (देखो पृ० ५६१)। शर लंबनके सम्बन्धमें भी वही बतलाया जा चुका है।

देश काल विशेषेण यथावनतिसम्भवः।
लम्बनस्यापि पूर्वान्य दिग्वशाच्च तथोच्यते ॥२॥

अनुवाद—(२) पहले श्लोकमें बतलायी गई स्थितिसे भिन्न दशामें देशकालानुसार जैसी नति होती है और जब सूर्य वित्रिभ लग्न से पूर्व या पश्चिम होता है तब उसमें जैसा भोगांश लंबन होता है उसकी चर्चा यहाँ की जाती है।

लग्नं पर्वान्त नाडीनां कुर्यात्स्वैरुदयासुभिः।
तज्ज्यान्त्यापक्रमज्याघ्नी लम्ब ज्याप्तोदयाभिधा॥३॥

तदा लङ्कोदयैर्लग्नं मध्य संज्ञं यथोदितम्।
तत्क्रान्त्यक्षांश संयोगो दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥४॥
शेषं नतांशास्तन्मौर्वी मध्यज्यो साभिधीयते।
मध्योदयज्यया भ्यस्ता त्रिज्याप्ता वर्गितं फलं ॥५॥

मध्यज्या वर्ग विश्लिष्टं दृक्क्षेपः शेषतः पदम् ।
तत् त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलंशंकुः स दृग्गतिः ॥६॥

अनुवाद—(३) पर्वान्तकाल अर्थात् अमावस्याके अंतकालका लग्न इष्ट स्थानके (राशि के) उदयासुओं से जान कर उसकी ज्याको परमक्रान्तिज्यासे गुणा करके गुणनफलको इष्ट स्थानकी लम्बज्या या अक्षांश कोटिज्यासे भाग देनेपर जो लब्धि आती है उसे उदय या उदयज्या कहते हैं। (४) पर्वान्त काल में लङ्काके उदयासुओंसे पहले कहे हुएके अनुसार मध्यलग्न अथवा दशम लग्न जानकर उसकी क्रान्तिको इष्ट स्थानके अक्षांशमें जोड़ दे यदि दोनोंकी दिशायें एक ही हों। यदि दिशाएं भिन्न हों तो क्रान्ति और अक्षांशका अन्तर निकाले। (५) जोड़ने या घटानेसे जो कुछ आवे वही मध्यलग्न का नतांश है। इसीकी ज्याको मध्यज्या कहते हैं। मध्यज्या और उदयज्या को परस्पर गुणा करके गुणनफल का वर्ग करे (६) और वर्गफलको मध्यज्याके वर्गसे घटा दे और शेषका वर्गमूल निकाले। वर्गमूल निकालनेसे जो आता है वही दृक्क्षेप कहलाता है। दृक्क्षेप के वर्ग को त्रिज्या-के वर्गसे घटा कर वर्गमूल निकालने से जो आता है वही शंकु या दृग्गति है।

विज्ञानभाष्य—इन चार श्लोकोंमें जो क्रिया बतलायी गई है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५६२—५६४ में अच्छी तरह बतलायी गयी है। उसी स्थानके चित्र ७६ से प्रकट होता है कि मध्य लग्नकी क्रान्ति और इष्ट स्थानके अक्षांशको कब जोड़ना चाहिये और कब घटाना चाहिये इनकी दिशाओंके जाननेकी रीति वही है जो पृष्ठ ३६०-३६१ में बतलायी गयी है।

यहाँ लग्नका अर्थ सायन लग्न समझना चाहिये।

नतांश बाहुकोटिज्येऽस्फुटे दृक्क्षेप दृग्गति ।
एकज्या वर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गति जीवया ॥७॥

मध्य लग्नार्क विश्लेषज्या छेदेन विभाजिता ।
रवीन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक् पश्चाद् घटिकादिकम् ॥८॥

(७) स्थूल रूपसे दशम लग्नके नतांशकी ज्याको दृक्क्षेप और कोटिज्याको दृग्गति कह सकते हैं। एक राशि-की ज्याके वर्गको दृग्गति रूपी जीवासे भाग देनेपर जो आता है उसे छेद कहते हैं। (८) त्रिभोन लग्नसे सूर्य जितना दूर रहता है उसे विश्लेष या विश्लेषांश कहते हैं। इस की ज्याको छेदसे भाग देने पर—सूर्य या चन्द्रमाका पूर्व या पश्चिम लंबन घड़ियोंमें आ जाता है। यदि सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व है तो पूर्व लंबन और पश्चिम है तो पश्चिम लंबन होता है।

विज्ञानभाष्य—दृक्क्षेप और दृग्गतिके शुद्ध रूप तो वही हैं जो ६ वें श्लोकमें बतलाये गये हैं। परन्तु उनके जानने की रीति लम्बी है इसलिये ७ वें श्लोकके पूर्वार्धमें छोटी रीति बतलायी गयी है जो स्थूल है। इस छोटी रीतिमें मध्यलग्नके नतांशको ही त्रिभोनलग्नका नतांश मान लिया गया है। क्योंकि इन दोनोंमें बहुत कम अंतर रहता है। परन्तु इससे स्थूलता अवश्य आ जाती है।

छेद और विश्लेषांशसे सूर्य और चन्द्रमाका भोगांश लंबन जाननेकी जो रीति यहां बतलायी गयी है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ५६४ और पृष्ठ ५८४-५८५में बतलायी गई है।

मध्यलग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात्प्रविशोधयेत्।
धनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरी भवेत् ॥९॥

अनुवाद—(९) त्रिभोनलग्नके भोगांशसे सूर्यका भोगांश अधिक हो तो सूर्य त्रिभोनलग्नसे पूर्व रहता है इसलिए सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश लंबनोंके अंतरको अमावास्याके अंतकालसे घटाना चाहिए। परन्तु यदि त्रिभोनलग्नके भोगांशसे सूर्यका भोगांश कम हो तो सूर्य और चन्द्रमाके भोगांश लंबनोंके अंतरको आमावास्याके अंतकालमें जोड़ना चाहिए। अमावास्याके अंतकालमें भोगांश लबनका इस प्रकार संस्कार करनेपर जो समय आता है वह भोगांश-लंबन-संस्कृत-अमावास्याका अंतकाल होता है। इस कालमें सूर्य और चन्द्रमाके लंबनोंके अंतरको पूर्वोक्त रीतिसे फिर निकाले और ऊपरके लंबन संस्कृत-अमावास्यान्त कालमें जोड़े घटावे। इससे जो समय आवे उसका फिर लंबन निकाले और इसका भी संस्कार करे। इस प्रकारका असकृतकर्म तबतक करे जब-तक कि समय स्थिर न हो जाय अर्थात् जब लंबनका पुनः पुनः संस्कार करनेपर अमावास्यान्त काल वही आवे जो पहले आया था तब यह काम बन्द कर देना चाहिए। ऐसा करनेसे ग्रहणका मध्यकाल ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—असकृत्कर्मसे गणना अधिक शुद्ध हो जाती है जैसा पहले बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ३८५)। जिस समय पूर्वकी ओर जाते हुए चन्द्रमाका भोगांश सूर्यके भोगांशके समान हो जाता है उसी समय अमावास्याका अंत होता है। इसको गणितसिद्ध अमावस्यान्त कहते हैं। जब सूर्य त्रिभोन लग्नसे पूर्वकी ओर होता है तब चन्द्रमा लंबनके कारण पूर्वकी ओर लटक कर अमावास्याके पहले ही सूर्यके सम्मुख हो जाता है इसलिए जितना दोनोंका सापेक्ष लंबन होता है उतना ही पहले स्पष्ट अमावास्याका अंत होता है इसी कारण श्लोकके पूर्वार्धमें गणितसिद्ध अमान्त कालसे लंबन घटानेको कहा गया है। इसके प्रतिकूल जब सूर्य त्रिभोन लग्नसे पच्छिम होता है तब चन्द्रमा गणितसिद्ध अमावास्यान्त कालमें भी सूर्यके सम्मुख नहीं देख पड़ता क्योंकि लंबनके कारण कुछ नीचे पच्छिमकी ओर लटक पड़ता है। इसलिए इस समय जितना लंबन होता है उतना ही पीछे स्पष्ट अमावास्यान्त काल होता है इसीलिए यह लंबन जोड़नेसे स्पष्ट अमावास्या होती है।

दृक्क्षेपः शीततिग्मांशोर्मध्यभुक्त्योन्तराहतः।
तिथिघ्न त्रिज्यगाभक्तो लब्धं सावनतिर्भवेत् ॥१०॥
दृक्क्षेपात्सप्तसप्तिघ्नाद्वेदावनतिः फलम्।
अथवा त्रिज्यया भक्तात्सप्तसप्तक संगुणात् ॥११॥
मध्यज्याादिग्वशात्सा च विज्ञेया दक्षिणोत्तरा।
सेन्दुविक्षेपदिक्साम्ये युक्ताविश्लेषितान्यथा ॥१२॥

अनुवाद—(१०) चन्द्रमा और सूर्यकी मध्यम दैनिक गतियोंके अंतरको दृक्क्षेपसे गुणा करके गुणनफलको

पन्द्रह-गुणित-त्रिज्यासे भाग दो। ऐसा करनेसे जो लब्धि आवेगी वही अवनति या नति या शरलम्बन है। (११) अथवा दृक्क्षेपको सत्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है वह नति होती है अथवा दृक्क्षेपको ४६ से गुणा करके गुणनफलको त्रिज्यासे भाग देनेपर जो लब्धि आती है वह नति है। (१२) नति मध्यज्याकी दिशाके अनुसार उत्तर या दक्षिण दिशामें होती है, अर्थात् यदि मध्यज्याकी दिशा ख-स्वस्तिकसे दक्षिण है तो नतिकी दिशाभी दक्षिण होगी और यदि मध्यज्याकी दिशा ख स्वस्तिकसे उत्तर है तो नतिकी दिशा उत्तर होगी। यदि चन्द्रमाके शर और नीतिकी दिशायें एक ही हैं तो इनको जोड़ना चाहिये और भिन्न हो तो घटाना चाहिए। ऐसा करनेसे जो आवे वह नति संस्कृत-चन्द्र-शर या विक्षेप है।

विज्ञानभाष्य—१० और ११ श्लोकों का सार यह है:—

$$\text{नति} = \frac{(\text{चन्द्रमाकी दैनिक गति} - \text{सूर्य की दैनिकगति}) \times \text{दृकक्षेप}}{१५ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{दृकक्षेप}}{७०} = \frac{\text{दृकक्षेप} \times ४६}{\text{त्रिज्या}}$$

यहां यह ध्यानमें रखना चाहिए कि त्रिज्या ३४३८ कलाके समान होती है। यदि दृक्क्षेप अर्थात त्रिभोनलग्नके नतांशकी ज्या भारतीय रीतिसे लिखी जायगी तभी त्रिज्यासे भाग देने-की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु यदि दृकक्षेपका मान आज-कलकी प्रथानुसार दशमलव भिन्नमें हो तो ३४३८ की जगह त्रिज्याका मान १ हो जायगा।

त्रिप्रश्नाधिकारके पृष्ठ ५८६ में नतिका मान यह सिद्ध किया गया है :—

भु=लि ज्या आ कोज्या श-लि कोज्या आ ज्या श कोज्या व

यहां शरलंबनके लिए भु, ग्रहके परमलम्बनके लिए लि, त्रिभोनलग्नकी नतांशके लिए आ और ग्रहके शरके लिए श तथा विश्लेषांशके लिए व माने गये हैं।

सूर्य ग्रहणके समय चन्द्रमाका शर अथवा श बहुत कम होता है। यदि इसको बहुत छोटा मान लिया जाय तो ज्या श को शून्य और कोज्या श को आजकलकी प्रथाके अनुसार १ मानना पड़ेगा। ऐसी दशामें,

$$\text{भु} = \text{लि ज्या आ}$$

होगा। अर्थात् परमलंबनको त्रिभोनलग्नमें नतांशकी ज्या या दृक्क्षेपसे गुणा करनेपर जो आता है वही नति है। श्लोक १० में यही बात बतलायी गयी है। सूर्य ग्रहणके समय सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी नतियोंका ज्ञान आवश्यक है क्योंकि इन नतियोंके अंतरके समान ही चन्द्रमाकी सापेक्ष नति होती है इसलिए सूर्य और चन्द्रमाकी गतियोंके अंतरसे दृकक्षेपको गुणा करनेको कहा गया है। पृष्ठ ५८६ में यह बतलाया गया है कि ग्रहका परमलंबन उसकी दैनिक गतिका पन्द्रहवां भाग होता है इस लिए चन्द्रमाका सापेक्ष परमलंबन सूर्य और चन्द्रमाकी गतियोंका पन्द्रहवां भाग मान गया है। इस प्रकार दसवें श्लोकको उपपत्ति सिद्ध होती है। अब स्पष्ट है कि इस प्रकार जो नति निकलती है वह स्थूल है। शुद्धता पूर्वक नतिका मान जाननेके लिए वह सूत्र काममें लाना चाहिए जो पृष्ठ ५८६ में सिद्ध किया गया है।

११ वें श्लोक में नति जानने की जो दूसरी रीतियां बत-लायी गयी हैं वह पहली ही रीतिके दो रूप हैं। चन्द्रमा और

सूर्य की मध्यम दैनिक गतियोंका अंतर. =७६०'६ – ५६'१= ७३१'५। इस लिए इसका १५वां भाग=४८'७७=४९ स्थूल रूपसे। यदि इस मानको पहले सूत्रमें उत्थापित किया जाय तो

$$\text{नति} = \frac{\text{४९} \times \text{हकूलं प}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{४९} \times \text{हकूलं प}}{\text{३४३८}}$$

$$= \frac{\text{हकूलं प}}{\frac{\text{३४३८}}{\text{४९}}}$$

$$= \frac{\text{हकूलं प}}{\text{७०}\frac{\text{८}}{\text{४९}}}$$

$$= \frac{\text{हकूलं प}}{\text{७०}}$$

तया स्थितिविमर्दार्धं ग्रासाद्यं तु यथोदितम् ॥
प्रमाणं वलनाभीष्टग्रासादि हिमरश्मिवत् ॥१३॥

अनुवाद—(१३) नति संस्कृत चन्द्रशरसे चन्द्रग्रहणाधिकारमें बतलाई गई रीतिके अनुसार स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध, ग्रास, प्रमाण, वलन, अभीष्ट ग्रास इत्यादि अर्थात् सम्मीलन, उन्मीलन, मोक्षकाल इत्यादि जानना चाहिए। इससे जो स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध आवेंगे वे मध्यम स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध कहलाते हैं।

विज्ञान भाष्य—लंबन और नतिकी क्रियाके बाद सूर्यग्रहण की गणना उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार चन्द्र ग्रहण की गणना बतलाई गई है। क्योंकि जैसे चन्द्रग्रहणमें भूछाया छादक और चन्द्रमा छाद्य होता है। वैसे ही सूर्यग्रहणमें चन्द्रमा छादक और सूर्य छाद्य होता है। छाद्य और छादकका जैसा संबंध चन्द्रग्रहणमें होता है वैसा ही सूर्यग्रहणमें भी होता है।

स्थित्यर्धोनाधिकात् प्राग्वत्तिथ्यन्ताल्लम्बनं पुनः।
ग्रासमोक्षोद्भवं साध्यं तन्मध्यहरिजान्तरम् ॥१४॥
प्राक्कपालेऽधिकं मध्याद्भवेत्प्राग्ग्रहणं यदि।
मौक्षिकं लम्बनं हीनं पश्चार्धे तु विपर्ययः ॥१५॥
तदा मोक्षस्थितिदले देयं प्रग्रहणे तथा।
हरिजान्तरकं शोध्यं यत्रैतत्स्याद्विपर्ययः ॥१६॥
एतदुक्तं कपालैक्ये तद्भेदे लम्बनैकता।
स्वे स्वे स्थितिदले योज्या विमर्दार्धेऽपि चोक्तवत् ॥१७॥

अनुवाद—(१४)-श्लोक ९ के अनुसार असकृत्कर्मसे जो अमावस्यान्तकाल आवे उसमें १३ वें श्लोकके अनुसार जो स्थित्यर्ध आवे उसको घटाकर स्पर्शकाल और जोड़कर मोक्षकाल जाने। फिर स्पर्शकाल और मोक्षकालके भोगांश लम्बन जानकर ग्रहणके मध्यकालके भोगांश लंबनसे अंतर निकाले।

(१५) यदि ग्रहण पूर्व कपालमें हो अर्थात यदि ग्रहण कालमें सूर्यका भोगांश त्रिभोन लग्नके भोगांससे अधिक हो तो स्पर्शकालका लंबन मध्यकालके लंबनसे अधिक होगा और मोक्ष कालका लंबन मध्यकालके लम्बनसे कम होगा। परन्तु यदि ग्रहण पश्चिम कपालमें हो अर्थात् ग्रहणकालमें सूर्यका भोगांश त्रिभोनलग्नके भोगांशसे कम हो तो

लंबनका परिमाण उलटे क्रमसे होगा अर्थात् स्पर्शकालका लंबन मध्यकालके लंबनसे कम होगा और मोक्षकाल लंबनका मध्यकालके लंबनसे अधिक होगा।

(१६) दोनों दशाओंमें अर्थात् चाहे स्पर्श और मोक्ष पूर्व कपालमें हों चाहे पच्छिम कपालमें १४ वें श्लोकके अनुसार निकाले हुए लंबनोंके अंतरको मोक्ष स्थित्यर्ध और स्पर्श स्थित्यर्धमें जोड़कर स्पष्ट स्थित्यर्ध जानना चाहिये। परन्तु यदि १५ वें श्लोकमें कहे हुए नियमके विपरीत दशा हो अर्थात् यदि पूर्व कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे कम हो और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे अधिक हो अथवा पश्चिमकोलमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिकसे अधिक हो और मोक्ष कालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे कम हो तो १४ वें श्लोकके अनुसार प्राप्त अन्तरको स्पर्श या मोक्ष स्थित्यर्धसे घटाना चाहिये तब स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है।

(१७) जब स्पर्श, मध्य और मोक्ष तीनों एक ही कपालमें हो तभी उपर्युक्त लंबनोंका अन्तर निकाल कर उपर्युक्त क्रिया करनी चाहिए। यदि स्पर्श एक कपालमें हो और मध्य दूसरे कपालमें अथवा एक मध्य कपालमें हो और मोक्ष दूसरे कपालमें तब स्पर्श और मध्यकालके लंबनोंको अथवा मध्य और मोक्ष कालके लंबनोंको जोड़कर अपने अपने स्थित्यर्धमें जोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार स्पष्ट स्थित्यर्ध विमर्दार्ध भी जानना चाहिये।

इति सूर्यग्रहणाधिकार नामक पाँचवें अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ९वें श्लोकके अनुसार आए हुए अमावस्यान्तकालमें अथवा ग्रहणके मध्यकालमें सूर्य और चन्द्रमाके जो लंबन आते हैं वे स्पर्शकाल और मोक्ष कालके लंबनसे भिन्न होते हैं क्योंकि स्पर्श और मोक्षके समय सूर्य और चन्द्रमाकी सतत गतिके कारण इनके नतांश भिन्न होते हैं और त्रिप्रश्नाधिकारमें दिखलाया गया है कि लंबन नतांशपर निर्भर होता है अर्थात् यदि नतांश अधिक हो तो लंबन भी अधिक होता है और नतांश कम हो तो लंबन भी कम होता है (देखो पृष्ठ ५५७)। इसलिये १४वें श्लोकमें स्पर्शकाल और मोक्षकालके लंबन जाननेकी आवश्यकता बतलायी गई है और मध्यकालके लंबनसे अन्तर जाननेको बतलाया गया है। यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्वपाल में हों अर्थात् त्रिभोनलग्नपर आनेके पहले ही ग्रहण का स्पर्श और मोक्ष हो जाय तो यह स्पष्ट है कि स्पर्शके समय सूर्य या चन्द्रमाका नतांश मध्यकालके सूर्य या चन्द्रमाके नतांशसे अधिक होगा और मोक्षके समय कम होगा क्योंकि त्रिभोनलग्न ही क्षितिजके ऊपर क्रान्तिवृत्तका सबसे ऊँचा विन्दु है और सूर्य या चन्द्रमा उदय होने पर क्रमशः ऊपर उठते जाते हैं अर्थात् इनका नतांश कम होता जाता है इसलिये स्पर्शकालका नतांश मध्यकालके नतांशसे अधिक और मोक्ष काल का नतांश मध्यकाल के नतांश से कम होता है। परन्तु यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पच्छिम कपालमें हों तो स्पर्शके समय सूर्यका नतांश मध्यमकालीन नतांशसे कम होगा और मोक्ष कालीन नतांश मध्यमकालीन नतांश से अधिक होगा क्योंकि पच्छिम कपालमें सूर्य या चन्द्रमा नीचे उतरते जाते हैं इसलिये इनका नतांश बढ़ता जाता है।

स्पर्शकाल और मध्यकालके लंबनोंका जो अन्तर होता है उसको पूर्वकपालके मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध आता है क्योंकि पहिले जो स्थित्यर्ध निकाला गया था वह मध्यकालके लंबनके अनुसार था परन्तु स्पर्शकालमें लंबन कुछ अधिक होता है इसलिये इसके कारण चन्द्रमाके कुछ और नीचे अर्थात् पूर्वकी ओर लटक पड़नेसे स्पर्श कुछ और पहले देख पड़ेगा अर्थात स्थित्यर्धका मान बढ़ जायगा । परन्तु मध्यकालकी अपेक्षा मोक्षकालमें (पूर्व कपालमें होनेके कारण) लंबन कम रहता है इसलिए इन दोनोंमें जो अंतर होता है उसको भी मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे मोक्षकालीन स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है क्योंकि जब मोक्षकालीन लंबन कम होगा तब चन्द्रमा पूर्वकी ओर उतना नहीं लटकेगा जितना मध्यकालमें लटकता है इसलिए सूर्यके सम्मुख देरतक रहता है और मोक्षकालिक स्थित्यर्ध भी बढ़ जाता है ।

पश्चिम कपालमें लंबनके कारण चन्द्रमा पश्चिमकी ओर लटक पड़ता है जिससे उसको सूर्यके सम्मुख आनेमें कुछ विलम्ब हो जाता है क्योंकि चन्द्रमाकी गति सदैव पूर्वकी ओर होती है और लंबनके कारण जान पड़ता है मानों वह पश्चिमकी ओर जारहा है । इसी कारण ग्रहणका मध्य-काल गणितसिद्ध अमावास्यान्त कालसे कुछ पीछे होता है । परन्तु चन्द्रमाका स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांशसे कम होता है क्योंकि जिस समय ग्रहणका स्पर्श होता है उससे कुछ देर पीछे ग्रहणका मध्य होता है और इतनी देरमें पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण अथवा प्राचीनोंके मतसे प्रवह वायुकी गतिके कारण सूर्य चन्द्रमा सभी नीचे हो जाते हैं । इस लिए पश्चिम कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे नतांशके कम होनेके कारण कम होता है जिसका प्रभाव यह होता है कि ग्रहणके स्पर्श करनेमें उतना विलम्ब नहीं लगता जितना ग्रहणके मध्यकालमें विलम्ब लगता है अर्थात् स्पर्शके समय लंबनके कम होनेसे स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध बढ़ जाता है । इसी प्रकार मोक्षके समय चन्द्रमाका नतांश मध्यकालिक नतांशसे अधिक हो जानेके कारण मोक्ष-कालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे अधिक होता है । इसका प्रभाव यह होता है कि चन्द्रमा देरतक सूर्यके सन्मुख रहता है क्योंकि मोक्षके समय चन्द्रमा सूर्यसे ऊपर देख पड़ता है परन्तु अधिक लंबनके कारण यह ऊपर न जाकर नीचे ही लटका रहता है जिसमें मोक्षकालमें भी कुछ विलम्ब हो जाता है अर्थात् स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी बढ़ जाता है ।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि चाहे स्पर्श मोक्ष दोनों पूर्व कपालमें हों चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पश्चिम पालमें हों प्रत्येक दशामें ग्रहणका समय कुछ बढ़ जाता है अर्थात् स्पर्श कुछ पहले और मोक्ष कुछ देरमें होता है । इस लिए स्पर्श और मध्यकाल तथा मध्य और मोक्षकालके लंबनोंमें जो अंतर होता है उसको मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़नेसे स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होता है । स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्धको ग्रहणके मध्यकालमें घटानेसे प्रत्यक्षस्पर्शकाल मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्धको ग्रहणके मध्यकालमें जोड़नेसे प्रत्यक्ष मोक्षकाल होता है । [शेष फिर]

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २४ | वृश्चिक, संवत् १९८३ | संख्या २

लवणजन तत्वों के अम्ल

उदहरिकाम्ल

[ले० श्री सत्यप्रकाश बी. एस. सी विशारद]
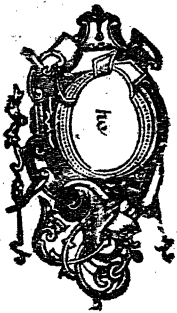
रिन्, अरुणिन्, और नैलिन् ये तीनों उदजनसे संयुक्त होकर क्रमानुसार उदहरिकाम्ल, उदअरुणिकाम्ल और उदनैलिकाम्ल यौगिक बनाते हैं। इन तीनों यौगिकोंमें उदहरिकाम्ल अत्यन्त उपयोगी है। प्रयोगशाला और व्यापार दोनोंमें इसका अधिक उपयोग होता है। सं० १७०५ वि० के लगभग ग्लोबर नामक वैज्ञानिकने सबसे प्रथम इस अम्लको उत्पन्न किया था . उसने सैन्धक हरिदपर गन्धकाम्लका प्रयोग किया:—

सैह + उ$_2$गओ$_4$ = सैउ गओ$_4$ + उह

ऐसा करनेमें गन्धकाम्लके एक उदजन परमाणुका ही स्थान सैन्धकम् लेता है, और सैन्धक अर्धगन्धेत या सैन्धक उदजन गन्धेत बनता है और साथ साथ उदहरिकाम्लभी बनता है। तापक्रमके बढ़ानेसे उदजनका दूसरा परमाणुभी अलग होजाता है—

सैह + सैउगओ$_4$ = सै$_2$गओ$_4$ + उह

सैन्धक गन्धेत सै$_2$गओ$_4$को ग्लौबरका लवण भी कहते हैं, यदि इसमें १० अणु जलके हों, अर्थात् सै$_2$गओ$_4$१० उ$_2$ओ ग्लौबर लवणहै। सर हमफ्रीडेवी ने सं० १८६७ वि० में सबसे पहले प्रमाणित किया कि उदहरिकाम्लमें उदजन और हरिन् तत्व विद्यमान हैं।

उदहरिकाम्लके उत्पन्न करनेकी दूसरी विधि यह है:-एक बेलनमें उदजन भरकर दूसरे बेलनपर जिसमें हरिन्भरा हो, उल्टा धरो। यह काम अंधेरे स्थानमें करना चाहिये। एक दियासलाई जलाकर दोनों बेलनों

के मुखके पास लाओ। उदजन और हरिन् ज़ोरसे संयुक्त होंगे और विस्फुटनकी आवाज़ सुनाई पड़ेगी।—

$$उ_2 + ह_2 = २ उह$$

व्यापारिक मात्रामें उदहरिकाम्ल पहली विधिके अनुसारही बनाया जाता है। सैन्धक-राख या सन्धक कर्बनेतके बनानेकी विधिमें गौण रूपसे हरिकाम्ल भी उत्पन्न होता है। इसकामके लिये एक बड़े लोहे-के बर्तनमें १० हंडर वेटके लगभग नमक रक्खा जाता है। इस बर्तनके नीचे ईंटोंकी चिनी हुई भट्टी होती है। नमकपर उतनीही तौलका गन्धकाम्ल रखा जाता है। गरम होनेसे उदहरिकाम्ल गैस ऊपर उठती है। बड़े बड़े नली द्वारा यह गैस ऊँची ऊँची मीनारोंमें लायी जाती है। इन मीनारोंमें ऊपरसे पानी बरसता रहता है। पानीमें उदहरिकाम्ल घुल जाता है। जो कुछ गैस घुलनेसे बाक़ी रह जाती है वह दूसरी मीनारमें लेजाई जाती है। वहाँ भी पानीकी बौछारोंसे उदहरि-काम्ल घुला लिया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण उदहरिकाम्ल घोलके रूपमें प्राप्त होजाता है।

इन विधियोंसे उत्पन्न उदहरिकाम्ल अशुद्ध होता है। सबसे शुद्ध उदहरिकाम्ल शैलचतुर्हरिद, शैह$_4$, और पानीके संसर्गसे उत्पन्न होता है—

$$शैह_4 + ४ उ_2ओ = उ_4शैओ_4 + ४ उह$$

उदहरिकाम्लके गुण—यह अम्ल बेरङ्गका वायव्य है जिसकी गन्ध कटु होती है। वायव्यका सामान्य घनत्व १·६३९९ ग्राम प्रति लीटर है। द्रववायुके तापक्रम-पर यह ठोस किया जासकता है। इस अवस्थामें यह बर्फके समान श्वेतरवादार प्रतीत होता है। ठोस पदार्थ- ११४° श पर द्रवीभूत होजाता है। द्रव अम्लका क्वथनांक—८५° श है और इस तापक्रमपर इसका घनत्व १·१८४ है। जलरहित द्रव उदहरिकाम्लका दस्तम्, लोहम्, मगनीसम् आदि धातुओंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, पर ये धातु उदहरिकाम्ल और पानीके घोलमें शीघ्रही घुल जाते हैं। स्फटम् इस अम्लपर तीव्रतासे प्रभाव डालता है और उदजन उत्पन्न होता है।

$$२स्फ + ६उह = २स्फह_3 + ३उ_2$$

यह अम्ल पानीमें अत्यन्त ही घुलन शील है। इस बातका योग इस प्रकार किया जा सकता है। एक गिलासमें पानी भरो। एक बड़ी बोतलमें उदहरिकाम्ल गैस भरदो और उसके मुंहमें काग लगाकर एक नली लगादो। बोतलको उल्टा करके नलीको पानीमें डुबाओ। पानी उदहरिकाम्लको घुला लेगा और बोतलके अन्दर पानीका फुहारा दिखाई पड़ेगा।

१ भाग नोषकाम्लमें ३ भाग उदहरिकाम्ल डालकर घोल बनानेसे अम्लराज बनाया जाता है। इसे अम्लराज (aqua regia) इसलिये कहते हैं क्योंकि इसमें बहुत से धातु जैसे सोना, पररौप्यम् जो अन्य अम्लोंमें नहीं घुलते हैं, घुलजाते हैं। इनके घुलनेका कारण यह है कि नोषिकाम्ल और उदहरिकाम्लके संयोगसे हरिन् और नोषोसिल हरिद, नो ओह, उत्पन्न होते हैं।

$$उनोओ_3 + ३उह = ह_2 + नोओह + २उ_2ओ$$

उदहरिकाम्लका संगठन—प्रयोग १—,एक परख नलीमें खुश्क उदहरिकाम्ल भरो और एक बर्तनमें खुश्क पारद लो। नलीको पारदके ऊपर उल्टा खड़ा करदो। नलमें पारद नहीं चढ़ेगा। अब एक नोकदार पिपेट द्वारा नलीमें एक बूंद पानी डालदो। पानीकी बूंद डालने के लिये नलीको अपने स्थानसे हटाना आवश्यक नहीं है। पिपेटकी नोंक को नलीके मुंहके नीचे पारदके अन्दर करदो। बस पानी नलीमें आजायगा। पानीके आनेके कारण उदहरिकाम्ल इसमें घुल जावेगा। और पारद सम्पूर्ण नलीको भरलेगा। अब मगनर्सामके तारकी गुण्डीको बनाकर नलीमें डालो। पारदसे हलका होनेके कारण यह नलीमें ऊपर उठ आयगा। यहाँ पर इसे उदहरिकाम्लका द्रव घोल मिलेगा, इसके प्रभावसे उदजन उत्पन्न होगा।

$$म + २उह = मह_2 + उ_2$$

उदजनके उत्पन्न होनेके कारण पारद नलीसे फिर नीचे उतरेगा। और उदजन केवल आधी नली-को भरसकेगा। आधी नलीमें पारद रहेगा।

इस प्रयोगसे यह पता चलता है कि १ भाग उदहरि-काम्लमें केवल आधा भाग उदजन है और अतः आधा भाग हरिन्का है।

प्रयोग २—विद्युत् विश्लेषण द्वारा भी यही बात सिद्ध होती है। इस कामके लिये संपृक्त उदहरिकाम्लमें जितना साधारण नमक घुल सके घोलो, और इसे विद्युत

घटमें भरो। घटके ध्रुव परौप्यम्के न होने चाहिये क्योंकि कि परौप्यम् पर हरिन्का प्रभाव पड़ता है . इस कामके लिये कर्बनके ध्रुव लेते हैं। प्रत्येक ध्रुवके ऊपर उदहरिकाम्लसे भरकर एक एक परखनली उल्टी खड़ी करदो जैसा पानीके विश्लेषणमें किया था। घट में बाटरी द्वारा विद्युत धारा प्रवाहित करो। उदहरिकाम्ल विभाजित होगा। हरिन् कुछ देर तकतो उदहरिकाम्लमें घुलेगा पर जब घोल संपृक्त हो जायगा तो हरिन् परखनलीमें चढ़ने लगेगा। दोनों परखनलियों को देखनेसे पता चलेगा कि एकमें जितना उदजन है उतना ही आयतन दूसरे में हरिन् का है।

इस प्रयोगसे भी यही स्पष्ट है कि उदहरिकाम्ल में आधाभाग हरिन् और आधा उदजन्का है। अथवा एक आयतन उदजन और एक आयतन हरिन् मिलकर दो आयतन उदहरिकाम्ल बनाते हैं।

प्रयोग द्वारा निकालने पर पता चलता है कि उदहरिकाम्ल वायव्यका वाष्प घनत्व १८.१ है अतः इसका अणुभार ३६.२ हुआ अतः सामान्य तापक्रम और दबाव पर २२.४ लीटरका भार ३६.२ ग्राम है। इसमें आधा आयतन उदजन का है, अर्थात् ११.१ लीटर उदजन है। ११.१ लीटर उदजन का भार १ ग्राम होता है, अतः २२.४ लीटरमें ३५.२ ग्राम हरिन् है। हरिनका परमाणुभार ३५.४६ है, और उदजनका १ है, अतः उदहरिकाम्ल का सूत्र 'उह' हुआ अर्थात् इसके एक अणुमें एक परमाणु उदजनका और एक परमाणु हरिन् का है।

हरिद—उदहरिकाम्लके धातु-लवणोंको हरिद कहते हैं। साधारण नमक एक हरिद है क्योंकि उदहरिकाम्लका यह सैन्धक लवण है। इस बातसे तात्पर्य्य यह है कि उदहरिकाम्लके उदजन परमाणुके स्थानमें यदि किसी धातुका परमाणु रख दिया जाय तो हरिद बन जायगा जैसे दस्तम् और उदहरिकाम्लके प्रभावसे—

$$द + २उह = दह_२ + उ_२$$
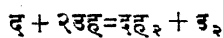
यहां अम्लमें उदजनका स्थान दस्तम्ने ले लिया है। इस प्रकार दस्त-हरिद बनगया है। इस प्रकारके हरिद प्रकृतिमें बहुत पाये जाते हैं। सैन्धक हरिदको साधारण नमक कहते हैं। इसी प्रकार पांशुजहरिद पांह, और रजतहरिद रह, भी पाये जाते हैं।

हरिद निम्न विधियों से बनाये जा सकते हैं।

(क) धातु और हरिन् के संयोगसे जैसे—

$$२लो + ३ह_२ = २लोह_३$$
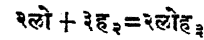
(लोह हरिद)

(ख) धातु और उदहरिकाम्लके संयोगसे। ऐसी अवस्था में उदजनका स्थान धातु ले लेता है जैसे—

$$म + २उह = मह_२ + उ_२$$
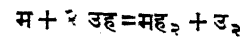
(मगनीसहरिद)

(ग) उदहरिकाम्ल और क्षारके संयोगसे—

$$सैओउ + उह = सैह + उ_२ओ$$
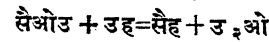
(सैन्धक हरिद)

(घ) भस्मिक ओषिद और उदहरिकाम्लसे—

$$खओ + २उह = खह_२ + उ_२ओ$$
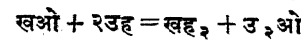
(खटिक हरिद)

(ङ) दो यौगिकोंके पारस्परिक विनिमयसे यदि दोनोंके संयोगसे कोई अनघुल हरिद बनता हो जैसे—

$$लोह_३ + ३र नो ओ_३ = ३ र ह + लो (नो ओ_३)_३$$
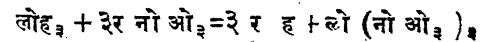
(रजत हरिद)

हरिदों की पहिचान—ऊपर दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रत्येक हरिदमें ह' मूल समान है। विद्युत् पृथक्करणके सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक हरिद घोलमें गामियों में विभाजित हो जायगा जैसे घोलमें:—
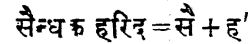
$$सैन्धक हरिद = सै^{+} + ह'$$

यदि इस घोलमें रजत नोषेत, र नो ओ$_३$ का घोल डालें तो हमें श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा। क्योंकि घोलमें—

$$रजतनोषेत = र^{\circ} + नो ओ_३'$$
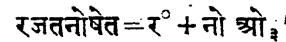
$$\therefore सैन्धक हरिद + रजत नोषेत = सै^{\circ} + ह' + र^{\circ} + नो ओ'_३ = रह + सै^{\circ} + नो ओ'_३$$

र$^{\circ}$ गामी ह' मूलसे संयुक्त होकर अनघुल रजत हरिद बनाता है। अनघुल होनेके कारण यह अव-

क्षेप रूपमें दिखाई पड़ता है। इसका रंग श्वेत होता है, अतः किसी हरिद के घोलमें यदि रजत नोषेत का घोल डाला जाय तो श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा। यह अवक्षेप अमोनिया में घुलन शील होता है पर नोषिकाम्ल आदिमें अनघुल।

रजतम् पारदम् और सीसम् के हरिद रह, पाह, सीह जलमें अनघुल हैं, अतः यदि रजतम्, पारदम्, या सीसम् के किसी घुलनशील लवणमें उदहरिकाम्ल डाला जाय तो उनके हरिदोंका श्वेत अवक्षेप प्राप्त होगा—

$$र_2गओ_4 + २ उह = २ रह + उ_2गओ_4$$

$$पा नो ओ_3 + २ह = पाह + उनोओ_3$$

$$सी गओ_4 + २उह = सीह_2 + उ_2गओ_4$$
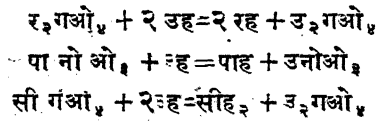
उद्अरुणिकाम्ल

जिस प्रकार उदजन और हरिन् संयुक्त होकर उदहरिकाम्ल बनाते हैं उसी प्रकार उदजन और अरुणिन् संयुक्त होकर उद-अरुणि काम्ल बनाते हैं। पर इस संयोगमें इतना भेद है। उदजन और हरिन् के संयोगके लिये सूर्य्यका प्रकाश ही समुचित है पर उदजन और अरुणिन् तब तक संयुक्त नहीं होते हैं जब तक उनका मिश्रण ३००°के ऊपर गरम न किया जाय। गरम परशैप्यम्के ऊपर दोनोंके मिश्रणकी वाष्पें प्रवाहित करनेसेभी उदअरुणिकाम्ल बनसकता है।

$$उ_2 + रु_2 = २ उरु$$
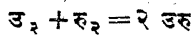
अरुणिदोंको संपृक्त अम्लोंके साथ गरम करने पर भी उदअरुणिकाम्ल नहीं मिल सकता है।

इसके बनानेको सबसे सरल विधि यह है कि २० ग्राम लाल स्फुर लो और उसमें ४० ग्राम पानी डालकर गूँथ लो। मिश्रणको एक बड़ी काँचकी कुप्पी (Flask) में रखो। और ४० घन. श. मी. अरुणिन् सावधानी से बूंदबूंदकरके कीप द्वारा टपकाओ। ऐसा करनेसे उद अरुणिकाम्ल गैस निकलेगी। इस गैसको इकट्ठा करने के पूर्व एक चूल्हाकार नली (U-tube) में प्रवाहित करो जिसमें काँचके छर्रे और लालस्फुरके टुकड़े रखे हों। ऐसा करने से अवशिष्ट अरुणिन् दूर हो जायगा। गैसको अवशुष्क बेलन (Jar) में भरलो। जब बेलनके मुंह परसे अम्लकी घनी वाष्पें निकलनी आरम्भ हों तो समझना चाहिये कि बेलन गैससे भरगया है इस प्रयोगमें बड़ी ही सावधानी रखनी चाहिये क्योंकि थोड़ीसी भी दुर्घटनासे दुष्परिणाम होनेकी आशंका है। इस प्रयोगमें प्रक्रिया इस प्रकार है:—

$$स्फु + ५ रु + ४ उ_2ओ = ५ उरु + उ_3स्फुओ_4$$

$उ_3स्फुओ_4$ स्फुरिकाम्ल है।
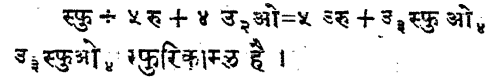
उद अरुणिकाम्लके गुण—यह बेरंगवा वायव्य है पर वायुके संयोगसे इसमें घनी वाष्पें उठने लगती हैं। पानीमें घुलकर यह बेरंगका घोल देता है इसका द्रवांक—८६°श, और क्वथनांक—६८.७° है। क्वथनांक पर द्रव अम्लका घनत्व २.१६ है। वायव्यका सामान्य घनत्व ३.६४४ ग्राम प्रति लीटर है।

संगठन—उदहरिकाम्लके समान इसके विषयमें भी यह दिखाया जासकता है कि इसमें आधा भाग अरुणिन् और आधा भाग उदजन है। उदअरुणिकाम्लका वाष्पघनत्व ४०.४५ है अतः इसका अणुभार ८०.९ हुआ। अर्थात् २२.४ लीटर अम्लवायव्य का भार ८०.९ ग्राम है। इतने अम्लमें ११.२ लीटर उदजन है जिसका भार १ ग्राम हुआ। इस प्रकार ८०.९ ग्राम अम्लमें १ ग्राम उदजन और ७९.९ ग्राम अरुणिन् हुआ। अरुणिन्का परमाणभार ७९.२ है। और उदजनका परमाणुभार १ है। अतः अम्लका सूत्र 'उरु' हुआ अर्थात् इसके एक अणुमें एक परमाणु उदजनका और एक अरुणिन् का है।

अरुणिद—जिस प्रकार उदहरिकाम्लमें उदजन परमाणुके स्थानमें धातुओंके परमाणु स्थापित करनेसे हरिद बनते हैं उसी प्रकार उद अरुणिकाम्लसे, अरुणिद बनसकते हैं। घोलमें उद-अरुणिकाम्लमें इस प्रकार पृथक्करण होता है—

$$उरु = उ^+ + रु^-$$
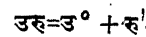
इसमें लोहम्, दस्तम् आदि धातु घुलजाते हैं और उदजन निकलने लगता है।—

$$२उरु + द = दरु_2 + उ_2$$
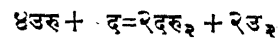
अम्लमें धातुओंके ओषिद, उदौषिद, या कर्बनेत डालनेसे भी अरुणिद बनसकते हैं—

खओ + २उरु = खरु$_{२}$ + उ$_{२}$ओ

पांओउ + उरु = पांरु + उ$_{२}$ओ

सै$_{२}$कओ$_{३}$ + २उरु = २सैरु + उ$_{२}$ओ + कओ$_{२}$

रजत नोषेत के साथ प्रत्येक अरुणिद्का घोल पीला अवक्षेप देता है क्योंकि अनघुल रजत अरुणिद पीला होता है—

सैरु + रनोओ$_{३}$ = ररु + सैनोओ$_{३}$

पांशुज नैलिद्पर अरुणिन्के प्रभावसे पांशुज अरुणिद् बनता है और नैलिन् वायव्य पृथक् होता है—

२पांनै + रु$_{२}$ = २पांरु + नै$_{२}$

उद्नैलिकाम्ल

अरुणिन् उदजनसे हरिन्की अपेक्षा कठिनाईसे संयुक्त होता है। संयोगके लिये ३०० के ऊपरका तापक्रम चाहिये। पर नैलिन् उदजनसे और भी अधिक कठिनाईसे संयुक्त होता है। उदजन और नैलिनके मिश्रणमें चाहे विद्युत् की चिनगारियाँ प्रवाहित की जायं चाहें दग्धकसे गरम किया जाय तब भी संयोग नहीं होता है। रक्त-तप्त नलीमें मिश्रणको प्रवाहित करने पर भी बहुतही कम संयोग होता है। अतः उदनैलिकाम्ल बनानेकी एक दूसरी विधि निकाली गई है। इस कामके लिये नैलिदों पर अम्लका प्रभाव देखना चाहिये।

पर सब अम्ल इस कामके भी नहीं हैं गन्धकाम्ल काममें नहीं लाया जा सकता है क्योंकि यह उदनैलिकाम्लका ओषदीकरण कर देता है और नैलिन् तथा उदगन्धिद् प्राप्त होता है।

उ$_{२}$ग ओ$_{४}$ + २पां नै = पां$_{२}$ ग ओ$_{४}$ + २उ नै

८उ नै + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$ = उ$_{२}$ ग + ४उ$_{२}$ ओ + ४नै$_{२}$

यही अवस्था नोषिकाम्लसे होती है। अतः इस कामके लिये स्फुरिकाम्ल, उ$_{३}$ स्फुओ$_{४}$ का उपयोग होता है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

उ$_{३}$स्फुओ$_{४}$ + ३पां नै = पां$_{३}$ स्फुओ$_{४}$ + ३उ नै

इस प्रयोगके लिये परख-नलीमें थोड़ा सा पिसा हुआ पांशुज नैलिद् लो और हैमस्फुरिकाम्लका चूर्ण इसमें मिलाकर थोड़ासा गरम करो। उदनैलिकाम्ल वायव्य निकलेगा। पर यदि बहुत जोरसे गरम किया जायगा तो नैलिन् निकलने लगेगा।

इसके बनानेकी एक आसान विधि है जो अरुणिन्के बनानेमें भी काममें लायी गई थी। एक बड़ी कुप्पीमें ४ ग्राम स्फुर और २० ग्राम नैलिन् लेकर हिलाओ और ऊपर कीपसे धीरे धीरे १५ ग्राम के लगभग पानी गिराओ। वायव्य बड़ी शीघ्रतासे निकलने लगता है। अतः इसे बर्फके ठंडे पानीमें रख करके ठण्डा कर लेना चाहिये। कुप्पीमें वाहकनली लगाओ और इसे चूल्हाकार नलीसे संयुक्त कर दो। इस चूल्हाकार नलीमें कांचके छर्रे और लाल स्फुरके टुकड़े रख दो और इस नलीको गैस भरनेके बेलनसे संयुक्त करके उदनैलिकाम्ल संचित करलो इस प्रयोगकी प्रक्रिया इस प्रकार है:—

२स्फु + ५नै$_{२}$ + ८उ$_{२}$ ओ = १० उ नै + २उ$_{३}$ स्फुओ$_{४}$

पानीमें नैलिन्का संपृक्त घोल बनाकर उदजन गंधिद उ$_{२}$ग वायव्य प्रवाहित करनेसे भी उदनैलिकाम्ल बन सकता है।

उ$_{२}$ग + नै$_{२}$ = २ उनै + ग

पर इस प्रकार थोड़ासा ही अम्ल उत्पन्न किया जासकता है क्योंकि उदनैलिकाम्ल और गन्धकके प्रभावसे उद्जन गन्धिद और नैलिन् फिर बन जाता है—

२उनै + ग = उ$_{२}$ग + नै$_{२}$

तात्पर्य यह है कि प्रक्रिया उलट जाती है। पहली वाली प्रक्रियामें ज्यों ज्यों गन्धक अधिक उत्पन्न होता जाता है, त्यों त्यों दूसरी प्रक्रिया वेगवती होती जाती है और पहली प्रक्रिया धीमी पड़ती जाती है थोड़ी देरके बाद प्रक्रिया दोनों ओरसे सममापित होजाती हैं। इस सममापन (equilibrium) की अवस्थामें फिर अधिक उदनैलिकाम्ल नहीं बनसकता है। ऐसी प्रक्रियाको विपर्ययेय (reversible) प्रक्रिया कहते हैं।

इसके गुण—उदनैलिकाम्ल बेरंगका वायव्य है पर यह वायुके संसर्गसे घनी वाष्पें देता है। यह जलमें अत्यन्त घुलनशील है। १०° श पर एक भाग जलमें ४२५ भाग तक यह घुल सकता है। ०° श पर ४

वायुमंडलका दबाव डालनेसे यह द्रवीभूत होसकता है। इसका कथनांक-३५.५° और द्रवांक—५०.९° है।

यह उदहरिकाम्लके समान प्रभावशाली अम्ल है यदि शुष्क अम्ल में शुष्क ओषजन मिलाकर धूपमें रख दिया जाय तोयह विभाजित होजाता है:—

ओ$_2$ + ४ उनै = २ उ$_2$ ओ + २ नै$_2$
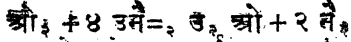
वैसेभी धीरे धीरे यह सूर्य्यके प्रकाशसे विभाजित होने लगता है यहाँ तक कि १० दिनके पश्चात् केवल ४० प्रति शत रहजाता है और सालभरके पश्चात् केवल प्रति शतक—

२उनै ⇌ उ$_2$ + नै$_2$
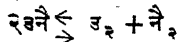
यदि इस अम्लमें कांचकी गरम छड़ रखी जाय तो यह विभाजित हो जाता है और नैलिन् निकलने लगता है।

संगठन—सैन्धक-पारद मिश्रण (अमलगम) इसको विभाजित करदेता है—

२ उनै + २सै = २सै नै + उ$_2$
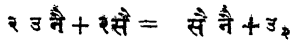
इस प्रयोगके करनेपर पता चलता है कि इस अम्ल में आयतनके हिसाबसे आधा भाग उद्जनका है और आधा नैलिन्का। इसका वाष्प घनत्व ६४ है अतः इसका अणुभार ६४ × २=१२८ हुआ।

अतः २२.४ लीटर अम्लीय वायव्यका भार १२८ ग्राम हुआ। इसमें ११.२ लीटर उद्जन है जिसका भार १ ग्राम है। अतः २२.४ लीटर अम्लमें १२७ ग्राम नैलिन् होगा। नैलिन्का परमाणुभार १२७ निकाला गया है अतः अम्लका सूत्र 'उनै' हुआ, इसके एक अणुमें एक परमाणु उद्जनका और एक परमाणु नैलिन्का है।

नैलिद—नैलिन् अनेक धातुओंसे संयुक्त होकर नैलिद बनाता है इनमेंसे बहुतसे नैलिद जलमें घुलनशील हैं। पर पारदम् रजतम् तथा सीसम्के नैलिद अनघुल हैं। परखनलीमें थोड़ासा पारा और नैलिन् लेकर गरम करो। नारंगी रंगका सुन्दर पारदनैलिद बन जावेगा।

पांशुज नैलिदको रजत नोषेत में डालो। रजत नैलिदका पीला अवक्षेप प्राप्त होगा।—

रनोओ$_3$ + पांनै = रनै + पांनोओ$_3$
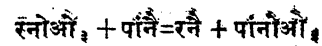
प्रत्येक नैलिदका घोल रजत नोषेतके साथ पीला अवक्षेप देता है।

पारदिक हरिदमें पांशुज नैलिद डालनेसे लाल अवक्षेप प्राप्त होगा— पाह$_2$ + २पांनै = पानै$_2$ + पांह
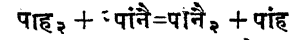
सीसम् नोषेतमें पांशुजनैलिद डालनेसे पीला अवक्षेप प्राप्त होगा—

सी(नोओ$_3$)$_2$ + २पांनै = सीनै$_2$ + पांनोओ$_3$
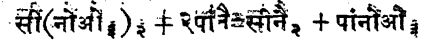
पांशुज हरेत और पांशुज-उपहरित

जब पाँशुज उदौषिदके संपृक्त घोलमें हरिन् वायव्य प्रवाहित किया जाता है तो यह बहुत शीघ्र अभिशोषित होजाता है और घोल गरम होजाता है। थोड़ीदेरके पश्चात् श्वेत रवेदार अवक्षेप दिखाई देने लगता है। अवक्षेप छान, धोऔर सुखाकर शुद्ध किया जासकता है। यह पांशुज हरेत पांहओ$_3$का अवक्षेप है:—

३ह$_2$ + ६पांओउ = ५पांह + पांहओ$_3$ + ३उ$_2$ओ
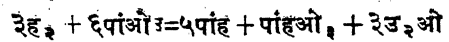
पांशुज हरेत-गरम करने पर ओषजन देता है—

२पांहओ$_3$ = २पांह + ३ ओ$_2$
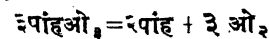
यह पांशुज हरिदके समान रजतनोषेतसे अवक्षेप नहीं देता। पर इसके अवकरण करनेपर पर यदि रजतनोषेत डाला जायतो अवक्षेप प्राप्त होगा। एक परखनलीमें पांशुजहरेत लो और इसमें एक टुकड़ा दस्तम्का और थोड़ासा हलका गन्धकाम्ल डालदो। गन्धकाम्ल दस्तम्के साथ उद्जन देगा और यह उद्जन पांशुजहरेतको अवकृत करके पांशुजहरिदमें परिणत करदेगा।—

पांहओ$_3$ + ३उ$_2$ = पांह + ३उ$_2$ओ
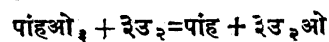
यह पांशुज हरिद रजतनोषेतके साथ रजत हरिदका अवक्षेप देदेता है। यही काम सैन्धक गन्धित और नोषिकाम्लसे लिया जा सकता है—

पांहओ$_3$ + ३सै$_2$गओ$_3$ = पांह + ३सै$_2$गओ$_4$
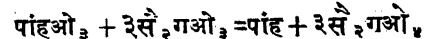
नलीमें पांशुज हरेत, सैन्धक गन्धित, नोषिकाम्ल और रजतनोषेत डालकर गरम करो। ऐसा करनेसे श्वेत अवक्षेप दिखाई पड़ेगा।

यह कहा जाचुका है कि पांशुजहरेत बनानेके लिये संपृक्त पांशुज उदौषिदके घोलमें हरिन् प्रवाहित-की जाती है। पर यदि पांशुज उदौषिदके ठंडे-हलके घोल में हरिन् प्रवाहित करें तो एक दूसरा यौगिक बनता है जिसे पांशुजउपहरित पां ह ओ, कहते हैं—

$$\text{ह}_2 + 2\text{पां ओ उ} = \text{पां ह} + \text{पां ह ओ} + \text{उ}_2\text{ ओ}$$
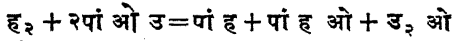
यह यौगिक पानीमें अत्यन्त घुलनशील है अतः हरेतके समान इसका अवक्षेप प्राप्त नहीं होता है। यह अस्थायी है और यदि इसका घोल उबाला जायगा तो यह विभाजित होजायगा। उबालकर सुखा देनेपर यह पांशुज हरेतमें परिणितहो जाता है :—

$$3\text{ पां ह ओ} = 2\text{ पां ह} + \text{पां ह ओ}_3$$
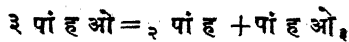
यही नहीं, यह यौगिक वायुके कर्बनिकाम्लसेभी विभाजित हो जाता है। अतः यह शुद्ध रूपमें नहीं प्राप्त हो सकताहै। यह अपने ओषजनका अत्यन्त शीघ्र त्याग कर देता है। मांगनीज गन्धेतके साथ यह काला अवक्षेप देता है क्योंकि मांगनीज गन्धेत ओषिदमें परिणत हो जाता है। इस प्रयोगके लिये एक परख-नलीमें पांशुजउपहरितका घोल और थोड़ासा सैन्धक उदौषिद लो और मांगनीज गन्धेत डालो। फौरन काला अवक्षेप दिखाई पड़ेगा।

पांशुज हरेतका घोल मांगनीज गन्धेत और सैन्धक गन्धेतके साथ मांगनस उदौषिदका श्वेत अव-क्षेप देता है।

पांशुज नैलेत और अरुणेत

१० प्रति शतक पांशुज उदौषिदके घोलमें नैलिन्के कुछ रवे डालो। और फौरनही मांगनीज गन्धेतकी बूंद डालदो, काला भूरासा अवक्षेप दिखाई पड़ेगा। पांशुज उपहरितके समान यहाँ भी पांशुजउपनैलित बना है। पर पांशुज उपनैलित उपहरितकी अपेक्षा अधिकक्षणभंगुर है। यदि नैलिन् और पांशुज उदौषिदके घोलको गरमकरके मांगनीज गन्धेत डाला जाय तो काले अवक्षेपके स्थान में श्वेत अवक्षेप आवेगा जैसा हरेतके साथ आया था क्योंकि ऐसा करनेसे पांशुज नैलेत पां नै ओ₃ बन गया है।

$$3\text{नै}_2 + 6\text{ पां उ ओ} = \text{पां नै ओ}_3 + 5\text{ पां नै} + 3\text{उ}_2\text{ ओ}$$
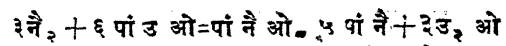
यह जलमें बहुत कम घुलनशील है और गरम करने पर पांशुज हरेतके समान ओषजन देता है।

$$2\text{ पां नै ओ}_3 = \text{पां नै} + 3\text{ ओ}_2$$
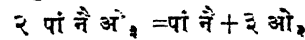
पांशुज हरेतको नैलिन्के साथ गरम करनेसेभी, पांशुज नैलेत प्राप्तहो सकता है।

$$2\text{ पां ह ओ}_3 + \text{नै}_2 = 2\text{ पां नै ओ}_3 + \text{ह}_2$$
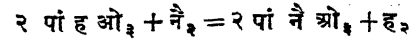
नैलिन् हरिन् का स्थान ले लेता है, हरिन् भी नैलिन्से संयुक्त होकर एक द्रव यौगिक नैलिन्-एक-हरिद देता है।

$$\text{ह}_2 + \text{नै}_2 = 2\text{ नै ह}$$
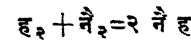
पांशुज अरुणेत, पां रु ओ₃ भी नैलेतके समान संपृक्त पांशुजउदौषिदके घोलमें अरुणिन् डालनेसे बन सकता है और उसके भी वैसे ही गुण होते हैं।

उपहरसाम्ल और हरिकाम्ल

हलके ठण्डे पांशुज उदौषिदमें हरिन्के प्रवाहित करने से जो घोल आया था, उसमें थोड़ा सा अम्ल डालनेसे उपहरसाम्ल, उह ओ, जनित होता है और यह स्रवित किया जा सकता है। पर अधिक अम्लके डालनेसे पहले तो उदहरिकाम्ल और उपहरसाम्ल जनित होते हैं पर वे एक दूसरेके प्रभावसे विभाजित होकर हरिन् देते हैं।

$$\text{उह} + \text{उह ओ} = \text{उ}_2\text{ ओ} + \text{ह}_2$$
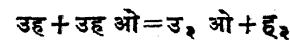
रंग विनाशक चूर्ण, ख ओ ह, पर हलके नोषिकाम्ल के प्रभावसे उपहरसाम्ल अच्छी तरह बनाया जा सकता है। यह जब पानीमें घुलता है तब खटिकहरिद और खटिक उपहरित देता है।

$$2\text{ ख ओ ह}_2 = \text{ख ह}_2 + \text{ख (ओह)}_2$$
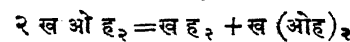
चूनेके घोलमें हरिन् प्रवाहित करनेसे भी यही बनता है। इसमें पांच प्रतिशत नोषिकाम्ल की बूंद बूँद करके समुचित मात्रा डालो और घोलको हिलाते जाओ। ऐसा करनेसे उपहरसाम्ल जनित होगा जो स्रवित किया जा सकता है।

$$\text{ख (ओ ह}_2\text{)} + 2\text{उ नो ओ}_3 = \text{ख (नो ओ}_3\text{)}_2 + 2\text{ उह ओ}$$
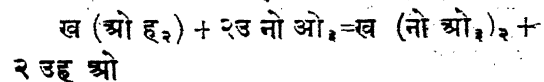
यह अम्ल भी हरिन्‌के समान पत्तियों आदिके रङ्ग को उड़ा सकता है। क्योंकि यह अपने ओषजन का त्याग बड़ी शीघ्रतासे कर देता है और रंग का ओषदीकरण हो जाता है।

हरिन-एक-ओषिद, $\text{ह}_2\text{ओ}$—पारद्‌क ओषिद पा ओ के अवक्षेप पर यदि हरिन्‌ प्रवाहित किया जाय तो भूरे पीले वर्ण का एक वायव्य जनित होगा जो ठंडा करके द्रवी भूत किया जा सकता है। इसे हरिन्-एक-ओषिद कहते हैं।

$$\text{पाओ} + 2\,\text{ह}_2 = \text{पा ह}_2 + \text{ह}_2\text{ओ}$$

पर यदि इस प्रक्रियामें जलभी उपस्थित हो तो उपहरसाम्ल ही उत्पन्न होगा।

$$\text{पा ओ} + 2\,\text{ह}_2 + \text{उ}_2\text{ओ} = \text{पा ह}_2 + \text{उ}_2\text{ओ ह}$$

हरिन्-एक-ओषिद पानी के साथ उपहरसाम्ल देता है।

$$\text{ह}_2\text{ओ} + \text{उ}_2\text{ओ} = 2\,\text{उ ओ ह}$$

हरिकाम्ल उह ओ $_3$ -यह अम्ल भी शुद्ध रूपमें नहीं प्राप्त हो सकता है क्योंकि संपृक्त घोलमें यह विभाजित हो जाता है। भार हरेतके घोलमें गन्धकाम्ल डालकर इसका हलका घोल बनाया जासकता है।

$$\text{भ (ह ओ}_3)_2 + \text{उ}_2\text{ग ओ}_4 = \text{भ ग ओ}_4 + 2\,\text{उ ह ओ}_3$$

इस अम्लके लवणों को हरेत कहते हैं, जो गरम करने पर ओषजन और हरिदोंमें विभाजित हो जाते हैं। पांशुज हरेतको गन्धकाम्लके साथ थोड़ा सा गरम करने पर हरिन्‌परोषिद, ह ओ$_2$, गैस बनती है जो प्रबलतासे ओषदीकरण कर सकती है।

$$3\,\text{उ ह ओ}_3 = 3\,\text{उ ह ओ}_4 + 2\,\text{ह ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ओ}$$

परहरिकाम्ल उ ह ओ$_4$

जब पांशुज हरेत गरम किया जाता है तो यह पिघल कर पहले द्रव हो जाता है और शीघ्रतासे ओषजन देने लगता है। थोड़ी देर के बाद द्रव गाढ़ा होजाता है। इस समय यह पांशुज पर हरेत पां ह ओ$_4$ के रूपमें होता है। इसमें कुछ पांशुज हरेत और हरिद भी मिले रहते हैं।

$$10\,\text{पां ह ओ}_3 = 6\,\text{पां ह ओ}_4 + 3\,\text{ओ}_2 + 4\,\text{पां ह}$$

हरेत और हरिद अलग करनेके लिये गाढ़े पदार्थ को पीसकर संपृक्त उदहरिकाम्लमें तब तक उबालते हैं, जब हरिन्‌ का निकलना बन्द नहीं होजाता है। ठण्डे पानीसे धोकर सम्पूर्ण हरिद अलग किया जा सकता है।

परहरेत अनेक गुणोंमें हरेतसे मिलता जुलता है। यह गरम करनेपर ओषजन देता है और दस्तम्‌ और गन्धकाम्लके संसर्गसे अवकृत होजाता है। पर दोनों में भेद यह है कि परहरेत गन्धसाम्ल (या सैन्धक गन्धित) से अवकृत नहीं होता है और न यह उदहरिकाम्लसे विभाजित होता है।

पांशुज पर हरेत को तीव्र गन्धकाम्लसे गरम करने पर परहरिकाम्ल उ ह ओ$_4$ उत्पन्न होता है जो स्थायी द्रव है और स्रवित किया जा सकता है। इसके अन्दर कागज या लकड़ी डाली जाय तो जलने लगेगी।

नैलिकाम्ल और पर नैलिकाम्ल

नैलिकाम्ल उने ओ$_3$ हरिकाम्लकी अपेक्षा अधिक स्थायी है। अतः यह तीव्र नोषिकाम्ल और नैलिन्‌के संसर्ग से उत्पन्न हो सकता है इस प्रक्रियोंमें नोषिक ओषिदकी उत्पत्तिके कारण बहुतसे भूरी वाष्पें उठेंगी। जबये बन्द हो जायँ तो घोलको गरम करके सुखा लो। सफेद नैलिकाम्ल रह जायगा जो पानीमें घुलनशील है।

$$3\,\text{नै}_2 + 10\,\text{उ नो ओ}_3 = 6\,\text{उ नै ओ}_3 + 10\,\text{नो ओ} + 2\,\text{उ}_2\text{ओ}$$

पानीमें नैलिन्‌ डालकर हरिन्‌ प्रवाहित करनेसे भी नैलिकाम्ल बनता है।

$$\text{नै}_2 + 5\,\text{ह}_2 + 6\,\text{उ}_2\text{ओ} = 2\,\text{उ नै ओ}_3 + 10\,\text{उह}$$

इस अम्ल को गरम करनेसे नैलिन्‌ पंचोषिद बनता है।

$$2\,\text{उ नै ओ}_3 = \text{नै}_2\text{ओ}_5 + \text{उ}_2\text{ओ}$$

और अधिक गरम करनेसे पंचोषिद भी विभाजित होजाता है।

$$2\,\text{नै}_2\text{ओ}_5 = 2\,\text{नै}_2 + 5\,\text{ओ}_2$$

परनैलिकाम्ल उनैओ$_4$—भारपरनैलेत नैलेतसे उसी प्रकार बनाया जा सकता है जैसे हरेतसे पांशुज-पर हरेत बनाया गया था।

भार-पर-नैलेतसे अन्य पर-नैलेत पारस्परिक-विनिमयसे बनाये जासकते हैं। नैलेतको सैन्धक उदौषिदमें घोलकर हरिन् प्रवाहित करनेसे भोपरनैलेत बनाये जासकते हैं :—

सैनैओ$_3$ + ह$_2$ + $_2$सैओउ=सैनैओ$_4$ + उ$_2$ओ + २सैह

भार-पर-नैलेत पर गन्धकाम्लका प्रभाव डालनेसे पर-नैलिकाम्ल उत्पन्न हो सकता है—

भ(नैओ$_4$)$_2$ + उ$_2$गओ$_4$=२उनैओ$_4$ + भगओ$_4$

पर हरेत पर नैलिन् के प्रभावसे भी यह उत्पन्न किया जासकता है—

२उहओ$_4$ + नै$_2$= २उनैओ$_4$ + ह$_2$

यह अम्ल सफेद रवेदार ठोस है जो गरम करने पर जल ओषजन, और नैल पंचोषिदमें परिणत हो जाता है—

२ नैओ$_4$=उ$_2$ओ + नै$_2$ओ$_5$ + ओ$_2$

अरुणिन् भी अरुणिकाम्ल, उरुओ$_3$ देता है जो गुणोंमें हरिकाम्लके समान है परइसका परअरुणिकाम्ल नहीं पाया गया है।

रङ्ग विनाशक चूर्ण।

हरिन् गैसको बुझे हुए चूनेमें प्रवाहित करनेसे एक पदार्थ उपलब्ध होता है जिसका उपयोग रङ्गोंके उड़ानेमें किया जाता है। यह पदार्थ रङ्ग विनाशक चूर्ण कहलाता है—प्रक्रिया इस प्रकार है—

ख (ओ उ)$_2$ + ह$_2$ =ख ओ ह$_2$ + उ$_2$ ओ

रङ्ग विनाशक चूर्णको व्यापारिक मात्रामें तैयार करने के लिए वायव्य हरिन् का बनाना सबसे पहिले आवश्यक है। इसके बनानेकी दो मुख्य विधियां हैं—१. वैल्डनकी विधि, २. डीकन की विधि, इन दोनों विधियोंका सूक्ष्म वृत्तान्त यहां दिया जाता है:—

१. वैल्डनकी विधि—इस विधिमें मांगनीज द्विओषिद पर उदहरिकाम्ल के प्रभावसे हरिन् गैस बनाई जाती है—

माओ$_2$ + ४ उह = माह$_2$ + २ उ$_2$ओ + ह$_2$

जब प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, तो अवशिष्ट उदहरिकाम्लको सैन्धककर्बनेतसे शिथिल कर लेते हैं और फिर मांगनीज हरिदमें चूनेका पानी आवश्यकता से अधिक डालते हैं। इस प्रकार मांगनीज हरिद मांगनस-उदौषिदमें परिणत हो जाता है—

माह$_2$ + ख (ओ उ)$_2$=ख ह$_2$ + मा (ओ उ)$_2$

मांगनस उदौषिदको फिर एक बेलनाकार बर्तन में रखते हैं जिसे ओषदकारक कहते हैं यहां यह धीरे धीरे भापसे गरम किया जाता है, और इस पर वायु प्रवाहितकी जाती है। वायुके ओषजन द्वारा यह मांगनीज द्विओषिदमें परिणत हो जाता है—

मा (ओ उ)$_2$ + ओ= माओ$_2$ + उ$_2$ ओ

यह मांगनीज द्विओषिद फिर हरिन् गैसके बनानेमें उपयुक्त किया जा सकता है। इस विधिमें उदहरिकाम्लसे केवल आधा भाग हरिन् मिल सकता है, शेष आधा भाग हरिन् खटिकहरिद बनानेके काममें आता है जो व्यापारिक दृष्टिसे बहुत अधिक उपयोगी नहीं है।

अस्तु, इस प्रकार उत्पन्न किया हुआ हरिन् सीसम् धातुके बने हुए बड़े बड़े कमरोंमें प्रवाहित किया जाता है। इन कमरोंके धरातल पर बुझे हुए चूनेकी ३–४ इञ्च मोटी तह क्यारियोंके रूपमें लगी होती है। ज्योंही कमरेकी सब वायु निकल जाती है और कमरा पूर्णतः हरिन्से भर जाता है, इसे २४ घण्टेके लिए बन्द कर देते हैं। यदि आवश्यकता पड़े तो समय समय पर और अधिक हरिन् प्रवाहित करके बुझे हुए चूने को हरिन्से संयुक्त कर लेते हैं। इसके बाद कमरे में वायु प्रवाहित करके अवशिष्ट हरिन् दूसरे कमरेके चूने पर प्रवाहित कर लेते हैं। रङ्ग विनाशक चूर्ण निकाल लिया जाता है। यह चूर्ण अम्लोंके प्रभावसे ३६–३८ प्रतिशत तक हरिन् देता है।

२—डीकन की विधि—साधारण नमक पर गंधकाम्लके प्रभाव द्वारा जनित उदहरिकाम्ल वायव्यको पानी में घोलनेके बजाय वायुमें मिला दिया जाता है। इसे

शुष्क और गरम करनेके उपरांत लोहेके गरम बेलनों में होकर प्रवाहित करते हैं। इन बेलनों में ईंटोंके टुकड़े होते हैं जिनमें ताम्रिक हरिद, ताह$_2$ अभिशोषित रहता है। इस अवस्था में उदहरिकाम्ल वायु के ओषजन द्वारा प्रभावित होकर हरिन् दे देता है—

४ उ ह + ओ$_2$ = २ उ$_2$ ओ + २ ह$_2$
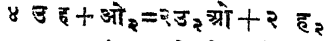
जिस प्रकार पांशुज-हरेतसे ओषजन शीघ्रता और सरलतासे प्राप्त करनेके लिये मांगनीज़ द्विओषिद उत्प्रेरक के रूप में डालते हैं उसी प्रकार ताम्रिक हरिद भी उपयुक्त प्रक्रिया में उत्प्रेरक का काम करता है। इस प्रक्रियाको उत्प्रेरण (Catalysis) कहते हैं। इन उत्प्रेरकों का काम प्रक्रिया की प्रगति को बढ़ा देना है। इनमें स्वयं कोई प्रत्यक्ष परिवर्तन नहीं होता है। अतः थोड़ी सी ही मात्रा में रहते हुए भी यह पदार्थों की बहुतसी मात्राओं पर प्रभाव डाल सकते हैं।

अपरिवर्तित उदहरिकाम्लको पानीकी बौछारों से धोकर पृथक् कर लिया जाता है और शेष गैसों (हरिन् वायु मिश्रण) को बुझे हुए चूनेकी पतली सतहों पर प्रवाहित करते हैं। इस गैस मिश्रण में केवल ५·७ प्रतिशत ही हरिन् गैस होता है।

रंग विनाशक चूर्ण जब पानीमें घोला जाता है तो यह खटिक हरिद, ख ह$_2$ और खटिक उपहरित ख (ओ ह)$_2$ में परिणत हो जाता है—

२ ख ओह$_2$ = ख ह$_2$ + ख (ओ ह)$_2$
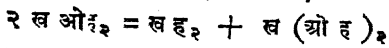
पर ठोस पदार्थमें इन दोनों यौगिकोंके मिश्रित गुण नहीं हैं, इसका संगठन ह. ख. ओ ह समझना चाहिये।

रंग विनाशकी प्रक्रिया इस प्रकार है—जिस कपड़े का रंग उड़ाना हो उसे पहले क्षारसे धो लो और फिर इसे रङ्ग विनाशक चूर्णके हलके घोल में डुबोओ। खटिक उपहरित ओषदकारक है। यह कपड़ेके रङ्ग का ओषदीकरण कर देगा और स्वयम् खटिक हरिद में परिणत हो जायगा।

ख (ओ ह)$_2$ = ख ह$_2$ + ओ$_2$
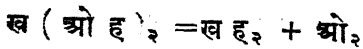
यदि कपड़ा पहले अम्लसे धो लिया जाय तो रङ्ग विनाश प्रक्रिया और भी ज़ोरोंसे होगी। अम्ल के प्रभाव से उदहरिकाम्ल और उपहरसाम्ल उत्पन्न होंगे जो परस्पर संयुक्त होकर हरिन् मुक्त करेंगे। यह हरिन् यथानुसार रङ्गका ओषदीकरण कर देगा।

१. ख ह$_2$ + ख (ओ ह)$_2$ + २ उ$_2$ ग ओ$_4$ = २ख ग ओ$_4$ + २उ ह + २ उ ओ ह।

२. उ ह + उ ओ ह = उ$_2$ ओ + ह$_2$
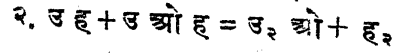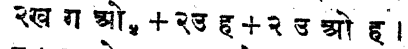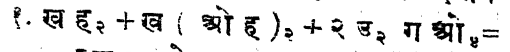
विषम योगियोंके लवणजन यौगिक।

(ले॰ श्री सत्यप्रकाश बी. एस. सी. विशारद)

गत अध्यायमें विषम योगियोंके बनानेकी विधि दी जा चुकी है। इन यौगिकोंके एक या एकसे अधिक उदजन-परमाणुओंके स्थानमें लवणजन (हरिन्, अरुणिन्, नैलिन्) परमाणुओंको स्थापित करनेसे लवणजन-यौगिक बन सकते हैं—
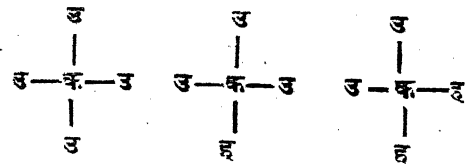
उ	उ	उ
|	|	|
उ—क—उ	उ—क—उ	उ—क—ह
|	|	|
उ	ह	ह
दारेन	दारील हरिद	दारीलिन हरिद

साधारणतया हरिन् और अरुणिन् सूर्य्यके प्रकाशमें दारेन, ज्वलेन आदिसे संयुक्त हो सकते हैं। ऐसी अवस्थामें विषम योगियोंका केवल एक उदजनही इन तत्वोंसे स्थापित किया जा सकता है।

क उ$_4$ + रु$_2$ = क उ$_3$ रु + उ रु
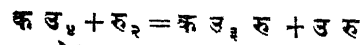
पर नैलिन् लवणजन विषम योगियोंसे इस प्रकार संयुक्त नहीं होसकता है। बात यह है कि उपर्युक्त प्रकारकी प्रक्रियासे उत्पन्न उद-नैलिकाम्ल फिर दारील नैलिदपर प्रभाव डालता है जिससे दारेन और नैलिन् पूर्ववत् उत्पन्नहो जाते हैं:—

क उ$_4$ + नै$_2$ = क उ$_3$ नै + उ नै

क उ$_3$ नै + उ नै = क उ$_4$ + नै$_2$
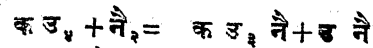
इस प्रकारकी उलटनेवाली प्रक्रियाको विपर्य्यित प्रक्रिया कहते हैं।

यदि योगियोंमें एक उद्‌जनके स्थानमें लवणजनका एक परमाणु आजावे तो इन्हें एक-लवणजन यौगिक कहेंगे। लवणजनके दो परमाणु यदि उद्‌जनके दो परमाणुओंके स्थानमें आजावें तो द्वि-लवणजन यौगिक कहलावेंगे। इसी प्रकार त्रि-लवणजन, और चतुर्लवणजन यौगिक आदिको भी समझना चाहिये।

एक-लवणजन यौगिक

यहां हम नीचेकी सारिणीमें कुछ एक-लवणजन यौगिक देते हैं। विषमयोगियोंका सामान्य सूत्र क $उ_{२न+२}$ था अतः एक-लवणजन यौगिकोंका सामान्य सूत्र $क_{न}उ_{२न+१}$ य होगा। 'य' से तात्पर्य लवणजन परमाणुसे है।

लवणजन यौगिक	सूत्र	क्वथनांक
दारीलहरिद या हरोदारेन	क $उ_{३}$	-२४°
ज्वलीलहरिद या हरोज्वलेन	$क_{२} उ_{५}$ह	१२.५°
अग्रील हरिद या हरो अग्रेन	$क_{३} उ_{७}$ ह	४४°
समअग्रीलहरिद या समहरो अग्रेन	$क_{३} उ_{७}$ ह	३६°
दारीलअरुणिद या अरुणोदारेन	क $उ_{३}$ रु	४.५°
ज्वलीलअरुणिदया अरुणोज्वलेन	$क_{२} उ_{५}$ रु	३८°
अग्रीलअरुणिद या अरुणा अग्रेन	$क_{३} उ_{७}$ रु	७१°
समअग्रील अरुणिद या सम अरुणोअग्रेन	$क_{३} उ_{७}$ रु	५९°
दारील नैलिद या नैलिद दारेन	क$उ_{३}$नै	४३°
ज्वलील नैलिद या नैलो ज्वलेन	$क_{२} उ_{५}$नै	७२°
अग्रीलनैलिद या नैलो अग्रेन	$क_{३} उ_{७}$नै	१०२°
समअग्रील नैलिद या समअग्रेन	$क_{३} उ_{७}$नै	८९°

दारील हरिदके बनानेकी विधि—अभी कहा जा चुका है कि लवणजन तत्व विषमयोगियोंसे संयुक्त होकर लवणजन यौगिक दो सकते हैं। पर यह विधि सर्वथा अधिक उपयोगी नहीं है। बहुधा तत्सम्बन्धी मद्यपर लवणजन अम्लके प्रभावसे ये यौगिक आसानीसे बनाये जा सकते हैं।

$$क उ_{३} ओ उ + उ ह = क उ_{३} ह + उ_{२} ओ$$

दारील मद्य　　　　　　　दारील हरिद

$$क_{२} उ_{५} ओ उ + उ ह = क_{२} उ_{५} ह + उ_{२} ओ$$

ज्वलील मद्य　　　　　　　ज्वलील हरिद

पर ये प्रक्रियायें भी विपर्य्यित हैं अर्थात् पानी फिर दारील हरिद या ज्वलील हरिदपर प्रभाव डालकर क्रमशः दारीलमद्य और ज्वलीलमद्य दे देता है। इस प्रक्रियाको इस प्रकार सूचित कर सकते हैं—

$$क उ_{३} ओ उ + उ ह \rightleftarrows क उ_{३} ह + उ_{२} ओ$$

इस प्रकार इस प्रक्रियामें सम्पूर्ण दारील या ज्वलील मद्य हरिदोंमें परिणत नहीं किया जा सकता है।

अब यहां दारीलहरिद बनानेकी प्रयोगात्मक विधि दी जाती है। उपर्युक्त प्रक्रियाके लिये उदहरिकाम्ल-वायव्यकी आवश्यकता होगी। द्रव उदहरिकाम्लमें यदि संपृक्त गन्धकाम्ल धीरे धीरे टपकाया जाय तो वायव्य उदहरिकाम्ल प्राप्त हो सकता है। हम कहचुके हैं कि पानी हरिदके ऊपर प्रभाव डालकर फिर मद्य जनित करदेता है। अतः पानीके अभिशोषणके लिये अनार्द्रित दस्तहरिदका उपयोग करते हैं। प्रयोग इस प्रकार है—

एक कांचकी कुप्पीमें पेंचदार कीप लगादेते हैं इस बोतलमें उदहरिकाम्ल रखाजाता है। कीपसे गन्धकाम्ल टपकाया जा सकता है। यह कुप्पी कांचकी नलीद्वारा एक दूसरी कुप्पीसे संयुक्त रहती है जिसमें दारील मद्य और अनार्द्रित दस्तहरिदका चूर्ण रखा होता है। इस कुप्पीमें एक सीधा भपका लगा होता है। इस भपकेमें पानी बहता रहता है। इस भपकेका ऊपरी सिरा एक पानी भरी बोतल, एक सैन्धका-चूनेका स्तम्भ और तत्पश्चात् बर्फमें रखी हुई चूल्हाकार नलीसे क्रमशः संयुक्त रहता है। मद्यवाली कुप्पी

को वाष्प-कुंडी पर गरम करते हैं। उदहरिकाम्ल गैस इसमें प्रवाहितकी जाती है ऐसा करनेसे दारीलहरिद्की भी वाष्पें उठती हैं। इन वाष्पोंके साथ मद्य और उदहरिकाम्लकी भी वाष्पें होती हैं। मद्यकी वाष्पें भपकेके पानीसे ठंडी होकर फिर बोतलमें स्रवित हो जाती हैं। उदहरिकाम्लकी वाष्पें पानीकी बोतल और सैन्धक चूनेके स्तम्भमें अभिशोषित हो जाती हैं। स्वच्छ दारील हरिद् चूल्हाकार नलीमें ठंडा होकर द्रवित हो जाता है। चूल्हाकार नलीके नीचे एक पेंच लगा होता है जिससे यह बोतलमें भर लिया जाता है।

दारील अरुणिद बनानेकी विधि—दारील अरुणिद या नैलिद्के बनानेके लिये उदअरुणिकाम्ल या उदनैलिकाम्लकी आवश्यकता होती है। इन अम्लों के बनानेमें कुछ कठिनाई पड़ती है अतः इनके स्थानमें स्फुर और अरुणिन् (या नैलिन्) का उपयोग करते हैं।

दारील अरुणिदके बनानेके लिये कांचकी एक बड़ी कुप्पी लेते हैं। जिसमें पेंचदार कीप लगा होता है। इस कुप्पीसे एक भपका संयुक्त रहता है जिसके दूसरे सिरेमें एक संचक लगा रहता है। कुप्पीके अन्दर १० ग्राम स्फुर और ७० घन. श. मी. ज्वलील मद्य रखते हैं। कीपसे २० घन. श. मी. अरुणिन् धीरे धीरे कुप्पीमें टपकाते हैं। टपकाते समय कुप्पीको जल कुंडीमें रखकर ठंडा करते हैं। इसके पश्चात् कुप्पीको कई घंटे तक योंही रखे रहते हैं। फिर वाष्पकुंडी पर गरम करके ज्वलील हरिद्को संचकमें स्रवित कर लेते हैं। ज्वलील हरिद्की वाष्पोंके साथ उदअरुणिकाम्लकी वाष्पें भी आसकती हैं। इनके अभिशोषणके लिये संचकमें एक पार्श्वनली लगा कर सैन्धक चूनाके स्तम्भसे संयुक्त कर देते हैं।

प्रक्रिया इस प्रकार है—

स्फु + ३ रु = स्फु रु$_3$ (स्फुर अरुणिद)

स्फु ⟨ रु रु रु + क$_2$ उ$_5$ ओ उ, क$_2$ उ$_5$ ओ उ, क$_2$ उ$_5$ ओ उ = स्फु ⟨ ओ उ, ओ उ, ओ उ + ३ क$_2$ उ$_5$ रु

स्फुराम्ल ज्वलील अरुणिद
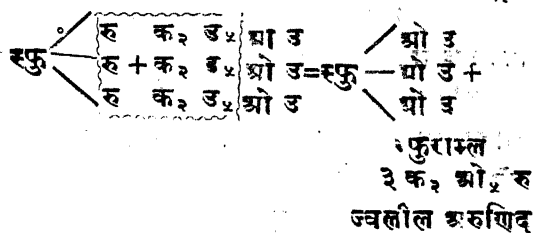
अरुणिन्के स्थान में नैलिन् लेनेसे इसी प्रकार दारील नैलिद बनाया जा सकता है। ज्वलील मद्यके स्थानमें दारील मद्य लेनेके दारील अरुणिद और नैलिद बनाये जा सकते हैं।

अग्रील और सम अग्रील यौगिक—अग्रेनका सूत्र कउ$_3$ कउ$_2$ कउ$_3$ है अतः लवणजनोंके प्रभावसे यह दो प्रकारके यौगिक देसकता है एक तो वह जिसमें—क उ'$_3$ मूलका उदजन पृथक् किया गया हो और दूसरा वह जिसमें क उ'$_2$ मूलका उदजन।

क उ$_3$. क उ$_2$. क उ$_2$ ह ··· (१)

क उ$_3$. क उ. ह. क उ$_3$ ... (२)

वास्तवमें, दोनों प्रकारके अग्रील हरिद पाये गये हैं। सारिणीमें देखनेसे पता चलेगा कि एक हरिद् का क्वथनांक ४४° और दूसरेका ३६° है तत्सम्बन्धी मद्योंसे ये बनाये जासकते हैं।

क उ$_3$. क उ$_2$ क उ$_2$ (ओ उ) →
(प्रारम्भिक अग्रील मद्य)

क उ$_3$ क उ$_2$ क उ$_2$ ह।

क उ$_3$. क उ. (ओ उ) क उ$_3$ क उ$_3$ कउ-
(द्वितीय अग्रील मद्य)
ह. क उ$_3$।

सम अग्रील नैलिद बहुधा मधुरिनसे निम्न प्रकार बनाया जाता है।

क उ$_2$ ओ उ
|
क उ ओ उ + ५ उ नै = क उ$_3$ क उ.$_2$ क उ$_2$ नै +
| ३ उ$_2$ ओ + २ नै$_2$
क उ$_2$ ओ उ (सम अग्रील नैलिद)
मधुरिन

नवनीतील लवणजन यौगिक—ऐ कशील नैलिदों-की समरूपता का वर्णन अभी किया जा चुका है, नवनीतील हरिद, नैलिद आदिके चार समरूप होते हैं। ये तत्सम्बन्धी मद्योंसे बनायेजा सकते हैं। नवनीतेन दो प्रकारके होते हैं। प्रत्येकके हरिद और दो प्रकार के हुए—

$$\text{कउ}_3\text{,कउ}_2\ \text{क उ}_3 \left\{\begin{array}{l}\rightarrow \text{कउ}_3.\text{कउ}_2.\text{कउ}_2\text{कउ}_2.\text{ह} \quad \dots (1)\\ \rightarrow \text{कउ}_3.\text{कउ}_2.\text{कउह}.\text{कउ}_3 \quad \dots (2)\end{array}\right.$$

नवनीतेन

$$\begin{array}{c}\text{कउ}_3\\ |\\ \text{कउ}_3\text{,कउ}\\ |\\ \text{कउ}_3\end{array} \left\{\begin{array}{l}\rightarrow \text{कउ}_2\text{ह}.\text{कउ}<^{\text{कउ}_3}_{\text{कउ}_3} \quad \dots (3)\\ \rightarrow \text{कउ}_3\ \text{कह}<^{\text{कउ}_3}_{\text{कउ}_3} \quad \dots (4)\end{array}\right.$$

समनवनीतेन

इन सब रूपोंपर विचार करनेसे पता चलता है कि लवणजन तीन प्रकारसे संयुक्त हुआ है। १. पहले और तीसरे यौगिकोंमें यह कउ$_3$ मूल से संयुक्त है। २. दूसरेमें कउ″ मूल से और ३ चौथे में क‴ मूलसे। जब कभी लवणजन (या अन्य कोई मूल) कउ′ मूलसे संयुक्त होगा तो इसे 'प्रथम' कहेंगे। जब कउ″ मूलसे लवणजन संयुक्त होगा तो इसे 'द्वितीय' कहेंगे। और जब क‴ मूलसे यह संयुक्त होगा तो इसे 'तृतीय' कहेंगे। इस प्रकार उपर्युक्त नवनीतील लवणिदोंके नाम ये हुए।

१. कउ$_3$ कह$_2$ कउ$_2$ कउ$_2$ य सामान्य (प्रथम) नवनीतील लवणिद

२. कउ$_3$ कउ$_2$ कउ य कउ$_3$ (सामान्य) द्वितीय-नवनीतील लवणिद

३. कउ$_2$ य कउ<$^{\text{कउ}_3}_{\text{कउ}_3}$ प्रथम सम नवनीतील लवणिद

४. कउ$_3$ क य<$^{\text{कउ}_3}_{\text{कउ}_3}$ तृतीय (सम) नवतील लवणिद

कोष्ठों में दिये हुए अंशको छोड़ दिया जा सकता है क्योंकि ऐसा करनेसे नामोंमें किसी प्रकार का झमेला पड़नेकी आशङ्का नहीं है।

दारील नैलिदके कुछ गुण—दारीलनैलिदका उपयोग अनेक प्रक्रियाओंमें होता है। इनमेंसे कुछ का ही उल्लेख यहां किया जावेगा। अन्य लवणजन यौगिकोंका भी उपयोग इसी प्रकार कियाजा सकता है।

१. दस्त-ताम्रम् मिथुन द्वारा अवकृत करनेसे तत्सम्बन्धी विषमयोगी बन सकता है।

```
    उ                        उ
    |                        |
उ—क— नै + उ₂ =      उ—क—उ + उ नै
    |                        |
    उ                        उ
                           दारेन
```

२. सैन्धकम् या दस्तम्के प्रभावसे ज्वलेन बन सकता है। (वुर्ज़ या कोल्बेकी प्रक्रिया)—

```
    उ                          उ
    |                          |
उ—क— [ नै + द + नै ]  —क—उ =
    |                          |
    उ                          उ

    उ   उ
    |   |
उ—क—क—उ + द नै₂
    |   |
    उ   उ
  ज्वलेन )
```
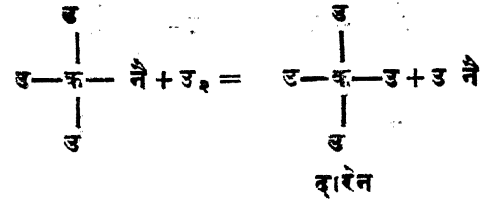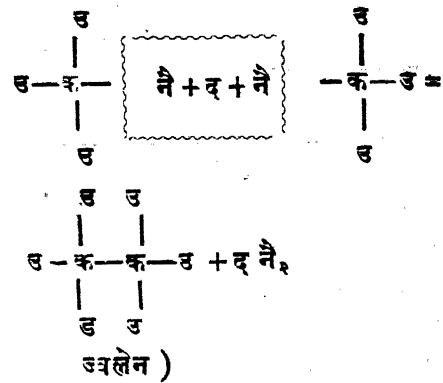
३. पांशुज उदौषिद या रजत ओषिद (जलकी विद्यमानता में) इस पर प्रभाव डालकर मद्य बनाते हैं—
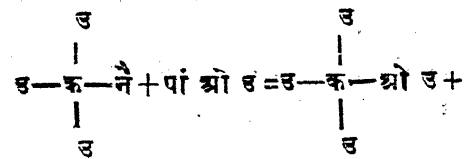
```
    उ                      उ
    |                      |
उ—क—नै + पां ओ उ = उ—क—ओ उ +
    |                      |
    उ                      उ
पां नै
```

४. अमोनियाके प्रभावके अमिन बनते हैं—

```
    उ                       उ
    |                       |
उ—क—नै + नो उ₃ = उ—क—नो उ₂ + उनै
    |                       |
    उ                       उ
                       दारील अमिन
```
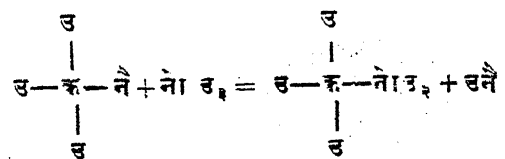
द्विलवणजन यौगिक

विषमयोगियोंके दो उद्जनोंको लवणजनोंसे स्थापित करनेपर द्विलवणजन यौगिक बनते हैं—जैसे—
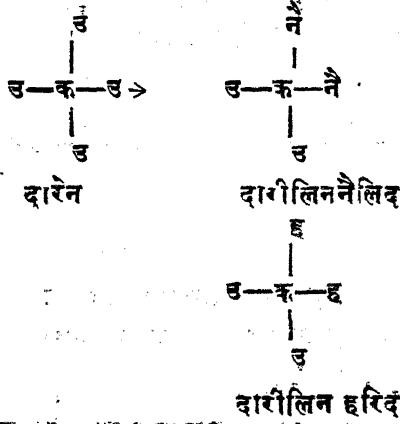
दारीलिन हरिद

इन यौगिकों में $क\ उ_2''$ को द्विशक्तिक मूल भी समझा जा सकता है, दारीलिन हरिद् को द्विहरो दारेन भी कह सकते हैं। द्विशक्तिक मूलके अन्तमें 'इन' प्रत्यय लगा रहता है— जैसे

$क\ उ_2''$— दारीलिन

$क_2\ उ_4''$ — ज्वलीलिन

$क_3\ उ_6''$ — अग्नीलिन···इत्यादि

यहां विषमयोगियोंके द्विलवणजन यौगिक दिये जाते हैं—

यौगिक	सूत्र	क्वथनांक
दारीलिन हरिद या द्विहरो दारेन	$क\ उ_2\ ह_2$	४१°
ज्वलीलिन हरिद या समपातीद्विहरो ज्वलेन	$क_2\ उ_4 ह_2$	८४°
ज्वलीलिदिन हरिदया विषमपाती द्विहरो ज्वलेन		५८°
दारीलिन अरुणिद...	$क\ उ_2\ रु_2$	८१°
ज्वलीलिन अरुणिद	$क_2\ उ_4\ रु_2$	१३१°
ज्वलीलिदिन अरुणिद		११०°
दारीलिन नैलिद	$क\ उ_2\ नै_2$	१८२°
ज्वलीलिन नैलिद	$क_2\ उ_4\ नै_2$	द्रवांक ८१°
ज्वलीलिदिन नैलिद		१७८°

प्रयोगों द्वारा सिद्ध कियाजा चुका है कि दारीलिन हरिद एक ही प्रकारका होता है। पर इसको दो प्रकारसे सूचित करा सकते हैं—
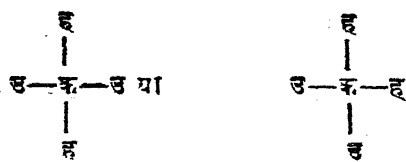
यदि कर्बनके सब बन्ध एक ही धरातलमें माने जायंगे तो ऊपर दिये हुए संगठनोंके हिसाबसे दारीलिन हरिद दो प्रकारके होने चाहिए। वास्तवमें कर्बनके चारो बन्ध एक धरातलमें नहीं है। दारीलिन हरिदको निम्न प्रकार अवकाशमें चित्रित किया जा सकता है—
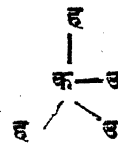
ऊपरकी सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि $क_2\ उ_4\ ह_2$ सूत्रसे दो यौगिक सूचित किये गये हैं। दोनों यौगिकोंके क्वथनांकोंमें अन्तर है। इस समरूपताका कारण यह है कि ज्वलेनमें दो कर्बन हैं और प्रत्येक कर्बन ३-३ उद्जनोंसे संयुक्त है।

हरिन्‌के दो परमाणु दोनों कर्बनोंसे एक-एक करके संयुक्त किये जा सकते हैं। ऐसा करनेसे समपाती यौगिक बनेंगे—
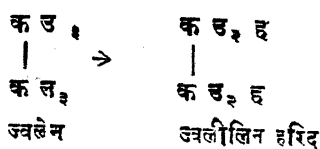
क उ₃	→	क उ₂ ह
|		|
क ल₃		क उ₂ ह
ज्वलेन		ज्वलीलिन हरिद या समपाती द्वि हरोज्वलेन

यदि एकही कर्बनसे दोनों हरिन् संयुक्त हो जाय तो विषमपाती द्विहरो ज्वलेन बनेगा इसे ज्वलीलिदिन हरिदभी कह सकते हैं—
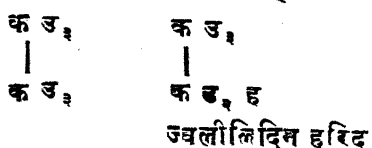
क उ₃	क उ₃
|	|
क उ₃	क उ₂ ह
ज्वलेन	ज्वलीलिदिन हरिद या विषमपाती द्विहरोज्वलेन

इस प्रकार द्विशक्तिक क उ'₂ क उ'₂ मूलको ज्वलीलिन मूल और क उ₃ क उ'' मूलको ज्वलीलिदिन मूल कहते हैं।

त्रिलवणजन-यौगिक

त्रिलवणजन यौगिकसे तात्पर्य्य उन यौगिकों से है जिनमें लवणजनकेतीन परमाणु हों। इन यौगिकोंमेंसे दो यौगिक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं क्योंकि इनका उपयोग वैद्यक शास्त्रमें बहुत होता है। एक तो त्रिहरोदारेन या हरोपिपील, क उ ह₃ है। इसे क्लोरोफार्म भी कहते हैं। दूसरा यौगिक त्रिनैलोदारेन, नैलोपिपील या आइडोफार्म क उ नै₃ है। हम इन दोनों का ही यहाँ वर्णन देंगे।

हरोपिपील—पुराने समयमें क उ'' मूलको पिपील मूल कहते थे जिससे इस यौगिक क उ ह₃ का नाम हरोपिपील पड़ा है।

लीबिग नामक वैज्ञानिकने सं० १८८८ वि० में इसकी खोजकी और सत्रह वर्ष उपरान्त सं० १६०५ वि० में सिम्पसनने चीड़ फाड़के काममें मनुष्य को मूर्छित करनेके लिये इसका उपयोग किया। इसके बनानेकी दो विधियां यहाँ दी जाती हैं—

१. हरल (अर्थात त्रि-हर सिरकमद्यानार्द्र) क ह₃ क उ ओ को सैन्धक उदौषिदके साथ गरम करके यह बहुत शुद्ध बनाया जा सकता है, हरल का अधिक वर्णन आगे दिया जावेगा प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$\text{उ} \;|\; \text{सै ओ} + \text{क ह}_3 \;|\; \text{क}<^{\text{ओ}}_{\text{उ}} = \text{उ क ह}_3 + \text{सै ओ क}<^{\text{ओ}}_{\text{उ}}$$
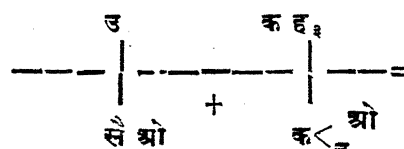
(सैन्धिक उदौषिद) (हरल) = (हरोपिपील) (सैन्धक पिपीलेत)

इस प्रकार सैन्धक उदौषिद और हरलको साथ साथ गरम करनेसे हरोपिपील और सैन्धक पिपीलेत बनता है।

२. व्यापारिक मात्रामें हरोपिपील ज्वलील मद्य या सिरकोनको रंगविनाशक चूर्णके साथ उबाल कर बनाते हैं। रंग विनाशक चूर्ण हरिद गैस देता है। हरिन् गैसके प्रभावसे मद्य हरलमें परिणतहो जाता है:—

$$\text{क}_2\ \text{उ}_5\ \text{ओ उ} + ४\ \text{ह}_2 = \text{क ह}_3\ \text{क उ ओ} + ५\ \text{उ ह}$$

हरल
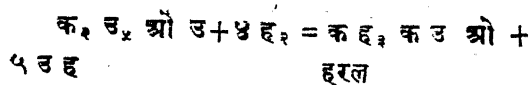
रङ्ग विनाशक चूर्णमें चूना होता है जिसका प्रभाव भी सैन्धक उदौषिदके समान होता है। इस प्रकार यह हरल चूनेके संसर्गसे हरोपिपीलमें परिणत हो जाता है।

प्रयोग—१०० ग्राम रङ्गविनाशक चूर्णको ४०० घ. श. मी. पानीके साथ मिलाकर लपसी बनालो इसे एक कांचको बड़ी कुप्पीमें २५ घन. श. मी. ज्वलील मद्य या सिरकोनके साथ रखो। कुप्पामें एक भपका और संचक लगादो और बालू-की कुंडीपर रखकर सावधानीसे तबतक गरम करो जब तक प्रक्रिया आरम्भ न होजाय। फिर दग्धकको हटालो। हरोपिपील संचकमें स्रवित हो जायगा।

हरोपिपील पानीसे भारी होता है। यह बेरंग का द्रव है जिसका आपेक्षिक घनत्व १'५२५ है। क्वथनांक ६१°—६२° है और द्रवांक —६°३२° है। यह जलन शील नहीं है। इसमें मीठी मीठी गन्ध होती है। अधिक सूंघने से मूर्छा होनेकी आशङ्का है। हवा और सूर्यके प्रकाशमें रखने से इसमेंसे कर्बनील हरिद और हरिन् गैस तीव्रतासे निकलने लगते हैं; खटिक हरिद्के संसर्गसे यह प्रक्रिया और भी शीघ्रतासे होती है।

क उ ह$_३$ + ३ ओ = उ$_२$ ओ + २ क ओ ह$_२$ + ह$_२$

थोड़ा सा मद्य डालनेसे यह अधिक सुरक्षित रह सकता है। पर तब भी इसे अन्धेरेमें रखना चाहिये और बोतलको गले तक भरा रहना चाहिये।

हरोपिपीलकी पहिचान इसकी गन्धसे की जाती है पर दिव्यील कर्बामिन प्रक्रिया से यह अधिक उत्तमतासे पहिचाना जा सकता है। एक परख नलीमें हरोपिपीलकी दो बूंदे डालो। इसमें एक बूंद नीलिनकी और एक घन. श. मी. मद्यिक पोटाश (पांशुज उदौषिदका मद्यमें घोल) भी डाल दो, थोड़ासा गरम करो। ऐसा करनेसे दिव्यील कर्बामिनकी विचित्र असह्य दुर्गन्ध प्रतीत होगी। इस प्रयोग को बन्द अलमारी में करना चाहिये।

क उ ह$_३$ + क$_६$ उ$_५$ नो उ$_२$ + ३ पा ओ उ
नीलिन

= क$_६$ उ$_५$ क नो + ३ पां ह + ३ उ$_२$ ओ
दिव्यील कर्बामिन

नैलपिपील या आइडोफार्म —क उ नै$_३$—मद्य या सिरकोनमें थोड़ा सा नैलिन् और क्षार डालकर यह बनाया जा सकता है। एक परख नलीमें थोड़ा सा ज्वलील मद्य लो और इसमें नैलिनका घोल डाल कर पांशुज उदौषिदके घोलके साथ थोड़ासा गरम करो। ऐसा करनेसे नैलो पिपीलके पीले पीले रवे जमा होने लगेंगे। और इसकी विचित्र गन्ध भी प्रतीत होगी। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

क$_२$ उ$_५$ ओ उ + ४ नै$_२$ + ६ पां ओ उ

= क उ नै$_३$ + उ क ओ$_२$ पा + ५ नै + ५ उ$_२$ ओ

पांशुजनैलिद सैन्धक कर्बनेत और ज्वलील मद्यके घोलमें ६५° तापक्रमपर विद्युत् धारा प्रवाहित करनेसे भी नैलोपिपील बनाया जा सकता है। इसका द्रवांक ११९° है। इसमें विचित्र तरहकी गन्ध होती है। रोगाणुओंके नाशके करनेमें इसका उपयोगी होता है।

कर्बन चतुर्हरिद—क ह$_४$ यह दारेनका चतुर्हरिद यौगिक है। इसका उपयोग घोलकों के रूप में बहुत होता है। धातु लोमृ की विद्यमानता में कर्बन द्विगन्धिद पर हरिन्के प्रभावसे यह बनता है। प्रक्रिया इस प्रकार है—

क ग$_२$ + ३ ह$_२$ = क ह$_४$ + ग$_२$ ह$_२$

क ग$_२$ + २ ग$_२$ ह$_२$ = क ह$_४$ + ६ ग

यह बेरंगका द्रव है जिसमें हरोपिपीलके समान गन्ध होती है। इसका क्वथनांक ७६°—७७° है यह हरोपिपीलके समान धूपमें विभाजित नहीं होता है।

सर्व सिद्धान्त संग्रह

(गताङ्क से आगे)

[ले०—श्री गंगाप्रसादजी उपाध्याय, एम० ए०]

चतुर्विंशतिधाभिन्ना गुणास्ते ऽपि यथा क्रमात् ।
शब्दः स्पर्शो रसो रूपं गन्ध संयोग वेगताः ॥२४॥
संख्या द्रवत्वसंस्कार परिमाण विभागतः ।
प्रयत्न सुखदुःखेच्छा बुद्धि द्वेष प्रथक्त्वताः ॥२५॥
परत्वञ्चापरत्वञ्च धर्माधर्मौ च गौरवम् ।
इमेगुणाश्चतुर्विंशित्यथ कर्म च पञ्चधा ॥२६॥
प्रसारणाकुञ्चनोत्क्षेपा गत्यवक्षेपणे इति ।
परश्चापरमित्यत्र सामान्यं द्विविधंमतम् ॥२७॥

गुण २४ हैं—शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, संयोग, वेग, संख्या, द्रवत्व, संस्कार, परिमाण, विभाग, प्रयत्न, सुख, दुःख, इच्छा, बुद्धि, द्वेष, प्रथक्त्व, परत्व, अपरत्व, धर्म, अधर्म, गुरुत्व ॥ २४-२७

परं सत्तादि सामान्य द्रव्यत्वाद्यपरंमतम् ।
परस्परविवेकोऽत्र द्रव्याणां यैस्तुगम्यते ॥२८॥
विशेषा इति ते ज्ञेया द्रव्यमेव समाश्रिताः ।
सम्बन्धस्समवायस्स्यात् द्रव्याणान्तु गुणादिभिः ॥२९

सत्तादि सामान्य बड़े माने गये हैं और द्रव्यत्वादि छोटे । जिनसे एक द्रव्य और दूसरे द्रव्यमें पहिचानकी जाती है उनको विशेष कहते हैं। यह द्रव्य के अश्रित हैं । द्रव्य गुणका जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं ।२८-२९

षट पदार्था इमेज्ञेयास्तन्मयं सकलं जगत् ।
तेषां साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानं मोक्षस्यसाधनम् ॥३०॥

यह छः पदार्थ जाननेके योग्य हैं । सब जगत् इन्हींका बना हुआ है उनके साधर्म्य और वैधर्म्यका ज्ञान ही मोक्षका साधन है ।३०।

द्रव्यान्तर्गत एवात्मा भिन्नो जीवपरत्वतः ।
देवा मनुष्यास्तिर्यञ्चो जीवास्त्वन्यो महेश्वरः ।३१।

आत्मा द्रव्योंके अन्तर्गत आजाती है उसके दो भेद हैं एक जीव और दूसरा परमात्मा । देव, मनुष्य, सर्प आदि जीव हैं । दूसरा ईश्वर है ।३१।

तदाज्ञप्रक्रियां कुर्वन् मुच्यतेऽन्यस्तुबध्यते ।
श्रुतिस्मृतीतिहासाद्यं पुराणंभारतादिकम् ।।३२।।
ईश्वराज्ञेति विज्ञेया न लङ्घ्या वैदिकैः क्वचित् ।
त्रिधा प्रमाणं प्रत्यक्षमनुमानागमाविति ।३३।

जो ईश्वरकी आज्ञाके अनुकूल करता है वह मोक्ष पाता है । जो नहीं करता वह बद्ध रहता है । श्रुति, स्मृति, इतिहास, महाभारतादि पुराण यह ईश्वरकी आज्ञाको प्रतिपादन करते हैं । ईश्वर की आज्ञाका कभी उलङ्घन न करे । प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द वा आगम यह तीन प्रमाण हैं । ३२ । ३३ ।

त्रिभिरेतैः प्रमाणैस्तुजगत्कर्त्तावगम्यते ।
तस्मात्तदुक्तकर्माणि कुर्यात्तस्यैव तृप्तये ।।३४ ।।

इन तीन प्रमाणोंमें जगत्का कर्ता ईश्वर सिद्ध होता है । इसलिये ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये उनके बताये हुए कर्म करना चाहिये ।३४।

भक्त्यैवावर्जनीयोऽसौ भगवान्परमेश्वरः ।
तत्प्रसादेन मोक्षः स्यात् करणोपरमात्मकः ।३५।

उस ईश्वरको भक्ति करके प्रसन्न करना चाहिये । उसीके प्रसादसे मुक्ति होती है जिसका स्वरूप इन्द्रियोंका उपराम है इन्द्रियोंके विषयोन्मुखी हो जाना उपराम है ॥३५॥

करणोपरमेत्वात्मापाषाणवद्वस्थितः ।
दुःखसाध्यः सुखोच्छेदो दुःखोच्छेदव देवनः ॥३६॥

कारणकी गति बन्द होनेपर आत्मा पत्थरके तुल्य हो जाता है । हमारे मतमें सुखोंका बन्द होना दुःखोंके बन्द होनेके समान ही कठिन है ।३६॥

अतस्संसार निर्विण्णे मुमुक्षुर्मुच्यतेजनः ।
पश्चान्नैयायिकस्तर्कैः साधयिष्यति नश्शिवम् ।
नातिभिन्नं मतं यस्मादावयोर्वेद वादिनोः
॥ ३७ ॥

इसलिये संसारसे विरक्त होकर मोक्षका इच्छुक मोक्ष पाता है । इसके पश्चात् नैयायिक तर्कों द्वारा सिद्ध करेगा कि कल्याण क्या है । क्योंकि

हम वेद-मत मानने वालोंकी सम्मतियोंमें बहुत भेद नहीं है ।३६-३७।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रहे वैशेषिकपक्षोनामपञ्चमं प्रकरणम् ।

यह श्री शङ्कराचार्य रचित सर्वदर्शन सिद्धान्तसंग्रहका वैशेषिक पक्ष नामी पांचवा प्रकरण समाप्त हुआ ।

छठा अध्याय

अथ नैयायिकपक्षः ।

नैयायिकस्य पक्षोऽथ संक्षेपात्प्रतिपाद्यते ।
यत्तर्करक्षितो वेदो ग्रस्तः पाषण्डदुर्जनैः ॥१॥

अब नैयायिकोंका पक्ष संक्षेपसे कहा जाता है । जिसके द्वारा पाषण्डी दुर्जन लोगों से ग्रसे हुये वेदों की रक्षा हुई ॥१॥

अक्षपादः प्रमाणादि षोडशार्थप्रबोधनात् ।
जीवानां मुक्तिमाचष्टे प्रमाणञ्च प्रमेयता ॥२॥
निर्णयस्संशयोऽन्यश्च प्रयोजननिदर्शने ।
सिद्धान्तावयवौ तर्को वादो जल्पो वितण्डता ।३।
हेत्वाभासश्छलं जातिर्निग्रह स्थाभित्यपि ।
प्रत्यक्षमनुमानाख्यमुपमानागमाविति ॥४॥
चत्वार्यत्र प्रमाणानि नोपमानन्तु कस्यचित् ।
प्रत्यक्षमस्मदादीनामस्त्यन्यद्योगिनामपि ॥५॥

अक्षपाद् अर्थात् गौतमका मत है कि प्रमाण आदि पदार्थोंके ज्ञानसे जीवोंकी मुक्ति होती है । वह १६ पदार्थ यह हैं । प्रमाण, प्रमेय, निर्णय, संशय, प्रयोजन, निदर्शन (दृष्टान्त) सिद्धान्त, अवयव, तर्क, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान । प्रमाण चार हैं प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान और आगम या शब्द कुछ लोग उपमानको नहीं मानते । प्रत्यक्ष दो प्रकारका है । हमारे प्रत्यक्षमें और योगियोंके प्रत्यक्षमें भेद है । २—५॥

पश्यन्ति योगिनस्सर्वमीश्वरस्यप्रसादतः ।
स्वभावेनेश्वरस्सर्वं पश्यति ज्ञानचक्षुषा ।६।

योगी ईश्वरके प्रसादसे सभी जानते हैं । ईश्वर स्वभावसे ही ज्ञानकी आंखोंसे सब को जानता है ॥६॥

यत्नेनापि न जानन्ति सर्वेशं मांसचक्षुषः ।
ईश्वरं साधयत्येतदनुमानमिति स्फुटम् ॥७।

मांसकी आंखोंसे यत्न करने पर भी ईश्वर नहीं मालूम होता । नीचे दिया हुआ अनुमान ही ईश्वरको सिद्ध करता है ।७॥

भूर्भूधरादिकं सर्वं सर्वविध्देतुकं मतम् ।
कार्यत्वाद्धटवच्चेति जगत्कर्तानुमीयते ॥८॥

पृथ्वी पहाड़ आदि सब किसी सर्वज्ञके बनाये मालूम होते हैं क्योंकि वह घड़ेके समान कार्य्य है । इससे जगत्का कर्त्ता सिद्ध है ॥८॥

कार्यत्वमप्यसिद्धञ्चेत्क्ष्मादेस्सावयवत्वतः ।
घट कुड्यादिवच्चेति कार्यत्वमपि साध्यते ॥९॥

यदि कहो कि पृथ्वी आदिका कार्य होना सिद्ध नहीं तो इसके लिये यह हेतु है कि भूमि आदिमें घड़े, दीवार आदिके समान अवयव हैं । जिसमें अवयव होते हैं वह कार्य्य होता है ।९॥

दृष्टान्तसिद्धदेहादेधर्माधर्म प्रसङ्गतः ।
न विशेष विरोधोऽत्र वाच्यो भट्टादिभिः क्वचित्
॥ १० ॥

ऊपरके दृष्टान्तमें दिये हुये शरीर आदिकी बनावटमें धर्म और अधर्मका प्रसङ्ग आता है । भट्ट आदिको इस विषयमें कोई विशेष विरोध नहीं है ।

उत्कर्षसमजातित्वात् सम्यग्दोषो न तादृशः ।
कार्यत्वमात्रात् कर्तृत्वमात्रमेवानुमीयते ॥११॥

ईश्वरकी कुम्हार आदिके साथ तुलना करने में कोई दोष नहीं है । यहाँ तुलना केवल इतनीही है कि कार्यत्व सिद्ध किया गया है ।११॥

दृष्टान्तस्थ विशेषैस्त्वं विरोधं यदि भाषसे ।
धूमेनाग्न्यनुमानस्याप्यभावोपि प्रसज्यते ॥१२॥

यदि दृष्टान्तमें इन विशेषताओंसे तुम विरोध करोगे तो धुएँसे अग्निका अनुमान भी न कर सकोगे ॥१२॥

अशरीरोऽपि कुरुते शिवः कार्यमिहेच्छया।
देहानपेक्षो देहं स्वं यथा चेष्टयते जनः॥१३॥

ईश्वर (शिव) बिना शरीरके भी स्वयं अपनी इच्छासे ही कार्य्य करता है। जिस प्रकार मनुष्य अपनी देहको चलानेमें दूसरी देहकी आवश्यकता नहीं रखता॥१३॥

इच्छा ज्ञान प्रयत्नाख्या महेश्वरगुणास्त्रयः।
शरीररहितेऽपिस्युः परमाणुस्वरूपवत्॥१४॥

इच्छा, ज्ञान और प्रयत्न यह तीन ईश्वर के गुण शरीर न होने पर भी रहते हैं जैसे परमाणुओं में अपना स्वरूप॥१४

कार्यं क्रियां विना नात्र साक्रियायत्न पूर्विका।
क्रियात्वात् साध्यतेऽस्माभिरस्मदादिक्रिया यथा॥१५॥

कोई कार्य बिना क्रियाके नहीं होता। प्रत्येक क्रियाके लिये यत्न होना चाहिये। क्रिया तो सिद्ध-ही है क्योंकि इसमें वह सब लक्षण हैं, जो हम लोगोंकी क्रियाओं में होते हैं॥१५॥

सर्वज्ञीयक्रियोद्भूतक्ष्मादिकार्योपपत्तिभिः।
ईश्वरासत्त्वमुक्तं यन्निरस्तं पारिशेष्यतः॥१६॥

पृथ्वी आदि कार्य्यों से पाया जाता है कि इनका बनाने वाला सर्वज्ञ ईश्वर है। ईश्वर के न होनेके विषयमें जो हमारे विरोधीने कहा उसका तो पारिशेष्य रीतिसे खण्डन होगया। अर्थात् यदि भूमि आदिका बनाने वाला सर्वज्ञ न होता तो ऐसी अच्छी भूमि न बना सकता॥१६॥

यथा वैशेषिकेणेशः पारिशिष्येण साधितः।
तत्तर्कोऽत्रानुसन्धेयः समानं शास्त्रमावयोः॥१७॥

जिस प्रकारसे पारिशिष्य रीति से वैशेषिक ने ईश्वर-सिद्धि की उसी प्रकार हम करते हैं हम दोनोंका शास्त्र समान है॥१७॥

कालकर्मप्रधानादेरचैतन्याच्छिवोऽपरः।
अल्पज्ञत्वात्तु जीवानां प्रभुःसर्वज्ञ एवसः॥१८॥

काल, कर्म, प्रधान (प्रकृति) यह सब जड़ हैं। ईश्वर इनसे अलग है। जीव अल्पज्ञ हैं। इस लिये ईश्वरही सर्वज्ञ है॥१८॥

सर्वज्ञेश प्रणीतत्वाद् वेदप्रामाण्यमिष्यते।
स्मृत्यादीनां प्रमाणत्वं तन्मूलत्वेन सिध्यति॥१९॥

वेद इसलिये प्रमाण (मानने योग्य) हैं कि ईश्वर के बनाये हैं। स्मृति आदि इसलिये प्रमाण हैं कि वह वेदोंके आधारपर हैं॥१९॥

श्रौतंस्मार्तञ्च यत्कर्म यथावदिह कुर्वताम्।
स्वर्गापवर्गौ स्यातां हि नैव पाषण्डिनां क्वचित्॥२०॥

श्रुति और स्मृतिमें कहे हुये कर्मोंको संसार में करने से ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं। पाखण्डी विरोधियोंको नहीं मिलते॥२०॥

त्रियम्बकादिभिर्मन्त्रैरपि देवो महेश्वरः।
अनुष्ठानोपयुक्तार्थस्मारकैः प्रतिपाद्यते॥२१॥

'त्रियम्बक' आदि वेद मंत्रों में ईश्वर को इसलिये बनाया गया है कि अनुष्ठान आदिका ज्ञान हो सके।

कारीरीष्ट्यर्थवृष्ट्यादि दृष्ट्वा स्वर्गापवर्गयोः।
विश्वासोऽदृष्टयोः कार्य्यः कारणाद्यैः प्रपञ्चितः॥२२॥

कारीरी नामक यज्ञके करने से वृष्टि होती है इस बातको देखकर स्वर्ग और मोक्ष आदि अदृष्ट पदार्थों पर भी विश्वास करलेना चाहिये॥२२॥

अप्रमाणमशेषञ्च शास्त्रं बुद्धादिकल्पितम्।
स्यादनाप्त प्रणीतत्वादुन्मत्तानां यथा वचः॥२३॥

बुद्ध आदिके बनाये शास्त्र अप्रमाण और अमाननीय हैं। जैसे पागलोंके वचन होते हैं क्योंकि किसी आप्त पुरुषके बनाये नहीं हैं॥

बीजप्ररोहरक्षायैः वृतिः कण्टकिनी यथा।
वेदार्थ तत्त्वरक्षार्थं तथा तर्कमयीवृतिः॥२४॥

जैसे वृक्षोंकी रक्षाके लिये कांटोंकी बाड़ लगा देते हैं इसी प्रकार वेदोंके अर्थोंकी रक्षा के लिए तर्क की बाड़ लगी हुई है॥२४॥

प्रमानुग्राहकस्तर्कः सकथात्रय संवृतः।
वादो जल्पो वितण्डेति तिस्त्र एव कथा मताः॥२५॥

तर्कसे सिद्धान्त जाना जाता है। वह तर्क तीन प्रकारका है—वाद, जल्प, और वितण्डा॥२५॥

आचार्येण तुशिष्यस्य वादस्तत्वबुभुत्सया ।
जयः पराजयो नात्र तौ तुजल्पवितण्डयोः ॥२६॥

आचार्य और शिष्यमें जो वाद होता है वह तत्व जाननेके लिये होता है उसमें हार जीत का विचार नहीं होता । हार जीतका विचार जल्प और वितण्डेमें हुआ करता है, ।२६।

वादी च प्रतिवादी च प्राश्निकश्च सभापतिः ।
चत्वार्यङ्गानि जल्पस्य वितण्डायास्तथैव च ।२७।

जल्पके चार अङ्ग हैं वादी, प्रतिवादी, प्रश्न करने वाला और सभापति । यही वितण्डाके भी हैं ॥२७।

सदुत्तरापरिज्ञानात् पराजयभयेसति ।
जयेच्छलेनजात्या वा प्रतिवादी तु वादिनम् ॥२८॥

जब प्रतिवादीको ठीक उत्तर नहीं सूझता तो वह पराजयके डरसे वादीको छलसे या जाति से हराता है ॥२८॥

छलं जातिं ब्रुवाणस्यनिग्रहस्थानमीरयेत् ।
निग्रहस्थानमित्युक्तं कथाविच्छेदकारकम् ॥ ९।

जो छल या जाति करता है उसको निग्रह स्थानमें ले आना चाहिये । निग्रहस्थानमें आजानेसे कथा अर्थात् बहस समाप्त हो जाती है ॥२९॥

तत्रोपचार सामान्यवाक्पूर्वं त्रिविधं छलम् ।
चतुर्वेद विदित्युक्ते कस्मिंश्चिद्वादिना द्विजे ॥३०॥
किमत्र चित्रं ब्राह्मण्ये चतुर्वेदज्ञतोचिता ।
एवं सामान्य दृष्ट्या तु दूषिते प्रतिवादिना ॥३१॥
वदेद्वाक्यैरनेकान्तं निग्रहस्थानमप्यथ ।
नववस्त्रो वटुश्चेति वाद्युक्ते तत्रवाक् छलम् ॥३ ॥
कुतोऽस्य नववासांसीत्याचक्षाणस्य निग्रहः ।
तात्पर्यवैपरीत्येन कल्पितार्थस्य बाधनम् ॥३३॥

छल तीन प्रकारका है उपचार-छल, सामान्यछल और वाक्छल । यदि कोई कहे कि यह ब्राह्मण चार वेद जानता है और प्रतिवादी इसका सामान्य अर्थ लेकर उत्तर दे कि "यह कौन बात कही । ब्राह्मण होना और चार वेद पढ़नातो एक ही बात है" तो वादी को चाहिये कि वह प्रतिवादीको अनेकान्तनिग्रहस्थानमें ले आवे ।

यदि वादी कहे कि यह बालक नव कम्बल (नये कम्बल वाला) है और प्रतिवादी पूछे कि भला इस के पास नव (नौ) कम्बल कहाँ हैं तो यह वाक्छल है क्योंकि तात्पर्यसे उलटे अर्थ लेता है । इसको निग्रह स्थानमें लेना चाहिये ।३०—३३

स्वस्य व्याघातकं वाक्यं दूषणक्षमवेव वा ।
उत्तरं जातिरित्याहुः चतुर्विंशति भेदभाक् ॥३४॥

यदि कोई वाक्य अपनी ही बातका खण्डन करै या दोष युक्त उत्तर हो तो उसको जाति कहते हैं । जाति २४ तरहकी होती है ।३४।

चतुर्विंशतिजातीनां प्रयोक्तुः प्रतिवादिनः ।
वक्तव्यं निग्रहस्थानमसदुत्तरवादिनः ॥ ५॥

जो २४ जातियाँ बोले या ठीक उत्तर न दे तो उसे निग्रह स्थान में ले आना चाहिये ।२५।

यथा साधर्म्य वैधर्म्यात् समोत्कर्षापकर्षतः ।
वर्ण्यावर्ण्य विकल्पाश्च प्राप्त्यप्राप्ती साध्यताः ।३६।
प्रसङ्ग प्रतिदृष्टान्तावनुत्पत्तिश्च संशयः ।
अर्थापत्त्यविशेषौ च हेतुप्रकरणाह्वयौ ।३७।
कार्य्योपलब्ध्यनुपलब्धि नित्यानित्याश्चजातयः ।
साम्यापादक् हेतुत्वात् समताजातयो मता ।३८।

जातियाँ चौबीस हैं:—

(१) साधर्म्य	(१३) प्रतिदृष्टान्त
(२) वैधर्म्य	(१४) अनुत्पत्ति
(३) सम	(१५) संशय
(४) उत्कर्ष	(१६) अर्थापत्ति
(५) अपकर्ष	(१७) अविशेष
(६) वर्ण्य	(१८) हेतु
(७) अवर्ण्य	(१९) प्रकरण
(८) विकल्प	(२०) कार्य्य
(९) प्राप्ति	(२१) उपलब्धि
(१०) अप्राप्ति	(२२) अनुपलब्धि
(११) साध्यता	(२३) नित्य
(१२) प्रसङ्ग	(२४) अनित्य ।

यह सब जातियाँ साम्य उत्पन्न करती हैं। इसलिये इनको जाति कहते हैं ।

सदुत्तरा परिज्ञाने स्यादेकान्त पराजयः ।
एवं जल्पवितण्डाभ्यां वेदवाह्यान्निरस्य तु ॥३९॥
वेदैकविहितं कर्म कुर्यादीश्वरतृप्तये ।
तत्प्रसादात्प्रयोगेन मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥४०॥

जब प्रतिवादीमें ठीक ठीक उत्तर देनेका ज्ञान नहीं तो पराजय होगी। इस प्रकार जल्प और वितण्डासे वेद विमुख लोगोंको हटाकर ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिये वेदमें बताये हुये कर्म करने चाहिये। ईश्वरके प्रसादसे मुमुक्षु मोक्ष पाजायगा ।४०।

नित्यानन्दानुभूतिः स्यान्मोक्षे तु विषयादृते ।
वरं बृन्दावने रम्ये शृंगालत्वं वृणोम्यहम् ॥४१॥
वैशेषिकोक्तमोक्षात्तु सुखलेश विवर्जितात् ।
योवेद विहितैर्यज्ञैरीश्वरस्य प्रसादतः ॥४२॥
मूर्क्षामिच्छति यत्नेन पाषाणवदवस्थितिम् ।
मोक्षोहि हरि भक्त्याप्र योगेनेत पुरोदितः ॥४३॥

मोक्षमें नित्य आनन्दका अनुभव होगा। विषय न होंगे। वैशेषिकोंने जो पत्थरके समान सुख आदि न होनेको मोक्ष माना है उस मोक्षसे तो बृन्दावनके सुरम्य बनमें सृगाल होना ही पसन्द करूँगा। भला ईश्वरकी कृपासे वेदमें कहे हुये योग आदिको पत्थरके समान बननेके लिये कौन करेगा। यह ठीक है कि मोक्ष ईश्वरको भक्तिके अनुसार योग करनेसे होता है।४१—४३

अष्टावङ्गानि योगस्य यमोऽथ नियमस्तथा ।
आसन पवनायामः प्रत्याहारोऽथ धारणम् ॥४४॥
ध्यानं समाधिरित्येवं तत्साङ्ख्ये विस्तरिष्यति ॥४४॥

योगके आठ अङ्ग हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इसका विस्तार सांख्य में होगा।

इति श्री शङ्कराचार्य बिरचिते सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रहे नैयायिक पक्षोनाम षष्ठप्रकरणम् ॥

श्री शङ्कराचार्य्य रचित सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रह का नैयायिक पक्ष नामी छठा प्रकरण समाप्त हुआ।

सातवां अध्याय

अथ प्रभाकर पक्षः

प्रभाकर गुरोः पक्षः संक्षेपादथ कथ्यते ।
तुष्टाव पूर्वमीमांसामाचार्य्यस्पर्धयापि यः ॥१॥

अब संक्षेपसे प्रभाकर गुरुका पक्ष कहा जाता है जिसने अपने गुरुके मुकाबिला होनेपर भी पूर्व मीमांसाकी प्रशंसाकी ।१।

द्रव्यं गुणास्तथाकर्म सामान्यं परतन्त्रता ।
पञ्चार्थाशक्तिसादृश्यसङ्ख्याभिस्त्वष्टधा मताः ॥२॥
न विशेषो न चाभावो भूतलाद्यतिरेकतः ।
वेदैकविहितं कर्म मोक्षदं नापरं गुरोः ॥३॥

प्रभाकर आचार्यके मतमें पांच पदार्थ हैं द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और परतन्त्रता। यह शक्ति, सादृश्य और संख्याके विचारसे आठ भिन्न २ प्रकारके हैं। विशेष और अभाव, सृष्टि-से अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं हैं। केवल वेदमें कहे हुये कर्मोंसे ही मुक्ति होसकती है अन्यथा नहीं। २—३।

बध्यते सहि लोकस्तु यः काम्यप्रतिषिद्धकृत् ।
विध्यर्थवाद मन्त्रैश्च नामधेयैश्चतुर्विधः ॥४॥
वेदो विधि प्रधानोऽयं धर्माधर्मावबोधकः ।
आत्माज्ञातव्य इत्यादि विधयस्त्वारुणे स्थिताः ॥५॥
यथावदात्मनां तत्र बोधं विदधते स्फुटम् ।
बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो भिन्न आत्मा विभुर्ध्रुवः ॥६॥

जो फलकी कामनासे कर्म करते हैं वा जो निषिद्ध कर्म करते हैं वह बन्धनमें फँसे रहते हैं। वेदके चार भाग हैं—विधि, (आज्ञाय) अर्थवाद मंत्र और नामधेय। इन सबमें विधि प्रधान है, जिससे धर्म और अधर्मका बोध होता है। आरुण (उपनिषत्) में लिखा है कि "आत्मा जाननेके योग्य हैं, यह विधि है। वहीं ठीक ठीक आत्माका बोध भी कराया गया है। आत्मा बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर तीनोंसे भिन्न है वह विभु अर्थात् व्यापक है, ध्रुव अर्थात परिवर्त्तनरहित है। ४—६

नानाभूतः प्रतिक्षेत्रमर्थज्ञानेषु भासते ।
घटं जानाम्यहं स्पष्टमित्यत्र युगपत्त्रयम् ॥७॥

वही आत्मा अर्थों के ज्ञानमें (अर्थात जब वह बाह्य पदार्थों को जानता है) हर एक क्षेत्र में अलग अलग मालूम होता है । मैं "घड़ेको जानता हूं" इसमें तीन ज्ञान उपस्थित हैं ।

घटो विषयरूपेण कर्ताहं प्रत्यायगतः ।
स्वयं प्रकाशरूपेण ज्ञानं भाति जनस्य हि ॥८॥

(१) घट तो विषय है । (२) ज्ञाता मैं हूं (३) ज्ञान जो स्वयं प्रकाशमान है ।

करणो परमान्मुक्तिमाह वैशेषिको यथा ।
दुस्तरापार संसार सागरोत्तरणोत्सुकः ॥९॥
प्रयत्न सुखदुःखेच्छा धर्माधर्मादिनाशतः ।
पाषाणवद्वस्थानमात्मनो मुक्तिमिच्छति ॥१०॥

वैशेषिकका मत है, कि करण (साधन)के नाश होनेसे मुक्ति होती है । वह दुस्तह अपार संसार सागरको पार करनेके लिये प्रयत्न, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्मका नाश करके पत्थरके समान बनकर मुक्ति पाना चाहता है । ९—१०

दुःख साध्य सुखोच्छेदो दुःखोच्छेदवदिष्यते ।
नित्यानन्दानुभूतिश्च निर्गुणस्य न चेष्यते ॥११॥

जिस प्रकार दुःखका नाश होना चाहिये, उसी प्रकार दुःखसे पैदा किये हुये सुखका भी नाश होना चाहिये । निर्गुण जीवको नित्यानन्दका अनुभव नहीं होसकता ।११।

न बुद्धि भेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्
अन्यस्सन्न्यासिनां मार्गो ज वटीतिन कर्मिणाम् ।१२

जो अज्ञानी और कर्मोंमें लिप्त हैं उनको बुद्धि में भेद न करना चाहिये । सन्यासियोंका मार्ग और है और कर्ममें लिप्त मनुष्योंका और ।१२।

सूर्य

[ले० श्री पं० इन्द्र विद्यालङ्कार]

र्य को हम प्रतिदिन उदय और अस्त होते हुए देखा करते हैं । सामान्य तथा देखनेसे हमें यही पता लगता है कि सूर्य एक आगका गोला (मण्डल) है जो हमारी पृथिवीके चारों ओर घूमा करता है । बस एक साधारण-व्यक्तिकी बुद्धि यहीं तक पहुँचती है पर ज़रा एक वैज्ञानिकसे तो पूछिए । देखिए, वह आपको क्या क्या बताता है । वैज्ञानिक और साधारण पुरुषकी दृष्टिमें बहुत अन्तर है । प्रकृतिके छोटे-से छोटे कणमें और उसकी छोटीसे छोटी प्रत्येक क्रियामें न जाने कितने रहस्य छुपे हुए होते हैं । ज्यों ज्यों हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों त्यों हमें यह भी ज्ञात होता जाता है कि हमारा ज्ञान कितना परिमित है । प्रकृतिकी लीला अपरम्पार है उसकी लीलाके जाननेके लिये हमें अपने साधन अति तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं । साधारण पुरुषकी अपेक्षा वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें अपूर्वता होती है । आइये ज़रा एक क्षणके लिये हमभी वैज्ञानिकोंकी दिव्यदृष्टिसे एक जलके कणको ही देखें ।
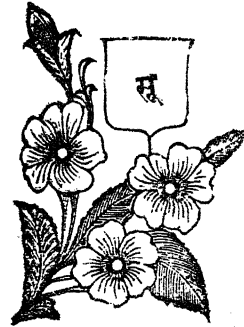
सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र (Microscope) की कांचकी पट्टी पर एक बूँद जल रखिये । देखिये, क्या अब वह उतना ही बड़ा प्रतीत होता है जितना कि बिना यन्त्रकी सहायताके देखनेसे इस जलमें न जाने कितने छोटे छोटे कण दीखते हैं । इस में नाना प्रकारकी गतियां दृष्टिगोचर होती हैं । ऐसा मालूम होता है कि इसमें अनेक छोटे-छोटे प्राणी उछल-कूद मचा रहे हैं । तो हमें पता लगा कि यह बूंद बहुत छोटे छोटे कणोंसे बनी हुई जो कि गतिशील हैं । पर क्या इतनेसे ही हमें इस कणके विषयमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया । नहीं ? अभी तो हमें उसके स्वरूपका कुछ अनुमान भी नहीं हुआ । वैज्ञानिकोंका कथन है कि

जलके ये छोटे छोटे कण अनगिनत परमाणुओं (Atoms) से बने हैं। ये परमाणु स्वयं छोटे छोटे सौर-जगत् (Solar System) हैं। परमाणु बहुत छोटे छोटे कणोंसे बने हुए हैं। एक एक परमाणुमें लाखों करोड़ों कण होते हैं। इन कणोंको अलक्तराणु (Electrone) कहते हैं। ये अलक्तराणु इतने छोटे होते हैं कि उनका आंखोंसे तो क्या, किसी सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र से भी देखना आसान काम नहीं। यदि एक परमाणुको पृथिवीके बराबर बड़ा कर दिया जाये तो एक अलक्तराणुका परिमाण धूलिके एक कणके बराबर होगा। इसीसे आप उसके परिमाणका अनुमान कर सकते हैं। ये अलक्तराणु, परमाणुमें उसके केन्द्रमें स्थित एक सूक्ष्म कणके चारो ओर, जिसे Proton कहते हैं, अमित वेग से उसी तरह घूम रहे हैं जिस प्रकार कि सूर्यके चारों ओर हमारी पृथिवी। परन्तु इनके घूमनेकी चाल इन ग्रहों और उपग्रहोंकी चालसे कहीं अधिक है। इस सौर-जगतमें उत्पत्ति, स्थिति और लय क्षणसे भी कम समयमें हुआ करते हैं। इनमें अलक्तराणु अकल्पित वेगसे घूमते हुए अपने अपने परमाणुओंके सौर-मण्डलसे मिलते और अलग होते रहते हैं। यह है एक छोटेसे जल-विन्दुके अन्दर रहस्य। कहां तो वह एक छोटासा जलविन्दु और कहां उसके अन्दर सौर-जगत्‌के सदृश एक जगत्। इसी लिये वैज्ञानिकोंकी दृष्टिको यदि दिव्यदृष्टि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। आइये रहस्यको उद्घाटन करने वाली इसी दिव्यदृष्टिसे सूर्यके प्रकाशके रहस्यको जानने का यत्न करें।

वैज्ञानिक गवेषणाओंसे हमें सूयके सम्बन्धमें अनेक बातें पता लग चुकी हैं। जैसे कि हम जानते हैं कि सूर्यकी गर्मीसे जल, वाष्प रूप होकर उड़ता है और वायुके ठण्डा होने पर वर्षाके रूपमें बरस जाता है। इस प्रकार सूर्यकी किरणें समुद्रका जल खींच (हर) कर वर्षाके रूपमें हमारे पास तक पहुँचा देती है[1]। हम जानते हैं कि जब हम श्वासके द्वारा ओषजन (प्राणवायु) अपने फेफड़ोंमें ले जाते हैं तब वह फेफड़ोंमें जाकर हमारे खूनमें उपस्थित मल-स्वरूप मुर्दा कर्बनके साथ मिलकर कर्बनेकाम्ल गैस (प्राणान्तक वायु) में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार नित्य हम वायुको अपवित्र किया करते हैं। यदि सूर्य और वनस्पति न होते तो थोड़े दिनोंमें ही वायु मण्डलकी ओषजन समाप्त हो जाने पर जीवलोकका अन्त हो जाता। हम जानते हैं कि वनस्पतियोंके पत्रोंके हरे रंग (Chlorophyl) में एक प्रकारकी शक्ति है जिससे वह कर्बनिकाम्ल गैसको प्रकाशकी उपस्थित में फाड़कर कर्बनको अपने अन्दर रख लेते हैं और ओषजनको हमरे श्वासके लिये स्वतन्त्रकर देते हैं। इस प्रकार सूर्यकी किरणें वनस्पतियोंके द्वारा जीवोंके श्वाससे अपवित्र हुई वायुको पवित्र किया करती[2] हैं। यदि सूर्यका प्रकाश न होता तो वनस्पतियां वायुको पवित्र न कर सकतीं, क्योंकि प्रकाशके अभावमें (रात्रिमें) वनस्पतियां यह क्रिया नहीं कर सकती हैं। इस प्रकार हमें किरणोंके सम्बन्धमें कुछ कुछ ज्ञान तो प्राप्त है फिर भी आइये देखें कि सूर्यका प्रकाश हमें और क्या क्या नई आश्चर्यजनक बातें सुनाता है ?

सूर्य हमसे ९२० लाख मीलकी दूरीपर स्थित है। प्रकाशकी गति १८६००० मील प्रति सेकण्ड है। सूर्यका प्रकाश हमारे लिए एक प्रकारसे दूत या सम्वाददाता का काम करता है जो कि वहांसे आकर हम भूलोकवासियों तक सूर्यका सन्देश पहुँचाता है। सूर्यका सम्वाद-दाता उसमें ८ मि० ८ सै० पूर्व घटित घटनाओंका सम्वाद हमतक प्रतिक्षण पहुँचाया करता है। इसका सम्वाद या इसकी बातें बड़ी मनोरञ्जक हैं। पाठकोंके विनोदार्थ आज हम उनमेंसे कुछ उनके सम्मुख रख रहे हैं।

जरा एक तिकोना कांच (प्रशुक) अपने हाथमें लीजिये। सारा समाचार कहनेके लिये एक ही किरण पर्याप्त है। उसका सम्वाद सुननेके लिये एक बन्द

१ इसी लिये संस्कृतमें सूर्यकी किरणों को "हरितः" अर्थात हरण करनेवाली कहा गया है।

२ संस्कृतमें इसलिए सूर्यकी किरणोंको 'शुन्ध्युवः" अर्थात् शुद्धकरनेवाली कहते है।

अन्धेरे कमरेमें बैठ जाइये। उस कमरेमें किरणके आनेके लिये एक छोटासा छेद (उसके किसी दरवाजे या खिड़कीमें) छोड़कर सब कमरा बन्द रखिये। आप देखेंगे कि उस छेदमेंसे गुजरी किरणें दीवार या फर्शपर सूर्यका गोल प्रतिबिम्ब बनाती हैं। आपको इन किरणों का मार्ग उड़ते हुए धूलि-कणोंसे स्पष्ट दीख पड़ेगा। उस मार्गमें अपने हाथका तिकोनाश्वेत कांचका टुकड़ा रख दीजिये। आपको देखकर आश्चर्य होगा कि अब दीवार या फर्शपर बड़े सुन्दर रंगोंका एक चित्र बन गया है, जिसके रंग इन्द्र धनुषके समान हैं। इन्द्र-धनुषके सब रंग इस प्रकाशमें दीखते हैं। ये सब रङ्ग प्रकाशकी किरणसे ही बने हैं। तो क्या वास्तवमें यह श्वेत प्रकाश इन लाल, नारंगी, पीले, हरे, आसमानी, नीले और बैंजनी रंगके मिलनेसे ही बना है? वास्तव-में बात ऐसीही है। यदि हम एक और पर्शुक उलटा करके पहिले पर्शुकके साथ रख दें तो ये सातों रंग गायब हो जाते हैं और फिर श्वेत प्रकाश ही धरती पर पड़ता हुआ दीख पड़ता है।

एक टीनके गोल[1] टुकड़े पर उसके केन्द्रसे परिधि तक ऊपर लिखे क्रमसे सातो रंगोंके कागजके टुकड़े चिपका दीजिये। अब इसे बहुत तेजीसे घुमाइये देखिये ये सातों रंगके टुकड़े सफेद प्रतीत होंगे।

सूर्यके प्रकाशका सातरंगकी किरणोंमें फटना और फिर सातरंगकी किरणोंका मिलकर श्वेत होजाना यह सिद्ध करता है कि सूर्यका प्रकाश सातरंगोंसे मिल-कर बना है। आकाशमें जो इन्द्रधनुष दिखलाई देता है उसका कारण यही है।

1, Newtun's Disc. न्यूटनने इस सिद्धान्तको १६६६ ई० में पता लगाया था। परन्तु उससे पूर्व भी इसका ज्ञान आर्यों को अवश्य था। क्योंकि वैदिक साहित्यमें किरणों का सात प्रकार का होना स्पष्ट रूपसे दिखाया गया है इसी-लिये सूर्यको, सप्त, सप्ताश्व और सप्तर्षि भी कहा जाता है। सूर्य के ७ घोड़े यही हैं। प्रातः काल की लालिमा (अरुण) उसका सारथी है। वह अपन कीली पर ही घूमता है अतः वह एक चक्र है। इस एकचक्र रथ पर चढ़े हुए सूर्यकी ये ७ प्रकार की किरणें उसके अश्व हैं।

जरा और ध्यानसे देखिये। श्वेत प्रकाशके फटनेसे बने भिन्न २ वर्णोंकी रश्मियोंके इस सप्तकमें (Spect-rum) में काली रेखाएँ दीखती हैं। इनमेंसे कुछ हलकी और कुछ गाढ़ी हैं। १८१४-१५ ई० में (Fraun-hofer ने इन काली रेखाओंके स्थान निश्चित किये थे। इसलिये वैज्ञानिक इन्हें Fraunhofer's lines फ्रानहौफरकी रेखाएँ कहते हैं।

सूर्यकी किरणोंमें इन काली लकीरोंका भी अभि-प्राय है। ये लकीरें एक एक शब्दके समान हैं जोकि रसायनिक तत्वोंको सूचित करते हैं। बुन्सन प्रदीपकी नीरंग ज्वाप्रत्येक पदार्थ अपना अलग अलग रंग देता है। यदि उस ज्वालामें किसी धातुको जलानेसे उत्पन्न हुये प्रकाशको पर्शुक (Prism) में से गुजारें तो बने सप्तकमें भिन्न २ तत्वोंके स्थान भिन्न भिन्न आते हैं। कइयोंकी रेखायें आती हैं और कइयोंकी रेखा समूह (Band) उनका स्थान निश्चित होता है। स्थानके अनुसार लकीरोंकी स्थितिको देखकर तत्वोंकी उप-स्थिति जानी जा सकती है। समास चाहे कितना ही पेचदार (Complex) क्यों न हो, प्रकाशकी सप्त रंगीमें इन रेखाओंको देख कर एक वैज्ञानिक झट उन तत्वोंका नाम बता देगा जोकि उस समासमें होंगे। ये काली रेखायें एक प्रकारसे प्राकृतिक तत्वों की सूचि हैं और ये ही सूर्यकी बनावट के जानने में सहायक होती है।

इन कृष्ण-वर्णकी रेखाओंमें वे रेखायें भी हैं जो कि चमकते हुए लोहेके 'सप्तक'में होती हैं। जब ज्यो-तिषियों ने पहले पहल इन रेखाओंको देखा तो वे बड़े चकित हुए कि सूर्यमें इतना वाष्पीभूतलोहा कहाँ होगा जोकि सूर्यकी पृथिवी पर पड़ने वाली प्रत्येक किरण पर अपना प्रभाव दिखाता है। (Bunsen) और (Kirchoff के मतानुसार किसी आलोकमय पिण्डकी निकली हुई किरणें जब किसी पदार्थके वाष्पोंमें से गुजरती हैं तबही उसके सप्तकमें ऐसी लकीरें बना करती हैं। इस लिये सूर्यकी किरणोंके सप्तकमें लोहेके स्थानको सूचित करनेवाली लकीरोंकी उपस्थितिके लिये सूर्यकी किरणोंका लोहेके वाष्पोंमेंसे गुजरना

आवश्यक है। इसे पृथिवी पर तो लोहेके वाष्प निश्चय ही नहीं हैं क्योंकि लोहेके वाष्प बनानेके लिये ५०००° शतांश ताप-परिमाण होना चाहिये। इतना ऊंचा ताप-परिमाण पृथ्वीपर सिवाय ज्वालामुखियोंके कहीं मिलताही नहीं। अतः पृथ्वीपर लोहेके वाष्पोंकी उपस्थितिकी कल्पना नहीं की जासकती है। इसलिये यही सम्भव है कि ये लोहेके वाष्प सूर्यके मण्डलमें ही हों। सूर्य आगका गोला है। ५०००° शतांश ताप-परिमाणतो उसके लिये साधारण सी बात है। सूर्यके पास उद्रजनके वायुमण्डलमें मेघोंकी तरह अनेक बादल उड़ते हुए दीखते हैं। इनके चित्र लिये गये हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ये बादल सम्भवतः अयो-बाष्प (लोहेके वाष्पों) के ही हों।

इस प्रकार 'सप्तक' में रेखाओंको देखकर पदार्थों के तत्वोंके विश्लेषण करनेकी विधिक नाम रश्मि-वर्ण (सप्तक) विश्लेषण (Spectrum Analysis) है। इस विधिकी सहायतासे भूमण्डलसे हजारों मीलकी दूरी स्थित नक्षत्रोंपर ग्रहोपग्रहोंमें तत्वों की उपस्थिति तथा उनकी उष्णिमाका मान ज्ञातहो सकता है। इस विधिमें उपयुक्त उपकरणको (Spectroscope) रश्मि-वर्ण प्रदर्शक यन्त्र कहते हैं। इसके द्वारा समासोंमें बहुत-कम राशिमें उपस्थित तत्वोंको भी (जिनकी कि उपस्थिति अच्छेसे अच्छे रासायनिकद्रव्य (Reagent)से भी नहीं पता लग सकती) ज्ञान सुगमता से हो सकता है इसकी सहायतासे सत्रानसे '०००६ मिलिग्राम,लीथियमके '००००१ मि. ग्रा. और सोडियमके '००००३ मि. ग्रा.की भी उपस्थित जानीजा सकती है। इस विधिकी सहायतासे अनेक तत्वों को अनुसन्धान करनेमें बहुत सहायता मिली है।

रश्मि-वर्ण-विश्लेषणकी सहायतासे यह पता लगाया जा सका है कि सूर्यमें लगभग ३४ तत्व उपस्थित हैं सूर्यके प्रकाशसे 'सप्तक' में समुद्रजन (Hologen) तत्व, नत्रजन, ओषजन, सोना पारा और कुछ अन्य तत्वोंका कुछ भी चिन्ह नहीं मिलता। कुछ समय पूर्व सूर्यग्रहणके समय इस यन्त्र की सहायतासे एक नये तत्वका पता लगा जिसकेसम्बन्धमें वैज्ञानिकोंको कुछ पता न था। इसका भी नाम उस समय (Helium) रखा गया। इस यन्त्रके द्वारा इसका अनुमान होने पर वैज्ञानिक इसकी गवेषणामें लगे रहे। अन्तमें लगभग ३० वर्ष बाद ३०० पौ. खर्चकर १ औंस हीलियम इकट्ठा करनेमें एक वैज्ञानिकको सफलता प्राप्त हुई। सूर्यमें उद्रजन और हीलियम गैसकी मात्रा बहुत अधिक राशिमें उपस्थित है। पृथिवीपर उद्रजन तो स्वतंत्र अवस्थामें मिलती ही नहीं हां, है। हीलियम प्राकृतिक वायु (साधारण वायु) में अवश्य उपस्थित है परन्तु यह है बहुत थोड़ी। यह गैस उद्रजनको छोड़ और सब तत्वोंसे हलकी तथा निष्क्रिय है। इसलिये अब यह उद्रजनका स्थान लेती जा रही है। बैलून आदिमें जहांकी हलकी गैसके प्रयोगकी आवश्यकता होती है उद्रजनके स्थानपर इसे प्रयुक्त किया जासकता है क्योंकि जहाँ यह हलकी होती है वहां उसके साथ २ उद्रजनकी तरह इसमें विस्फोटन (Explosion) होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। इस यन्त्रके द्वारा अबसूर्यमें एक ऐसी वस्तुकी उपस्थिति जानी गई है जिससे अभी तक हम अपरिचित हैं। ज्योतिषियोंने इसका नाम (Coronium) रखा है। अभी यह कहा जा सकता कि यह वस्तु क्या है? इसका पता लग जानेपर शायद यह भी हीलियमकी तरह उपयोगी सिद्ध हो सके।

सूर्यके जीवनके अन्य भागोंमें भी गुप्त रहस्य भरा हुआ है। हम देखते हैं कि सूर्य सदा जलता रहता है। उससे अनन्त ताप प्रतिदिन चारों दिशाओंमें फैलता रहता है। तो क्या किसी दिन सूर्य जल कर भस्म हो जायेगा? यह न जाने कितने समयसे जल रहा है और न जाने कब तक इसी तरह जलता रहेगा? अथवा क्या किसी दिन तापके अत्यन्त कम हो जानेपर यह भी हमारी पृथिवी अथवा चांदकी तरह ठण्डा हो जायेगा? न जाने कितने समयसे सूर्य अनन्त ताप छोड़ रहा है परन्तु फिरभी अभी तक उसकी कुछभी हानि हुई प्रतीत नहीं होती। इसका ताप परिणाम अबभी १००००° शतांश बना-ही हुआ है। कोई नया ईंधन इसमें डाला नहीं जात

फिर भी यह जल रहा है ? इसके प्रकाश और ताप में बड़ी तेजी है। इस कमीको कौन पूरा करता है ? इस गुप्त रहस्यका क्या अभिप्राय है ? क्या किसी ऐसे स्रोतकी कल्पना भी की जा सकती है जो कि हमेशा जलता रहे कभीभी न बुझे।

जबतक रेडियमका आविष्कार नहीं हुआ था तबतक इस प्रकारके प्रश्नोंका उत्तर देना बहुत कठिन ही नहीं असम्भवही सा था। तब तो यही समझा जाता था कि वास्तवमें किसी न किसी दिन पृथ्वी भी चन्द्रमा की तरह ठण्डीहो जायेगी और सूर्य भी धीरे २ ठण्डा होकर प्रकाश और तापके द्वारा लोकोंका उपकार करने में असमर्थ हो जायेगा और उसका यह चमकीला स्वरूपभी जाता रहेगा। परन्तु रेडियमके आविष्कारने जहां हमें उपरोक्त प्रश्नोंको कुछ सन्तोषजनक रीतिसे हल करनेका अवसर दिया है, उसके साथही साथ हमारी विचार धाराके प्रवाहको भी बहुत कुछ बदल दिया है। अब वैज्ञानिकोंका यह ख्याल होता जा रहा है कि वास्तवमें पृथ्वी ठंडी नहीं हो रही है। अपितु प्रति दिन इसके गर्भमें गर्मीकी मात्रा बढ़तीही जा रही है जिसके कारण पृथ्वीकी पृष्ठ दिन दिन अन्दरकी ओरसे गलकर पतली होती जा रही है सम्भवतः कोई दिन आयेगा कि जब पृथिवी इतनी गर्म हो जायेगी कि शायद उसपर हमारा रहना ही कठिन हो जावे। उस दिन हमारा क्या होगा। यह तो परमात्मा ही जाने। आप पूछेंगे कि यह गर्मी कहांसे उत्पन्न होती जा रही है। इस प्रश्नका उत्तर वैज्ञानिक इस प्रकार देते हैं कि पृथिवी पर यूरेनियम धातु सर्वत्र पर्याप्त मात्रामें उपस्थित है इस धातुके (Emanation) विकिरणके द्वारा अनेक परिवर्त्तनोंके बाद रेडियम धातु उत्पन्न होती रहती है। रेडियमकी विकिरण करनेकी शक्ति बड़ी ही तीव्र है। विकिरणके समय धातुसे बड़ी तेज प्रकाशकी किरणें (Emanation) निकलती हैं। जब इससे निकली किरणें अपने चारों ओर स्थित वस्तुसे रुक जाती हैं तब उनकी विपुल शक्ति तापके रूपमें परिवर्त्तित हो जाती है। इस प्रकार विकिरणकी क्रियासे क्रमशः परिवर्तन होते होते यह रेडियम, सीसे (Lead) के रूपमें परिवर्तित हो जाती है। इस तरह तत्त्व-परिवर्तन (Transmutation) से उत्पन्न ताप राशिसे दिन दिन पृथिवीका ताप बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि जितना ताप पृथिवी छोड़ती है उससे १३७ गुना ताप रेडियमके द्वारा उत्पन्न हो जाता है। यूरेनियनका भण्डार अनन्त होनेके कारण रेडियमकी मात्रामें कभी कमी नहीं होने पाती है। रेडियम, यूरेनियमका कुल ३५ लांखवां भाग है। यूरेनियमसे रेडियममें परिवर्तन होनेकी चालभी बहुत कम है। इसलिए उस समयका अनुमान करनाभी कठिन है कि जब सारी यूरेनियमके समाप्त हो जानेसे तापका बढ़ना बन्द हो जायेगा।

इसके आविष्कारसे तत्त्वोंका परस्पर-परिवर्तन फिर सम्भव प्रतीत होने लगा है। इस परिवर्तनके साथ २ ताप इतना अधिक उत्पन्न हो जाता है जितना अन्य किसीभी रासायनिक परिवर्तनसे सम्भव नहीं। ऐसा समझा जाता है कि सूर्य मण्डलमें उद्रजनके हीलियममें परिवर्तन होनेके कारण ही सूर्यकी गर्मी कम नहीं होने पाती। सूर्यमें उद्रजन और हीलियम दोनोंही होते हैं। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि उद्रजनकी अल्पमात्रा लगातार हीलियममें परिवर्तित होती जारही है और वह ताप इसीसे उत्पन्न होता है जो सूर्यकी गर्मीको स्थिर रखता है।

अभीतक हीलियमही एक ऐसा तत्त्व है जो स्थिर और फटता नहीं है। कई वैज्ञानिकोंका कथन है कि उद्रजन और हीलियमसेही सब अन्य तत्त्व बने हुऐ हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, कई वैज्ञानिकोंका ख्याल है कि उद्रजन, हीलियममें परिवर्तित होती रहती है। उद्रजनका भार १.००७ है परन्तु हीलियमका भार है ठीक ४। उद्रजनके ४ परमाणुओंसे हीलियमका एक परमाणु बनाती है। इसको दूसरी तरह इस प्रकार कह सकते हैं कि धन विद्युतकी चार इकाइयोंसे हीलियमका एक परमाणु बनता है। क्योंकि वैज्ञानिकोंकी सम्मतिमें उद्रजनही धन विद्युत् होती है। इस तरह हीलियमका भार १.००७ × ४ = ४.०२८ होना चाहिये। पर

उसका भार है १८·४। कई वैज्ञानिकोंकी सम्मति है कि उसके अन्दर बन्द उद्रजनका यह अधिक भार, (·००७) शक्ति (Energy) के ही कारण है। हीलियम में उद्रजनके परिवर्तन होने से पूर्व यह शक्ति उससे छूट जानी चाहिये। यह छुटी हुई शक्तिही मनुष्यके पास शक्तिका सबसे बड़ा स्रोत है।

इस प्रकार सूर्यकी गर्मीके कम न होनेकी यथा-सम्भव व्याख्याकी जा सकती है।

रश्मि-वर्ण-प्रदर्शक यन्त्रकी सहायतासे सूर्यके स्वरूपके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी बातें जानी गई हैं। इन सब ज्ञानोंके लिये हमें इस यन्त्रका कृतज्ञ होना चाहिये जिसकी सहायतासे इतनी दूर बैठे बैठे ही हम सूर्यके गुप्त रहस्योंका उद्घाटन कर सके। इसकी सहायतासे अन्य ग्रहोंपग्रहों और नक्षत्रोंके स्वरूपकाभी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कियाजा सकता है।

सूर्यकी बनावटके सम्बन्धमें इसी प्रकार यन्त्रोंकी सहायतासे अनेक बातें निश्चितकी गई हैं। वैज्ञानिकों-का कथन है कि सूर्य अन्दर तक गैसके रूपमें है। इसका बाह्य भाग Photo Sphere (शुभ्र दीप्त मण्डल) कहाता है। यही भाग है जो नीली श्वेत चमकसे चमकता हुआ प्रतीत होता है। इसकी चमक बड़ी तीव्र होती है। यह इतनी तीव्र होती है कि यदि साधारणतया बिना किसी वस्तुको सामने रखे इसकी ओर देखें तो आंखें न केवलचौंधिया जायें बल्कि फूट जायें।

इस भागके ऊपर Chromosqhere (आरक-मण्डल)है। (Chromo) का अर्थ है रंग। इस भागमें लगभग सब रंग उपस्थित होते हैं। सूर्यका चमकीला प्रकाश इसमेंसे होकर गुजरता है। इसी भाग के कारण सूर्यके प्रकाशके 'सप्तक' में (Fraunhofer) की काली रेखायें होती हैं। यदि सूर्यके किनारेका दृश्य किसी सूक्ष्म-यन्त्रकी सहायतासे देखा जाये तो बड़ा अनोखा प्रतीत होता है।

उस समय सूर्य चमकती हुई थालीके सम न नहीं दीखता वरन जीवित जागृत उबलती हुई अग्निका समुद्रही प्रतीत होता है जिससे चारों दिशाओंमें अग्निकी लपटें आकाशमण्डलमें लपलपाती हुई प्रतीत होती हैं।

रश्मि वर्ण-प्रदर्शक यन्त्रकी सहायतासे प्रकाशकी गतिमें होनेवाले परिवर्तनभी जानेजा सकते हैं। सूर्य अपनी कीलीपर घूम रहा है। उसके इस प्रकार घूमनेसे उसका एक भाग हमारे सामनेसे हट रहा होता है और दूसरा भाग हमारे सामने आ रहा होता है। इन दोनों पार्श्वोंसे जो किरणें आकर इकट्ठी प्रतिक्षिप्त होती हैं वे हर बात में मिलती नहीं है। यदि प्रकाशकी गतिका अपने स्रोतसे कुछ सम्बन्ध न होता तोइनमेंकोईभेद न होना चाहिये था।

सूर्यका जो हिस्सा हमारे सामनेसे हट रहा है उस ओरकी किरणोंकी गति कुछ धीमी हो जाती है और जो सामने आ रहा है उस ओरकी किरणोंकी बढ़ जाती है। कम गतिवाली किरणका स्थान कुछ कुछ लाल रंगकी ओर और अधिक गतिवालीका स्थान बैंजनी रंगकी ओर हटा हुआ होता है। इसी स्थान परिवर्तनके आधारपर ही गणना करके सूर्यका अपनी कीलीपर घूमनेका समय निश्चित किया गया है जो कि २५ दिन ७ घण्टा ४८ मिनट है।

हम देखते हैं कि साधारण पुरुषकी दृष्टिमें जो श्वेत किरण केवल एक प्रकाश अथवा ताप देनेका साधन मात्र है उसके अन्दर कितने रहस्य छुपे हुए हैं। इनमेंसे कुछ रहस्योंका उद्घाटन वैज्ञानिककर सके हैं। परन्तु क्या हमें सूर्य अथवा उसके प्रकाशके सम्बन्ध मेंपूरा ज्ञान हो गया? यह कहना कठिनही नहीं बल्कि सबका निराधार है। न जाने कितने और रहस्य इसमें छुपे हुए हैं। निरन्तर अध्यवसाय पूर्वक यदि वैज्ञानिक गवेषणा करते रहेंगे तो उन्हें अधिकाधिक रहस्योंको देखने और उनसे मनोरञ्जन करनेका अवसर प्राप्त हो सकेगा। सच्चे वैज्ञानिक सदा प्रकृति केरहस्य उद्घाटन करनेका प्रयत्न करते ही रहते हैं क्योंकि यह तो उनका स्वभावही हो जाता है।

केदार-बद्री यात्रा

[ले० श्र शिवदास मुकर्जी बी०ए०]

अप्रेल और मई सन् १६२३ में हमने केदारनाथ और बद्रीनाथ की यात्राकी थी। रास्तेमें जैसे जैसे हमें अनेक बातोंका अनुभव होता गया हम यत्न पूर्वक उनबातों को नोट करते गये। उन्हीं सब बातोंको अब हम संग्रह करके यहाँ पर देते हैं। जिससे भावी यात्रियोंको यात्रा सुखमय हो। कहाँ पर किस प्रकार का और कैसे प्रबन्ध करना पड़ता है, ठहरनेके कौन कौन स्थान हैं उन स्थानोंमें तथा रास्तेमें क्या क्या देखने योग्य चीज़ हैं और तीर्थ स्थान हैं उनका सविस्तार वर्णन हमने इसी उद्देश्यसे किया है। साथही प्रतिदिन कितनी दूर चल सकते हैं और कितने दिनमें यात्रा समाप्त हो सकती है। इसका पूरा पूरा दिग्दर्शन करानेके लिये हमने तिथियोंका उल्लेख भी क्रम पूर्वक कर दिया है। महाभारत आदि पुराणोंकी कथाओं से सम्बन्ध रखने वाले स्थानोंके चित्र तथा वर्णनभी देदिये हैं। यदि यात्रियोंको इससे सहायता मिली तो हम अपना उद्देश्य सफल समझेंगे।

ता० २० अप्रैल सन् १६२३को हरिद्वारमें गंगास्नान करके टाँगेसे, जिसकाकिराया दो रुपया होता है, (मोटरसे आठआना सवारी या पैदल चलकर हृषीकेश जो करीब ८ मीलपर है) दो या तीन घंटेमें पहुँचते हैं। मार्गमें सत्यनारायणका दर्शनीय मन्दिर है।

हृषीकेशमें काली कमलीवालेकी धर्मशाला और औषधालय है। यहाँ साधू वा गरीब यात्रियोंको दवा और सदाव्रतकी चिट्ठी मिलती है। यहींसे डंडी, कण्डी वा झापानका प्रबन्ध करना पड़ता है। डंडी वाले फी मन माल पहुँचानेके लिये ६५) रुपया मजदूरी,)। प्रति दिन चबेना तीन सेर खिचड़ी और २॥) रु० इनाम लेते हैं। प्रत्येक डंडीमें चार कुली रहते हैं। एक डंडी ३०-३५ रुपयेमें खरीदनी पड़ती है। किराया १७५) रु० से २००) रु० तक लगता है। हर एक झापानमें भी चार कुली रहते हैं किराया १२५) से १५०) रु० तक लगता है। और हर कुलीको चबेना, खिचड़ी और इनाम कंडवाले कुलीके समान देना पड़ता है। ये लोग केदारनाथ, त्रियुगीनाथ तथा बद्रीनाथ होकर मेलचौरी तक पहुँचाते हैं। मेलचौरीसे माल असबाब वा सवारीका अन्य प्रबन्ध करना पड़ता है। हृषीकेशसे तपोवन एक मील पर है। यहाँ शत्रुहन जीका मन्दिर है। इसी स्थानसे सघन वन आरंभ होता है। हृषीकेशसे लछमन भूला, जो पहले रस्सोंका बना हुआ था और अब लोहेके तारोंपर भूलता हुआ गंगाजीके ऊपर एक मजबूत पुल है, पार करके यात्री लोग ४-५ मीलकी दूरीपर फुलबाड़ी चट्टी पहुँचते हैं यहाँ विश्राम करनेके लिए काली कमली वाले की धर्मशाला और बनियेकी दूकान है। एक रुपया सेर पूड़ी आलूकी तरकारी व हल्वा आदि मिलता है।

लछमन भूलेके समीप ही लछमनजीका मन्दिर है। उसके आगे दो मीलपर ध्रुवजीका मन्दिर है।

२१-४-१६२३ को प्रातः ५ बजे फुलवाड़ी चट्टीसे रवाना होकर १० मील पर १० बजे दिनको बिजनी चट्टीमें पहुंचे। यहाँ भोजन बना-खाकर आराम किया और ४ बजे शामको रवाना होकर बन्दर चट्टीमें पहुँचे। यह स्थान बिजनी चट्टीसे ६ मीलपर पहाड़के खड्डमें है। यहाँ भागीरथी नदी है। यहीं रातको विश्राम किया। २२-४-२७ को सवेरे ४ बजे चलकर ६॥ बजे सुफल चट्टी या खांडी चट्टी पहुंचे। यह रमणीक स्थान है। यहाँ सत्यनारायणजीका एक छोटा मन्दिर है और एक सरकारी अस्पताल है। यहाँ भोजन व विश्राम करके ४ बजे शामको निकले। उतार पर व्यासगंगाका लोहेका पुल पार करके ६॥ बजे शामको व्यासचट्टी पहुँचे। इस पुलसे दाहिनी ओर चढ़ाईकी सड़क कोटद्वाराको गई है। सामनेकी सड़क व्यासघाट चट्टीको जिसका नाम इन्द्र प्रयाग भी गई है। कहते हैं कि यहाँ व्यासजीने तपस्याकी थी। यह वास्तवमें रमणीक स्थान है क्योंकि भागीरथी उच्च पर्वतोंके नीचे नीचे घूमती हुई यहाँपर

ऊ…स गंगासे मिलकर हृद झील के सदृश चौड़ी होगई है। इसके किनारे छोटे व बड़े चट्टानों पर बैठकर स्नान, पूजा व पिंडदानादि कर सकते हैं।

इस चट्टीमें रात्रिको ठहरकर ता० २३-४-२३ को ७ बजे दिनको रवाना हुए। कई झरने और उनके ऊपरके पुल पार करके गरुड़ भगवानके मन्दिरमें दर्शन किया और ५-६ मील चलकर ९॥ बजे दिनको उमराव-चट्टी पहुँचे। यहाँ भोजन व विश्राम करके शामको ४ बजे रवाना हुए और ६ बजे देव प्रयाग पहुँचे। रास्ते सोढ़िया नामक झरना मिलता है
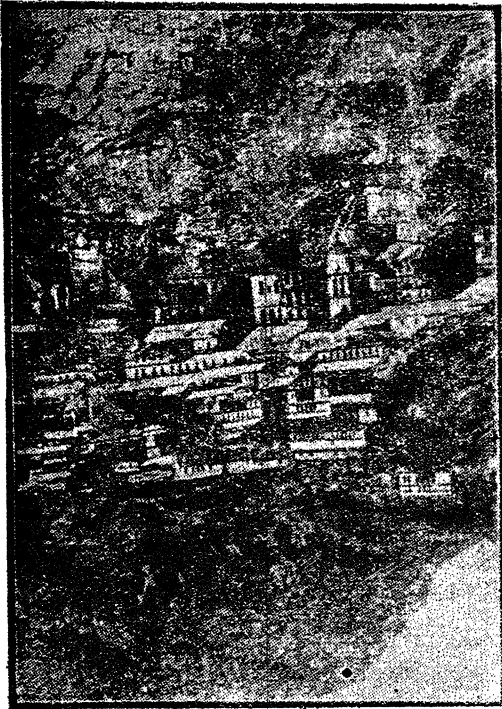
देवप्रयाग

देवप्रयाग—यहाँ अलकनन्दा व भागीरथी का संगम है। चाँदनी रातमें इस संगमस्थानका दृश्य बड़ा मनोहर होता है। यहाँपर सायंकालकी संध्या-पूजा आदि की। यहाँपर भागीरथी ऐसे वेगसे बहती है कि अलकनन्दाका बहाव उसके सामने विलकुल मन्द जान पड़ता है और केजोर से बहनेका शब्द होता रहता है। इसी संगमके कारण यह देवप्रयाग कहलाता है। चूँकि (१) देवप्रयाग (२) रुद्रप्रयाग (३) विष्णुप्रयाग (४) नन्द प्रयाग (५) कर्णप्रयाग, इन पंचप्रयागोंमें यही मुख्य है इसलिये यहाँ मुण्डन और श्राद्धादि करना पड़ता है। यहाँ डाकघर और तारघर है, धर्मशाला व काली कमलीवालेका औषधालय भी है। अलकनन्दा नदी-पर लोहेका पुल है। इस ओर अंगरेजी राज्य है और पुलपार जहाँ देवप्रयाग बसा है, महाराज टिहरी का राज्य है। यहाँसे गंगोत्रीजानेका मार्ग है। देवप्रयाग-में श्री रघुनाथजीका मन्दिर है और पंडोंके कोई २०० मकान और सब तरहकी दूकानें हैं। एक छोटा बाजार भी है। यहाँ निम्नलिखित तीर्थ हैं—(१ ब्रह्मतीर्थ (२ वसिष्ठ कुण्ड (३) वाराहतीर्थ (४) सूर्यतीर्थ ५) पुष्पमाला ६ इन्द्रद्युम्न (७) विल्व-तीर्थ ८) सूर्यतीर्थ, यह सब भागीरथीके दाहिने तट-पर हैं। और १) शिवतीर्थ (२) बैताल शिलाकुण्ड (३ सूर्यकुण्ड, यह तीनों भागीरथीके बायें तटपर हैं।

२४-४-२३ को देवप्रयाग संगमपर क्षौरादि, स्नान व पिंडदान किया। यहाँ से ४ बजे शामको रवाना होकर ७ मीलपर रानीबाग स्थानमें सूर्यास्तके समय पहुँचे। परन्तु यहाँ रहनेका ठिकाना न होनेसे चाँदनी रात-में ही चल पड़े और रामपुर चट्टी पर ८॥ बजे रात-को पहुँचे।

२५-४-२३ को रामपुर से प्रातःकाल ४ बजे रवाना होकर ७ बजे बिल्वकेदार पहुँचे। यहाँ स्नान व शिव-जीका दर्शन किया। इस मन्दिरके बाहर पत्थर का अर्जुन-चरण है। मन्दिर ढुंढम और अलकनन्दा-के संगमसे ऊँचेपर बना है इसलिये इसे ढुंढप्रयाग भी कहते हैं। एक मील आगे चलकर अलकनंदापर लोहेका पक्का पुल है, जो कि महाराज टिहरीके बसाये हुए कीर्तिनगर बाजारको गया है। यहाँसे ३ मील-पर पुराने श्रीनगरमें कमलेश्वर महादेव पंचपीठका दर्शन होता है। वहाँसे एक मीलपर नया श्रीनगर है, जो जिला गढ़वालका मुख्य नगर है। यहाँ थाना डाकघर, तारघर, अस्पताल, अङ्गरेजी-हिन्दी पाठशाला और बाजार हैं। यहाँ दो बड़े बड़े धर्मशाला हैं एक

बाबा कालीकमलीवालेका और दूसरा पंजाबियोंका सं० १८९४ ई० में जब गोहनाके बाढ़में पुराना श्रीनगर बह गया तब यह नया श्रीनगर बसाया गया। यह शहर अलकनंदाके बाईं ओर समुद्रकी सतहसे १७०० फुट ऊँचेपर बसा है।

श्रीनगरसे ता० २६-४-२३ को ५ बजे सवेरे रवाना

गुप्तकाशीमें विश्वनाथजीका मन्दिर

होकर ८ मील दूर भट्टीसेरा स्थान पर १० बजे पहुँचे। यहाँसे आगे २ मीलतक कठिन चढ़ाई पड़ती है इस लिये यहाँसे ४ बजे शामको चलकर ३॥ मील पर खाकरा चट्टीमें ५॥ बजे शामको पहुँचे। यहीं रात्रि को विश्राम किया। यहींसे पाईनके पेड़ोंका जंगल मिलता है।

२७-४-२३को खाकरा चट्टीसे ५ बजे निकलकर ३ उच्च पर्वतोंकी क्रमशः चढ़ाई व उतराई समाप्त करके और दो चट्टियोंको बीचमें छोड़कर ८ मील दूरीपर ९॥ बजे रुद्रप्रयाग पहुँचे। अलकनन्दापर लोहेका पुल है। इस पारसे सीधी सड़क बद्रीनाथको गई है।

पुलपार रुद्रप्रयागतीर्थ है, जहां अलकनन्दा और मन्दाकिनीका संगम है। यहाँ संगमपर अलकनन्दा नदी इतने वेग से बहती है कि स्नान करना कठिन है। यहाँ महादेवजीका मन्दिर है। कहते हैं कि नारदजीने रुद्रनाथ जी के दर्शनके लिये यहीं तपस्याकी थी। केदारके यात्रियोंके लिए

अलकनन्दा तटपर कालीकमलीवालोंकी तरफ़से एक सुन्दर धर्मशाला बनी है। यहांपर नारदेश्वर, गोपालेश्वर, अन्नपूर्णा और सोमेश्वर तीर्थ हैं। यहां घी बहुत अच्छा और सस्ता मिलता है। गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सैनिटरी विभाग का स्टोर यहींसे आगे भेजा जाता है।

मन्दाकिनीके किनारेसे होकर केदारनाथ के सड़क गई है। उसी सड़क से ता २८-४-२३को ५॥ बजे रवाना होकर ७ मील चलकर रामपुर चट्टीमें पहुँचे। यहाँ भोजन व विश्राम करके शामको ४ बजे निकलकर त्रिपुरेश्वर महादेवका दर्शन किया और अगस्त्य मुनि आश्रम में ६ बजे पहुँचे। यहां अगस्त्य मुनिका मन्दिरहै और एक धर्मशाला है। यहाँ उत्तम दूध व पूड़ी बगैर मिलती हैं। यह मन्दाकिनीके तटपर है यहीं रातको विश्राम किया। २९-४-२३को सबेरे ५ बजे उठकर ९॥ मील पर कुण्डचट्टी पहुंचे। रास्तेमें श्री चन्द्रपुरि देवी व चन्द्रशेखर महादेवका और भम झोलेमें बलभद्रजीका मन्दिर है। इस कुण्डचट्टीमें बहुत भीड़ और बहुत मक्खियाँ थीं। इसलिए किसी प्रकार स्नान और आहार करके शामको ४ बजे रवाना होकर ३ मील पर गुप्तकाशी पहुँचे।

कुण्डचट्टीमें मन्दाकिनी नदी समतल बहती है परन्तु गुप्तकाशी मन्दाकिनी से ८०० फीट ऊंचे दाहिनी ओर बसा है। यहाँ एक गांव है जिसमें अनेक धर्मशालाएं हैं एक चौगान के भीतर विश्वनाथजी का मन्दिर है। मन्दिरके सामने एक मणिकर्णिका कुण्ड है, जिसमें पीतलकी बनी हुई पानीकी दो धाराएँ गिरती हैं। कहते हैं कि जब औरंगजेब बादशाहने काशीविश्वनाथका मन्दिर तोड़कर मसजिद बनवाई थी तब विश्वनाथ-महादेव काशीसे यहां चले आये और चूंकि देवताओंने यहां गुप्त तपस्या की थी इस लिये यह पुण्यधाम है और यहाँ गौके गोलेमें सोना, चांदी, रुपया आदि बन्द करके पण्डोंको गुप्तदान देने का विधान है। गुप्तकाशीके सामने मन्दाकिनीके तटपर ओषीमठ दिखाई देता है। ओषीमठसे लोहेके पक्के पुलपरसे जो १४० फीट चौड़ा है और एक मील दूर नाला गाँव के नीचे बना है जाते हैं। गुप्तकाशीमें बहुत भीड़ होनेके कारण कहीं रहनेकी जगह न थी। इस लिये सफाई विभागके इन्सपेक्टर (Sanitary Inspector) फजलहसनके यत्नसे सेठ श्यामलालके एक नये मकानमें रातको ठहरनेकी अनुमति मिली।

विश्वनाथका मन्दिर त्रियुगी नारायण।

ता० ३०-४-२३को सबेरे ५ बजे उठकर आधमील दूर जाकर झरनेके पीछे शौचादिसे निवृत हुए फिर मन्दिरमें पूजा आदि करनेके बाद नारियलके गोलेमें चाँदी रखकर संकल्प व गुप्तदान किया और ब्राह्मण भोजन कराया। जलपान करके ७॥ बजे यहाँसे चलकर एक मीलपर नालाभेत ग्राममें (जहां ५० छप्पर व दूकाने हैं पहुँचे। वहाँसे २ मीलपर व्यूंगचट्टी जहाँ १५ छप्पर व दूकाने हैं होते हुए फाटाचट्टीमें क़रीब १२ बजेके पहुँचे। रास्तेमें व्यूंग व भगवती

चट्टीके बीचमें एक जगह पहाड़ गिरा हुआ था जहां मट्टी व पत्थर गिर रहे था।

फाटाचट्टीमें २ बजे दिनको भोजन कर चुके, शामके समय भट्टीसेराका रहनेवाला एक छात्र घनानन्द बहुगुणा सैनिटरी इन्सपेक्टरके साथ मिलने आया। यहाँ दूकानदारके पास काँडीवाले भारी सामान रखकर ऊपरको जाते हैं और केदारसे लौट कर अपना सामान वापस ले लेते हैं। फिर १-५-२३ को सबेरे ५ बजे उठकर ५ मील चलकर ९ बजे रामपुर चट्टीमें पहुँचे।

यहाँ से २॥ बजे दिनको चले और सीधी ५ मील चढ़ाई चढ़कर ५ बजे त्रियुगी नारायण पहुँचे। यहाँ बहुत भीड़ थी। यहाँ पंडोंके २५-३० पक्के मकान और ५-७ दूकानें हैं। त्रियुगी नारायणके मन्दिरकी बनावट बौद्धोंके मठोंकी तरह है। यहाँ धून में पंडा व यात्री लोग लकड़ी डालते रहते हैं और आग बुझने नहीं देते। कहते हैं कि यह धूनी शिवजीके विवाहके समयकी है। मन्दिरके सामने ३ कुण्ड हैं बड़ा, कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड और सरस्वती कुण्ड। मन्दिरके भीतर अष्टधातुकी श्रीनारायणकी मूर्त्ति विराजमान है। इसमें लक्ष्मी, सरस्वती, जया, विजया व रामचंद्रके दर्शन होते हैं। सरस्वती कुण्डमें तर्पण आदि करके त्रियुगीनाथकी आरती व दर्शन करके और धूनीमें लकड़ी आदि चढ़ा कर ।॥) सेर पूड़ी खरीदकर भोजन करके रातको यहीं सो रहे।

२-५-२३ को ५॥ बजे श्री केदारनाथजीके मार्गमें ५ मील चलकर १० बजेके करीब गौरीकुंडमें पहुंचे। यहाँ २०-२५ पडोंके घर और दुकाने हैं। गौरीशंकरजीका मंदिर है और उसके पीछे अमृत कुण्ड है। इसके पीछे निकट हीएक विशाल शिला है उसे भी गौरीशंकर कहते हैं। एक और कुण्ड है जिसके का जल सिर्फ ७४ के: है और पीले रंगका है। परंतु आगे एक कुण्ड है जिसका जल १२८ है। गरम पानी प्रस्रवनसे निकलकर पीतलके बने हुए गोमुखसेइस कुण्डमें लगातार गिरता है और दूसरे तरफसे निकलकर मन्दाकिनी नदीमें गिरता है। कहते हैं कि श्रीगौरीजीने यहीं स्नान किया था इसलिये इस स्थानका नाम गौरीकुण्ड पड़ा। गौरीकुण्डसे रामबाड़ा तक श्री केदार नाथजीका मार्ग बड़ा दुर्गम है और प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोहर है इस चट्टीमें भी बहुत भीड़ थी और बड़े कष्टसे थोड़ीसी जगह मिली। यहाँके अन्य कुण्डोंका जल स्पर्श करनेके बाद गौरीकुंडके गोमुखीके जलसे स्नान किया लेकिन उसका जल बहुत गरमथा इसलिए उसमें मन्दाकिनीका जल मिलाकर स्नान और पूजा आदि किया। फिर किसी तरह खिचड़ी बनाकर खाया। यहाँ स्थानकी कमीसे भोजन बनाना बड़ा कठिन है। सुननेमें आया कि आगे स्थनाकी और भी कमी है और बहुतसे लोग आगेकी चट्टी रामबाड़ेसे लौट आये और रास्तेमें तप्तकुंडके पास बरफ़ गिरा है, जिसे देखनेके लिए बहुतसे लोग गये इसलिए रातको यहीं विश्राम किया।

३-५-२३ को प्रातः ५बजे उठकर केदारनाथ जानेकी तैयारी की। चूँकि रातको भोजन बनानेकी सुबिधा नहीं हुईथी इसलिए चिउड़ा, दही और दो एक पूड़ी खाकर सोये परन्तु खानाहज़म नहीं हुआ, तबीयत खराब होगई रास्तेमें ४-६ दस्त हुए परन्तु धीरे धीरे चलते गये और ४॥ मीलकी दूरीपर रामबाड़ा चट्टी १० बजे दिनको पहुँचे गौरीकुंडसे २ मीलपर मार्गमें चीरफटा भैरव मिलता है प्रवाद है कि यहाँ चीर चढ़ाना चाहिये नहीं तो वह यात्री के फलको हर लेते हैं। यहाँ पहुँचकर १० बून्द क्लोरोडाइन थोड़ेसे जलमें मिलाकर पिया और यहाँसे एक लोटा जल लेकर और दो नीबू चूसते हुए केदारनाथ जानेके लिए करीब १॥ बजे निकले। चढ़ाईका मार्ग बड़ा कठिन था ३-४ जगहोंमें बर्फ़का मैदान क़रीब एक मील पार करके शामको ४॥ बजे श्रीकेदारनाथजी पहुंचे। यहाँ बहुत ठंड पड़ रही थी। पंडोंने अपने घरोंमें तख्तोंपर अगेठीमें आग सुलगा रखी थी जिसें। ■ ॐ एक घंटा तापनेके बाद शरीर कुछ गरम हुआ। यहाँ भोजनके लिए कोई चीज़ नहीं मिली, सिफ आलूका रस व भात बना। भोजन करके रातको यहीं विश्राम किया पर धुआँके कारण अच्छी तरह नींद नहीं आयी।

४-५-२३ को प्रातः गरम जलसे स्नान करके क़रीब ८ बजे श्रीकेदारनाथ स्वामीके दर्शनार्थ मन्दिर-में गये। भीड़ बहुत थी परन्तु छात्र घनानन्द बहुगुण व उनके मित्रोंकी मददसे अच्छी तरह दर्शन हुए।

श्रीकेदारनाथजीका मन्दिर हरद्वारसे १४८मीऊपर समुद्रतलसे करीब १२००० फ़ीटकी ऊँचाईपर मन्दाकिनो नदीकी उपत्यकाके ऊपर सतमल भूमिपर बना हुआ है। इस मन्दिरके भीतर पंच पांडव व द्रौपदी-

केदारनाथ।

की मूर्तियाँ हैं और पीछेकी तरफ़ धूसर वर्णका पत्थरका मन्दिर है जिसका मस्तक एक सुवर्णचूड़ासे सुशोभित है। मन्दिरके भीतर एक स्वयं उत्पन्न बड़ा कृष्णा-शिला विराजमान है। यह पर्वतखंड सदा-शिवजी-का धड़ है। उनका शिर "पशुपतिनाथ" नेपालमें विराजमान है और इसी कारण केदारनाथके दर्शनके उपरान्त पशुपतिनाथका दर्शन करना आवश्यक है।

प्रवाद है कि महाभारत युद्धके पीछे पाँचो पांडव द्रौपदी सहित गोत्रहत्यासे मुक्त होनेके निमित्त व्यास जीके आदेशानुसार केदार-दर्शनके हेतु जब महापथके समीप पहुँचे तो वेदारनाथको भैंसेका रूप धारण किये हुए भागते देखा। पांडव प्रतापी थे, भैंसेके ही पीछे पीछे दौड़े और पीछेका भाग स्पर्श कर लिया। पांडवों की हत्या छूट गई और उन्होंने यहाँपर मन्दिर बनवा

दिया। तबसे सदा शिव केदारके पीछेका भाग यहीं रह गया और बाकी अंग हिमालय पर्वत श्रेणीके अन्य चार स्थानोंमें पूजे जाने लगे, यथा—

तुंगनाथमें बाहु।

रुद्रनाथ अर्थात् पशुपतिनाथमें मुख।

मध्यमेश्वरनाथमें नाड़ी।

कल्पेश्वरमें मस्तक व जटा।

गढ़वाल ज़िलामें यह पाँचों स्थान पंचकेदार नामसे विख्यात हैं।

ऐसी भी किम्बदन्ती हैकि जब पंच पांडव तीर्थाटन आदि अनेक उपाय करनेसे भी गोत्रहत्यासे मुक्त न हुए तो आकाशवाणी हुई कि केदारेश्वरका स्पर्श करनेसे हत्या छूटेगी। यह सुनकर वे वहाँ गये और जब वहाँ सिवाय पर्वतके और कुछ न देखा तब भीमने पर्वत खोदना आरंभ किया। परन्तु पर्वत खोदते खोदते थक गये और रोने लगे। फिर केदारनाथकी देववाणी हुई कि मैं इसी पर्वतखंडमें हूँ और तुम्हारे प्रेम व परिश्रम-से सन्तुष्ट हो गया। अब तुम लोग इसी पर्वतखंडमें घृतका लेप करो तो अंगस्पर्शका फल होगा।

शायद यही कारण है कि अभीतक यात्रियोंको उस शिलाखंडमें घृत लेप कर अपना अंग स्पर्श करना पड़ता है।

श्रीकेदारनाथके मन्दिरके निकट और भी अनेक तीर्थ हैं। यथा (१) स्वर्गारोहिणी (२) भृगुपतन (३) रेतकुँड (४) हंसकुंड (५) सिन्धुसागर (६) त्रिवेणी तीर्थ (७) महापथ और (८) शिवकुंड, यह मन्दाकिनी नदीके निकट है। केदारखंडमें इन सब तीर्थोंका महात्म्य लिखा है।

श्री केदारनाथ का मन्दिर

श्रीकेदारनाथके मन्दिरके सामने एक बड़ा खुला चबूतरा है और उस चबूतरेके सामने यात्रियोंके रहनेके लिए पंडोंके मकान व राजाओंके मकानोंकी क़तार है। दक्षिणमें पुजारियोंका जो दाक्षिणात्य नम्बुदरी ब्राह्मण हैं बास-स्थान है।

श्री केदारनाथजीका मन्दिर प्रायः वैशाख अक्षय तृतीयासे कार्तिक महीनेके मध्य या अन्ततक अर्थात् छः महीना खुला रहता है। परन्तु जब जाड़ेमें बरफ़ गिरना आरंभ होता है, पुजारी लोग मन्दिरका साज सामान लेकर ओखिमठ को लौट आते हैं और यहीं केदारनाथकी पूजा जाड़े में ६ महीनेतक करते हैं।

केदारनाथके मन्दिर से ४ मीलपर भैरवकम्प नामकी एक पहाड़की चोटी है जो महापथ नामक पर्वतके रास्तेमें पड़ती है। पहले सन्यासी लोग इसी-की चोटीसे कूद कर प्राणत्याग करते थे, पर सरकारने इस प्रथाको बन्द कर दिया है। जो लोग इस तरह

प्राण त्यागते वे उसीके निकट एक मन्दिरकी दीवार पर अपना नाम लिख देते और "भैरवकम्प" परसे कूदकर नीचे बरफ़की नदी (Glacier) में गिरकर प्राण विसर्जन करते थे। कहते हैं कि श्रीशंकराचार्य जीने बद्रीनाथ स्थापित करनेके बाद ३२ वर्षकी उम्रमें यहींसे कूदकर प्राण त्याग दिया। और नन्दिपुराण केदारकल्पके लेखानुसार महादेवजीने उनको उसी समय मोक्षप्रदान किया। प्रवाद है कि द्रौपदी सहित पांडवोंने इसी स्थानसे जहाँ हिमाच्छादित नादियों से बरफ़के बड़े बड़े खंड टूटते हैं महाप्रस्थान किया था। इसी कारण इसको महापथ कहते हैं।

इन पहाड़ी रास्तोंमें एक तरहका लाल पुष्प पैदा होता है जिसको अंग्रेज़ीमें रोडोड्रेडन (Rhododredon) कहते हैं और जो खूनी पेचिश (Blood Dysentry) की बड़ी उत्तम दवा है। गौरीकुण्ड व रामबाड़ाके बीच पहाड़ोंमें लोहयुक्त काले पत्थर मिलते हैं।

हिमसे आच्छादित ढालू रास्तोंपर बुड्ढों और बीमार यात्रियोंकी सहायता करनेके लिए घनानन्द बहुगुण, सैनिटरी इंस्पेक्टर और उनके कम्पाउण्डर व रामरञ्जन चटर्जी इत्यादिको लेकर एक सङ्घ बनाया और रामबाड़ा व केदारके मार्गमें करीब तीन घण्टेतक काम किया।

(क्रमशः)

जीवत्व-जनक (Vitamine)

[ले० धीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, एम. एस-सी०]

प्राणी मात्रके खाद्य पदार्थोंमें बहुत कम मात्रामें कुछ ऐसी वस्तुएं होती हैं जो कि शरीरके तापमें तो विशेष सहायक नहीं होतीं परन्तु जिनका होना शरीर धारण के लिए नितान्त आवश्यक है, इन वस्तुओंको विटामिन्स अर्थात् जीवत्व-जनक कहते हैं।

जीवत्व-जनक हमारे शरीरमें कैसे काम करते हैं यह बात अभीतक मालूम नहीं है। लेकिन यह सोचा जाता है कि इनका काम हमारे शरीरमें चर्बीकर्बोज्व (Fatscarbohydrates) और (Proteins) की भाँति नहीं होता, किन्तु योगवाही वस्तुओंकी भाँति होता है। बीमारियोंके कारणोंकी परीक्षा करनेपर ज्ञात होता है कि खाद्यपदार्थोंमें जीवत्व-जनकका किसी न किसी रूपमें होना अत्यावश्यक है। वैज्ञानिकोंने यह निश्चित किया है कि यदि जीवत्व-जनक पदार्थोंसे रहित भोजन लगातार खाया जाय तो जीव शीघ्र रोगी हो जाता है। ये रोग जीवत्व-जनकके खानेपर दूर हो जाता है। अभीतक विटामिन्सका रासायनिक ज्ञान वैज्ञानिकोंको नहीं है, परन्तु ये लोग गत दश वर्षोंसे इसको जाननेके लिये अविश्रान्त परिश्रम कर रहे हैं। इन लोगोंने यह सिद्ध कर लिया है कि समस्त प्राणी मात्रके शरीरमें जीवत्व-जनकों का होना आवश्यक है। अभीतक तीन प्रकारके जीवत्व-जनक विटामिन्स मालूम हुये हैं, जिनका प्रभाव हमारे शरीर में भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। इन तीनोंके सिवाय विटामिन्सोंके और भी प्रकार हैं। यद्यपि वैज्ञानिक अभी तक विटामिन्स शुद्ध रूपमें नहीं तयार कर सके हैं परन्तु वे इनके गुणोंको उन वस्तुओंमें जिनमें ये पाये जाते हैं बहुत कुछ जान गये हैं।

जीवत्व-जनक जीवधारियोंके स्वाभाविक खानेकी वस्तुओंमें परन्तु अधिकतर वनस्पतियोंमें पाये जाते हैं। प्रत्येक खानेवाली वस्तुमें एक ही प्रकारका जीवत्व-जनक नहीं होता। जीवधारी अपने खानेवाली वस्तुओंसे काफी विटामिन प्राप्त कर लेता है, यदि उसका भोजन कई प्रकारका हो और उसमेंसे जीवत्व-जनक किसी प्रकारसे निकाल न दिये गये हों।

वैज्ञानिकोंका मत है कि शरीरमें बीमारियाँ इन जीवत्व-जनकों के न होनेके कारण होती हैं। ईज्कमान (Eijkman) ने बीस वर्षसेभी पहिले बतलाया था कि जो लोग छिलका निकाला हुआ चावल (Polished rice) खाते हैं, उन्हें (Beriberi) बेरी बेरीकी बीमारी हुआ करती है, यह बीमारी अधिकतर चीन,

जापान, भारतवर्ष, अफ्रीका, वेस्ट इण्डीज़ और अमेरिकामें होती है। इङ्गलिस्तानमेंभी यह बीमारी फैलरही है। ईज्कमान (Eijkman) ने सोचा था कि इसका कारण चावलके छिलके निकालनेपर नहीं है, किन्तु (Starch) इत्यादिके अधिक खानेपर है। किन्तु अब यह सोचा जाता है कि यह बीमारी चावलके छिलके निकालकर खानेके ही कारण होती है क्योंकि छिलकेमें जीवत्व-जनक होते हैं, जिनका हमारे खानेकी वस्तुओं से निकाल देना हानिकर है। विलायतकी लिस्टर (Lister Institut) में ऐसी बीमारियोंके अन्वेषणमें वैज्ञानिक लोग बहुत समय बितारहे हैं और वे अब यह कहते हैं कि बहुत सी बीमारियाँ जीवत्व-जनक के न होनेके कारण होती है। और हमारे शरीरमें एक विशेष रूपसे काम करते हैं।

जीवत्व-जनका तीन प्रकारके होते हैं। A, B और C परन्तु बहुतसे लोगोंका मत है कि इसकी एक चौथी क़िस्म D भी होती है। इसका अभीतक कोई ठीक प्रमाण नहीं मिला है।

(Vitamin A) जीवत्व-जनक

विटामिन ए पहिले पहिल मक्खनमें अण्डे और पया गया। यह (Cod liver oil) काड लिवर आयल और अन्य मछलियोंके कलेजेसे बने हुए तेलोंमें भी अधिक प्रमाणमें पाया जाता है। निम्नलिखित तेलोंमें इसका अभाव है:—सूर्यमुखीके बीजका तेल (Sun flower seed oil), जैतूनका तेल (Olive oil), बादामका तेल (almondoil), अलसीकातेल (Linseed oil), गरीका तेल (Cocoanut oil, सुअरकी चर्बी (Lard)। जबधारियोंके शरीरमें विटामिन ए किसी शारीरिक क्रियासे नहीं बन सकता। इसे खानेवालेवस्तुओंसे जिनमें यह होता है, प्राप्त करना पड़ता है। हम लोग विटामिन ए ताजे बनस्पति और समुद्रमें रहनेवाले जीवोंसे पाते हैं। अभीतक यह ठीक तरहसे नहीं कहा जाता कि विटामिन ए किन वस्तुओंमें अधिक होता है। दूधमें विटामिन ए पाया जाता है। अगर दूध देनेवाले जानवरोंको ऐसी चीजें जिनमें विटामिन ए (Vitamin A) जैसे कि हरी पत्तियां या चोकर इत्यादि खानेको न दिये जायं तो थोड़े ही दिन पश्चात उनके दूधमें भी विटामिन ए कम हो जाता है।

विटामिन ए सबसे अधिक नीचे लिखी हुई वस्तुओं में पाया जाता है। मक्खन, बालाई, रसायनिक मक्खन (Margarine), रासायनिक चर्बी जो ऐसे तेलकी बनी हुई हो जिसमें विटामिन ए होता है। नारङ्गीका अर्क, भेड़का गोश्त, काडलिवरआयल, दूध, धारोष्ण दूध, कलेजा, गुर्दा, दिल, झींगा और अन्य मछलियां, कच्चा गेहूँ (Wheat embryo) बाजरा, अलसी, मटर, गोभी, गाजर, टमाटर, लौंग, शकरकन्द, अंडे इत्यादि।

नीचे लिखी वस्तुओंमें विटामिन ए बहुत थोड़ी मात्रा में पाया जाता है:—मक्खन निकाला हुआ दूध मकाई, जई, चावल, जौ, खजूर, आलू, ईख, चीनी, केला, बादाम इत्यादि।

नीचे लिखी वस्तुओंमें विटामिन ए बिलकुल नहीं पाया जाता सुअरकी चर्बी, प्याज, अण्डे,का सफेद हिस्सा विलायती चीनी इत्यादि।

यदि मातायें विटामिन ए न खायें तो अपने दूध पीनेवाले बच्चोंको पाल नहीं सकतीं। अब हमें देखना है कि छोटा बच्चा कैसे बढ़ता है। पहिला कारण यह है कि उसमें बढ़नेकी एक आन्तिरिक शक्ति होती है और दूसरा आहार। चूहे और गायके ऊपर इसकी परीक्षाकी गई है। अगर इन्हें विटामिन ए न दिया जाय तो थोड़े दिन बाद ये अपने बच्चोंको पाल नहीं सकते। अगर इन चूहोंको दूध या मक्खन दिया जाय तो थोड़े समय बाद हीये अपने बच्चोंको अच्छी तरह पाल सकते हैं। दूधमें विटामिन ए का कम होना बच्चोंकी बाढ़में बहुत प्रभाव डालता है और इसलिए गायको अच्छी प्रकारसे खिलाना चाहिये केनेड Kenedy और डचर Dutcher ने अमरीकामें गायके दूध उसके खानेकी चीजोंपर विटामिन ए के विषयमें बहुत परीक्षायें करके यह दिखलाया है कि यदि गाय को ऐसा खाना दिया जाय जिसमें विटामिन ए न हो, तो उसका दूध भी थोड़े समयमें विटामिन ए शून्य हो

जाता है और यह भी कहा जाता है कि यद्यपि इनमें विटामिन ए रखनेकी शक्ति है, तथापि यदि इन्हेंक्रमशः कई दिनोंतक विटामिन ए न दिया जाय तो यह धीरे धीरे थोड़े समयमें चुक जाता है, तभी दूधमेंसे भी विटामिन ए निकल जाता है।

यह देखा गया है कि विटामिन ए बाढ़में बहुत सहायता देता है। यदि किसी जीवधारीको विटामिन ए न दिया जाय तो थोड़े ही दिन बाद वह दुबला पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि हमारे शरीरका संचित विटामिन ए खर्च हो जाता है और जीवधारी दुबला पड़ता जाता है। इससे यह पता चलता है कि यदि कोई मनुष्य थोड़े दिन विटामिन ए न खाय तो वह जीवित नहीं रह सकता है।

विटामिन ए के शरीरसे पूरे होनेके लिए प्रायः डाक्टर लोग कॉड लिवर आयल देते हैं। विटामिन ए के कम खानेपर साधारणतः आंखोंकी बीमारी शरीरका दुबलापन और फेफड़ेकी बीमारियां होती हैं। छोटे बच्चे भी विटामिन ए कम पानेपर ठीक तरह से नहीं बढ़ते। इस न बढ़नेकी बीमारीको बायँटे (Rickets) कहते हैं। डाक्टर लोग इस दशामें काड लिवर-आयल जिसमें विटामिन ए बहुत होता है, देते हैं।

(Vitamin B जीवत्व-जनक)

कहा जा चुका है कि हम लोगोंको विटामिनका ज्ञान ईजकमान (Eijkman) से प्राप्त हुआ है। उसने कबूतरोंमें पालीन्यूरिटिस (polyneuritis) रोग का पता लगाया जो मनुष्यके बेरी बेरी रोगकी भाँति होता है और यह बतलाया कि यह बीमारी उन्हें तब होती है जब उन्हें विटामिनरहित चावल दिया जाय चावलके बाहरी भागका घुला हुआ रस देकेसेवे तुरन्त अच्छे हो जाते हैं। यदि हम लोग चावल खाने वाले देशोंमें बेरी बेरीकी बीमारी देखें तो यह जान सकते हैं किवे लोग चावलको ऐसी तरहसे बनाते हैं कि ऊपर का भागजिसमें कि विटामिन बी होता हैनिकल जाता है। फंक (Funk) ने इस वस्तुको खमीर (yeast) से निकाला है। उन्होंने खमीरको पहिले सुरासव ये शराब (alcohol) से धोकर चर्बी (Fat) और इस विटामिन को निकाला फिर और इसमें घोलमेंसे चर्बीको दाह्याल (Ether) द्वारा अलग किया। फंक(Fnnk) ने इस तत्व को नाम करण किया। तत्पश्चात् अन्य प्रकार के जीवत्व-जनकों का ज्ञान होनेपर इसका नाम बी रक्खा गया जो कि ए और सी। अभीतक यह ठीक तरहसे नहीं कहा जाता कि बेरी बेरीकी औषधि, और विटामिन एक ही वस्तु है, परन्तु यह बहुत कुछ सम्भव है। विटामिन बी खानेके अन्नमें खमीर इत्यादि का रस, आलू, शकरकन्द, गाजर, अण्डा, ताजे बीज इत्यादिमें होता है। चीनी और गोश्तमें नहीं होता, कलेजा और हड्डके भीतरकी चर्बीमें भी पाया जाता है। दूधमें विटामिन बी उतनी मात्रामें नहीं पाया जाता जितना खमीरमें। हम लोगोंको इस विटामिनका ज्ञान बेरी बेरीकी औषधिसे हुआ है। यह विटामिन पानी और सुरासवके जल (alcohol water)में घुल जाता है। यह दह्योल शराबमें नहीं घुलता। इसमें नजन भी होता है। यदि यह शुद्ध अम्ल (Strong acid) के साथ उबाला जाय या क्षार (alkali) में रख दिया जाय तो नहीं नष्ट होता। यदि ६०° श क्षारका तापक्रम बढ़ा दिया जाय तो नष्ट हो जाता है। विटामिन बी छोटे बच्चोंके पोषण करनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। बच्चोंके खाद्य पदार्थोंमें इसका न होना विटामिन ए के न होनेकी अपेक्षा अधिक हानिकर है। हम लोगोंके शरीरमें इसके क़ायम रखनेकी कोई शक्ति नहीं है। इसलिये प्रत्येक अवस्थामें विटामिन बी की आवश्यकता सदा पड़ती रहती है। माताके दूधमें यदि वे विटामिन बी न खावें तो यह उत्पन्न नहीं हो सकता। मांके दूधमें थोड़ा विटामिन बी होता है। यदि इस दूधमें थोड़ा खमीर मिलाया जाय तो बच्चेके बाढ़में बहुत लाभदायक होगा।

यह देखा गया है कि यदि मनुष्य अधिक कर्बोज्ज (Carbohydate) खाता है, तो बेरी बेरीकी बीमारी अधिक होती है। फंक (Funk) ने दिखाया है कि यदि विटामिन बी कम खाकर एक मनुष्य कर्बोज्ज Carb-(ohydate) चर्बी (fat) इत्यादि अधिक खाय तो मनुष्य अधिक दिनतक जीवित नहीं रह सकता।

मेक करीसन Mc Carrison ने दिखाया है कि यदि एक बन्दरको विटामिन बी निकाला हुआ चावल दिया जाय तो वह १८ ग्राम प्रति दिन तौलमें कम होता जाता है और २३ दिनमें मर जाता है। अगर इस चावलके साथ ऐसा मक्खन दिया जाय जिसमें विटामिन ए हो तो इसकी दशा और खराब होती जाती है और १५ दिनमें मर जाता है। विटामिन बी के न होनेपर बहुत सी बीमारियाँ होती हैं और इन बीमारियोंको दूर करनेके लिये विटामिन बी का सेवन किया जाता है। अब यह दिखाया जा रहा है कि Bios of Wildiers. बियो आफ विल्डियर्स जो कि खमीर बननेमें सहायता देता है और विटामिन बी एक ही वस्तु है। इसके बहुतसे गुण विटामिन बी के गुणोंकी भांति होते हैं। परन्तु यह अभीतक हमें ठीक तौरसे नहीं मालूम कि वास्तवमें ये दोनो वस्तुयें एक ही हैं। इसके बादके प्रबन्धोंमें हम साधारण बीमारियों जैसे बहुमूत्र और रतौंधीके लिये इसकी आवश्यकता बतलावेंगे।

Vitamin C. विटामिन सी

स्कर्वी नामक बीमारी प्रायः जहाजके खेनेवाले मल्लाहोंको हुआ करती है। यह देखा गया है कि यह बीमारी ताजे वनस्पतिके न प्रयोग करनेसे होती है। और ताजे फल वनस्पति इसकी औषधि हैं। इस बीमारीके दो कारण सोचे जाते थे पहिला रक्खा हुआ बासी गोश्त और मछली खाना जिनमें आवश्यक वस्तुयें वासी होनेके कारण नहीं रह जातीं और दूसरा ताजे वनस्पति और फलका न खाना। Lind ने १७४७ ई० में इस बीमारीका मुख्य कारण आवश्यक वस्तुओंका न खाना बतलाया है। नारङ्गी और नीबूके इसने इस बीमारीको अच्छा किया है। सेवके अर्कमें भी ऐसी वस्तु होती है जो कि इस बीमारीको दूर कर सकती है यद्यपि वह नारङ्गी या नीबूके रससे कम जोरदार होती है।

होल्स्ट Holst और फालिफ Frolich ने स्कर्वीकी बीमारीके सुअरके अन्दर ताजा वनस्पति और विटामिन सी रहित अन्य वस्तुएँ खिलाकर पैदा की थी। उन्हें केवल गेहूं और पानी दिया जाता था और यह भी दिखाया है कि इन सुअरोंको यदि ३० ग्राम ताजी पत्तियाँ, जड़ और फल दिये जायँ तो यह बीमारी अच्छी हो जाती है। लेकिन उबाले हुये और सूखे वनस्पति इस बीमारीको अच्छा नहीं कर सकते। यह नहीं कहा जा सकता कि हर फलके रसमें विटामिन सी होता है। यह केवल अम्लधारी (actolic) फलोंमें होता है। विटामिन सी अधिक परिमाणमें इन वस्तुओं में पाया जाता है—ताजा करमकल्ला, शलगम, नीबू नारङ्गीका अर्क और कच्चा या उबाला हुआ टमाटर। बीजमें विटामिन सी नहीं होता परन्तु यदि इसे सड़ावें तो विटामिन सी की भाँति काम देता है। इसलिये उन देशोंमें जहाँ वनस्पति अधिक नहीं होता इस सड़ाये हुये वस्तुसे काम लेते हैं। सूखी वनस्पतिमें विटामिन सी बहुत थोड़ा होता है। इन सूखे वनस्पतिको उबाले तो विटामिन सी बिल्कुल निकल जाता है।

मांसादिमें विटामिन सी बिलकुल नहीं होता, दूधमें भी विटामिन सी अत्यन्त कम होता है। इसलिये बच्चों और छोटे जीवोंके लिये केवल दूध ही उतना लाभदायक नहीं है, क्योंकि उबाली और सुखायी वस्तुओंमें विटामिन सी नहीं होता। इसलिये यदि बच्चोंको उबाला हुआ या बनाया हुआ (condmsed) दूध या अन्य कृत्रिम खाद्यपदार्थ ही दिये जायँ तो उनका पोषण ठीक तरह से नहीं हो सकता और उनमें स्कर्वी बीमारीके चिन्ह दिखाई पड़ने लगते हैं। इसलिये इन्हें नारङ्गी और नीबूका रस या अन्य ऐसी वस्तुएँ भी जिनमें विटामिन सी मौजूद हो देना चाहिये खारा (alkaline) और शिथिल (nenrtal) द्रवोंमें उबालनेपर विटामिनसी बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है। लेकिन अम्ल द्रवोंणमें यह इतना शीघ्र नष्ट नहीं होता। टमाटर उबालने या सुखानेपर भी नितान्त विटामिन सी रहित नहीं हो जाता इसलिये बाजारके तैयार किये हुये टिनोंके टमाटरमें विटामिन सी मौजूद रहता है। डेल्फ(Delf) ने दिखाया है कि करमकल्ला २० मिनट पानी में उबालनेपर ¾ भाग अपनी शक्ति खो देता है और शलगम आधा और नारङ्गीका रस आधेसे भी कम भाग

इसी दशामें खो देता है। इसका कारण केवल इनका अल्कलि धारी होना ही नहीं है किन्तु और भी हैं। हम लोगोंने देखा है कि खारे द्रवोंधारी विटामिन सी बहुत जल्द नष्ट हो जाता है। वनस्पतियें उबालनेपर उसका रंग स्थित रखने के लिये सोडा odiume tcarb onate डाला जाता है। लेकिन यह हमारे शरीके लिये बहुत ही हानिकारक है क्योंकि सोडा देनेपर विटामिनसी नष्ट हो जाता है। उन देशोंमें जहाँ अधिक वनस्पति नहीं मिलती बहुत यह हानिकारक है।

खाद्य पदार्थसे (Vitamin C) विटामिन सी निकाल देनेसे छोटे बच्चोंकी बाढ़ मारी जाती है और उनके जोड़ोंमें कमजोरी आजाती है, दर्द पैदा होने लगता है, जबड़े फूल जाते हैं उनमें दर्द शुरू हो जाता है, दाँत ढीले हो जाते हैं। विटामिन सी जीवधारीके लिये अति आवश्यक है। यदि हम (Protein) न खाँय तो जी सकते हैं, परन्तु विटामिन सी फलादि न खानेसे बाढ़ रुक जाती है और जिन्दगी कम हो जाती है।

विटामिन्सके विषयमें साधारण विचार

प्राचीन वैज्ञानिक लोग इस सूक्ष्म वस्तुके विचित्र प्रभावपर अचम्भित हुयेहैं। हमारे जीव रक्षाके लिये बहुत थोड़े विटामिनकी आवश्यकता प्रोटीव कर्बोंज है। (Proteln, carbohydrates) इत्यादि हमारे शरीरमें बिशेष केउत्ताप देते हैं। लेकिन विटामिन इतनी थोड़ी मात्रामें होते हैं कि हमारे शरीरके तापक्रममें कोई सहायता नहीं देते इसलिए यह सोचा जाता है कि ये वस्तुये (कर्बोंज और प्रोटीन इत्यादिके जलकर अंगार जन और पानी बननेपर सहायता देती हैं और इसलिये ये बहुत ही थोड़ी योगवाही वस्तुयें मानी जाती हैं। परन्तु इनके विषयमें वैज्ञानिकोंमें मतभेद है। क्योंकि हम जानते हैं कि योगवाही वस्तु रासायनिक क्रियामें नष्ट नही होती और इसीलिये बहुत ही थोड़ी योगवाही वस्तुकी आवश्यकता पड़ती है। लेकिन विटामिनकी आवश्यकता हमारे शरीरके लिये प्रत्येक समय पड़ती रहती है। यदि हम लोग इसे योगवाही वस्तु मानें तो एक बार थोड़ासा विटामिन लेनेपर ही हमारे शरीरकी रसायनिक क्रिया चलनी चाहिये और बार बार लेनेकी आवश्यकता न पड़नी चाहिये। योगवाही वस्तुयें रासानिक क्रियाको एक सीमातक बढ़ा सकती हैं, परन्तु अधिक परिमाणमें होनेपर भी रासायनिक क्रियाका वेग ही गुण पाया जाता है। यदि एक मनुष्य अधिक (विटामिन) का प्रयोग करे तो वह अपनी हदसे अधिक हृष्ट पुष्ट नहीं होता। आजकल यह भी सोचा जाता है कि ये वस्तुयें हमारे शारीरिक रसायनिक क्रियाके होनेमें सहायता देती हैं। और थोड़ी मात्रामें खर्च भी हो जाती हैं परन्तु ये गुण योगवाही वस्तुओंमें नहीं पाये जाते। विटामिन हमारे शरीरके एंज़ाइम (Enzymes) और अन्य मिश्रित वस्तुओंके साथ मिलकर एक वस्तु बनते हैं जिसको कि हरमोन (Hcmrones) कहते हैं जो हम लोगोंके शरीरकी क्रियाको सहायता देती हैं।

सूर्यग्रहणाधिकार

[लेखकः—श्रीमहावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य]

गतांक से आगे

यहां तक तो १६ वें श्लोकके पूर्वार्धकी व्याख्या हुई। इसके उत्तरार्धका अर्थ समझमें नहीं आता क्योंकि इसमें जिस दशाकी संभावना की गई है वह प्रकृतिके विरुद्ध है। पूर्व कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव अधिक रहेगा क्योंकि स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांशसे सदैव अधिक होताहै। और इसी तर्कसे मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव कम रहेगा। इसी प्रकार पश्चिम कपालमें स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव कम रहेगा और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबनसे सदैव अधिक रहेगा। हां, यदि ग्रस्तोदय या ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो और बात है। परन्तु ऐसी दशामें विशेष रीतिसे गणना करनी पड़ेगी और किसी स्थानके लिए केवल यह जानना आवश्यक होगा कि ग्रस्तोदय ग्रहणमें मोक्ष कब होता है और ग्रस्तास्त ग्रहणमें स्पर्श कब होता है। पहली दशामें यही विचारना होगा कि सूर्योदयके समय सूर्यका कितना भाग ग्रस्त रहता है और यह ग्रस्त भाग कितनी देरमें निकलके बाहर हो जायगा। इस क्रियाके लिए चन्द्रग्रहणाधिकारके श्लोक १८, १९, और २० की सहायता लेनी पड़ेगी। दूसरी दशामें अर्थात् ग्रस्तास्त ग्रहणमें यह विचारना होगा कि सूर्यास्तके समय सूर्यका कितना भाग ग्रस्त रहता है और इसके कितने पहले ग्रहणका स्पर्श हुआ। इस क्रियाके लिए भी उन्हीं श्लोकोंक सहायता लेनी पड़ेगी

अबतक जो कुछ कहा गया है वह उसदशा के लिए है जब स्पर्श और मोक्ष एक ही कपालमें हो। यदि स्पर्श एक कपालमें हो और मध्य दूसरे कपालमें अथवा मध्य एक कपालमें हो और मोक्ष दूसरे कपालमें तब स्पर्श और मध्य-कालके लंबनोंको अथवा मध्यम और मोक्षकालके लंबनोंको जोड़नेसे जो आवे उसे मध्यम स्थित्यर्धमें जोड़ना चाहिए क्यों कि ऐसी दशामें ग्रहणकाल बहुत बढ़ जायगा। मान लो कि स्पर्श पूर्व कपालमें और मध्य पश्चिम कपालमें हुआ। यह स्पष्ट है कि ऐसी दशामें ग्रहणका मध्यकाल पश्चिम लंबन-के कारण कुछ देरमें होगा अर्थात् चन्द्रमा पश्चिम हट जानेके कारण सूर्य के सम्मुख कुछ देरमें आवेगा। परन्तु स्पर्श-के समय चन्द्रमाका लम्बन पूर्वकी ओर होगा इसलिये स्पर्श कुछ पहले ही हो जायगा। पहले कारणसे ग्रहणका मध्यकाल कुछ पीछे हट जायगा और दूसरे कारणसे स्पर्श काल कुछ पहले हो जायगा इसलिये स्पर्शसे मध्यमकाल-तकका समय दोनों कारणोंसे बढ़ जायगा। ऐसी दशामें स्पर्श और मध्यमकालिक लंबनोंके योगको मध्यम स्थित्य-र्धमें जोड़नेसे ही स्पर्श कालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होगा परन्तु मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्धके लिये दोनों लंबनोंका अन्तर ही मध्यम स्थित्यर्ध जोडना होगा क्योंकि मध्य-काल और मोक्षकाल दोनों पश्चिम कपालमें होंगे केवल स्पर्श ही पूर्व कपालमें होगा परन्तु यदि स्पर्श और मध्य पूर्व कपालमें हों और मोक्ष पश्चिम कपालमें हो तो स्पर्श कालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये लंबनोंके अन्तरको मध्य स्थित्यर्धमें जोड़ना होगा और मोक्ष कालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध जानने के लिये लबनोंके योगके मध्यमा स्थित्यर्धमें जोड़ना होगा।

यहांतक जो रीति स्पर्श और मोक्ष काल जाननेके लिए बतलायी गई है उसी रीतिसे सम्मीलन और उन्मीलन कालोंको भी जानना चाहिए।

इति सूर्य ग्रहणाधिकार नामक पांचवें अध्यायका अनुवाद समाप्त हुआ।

उदाहरण—काशी के लिये संवत् १९८२ वि० के माघ कृष्ण अमावस्या के सूर्य ग्रहण की गणना सूर्य सिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिनके सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च और राहुको स्पष्ट करना चाहिये। इसलिये कलियुगके आरंभसे इस दिनतकका अहर्गण जानना आवश्यक है।

कलियुगसे १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा तक १८३ ५५४७·५२३६ दिन होते हैं। संवत् १९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्तकालसे १९८२ के माघके अमावस्यान्तकालतक १७॥ चन्द्र मास होते हैं क्योंकि इस बीचमें कोई मलमास नहीं है एक चांद्रमास २९·५३०५८८ सावन दिनोंके समान होता है। इसलिये

१९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्त तक		१८३५५४७·५२३६	दिन
१७ चांद्र मास	=	५०२·०२	दिन
आधा चाँद्रमास	=	१४·७६५३	दिन

∴ कलियुगसे १९८२की माघी अमावस्यातक १८३६६४·३०८९

∴ इस दिनकी मध्यरात्रि तकका अहर्गण=१८३६०६४

इसको ७ से भाग देनेपर शेष ६ बचता है। कलियुग का आरम्भ गुरुवारकी मध्यरात्रि में हुआ था इसलिये जिस समयका अहर्गण ऊपर आया है वह बुधवारकी मध्यरात्रिका है। परन्तु १९८२ वि० की स्पष्ट माघी अमावस्या गुरुवारको थी इसलिये उपर्युक्त अहर्गण पूर्णिमान्त गणना से माघ की चतुर्दशी और अमान्त गणनासे पौषकी चतुर्दशीकी मध्यरात्रिका है। इस अमावस्याका अंत गुरुवारके मध्यान्ह-के लगभग हुआ है। इसलिये चतुर्दशी और अमावस्या दोनों-की मध्यरात्रि काल के चन्द्र सूर्य इत्यादिको स्पष्ट करना चाहिए। जिस प्रकार पृष्ठ ६६२ में इन ग्रहोंका गतियां जानी गयी हैं उसी प्रकार यहां भी करनेसे माघ कृष्ण १४ की अर्द्धरात्रिकालमें मध्यम गतियां यह आती हैं (यदि पूरे भगण न लिखे जायँ):—

सूर्य =	८ राशि	२९ अंश	३३·१४४ कला	
चन्द्रमा=	८ "	२५ "	४९·६५३ "	
चन्द्रोच्च=	० "	२६ "	९·११६ "	
राहु =	२ "	२३ "	३०·३८९ "	

यहां चन्द्रोच्चकी गतिमें ३ राशि जोड़ना और राहुकी गतिको ६ राशिसे घटाना चाहिए (देखो पृष्ठ ६६३)।

इसलिये १९८२ वि० के माघ कृष्ण १४ बुधवार की मध्यरात्रि कालमें उज्जैनमें

सूर्यका मध्यम स्थान	=	८	२९°	३३′·१४४
चन्द्रमा का "	=	८	२५	४९′·६५३
चन्द्रोच्च का "	=	३	२६	९′·११६
राहु का "	=	३	६	२९′.६१

सूर्यका मन्द केन्द्र=सूर्यका मन्दोच्च – सूर्यका मध्यम स्थान।

= २ रा १७°१७′·५२ – ८ २९°३३′·१४

= ५ रा १७°४४.′३८

= १. प्राद + २ रा १७°४४′·३८

∴ दूसरे पादका गम्य भाग= १२°१५′·६२=७३५′·६२

सूर्यकी स्फुट मन्द परिधि = ८४०′ − २०′ × भुजज्या७३५′·६२ / ३४३८

= ८४०′ − २०′ × ७३० / ३४३८

= ८८४०′ − ४′ = ८३६′

∴ भुजफल = ८३६ × ७३० / २१६००

= २८′·२५४

यही सूर्यका मन्दफल है। यह धनात्मक है क्योंकि मन्द केन्द्र अजादि है (देखो पृष्ठ २२८)। इसलिये बुधवारकी मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य = ८ रा २९° ३३′·१४४ + २८′·२५४

= ९ रा ०° १′·३९८

सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति❀ = ५९′८″ + ८३६ / २१६०० × २१९ × ५९′८″ / २२५

= ५९′८″ + २′१३″·६

= ६१′२१″·६ = ६१′·३६

चन्द्रमाका मंद केन्द्र = चन्द्र मन्दोच्च − मध्यम चन्द्र

= ३ रा २६° ९′·११६ — ८ रा २५° ४९′·६५३

= ७ रा ०° १९′·४६३

= २ पाद + १ रा ०° १९′·४६३

= २ पाद + ३०° १९′·४६३

∴ तीसरे पादका गत भाग = ३०° १९′·४६

= १८१९′·५

❀ देखो पृष्ठ २३३

चंद्रमाकी स्फुट मन्द परिधि = ३२° − २०′ × भुजज्या १८१९′·५ / ८३४३

३२° − २०′ × १७३५·५५ / ३४३८

= ३२° − १०′

= ३१° ५०′ = १८९०′

∴ भुजफल = १८९० × १७३५·५५ / २१६००

= १५३′·४६८

= २° ३३′·४६८

यही चंद्रमाका मन्द फल है। यह ऋणात्मक है क्योंकि चद्र केन्द्र तुलादि है। इसलिये बुधवारकी मध्यरात्रिका स्पष्ट चद्रमा = ८ रा २५° ४९′·६५३ — २° ३३′·४६८

= ८ रा २३° १६′·१८५

स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा से प्रकट है कि बुधवारकी मध्य रात्रिको चन्द्रमा सूर्यसे ७ अंशके लगभग पच्छिम है इस लिये अमावास्या अगले दिन होगी। यह जानने के लिये कि अमावस्या कब होगी, चन्द्रमाकी स्पष्ट गति जाननी चाहिये। चतुर्दशीकी मध्य रात्रिका मध्यम चन्द्र = ८ रा २५° ४९′·६५३

दैनिक मध्यमगति = १३° १०·५८३

अमावस्याकी मध्यरात्रिका मध्यम चंद्र = ९ रा ९° ०′·२३६

चतुर्दशीकी मध्यरात्रिका चन्द्रोच्च = ३ रा २६° ९′·११६

एक दिनकी गति ६·६८३

अमावस्याकी मध्यरात्रिका चन्द्रोच्च = ३ रा २६° १५′·७९९

∴ अमावस्याकी मध्यरात्रिका चंद्र मंदकेन्द्र

= ३$^{रा}$ २६°१५′·७९९ − ६$^{रा}$ ९°०′·२३६

= ६$^{रा}$ १७°१५′·५६३

= २ पाद + १७°१५′·६

∴ तीसरे पादका गत भाग = १७°१५′·६ = १०३५′·६

∴ चन्द्रमाकी स्फुट मन्दपरिधि = ३२° − २०′ × $\frac{\text{भुजज्या १०३५·६}}{\text{३४३८}}$

= ३२° − २०′ × $\frac{\text{१०१९·६}}{\text{३४३८}}$

= ३२° − ६′

= १९१४′

∴ भुजफल = १९१४ × $\frac{\text{१०१९·६}}{\text{२१६००}}$ = ९०′·३४८ = १°३०′·३४

∴ मन्दफल = १°३०′·३४८

∴ अमावस्याकी मध्यरात्रिका स्पष्ट चन्द्रमा

= ८$^{रा}$ ९°′·२३६ − १°३०′·३४८

८$^{रा}$ ७°२९′·८८८

∴ चन्द्रमाकी स्पष्ट दैनिकगति = ८$^{रा}$ ७°२९′·८८८ − ८$^{रा}$ २३°१६′·१८५

= १४°१३′·७०३ = ८५३′·७०३

सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति = ६१′·२६

चन्द्रमा और सूर्यकी दैनिक गतियोंका अन्तर = १३°१२′·३४३

= ७९२′·३४३

मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य = ९$^{रा}$ ०° १′·३९८

" " चन्द्रमा = ८$^{रा}$ २३° १६′·१८५

दोनोंका अन्तर = ६°४५′·२१३ − ४०५′·२१३

सूर्य और चंद्रमामें ७९२′·३४३ का अन्तर ६० घड़ियोंमें होता है इसलिये ४०५′·२१३ का अन्तर $\frac{\text{४०५·२१३ × ६०}}{\text{७९२·३४३}}$ घड़ियोंमें होगा जो ३० घड़ी ४१·१ पलके समान है। इसलिये उज्जैनमें माघी अमावस्याका अन्त बुधवारकी मध्य रात्रिसे ३० घड़ी ४१·१ पल उपरान्त अथवा गुरुवारके मध्यम ६ बजे प्रातःकालसे १५ घड़ी ४१.१ पलपर हुआ।

काशी उज्जैनसे १ घड़ी १२·८ पल पूर्व है (देखो पृष्ठ ३६९) इसलिये काशीमें गुरुवारके मध्यम ६ बजे प्रातःकालसे १६ घड़ी ५३·९ पलपर अमावस्याका अन्त हुआ।

अब अमावस्यान्तकालिक सूर्य, चन्द्रमा और राहुको स्पष्ट करना चाहिये।

६० घड़ीमें सूर्यकी स्पष्ट गति = ६१′·३६

∴ ३० " " = ३०′·६८

३० पलमें सूर्य की गति = ३०″·६८ = ·५११३

१० पलमें सूर्यकी गति = ·१७०४

१ " " = ·०१७०

·१ " " = ·००१७

∴ ३० घड़ी ४१·१ पलमें सूर्यकी गति = ३१′·३८०

बुधवारकी मध्यरात्रिका स्पष्ट सूर्य = ९$^{रा}$ ०° १′·३९८

∴ अमावस्यान्त कालिक स्पष्ट सूर्य = ९$^{रा}$ ०° ३२′·७७८

६० घड़ीमें चंद्रमाकी स्पष्ट गति = १४°१३′·७०३

३० " " = ७°६′·८५१५

३० पलमें " = ७′·११४२

१० " " = २·३७१४

१ "	"	= ·२३७१
·१ "	"	= ·०२३७
३० घड़ी ४१·१ पलमें	"	= ७°१६′·५६८

बुधवारकी मध्य रात्रिका स्पष्ट चंद्रमा = ८^रा^ २३°१६′·१८५

अमावस्यान्त कालिक स्पष्ट चंद्रमा	= ६^रा^ ०°३२′·७८२
६० घड़ीमें राहुकी गति	= ३′११″=३′·१८३३
३० " "	= १·५८१६
३० पलमें "	= ·०२६५
१० " "	= ·००८८
१ " "	= ·०००६
∴ ३० घड़ी ४१ पलमें राहुकी गति	= १′·६२२

बुधवारकी मध्यरात्रिका राहु =३^रा^ ६°२६·६११

∴ अमावस्यान्तकालिक राहु = ३^रा^ ६°२८′·०

सूर्य बिम्बका स्फुट व्यास $= \frac{६५०० \times ६१·३६}{५६·१३३}$ योजन*

चन्द्र बिम्बका स्फुट व्यास $= \frac{४८० \times ८५३·७०३}{७६०·५८३}$ योजन

चन्द्रकक्षामें सूर्य बिम्बका स्फुट व्यास

$= \frac{६५०० \times ६१·३६}{५६·१३३} \times \frac{४३२००००}{५७७५३३३६}$ योजन*

$= \frac{६०० \times ६१·३६ \times ४३२००००}{५६·१३३ \times ५७७५३३३६ \times १५}$ कला

=३३′·६३४

चन्द्रमाका स्फुट व्यास कलाओंमें

$= \frac{४८० \times ८५३·७०३}{७६०·५८३} \times \frac{१}{१५}$

=३४′·५५५

काशी में सूर्योदयका समय

पहले यह जानना आवश्यक है कि काशीमें सूर्योदयकाल-में सूर्यकी क्रान्ति क्या थी। यह तो प्रकट ही है कि सूर्योदय-कालमें सूर्यका निरयन भोगांश स्थूलतः ६^रा^ ०°१५′ के लगभग है अर्थात् सूर्य मकर राशिके आदि बिन्दुसे १५′ के लगभग पूर्व है इसलिए इसकी क्रान्ति पृष्ठ ४७० की सारणीके अनुसार २१°३२′·७ से कुछ ही कम होगी और दक्षिण होगी। काशीमें इसका चरांश १०°४७′ के लगभग होगा और चरकाल १ घड़ी ४७·८ पल होगा। इसलिए काशीमें स्पष्ट सूर्योदय ६ बजकर १ घड़ी ४७·८ पलपर होगा।

कालसमीकरण—इस दिनका मध्यम सायन भोगांश जानने-के लिए मध्यरात्रिके मध्यम सूर्यमें १५′ जोड़ देनेसे प्रातःकालिक मध्यम निरयन भोगांश होता है ८ रा २६° ४८′ के लगभग। इसमें यदि अयनांश २२°४१′ जोड़ा जाय तो मध्यम सायन भोगांश होता है ६^रा^ २२°२६′=२६२°२६′, इसलिए

काल-समीकरण = २३′·१७ ज्या २६२°२६′
+ ११२′·८३ कोज्या २१२°२६′
—१४८′ ज्या २ × २६२°२६′
= २३′·१७ (—ज्या ६७°३१′)
+ ११२′·८३ कोज्या ६७° ३१′
— १४८ ज्या ५८४°५८′ *

* देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २

* ५८४° ८′=३६०° + १८०° + ४४°५८′

= - २३' १'७ × ·९२४०

+ ११२'·८३ × ·३८२४

— १४८' (—·७°६७)

= — २१·४ + ४३·२ + १०४·६

= १२६·४, असु

= + २१ ·१ पल

काशीमें सूर्योदयका स्पष्टकाल=६ बजकर १ घड़ी ४७·८पल

कालसमीकरण = + २१·१ पल

∴ काशीमें सूर्योदयका मध्यमकाल = ६ बजकर २ घड़ी ८·९ पल

परन्तु अमावस्यान्तका मध्यमकाल= ६ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल

∴ सूर्योदयसे अमावस्यान्त तकका समय=१४ घड़ी ४५ पल

अर्थात् सूर्योदयसे १४ घड़ी ४५ पलपर काशीमें अमावस्याका अन्त हुआ।

अब यदि अमावस्यान्त कालिक सूर्यसे १४ घड़ी ४५ पलकी सूर्यकी गति घटा दी जाय तो सूर्योदय कालका स्पष्ट सूर्य ज्ञान हो जायगा जिससे सूर्यकी उदय कालिक क्रान्ति, चर इत्यादि शुद्धता पूर्वक जाने जा सकते हैं।

सूर्यकी ६० घड़ीकी गति=६१'·६३

∴ १५ " " = ९५'·३४

और १५ पलकी " = ०'·२५६

∴ ज्या ५८४°५८'=ज्या (१८०° + ४४°५८)= − ज्या ४४° ५८'= − ·७०६७

∴ १४ घड़ी ४५ पल की गति = १५'·०८४

अमावस्यान्त कालिक स्पष्ट सूर्य=९रा०°३२'·७७८

∴ काशीके सूर्योदयकालका स्पष्ट सूर्य = ९रा ०°१७'·६९४

= ९रा०°१७'·७ के लगभग

इस समयका अयनांश = २२°४१' के लगभग (पृष्ठ ३७३)

∴ काशीके सूर्योदयके सूर्यका सायन भोगांश

= ९रा२२°५८'·७=९ रा २२°५९'

सूर्यकी क्रान्तिज्या = $\frac{\text{ज्या ९रा २२ ५९' × ·३९७९}}{१}$

(देखो पृष्ठ ४५१)

= − ज्या ६७°१' × ·३९७९

= − ·९२०६ × ·३९७९ = − ·३६६३

∴ दक्षिण क्रान्ति=२१°२९'

काशीकी उदय कालिक चरज्या=स्परे २१°२९'स्परे २५°२०

=·३९३६ × ·४७३४=·१८६३

∴ चरांश=१०°४४'

∴ चरकाल=६४४ असु=१०७·३पल=१ घड़ी ४७·३पल

इसलिये काशीमें स्पष्ट सूर्योदय=६बजकर १ घड़ी ४७·३ पल पर हुआ।

काल-समीकरण =२१·१"

∴ काशीमें सूर्योदयका मध्यमकाल=६ बजकर २ घड़ी ८·४ पल

परन्तु अमावस्यान्तकाल=६ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल

∴ सूर्योदयसे अमावस्यान्तक कालतकका समय

=१३ घड़ी ४५·५ पल

सूर्योदयसे मध्याह्नका समय=१५ घड़ी-चरकाल

=१३ घड़ी १२·७ पल

∴ अमावस्यान्तका नतकाल (पच्छिम)=१ घड़ी ३२·८ पल

अमावस्यान्तकालका उदय लग्न त्रिभोन लग्न और मध्यलग्न सूर्य सिद्धान्तानुसार:—

सायन राशियोंके काशीके उदयासु (पृष्ठ ४६२ की तरह)

मेष	१३४५ असु	मीन
वृष	१५२५ ”	कुम्भ
मिथुन	१८२१ ”	मकर
कर्क	२०४१ ”	धनु
सिंह	२०६३ ”	वृश्चिक
कन्या	२००५ ”	तुला

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य $=8^{रा}0^\circ\ 32'.8$

अयनांश= $22^\circ\ 41'$

∴ अमावस्यान्तकालिक सायन सूर्य $=9^{र}\ 23^\circ\ 13'.8$

$=9^{र}\ 23^\circ\ 14'$

मकर राशिके भोग्यांश=६°४६′=४०६′

काशीमें मकर राशिके उदयासु=१८२१

१८०० : ४०६ :: १८२१ : मकरके भोग्यासु

मकरके भोग्यासु $= \frac{406 \times 1821}{1800} = 411$

सूर्योदयसे अमावस्यान्त काल तकका समय = १४ घड़ी

=४५·५ पल

= ८८५·५ पल

= ५३१३ असु

मकरके भोग्यासु ४११

कुम्भके उदयासु १५२५

मीन= ” १३४५

मेष ” १३४५

योग ४६२६

इस योगको ५३१३ असुओंसे घटानेपर ६८७ असु शेष होते हैं। यही वृष लग्नके गतासु हैं परन्तु वृषके उदयासु १५२५

१५२५ : ६८७ :: १८०० : वृषके गतांश

∴ सायन वृष लग्नके गतांश $\frac{687 \times 1800}{1525}$=८११कला१३°३१′

∴ सायन उदय लग्न ३०° + १३°३१′ = ४३°३१′

∴ अमावस्यान्त कालिक सायन त्रिभोन लग्न=४३°३१′ − ९०°

=३६०° + ४३°३१′ − ९०°

=३१३°३१′

अमावस्यान्तकालिक सूर्य सायन मकर राशिमें है जिसके लङ्का में उदयासु १६३१ हैं (देखो पृष्ठ ४६२)। इसलिये सायन मकर राशि १६३१ असुओं में किसी स्थानके याम्योत्तरवृत-का उल्लंघन करता है (देखो त्रि० श्लो० ४८ और पृ० ४८४)। अमावस्यान्तकाल में सूर्य का पच्छिम नत १ घड़ी ३२·२ पल =९२·८ पल=५५७ असु।

जब १६३१ असुओं मकर राशिका ३० अंश या १८०० याम्योत्तर वृत्तको उल्लंघन करना है तब ५५७ असुओंमें $\frac{557 \times 1800}{1631}$=कला=५१६ कला=८°३६′ करेगा। इसलिये सूर्य से मध्यम लग्न ८° ३६′ पूर्व है जिसे सूर्यके भोगांशमें जोड़ने पर मध्यम लग्नका ज्ञान होगा। परन्तु इतना जोड़ने पर

कुम्भ राशि मध्य लग्नमें हो जाती है इसलिये उत्तम है कि पहिले देखा जाय कि मकरराशि कितने समय में उल्लंघन करती है और जितना समय शेष रह जाय उतने में कुम्भ राशि कितना चलती है।

अमावस्यान्त कालिक सायन सूर्य ९ रा २३° १४′ है इसलिये मकरका ६°४६′ भोगांश है जो ४०६′ के समान है।

१८०० : ४०६ :: १९२१ : मकरके भोग्यासु

$\therefore$ मकरके भोग्यासु $=\dfrac{४०६ \times १९२१}{१८००}=४३५\cdot५$ असु

परन्तु नतकाल ५५७ असु है इसलिये कुम्भके गतासु=१२१·५ असु। अब कुम्भके लंकाके उदयासु १७९४ हैं इसलिये

१७९४ : १२१·५ :: १८०० : कुम्भके गतांश

$\therefore$ कुम्भके गतांश $=\dfrac{१२१\cdot५ \times १८००}{१७९४}=१२२$ कला $=२°\ २′$

$\therefore$ अमावस्यान्त कालमें कुम्भ राशिका २° २′ मध्यलग्न है।

अर्थात मध्यलग्नका सायन भागांश=१०$^{रा}$२° २′

$$उदयज्या=\frac{लग्नज्या \times परम\ क्रान्तिज्या}{लम्बज्या}$$

$$=\frac{ज्या\ ४३°३१′ \times ज्या\ २३°\ २७′}{ज्या\ (\ ९०-२५°\ २०′\ )}$$

$$=\frac{\cdot६८८=६ \times \cdot३९७९}{\cdot९०३८}=\cdot३०३२$$

$\therefore$ उदय लग्नकी अग्रा=१७°३९′

मध्य लग्नका सायन भोगांश= १०$^{रा}$२° २′=३०२°२′

$\therefore$ मध्य लग्नकी क्रान्तिज्या=ज्या ३०२°२′ × ज्या २३°२७′

$=-$ज्या ५७°५८′ × ज्या २३°२७′

$=-\cdot८४७७ \times \cdot३९७८$

$=-\cdot३३७२$

$\therefore$ दक्षिण क्रान्ति =१९°४३′

काशीका उत्तर अक्षांश=२५° २०′

$\therefore$ मध्य लग्नका नतांश=४५° ३′

पृष्ठ ५९४ के प्रथम समीकरणके अनुसार,

त्रिभोन लग्नकी नतांश ज्या=कोज्या १७°३९′ × ज्या ४५°३′

$=\cdot९५२९ \times \cdot७०७१$

अथवा हक्क्षेप=·६७३४

$\therefore$ त्रिभोन लग्नका नतांश =·४२°२४′

दृग्गति=त्रिभोन लग्नकी उन्नतांश ज्या

=ज्या (९०°−४२°२४′)

= ज्या ४७°३६′

=·७३८५

यहाँ ज्या और कोटिज्याकी दशमलव सारणीके अनुसार जिसमें त्रिज्या १ मानी गयी है दृग्गतिकी गणना की गयी है। यदि यह सारणी न हो तो पृष्ठ ५९४ में जो रीति बतलायी गई है उसीसे काम लेना चाहिये। यदि लघुरिक्थ सारणीसे काम लिया जाय तो और भी सुविधा होगी। त्रिभोन लग्नकी नतांश जाननेकी भी सारणी बनायी जा सकती है जिससे सुगमता पूर्वक काम लिया जा सकता है। पृष्ठ ४८२ में तथा और स्थानोंमें बतलाया गया है कि किसी

राशिके प्रत्येक अंश समान कालमें उदय नहीं होते इसलिये यदि अनुमानसे काम लिया जायगा तो राशिके उदय बिन्दु का ज्ञान स्थूल रहेगा। ऐसी दशामें ऊपर बतलायी गयी रीतिसे जो त्रिभोन लग्न आवेगा उसमें भी स्थूलता रहेगी क्योंकि क्रान्तिवृत्तिके उदय बिन्दुसे ९० अंश घटानेपर त्रिभोन लग्न आता है। इसलिये आवश्यक है कि सूर्य ग्रहण-की गणनाके लिये क्रान्तिवृत्तके उदय बिन्दु अथवा उदय लग्नका ज्ञान शुद्धता पूर्वक किया जाय। इसी विचारसे नीचे की रीति लिखी जाती है।

विषुवकाल—जिस क्षण वसंत सम्पात बिन्दु या सायन मेष किसी स्थानके पूर्वक्षितिजपर आता है उस क्षणसे किसी इष्ट कालतकके समयको विषुवकाल कहते हैं। पृष्ठ ४६७ ४६८ में बतलाया गया है कि प्रयागमें अयन भागके उदयासु कैसे जाने जाते हैं। वहां अयन भागके उदयासु १००५ बतलाये गये हैं इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि प्रयागमें जिस समय निरयन मेषका आदि बिन्दु क्षितिज वृत्त पर आता है उस समय विषुवकाल १००५ असुके समान होता है। इसी प्रकार जिस समय प्रयागमें निर-यन वृषभ आदि बिन्दु सूर्य क्षितिजपर आता है उस समय विषुवकाल २४७० असुके समान होता है। इससे प्रकट है कि यदि यह जानना हो कि किसी स्थानमें किस समय विषुव काल क्या होता है तो पहले उस समयका उदयलग्न जानना चाहिये फिर उदय लग्नका विषुवांश और चरांश जानकर दोनोंका अन्तर निकालना चाहिये। यही अन्तर उस समयका विषुवकाल होता है।

इसी प्रकार यदि किसी समयका विषुकाल ज्ञात हो तो उस समयका उदयलग्न भी जाना जा सकता है। परन्तु ऊपरकी विलोम रीतिसे यह काम उतना सुगम नहीं है। इसलिये विषुवकालसे उदयलग्न और उदय लग्नसे विषुव काल सीधे ही जाननेकी रीतियाँ यहाँ लिखी जाती हैं:—

उदयकालकी अग्रा—नवीन रीति से:—

चित्र ६१ से स्पष्ट है कि गोलीय त्रिभुज क व पू में,

$$\frac{\text{ज्या पूका}}{\text{ज्या}\angle\text{का वपू}} = \frac{\text{ज्या वका}}{\text{ज्या}\angle\text{व पूका}}$$

यहाँ पूका उदय लग्न का की अग्रा है, < का वपू परम क्रान्ति है, वका उदय लग्नका सायन भोगांश है और < व पू का = १८०° − ∠व पू द = १८०° − इष्ट स्थानका लंबांश

∴ ज्या ∠ व पू का = ज्या (१८०° − लम्बांश)

= ज्या लम्बांश

= कोटिज्या अक्षांश

$$\therefore \text{ ज्या पूका} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या सायन भोगांश}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$$

यह भी उदय कालिक अग्रा जाननेका एक सूत्र है जो पृष्ठ ३६२ के सूत्र और पृष्ठ ४०१ के सूत्र (३) के मेलसे भी प्राप्त हो सकता है। इसी सूत्रसे सूर्यकी उदयकालिक अग्रा इस प्रकार जानी जा सकती है—

माघी अमावस्याके सूर्योदयके सूर्यका सायन भोगांश

= ९ रा २२° ५८'

= २९२° ५८'

काशीका अक्षांश = २५° २०'

शेष फिर

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २४ } धन, संवत् १९८३ { संख्या ३

उत्पादन (Production)

व्यवस्था (Organisation)

[ले० श्री विश्वप्रकाश विशारद]

त लेखोंमें यह बतलाया गया है कि उत्पादनके लिये भूमि, श्रम और पूंजीकी कितनी आवश्यकता पड़ती है। वास्तवमें उत्पादनमें इन तीनोंका होना अत्यन्त ही आवश्यक है पर उद्योगकी वृद्धिके कारण एक और चीजकी आवश्यकता होती है—वह है व्यवस्था। भूमि, श्रम और पूंजी तीनों बिखरी हुई चीजें हैं बिना उनके मिलाये हुए कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये एक ऐसे व्यवस्थापककी आवश्यकता अनुभव हुई जो इन बिखरे पदार्थोंको मिलावे। इनके इकट्ठा करनेके लिये भी बुद्धिकी आवश्यकता होती है। प्रश्न यह होता है कि इन पदार्थोंको किस प्रकारसे मिलाया जाय कि अधिकसे अधिक लाभ हो सके। कौनसे पदार्थकी कम आवश्यकता है? किसकी अधिक है? इनका क्या अनुपात हो? इत्यादि इत्यादि।

इन प्रश्नोंका उत्तर देना कोई आसान काम नहीं है। मान लीजिये कि आपने विचार लिया है कि प्रत्येक की १ मात्रा (dose) लगाई जाय। १ मात्रा भूमिकी, १ मात्रा श्रम की, एक मात्रा पूंजी की। कुल ३ मात्रायें लगीं। यहभी मान लिया जाय कि तीनों मात्राओंका मूल्य ३) हुआ। इन तीनों मात्राओंसे उत्पादन होगा। परन्तु यदि उत्पादित पदार्थ केवल २) का हुआ तो व्यवस्थापक इन तीनों मात्राओंका समान अनुपात न रक्खेगा। वह समझ जायगा कि इस अनुपात से उसका लाभ नहीं होता, १) हानिही होती है। व्यवस्थापक

सदा यही चाहा करता है कि उसको कमसे कम व्यय करना पड़े और अधिकसे अधिक लाभ हो।

इस लेखमें हम यह लिखेंगे कि व्यवस्थापक किस प्रकारसे अधिकसे अधिक लाभ उठा सकता है।

स्थानापत्यका सिद्धान्त (Law of substitution)

स्थानापत्यके सिद्धान्तसे यह तात्पर्य है कि व्यवस्थापक उत्पादनमें उन्हीं वस्तुओंका प्रयोग करे जिससे कि अधिकसे अधिक उसको लाभ हो सके। यदि एक वस्तुसे दूसरीकी अपेक्षा हानि होती है तो वह पहली वस्तुसे दूसरी वस्तुका स्थापन कर देगा, जहाँ पर एक हलसे काम चल सकता है वहाँ दो हलोंका रखना मूर्खता ही है। जहाँ दो नौकर एक खेतको जोत सकते हैं वहाँपर ३ नौकर रखना व्यर्थ है। आवश्यकतासे अधिक भूमि का लेना जो कि बिना कामके पड़ी रहे सर्वथा अनुचित कार्य्य है। यदि किसीके पास रुपया अधिक है तो इसको उस कार्य्यमें लगाना चाहिये जिससे अधिकसे अधिक लाभ उठाया जा सके। वास्तवमें व्यवस्थापककी योग्यता इसीमें है कि अपने रुपयेको इस प्रकार विभाजित करे जिससे अधिकसे अधिक लाभ होसके। स्थानापत्यका सिद्धान्त ऐसी ही अवस्थाओंके लिये है। और इसका प्रयोग तीन प्रकारसे होसकता है।

(१) भूमिका श्रमसे और श्रमका भूमिसे स्थापनः—

जहाँपर भूमिका मूल्य अधिक होता है वहाँपर यही सिद्धान्त प्रचलित है। अमेरिकामें एक भूमिपर पचास पचास मंजिलके मकान बने होते हैं। ऐसा होनेका भी कारण है। वहाँ पर इतनी भूमि नहीं है कि सब मनुष्योंके रहनेके लिये समुचित स्थान हो ऐसी अवस्थामें भूमिका मूल्य भी अधिक होता है। इस भूमिके मूल्य को बचानेके लिये लोग अधिक धन श्रमके ऊपर व्यय करते हैं। यही कारण है कि भारतवर्षके बड़े २ नगरोंमें जैसे कलकत्ता, बम्बई आदिमें मकान कई मंजिलोंके बनाये जाते हैं। खेती में भी प्रायः ऐसा ही किया जाता है। जब भूमि कम होती है तो उसी भूमिपर अधिक मनुष्य रखकर अधिक जुताईकी जाती है, जिससे अधिक अनाज उत्पन्न हो सके। इसके विपरीत यदि भूमि सस्ती हो तो अधिक भूमि पर और कम श्रम पर व्यय किया जाता है।

(२) भूमिका पूंजी से और पूंजीका भूमिसे स्थापनः—

यदि भूमि कम होती है तो खेतमें खाद इत्यादिक अधिक डाली जाती। बीज जहाँ तक होसकता है अच्छे ही बोये जाते हैं। जानवरोंसे खेतकी रक्षा करने के लिये खेतके चारों ओर दीवाल बनाई जासकती है। इस प्रकारसे अधिक पूंजी व्यय करके हम कार्य निकाल सकते हैं परन्तु यदि पूंजी पर अधिक व्याज देना पड़ता है तो कम पूंजीसे काम निकाला जाता है। और अधिक भूमि काममें लाई जाती है।

(३) श्रमका पूंजी से पूंजी का श्रम सेः—

इसका उदाहरण मशीनरी हैं। वर्त्तमान समयमें मशीनोंका प्रचार बहुत बढ़ रहा है जिसके कारण जो वस्तु पहले दस रुपयेमें बनती थी वह पाँच रुपयेही में बन सकती है। मशीनोंके चलनेसे श्रम बहुत सस्ता होरहा है। इससे विपरीत अवस्था भारतवर्षकी है। यहाँ पर इतना काम नहीं होता जिससे बड़ी बड़ी मशीनें चलाई जा सके। और यहाँ पर मजदूर भी कम धन देने पर मिल जाते हैं। इसलिए पूंजी के स्थान में श्रमकी स्थापना हो जाती है।

फैक्ट्रीज़ (Factories)

फैक्ट्रीजका वर्त्तमान स्वरूप बहुत परिश्रमके बादही हो पाया है। भारतवर्षमें इनका अधिक प्रचार नहीं है और यहाँपर हम उन्हींका व्यवहार करते हैं जो बहुत दिनों से करते आये हैं। हमारे देशमें मजदूरही अपने व्यवस्थापक होते हैं। प्रातःकालको श्रम ढूढ़नेके लिये घरसे निकलते हैं और जो काम उनको मिल जाता है उसीको वे करते हैं। पर ऐसा करनेमें उनका बहुतसा समय नष्ट होजाता है। बहुतसे मजदूर दिनभर फिरने परभी बहुत कम काम ढूंढ़ पाते हैं। इसके अतिरिक्त वे अपने औजारभी ले जाते हैं। उन के औज़ार ऐसे नहीं होते हैं जिससे अधिक कार्य्य निकल सके।

फैक्ट्रीजमें इन बातोंकी बड़ी सुविधा रहती है। व्यवस्थापक बहुतही योग्य और चतुर मनुष्य होता है वह देखता रहता है कि किस वस्तुकी किस समय आवश्यकता होगी। वह फैशनोंका अध्ययन करता रहता है। वर्त्तमान समयमें फैशन दिन प्रतिदिन बदलते रहते हैं और पुरानी चालकी चीजको लोग पसन्द नहीं करते। आजकलकी कुर्सी और पुरानी कुर्सियों में बड़ा भेद है। इसी प्रकार आजकलके फैशनेबिल कोटों और पुरानी चालके अंगरखेमें बहुत भेद है। स्वतंत्र रूपसे काम करने वाले मजदूर इनसे सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं। फैक्ट्रीजमें एकसे एक योग्य पुरुष रक्खे जाते हैं। इनके साथ काम करनेसे अनेकों लाभदायक बातें मालूम हो सकती हैं जो मजदूर किसी अच्छी फैक्ट्रीमें काम सीखते हैं वे प्रायः बहुतही बुद्धिमान पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ है औजारोंका। फैक्ट्रीमें अनेकों मशीने होती है जिनसे काम करनेमें बहुत आसानी होती है। काम अच्छा और जल्दी होता है। स्वतन्त्र मजदूर इनसे लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि न इनके उपयोग की विधिही जानते हैं और न उनके पास इतनी पूंजीही है कि जिससे कि वे उनको खरीद सके। यदि खरीदभी लें तो उनके पास इतना कामही नहीं है जो उन मशीनोंसे लिया जासके।

इन लाभोंके अतिरिक्त कुछ हानियांभी हैं। मजदूर व्यवस्थापकके गुलाम होजाते हैं और व्यवस्थापक उनसे जितना काम चाहें लिया जा सकता है उससे अधिक काम ले लेते हैं। यूरोप और अमरीकामें इन मजदूरोंकी बड़ी दुर्दशा होजाती है जिसके कारण राज्य नियम बनाया जाता है कि उनसे अधिक काम न लिया जा सके। मजदूरों को अपनी इच्छाके विरुद्ध भी ऐसे स्थानोंमें काम करना पड़ता है जहांकी वायु दूषित रहती है। उनका स्वास्थ्य खराब होजाता है। पर यह सब कुरीतियाँ बहुत कुछ दूर होसकती हैं यदि व्यवस्थापक दयालु हों और बहुत ज्यादा अपने लाभकी इच्छा न करे।

भारी मात्रामें उत्पादन [Large scale production]

इस नवीन युगमें प्रायः भारी मात्रामें ही उत्पादन किया जाता है। छोटे २ कारखानोंके स्थानमें मीलोंकी जगह घेरनेवाली फेक्ट्री खुल गई हैं। छोटी कलोंके स्थानमें लाखों रुपयेके मूल्यकी मशीनें बन गई हैं। जहाँ पर दोचार नौकर रक्खे जाते थे वहाँ हजारों की संख्यामें मजदूर काम करते हैं। इस प्रकारके उत्पादनमें अनेकों लाभ है।

सबसे पहले तो श्रममें ही लाभ होता है। जहांपर हजारों आदमी काम करते हों वहाँपर कार्य्य का विभाजन (Division of Labour) भली प्रकार हो सकता है। एक चीजके बननेमें कई अवस्थायें होती हैं और इन सब अवस्थाओंको पार करकेही एक चीज बन पाती है। दियासलाईहीको लिजिये। इसमें एक तो लकड़ी काटनेकी मशीन होती हैं जिससे छोटी २ तीलियां काटी जाती है। इसके बाद मसाला लगाया जाता है। एक मशीनसे दियासलाई रखनेको डिबिया बनाई जाती है। फिर गिन २ कर दियासलाइयां इस डिब्बेमें भरी जाती हैं। यदि एक कारखानेमें बहुत मजदूर होंगे तो व्यवस्थापक एक कामको एक आदमी के सुपुर्द कर देगा। एक आदमी जो बहुत दिनोंतक एक कामको करता है उस कामको वह जल्दी और अच्छी तरह कर सकता है।

व्यवस्थापकको कम मैनेजर, कोषाध्यक्ष आदि रखने पड़ते हैं। यदि थोड़े २ मजदूर अलग छोटे २ कारखानोंमें काम करते हों तो प्रत्येक कारखानेमें एक मैनेजर और एक कोषाध्यक्ष रखना पड़ता है। पर बड़े कारखानेमें मजदूरोंकी अनुपातसे कम मैनेजर इत्यादि रखनेसे काम चल सकता है। बड़े कारखाने का नाम सुनकरही बहुतसे मजदूरों काम करनेके लिये आजाते हैं।

बड़ा कारखाना होनेसे स्थानकी भी कम आवश्यकता होती है। छोटे कारखानोंमें बहुतसी मशीनोंसे दिनभर काम नहीं लिया जाता वे स्थान घेरे पड़ी रहती हैं। छोटी मशीनोंसे काम भी धीरे २ होता है

और बहुत सा अनबना सामान जगह घेरे पड़ा रहता है। पर बड़े कारखानेमें प्रत्येक मशीनसे हर समय काम लिया जाता है। एक तरफ सामान तय्यार होता रहता है और दूसरी तरफ बिकता जाता है।

पूंजीकी भी बचत होती है। बड़ी पूंजी वाले व्यवस्थापक अच्छीसे अच्छी मशीने खरीद सकते हैं। छोटे पूँजीवाले छोटी मशीनोंसे काम चलाते हैं और उनको किसी चीजके बनानेमें अधिक व्यय करना पड़ता है।

चीजके खरीदने और बेचनेमें भी कम व्यय होता है। बड़े कारखाने वाले बड़े विज्ञापन निकालते हैं। इनके एजन्ट भी सभी बड़े २ नगरोंमें पाये जाते हैं। खरीदने वालोंको भी बड़े कारखानेसे खरीदनेमें सुविधा होती है? बड़े कारखानेमें तरह तरहके पदार्थ बनते और एक पदार्थके भिन्न भिन्न २ नमूने होते हैं। खरीदार अपनी फैशनकी चीजोंको खरीद सकते हैं।

बड़े कारखानोंमें गौण पदार्थों (ByeProducts) का भी उचित उपयोग लिया जा सकता है। रुईको साफ करते समय बिनौले निकलते हैं, इनका तेल निकाला जासकता है पर छोटे छोटे कारखानोंमें इसकी परवाह नहींकी जाती। चीनी या शक्करके कारखानेमें ईखकी बहुतसी छोई बचजाती है, बहुतसे स्थानोंपर इनकी टोकरियां बनाली जाती हैं। रुईके कारखानेमें बहुतसी रुई जमीनपर गिर जाती है, इनसे बढ़िया चिकना कागज बनाया जासकता है। पर इन पदार्थोंका उपयोग बड़ी २ फैक्ट्रीहीमें होसकता है। छोटी २ फैक्ट्री इनका उपयोग नहीं उठा सकती विचार करके देखा जाय तो इसमें कईसौ रुपयेका नुकसान हो जाता है।

बड़े कारखानोंमें बहुतसे विशेषज्ञ इसलिये रक्खे जाते हैं कि वे नवीन आविष्कारकरें। नये आविष्कारोंमें बहुतसा समयभी व्यय किया जाता है। पर छोटे पूंजीवाले ऐसा काम नहीं कर सकते हैं।

छोटी मात्रामें काम करनेमें इन हानियोंके अतिरिक्त कुछ लाभ भी होता है। इसमें देखभाल आसानीसे हो सकती है क्योंकि कि थोड़ेसे आदमी काम करने वाले होते हैं। व्यवस्थापक प्रत्येक मजदूरपर अपनी निगाह रखसकता है पर बड़े कारखानेमें उसको बहुतसे मैंनेजर रखने पड़ते हैं। इनका लाभमें कोई हिस्सा नहीं होता इनसे उनको किसी तरहकी परवाह नहीं होती यदि नुकसान होगा तो व्यवस्थापकका, यदि लाभ होगातो भी उसीका।

इसके अतिरिक्त बड़ी मात्रामें कार्य्य करनेमें बड़ा जोखम होता है। व्यवस्थापक योग्य नहीं हो तो सब धनको वह नष्ट कर देता है। बहुतसे कारखाने इसी लिये टूट जाते हैं कि व्यवस्थापक इतनी बड़ी पूंजीका प्रबन्ध नहीं कर पाते। छोटा व्यवस्थापक अपने खरीदारोंसे अधिक मिलता रहता है और उसको पता चल सकता है कि किस चीजकी मांग अधिक है और उतनाही बनाता है। बड़े कारखाने वाले कभी २ आवश्यकतासे अधिक बनालेनेमें धोखा खाजाते हैं। उनका माल पड़ा रह जाता है।

उद्यमकी स्थानीयता (Localization of industries)

प्रत्येक उद्यम हर स्थानपर नहीं किया जासकता। और स्वाभाविक तौरसे जिस स्थानपर अधिक सुविधा होती है वहींपर एक उद्यम आरम्भ किया जाता है। आजकल यह भी देखा जाता है कि एक स्थानपर एक उद्यमके लिये अनेकों कारखाने हैं। यह इस बातका स्वतः प्रमाण है कि वह उद्यम उस स्थानपर बहुत सुविधासे होसकता है। पर प्रश्न यह है, कि एकही स्थानपर एक उद्यम क्यों किया जावे? वैसे देखने से तो यह सिद्ध है कि एक पदार्थकी खपत सभी जगह होती है और उसके प्रत्येक प्रान्तमें कारखाने न होनेसे बहुत सा रुपया मालके भेजनेमें लग जाता है। मान लीजिये कि कपड़ेकी हर एकको आवश्यकता होता है। यदि प्रत्येक नगरमें या कम से कम दो तीन नगरोंमें एक कपड़ेका कारखाना हो तो उन तीनों नगरोंमें एक कारखानेसे काम चल जायगा और जो रुपया रेलमें लगता है वह बच रहेगा। पर ऐसा

करनेमें बहुत सी असुविधायें होती हैं जिनका वर्णन यहाँ किया जाता है।

उद्यमके लिये सबसे अधिक उस वस्तुकी आवश्यकता होती जिसका उद्यम किया जाता हो। कपड़े बुननेके लिये रुईकी सबसे पहले आवश्यकता होती है। पीतलके बर्त्तन बननेके लिये पीतलकी। गरम कपड़े बननेके लिये ऊनकी। रेशमके कपड़ेके लिये रेशमकी। बोरे बननेके लिये जूटकी। इत्यादि इत्यादि। ऐसे स्थान पर जहाँ रूई न पैदा होती हो कपड़ा बुनने का कारखाना खोलना मूखता है; जहाँ पर ऊन न मिलती हो वहाँ गरम कपड़े बनाना कोई चातुर्य्यका काम नहीं हैं। जूट भारतवर्षमें बगाल प्रान्तमें अधिक होती है। यदि बोरे बनानेका कारखाना पंजाबमें खोला जाय तो बहुत सा रुपया बंगालसे पंजाब तक जूट पहुँचनेमें लग जायगा। यदि राजपूतानामें रूई का कारखाना खोला जाय तो वह सफल नहीं हो सकता। भारतवर्षमें बहुतसे उद्यम इसलिये सफलीभूत नहीं होते कि उनके बनाने के पदार्थ भारतवर्षमें नहीं पाये जाते। दियासलाई को लीजिये। इसके बनानेमें दो चीजोंकी अधिक आवश्यकता होती है—गन्धक और लकड़ीकी। इस देश में गन्धक बहुत कम पैदा होता है। वैसी लकड़ी भी यहाँ पर नहीं मिलती। इन दोनों चीजों को प्रायः बाहरसे मंगाना पड़ता है। इसमें बहुत व्यय होता है।

मशीन चलाने की शक्ति जहाँ पर बहुत आसानी से मिलती है वहाँ पर कारखाने अधिक खोले जाते हैं। इङ्गलैण्ड देशमें जहाँ पर कोयले की खाने हैं वहाँ पर बड़ी बड़ी फैक्ट्रीज़ बन गई हैं। कोयला एक ऐसी चीज़ है जिसके ले जाने में बहुत व्यय होता है इसलिये लोग अन्य वस्तुओं को कोयलेके पास ले आते हैं। बहुत से स्थानों पर पानी से बिजली निकाली जाती है और यह बिजली सस्ती भी होती है। बम्बई में बहुतसे कारखाने इसीसे चलते हैं।

इसके अतिरिक्त मजदूर जहाँपर अधिक संख्यामें और कम मजदूरीपर मिलते हैं वहाँ कारखाना खोलनेमें विशेष सुविधा रहती है। यदि कोई रेगिस्तान या जंगल में कारखाना खोले तो उसको श्रम नहीं मिल सकता। पर एक घनी वस्तीके पास खोलने से श्रम आसानी से मिल जाता है।

एक स्थान पर एक उद्यमके अनेक कारखाने होने से विशेष लाभ होता है। वह स्थान उस उद्यमके लिये प्रसिद्ध हो जाता है और छोटे कारखानोंकी बनी चीजोंका भी उतना ही मान होता है जितनी किसी बड़े कारखानेकी बनी चीज़का। बहुतसी मशीने एक ही स्थानपर चलनेसे उनके टूटे पुर्जोंका मिल जाना सरल हो जाता है। अमेरिका आदि देशोंमें इसकी बड़ी सुविधा है। व्यवस्थापक कम्पनीको फोन (Phone) कर देता है और टूटे पुर्जे तीन चार घण्टेमें दूसरी गाड़ी से आ जाते हैं। पर भारतवर्षमें इसकी विशेष असुविधा है। टूटे पुर्जेके आनेमें कई महीने लग जाते हैं ऐसे स्थानोंपर गौण पदार्थों का (Bye products) विशेष उपयोग हो जाता है और एक उसका भी उद्यम आरम्भ हो जाता है।

अधिक प्राप्तिका सिद्धान्त (Law of Increasing Returns)

भूमि विषयक लेखमें न्यून प्राप्तिके सिद्धान्तका वर्णन किया गया है उस सिद्धान्तके अनुसार एक भूमिपर कई मात्रायें (Doses) प्रयोग करते जाँय तो प्रत्येक मात्रा से न्यून प्राप्ति होती जायगी।

मान लीजिये कि एक भूमिपर पांच मात्रायें लगाई गई। पहली मात्रासे सब से अधिक प्राप्ति दूसरी से कुछ कम; तीसरीसे और कम, चौथीसे और कम; इसा प्रकार ज्यों ज्यों हम नई नई मात्रायें लगाते

जायगी प्राप्ति न्यून होती जायगी यह न्यून प्राप्ति है। भूमिकी उपजपर इस सिद्धान्तकी अटलता है।

पर अन्य उद्यमों में अधिक मात्रायें देने से दूसरा ही फल होता है। कुछ दिनों तक सम-प्राप्ति (constant Return) होती है।
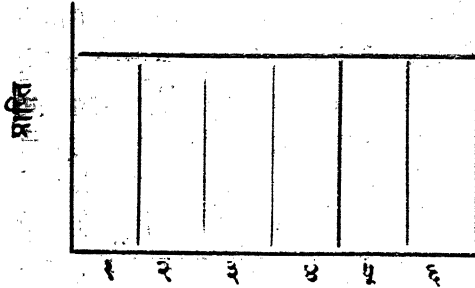
यहाँ पर एक ही उद्यम में छः मात्रायें लगाई गई और प्रत्येककी प्राप्ति समान रही। पर बड़े २ कारखानेमें अधिक प्राप्ति होती (Increasing Returns) होती है।
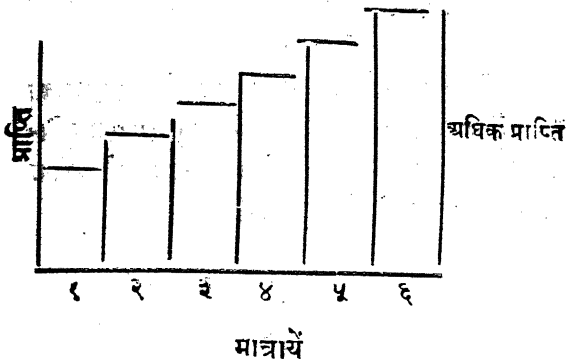
मात्रायें

उद्यम में सदा अधिक ही प्राप्ति होती है। इसका भी कारण है। अधिक मात्रायें देनेसे कार्य विभाजन, मैनेजर आदिकी न्यूनता, गौणपदार्थकी उपयोगिता बढ़ जाती है।

केदार-बद्री यात्रा

[ले० श्री शिवदास मुकर्जी बी० ए०]

(गतांक से आगे)

ता० ४-५-२३को करीब १०॥ बजे श्रीकेदार जीके दर्शन आदि करके फिर गौरीकुंडको यात्रा किया और ३॥ बजे गौरीकुंड पहुँचा। यहाँ रातको ठहरकर ता० ५-५-२३को करीब ४॥ बजे १० मील दूरीपर फाटाचट्टीमें पहुँचे। यहाँ भोजन व विश्राम करके दूसरी बेला ५० मील पर नालापैत चट्टीमें ६ बजे शामको ६ बजे पहुंचा। वहाँ दूध पी व कुछ जलपान करके रातको विश्राम किया। ता० ६-५-२३को ४॥ बजे चाँदनी रातमें रवाना हुए और मन्दाकिनी गङ्गा पार होकर गुप्तकाशीके उसपार सामने उषामठ करीब ६॥ बजे पहुँचे। यहाँ एक छोटा डाकघर और एक अस्पताल है। उषीमठमें श्रीकेदारनाथजीकी पूजा जाड़े भर होती है। यहाँ एक मन्दिर व उसके भीतर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ देखने योग्य हैं जिनमें ओंकारनाथ महादेव, राजा मानधाता, पंचमुखी केदार, उषामती और अनिरुद्ध जो (श्रीकृष्णजीका पौत्र था) की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। उषामती निकटके शोभितपुरके वान राजाकी और जिनका लड़की थीं और जिनका श्री अनिरुद्धसे व्याह हुआ था उन्हींके नामसे उषीमठ नाम पड़ा। यहां श्री नाथके रावल या महन्त बड़े मठमें रहते हैं। यहीं केदार-इनकी गद्दी है। यह मलाबार जिलेके दाक्षिणात्य ब्राह्मण हैं। मलाबार केरल नामक स्थानमें महात्मा शङ्कराचार्यकी जन्मभूमि है। उन्होंने ही इस मठको स्थापित किया था और अपने प्रान्तवासियोंको यह रावलका पद दे गये हैं। कहते हैं कि उनके समयसे अबतक १२४ रावल हो चुके हैं और वर्तमान रावल १२५ वें रावल हैं।

इस मठ (मन्दिर) के आँगनके एक तरफ दालान में एक पुरातन देवीका मन्दिर है। कहते हैं कि इस देवालयकी प्रतिष्ठा मठ-निर्माणके पहले उषाने की थी। यहाँ नवदुर्गाकी मूर्ति है। और यहीं उषामतिने तपस्या

की थी। ऊखीमठसे ६ मील उत्तर-पूर्व कोनेमें दो मील लम्बा और आध मील चौड़ा 'दिउरी ताल" है जो नैनीतालकी हदसे तिगुनेसे भी बड़ा है।

ऊखीमठमें दर्शनादि करके क़रीब ८ बजे रवाना होकर नालासे ९ मील दूरी पर डेराचट्टीमें पहुंचकर भोजन आदि करके ३ बजे निकलकर कठिन चढ़ाई शुरू करके ६ मील दूरी पर चोपतापट्टी शामको चिराग जलनेसे बाद पहुंचे। चढ़ाई इतनी कष्टप्रद थी कि कण्डीवाले पहुंच नहीं पाये। इससे आग जलाकर कष्टसे रात बिताई। चोपताके निकट सफेद चिकने पत्थर मिलते हैं।

७-५-२३ को प्रातः ५ बजे कण्डीवाले पहुँचे, तब चोपतासे रवाना होकर उतराई पार करके ८ मीलपर मण्डलचट्टी १० बजे पहुँचे। यहाँ रोटी व आलूकी तरकारी खाकर एक घंटा विश्राम करके ३॥ बजे रवाना हुए ७ मील पर गोपेश्वरचट्टीमें ५ बजे शामको पहुँचे। यहाँ गोपेश्वर महादेवका एक पुराना मन्दिर है और इस मन्दिरके चारों तरफ आंगन है जिसमें एक लोहेका बड़ा त्रिशूल है जिसे परशुरामका त्रिशूल कहते हैं। और यहीं गोपेश्वरके रावलकी गद्दी है।

(८-५-२३) प्रातः ५॥ बजे यहाँसे रवाना होकर ६ मील फासले पर शियाचट्टीमें १० बजे पहुंचे। इस चट्टीके पानीमें गन्धककी सी गन्ध है। रास्तेमें लालसांगा या चमालीका पुल मिला। यहां बड़ा डाकखाना, तारघर व डिपुटी कमिश्नरका केम्प रहता है। यहाँसे एक रास्ता रुद्रप्रयागको चला गया है।

शियाचट्टीमें भोजन व विश्राम करके करीब ४ बजे रवाना होकर ४ मील फासले पर पीपल कोटीमें पहुंचे। यहाँ शिवलालशाह नामी एक युवक दूकानदारसे भेंट हुई। यह छात्र देविलालशाह बी. एस० सी. के आत्मीय हैं। यहीं मोहनलाल भवानीदास शाह दूकानदारसे भी परिचय हुआ। यहीं रातको विश्राम किया।

९-५-२३ को प्रातः ४॥ बजे रवाना होकर १० मीलकी दूरीपर गरुड़ गंगा चट्टीमें करीब ९ बजे पहुँचे। यहीं स्नानादि किया। पीपल कोठी व गरुड़ गंगाके बीच पहाड़ोंमें स्लेट मिलता है। कहते हैं कि गरुड़ गंगामें स्नान करनेसे सर्पाघात नहीं होता और नहाते समय जो पत्थर उठा लिया जाता है उसको घिसकर सर्पाघातपर लगानेसे आराम होता है।

गरुड़गंगासे क़रीब ८ बजे रवाना होकर १०॥ बजे पाताल गंगा पहुँचे। यहाँ भोजन व एक घंटा विश्राम करके क़रीब २॥ बजे चलकर ४ मीलके फ़ासलेपर कुम्हारचट्टीमें ४ बजे शामको पहुंचे। आँधी-पानी तथा एक मील की चढ़ाई-उतराईके कारण मार्ग बहुत कष्टप्रद हुआ। अतः रातको कुम्हारचट्टीमें रहे और आलू उबालकर खाया तथा दूध पीकर शयन किया।

ता० १०-५-२३ को प्रातः ५ बजे ओषिमठको, जो यहाँसे ६॥ मील फासले पर था, रवाना हुए। करीब ८ बजे ओषिमठ में पहुंचे। यहाँ सम्मिलित पोस्ट और टेलिग्राफ आफिसके पास एक दूकानमें ठहरे क्योंकि काली कमली वालोंका धर्मशाला खाली नहीं था। यहाँसे एक पत्र घरको व दूसरा पत्र कलक्टर K. N. Kuar साहबको लिखा। फिर नरसिंह मन्दिरके आंगनके पास एक दूकान ठहरे। यहाँ पीतलकी दो गोमुखी दण्डधारा हैं।

ओषिमठमें श्री बद्रीनाथजीकी पूजा ६ मासतक जाड़ेमें होती है और यहीं रावल (बद्रीनाथके महन्त) और उनके कर्मचारी जाड़ेमें रहते हैं। यहाँ नरसिंह, विष्णु, सूर्य, गणेश, नवदेवी जिनके माथेपर घृत और सिन्दूर पोता हुआ है और गरुड़जीकी पीतल की मूर्त्तियाँ और उनके मन्दिर दर्शनीय हैं। ओषिमठ भी महात्मा शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित इन चार मुख्य मठोंमेंसे एक है—

(१) " भारतके उत्तर हिमालयमें—ओषिमठ

(२) " पूर्व जगन्नाथपुरीमें—गोवर्धन मठ

(३) " पश्चिम द्वारकापुरीमें—शारदामठ

(४) " दक्षिण सेतुबन्ध रामेश्वरमें—शृंगेरीमठ

श्री केदारनाथजीके रावलकी तरह यहाँका रावल भी मलावारके नम्बुरी ब्रह्मण होते हैं और वर्त्तमान रावल २७ के बाद २८ वाँ रावल है। कहते हैं कि

महात्मा शंकराचार्यजीने ओषिमठ स्थापित करने के बाद अपने प्रधान चार शिष्योंमेंसे नाटकाचार्य गिरिके हाथमें मठका भार अर्पण किया था। पर गिरिजी मठके विपुल संचित अर्थके अनर्थमें पड़कर भोग-विलासमें लिप्त और स्वेच्छाचारी होगए। इसकारण उस सन्यासी-सम्प्रदायके हाथसे अधिकार छिन गया।

ओषिमठमें डाकखाना व सरकारी डाकबंगला भी है और यहाँ बहुत सी पनचक्कियाँ भी हैं जिनमें आटा व जौ आदि पीसा जाता है।

यहाँसे नितियास जानेका रास्ता है जो, यहाँसे ५८ मीलपर धावली नदीके किनारे है और इसी रास्तेमें भविष्य बद्री ११ मील पर तपोवनके निकट है।

भविष्यबद्री पञ्चबद्रीमें, एक बद्री है और नितियास होकर तिब्बत देशके अंतर्गत मानसरोवर और कैलाश पर्वतको जाते हैं।

ओषिमठमें भोजनादि करके यहाँके रावलके बड़े लड़के कुंवर गंगाप्रसादसे मिल आये २॥ बजे यहाँसे रवाना होकर सीढ़ीदार रास्ता पार करते हुए करीब १५०० फुट नीचे लकड़ीका पुल पारकरके विष्णु प्रयागमें, जहाँ धावलि या विष्णु गंगा और अलकनन्दाका सङ्गम है पहुँचे। और यहाँ विष्णुजीके दर्शन करके व संगमका जल पीकर करीब ६ बजे शामको घाट चट्टी पहुँचे। रात को यहीं ठहरे।

ता० ११-५-२३ को प्रातः ५ बजे यात्रा करके रास्तेमें पाण्डुकेश्वर पहूंच कर वासुदेव पाण्ड योग-बद्री (जो पंचबद्रीमें से एक है) और नवदुर्गा आदिका दर्शन किया। यहाँ पंचपांडवोंका ५ ताँबे का पट है जिसमें अज्ञात लिपिमें कुछ लिखा है। यहाँ से ६ स्थानोंमें बरफ़ पार करते चढ़ाई तै करते हुए १०॥ बजेके करीब हनुमान चट्टी पहुँचे।

कहते हैं कि प्राचीन समयमें यहाँ वैखानस मुनिका आश्रम था और यहीं मरुत राजाने प्रसिद्ध यज्ञ किया था जिसमें ब्रह्मा की मन्दाग्नि हुई थी। यहाँ गढ़वाल जिलेके सब ओवरसियर आनन्द स्वरूप तिवारीसे परिचय हुआ। उन्होंने कहा कि "सामनेके पहाड़ोंपरसे खोदकर हमारे कुलियोंने कोयला पाया है। अनुमान है कि यह कोयला उसी यज्ञ के समयका है।' इस चट्टीमें हनुमानजीका एक मन्दिर तथा उनकी प्रतिमा है और मरुत राजा या वैखानस मुनि का कोई चिन्ह नहीं है। घृतगंगा नाम की एक छोटी नदी यहाँ आकर अलकनन्दा नदीमें गिरती है।

हनुमान चट्टीमें दोपहरके समयमें भी बहुत ठंड पड़ती थी, क्योंकि ठंडी हवा बड़े झोंकेसे चल रही थी। यहाँ खिचड़ी बना-खाकर करीब १॥ बजे रवाना हुए और ५॥ बजे शामको श्रीबद्रीनाथ पहुँचे। रास्तेमें डाकखाना मिला। एक कार्ड घर को लिख कर मन्दिरमें दर्शन करने गये। मन्दिर सफ़ेद पत्थरका गुम्बजदार बना हुआ है। दरवाजेमें ताला लगा था और उन तालोंपर लाहसे मोहर किया हुआ था। इन्हीं मोहरोंको तोड़कर रावल साहब १४-५-२३ को पट खोलेंगे। यह मन्दिर जमीनसे कोई ४०-५० फ़ीट ऊँचा है और नर व नारायण नामके दो पर्वतोंके बीच बस्तीमें बना हैं। यह समुद्रतलसे सवा दस हज़ार फीटकी ऊँचाईपर है। यहाँ देवीदत्त तिवारी फारेस्टरेंजर साहब छात्र यमुनादत्त तिवारीके पिता) से जान पहचान हुई। इन्हींके यहाँ सामान भेज दिया और रातमें भोजन व वार्त्तालाप करके करीब १० बजे पंडाके यहाँ आकर सोये।

१२-५-२३को प्रातः ६ बजे उठे। अत्यन्त सरदीके कारण बड़ी कठिनाईसे शौचादिसे निवृत्त हुआ। इसी दिन दोपहरके करीब रावलसाहब दल-बल,बाजा-गाजा सहित ओषिमठसे बद्रीनाथ पहुँचे। मैं तप्तकुण्डमें स्नान करने गया। बद्रीनाथके मन्दिरके नीचे यह एक गरम जलका अधार १६ फीट लम्बा और १४ फीट चौड़ा है। इसके ऊपर तख्तेसे ढका है और तीनों ओर पर्दासे घिरा है। जमीनके नीचेसे एक गरम पानीका झरना पीतलके गोमुखसे निकलकर इस कुण्डमें गिरता है और इस झरनेके पानीमें गंधककी गंध आती है और धुआं निकलता है। इस गरम झरनेके जलका तापक्रम १२०° फैरेनहाइट है, इससे उसमें हाथ नहीं रख सकते। इस कारण एक ठंडे जलका दूसरा झरना

आकर इस कुंडमें गिरता है और दोनों जल मिले हुए तप्तकुण्डमें स्नान करनेसे बड़ा आनन्द आता है।

महात्मा शङ्कराचार्यके जीवन चरित्रमें लिखा है कि वह अपने शिष्यवृन्दको अधिक ठंडसे कष्ट पाते देखकर बद्रिकाश्रमके तप्त झरनेको योगबलसे उत्पन्न किया था। अस्तु इस तप्तकुण्डके अलावे नारदकुण्ड, सूर्यकुण्ड (गरम जलका) कर्मधारा व कृषीगण (ठंडे जलके) झरने हैं।

स्नान करनेके बाद Ranger साहबके यहाँ भोजन करते समय पं० अनसुइयाप्रसाद बहुगुणा एम०ए०, एल०-एल० बी० मुझसे मिलने आये, यह म्योर कालेजमें छात्र रह चुके थे। इनकी जन्मभूमि नन्दप्रयाग है। यह गढ़वाल सेवासमितिके प्रधान उद्योगी पुरुष हैं। इन्हींके प्रयत्न और परिश्रमसे दसहज़ार यात्रियोंने पट खुलनेके दिन [१३ ता० को] दर्शन पाया। इनके साथ अनेक विषयोंमें बातचीत हुई। फिर मैं रेंजर साहबके साथ रावल साहबके दर्शनार्थ गया और गद्दीभेंट व भोगभेंट देकर डाकघर गया। फिर सन्ध्या समय पण्डेके वासामें लौटकर गीताका पाठ किया। पुनः रातको ८॥ बजेके करीब रेंजर साहबके यहाँ भोजन करने गया वहाँसे लौटकर पंडाके घर आया सन्ध्यासे ही जल बरसता था और अत्यन्त ठंड व कष्ट-का समय था। १० बजे सो रहे।

१३-५-२३को प्रातः ६॥ बजे उठकर शौचादिको गया पर शरीरमें पीड़ा होनेसे सो रहा।

१४-५-२३ सबेरे ७ बजे उठकर प्रात कृत्य समाप्त करके तप्तकुण्डमें स्नान व गरुड़शिलाका जल स्पर्श कर बद्रीनारायणका दर्शन करने चला। भीड़ बहुत थी और पानी बरस रहा था। ११॥ बजेसे १ बजे तक रुका रहा और प्रतीक्षा करता रहा। फिर सवा बजे अनसुइया-प्रसादकी मददसे अच्छी तरह दर्शन हुआ। दर्शनके बाद जब देखा कि दसहजारके करीब मर्द औरतों-की भीड़ है तो गढ़वाल सेवासमितिके साथ करीब २-३ घंटा काम किया। फिर ब्रह्मकपालीमें चलकर ठहर गये।

श्री बद्री पंचायतन

(१४-५-२३) मन्दिरसे उत्तरकी ओर थोड़ी दूरपर अलकनन्दा नदीके किनारे ब्रह्मकपाली नामका एक छोटासा समतल पर्वत है। यह पहाड़ नदीके जलतक

चला गया है। यहां सब यात्री आकर मृत पितरों व बन्धुओंके नाम पिंडदान करते हैं। यहाँ कई आचार्य ब्राह्मण रहते हैं जो श्री बद्रीनाथके भोगका पिंडदान करवाते हैं और कम से कम ॥) आना दक्षिणा लेते हैं। कहते हैं कि यहाँ पिंडदान करनेसे दूसरी जगह तर्पण करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि बद्रिकाश्रम छठे अध्यायमें लिखा हैं कि यह तीर्थ गयासे आठगुना फलदायक है।

श्रीबद्रीनाथजीके भीतर विशाल बद्री या श्री बद्रीनाथजीकी एक मूर्ति है। यह मूर्ति काले पत्थरकी पद्मासन पर समाधिमें मग्न वृक्ति ३ फुट ऊंची बनी है। कहा जाता है कि महात्मा शङ्कराचार्य्य जी को अलकनन्दामें १० बार डुबकी लगानेपर यह मूर्ति हाथ आई। इस मूर्तिके सिरपर एक सोनेका टायरा है जिसके बीच एक हीरा जड़ा है। जिस सिंहासन पर यह मूर्ति स्थापित है वह करीब चार हजार रुपये का है। कहते हैं कि बद्रीनारायणके सब भूषण, वसन व सामग्री का मूल्य दस हजार रुपयेसे कम नहीं है। बद्रीनारायणकी मूर्तिके दाहिनी ओर नर व नारायणकी मूर्त्तियाँ हैं। और बाईं ओर कुबेर व नारदजी की मूर्तियां हैं। मन्दिरके बाहर आँगनमें गरुड़की मूर्त्ति और लक्ष्मीजीका मन्दिर है। मन्दिरके भीतर पण्डे अपने यात्रियोंको लेकर नहीं जा सकते, अगर जावें और शिकायत हो तो उनकी सजा होती है।

प्रिय पाठको! जहां जहाँ पंचबद्री हैं उनका वर्णन करके बद्रीनारायणके भोग व भेंटके विषयमें संक्षेपसे लिखकर यह लेख समाप्त करूंगा।

(१) विशाल बद्री—यही है।

(२) योग बद्री—पाण्डुकेश्वरमें जिसका उल्लेख पहले कर चुका हूं।

(३) भविष्य बद्री—नितियासके मार्गमें तपोवनमें

(४) वृद्धबद्री—अग्निमठमें।

(५) ध्यानबद्री—कुम्हार चट्टीके पास।

भविष्यबद्रीके सम्बन्धमें अब यह कहा जाता है कि ओषिमठमें जो नरसिंह-मूर्ति है उनका एक हाथ दिन दिन सूख रहा है और जब यह हाथ एकदम सूखकर गिर जायगा तब पर्वत गिरकर बद्रिकाश्रमका रास्ता एकदम बन्द हो जायगा फिर तपोवनके भविष्यबद्रीमें बद्रीनारायणकी पूजा होगी।

बद्रीनारायणका भोग दिनमें दो बार बनता है, (१) प्रातः काल बालभोग मिठाईका (२) ४-५ बजे अन्नभोग भात, खटाईदार चनेकी दाल, बेसन व आलूका बड़ा, बेसनका पापड़ व मालपुआ व आमका अचार। यह सब मन्दिरके भीतर रसोईं घरमें बनता है। भोगका कुछ अंश ठाकुरजीके सामने रखकर बाकी सामनेके दालानमें रखकर आध घण्टे तक दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। फिर यात्रियोंको भोग बाँट दिया जाता है। जगन्नाथजीके मन्दिरके तरह यहां भी भोगके विषयमें छूतछात का विचार नहीं है। मन्दिरके भीतर सिवाय पुजारियों के कोई नहीं जा सकता और ठाकुरजी को सिवाय रावलके और कोई स्पर्श नहीं करता। करीब ९ बजे ठाकुरजीका भूषण-वसन उतार कर स्नान होता है, इसी समयके दर्शनको निर्वाण दर्शन कहते हैं क्योंकि यह निर्वाण मूर्त्ति है।

प्रतिवर्ष पहले पहल जब द्वार खुलता है उस समयके दर्शनको (जैसे इस साल ता-१४-५-२३ को प्रथम बार दर्वाजा खुलता है इस प्रथम दर्शनको) "ज्योति दर्शन" कहते हैं। क्योंकि एक बड़े तांबेके पात्र में दो मन घी व तिलके तेल (जिसे ७ सोहागिन स्त्रियां पेरती हैं) का एक दीपक जलाकर कार्तिकके मासमें दर्वाजा बन्द किया जाता है फिर वैशाखके महीनेमें जब दर्वाजा खोला जाता है वह दीपक जलता हुआ मिलता है। यह बड़े आश्चयकी बात है कि यह दीपक जाड़ेभर ६ मासतक जलता रहता है जब कि मन्दिर और बद्रिकाश्रमके समीपवर्ती सब पर्वत बरफसे ढक जाते हैं।

भेंट तीन प्रकारका है १ थाली भेंट २ अटका भोग और ३ गद्दीभेंट।

(१) थालीभेंट—किसी पात्रमें गोला, मेवा, रुपया,

रेशमीवस्त्र, शाल, दुशाला इत्यादि रखकर ठाकुरजीके सामने रक्खा जाताहै।

(२) भोग पानेके लिए जो यात्री सवेरे २) दो रुपया जमा करते हैं तो उनको १) एक रुपयेका भोग दूसरे वक्त मिलता है।

३) गद्दीभेंट रावल साहबकी गद्दीमें दिया जाता है और रावल साहबके खास काममें आता है। क्योंकि उनको सिर्फ २००) वेतन मिलता है और उनके सहायक (नायब) को १००) मासिक मिलता है।

बद्रीनाथकी वार्षिक आय इस समय ४८०००) अड़तालीसहजार और व्यय २८००० अठारह हजार रुपया है। व्ययके बाद ४००००) चालीस हजार रुपया बंकमें जाता है। महाराज टेहरी इसका प्रबन्ध करते हैं।

बद्रिकाश्रम। माहात्म्यके लेखानुसार बद्रीनाथके मन्दिरके आगे तप्तकुण्ड, ब्रह्मकपाली व पंचशिलाके सिवा गन्धमादन श्रृंग, इन्द्रतीर्थ, मानसोद्भेद (केशव प्रयागमें), वसुधारा (कहतेहैं कि इस धातका जल पापी व वर्णसंकर पुरुष या स्त्रीके ऊपरसे हटकर गिरता है), पंचधारतीर्थ सोमकुण्ड, द्वादशादित्यतीर्थ, चतुस्स्रोत, सत्यपद, नरनारायणाश्रम, उर्वशीकुण्ड, दुण्डपुष्करिणी आदि बहुतसे अतिदुर्लभ और श्रेष्ठ तीर्थ है परन्तु इन तीर्थों में पहुँचना बरफ व पर्वतोंके कारण अत्यन्त कठिन है। इसहेतु इन तीर्थों में मेरा जाना नहीं हुआ।

ब्रह्मकपालीमें पिण्ड दानादि समाप्त करके Forest Ranger नन्दबल्लभ आनन्दस्वरूप तिवारी व इन्स्पेक्टर प्रेमबल्लभ तिवारीके बासामें पहुँचकर अग्निमें हाथ पैर सेंका क्योंकि सवेरेसेही बरफीला पानी गिर रहा था और हमलोग वर्षामें भीगे हुए थे और बहुत ठंड पड़ रही थी। सन्ध्यासमय भोग (प्रसाद) आया वहीं हमलोगोंने भोजन किया। इसवक्त बरफ गिरना बन्दथा लेकिन गले हुए बरफका पानी छप्परसे चूकर हमलोगोंके बिस्तरे पर पड़ रहा था और बिछौना हटाते ही हटाते सारी रात बीत गई।

(ता-१५-५-१३) सवेरे उठकर देखा कि तमाम रास्ता, पहाड़, घरोंकी छतें व दीवार आदि बरफसे ढक गई थी और श्वेतरंगका एकअपूर्व दृश्य दिखाई देने लगा, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। सिर्फ Bioseope या Stereoscope) की तस्वीरोंमें कभी कभी इस तरहका बरफ से ढके पर्वत व ग्रामके दृश्यसे इसका कुछ आभास मिलता है। रास्तेमें करीब एक फुट ऊँचा बरफ जम गया था और आकाशसे शिलावृष्टिकी तरह बरफ गिर रहा था। मिट्टी या पथ दिखाई नहीं देता था। ठंड इतनी अधिक थी कि उसका अनुमान प्रयाग, काशी या कलकत्तेके रहने वालोंको नहीं हो सकता। ७ बजे शौचादिसे निवृत्त होकर ६ बजे तक ठहरे रहे। जब देखा कि ऐसे कुसमयमें भी गत दोपहरसे आज सवेरे तक आधे यात्री बद्रीनाथ छोड़कर चले गये और कुछ जानेको तैयार हैं तो १०॥ बजे उठकर कण्डीवालेको सामान देकर बिदा किया और तप्तकुण्ड में स्नान करके श्री बद्रीनाथजीके दर्शनको गये। बाहरी दर्वाजेपर भीड़ न थी लेकिन भीतरके दर्वाजेपर भीड़ न थी। पं० अनुसुइयाप्रसाद बहुगुणा वहाँ मौजूद थे। वह मुझे देखकर धर्माधिकारी महाशयको कहकर मुझे भीतर भेजवा दिया। मैंने चाँदीके किवाड़ के समीप बैठकरजी भरकर दर्शन किया। धर्माधिकारी महाशयने कृपाकर इन देवी-देवताओंके सम्बन्ध में, जो बद्री-सिंहासनके ऊपर हैं, विस्तारसे समझा दिया और प्रसाद दिया तत्पश्चात् नायब रावल साहबसे, जो वहाँ ड्यूटीमें मौजूद थे, भेंट करा दिया वह नायब रावल साहब बड़े सज्जन और आत्मत्यागी पुरुष थे। इनके साथ मन्दिरके संस्कार व यात्रियों के कष्टनिवारण के हेतु (जिससे पंडे यात्रियों को तंग न कर सकें) एक धर्मशाला बनवानेके सम्बन्धमें बातचीत की। इन्होंने भी एक बिहीदाना प्रसाद दिया। यहाँसे निकलकर प्रेमवल्लभजीके वासामें आये और भोजन करके करीब १ बजे उनके व ओवरसियर आनन्दस्वरूप तिवारीके साथ बरफके ऊपरसे चलने लगे जो कि कष्टप्रद था। २—३ जगह पैर फिसल गया और गिरते गिरते सम्हल गये। सन्ध्या समय १० मीलपर पाण्डुकेश्वर चट्टी पहुँचे। छाता मन्दिरमेंसे

चोरी हो गया था अतः "सिर परभी बरफ और पैर तले भी बरफ" ऐसी अवस्था में चले। पाण्डुकेश्वर में सब दूकानें यात्रियोंसे भरी थी। बड़े कष्टसे यहाँ ग्रामके स्कूलमें स्थान मिला। यहां एक चौकीदारनीको १।) देकर ॥=) की लकड़ी जलाकर देह व कपड़ा सुखाकर सो जानेका प्रयत्न किया। लेकिन धुआँ अधिक होने से सिरमें दर्द हुआ और नींद न आ सकी जिससे शरीरको दुःख पहुँचा।

(१६—५—२३) प्रातः उठनेमें कष्ट मालूम होता था। परन्तु कण्डीवाला रूपसिंहकी ताकीदसे बिछौनेसे उठकर धीरे धीरे चलना आरम्भ किया। थोड़ीदूर जानेपर सूर्योदय हुआ और शरीरकी थकाई कुछ मिट गई लेकिन कमजोरी बहुत मालूम होती थी। रास्तेमें सब ओवरसियर व सेनेटरी इन्स्पेक्टर साहबके साथ मुलाकात हुई। उनके साथ विष्णुगंगा पार करके ओषिमठकी कठिन चढ़ाई चढ़ना आरम्भ किया। करीब १० बजेका वक्त था। सब ओवरसियरके अनुरोध करनेपर ओषिमठके बासामें (जो उनके रावल साहबके एक वाटिकायुक्त सुन्दर भवनमें था) जाकर सो गया। फिर १॥ बजेके करीब भोजन तैयार था उठकर भोजन किया। फिर उस मकानके बागके झरना व वृक्षादि देखने गये। थकाईके कारण फिर नींद आई और फिर शामको ७ बजे तक सोते रहे सन्ध्या समय क्षुधा न होनेसे केवल दुग्धपान किया और सब ओवरसियरके साथ पं० रामचन्द्र नम्बुरी फोटोआर्टिस्टिके (जो पुराने रावल साहबके पुत्र हैं) कैलाश भण्डार नामी दुकान पर करीब ९ बजे रात पहुँचा और उनसे बात करके कुछ चीजें खरीदीं, जैसे पुस्तक, तस्वीर, तस्वीरदार अँगूठियाँ, रूमाल व जनाना चादरा वगैरः जो इस देश में बनते हैं और इनके यहाँ यह अच्छे मिलते हैं। यहाँ १०॥ बज गया। फिर एक छाता ३॥=) में खरीदकर कृष्णनाथ-सब पोस्टमास्टरकी सहायतासे जहाँ मेरा कण्डी वाला व साथी लोग ठहरे थे करीब १२॥) बजे रातको पहुँचकर सो रहे।

(ता० १६-५-२३) प्रातः ५ बजे उठकर ६ मीलकी दूरीपर कुम्हारचट्टी पहुँचे। वहाँ से २॥ बजे दिनको रवाना होकर गरुड़गंगा चट्टी में ५॥ बजे शामको पहुँचे। यहाँ बहुत भीड़थी। किसी तरह रात बिताई।

(१७-५-२३) प्रातः ४॥ बजे चलकर ४ मीलके फासलेपर पीपलकोठी चट्टीमें ६॥ बजे पहुंचे। यहाँ शौचादि करके श्री मोहनलाल भवानीदास शाहसे मिलकर उनसे १२) में एक गरम कपड़ा खरीदकर ८ बजे रवाना हुए। रास्तेमें डिप्टी कमिश्नर मि० एक्टन व उनके मित्र मेजरसाहब से मुलाकात हुई। डि० कमिश्नर मि० सी० पी० डब्ल्यूके मित्र हैं उन्होंने मुझे थोड़ी देर तक रोककर मेलाके सम्बन्धमें बात चीतकी। यहाँसे २ मील चलकर सीयाचट्टी पहुँचकर भोजनादि किया। फिर २॥ बजे रवाना होकर ५ बजे शामको चमेली या लाल सांगा पहुँचे। यहाँ काली कमली वालोंकी धर्मशाला में, जोकि अलकनन्दा नदीके किनारे लोहेके पुलपार बना है, रातको विश्राम किया।

(१८-५-२३ सवेरे ५ बजे रवाना हुए और ७ मील दूरीपर नन्दप्रयागमें ८ बजे सुबह पहुंचे। यहाँ अलकनन्दा व मन्दाकिनी नदीका संगम है। यहाँ ४-५ अच्छे मकान हैं और अच्छी बस्ती हैं। यहाँ चीजें और जगहोंकी अपेक्षा सस्ती हैं। भोजन करके दूसरी बेला ३ बजे रवाना हुए। रास्तेमें ४॥ बजेके करीब आँधी आई और चारों ओर धुआँसा अन्धकार छागया और सन्ध्या समय पानी बरसने लगा। ६ मीलकी दूरीमें २-३ चढ़ाई व उतराई तै करके करीब ६ बजे शामको लांगासू चट्टीमें पहुंचे। यहाँ भी भीड़ बहुत थी। किसी प्रकार रात बिताई।

(१९-५-२३) प्रातः ५ बजे रवाना हुए। ५॥ मीलकी दूरी पर कर्णप्रयागमें ७ बजेके करीब पहुँचे और कर्णगंगा व अलकनन्दाके संगममें स्नान किया। यहाँ एक कर्णका मन्दिर ऊपरको बना है। यहाँ से ८॥ बजे रवाना होकर २ मील फासलेपर आरामचट्टीमें पहुँचकर भाँटा व कोंहड़ेकी तरकारी व रोटी बनाकर खाई। बहुत दिनोंके बाद यहाँ तरकारियाँ मिली

यहाँ विश्राम करके २॥ बजे रवाना होकर २ मीलकी दूरीपर (जहाँ सब पोस्ट आफिस है और यह औरों-से बड़ी चट्टी है) सिमलीचट्टीमें पहुंचे। वहाँ न ठहरकर ~ मील और चलकर फाटोली चट्टीमें (जो कर्णप्रयाग से ६ मील दूर है) पहुंचे । यहाँ रात्रिको विश्राम करनेके निमित्त ४॥ बजे शामसेही ठहर गये क्योंकि पानी बरस रहा था ।

(२०-५-२३) सवेरे ५ बजे चले और कुछ चढ़ाई तै करके ८ मीलकी दूरीपर खेतचट्टी पहुँचे। यहाँ पानी बरसने लगा और दूकानें भीगी थीं इस कारण बड़े कष्टसे खिचड़ी और आलू कुम्हड़ेकी भुँजिया बना-खाकर थोड़ा आराम करके रवाना हुए।

कर्णप्रयाग १४ से १८ मील तक चढ़ाई मिलती है। बीचमें जंगल चट्टी मिली, जहाँ एक गाय चीते द्वारा मरी देख पड़ी। बीचमें दो एक और नई चट्टी छोड़-कर सूईचट्टीमें जिसका पुराना नाम हरखूके दूकान में जो कर्णप्रयागसे २० मीलपर है ४॥ बजे शामको पहुँचकर रातको विश्राम किया। यहाँसे मेलचौरी सिर्फ ६ मीलपर है।

(२१-५-२३) प्रातः ४। बजे उठकर इस चट्टीसे रवाना होकर ६ मीलकी उतराई तै करके रास्तेमें धोबी-घाट नामी बड़ी चट्टी छोड़कर, करीब ९ बजे दिनको मेलचौरी पहुँचे। यहाँपर कंडीवालोंको जो ऋषीकेश से साथ आते हैं छोड़ना पड़ता है और फिर माल तौलाकर ले जानेके लिए दूसरा कुली करना पड़ता है। इसलिए मैंने अपने कंडीवाले रूपसिंह व रतनसिंह सा० पट्टि इन्दान गा० दोनी डाकखाना टेहरीको चुकता करके छोड़ दिया १॥ बजे मेलचौरीमें जीतसिंह नाम के एक कुलीसे १०) रुपयेमें ७७ सेर माल रामनगर ले जानेका कागज लिखवाकर रवाना हुए और ८ मील दूरी-पर चौखटिया चट्टीमें ५॥ बजे शामको पहुँचे। परन्तु जीतसिंह मेरा माल ६॥ बजे पहुँचाकर अपने घर चला गया। रात ६ बजे गठरी खोलकर देखा तो मेरी गरम चेस्टर कोट और एक विलायती कम्बल उसमें नहीं था । काल्रूराम पण्डाके छड़ीदारको लेकर थाने (Police out post) में रपट लिखाई। हेडकान्स्टे-बिल साहबने दूसरे दिन ठहरकर तहकीकातका नतीजा देखनेकी सम्मति दी।

मेलचौरीसे १ मीलकी बड़ी चढ़ाई पड़ती है और फिर २ मीलकी उतराई फिर समतल ८ मील-के बाद चौखटियाचट्टी मिलती है।

(२२-५-२३) प्रातः ५ बजे जब जीतसिंह आया, काल्रूराम उसको थानेमें ले गया। फिर हेडकानिस्टे-बिल साहब उसको लेकर उसके घरकी तलाशीको गये लेकिन मेरा चेस्टर व कम्बल उसके घरमें नहीं मिला। जीतसिंह रोने लगा। उसने कहा कि "मैंने चेस्टर कोट तौलपर देखा था। तौलपर भीड़ बहुत थी इसलिये गठरी बाँधते समय शायद कोई उन कपड़ोंको उठा ले गया हो।" रिपोर्ट लिखवानेके बाद हेडकानिस्टिबिल जयदत्तजीने कहा कि दो दिन तहकीकातके बाद वह जीतसिंहको छोड़ देंगे। अतः मैं अपनी गठरी साथियोंके घोड़ेवाले कुलियोंको सुपुर्द करके मैं रवाना हो गया और ता० २२-५-२३ को ११ बजे चलना शुरू किया और साथियोंसे अलग छूट गया। यहाँतक कि १२ मीलके फासले पर सोनाचट्टीमें रातको कुछ हलवा बनवा खाकर कर बिना ओढ़नेके वस्त्रके सो रहा।

(२३-५-२३) प्रातः ३ मील फासलेपर नवला चट्टी में जलपान करके साथियोंकी प्रतीक्षा करता रहा। देखा कि जीतसिंह मेरी गठरी लेकर साथियोंके संग आ रहा है और सुना कि मेरा चेस्टर कोट व कम्बल मेलचौरीमें तौलके स्थानपर मिले हैं और रानीखेतके मजिस्ट्रेटके पास निवेदन पत्र भेजनेपर मेरे कपड़े मुझे मिल जायँगे। यहांसे ३ मील चलकर करीब १० बजे भिखियासैनचट्टीमें पहुँचे। वहाँ दाल भात बना, खाकर आराम किया। फिर २ बजे चले। ३ मीलकी चढ़ाई तै करके करीब ४॥ बजे श्रीकोटचट्टी पहुंचे और वहाँ साथियोंके आनेकी प्रतीक्षामें रहा। सन्ध्या समय ५ बजे जब सब साथी आ गये तब रवाना हो कर २॥ मीलके फासलेपर वासकोट चट्टीमें पहुंचे और फल खाकर रातको विश्राम किया।

२४-५-२३ सवेरे ४॥ बजे मालूम हुआ कि भारत-का संग छूट गया। वहाँसे रवाना होकर ११ मील पर पन्नु देखनु (या जौखनु)चट्टी में १० बजे पहुंचे। यहाँ भोजन करके २ घण्टे विश्राम करके २॥ बजे चले। ११ मीलके फासले पर १॥ मील पगडंडीके राह संवयाल चट्टी में ५॥ बजे पहुंचे।※

२५-५-२३ सवेरे ४ बजे उठकर रवाना हुए। ११॥ मील पर ढिकुलीचट्टीमें १० बजे पहुँचे रास्तेमें कुशी गगा नामकी नदीमें स्नान व सन्ध्योपासना कर लिया था। ढिकुली चट्टीमें अलमोड़ा-निवासी पं० नारायणदत्तका सुन्दर वला बाग व धर्मशाला है। हम लोग धर्मशाला में ठहरे और बागके बाहर दूकान-दारोंके घरमें रसोई बनाया। इस धर्मशालामें एक सज्जन महाशय श्री राजनारायणराय साहब (चेतला कलकत्ते के चावल के व्यापारीसे मुलाकात हुई। भोजन व विश्रामके बाद ३ बजे रवाना होकर ५॥ मील चलकर ५। बजे शामको रामनगर पोस्ट आफिस पहुँचकर घरको कार्ड लिखा और स्टेशनपर वेटिंगरूम-में आराम किया। रामनगरका बाजार व मंडी बहुत सुन्दर है। यहाँ २ नहरें हैं और पहाड़ी लकड़ी व स्लीपरके रोजगारियोंका एक बड़ा अड्डा है। स्टेशनके करीब लाखों स्लीपर व आरासे कटे हुए लकड़ियोंके ठेक मीलों तक पड़े रहते हैं। स्टेशनपर पता लगा कि सवेरे ५ बजे सीतापुरकी गाड़ी मिलेगी। यहां बाजारमें जीतसिंहको १०) देकर बिदा किया। रातको सीताराम कचौरी वालेकी दूकानमें ४ आनेकी पूरी कचौरी व मिठाई खा आये और मुसाफिरखानेमें सो रहे।

(२६-५-२३) सबेरे ४ बजे उठकर शौचादिसे निवृत्त होकर, गठरी लेकर गाड़ीपर सवार हुए। भाजपुरा जंकशन में २ बजे दिनको गाड़ी पहुंची। यहां उतरकर फल आदि खाया और शामको भात खाकर रात ९॥ बजे गाड़ीपर सवार हुए और रात-को १२ बजेके बाद गोला गोकरण नाथ स्टेशनपर उतरकर ठहर गये।

(२७-५-२३) सवेरे उठकर शौचादि व स्नानादि करके गोकर्णनाथ महादेवका दर्शन किया और शहर देख आये। १० बजे भोजन किया। १२ बजे रेलगाड़ी पर रवाना होकर ३ बजे सीतापुर पहुंचे। सीतापुरमें डिपुटी राजगोपाल साहब (Burtganj) के मकान पर उनसे मिलने गया। उन्होंने मुझे रोक लिया। लेकिन भारत महाराज ढिकुली चट्टीसे बीमार हो गये थे इस कारण उनको भी बाबू राजगोपालके यहाँ ले गया, क्योंकि उनको बहुत दस्त आता था। डिपुटी साहबके एक दोस्त कश्मीरी वकील साहब ने दवा दी, लेकिन फिर भी उन्हें रातमें २ दफा पानी सा दस्त हुआ।

(२८-५-२३) प्रातः ५ बजे उठकर फोटोग्राफर पो० एल० सिंह को सीतापुर आर. के. आर. स्टेशनपर वेटिंग रूममें लेजाकर सब साथियोंके साथ एक (Caleiment Group size) का चित्र खिंचवाकर साथियोंसे बिदा हो आया। फिर भारत महराजको साथ लेकर सर-कारो अस्पतालमें डाक्टर माथुरको दिखलाकर करीब ९॥ बजे (Burtganj) लौटे। यहां डाक्टर माथुरकी सम्मतिके अनुसार एक दिन ठहरकर भारत महाराजको साथ लेकर (ता० २९-५-२३) १॥ बजे डिपुटी राजगो-पाल साहबसे बिदा होकर सीतापुर आर. के. आर. स्टेशनपर पहुँचा और ३॥ की गाड़ीसे रवाना होकर लखनऊ पहुंचा। लखनऊसे (ता० ३०-५-२३को) १० बजे रातकी ट्रेनसे रवाना होकर सवेरे प्रयाग पहुंचा।

※ रास्तेमें पन्नु देखनु या जौखनु से २ मीलके फासले पर गही चट्टी मिलती है। यहाँसे करीब १॥ मील उतारमें पगडंडी मिलती है जिससे गाड़ीके रास्ते से करीब ४ मील कम चलना पड़ता है यहाँ संवयाल चट्टीमें परेठा व आलू-की तरकारी खाकर रातको विश्राम किया।

नोट—
च—चढ़ाई
उ—उतराई
स—समतल

हरद्वार से चट्टियों की सूची

मीलदूर	नाम चट्टी
३।	सत्यनारायणका मन्दिर
२॥	विवीवाला
३	हृषीकेश
१	मौनी की रेती
३	लछिमन झूला
४	फुलवाड़ी चट्टी
३	गूलर ४—६ छप्पर
२	मौना ६—७ छप्पर
३	विजती ५—७ छ० च०
३	कुगड "
३	बन्दर ३० छ० "
३	महादेव ८ छ० "
३	ओखल "
१॥	खपडा ७ छ० स
१	कांड़ी १५ छ० "
४	कासघाट ८० छ० उ०
३॥	झालुड़ी ४—७ छ०
२॥	उमरासु १२ "
२	सोढिया करना
१	देवप्रयाग
३	विद्याकुई या गोविन्द कोठी २-३ छ०
२	सीता कोठी ५—६ छ०
३	रामपुर झरना या रामीबाग ८—९ छ०
३	दुगोमी (आमवृक्ष भैसवाड़) ४—५ छ०
२	भिल केदार महादेव
२	पुराना श्रीनगर (कमलेश्वर महादेव)

मीलदूर	नाम चट्टी
३॥	पंच भइयाधार ३ छ०
२॥	गुराबराय चट्टी ३ छ०
२	रुद्रप्रयाग—मन्दाकिनी व अलकनन्दाका संगम (यहाँसे बद्रीनाथका सीधा रास्ता कर्णप्रयाग व लालसाँगा होकर है। लेकिन केदारनाथका पट बद्रीनाथ पटसे एक सप्ताह पहले खुलता है इसलिये यात्री लोग मन्दाकिनीके किनारे किनारे पहले केदारनाथकोही जाते हैं)
४॥	छतोता चट्टी ८-९ छ०
१॥	मठ
१	रामपुर १० छ०
३॥	अगस्त मुनि १६ छ०
॥	छोटा नारायण ५ छ०
३॥	चन्द्रापूरी १६ छ० (चन्द्रशेखर महादेव)
३	भैरी ७-८ छ०
३	कगड ८-९ छ० (यहाँसे जाड़ा शुरू होता है)
३	गुप्त काशी
१	नाला गाँव ५० छ० (यहांसे एक रास्ता केदारनाथको और दूसरा रास्ता ओषी मठको गया है)
१॥	मौता देवीका मन्दिर
१॥	नारायण कुई
॥	वेविंग देवीका मन्दिर १५ छ०
१	शक्ति मन्दिर

मीलदूर	नाम चट्टी
१	नया श्रीनगर
४	सुकता चट्टी ३ छ०
३॥	भट्टा सेरा १५ छ०
३॥	खाकरा १० छ०
१	सिरकटा गणेश ६-७
४	गौरीकुण्ड २५ घर दूकान (एक ठंडा दूसरा गरमका कुण्ड है।)
२	चीर फटा भैरव
१	भीमसेन शिला
१॥	रामवाड़ा ८-१० छ० व दूकान (यहाँ चढ़ाई शुरू होती है)
२	देवदिखनी (यहांसे केदारनाथका मन्दिर दिखाई देता है)
१	केदारनाथका मन्दिर
	सूचना—केदारनाथसे लौटकर नाला गाँव होकर उतारमे लोहेके पुल परसे नदी पार होकर ओषीमठ जाते हैं। ओषीमठमें केदारनाथकी पूजा होती है)।
१	दुर्गाचट्टी उ०
६	पोथी वासा ”
३	चोपता चट्टी (यहांसे एक रास्ता तुगंनाथ को गया हैं। जगनाथ महादेव कैलास शिखरमें स्थिति है। ऊपर चढ़ना कठिन है)
२॥	तेमुडियार उ०
३	पांगर हासा
४	मंडल चट्टी
४	सिंघेन

मीलदूर	नाम चट्टी
१॥	फाटा चट्टी ३० छ०
१	रामपूरचट्टी २५ छ०
५	त्रियुगी नारायणकी धूनी खड़ी चढ़ाई
१	सोहन प्रयाग ३ छ०
३	गोपेश्वर
१॥	लालसांगां उ०
२	मठ चट्टी (आध मीलकी चढ़ाई)
॥	छीक चट्टी
१।	बावला चट्टी (विरह गंगा व अलकनन्दा का संगम)
२	सियोचट्टी
१॥	हाट चट्टी
२	पीपर चट्टी
५	गरुड़ गङ्गा
२	मंगनी चट्टी
२	कुम्हार चट्टी
२	खतोली चट्टी
४	सोथधारा
१	ओषीमठ
१	विष्णु प्रयाग उ०
१	बलदोड़ा चट्टी
॥	घाटचट्टी
२	पाण्डुकेश्वर
३	रामबगड़
२	हनुमान चट्टी
३	कंचन गंगा
४	बद्रीनाथ

नालभेत चट्टीसे बदरिकाश्रमतक चट्टियोंकी नामावली

मील दूर	नाम चट्टी	चढ़ाई या उतराई	विशेष
३	उखीमठ (१०-१२ दूकानें हैं)	चढ़ाई	रावल महादेव केदार गद्दीके एक बड़ा चौगान २०-२५ घरके गद्दीके मालिक हैं।
३	गणेश (४-५ छप्पर व दूकान)	,,	
२	दुर्गा (१०-१५ ,, ,,)	उतराई	
१	डेड़ा (५-६ ,, ,,)	चढ़ाई	
२	पति		
२॰	गोकल		
½	पुन्नन		
२½	चौबात्ता (७-८ दूकान व छप्पर)		
२	भीमनाड़ा (७-८ ,, ,,)	च॰ व उ	तुङ्गनाथका रास्ता
१½	भीमगोड़ा (१२-१५ ,, ,,)		
२½	पांगर वासा (५-७ ,, ,,)	उतराई	
३½	मण्डल		
२	आराम	,,	रुद्रनाथका रास्ता
१	राम		
१	सिटाना		
२	गोपेश्वर (३०-४० मकान हैं)	चढ़ाई	
२	लाल सांगा या चमोली	उतराई	
२	मठ (४ ५छप्पर व दूकान)		सब डिवज़न, उत्तर गढ़वालके मजिस्ट्रेटका हेड कार्टर
१	छिनका		
१	सौंला (४-५ छप्पर व दूकानें)		
२	सिया (५-७ ,, ,,)		
१	हाट		
२	पीपल कोठी (२०-२५ दूकानें)	चढ़ाई	डाकखाना
४	गरुण गंगा (४-५ छप्पर व दूकानें)		
२	टारी		
२	पाताल गंगा (८-१० दूकानें हैं)	उ॰	
२	गोलाब गोठी (४-५ ,,	च॰	
३	कुम्हार (८-१० पक्की दूकानें)		
२	खानोटी (४-५ छप्पर व दूकान)		
१	कौंकनी		यहाँ से ध्यान बद्री

मील दूरी	नाम चट्टी	चढ़ाई या उतराई	विशेष
२	शिवधारा		काली कमला ा धर्मशाला डा० तार० थाना व अस्पताल
१	योशीमठ (२०० अच्छे अच्छे मकान व ८-१० मन्दिर		
१½	विष्णु प्रयाग (२-३ दूकान)	उतराई	
४	घाट (४-५ दूकान)		
१½	नन्दकेश्वर		
२	पाण्डुकेश्वर (२५-३० मकान व दूकान)		काली कमलीवाले की धर्मशाला
३	लामवगड़ (२-३ छप्पर व दूकान)		
३	हनुमान (२-३ दूकान और धर्मशाला)	चढ़ाई	"
४	वदरिकाश्रम	चढ़ाई	डाकखाना व तारघर

(स)

लालसांगासे रामनगर तक चट्टियोंकी सूची

मील दूरी	नाम चट्टी	चढ़ाई या उतराई	विशेष
२	कोयल (२-३ दूकान तथा झरना)		
२	मठियाणा (२-३ दूकान)		
३	नन्द प्रयाग (२०-३० दूकान व छोटा बाजार		डाकखाना
३	सोनला चट्टी (२-३ छप्पर व दूकान)		
२	भरत य हड़ाकोटी (२-३ " ")	उ० व० च०	
२	नरसिंह या लगासू (२-३ ")		
२	जयकंडा		
२	विरोजा		
२	कर्ण प्रयाग (१५-२० दूकानों का बाजार)	उ० व च०	डाकखाना, अस्पताल व थाना व रुद्रप्रयागका रास्ता
२	आराम		
२	सेमली (७-८ दूकान व चण्डी देवी कीमूर्ति)	च०	
२	सिरोली (२-३ छप्परोंके दूकान)	च०	
२	भटोली (२-३ " ")		
३½	आदिवद्री (८-१० दूकान व ४—५ मन्दिर)	च० व उ०	
३	केशावपुर या जोंकापानी (२-३ दूकान)	च०	
२	जंगले	च०	
१½	दो ओयाली	च०	
१	काली माटी (२-३ छप्परोंकी दूकान)	उ०	
१	रसोई घाट		
२	राम घाट		
१	धुनार घाट (८-१० दूकानें		डाकखाना व थाना
१	डारिम डाला		
१	राम		

मील दूरी	नाम चट्टी	चढ़ाई या उतराई	विशेष
४	मेलचौरी (५-६ दूकानें)		जि० गढ़वाल छूटकर
२	सिमल खेत	च० व उ०	जि० कुमाऊँ शुरू होता
२	नारायण		है। सरकारकी तरफसे
१	राम		कुली व घोड़ेका इन्त-
२½	दिगर		ज़ाम है।
३	चौखटिया या गनाई (१०-१५ दूकान)		डाकखाना व थाना
१½	भारकोट		व अस्पताल काठगोदाम,
१½	जिनोली		का रास्ता
१	भगवती		
१	गणेश		
१	बानाली		
१	मासी (१०-१२ दूकानें)		
४	बुड़ाकेदार		डा०,चौरी देयारघाट व
१	सोन्ना		पालीके ३ रास्ते
१	बासेड़ी		
२	नश्रोला		
१	जयनाल		
१	धारों		
१	भिखियासैन		
३	श्रीकोट		अस्पताल डा०व थाना
२½	बासकोट		वैलगाड़ी रामनगर
१½	छोटा सिम		तक सवारी मिलती है
१	बड़ा सिम		
३	गुजार घाटी		
५	जौखंड		
२	गदी		
६	टोटम		
२	संवयाल		टोटमसे कुमेरिया तक
४	कुमेरिया		पगदंडी से सिर्फ २
५	चकथुला		मील है।
१	गरजीया		
१½	ढिकुली		
६½	राम नगर		अस्पताल डा० थाना
			स्टे० बाजार व मण्डी

फफूंदीसे हानि

[ले॰ रामकुमार सकसेना, एम. एस-सी.]

प्रकृतिने बनस्पति एक ऐसी बहुमूल्य वस्तु उत्पन्न की है कि जिसके लिये यह कहना अनुचित न होगा कि यदि बनस्पति संसारसे लोप हो जावे तो कोई जीव जीता न बचेगा ! विचार करनेपर मालूम होगा कि इस वाक्यमें कितनी सत्यता है। चाहे कोई जीव मांसाहारी हो अथवा शाकहारी, वास्तवमें बनस्पतिपर ही सबका जीवन निर्भर है। सिंह बकरीको खा जाता है और बकरी वृक्षोंकी पत्तियोंपर जीती है। हम गायके दूधसे नाना प्रकारकी खानेकी वस्तुएं बनाते हैं और गायके जीवनका आधार घास भूसा इत्यादि हैं। जलमें रहने वाले छोटे छोटे जीव जन्तु भी अपने भोजनके लिए पानीमें उगने वाली बनस्पतिपर निर्भर हैं। संसारमें कोई ऐसा जीव नहीं जो बनस्पतियों या शाकाहारी जीवोंके बिना जीवित रह सके। मनुष्यका कर्त्तव्य है कि ऐसी उपयोगी वस्तको नाश होनेसे बचावे। परन्तु अवस्था क्या है ? आज इस देशमें अकाल पड़ा तो कल उस देशमें। हज़ारों मनुष्य भूखसे मरजाते हैं। इन दुर्भिक्षोंका क्या कारण है ? समयपर वर्षा न होने, अधिक वर्षा होने, पाला पड़ने तथा अन्नके पौदोंमें कीड़ा व फफूंदी लग जानेसे आकालका सामना करना पड़ता है। स्थानाभावके कारण केवल फफूँदीके सम्बन्धमें ही यहां कुछ लिखा जाता है।

फफूंदी (Fungi) बनस्पतिकी बड़ी भयङ्कर शत्रु है जिस प्रकार मनुष्यके द्रव्य इत्यादिको चोर चुराते हैं उसी प्रकार बनस्पतिका अपार भंडार फफूंदी रूपी चोरसे नहीं बचता। चोर घरमें सेंध लगाकर अपना कार्य्य करता है ठीक उसी प्रकार पौधोंकी त्वचाको बहुधा वेध कर या पर्णमुख (Stoma) हो यह चोर भीतर घुसता है। अन्तर केवल इतना ही है कि चोर चोरी करके भाग जाते हैं परन्तु यह निडर डाकू वहीं अपना अड्डा जमा लेता है और जहांतक हानि पहुँचा सके पहुँचाता है। कभी कभी तो यह उसके प्राणतक हर लेता है। एक बार चोरी करके यह संतुष्ट नहीं होता। प्रतिवर्ष वृक्षोंपर फिर आक्रमण करता है। परिणाम लाखों मन अन्न, फल, खाद्य पदार्थ तथा अन्य उपयोगी वस्तुओंका नाश होता है।

फफूंदी बनस्पतिकी एक जाति है। सूक्ष्मदर्शक यंत्रके द्वारा देखनेसे यह ज्ञात होता है कि फफूंदी रुई के तुल्य बहुधा श्वेत पतले धागों (Hyphae of mycelium) से बनी होती है। जब यह बनस्पतिकी त्वचापर उगती है तो हम उसको सुगमतासे देख सकते हैं। परन्तु कहीं कहीं जब वह त्वचाको भेद कर भीतर उगती है तो उसका पता तबतक नहीं लगता जबतक कि वह वस्तु घुन या सड़कर टूट न जावे। फफूंदीसे कई रङ्गके स्फुर (Spores) उत्पन्न होते हैं जैसे काले, नीले, हरे, पीले इत्यादि। स्फुरोंके एकत्रित होनेसे फफूंदी रगींन दीख पड़ती है। फफूंदी कई प्रकारकी होती हैं। इनमेंसे कोई कोई छातोंके सामान रूप धारण करती है जिनको साधारण बोलचालमें छतरी, खुम्भी या कुकुरमुता कहते हैं। इन छतरियोंमें नीचेकी ओर स्फुर उत्पन्न होते हैं। फफूंदीके एक पौदेसे लाखोंकी संख्यामें बहुत छोटे हलके स्फुर उत्पन्न होते हैं। यह दृष्टिमें नहीं आते। बहुधा वायु इनको उड़ाकर दूर दूरतक ले जाती है। अनुकूल जलवायु पाकर यह स्फुर पौदों तथा अन्य वस्तुओंपर फूट निकलते हैं (germinate)। वर्षा ऋतुमें सील अधिक होती है और इसी कारण इस ऋतुमें फफूंदी अधिक उत्पन्न होता है। यहांपर बतला देना आवश्यक है कि यह दूसरे पौधे व अन्य वस्तुओंपर अपने खानेके लिए क्यों निर्भर है। पौधोंमें एक हरे रंगकी वस्तु पर्णहरित (clorophyll) (क्लोरोफिल) होती है जिसके द्वारा वे अकाशमें अपना भोजन स्वयम् बनाते हैं। फफूँदीमें पर्णहरित नहीं होती और इस कारण यह दूसरेके बने बनाए भोजन पर

कर जाती है। प्रकाशकी अपेक्षा अंधेरेमें इसको अधिक सफलता होती है।

मनुष्युको जितनी हानि फफूँदीसे पहुँचती है उसका अनुभव करना कठिन है। प्रत्येक मनुष्यको आहार, कपड़े वृक्ष तथा अनेक अन्य वस्तुओंकी आवश्यकता रहती है जिनका उत्तम अवस्थामें रहना आवश्यक है, परन्तु वे फफूँदीके आक्रमणसे नहीं बचतीं। इतना ही नहीं कभी कभी मनुष्यको भी इसके कारण कालका ग्रास बनना पड़ता है।

इस फफूंदी शत्रुकी सेना हम मुख्य तीन भागोंमें बांट सकते हैं।

१—फफूँदी जो पौदोंपर आक्रमण करे।
२—फफँदी जो प्राणी मात्रको हानि कारक हो।
३—फफूंदी जिससे अन्य वस्तुओंका नाश हो।
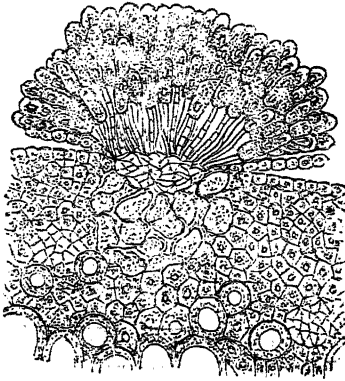
[चित्र—गेहूँके पौदेपर लगने वाली फफूंदी (Pucciniagraminis) के काले स्फुरों (Teteu tospores) का समूह।

च=गेहूँ के पौदेके तन्त (Tissues)]

बनस्पतिकी उत्पत्तिके साथ ही साथ फफूँदी सम्बंधी रोगोंका भी विकाश होना आरम्भ हो गया। वृक्षोंके रोगोंकी ओर दृष्टि डालते ही बड़ा शोक होता है। भारतवर्ष ही नहीं सारा संसार गेहूं, जौ, ज्वार, चावल, चना, इत्यादिपर निर्भर है। इन पौधोंकी दशा शोचनीय है। यह विचार करना कि बनस्पतिमें रोग लगनेसे मनुष्यको अधिक हानि नहीं पहुँचती बड़ी भूल है। उदाहरणार्थ आयर्लेन्ड (Ireland) में सन् १८४६ ई० में आलूकी फसल फाईटफथोरा इनफेसटन्स (Phytophthora infestans) नामक फफूँदीसे मारी गई और एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। अमरीका (America) में फफूँदीके द्वारा गेहूँ, जौ, ज्वार, आलू सेवकी फ़सलको बड़ी हानि पहुँचा है। जार्ज मैसी (George Massee) ऐसे विद्वानने सन १९१२ ई० में लिखा है कि सारे संसारमें फफूँदीके कारण ३०००००००० तीन अरबसे अधिक रुपयेकी हानि होती है। भारतवर्षमें भी फफूँदीके कारण लाखों रुपयेकी हानि होती है। अन्य देशोंकी तरह भारतवर्षकी सरकारने भी कई एक संस्थाऐं फफूँदी कृत रोगोंके जानने व उनकी चिकित्सा करनेके लिए स्थापित की हैं इस विषयपर पूसामें अधिक काम हो रहा है।
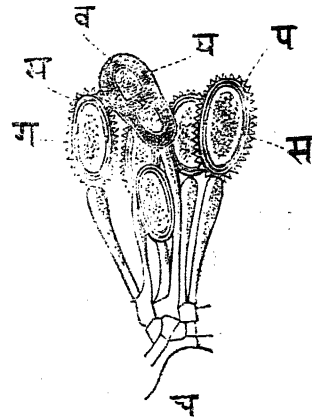
[चित्र—गेहूँके पौदेपर लगने वाली फफूंदी (Pucciniagraminis) के स्फुर (बीजमूलक)।

ग=लालस्फुर (uredospore)

व=कालास्फुर (Teleutospore)]

मनुष्य खाने पीनेकी चीजके साथ फफूँदी खाजानेसे कभी कभी मरतक जाता है। पालतू जानवरोंको भी इससे बड़ी हानि पहुँचती है। (Rye राईके आटेमें अरगट के (Ergot) काले इस्क्लेरोशिया (Sclerotia) मिलजाने व मनुष्यके पेटमें लगातार पहुँचनेसे धीरे धीरे विष एकत्रित हो जाता है और

उससे हाथ पैरकी अंगुलियां गल जाती हैं। ऐसे स्थानोंमें जहां अकाल पड़े प्रबंध कर्त्ताओंको बड़ी सावधानीसे काम करना चाहिए अन्यथा बिल-साफ़ किए हुए अन्नके खानेसे इस बीमारीके फैलने-का भय होता है। यदि गर्भवती स्त्री इस्क्लेरेशिया खाजावे तो गर्भपात हो जाता है। मनुष्यकी खाल-पर कई एक रोग हो जाते हैं जैसे दाद ट्राईको-फाईटन टौनसूरेन्स (Trichophyton tonsurans) फफूँदीसे बच्चोंके मुँहमें सफ़ेद झिल्ली ओडीअम एलबीकन्स (Odium albicans) के धागोंसे पैदा होती है और एकोरिऔन शौनलीनाई (Achorion Schønleinii) एक प्रकारकी छाजन (Favus eczema) पैदा कर देता है।
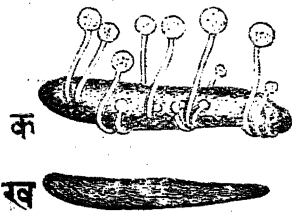
[चित्र—ख=अरगट (Ergot) के काले इसक्लेरोशिया क=इसक्लेरोशियासे किल्ले निकलना]

भूमध्य रेखा (Equator) के समीप बसने वाले देशोंमें प्रायः फफूँदीसे पैदा होने वाले रोग अधिक भयंकर रूप धारण करते हैं। दक्षिण भारतमें "पगु रोग" ("Madura foot") विचित्र पैरकी बीमारी होती है, जिससे पंजे अपना वास्तविक रूप छोड़कर पंगु हो जाते हैं। संसारके विगत (Great War) भीषण युद्धमें इस रोग (Trench feet) ने सिपाहियों को बड़ा कष्ट पहुँचाया है।

हम लोग पालतू जानवरोंके रोगोंको ही विशेष कर जानते हैं। बहुधा ऐसा देखनेमें आता है कि फफूँदी कृत रोग मनुष्यों और पशुओंमें समान ही हैं। बैल घोड़े कुत्ते खरगोश अथवा पक्षियों इत्यादिको दाद हो जाती है। अरगट रोगसे बहुतेरे जानवर पीड़ित होते हैं। गाय, बैल भेड़े व सुअरोंको "जीभ जकड़" (Hard Tongue) नामक असाध्य रोग एक्टिनोमाईसेस बोविस (Actinomyces bovis) फफूँदीसे होता है। यह फफूँदी घासपर उगती है जिसको खानेसे जीभपर दाने पड़ जाते हैं, और जीभ अपना काम करना छोड़ देती है। प्रायः गांवमें रहने वाले मनुष्योंकी घासके तिनके मुँहमें डालने या नाज चबानेकी आदत होती है जिसके कारण यह रोग मनुष्योंको भी हो जाता है। शाका-हारी पशुओंको पेटके कई रोग शाक पातमें फफूँदी खाजानेसे होजाते हैं। श्वास लेनेमें वायुके साथ एसपरजिलस (Aspergillus) के स्फुर फेफड़ोंमें जानेसे उनमें सूजन पैदा कर देते हैं। यह रोग चिड़ियोंमें बहुधा पाया जाता है।

मछली मेढ़क इत्यादि जानवर पानीमें उत्पन्न होनेवाली फफूँदी से परोलिगनिया फेरेक्स (Saprolegnia ferax) से पीड़ित होते हैं। मक्खी मच्छड़ व कीड़ोंकी मृत्यु प्रायः फफूँदीसे हो जाती है। एमपूसा मसी (Empusa Muscae) घरमें मिलने-वाली मक्खीको मार डालती है और इस प्रकार मनुष्य भयंकर रोगों, जैसे हैजा इत्यादिसे, बच जाता है। रेशमके कीड़ोंके लिये बोटरीटिस वैसियाना (Botrytis Bassiana) विकराल काल है और कारण फ्रांसमें रेशमके व्योपारको बड़ा धक्का पहुंचा।

इम रतोंमें लगी हुई लकड़ीको खा जाना या खाने पीने वाली वस्तुओं जैसे फल, रोटी, अचार, इत्यादिको खराब कर डालना तीसरी श्रेणीकी फफूँदीका काम है। "काठनाशक-फफूँदी" (Wood Rots) शहतीर, देवदार शीशम व अन्य क़ीमती लकड़ीमें लग जाती है। प्रकाश तथा वायुके अभाव-से पैलीपोरस क्रपटेरम (Polyporus Cryptarum) से बड़ी हानि पहुँचती है फफूँदीके धागे कभी कभी विशेष रूपके लम्बे धागोंमें परिणत होते हैं जिनको राइजोमोर्फस (Rhirsomorphs) कहते हैं। इनके द्वारा फफूँदी ईंट धातु तथा पत्थरके ऊपर होकर अपने आहार लकड़ीतक पहुंचती है। मेरूलियस लेकरीमेन्स (Meralius lacrymans) से "शुष्क

घुन" (Dry Rot) रोग पैदा होता है। इस फफूंदी को श्वांस लेनेके लिए ओषजन (Oxygen) की आवश्यकता पड़ती है। वायुसे ओषजन लेनेपर इसके धागोंके सिरोंसे पानीकी बूंदें टपकने लगती हैं। पतले तारोंके सहारे यह एक जगहसे दूसरी जगह फैल सकती है। यहांतक देखा गया कि यह एक मंजिलसे दूसरी मंजिलतक चूनेमें होकर दीवारको पार करती है और लकड़ीकी तरह दीवालको भी पोला कर देती है।

मांसपर स्पोरोट्राईकम कारनिस (Sportrichum carnis) के कारण श्वेत रुएँदार धब्बे पड़ जाते हैं। थैम्निडियम् (Thamnidium) तथा म्यूकर (Mucere) इत्यादि मांसपर आक्रमण करते हैं।

फलोंमें भी इसी प्रकारके कई एक रोग होते हैं, जिनके कारण लाखों रुपएकी हानि होती है। इन सब बातोंपर विचार करते हुए कहना पड़ेग कि फफूँदी वनस्पतिका एक महान शत्रु है।

सर्व सिद्धान्त संग्रह

(गतांक से आगे)

[ले०—श्री गंगाप्रसादजी उपध्याय. एम. ए.]

तस्माद् यागादयोधर्माः कर्त्तव्या विहितायतः।
अन्यथा प्रत्यवायस्स्यात् कर्मण्येवाधिकारिणाम् १३॥

इस लिये यज्ञ आदि वेदोंमें बताये हुये कर्म अवश्य करने चाहिये। नहीं तो उन लोगोंको जो कर्मके ही अधिकारी बनाकर उत्पन्न किये गये हैं पाप लगेगा। १३।

कर्ममात्रैकशरणाः श्रेयः प्राप्स्यन्त्यनुत्तमम्।
न देवता चतुर्थ्यन्त विनियोगादृते परा ॥१४॥

जो केवल कर्मके ही आश्रय रहते हैं वह अपूर्व सुख पायेंगे। देवता वही है जिसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता हो इसके अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं। १४।

वेदवाह्यान्निराकृत्य भट्टाचार्यैर्गते पथि।
चक्रे प्रभाकरश्शास्त्रं गुरुः कर्माधिकारिणाम् ॥१५॥

कुमारिल भट्टके मार्ग पर चलकर प्रभाकर ने वेद विरोधियोंका खण्डन करके कर्मके अधिकारियोंके लिये शास्त्रका उपदेश किया। १५।

इतिश्रीमच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्व दर्शन सिद्धान्त-संग्रहे प्रभाकर पक्षोनाम सप्तम प्रकरणम्।

यह श्री शंकराचार्य कृत सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रहमें प्रभाकर पक्ष नामका सातवां अध्याय समाप्त हुआ।

आठवां अध्याय

अथ भट्टाचार्य पक्षः

बौद्धादिनास्तिकध्वस्तवेद मार्गं पुराकिल।
भट्टाचार्यः कुमारांशः स्थापयामास भूतले ॥१॥

जिस वेद मार्गका पुराने कालमें बौद्ध आदि नास्तिकोंने विध्वंस करदिया था उसीको कुमारिल भट्टाचार्य्यने फिर पृथ्वीपर स्थापित किया। १।

त्यक्त्वा काम्यनिषिद्धे द्वे विहिता चरणान्नरः।
शुद्धान्तः करणो ज्ञानी परं निर्वाणमृच्छति ॥२॥

जो आदमी वेद विहित आचरणोंको करता है और काम्य (फलकी इच्छासे) और निषिद्ध (बुरे) कर्मों को छोड़ देता है वह शुद्धान्तःकरण और ज्ञानी होकर परं निर्वाण पदको प्राप्त करलेता है। २।

काम्यकर्माणि कुर्वाणैः काम्यकर्मानुरूपतः।
जनित्वैवोपभोक्तव्यं भूयः काम्यफलं नरैः ॥३॥

जो काम्य कर्म किये जाते हैं। अर्थात् जिनकर्मों में फल पानेकी इच्छा होती है उनका नियम यह है कि उनका फल जन्म होने पर ही भोगा जा सकता है। इसलिये जब तक काम्य कर्म करते रहोगे शरीर धारण करनाही पड़ेगा और मोक्ष न मिल सकेगी। ३।

कृमि कीटादि रूपेण जनित्वा तु निषिद्धकृतः।
निषिद्ध फल भोगीस्यादधोऽधोनरकं व्रजेत् ॥४॥

निषिद्ध (बुरे) कर्म करने वाला प्राणी कीड़े मकोड़ोंका जन्म धारण करके बुरे कर्मोंका फल भोगेगा और धीरे धीरे नरकको जायगा । ४ ।

अतो विचार्य विज्ञेयौ धर्माधर्मौ विपश्चिता ।
चोदनैक प्रमाणौ तौ न प्रत्यक्षादिगोचरौ ॥५॥

इसलिये बुद्धिमानोंको चाहिये कि धर्म और अधर्म का विचार करें । यह दोनों केवल वेदोंसे जाने जासकते हैं प्रत्यक्षादि प्रमाणों से नहीं । ५ ।

विध्यर्थवादैर्मन्त्रश्च नामधेयैश्चतुर्विधः।
वेदो विधि प्रधानोऽयं धर्माधर्माववोधकः ॥६॥

वेदके चार भाग हैं विधि, अर्थवाद, मंत्र और नामधेय । इनमें विधि प्रधान है क्योंकि इससे धर्म और अधर्मका ज्ञान होता है । ६ ।

निवर्त्तकं निषिद्धाद् यत् पुंसां धर्मप्रवर्तकम् ।
वाक्यं तच्चोदना वेदे लिङ् लोट्तव्यादि लाञ्छि-तम् ॥७॥

वेद का वह भाग जो मनुष्योंको किसी काम-के करनेसे रोकता है या किसी कामके करनेकी प्रेरणा करता है विधि या चोदना कहलाता है । उसकी पहचान है लिङ् (विधि) लोट् (आज्ञा), तव्य आदि प्रत्यय ॥७॥

निषिद्धनिन्दकं यत्तु विहितार्थं प्रशंसकम् ।
वाक्य मंत्रार्थवादः स्याद्विध्यंशत्वात्प्रमाणकम् ॥८॥

जो वाक्य निषिद्ध बात की निन्दा और विहित बात की प्रशंसा करता है वह अर्थवाद कहलाता है । चूंकि वह विधिका अंश है इस लिये प्रामाणिक है । ८ ।

कर्माङ्गभूता मन्त्राः स्युरनुष्ठेय प्रकाशकाः ।
यागादेर्नामभूतानि नामधेयानि हि श्रतौ ॥९॥

वेदोंका वह भाग मंत्र कहलाता है जो कर्म अर्थात् यज्ञोंका अङ्ग है और जिससे अनुष्ठेय बातों पर प्रकाश पड़ता है। अनुष्ठेय वह बात है जिसके लिये यज्ञ किया जाता है । वेदका वह भाग नामध्येय है जिसमें याग आदिके नाम दिये हैं ॥९॥

आत्मा ज्ञातव्य इत्यादि विषयस्त्वारुणेषु ये ।
बोधं विदधते ब्रह्मण्यात्मनां परमात्मनि ॥१०॥

आरुण अर्थात् उपनिषदोंमें जो ऐसे विधि वाक्य हैं कि "आत्मा जाननेके योग्य है" इत्यादि उनके द्वारा ब्रह्म परमात्माके आत्माओंके लिये बोधकराया गया है ॥१०।

दूषयन्त्यनुमानाभ्यां बौद्धा वेदमपिस्फुटम् ।
तन्मूललब्ध धर्मादेरपलापस्तुसिध्यति ॥११॥

बौद्ध लोग अनुमानोंके द्वारा स्पष्टतया वेदों-को दोष देते हैं। और वेदोंके आश्रित जो धर्म आदि हैं वह भी इसलिये खण्डित हो जाते हैं ॥ ११ ॥

वेदोऽप्रमाणं वाक्यत्वान्दृथ्या पुरुष वाक्यवत् ।
अथानाप्तप्रणीतत्वादुन्मत्तानां यथा वचः ॥१२॥

वेद प्रमाण नहीं है क्योंकि वह उसी प्रकार वाक्य है जैसे गलीमें चलनेवाले आदमीके होते हैं न वह आप्त पुरुषोंके वाक्य हैं परन्तु पागलोंकी सी बातें हैं ॥१२॥

तद युक्तमिमौ हेतू भवेतामप्रयोजकौ ।
वाक्यत्वमात्राद्वेदस्य न भवत्यप्रमाणता ॥१३॥

बौद्धोंके दिये हुये यह दोनों हेतु ठीक नहीं हैं न उनसे वेदोंका खण्डन होता है । यह कोई युक्ति नहीं है कि वेदों में वाक्य हैं इसलिये वह अप्रा-माणिक हैं ॥१३॥

अनाप्त पुरुषोक्तत्वं हेतुस्ते न प्रयोजकः ।
स्यादनाप्तोक्तता मात्रादप्रामाण्यं न च श्रुतेः ॥१४॥

वेद आप्त पुरुषोंके वाक्य न होनेसे प्रामाणिक नहीं यह युक्ति भी ठीक नहीं । साधारण बात यदि आप्त की कही न हो तो माननीय नहीं किन्तु श्रुति भगवद्वाक्य है । इस पर वह दलील नहीं घटती॥१४॥

नित्यवेदस्य चानाप्त प्रणीतत्वं न दुष्यति ।
विप्रलम्भादयो दोषाविद्यन्ते पुङ्गिरां सदा ॥१५॥

आप्त प्रणीत न होनेकी युक्ति नित्य वेदोंके विषयमें नहीं दी जा सकती । धोखे आदिके दोष सदा आदमियोंकी बातोंमें पाये जा सकते हैं। वेदोंमें नहीं ॥१५॥

वेदस्या पौरुषेयत्वाद् दोषाशङ्कैव नास्तिनः ।
वेदस्या पौरुषेयत्वं के चिन्नैयायिकादयः ॥१६॥
दूषयन्तीश्वरोक्तत्वान्मन्यमानाः प्रमाणताम् ।
पौरुषेयो भवेद्वेदो वाक्यत्वाद्भारतादिवत् ॥१७॥
सर्वेश्वर प्रणीतत्वे प्रामाण्यमपि सुस्थितम् ।
प्रामाण्यं विद्यतेनेति पौरुषेयेषु युज्यते ॥१८॥
वेदे वक्तुरभावाच्च तद्वार्तापि सुदुर्लभा ।
वेदस्य नित्यता प्रोक्ता प्रामाण्येनापयुज्यते ॥१९॥

वेद अपौरुषेय हैं। इसलिये हमको उनपर कोई शङ्का नहीं है। कुछ नैयायिक जो वेदोंको प्रमाण मानते हैं, वेदोंको अपौरुषेय नहीं मानते। वह कहते हैं कि जैसे भारतादि पुरुषोंके बने हैं ऐसेही वेद भी पौरुषेय हैं। उनको ईश्वर ने बनाया है इस लिये प्रामाणिक हैं। प्रामाणिक होने न होनेका प्रश्न मनुष्योंके वाक्यमें उठता है। वेदोंका कोई कहने वाला पाया नहीं जाता। वेदोंकी नित्यता जो कही जाती है वही उनके प्रमाणहोनेके लिये काफ़ी है॥ १६-१९ ॥

सर्वेश्वर प्रणीतत्वं प्रामाण्यस्यैव कारणम् ।
तदयुक्तं प्रमाणेन केनात्रेश्वर कल्पना ॥२०॥

यह कहना कि वेदोंका प्रामाण इनके ईश्वर प्रणीत होने पर निर्भर है ठीक नहीं है। क्योंकि ईश्वरकी कल्पना किस प्रमाणसे करते हो? ।२०।

स यद्यागम कल्पस्स्यान्नित्योऽनित्यः किमागमः ।
नित्यश्चेत्तं प्रतीशस्य केयं कर्त्तत्वकल्पना ॥२१॥

अगर कहो कि ईश्वरकी कल्पना वेदोंसे होती है तो प्रश्न है कि वेद नित्य हैं या अनित्य। यदि नित्य हैं तो ईश्वरसे बने होनेकी कल्पना कैसे हो सकती है।

अनित्यागमपक्षे स्यादन्योऽन्याश्रयदूषताम् ।
आगमस्य प्रमाणत्वमीश्वरोक्तयेश्वरस्ततः ॥२२॥
आगमात्सिध्यतीत्येवमन्योऽन्याश्रयदूषणम् ।
स्वत एव प्रमाणत्वमतो वेदस्य सुस्थितम् ॥२३॥

अगर वेद अनित्य है तो अन्योन्यऽश्राय दोष आवेगा, क्योंकि वेद के प्रामाणिक होनेके लिये ईश्वरका बनाया हुआ होना आवश्यक है। और ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि वेदों के आश्रित है। इसलिये वेदों का प्रमाणत्व स्वयं ही सिद्ध है।

धर्माधर्मौच वेदैकगोचरावित्यपिस्थितम् ।
ननुवेदं बिना साक्षात्करामलकवत्स्फुटम् ॥२४॥
पश्यन्ति योगिनो धर्मं कथं वेदैकमानता ।
तदयुक्तं न योगी स्यादस्मदादिविलक्षणः ॥२५॥

यदि यह माना जाय कि धर्म और अधर्म केवल वेदसे ही मालूम होते हैं तो यह शङ्का होती है कि जब योगी लोग योग बलसे धर्म और अधर्मको हाथमें आंवलेके समान स्पष्ट देखलेते हैं तो वेदोंका मान कहां रहा। इस पर कहते हैं कि यह आक्षेप ठीक नहीं है। योगी हमसे कुछ भी विलक्षण नहीं है। २४—२५।

सोपि पञ्चेन्द्रियैः पश्यन् विषयं नातिरिच्यते ।
प्रत्यक्षमनुमानाख्यमुपमानमेनन्तरम् ॥२६॥
अर्थापत्तिरभावश्च न धर्मं बोधयन्ति वै ।
तत्तदिन्द्रिययोगेन वर्त्तमानार्थबोधकम् ॥२७॥
प्रत्यक्षं नहि गृह्णाति सोऽप्यतीतमनागतम् ।
धर्मेण नित्य सम्बन्धिरूपस्याभावतः क्वचित् ॥२८॥
नानुमानमपि व्यक्तं धर्माधर्मावबोधकम् ।
धर्मादि सदृशाभावादुपमानमपि क्वचित् ॥२९॥
सादृश्यग्राहकं नैव धर्माधर्मावबोधकम् ।
सुखस्य कारणं धर्मो दुःखस्याधर्म इत्यपि ॥३०॥
अर्थापत्त्यात्र सामान्यमात्रे ज्ञातेन दुष्यति ।
सामान्यमननुष्ठेयं किञ्चातीतं तदाभवेत् ॥३०॥

वह भी पांच इन्द्रियोंसे ही चीज़ोंको जानता है। इससे आगे नहीं जाता प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान, अर्थापत्ति और अभाव धर्मको नहीं बताते। प्रत्यक्ष तो इन्द्रियोंका अर्थके साथ संयोग होनेसे वर्त्तमानकी बात बतता है। प्रत्यक्ष से भूत या भविष्यत्की बात मालूम नहीं होती। चूंकि धर्मके साथ किसी अन्य चीज़का नित्य सम्बन्ध नहीं है अतः अनुमानसे भी धर्म या अधर्मका ज्ञान नहीं हो सकता। चूंकि धर्मका किसी चीज़से सादृश्य नहीं है इसलिये उपमान भी धर्म अधर्मके जाननेमें सहायक नहीं होसकता। अगर अर्थापत्तिसे यह

कहा जाय कि धर्म सुखका कारण है और अधर्म दुःखका तो ठीक है परन्तु सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता । और जब बात बीत गई तो उसके जाननेसे भी क्या लाभ । अर्थात् जब सुख हो गया तो जाना कि सुख धर्मके कारण हुआ तो धर्मके ऐसे ज्ञानसे क्या लाभ । २६—३१ ।

यागादयो ह्यनुष्ठेया विशेषा विधिचोदिताः ।
अभावाख्यं प्रमाणं न पुण्यापुण्य प्रकाशकम् ॥३२॥
प्रमाण पञ्चकाभावे तत्सत्ता वर्तते यतः ।
वेदैक गोचरौ तस्माद्धर्माधर्माविति स्थितम् ॥३३॥

विशेष यज्ञ आदि वेदोंके कहे हुये करने चाहिये । 'अभाव' प्रमाण भी धर्म अधर्मका बोध नहीं कराता क्योंकि अभाव तभी काम करता है जब पांचो प्रमाण न करें। इसलिये सिद्ध है कि धर्म और अधर्म केवल वेदोंसे ही जाने जाते हैं ॥ ३२, ३३ ॥

वेदैक विहितं कर्म मोक्षदं नापरं ततः ।
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः ॥३४॥

वेदोंमें बताये हुये कर्मही मोक्ष देने वाले हैं अन्य नहीं । इसलिये जिसको मोक्षकी इच्छा है उसे चाहिये कि काम्य और निषिद्ध कर्मोंसे बचा रहे ॥३४॥

नित्यनैमित्ति के कुर्यात् प्रत्यवायजिहासया ।
आत्मा ज्ञातव्य इत्यादि विधिभिः प्रतिपादिते ॥३५॥
जीवात्मनां प्रबोधस्तु जायते परमात्मनि ।
प्रत्याहारादिकं योगमभ्यस्यन् विहितक्रियः ॥३६॥
मत करण केनात्मा प्रत्यक्षेणावसीयते ।
भिन्नाभिन्नात्मकस्तत्रात्मा गोवत्सद् सदात्मतः ॥३७॥
जीवरूपेण भिन्नो ऽपि त्वभिन्नः पररूपतः ।
असत्स्याज जीवरूपेण सद्रूपः पररूपतः ॥३८॥

पापसे बचनेकी इच्छासे नित्य और नैमित्तिक कर्त्तव्योंको करना चाहिये । यह जो विधि है कि "आत्मा जानना चाहिये ।" यह ज्ञान आत्माओंको प्रत्याहार आदि योगाभ्यास तथा अन्य विन्हित काम करनेसे स्वयं 'मन' इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है। आत्मा भिन्न और अभिन्न दोनों है और सद् और असत् दोनों हैं उसी प्रकार जैसे 'गो' का भाव जीव रूपसे भिन्न है और परमात्मा रूपसे अभिन्न । जीव रूपसे असत् है और ब्रह्मरूपसे सत् ॥३५-३८॥

शाबले यादि गोष्वेव यथा गोत्वं प्रतीयेते ।
परमात्मा त्वनुस्यूतवृत्तिर्जीवेऽपिबुध्यताम् ॥३९॥

जैसे चितकबरी आदि 'गौओं'में गौत्व होता है इसी प्रकार जीवोंमें भी परमात्मा ओत प्रोत समझना चाहिये ॥३९॥

त्रैयम्बकादिभिमन्त्रैः पूज्यो ध्येयो मुमुक्षुभिः ।
ध्यात्वैवारोपिताकारं कैवल्यंसोऽधिगच्छति ॥४०॥

मोक्षकी इच्छा रखने वालोंको चाहिये कि अम्बकादि मंत्रोंसे उसका ध्यान करें। अगर उसको 'आकार वाला' मानकर भी ध्यान किया जाय तो मोक्ष मिल जाता है ॥४०॥

परानन्दानुभूतिः स्यान्मोक्षेतु विषयादृते ।
विषयेषु विरक्तास्स्युर्नित्यानन्दानुभूतितः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं मोक्षमेव मुमुक्षवः ॥४१½॥

मोक्षमें विषय नहीं रहते और परमानन्दका अनुभव होता है। नित्यानन्दका अनभव करनेवाले मुमुक्षु विषयोंसे विरक्त होकर मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं जहांसे फिर लौटना नहीं होता ॥४१½॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित सर्वदर्शन सिद्धान्त सङ्ग्रहे भट्टाचार्यपक्षो नाम अष्टम प्रकरणम् ।

यह श्री शङ्कराचार्य रचित सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रहका भट्टाचार्य पक्ष नामका आठवां प्रकरण समाप्त हुआ ।

नवां अध्याय

अथ साङ्ख्य पक्षः

साङ्ख्य दर्शन सिद्धान्तः संक्षेपादथ कथ्यते ।
साङ्ख्य शास्त्रं द्विधाभूतं सेश्वरञ्च निरीश्वरम् ॥१॥

अब साङ्ख्य दर्शनका सिद्धान्त संक्षपसे कहते हैं साङ्ख्य दो प्रकारका है ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी ॥१॥

चक्रे निरीश्वरं साङ्ख्य कपिलोऽन्यत्पतञ्जलिः ।
कपिलो वासुदेवस्यादनन्तस्यात्पतञ्जलिः ॥२॥

निरीश्वर साङ्ख्यको कपिलने और सेश्वर सांख्यको पतञ्जलिने बनाया । कपिल वासुदेव (विष्णु) का अवतार थे और पतञ्जलि अनन्त (सर्प) का ॥२॥

ज्ञानेन मुक्ति कपिलो योगेनाह पतञ्जलिः ।
योगी कपिल पक्षोक्तं तत्वज्ञानमपेक्षते ॥ ३ ॥

कपिल कहते हैं कि ज्ञानसे मुक्ति होती है । पतञ्जलि कहते हैं कि योग से, योगीको कपिलके कहे हुए तत्त्व ज्ञानकी आवश्यकता होती है ।

श्रुतिस्मृतोतिहासेषु पुराणे भारतादिके ।
सांख्योक्तं दृश्यते स्पष्ट तथा शैवागमादिषु ॥४॥

श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, महाभारत आदि और शैव शास्त्रोंमें भी साङ्ख्यका वर्णन मिलता है ॥४॥

व्यक्ताव्यक्तविवेकेन पुरुषस्यैव वेदनात् ।
दुःखत्रय निवृत्तिः स्यादेकान्तात्यन्ततो नृणाम् ॥५॥

व्यक्त और अव्यक्तकी पहचान तथा पुरुषके ज्ञान से आदमियोंके तीन प्रकारके दुःखोंकी एकान्त और अत्यन्त निवृत्ति होती है एकान्त निवृत्ति कहते हैं दुःखके नियम पूर्वक नष्ट हो जाने को; अत्यन्त कहते हैं दुःखके फिर न लौट सकने को ॥५॥

दुःखमाध्यात्मिक चाधिभौतिक चाधि दैविकम् ।
आध्यात्मिकं मनो दुःख व्याधयः पिटकादयः ॥६॥
आधिभौतिक दुःखं स्यात् कीटादि प्राणि सम्भवम् ।
वर्षातपादि सम्भूतं दुःखंस्यादाधिदैविकम् ॥ ७ ॥

दुःख तीन तरहके हैं आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक । अध्यात्मिक वह दुःख हैं जो मन से उत्पन्न होते है या फोड़े आदि रोग । जो कीड़े आदि अन्य प्राणियोंसे होते हैं वह आधि भौतिक हैं और जो वर्षा धूप आदिसे होते हैं वह आधि-दैविक ॥७॥

एकान्तात्यन्ततो दुःखं निवर्त्तेतात्मवेदनात् ।
उपायान्तरतो मोक्षः क्षयातिशय संयुतः ॥ ८ ॥

आत्मा के ज्ञान से दुःख सर्वथा नष्ट हो जाते हैं, दूसरी रीति से जो मोक्ष मिलता है वह घटता बढ़ता रहता है ॥८॥

नचौषधैर्न यगाद्यैः स्वर्गादि फल हेतुभिः ।
त्रैगुण्य विषयैर्मोक्षस्तत्वज्ञानादृते परैः ॥ ९ ॥

मोक्ष न औषधियोंसे मिलता है न यज्ञादिसे क्योंकि यज्ञादि केवल स्वर्ग प्राप्तिके साधन हैं । यह सत, रज, तम इन तीनों गुणोंसे सम्बन्ध रखते हैं । मोक्ष केवल तत्व ज्ञानसेही मिलता है । अन्यथा नहीं ॥९॥

पञ्चविंशति तत्वानि व्यक्ता व्यक्तादिकानियः ।
वेत्ति तस्यैव विस्पष्टमात्मज्ञानं भविष्यति ॥१०॥

जो आदि व्यक्त और अव्यक्त २५ तत्वोंके जानता है केवल उसीको ठीक ठीक आत्मज्ञाना होता है ॥१०॥

पञ्चविंशति तत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसेत् ।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥११॥

जो २५ तत्वोंको जाननेवाला है उसको अवश्य मोक्ष मिलेगा चाहे वह किसी आश्रममें क्यों न हो चाहे जटा रखता हो, चाहे सन्यासी हो, चाहे शिखाधारी हो ॥११॥

पञ्चविंशति तत्त्वानि पुरुषः प्रकृतिर्महान् ।
अहङ्कारश्च शब्दश्च स्पर्शरूपरसास्तथा ॥ १२ ॥
गन्धः श्रोत्रं त्वक्च चक्षुर्जिह्वा घ्राणञ्च वागपि ।
पाणिः पादस्तथा पायुरुपस्तश्च मनस्तथा ॥ १३ ॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमित्यपि ।
सृष्टि प्रकारं वक्ष्यामि तत्त्वात्मकमिदं जगत् ॥१४॥

२५ तत्व यह हैं:—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, श्रोत्र, त्वचा चक्षु, जिव्हा, नाक, वाणी, हाथ, पैर, पायु (मल त्यागने की इन्द्रिय) उपस्थ (उत्पत्ति की इन्द्रिय) मन, पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश । अब मैं सृष्टि का प्रकार बताऊँगा । यह जगत् तत्त्वोंसे बना है ॥१२—१४॥

(क्रमशः)

विज्ञान-परिषत् की रिपोर्ट

ज्ञान परिषद्को स्थापित हुए अब १४ वर्ष हो गये हैं देशी भाषाओं-में वैज्ञानिक साहित्य निर्माणका अत्यन्त कठिन कार्य परिषद्ने अनेक कठिनाइयोंका सामना करते हुए बराबर जारी रक्खा है। यह प्रयत्न किया गया है कि सरल और सुबोध भाषामें गूढ़ वैज्ञानिक विषयोंको जनसाधारणके सामने रखकर वैज्ञानिक विषयोंमें रुचि पैदा की जाय। इस उद्देशकी पूर्त्तिके लिये विज्ञान मासिकपत्र प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाता है। विद्यार्थियोंके पढ़नेके योग्य आरम्भिक विज्ञान-की पुस्तकें निकाली गई हैं जिनका कुछ आदर भी हुआ है।

परिषद्की गत ५ वर्षोंकी अवस्थापर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि पहले ३ वर्षोंमें परिषत्के काममें ढीलापन आगया था परन्तु इधर दो वर्षोंसे निरंतर उद्योग-पूर्ण परिश्रमके कारण अब अवस्था फिर सुधर गई है। राजनीतिक आन्दोलनके कारण सर्वसाधारणका ध्यान विज्ञान परिषद्की ओरसे प्रायः बिलकुल हट गया था इसलिए विज्ञानके ग्राहकोंकी संख्या बिलकुल घट गई थी और धीरे धीरे परिषत्के सभ्योंकी संख्या भी बिलकुल घट गई, आजन्म सदस्योंके अतिरिक्त थोड़े से केवल विज्ञान परिषदके प्रेमीही सभ्य रह गये। आर्थिक कठिनाईके कारण कार्यमें शिथिलता आना स्वाभाविक ही था। फिर भी पुरानी बचतकी सहायतासे ज्यों त्यों काम जारी रक्खा गया। नवम्बर १९२३ में अवस्था यह थी कि परिषद्की पुरानी बचतमेंसे ६००) रुपया घाटेका अदा किया गया। जनताके लाभके लिए परिषद्की ओरसे सरल और सुबोध भाषामें वैज्ञानिक विषयोंपर व्याख्यान समय समयपर दिये जाया करते थे परन्तु इन सभाओंमें इतनी कम उप-स्थिति होती थी कि इन व्याख्यानोंका प्रबन्ध बिलकुल निरर्थक समझा गया।

सितम्बर सन् १९२४ में (परिषद्का वर्ष प्रति सित-म्बरमें समाप्त होता है) भी परिषद्की अवस्था सन्तोष-जनक न थी। व्याख्यान बन्द ही हो चुके थे। पुस्तकों-की बिक्री अत्यन्त मन्द थी। केवल विज्ञान जैसे-तैसे निकाला जाता था परन्तु इसकी भी अवस्था आर्थिक कठिनाइयोंके कारण बहुत ही बुरी थी। विज्ञानके ग्राहकोंकी संख्या निरन्तर घटती जाती थी और दूसरी ओर परिषद्के सभ्योंकी संख्या भी घटती-की ओर ही थी।

परिषत्के कार्यकर्त्ताओंको डर था कि शायद विज्ञानका प्रकाशनभी बन्द करना पड़े। परन्तु जो काम इतने वर्षोंसे अनेक कठिनाइयोंको झेलते हुए परिषद्ने अबतक किया था उस सबका एकदम अन्त हो जाना देशके लिए और देशी भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य-निर्माणके लिए अत्यन्त हानिकर होता। कार्यकर्ताओंने यह सोचा कि यदि परिषद्का काम अब बन्द हो गया तो दूसरी संस्थाका निर्माण भविष्य-में अत्यन्त कठिन होगा और कमसे कम १०—१५ वर्षोंके लिए साहित्यकी उन्नति बिलकुल रुक जायगी। उधर विज्ञान परिषद्के उद्देश्योंकी पूर्त्तिके दिन पास दिखलाई पड़ते हैं। क्योंकि शिक्षाका प्रबन्ध हिन्दु-स्तानी मंत्रीके हाथमें था और शिक्षा संस्थाओं जैसे विश्वविद्यालयों तथा इन्टरमीडिएट और हाईस्कूल बोर्डका प्रबन्ध भारतीय शिक्षकोंके हाथमें था। यह आशा करना उचित ही था कि अब हिन्दी और उर्दू भाषाओंमें लिखी हुई वैज्ञानिक पुस्तकोंकी माँग अवश्यही बढ़ेगी। विज्ञान परिषत्के काय-कर्ताओंमें-से अधिकांश इन शिक्षा संस्थाओंसे सम्बन्ध रखने-वाले सज्जन हैं। इसलिए यह उचित समझा गया कि एक बार परिश्रम करके परिषत्को फिरसे सुदृढ़ संगठन द्वारा जनतासे सहायताकी याचना करनी चाहिए।

इन्टरमीडिएट बोर्डमें भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि हाई स्कूल और इन्टरमीडिएटमें शिक्षाका माध्यम हिन्दी और उर्दू हों। निश्चय था कि इस आन्दोलनके फल स्वरूप २—४ वर्षोंमें हिन्दुस्तान

भाषाओंमें वैज्ञानिक पुस्तकोंको माँग प्रबल हो जायगी और यदि इस समय विज्ञानपरिषद् इस कामको करनेके लिए जीता जागता न हुआ या जीते हुए भी इस कामको न कर सका तो विज्ञानपरिषत्का १० वर्षोंका काम बिलकुल निष्फल हो जायगा। अक्टूबर १९२४ से उद्योग आरम्भ हुआ।

अप्रैल १९२५ तक परिषद्के लिए बड़ी कठिनाईके दिन थे निरन्तर जीवन मरणका प्रश्न सामने था। कार्यकर्त्ताओंने निश्चय कर लिया था कि अपनी समस्त शक्तियोंको लगाकर भी जहाँतक हो सकेगा परिषत्‌को सुव्यवस्थित ढंगसे चलनेकी आयोजना करेंगे परन्तु अभीतक जनताकी सहानुभूति और सहायता मिलना नहीं आरम्भ हुई थी। गवर्नमेंट ६००) रु० वार्षिक सहायता विज्ञानके प्रकाशनके लिए देता थी इसी अवलम्बपर विज्ञानको चलाना पड़ता था, क्योंकि ग्राहकोंकी संख्या इतनी कम थी कि प्रायः १०००) रुपये वार्षिकका घाटा विज्ञानके प्रकाशनमें हुआ करता था, अक्तूबर सन् २४ से मार्च सन् २५ तक परिश्रम करनेपर भी अवस्था सन्तोषजनक नहीं थी। परन्तु निराशाकी मात्रा कम अवश्य हो चली थी। उस समयकी कठिनाइयोंको परिषद्की काउन्सिलके सामने १० अप्रैल सन् २५ के अधिवेशनमें मंत्रीने उपस्थित किया था। विज्ञान ६ महीने पिछड़ा हुआ था अर्थात् सितम्बर १९२४ का अङ्क अप्रैल १९२५ में प्रकाशित हुआ जब अप्रैल का अङ्क निकलना चाहिये था। इम्प्रूवमेण्टट्रस्टने सूचना दे दी थी कि १९८८) रुपया परिषत् तुरन्त इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट को देदे नहीं तो जमीनके मूल्यका ७००) रुपया जो ट्रस्टको दिया जा चुका था जब्त हो जायगा। छपाई और कागज़का रुपया अदा करना था उसके भी तकाजे हो रहे थे। कुछ पुस्तक परिषद्ने नये उद्योग और उत्साहकी धुनमें प्रकाशित कर दी थीं। इनका प्रकाशित करना भी आवश्यक ही था अन्यथा शायद आर्थिक कठिनाईका ख्याल करते हुए इतना बोझ परिषत्पर लादना बुद्धिमानी न होती। विज्ञान प्रवेशिका भाग २, सुवर्णकारी, चुम्बक, और क्षयरोग नामक पुस्तकें बिक चुकी थीं। इनकी कुछ माँग फिर हो चली थी इसलिये दूसरा संस्करण निकालना परम आवश्यक था। वर्षा और वनस्पति, मनोरंजक रसायन, और सूर्य्य-सिद्धान्त भाग १ प्रकाशित करना ही पड़ा। क्योंकि लेखोंके रूपमें यह पुस्तकें विज्ञानमें प्रकाशित हो रही थीं। इनके लेखकोंकी भी इच्छा यही थी कि यह पुस्तकाकार प्रकाशित हो जायँ। तथा यह देखा गया कि थोड़ेसे खर्चेसे ही यह उच्च कोटिकी सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित हो जायँगी। इन सब पुस्तकोंकी छपाई और कागज़के दाम देने थे। एक कठिनाई और थी। श्री० पं० सुधाकर द्विवेदकी लिखी हुई समीकरणमीमांसा नामक पुस्तक प्रकाशित करनेका भार विज्ञान परिषद् अपने ऊपर ले चुका था। इसके लिये गवर्नमेण्टने आधा खर्चा १२५०) परिषद्को दिया था। किताब छप रही थी। इसकी छपाई कागज़ इत्यादिका भी खर्च देना था। यह कठिनाई भी अनिवार्य थी। इन्हीं दिनों अस्वस्थ होनेके कारण प्रोफेसर गोपाल स्वरूप भार्गवने विज्ञानके सम्पादनका कार्य्य छोड़ दिया। कई वर्षोंसे बड़ी योग्यता तथा प्रेमपूर्ण त्यागसे उन्होंने विज्ञानका सम्पादन किया था। इस समय परिषत्को दूसरा योग्य सम्पादक मिलना कठिन था। कौंसिल केवल इतना ही निश्चयकर सकी कि मन्त्री गण किसी प्रकार कोई प्रबन्ध अपने अधिकारसे थोड़े दिनके लिए कर लें अथवा स्वयं सम्पादन करें।

अब यह बतलाना है कि सब कठिनाइयाँ धीरे-धीरे दूर हो गई। इस वर्षका इतिहास आशापूर्ण उन्नतिका इतिहास है। विज्ञान अब समयसे निकलता है। ६ महीनेकी कमी पूरी कर दी गई है। विज्ञानकी छपाई और कागज़ आदिका खर्चा अक्टूबर सन् १९२६ तककी संख्याका अदाकर दिया गया है। पहले जिन पुस्तकोंकी छपाईकी आयोजनाका वृत्तान्त बतलाया गया है वह सब प्रकाशित हो गई हैं और उनकी छपाई इत्यादिका खर्चा भी दिया जा चुका है। विज्ञान-प्रवेशिका भाग १ तीसरा संस्करण भी प्रकाशित किया गया है। तथा उसकी छपाई इत्यादिका खर्चा भी दिया जा चुका है। सूर्य सिद्धान्त दूसरे और तीसरे भाग प्रकाशित किये

गये हैं। गणितकी महत्वपूर्ण पुस्तक निर्णायक नामक छपाई गई है। इन सबका खर्चा दिया जा चुका है।

विज्ञान परिषद्के भवनके लिये जिस जमीनका मूल्य इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टको देना था, वह भी दियाजा चुका है। १६८८) रुपये देनेपर अब जमीनकी लिखा-पढ़ी परिषत्के नाम हो चुकी है। विज्ञानके सम्पादनका कार्य अप्रैल सन् २५ से श्रीमान् प्रोफेसर ब्रजराजजी कर रहे थे। कौंसिलने उन्हींको विज्ञानका सम्पादक नियुक्त करके पूर्ण भार उन्हींको दे दिया है। विज्ञानका सम्पादन सुचारू रूपसे हो रहा है। विज्ञान समय पर ग्राहकोंके पास पहुँच जाता है। समीकरणमीमांसा नामक पुस्तकका एक भाग जिसमें ४४८ पृष्ठ हैं छप चुकी है। डा० गणेशप्रसादसे भूमिका मिलनेपर प्रकाशित हो जावेगी। इसकी भी छपाई और कागजका खर्च अदा हो चुका है।

परिषत्को स्थायीरूप देनेके लिये दो बातें मुख्य जान पड़ीं। एक तो यह कि परिषत्का भवन बनवा दिया जाय और दूसरे आजन्म सभ्योंकी संख्या इतनी काफी हो जाय कि आगेके लिये सभ्योंकी संख्यामें घटती-बढ़तीके कारण परिषत्के स्थायीपनमें किसी तरहका परिवर्त्तन न होने पावे।

इस समय भवन बन रहा है जिसमें २५००) रुपयेके खर्चका अन्दाजा है। इसमेंसे १०००) रुपया तुरन्त खर्च होगा। जो इस समय एकत्र होगया है। थोड़ासा आवश्यक भाग बहुत जल्द बनकर तैयार हो जायगा और परिषत्का दफ्तर तथा गोदाम उसीमें चला जायगा। इधर कई वर्षोंसे प्रकाशित पुस्तकोंकी संख्या बढ़नेके कारण बड़ी कठिनाईका सामना हो रहा था। अब अपना गोदाम हो जानेसे यह कठिनाई भी दूर हो जायगी।

यह प्रयत्न करनेपर कि परिषद्के प्रेमी आजन्म सदस्य हो जायँ। अत्यन्त उत्साहपूर्ण उत्तर मिले हैं। इस समय आजन्म सभ्योंकी संख्या २२ है। अब पूर्ण विश्वास है कि अपना भवन और इतने स्थायी सदस्य हो जानेपर विज्ञान परिषत्की उपयोगिता वर्षों तक जारी रहेगी।

कठिनाइयाँ बहुत थीं परन्तु मुझे आज यह सूचना देते अत्यन्त हर्ष है कि अब सब कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। अब यह विश्वास हो रहा है कि परिषत् बहुत वर्षोंतक लाभप्रद कार्य करता हुआ वैज्ञानिक साहित्य निर्माण तथा ज्ञानके प्रसार द्वारा देश और समाजकी सेवा कर सकेगा।

गवर्नमेण्ट ने ६००) रु० वार्षिक देकर परिषद्को विज्ञानके प्रकाशन में बड़ी सहायता दी। इसके लिए हम गवर्नमेण्टको धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि हमारे उद्योग और कार्यको देखकर गवर्नमेण्ट हमको और अधिक सहायता देगी। हमें यह भी विश्वास होता है कि प्रार्थना करनेपर भवन निर्माण के लिए भी गवर्नमेण्टसे सहायता मिल जायगी।

अब जनतासे हमको सहायता मिलनी चाहिए। और सहायता माँगनेका अब हमको अधिकार भी है क्योंकि जितना अच्छा काम किया गया है वह बिना जनता की सहायता के अधिक उन्नत अवस्था को नहीं पहुँच सकता और यदि जनताका ध्यान हमारे उपयोगी कामकी ओर न गया तो बहुत संभव है कि जो काम इस समय हो रहा है वह फिर शिथिल हो जाय।

अन्तमें मुझे उन सब सज्जनोंको हार्दिक धन्यवाद देना है जिन्होंने कठिनाईके समयमें अपने उत्साहको भंग नहीं होने दिया और अपना प्रेमपूर्ण सहानुभूति तथा त्यागपूर्ण परिश्रमसे परिषत्को सहायता पहुँचाई है।

—————— मंत्री

मद्य

(ले० श्री सत्य प्रकाश बी० एस० सी० विशारद)

पूर्ण विषमयोगियों के एक या कई उदजनके स्थानमें लवणजन परमाणुओंके संस्थापित करनेसे इनके लवणजन यौगिक बनते हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है। यदि उदजनोंको उदौषिल मूल--ओउ' से स्थापित करें तो जो यौगिक बनेंगे उनको मद्य कहेंगे, लवणजन

यौगिकोंका वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक कर्बनसे कई लवणजन परमाणु संयुक्त हो सकते हैं जैसे द्वारीलिन हरिद, क उ$_{२}$ ह$_{२}$, में। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि एक कर्बन से एक से अधिक उदौषिल मूल ओउ संयुक्त नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है कि दो उदौषिल मूल बहुत शीघ्रतासे जलके अणु उ$_{२}$ ओ पृथक् कर देते हैं—

क उ < ओ उ / ओ उ → क उ$_{२}$ = ओ + उ$_{२}$ ओ
पिपील मद्यानार्द्र
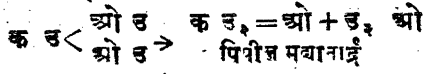
पर यदि उद-कर्बनमें दो कर्बनके परमाणु हों तो उन दोनोंसे अलग अलग एक एक उदौषिल मूल संयुक्त हो सकता है—

क उ$_{३}$ → क उ$_{२}$ ओ उ
| 　　　　|
क उ$_{३}$ 　 क उ$_{२}$ ओ उ
ज्वलेन 　 ज्वलीलिन मधुओल
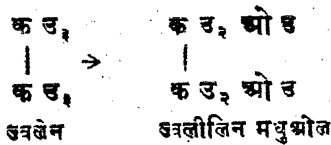
जिस यौगिकमें एक उदौषिल मूल होगा उसे एक-उदिक यौगिक कहेंगे। इस प्रकार क उ$_{३}$ ओ उ-द्वारील मद्य; क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ ज्वलील मद्य आदि एक उदिक मद्य हैं। जिसमें दो उदौषिल मूल होंगे उसे द्वि-उदिक मद्य कहेंगे। ज्वलीलिन मधुओल क$_{२}$ उ$_{४}$) (ओ उ)$_{२}$ द्विउदिक मद्य है। मधुरोल या मधुरिन त्रि-उदिक मद्य है—

क उ$_{३}$ 　　 क उ$_{२}$ ओ उ
| 　　　　|
क उ$_{२}$ → 　 क उ ओ उ
| 　　　　|
क उ$_{३}$ 　　 क उ$_{२}$ ओ उ
अग्रेन 　　 मधुरोल या मधुरिन
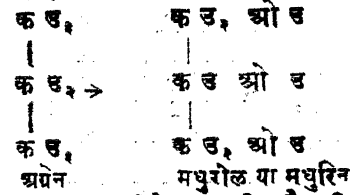
अब हम बारी बारीसे एक-, द्वि-और त्रि-उदिक मद्योंका वर्णन देंगे। नीचेकी सारिणीमें कुछ एक उदिक मद्य दिये जाते हैं। इनका सामान्य सूत्र क$_{न}$ उ$_{२न+२}$ओ है।

एक-उदिक मद्य

मद्य	सूत्र	कथनांक	वि० गुरुत्व
द्वारील मद्य	क उ$_{३}$ (ओ उ)	६६°	०·८१२
ज्वलील मद्य	क$_{२}$ उ$_{५}$ (ओ उ)	७८°	०·८०६
अग्नील मद्य	क$_{३}$ उ$_{७}$ (ओ उ)		
प्रथम	क उ$_{३}$ क उ$_{२}$ क उ$_{२}$(ओ उ)	९७°	०·८०४
द्वितीय	क उ$_{३}$· क उ (ओ उ) क उ$_{३}$	८१°	०·७८९
नवनीतील मद्य	क$_{४}$ उ$_{९}$· (ओ उ)		
सामान्य प्रथम...	क$_{२}$ उ$_{५}$· क उ$_{२}$ क उ$_{२}$ (ओ उ)	११७°	०·८१०
सामान्य द्वितीय	क$_{२}$ उ$_{५}$· क उ (ओ उ)· क उ$_{३}$	१००°	—
प्रथम सम नवनीतील	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क उ·$_{२}$ (ओ उ)	१०७°	०·८०६
तृतीय	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क (ओ उ) क उ$_{३}$	८३°	०.७८६
केलील मद्य	क$_{५}$ उ$_{११}$ (ओ उ)		
सामान्य प्रथम	क$_{२}$ उ$_{५}$ (क उ$_{२}$)$_{२}$ क उ$_{२}$ (ओ उ)	१३८°	०·८१५
सम नवनीतील कर्बिनोल ...	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क उ क उ$_{२}$ क उ$_{२}$ ओ उ	१३१°	०·८१०
द्वितीय नवनीतील कर्बिनोल ...	क उ$_{३}$· क उ (क$_{२}$ उ$_{५}$) क उ$_{२}$ ओ उ	१२८°	—
द्वारील अग्नील कर्बिनोल··· ...	क$_{२}$ उ$_{५}$ क उ (ओ उ) क उ$_{३}$	११९°	—
द्वारील सम अग्नील कर्बिनोल ···	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क उ· क उ (ओ उ) क उ$_{३}$	११२°	—
द्वि ज्वलील कर्बिनोल	क$_{२}$ उ$_{५}$· क उ (ओ उ) क$_{२}$ उ$_{५}$	११७°	—
द्वि द्वारील ज्वलील कर्बिनोल ...	(क उ$_{३}$)$_{२}$ क (ओ उ) क$_{२}$ उ$_{५}$	१०२°	—

अमील, नवनीतील और केलील मद्योंकी बड़ी भारी संख्या ऊपर दी हुई है। इस समरूपताका कारण बिल्कुल वही है जो लवणजन यौगिकोंमें था कर्बन एक दूसरेसे बड़ी भिन्नतासे संयुक्त होते हैं जिसके कारण एकही सूत्रके कई यौगिकोंका होना सम्भव है।

दारील मद्य, क उ३ ओ उ

संस्कृतमें दारु शब्दका अर्थ 'लकड़ी' है। सं० १७१८ वि० में राबर्ट बायल नामक वैज्ञानिकने दारीलमद्यको लकड़ीके स्रवणसे प्राप्त किया था। और यही विधि आजकल भी कुछ परिवर्तनोंके साथ उपयोग में लायी जाती है। लकड़ीका जब भञ्जक स्रवण (Destructive Distillation) किया जाता है तो चार पदार्थ मिलते हैं—१. जलनशील वायव्य, २. तीव्र अम्लीयद्रवस्रव, ३. तारकोल और ४ अवशिष्ट लकड़ीका कोयला। इस प्रक्रियाको लोहेके बड़े बड़े भभकोंमें करते हैं। तीव्र अम्लीयद्रवके स्रवमें दारील मद्य होता है। इसके साथ साथ सिरकाम्ल सिरकोल और दारील सिरकेत भी विद्यमान रहता है। इसमें चूना डालनेसे सिरकाम्ल खटिक सिरकेतमें परिणत हो जाता है। उड़नशील दारीलमद्य और सिरकोन स्रवमें से साधारण रीति से स्रवित कर लेते हैं। चूनाके साथ आंशिक स्रवण करनेसे दारील मद्य और सिरकोन भी पृथक किये जा सकते हैं।

शुद्ध दारील मद्य इस प्रकार बनाते हैं। ७५ ग्राम साधारण मद्यको ५० ग्राम अनार्द्र खटिक हरिदके साथ मिलाकर वाष्पकुंडी पर गरम करो। उलटा भभका लगा देना चाहिये। ठण्डाहोने पर ख ह२ + ४ क उ३ ओ उ के रवे प्राप्त हो जावेंगे।

इन रवोंको गरम करनेसे शुद्ध दारील मद्यकी वाष्पें निकलेंगी। दारील मद्यका क्वथनांक ६६° है। यह जलन शील है और नीली ज्वालासे जलता है। यह रंगोंके व्यापार में, वार्निश आदिके घोल बनानेके काममें आता है। ज्वलील मद्य और दारील मद्यका मिश्रण 'दारीलित शराब' के नामसे प्रसिद्ध है।

ज्वलील मद्य क२ उ५ ओ उ

जब द्राक्षशर्करा या साधारण गन्नेकी शर्कराके घोलमें यीस्ट नामक खमीरकीटाणु छोड़ा जाता है तो कुछ समयके उपरान्त घोलमें फसूकर लगता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह उबल रहा है। पर ताप मापकसे यदि परीक्षाकी जाय तो तापक्रम में कुछ भी वृद्धि प्रतीत नहीं होगी। इस प्रक्रियाको 'खमीरण' कहते हैं। इसका कारण यह है कि शर्करा खमीर कीटाणुके प्रभावसे ज्वलील मद्य, क२ उ५ ओ उ, में परिणत होरही है और साथही साथ कर्बनद्विओषिद गैस, क ओ२, भी जनित होरही है-इस गैस के निकलनेके कारणही घोलमें फसूकर उठता मालूम होता है। लवाशिये नामक फ्रेञ्च वैज्ञानिकने सबसे प्रथम इस प्रक्रिया का अध्ययन किया था।

क६ उ१२ ओ६ = २ क२ उ६ ओ + २ क ओ२
दाक्षशर्करा ज्वलीलमद्य कर्बनद्विओषिद

प्रयोगः—कांचकी एक बड़ी कुप्पीमें २०० घन. श. मी. जलले और उसमें १० ग्राम द्राक्षशर्करा घोलदो। कुप्पीमें एक कागसे जिसमें एक मुड़ी हुई वाहक नली भी लगी हो। वाहक नलीका दूसरा सिरा एक चंचुक (बीकरया कांचका गिलास) में जिसमें स्वच्छ चूने का जल भरा हो डुबादो। घोलमें आधा औंसके लगभग खमीर कीटाणु छोड़दो। तापक्रम २५-३० के लगभग होना चाहिये, थोड़ी देरमें फसूकर उठता दिखाई पड़ेगा और वाहक नलीसे कर्बनद्वि ओषिद गैस चूनेके पानीमें बुरबुदाने लगेगी और खटिक कर्बनेतका अवक्षेप तलैटी में बैठने लगेगा। २४ घंटेके पश्चात् कुप्पी में मद्य की परीक्षा की जासकती है। कुप्पी के द्रवको उबालकर मद्य स्रवित किया जासकता है। ज्वलीलमद्यका क्वथनांक ७८° है।

गन्नेकी शर्करापर यीस्ट कीटाणु कुछ प्रभाव नहीं डालता है। बहुधा यीस्टके साथ विपर्ययेज (Invertase) कीटाणु भी होता है। विपर्ययेज कीटाणु गन्नेकी शर्कराका उद-विश्लेषण करदेता है, और

दाक्षशर्करा और फलशर्करा उद-विश्लेषण द्वारा प्राप्त होते हैं—

$$क_{१२} उ_{२२} ओ_{११} + उ_{२} ओ =$$

गन्नाशर्करा

$$क_{६} उ_{१२} ओ_{६} + क_{६} उ_{१२} ओ_{६}$$
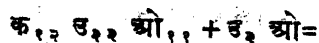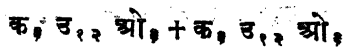
दाक्षशर्करा फलशर्करा

वह रासायनिक प्रक्रिया या विश्लेषणजो पानीके प्रभावसे होता है उदविश्लेषण कहलाता है इस प्रकार-के उदविश्लेषणके पश्चात् यीस्ट कीटाणु दाक्षशर्करा और फल शकराके मिश्रणपर प्रभाव डालकर कर्बनद्वि ओषिद और ज्वलील मद्य पूर्ववत् देसकता है। वे कीटाणुजो इस प्रकारकी प्रक्रियाओं में प्रयुक्त होते हैं प्रेरकजीव (Enzyme) कहलाते हैं क्योंकि ये रासायनिक प्रक्रियाओंकी प्रेरणा करते हैं। द्रवका उबालने या ताप क्रमको बढ़ा देनेसे प्रेरक जीव मरजाते हैं। २५°-४०° ताप क्रम इनके अधिक अनुकूल होता है। यंत्रसे देखनेपर पता चलता है कि ये प्रेरकजीव $\frac{१}{१०००}$ इंच व्यासके गोल गोल कोष्ठोंसे मिलकर बने हुये हैं। जीवित प्रेरक-जीवके कोष्ठोंको अत्यन्त दबाव डालकर निचोड़नेसे एक प्रकारका रस प्राप्त होता है। यह रस भी प्रेरकजीवोंके समान प्रक्रियायें कर सकता है। इस रसको प्रेरणेज (Zymase) कहते हैं।

शराब का व्यापारः—शराब कई प्रकारकी बनाई जाती है। जौकी शाराब बनानेके लिये, इन्हें पानी में कई दिनों तक सड़ने देते हैं। जौमें मांड़ी होती है। पानीमें कई दिनों सड़नेके कारण अन्नमें विपर्ययेज नामक प्रेरकजीव उत्पन्न होजाते हैं। ये जीव माँड़ी का उदविश्लेषण करते हैं। उदविश्लेषण द्वारा शर्करा (दाक्ष) उत्पन्न होती है। थोड़े दिनों पानीमें सड़नेके उपरान्त अन्नको उच्च तापक्रम तक गरम करते हैं। ऐसा करनेसे विपर्ययेज मरजाते हैं। इसी समय यथोचित स्वाद लानेके लिये कुछ अन्य पदार्थ मिला दिये जाते हैं। इसके पश्चात् यीस्ट डाला जाता है,जो शर्कराको शराबमें परिणत कर देता है। इस शराब को भिन्न २ प्रकारसे स्रवित करनेसे ह्विस्की ब्राण्डी आदि शराबें बन सकती हैं। अंगूरोंमें दाक्ष शर्करा होती है। यह शर्करा यीस्ट आदि प्रेरक जीवों द्वारा सड़नेपर अंगूरकी शराब दे सकती है। इसी प्रकार आलू आदि-से भी शराबें बनाई गई हैं।

ज्वलील मद्यके गुण—यह बेरंगका द्रव है जिसका कटु स्वाद होता है। इसमें सुन्दर सुगन्ध होती है। इसका क्वथनांक ७८° श है। यह नीली लौसे जलता है। पानीमें यह प्रत्येक अनुपातमें घुलनशील या मिलनशील है। यदि अनार्द्र तूतिये (ताम्र गन्धेत) के टुकड़ा मद्यमें डालनेसे नीला होजाय तो समझना चाहिये कि मद्यमें जल विद्यमान है। इस विधिसे मद्य में यदि थोड़ासाभी जल होगा तो पता चल जावेगा।

इस मद्यकी पहिचान इस प्रकार कीजा सकती है। एक परखनलीमें थोड़ासा मद्य लो और इसमें पांशुज नैलिदमें घुला हुआ नैलिन् घोल डालो और थोड़ासा सैन्धक उदौषिद डाल दो। गरम करनेसे नैलोपिपील की गन्ध और इसके पीले रवे दिखाई पड़ेंगे। इस परीक्षाका नाम नैलोपिपील परीक्षा है।

ज्वलील मद्यकी कुछ उपयोगी प्रक्रियायें यहाँ दी जाती हैं:—

(१) हरिन् या अरुणिन्के प्रभावसे हरल, क ह$_{३}$-क उ ओ, या अरुणल, क रु$_{३}$ क उ ओ, बनते हैं—

क उ$_{३}$ क उ$_{२}$ ओ उ + ४ ह$_{२}$ = क ह$_{३}$ क उ ओ + ५ उ ह
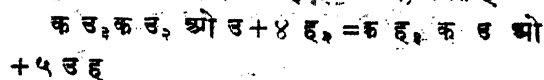
(२) रङ्गविनाशक चूर्ण और जलके संसर्गसे मद्य हरो पिपील या क्लोरोफार्म देता है, जैसा गत अध्यायमें बताया गया है—

क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ + ४ ह$_{२}$ = क ह$_{३}$ क उ ओ

२ क ह$_{३}$ क उ ओ + १ ख (उ ओ) = २ क उ ह$_{३}$ + (उ क ओ$_{२}$)$_{२}$ ख
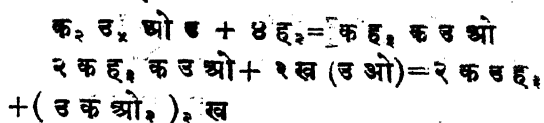
रंग विनाशक चूर्ण इस प्रक्रिया में जलके संसर्ग-से हरिन् और खटिक उदौषिद, ख (ओउ)$_{२}$ में विभाजित होजाता है। अन्तमें हरो पिपील और खटिक पिपीलेत प्राप्त होता है।

(३) मद्यके पहिचानके विषयमें कहाजा चुका है कि मद्य नैलिन् और क्षार (सैन्धक उदौषिद,) के संसर्ग से नैलोपिपील क उ नै$_{३}$ देता है।

$क_2 उ_4$ ओ उ + ४ नै$_2$ + ६ पांउओं = क उ नै$_3$ + ६ कओ ओ पां + ५ पां नै + ५ $उ_2$ ओ

(४) उदहरिकाम्ल, उद्अरुणकाम्ल और उद्नैलिकाम्ल के संसर्गसे ज्वलील मद्य ज्वलील हरिद् आदि देता है:—

$क_2 उ_4$ ओ उ + उ ह = $क_2 उ_4$ ह + $उ_2$ ओ

$क_2 उ_4$ ओ + उ रु = $क_2 उ_4$ रु + $उ_2$ ओ

$क_2 उ_4$ ओ उ + उ नै = $क_2 उ_4$ नै + $उ_2$ ओ

(५) अरुणिन् या नैलिन् लाल स्फुरकी विद्यमानता में मद्यके संसर्गसे ज्वलील अरुणिद और नैलिद देते हैं।

३ $क_2 उ_4$ उ ओ + स्फु + ३ रु = स्फु (उ ओ)$_3$ + ३ $क_2 उ_4$ रु ज्वलील अरुणिद स्फुराम्ल

(६) संपृक्त गन्धकाम्लके प्रभावसे मद्यसे तीन पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। ज्वलील उद्जन गन्धेत $क_2 उ_4$ उ ग ओ$_4$, २. ज्वलीलिन $क_2 उ_4$ और ३. ज्वलक ($क_2 उ_4$)$_2$ ओ

१. $क_2 उ_4$ ओ उ + $उ_2$ ग ओ$_4$ = $क_2 उ_4$ उ ग ओ$_4$ + $उ_2$ ओ ज्वलील उद्जन गन्धेत।

२. $क_2 उ_4$ ओ उ + $उ_2$ ग ओ$_4$ = $क_2 उ_4$ + [$उ_2$ ओ + $उ_2$ ग ओ$_4$] ज्वलीलिन

३. $क_2 उ_4$ ओ उ + $उ_2$ ग ओ$_4$ = $क_2 उ_4$ उ ग ओ$_4$

$क_2 उ_4$ उ ग ओ$_4$ + $क_2 उ_4$ ओ$_3$ उ = ($क_2 उ_4$)$_2$ ओ + $उ_2$ ग ओ$_4$ ज्वलक।

(७) संपृक्त नोषकाम्लसे यह मद्य ज्वलील नोषेत देगा—

$क_2 उ_4$ ओ उ + उ नो ओ$_3$ = $क_2 उ_4$ नो ओ$_3$ + $उ_2$ ओ ज्वलील नोषेत।

(८) पांशुज द्विरागेत और गन्धकाम्ल द्वारा गरम करनेसे इसका ओषदीकरण हो जाता है और यह सिरकमद्यानाद्र में परिणत होजाता है—

क $उ_3$ क $उ_2$ ओ उ + ओ$_2$ = क $उ_3$ क ओ उ + $उ_2$ ओ (सिरकमद्यानाद्र)

मद्यकी वाष्पोंमें रक्त तप्त परौम्यम्‌कातार लटकानेसे भी सिरकमद्यानाद्र प्राप्त होता है। परौम्यम्‌की विद्यमानतामें मद्य वायुके ओषजनसे उपर्युक्त समीकरणके अनुसार संयुक्त होजाता है। परौम्यम् उत्प्रेरक का काम करता है। कृष्ण परौम्यम् (Platinum black) की उपस्थितिमें ओषदीकरण औरभी प्रबलतासे होता है। और सिरकाम्ल प्राप्त होता है:—

क $उ_3$ क $उ_2$ ओ उ + ओ$_2$ = क $उ_3$ क ओ ओ उ + $उ_2$ ओ सिरकाम्ल

रागम् त्रिओषिद द्वारा ओषिदीकरण और भी अधिक प्रबल होता है और मद्य जोरोंसे जलने लगता है, कर्बन द्विओषिद और जल बन जाते हैं:—

$क_2 उ_4$ ओ उ + ३ ओ$_2$ २ क ओ$_2$ + ३ $उ_2$ ओ

(९) सैन्धकम् धातु ज्वलील मद्यमें धीरेधीरे घुलने लगता है और उद्जन वायव्य जनित होता है। इस प्रकार सैन्धकज्वलौषिद प्राप्त होता है—

२ $क_2 उ_4$ ओ उ + २ सै २ $क_2 उ_4$ ओ सै + $उ_2$ सैन्धकज्वलौषिद

(१०) कार्बनिक अम्लोंके साथ ज्वलील मद्य संयुक्त होकर सम्मेल ester नामक यौगिक देता है—जैसे सिरकाम्लके साथ ज्वलील सिरकेत या सिरकिक सम्मेल क $उ_3$ क. ओ. ओ. $क_2 उ_4$, देता है

$क_2 उ_4$ ओ उ + क $उ_3$ क ओ ओ उ = सिरकाम्ल

क $उ_3$ क ओ. ओ. $क_2 उ_4$ + $उ_2$ ओ ज्वलील सिरकेत

इन सब प्रक्रियाओंका विशेष विस्तृत ज्ञान आगे पुस्तक पढ़नेसे स्पष्ट होजावेगा। रासायनिक प्रक्रियाओं के लिये ज्वलील मद्य अत्यन्तही उपयोगी रस है। इसका उपयोग घोलकोंके भी रूपमें बहुत किया जाता है प्राकृतिक विधियोंसे ज्वलील मद्य जिस प्रकार बनाया जाता है, उसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। ज्वलील मद्यका संश्लेषण निम्न प्रकारभी हो सकता है

१. ज्वलेन, $क_2 उ_6$—इसे पहिले ज्वलील हरिदमें परिणत करते हैं। फिर उद विश्लेषण करते हैं।

$क_2 उ_6 \rightarrow क_2 उ_4 ह \xrightarrow{उ_2 ओ} क_2 उ_4 ओ उ + उ ह$

२. ज्वलीलिन और संयुक्त गन्धकाम्लको १६०० तक गरम करने से ज्वलील उद्जन गन्धेत प्राप्त होता है जो पानीके साथ उबालनेपर ज्वलील मद्यमें परिणत हो जाता है—

क$_2$ उ$_4$ + उ$_2$ ग ओ$_4$ = क$_2$ उ$_5$ उ ग ओ$_4$

क$_2$ उ$_5$ उ ग ओ$_4$ + उ$_2$ ओ = क$_2$ उ$_5$ ओ उ + उ$_2$ ग ओ$_4$

अन्य मद्य

जिस प्रकार अम्रील-हरिद दो प्रकारके थे, उसी प्रकार अम्रील मद्यभी दो प्रकारके होते हैं—१. प्रथम-अम्रीलमद्य, क उ$_3$ क उ$_2$ कउ$_2$ (ओ उ) इसमें 'ओउ' मूल द्विशक्तिक— क उ$_2$ मूल से संयुक्त है इसे प्रथम कहते हैं। २. द्वितीय अम्रील मद्य, क उ$_3$ क उ (ओ उ) क उ$_3$-इसमें 'ओ उ' उदौषिल मूल त्रिशक्तिक—क उ'' से सयुक्त है। इस प्रकारके संयोगको द्वितीय कहते हैं यह समरूपता निम्न सङ्गठन से स्पष्ट हो सकता है:—

```
    उ   उ   उ                     उ   उ   उ
    |   |   |                     |   |   |
उ—क—क—क—(ओउ)             उ—क—क—क—उ
    |   |   |                     |   |   |
    उ   उ   उ                     उ (ओउ) उ
```
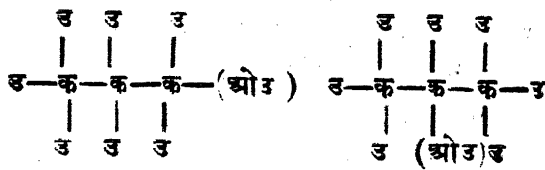
प्रथम अम्रील मद्य　　　　द्वितीय अम्रील मद्य

इन दोनों मद्योंके क्वथनांक भिन्नभिन्न हैं जैसा कि सारिणीके देखनेसे पता चल सकता है।

नवनीतीलमद्य, क$_4$ उ$_9$ ओउ, ४ प्रकारके पाये गये हैं उनकी समरूपता भी निम्न सङ्गठनों द्वारा प्रकट की जा सकती है। नवनीतील मद्य इस प्रकार हैं।

१. सामान्य प्रथम, कउ$_3$ (क उ$_2$)$_2$ कउ$_2$ ओउ

२. सामान्यद्वितीय, कउ$_3$कउ$_2$ कउ (ओउ)कउ$_3$

३ प्रथम सम नवनीतील $\begin{matrix}क उ_3\\ क उ_3\end{matrix}$ > कउकउ$_2$(ओउ)

४. तृतीय—$\begin{matrix}क उ_3\\ क उ_3\end{matrix}$ > क (ओ उ) क उ$_3$

उनका संगठन इस प्रकार है।
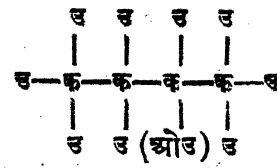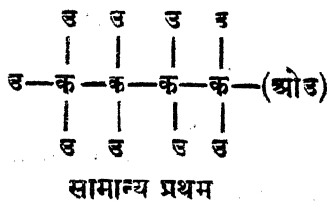
सामान्य प्रथम

सामान्य द्वितीय
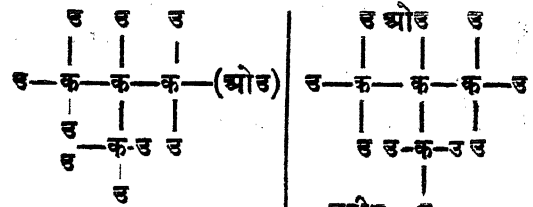
प्रथम समनवनीतील　　　　तृतीय

इसी प्रकार केलीलमद्यभी कई प्रकारके हैं जैसा सारिणी देखनेसे पता चलसकता है। निम्नकेलील मद्य, क$_5$ उ$_{11}$ ओउ, दो प्रकारके पाये गये हैं:—
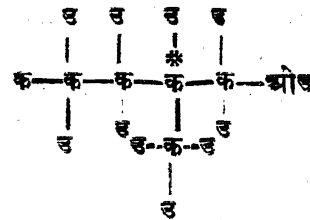
इसका कारण यह है कि इसका एक कर्बन परमाणु जिसपर (*) चिह्न लगा हुआ है, असम सङ्गतिक है। उस कर्बनको असमसङ्गतिक कहते हैं जिसके चारों बन्ध चार भिन्न भिन्न मूलोंसे संयुक्त हों। उपर्युक्तकेलील मद्यको निम्न प्रकारभी रखा जा सकता है।

```
              उ
              |
              *
क₂ उ₅—क—क उ₂ ओउ
              |
            क उ₃
```
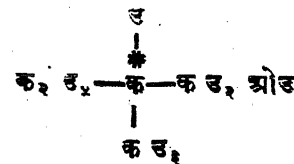
इस प्रकार क*के चारों बन्ध भिन्न भिन्न मूलों अर्थात् -उ', -क उ$_2$ ओउ', -क उ'$_3$, और-क$_2$ उ$_5$' से संयुक्तहै। सामान्यतः असमसंगतिक कर्बन यौगिक निम्न प्रकार सूचित किया जासकता है।
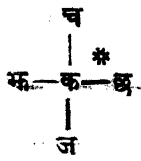
अब प्रश्न यह है कि इस रूपके दो यौगिक किस प्रकार संभव हैं ? यह गत अध्यायमें भी कहाजा चुका है कि कर्बनके सब बन्ध एक धरातलमें नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त यौगिक निम्नप्रकार अवकाशमें प्रदर्शित किया जा सकता है--
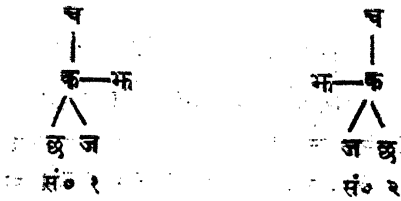
सं० १ में प्रदर्शित सङ्गठन और सं० २ में प्रदर्शित सङ्गठन एक ही नहीं है सं० १ के सामने दर्पण रखा जाय तो उसकी जो प्रतिच्छाया होगी उसका रूप सं० २ का सा होगा। प्रतिच्छाया में क्या होता है ? मनुष्यका दायाँ हाथ उसकी प्रतिच्छायाका बायां हाथ हो जाता है और उसका बायां हाथ प्रतिच्छायाका दायां हाथ हो जाता है। इस परिवर्तनका नाम पार्श्व विपर्यय (Lateral Inversion) है यह अवस्था मनुष्यके दाहिने और बाएँ हाथकी है। दाहिने हाथका दस्ताना बायें हाथ में नहीं पहना जा सकता है। इसी प्रकार दाहिने पैरका जूता बायें पैरमें नहीं आता है। इसी प्रकारका सम्बन्ध उपर्युक्त सं० १ और सं० २ के संगठनोंमें है। एक दूसरेके ऊपर प्रत्यासन्न नहीं किये जा सकते हैं। पर यदि चारो बन्ध चार भिन्न मूलोंसे संयुक्त न हों तो ऐसी अवस्था नहीं आ सकती है। क $_{च}$, $_{छ}$, $_{छ,झ}$ को इस प्रकार प्रदर्शित करेंगे।
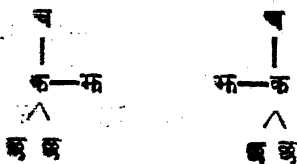
इस अवस्थामें ये दोनों सङ्गठन एक ही हैं, क्योंकि च की अपेक्षा 'झ छ छ' दोनों एक प्रकार ही स्थित है। झ छ छ एक धरातलमें है और च दूसरे धरातलमें।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय मद्योंमें भेद—

ऊपर कहा जा चुका है कि—

१. प्रथम मद्यमें—क उ$_२$ ओ उ मूल होता है और इसका उदौषिल मूल श्रेणीके अन्तिम कर्बनसे संयुक्त रहता है।

२ द्वितीय मद्यमें—क उ ओ उ मूल होता है और इसका उदौषिल मूल सरल श्रेणीके बीचके कर्बनसे संयुक्त रहता है।

३ तृतीय मद्यमें...क उ. ओउ मूल होता है और इसका उदौषिल मूल उस कर्बनसे संयुक्त रहता है जो अन्य तीन कर्बनोंसे संयुक्त है।

मद्यके ओषदीकरण करनेसे पता चलसकता है कि यह प्रथम मद्य है अथवा द्वितीय या तृतीय १, प्रथम मद्य ओषदी करण पर २ उदजनोंका त्याग करके मद्यानार्द्र में परिणत होजाता है। और ओषदी करण करनेपर यह मद्या नार्द्र ओषजन का एक परमाणु और लेलेता है और अम्ल बनजाता है। यह ध्यान रहे कि उस अम्लमें कर्बनके उतनेही परमाणु होते हैं जितने मद्यमें थे।

```
   उ                          उ
   |                          |
उ—क—ओउ + ओ  =  उ—क=ओ + उ२ ओ
   |
   उ                   पिपीलमद्यानार्द्र
दारीलमद्य
   उ                          उ
   |                          |
उ—क = ओ + ओ    =       ओ—क = ओ
                        पिपीलिकाम्ल
 क२उ५                    क२उ५
   |                          |
उ—क—ओउ + ओ  =  उ—क=ओ + उ२ ओ
   |
   उ                   नवनीत मद्यानार्द्र
एक नवनीतील मद्य
```

$$\text{उ—क}(\text{क}_3\text{उ}_7) = \text{ओ} + \text{ओ} = \text{उ ओ—क}(\text{क}_3\text{उ}_7) = \text{ओ}$$
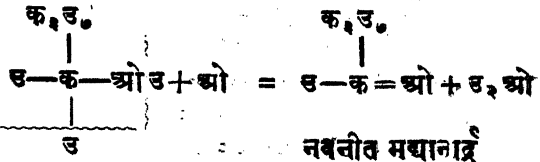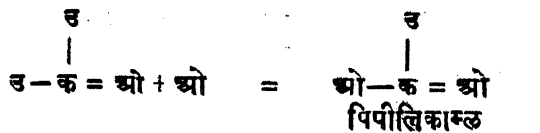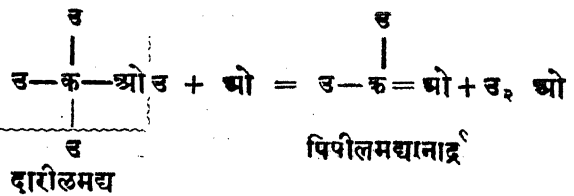
नवनीतिकाम्ल

२. द्वितीय मद्य ओषदी करण करनेपर दो उदजनों का त्याग करते हैं और ऐसा करनेसे जो पदार्थ बनता है वह कीतोन कहलाता है। यह कीतोन फिर ओषदी करण करनेपर जो अम्ल देता है। उसमें मद्यकी अपेक्षा कम कर्बन परमाणु होते हैं।

$$\text{क उ}_3\text{—क उ (ओ उ)—क उ}_3 + \text{ओ} = \text{क उ}_3\text{—क ओ—क उ}_3 + \text{उ}_2\text{ओ}$$

द्वितीय अप्रीउमद्य द्विदारील कीतोन

$$\text{क उ}_3\text{—क = ओ—क उ}_3 + (२)\text{ओ}_2 = \text{क उ}_3\text{—क}<^{\text{ओ}}_{\text{ओ उ}}$$

सिरकाम्ल

$$+ \text{क ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ओ}$$

इस मद्यमें तीन कर्बन परमाणु थे पर उससे उत्पन्न सिरकाम्लमें २ ही कर्बन हैं।

३. तृतीयमद्य ओषदी करण करनेसे कीतोन या अम्लोंमें विभाजित होजाते हैं। इनमें मद्यकी अपेक्षा कम कर्बन परमाणु होते हैं:—

$$\text{क उ}_3\text{—क (क उ}_3\text{)(क उ}_3\text{)—(ओ उ)} + २\text{ओ}_2 =$$

तृतीय नवनीतील मद्य

$$\text{क उ}_3\text{—क = ओ—क उ}_3 + \text{कओ}_2 + २\text{उ}_2\text{ओ}$$

द्विदारील कीतोन

ओषजन

(ले० श्री० सत्यप्रकाश बी. एस. सी. विशारद)

प्राप्ति स्थान

वर्त संविभागमें छठे समूह में सबसे पहला तत्व ओषजन है। वायुमण्डलमें ओषजन तथा नोषजन नामक दो वायव्योंका मिश्रण है। इसमें लगभग २१ प्रतिशतकके ओषजनकी मात्रा है। यह मात्रा भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न है। यह कहा जाचुका है कि भूमण्डलपर तीन चौथाई पानीका भाग है। पानीमें ८ भाग ओषजनके और १ भाग उदजनका है। इससे पता चल सकता है कि समस्त संसारमें ओषजन किस अधिकतासे फैला हुआ है। इतनाही नहीं, खनिजोंके पदार्थोंमें और वनस्पति आदि आवश्यक वस्तुओंमें यह तत्त्व अन्य धातु आदि तत्वोंसे संयुक्त पाया जाता है।

उपलब्धि

सबसे पहले स्वीडन देश निवासी रसायनज्ञ शीले ने सं० १८२६ वि० में इस तत्त्वका अन्वेषण किया था। इसके पश्चात् प्रीस्टले नामक अंग्रेजी वैज्ञानिकने सं० १८३१ वि० में स्वतन्त्रतः इसकी खोजकी। इसके प्राप्त करनेकी अनेक विधि हैं जिनमेंसे कुछका यहाँ वर्णन दिया जायगा।

(१) ओषिदोंको गरम करनेसे—प्रीस्टलेने ओषजन इसी विधिसे प्राप्त किया था। दृढ़ काँचकी परखनलीमें थोड़ासा पारदिक ओषिद (सेंदुर), पाओ, लो और उसे गरम करो। थोड़ी देरमें नलीके शीतल किनारोंसे पारदकी बूँदे लगी हुई दिखाई पड़ेंगी और ओषजन गैस निकलने लगेगी। इसीगैसकी परीक्षा इसप्रकार की जाती है। एक सींकको दीपकसे जलाओ। सींक परकी जलती हुई लपटको बुझादो पर उसमें आगकी चिनगारी रहने दो। चिनगारी संयुक्त सींकको परख नलीके मुंहके पास लाओ। यदि मुंहमेंसे ओषजन

निकल रहा होगा तो सींक लपकके साथ जलने लगेगी। ओषजन प्रत्येक वस्तुके जलानेमें साधक होता है, यद्यपि यह स्वयं जलन शील नहीं है। इस प्रयोगमें प्रक्रिया इस प्रकार है—

२ पा ओ=२ पा + ओ$_2$

रजत ओषिदकोभी गरम करनेसे ओषजन मिल सकता है।

२ र$_2$ ओ=२ र$_2$ + ओ$_2$

(२) जलके विद्युत विश्लेषणसे—उद्जनका वृतान्त लिखते हुए यह कहा जाचुका है कि जलके विद्युत् विश्लेषणसे दो वायव्य प्राप्त होते हैं। एक उद्जन और दूसरा ओषजन।

२ उ$_2$ ओ=२ उ$_2$ + ओ$_2$

इस प्रकार प्राप्त उद्जनके आयतनसे ओषजनका आयतन आधा होता है।

(३) हरेतके गरम करने से—पांशुज हरेतका वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसके गरम करनेसे ओषजन प्राप्त होता है।

२ पां ह ओ$_3$ =२ पांह + ३ ओ$_2$

एक मोटी परख नलीमें पांशुज हरेतके रवे लो और उन्हें जोरोंसे गरम करो। ३५७ श पर पांशुजहरेत पिघलने लगेगा। ३८० श तक गरम करने पर इसमेंसे ओषजनके बुद्बुदे निकलने लगगे। चिनगारी संयुक्त सींक द्वारा ओषजनकी परीक्षाकीजा सकती है। नैलेत, अरुणेत, नाषेत आदि यौगिकोंकोभी गरम करनेसे ओषजन प्राप्त होसकता है। पर प्रयोग शालाओंमें पांशुज हरेतकाही अधिक उपयोग किया जाता है।

पांशुज हरेतको गरम करनेपर पांशुज हरिदके साथ साथ थोड़ा सा पांशुजपरहरेतभी बनता है जैसाकि निम्न समीकरणसे स्पष्ट है—

४ पां ह ओ$_3$ =३ पांह ओ$_4$ + पां ह

पर और अधिक गरम करनेसे पर-हरेतभी ओषजन त्यागकर हरिदमें परिणत होजाता है—

पांह ओ$_4$=पांह + २ ओ$_2$

(४) पांशुज हरेत और मांगनीज़ द्विओषिदके मिश्रण को गरम करनेसे—अभी कहा जाचुका है कि ओषजन प्राप्त करनेसे लिये पांशुज हरेतको कमसे कम ३८०°श तक गरम करनेकी आवश्यकता है। इतने उच्च ताप क्रम तक गरम करने में अत्यन्त कठिनाई होती है और समय भी अधिक लगता है। अतः पांशुज हरेतसे सरलतया थोड़ासा गरम करके ओषजन प्राप्त करनेकी विधि निकाली गई है। यह इस प्रकार है।

एक मोटी परखनलीमें पांशुज हरेतका चूर्णलो और उसमें थोड़ासा मांगनीज द्विओषिद, मा ओ$_2$, का चूर्ण मिला दो।

परखनलीमें काग लगाकर एक वाहक नली लगाओ। इस नलीका बाहरी सिरा पानीकी एक टबमें डुबोओ और उसपर गैस भरनेके बेलन पानीसे भरकर उल्टे खड़े करदो (जैसेकि उद्जनके भरनेके लिये किया गया था)। परख नलीको द दग्धककी लौसे सावधानीसे गरम करो। थोड़ासा गरम करने परही ओषजन वायव्य समुचित मात्रामें निकलने लगेगा और वह बेलनोंमें भर जावेगा चिनगारी संयुक्त सींकसे ओषजनकी परीक्षा कीजासकती है जैसा विधि (१) में बताया गया है।

सावधानी—इस प्रयोगके करतेसमय एक सावधानी रखनेकी आवश्यकता है अन्यथा दुर्घटना होने कीआशंका है। वह यह कि मांगनीज द्विओषिदमें बहुधा पिसा हुआ कोयला मिला होता है। ऐसी अवस्थामें पांशुज हरेतके साथ गरम करने पर जोरका विस्फुटन होने लगता है। अतः पहले परख नलीमें थोड़ासा मिश्रण लेकर परीक्षा करलेनी चाहिये।

इस प्रयोगके करनेसे पता चलेगा कि मांगनीज द्विओषिदके मिला देनेसे प्रक्रिया बहुत आसानीसे थोड़ा गरम करनेपर ही होने लगती है। मांगनीज़ द्विओषिद क्या काम करता है, यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। प्रक्रियाके पूर्व तथा बादके मिश्रण की परीक्षा करनेसे पता चलता है कि मांगनीजद्विओषिदमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है।

ऐसे पदार्थोंको जो अपनेमें बिना परिवर्त्तन लाये हुए किसी प्रक्रियाकी गतिको अति तीव्र कर

उत्प्रेरक कहते हैं। इस प्रकारके प्रभावका नाम उत्प्रेरण है (catalysis) है। उपर्युक्त प्रक्रियामें मांगनीज द्विओषिद उत्प्रेरक है।

कुछ लोगोंका यह विचार है कि सम्पूर्ण प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$\text{२ पांह ओ}_{\text{३}} + \text{४ मा ओ}_{\text{२}} = \text{२ पां ह} + \text{२ मा}_{\text{२}}\text{ओ}_{\text{७}}$$
$$= \text{२ पां ह} + \text{४ मा ओ}_{\text{२}} + \text{३ ओ}_{\text{२}}$$
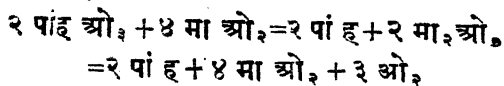
(५) पांशुज-पर-मांगनेत, पांमा ओ$_{\text{४}}$ को २४०° श तक गरम करनेसे भी अत्यन्त शुद्ध ओषजन प्राप्त हो सकता है। ऐसी अवस्थामें प्रक्रिया द्वारा पांशुजमांगनेत प$_{\text{२}}$ मा ओ$_{\text{४}}$ भी बनता है—

$$\text{२ पां मा ओ}_{\text{४}} = \text{पां}_{\text{२}}\text{ मा ओ}_{\text{४}} + \text{मा ओ}_{\text{२}} + \text{ओ}_{\text{२}}$$

गर्म करनेके पश्चात् बचे हुए चूर्णमें पानी डालनेसे हरा घोल प्राप्त होगा जो मांगनेतकी उत्पत्तिका सूचक है।

मांगनीज द्विओषिद अकेलेको भी अगर खूब गरम किया जाय तो ओषजन मिल सकता है—

$$\text{३ मां ओ}_{\text{२}} = \text{मा}_{\text{३}}\text{ ओ}_{\text{४}} + \text{ओ}_{\text{२}}$$
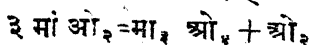
पर इसे तीव्रगन्धकाम्लके साथ गरमकरनेसे ओषजन और आसानीसे प्राप्त होगा—

$$\text{२ मा ओ}_{\text{२}} + \text{२ उ}_{\text{२}}\text{ ग ओ}_{\text{४}} = \text{२ मा ग ओ}_{\text{४}} + \text{२ उ}_{\text{२}}\text{ ओ} + \text{ओ}_{\text{२}}$$
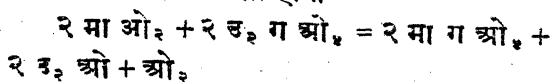
(६) पांशुजद्विरागेत पां$_{\text{२}}$रा$_{\text{२}}$ ओ$_{\text{७}}$को तीव्र गन्धकाम्लके साथ गरम करनेसे भी ओषजन प्राप्त हो सकता है—प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$\text{पां}_{\text{२}}\text{ रा}_{\text{२}}\text{ ओ}_{\text{७}} + \text{३ उ}_{\text{२}}\text{ ग ओ}_{\text{४}}$$
$$= \text{पां}_{\text{२}}\text{ ग ओ}_{\text{४}} + \text{रा}_{\text{२}}\text{ (ग ओ}_{\text{४}}\text{)}_{\text{३}} + \text{४ उ}_{\text{२}}\text{ ओ} + \text{३ ओ}$$

गर्म करनेसे पूर्व घोलका रङ्ग लाल था पर ओषजन त्याग करनेके पश्चात् मिश्रणका रङ्ग पीलापन लिये हुए हो जाता है।
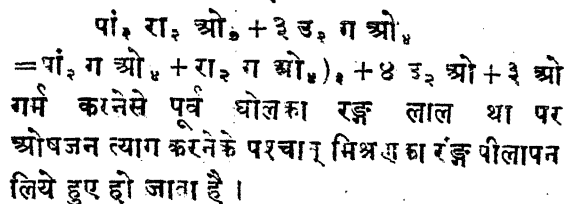
(७) वायुसे ओषजन प्राप्त करनेकी विधि—व्यापारिक मात्रामें ओषजन प्राप्त करनेके लिये वायुका सहारा लिया जाता है क्योंकि इसमें इस तत्वका इतना कोष विद्यमान है कि वह कभी समाप्त ही नहीं हो सकता। इस कामके लिये बहुधा किसी उचित पदार्थको वायुमें गरम करते हैं। ऐसा करनेसे यह पदार्थ वायुके ओषजनसे संयुक्त होकर ओषिद बनाता है। अन्य परिस्थितियोंमें गरम करनेपर यह यौगिक शुद्ध ओषजन त्याग देता है जो संचित कर लिया जाता है।

सं० १९५९ वि० तक ब्रिन-विधि से ओषजनका व्यापार होता था। इस विधिमें भार-ओषिद, भ ओ, को साधारणरक्त तप्त अवस्थातक गरम करते हैं। ऐसा करने से यह वायुसे ओषजन ग्रहण करके भार-पर ओषिद, भ ओ$_{\text{२}}$, परिणत हो जाता है। इसको फिर खूबरक्त तप्त करते है और यह ओषजन त्याग देता है जो संचित किया जा सकता है प्रक्रिया इस प्रकार है—

$$\text{२ भ ओ} + \text{ओ}_{\text{२}} = \text{२ भ ओ}_{\text{२}}$$
$$\text{२ भ ओ}_{\text{२}} = \text{२ भ ओ} + \text{ओ}$$
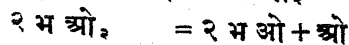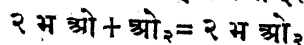
इस प्रकार समीकरणोंसे सिद्ध है कि यह प्रक्रिया विपर्ययेय है, इसको इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{२ भ ओ} + \text{ओ} \rightleftharpoons \text{२ भ ओ}_{\text{२}}$$
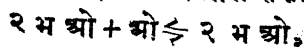
किसी एक तापक्रमपर यह प्रकिया बायीं ओरसे दाहिनी ओर को जाती है। फिर दूसरे तापक्रमपर दाहिनी ओरसे बायीं ओरको इसमें लाभ यह है कि थोड़ेसे भार-ओषिद को बार बार उपयोगमें ला सकते हैं।

भिन्न तापक्रमोंके उपयोग करने के स्थानमें बहुधा प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—भार-ओषिदके ऊपर अधिक दबाव के वायुको प्रवाहित करके गरम करते हैं। इस प्रकार भार ओषिद ओषजन लेकर पर-ओषिद बन जाता है। वायुमें नोषजन शेष रह जाता है जिसे पम्प द्वारा खींच कर अलग कर दिया जाता है। इसके बाद दबावको पम्पसे अति-क्षीण कर देते हैं। ऐसा करनेसे भार-पर-ओषिद उसी तापक्रमपर ओषजनका विसर्जन कर देता है। इसे गैसके बड़े बड़े मजबूत लोहेके पीपोंमें भर लेते हैं। इन पीपोंमें ओषजनका दबाव बहुत अधिक रक्खा जाता है।

आजकल ओषजनका व्यापार इस विधिसे नहीं होता है। अब इस कामके लिये पहले सम्पूर्ण वायुको द्रवीभूत कर लेते हैं। द्रव ओषजनका क्वथनांक −१८२·९ श है और द्रव नोषजनका क्वथनांक—१९५·७° श है द्रववायुको धीरे धीरे वाष्पीभूत होने देते है। नोषद,

जन पहले वाष्पीभूत होने लगता है। इसकी वाष्पोंको पृथक् कर लेते हैं। द्रव ओषजन शेष रह जाता है जो बाजारोंमें द्रवावस्थामें ही बेचा जा सकता है।

ओषजन के गुण

यह बेरङ्गका स्वाद तथा गन्ध रहित वायव्य है। यह वायुकी अपेक्षा कुछ भारी है। इसका आपेक्षिक घनत्व १.१०५२३ (वायु=१) है। इसका परमाणु भार १६ और अणुभार ३२ है। एक लीटर ओषजनका सामान्यभार १.४२९ ग्राम है।

द्रव ओषजन का रङ्ग कुछ पीलापन लिये हुए नीला होता है। इसका क्वथनांक—१८३.००°श है और इस तापक्रमपर इसका घनत्व १.११८१ है ओषजन-का विपुलतापक्रम—११८.७५° और विपुलदबाव ५०.२ वायुमंडल है। यह अत्यंत चुम्बकी होता है।

यदि द्रव ओषजनको द्रव उदजनमें रखकर ठण्डा किया जाय तो यह ठोस हो जाता है। ठोस ओषजन नीले रंगका होता है। ओषजनका द्रिमांक १२ मि. मी. दबावपर—२१९ श है। और-२५२°५° तापक्रम पर इसका घनत्व १.४२५६ है।

पदार्थों का ओषनज में जलना

ओषजन पदार्थों के जलनेमें साधक होता है यद्यपि यह उदजनके समान स्वयं नहीं जलता है। एक चम-चेमें थोड़ासा गन्धक लेकर पिघलाओ और उसे जलाकर ओषजनके बेलनमें डालो। ऐसा करनेसे गन्धक औरभी तीव्रतासे जलने लगेगा। इसकी लपक चमकदार नीली होगी। गन्धक ओषजनमें जलकर गन्धक द्विओषिद, गओ$_2$, गैस देता है जो पानीमें घुलकर गन्धसाम्ल, उ$_2$ ग ओ$_3$, बनाती है—

$$\text{ग} + \text{ओ}_2 = \text{गओ}_2$$

$$\text{गओ}_2 + \text{उ}_2\ \text{ओ} = \text{उ}_2\ \text{गओ}_3$$
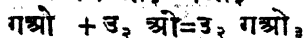
इसी प्रकारका प्रयोग स्फुरके साथ करो। चमचेमें थोड़ासा स्फुरका टुकड़ा जलाओ और इसे ओषजनके बेलनमें ले जाओ। यहाँ यह अति तीव्रतासे जलने लगेगा और चमकीली सफेद रोशनी होगी। स्फुर पञ्चौषिदकी घनी वाष्पें निकलने लगेंगी। ये पानीमें घुलकर स्फुरिकाम्लकी देती है। स्फुरकाम्लको द्योतक-पत्रसे परीक्षाकी जासकती है।—

$$\text{स्फु}_4 + 5\ \text{ओ}_2 = 2\ \text{स्फु}_2\ \text{ओ}_5$$

$$\text{स्फु}_2\ \text{ओ}_5 + 3\ \text{उ}_2\ \text{ओ} = 2\ \text{उ}_3\ \text{स्फु ओ}_4$$
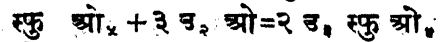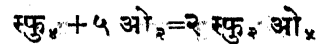
कर्बन वायुमें बहुत धीमा जलता है पर ओष-जनमें यह बहुत तीव्रतासे जलता है। जलकर यह कर्बन द्विओषिद गैस देता है जो चूनेके पानीके साथ सफेद अवक्षेप देती है—

$$\text{क} + \text{ओ}_2 = \text{क ओ}_2$$

$$\text{क ओ}_2 + \text{उ}_2\ \text{ओ} = \text{उ}_2\ \text{क ओ}_3 \text{ (अस्थायी अम्ल)}$$

$$\text{क ओ}_2 + \text{ख (ओ उ)}_2 = \text{खक ओ}_3 + \text{उ}_2\ \text{ओ}$$
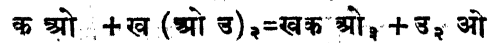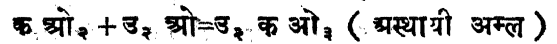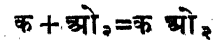
लोहे और, मगनीसम्के तार, सैन्धकम्, पांशुजम् आदि धातुएँभी ओषजनमें तीव्रतासे जलती हैं।—

$$3\ \text{लो} + 2\ \text{ओ}_2 = \text{लो}_3\ \text{ओ}_4$$

$$2\ \text{म} + \text{ओ}_2 = 2\ \text{म ओ}$$

$$\left.\begin{array}{l} 2\ \text{सै} + \text{ओ}_2 = \text{सै}_2\ \text{ओ}_2 \\ 2\ \text{सै}_2\text{ओ}_2 + 2\ \text{उ}_2\text{ओ} = 4\ \text{सै ओउ} + \text{ओ}_2 \end{array}\right\}$$

$$\left.\begin{array}{l} 2\ \text{पां} + 2\ \text{ओ}_2 = \text{पां}_2\ \text{ओ}_4 \\ 2\ \text{पां}_2\ \text{ओ}_4 + 2\ \text{उ}_2\ \text{ओ} = 4\ \text{पांओउ} + 3\text{ओ}_2 \end{array}\right\}$$
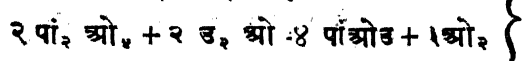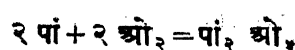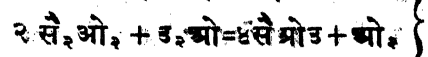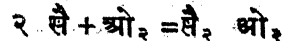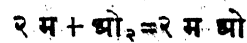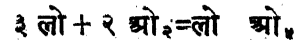
सैन्धकम् ओषजनमें जलकर सैन्धकपरओषिद, सै$_2$ ओ$_2$ बनाता है जो पानीमें घुलनेपर सैन्धक उदौषिद परिणत होजाता है और उदजन विसर्जन करदेता है। पांशुजम् ओषजनमें जलकर पांशुज चतु-रोषिद, पां$_2$ ओ$_4$, बनाता है, यहभी पानीके साथ ओषजन विसर्जन करता है।

उदजन भी ओषजनमें बड़ी तीव्रतासे जलता है। इस संयोगमें पानी उत्पन्न होता है—

पर यदि एक बड़े घड़ेमें उदजन भरा हो और उसमें एक पतली नली द्वारा ओषजन प्रवाहित करें और नलीके मुह पर दियासलाई जलाकर लावें तो ओषजन जलने लगेगा। इस प्रकार उदजनके क्षेत्रमें ओषजन जल सकता है और ओषजनके क्षेत्रमें उदजन। अतः 'जलनशील' और 'जलनेमें साधक' ये दोनों पद सापेक्षिक है।

यदि उदजन और ओषजन का मिश्रण चूनेके टुकड़ेके संसर्गसे जलाया जावे तो बड़ी चमकीली सफेद रोशनी होती है।

ओषिद

लगभग सभी तत्व ओषजनसे संयुक्त हो सकते हैं। इस संयोगसे जो यौगिक बनते हैं उन्हें ओषिद कहते हैं। ओषिद तीन प्रकारके होते हैं—(अ) भस्मक ओषिद (आ) अम्लिक ओषिद (इ) परओषिद। धातुअंके ओषिद बहुधा भस्मिक होते हैं और जलके संयोगसे ये भस्मिक-उदौषिद देते हैं। भस्मक उदौषिदोंको ही भस्म कहते हैं।

(अ) भस्मिक ओषिद—वे ओषिद भस्मिक ओषिद कहे जाते हैं जो पानीमें घुलकर भस्म बनाते हैं। ये भस्म लाल द्योतक-पत्र को नीला कर देते हैं इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

ओषिद उदौषिद भस्म

सैन्धक ओषिद, सै$_2$ओ + उ$_2$ओ = २ सै ओ उ - (कास्टिक सोडा)

पांशुज ओषिद, पां$_2$ + उ$_2$ ओ = २ पां ओ उ - (कास्टिक पोटाश)

खटिक ओषिद, ख ओ + उ$_2$ ओ = ख (ओ उ)$_2$ (चूनेका पानी)

भार ओषिद, भ ओ + उ$_2$ ओ = भ (ओ उ)$_2$ (भार उदौषिद)

लोहिक ओषिद, लो$_2$ओ$_3$ + ३ उ$_2$ओ = लो$_2$ (ओ उ)$_6$ (लोहिक उदौषिद)

(आ) अम्लिक ओषिद-वे ओषिद अम्लिक ओषिद कहे जाते है जो जलमें घुलकर अम्ल बनाते है। ये अम्ल नील-द्योतक पत्र को लाल कर देते हैं। इनके कुछ उदाहरण ये हैं:—

ओषिद उदौषिद (अम्ल)

गन्धक द्वि ओषिद, ग ओ$_2$ + उ$_2$ ओ = उ$_2$ ग ओ$_3$ (गन्धसाम्ल)

गन्धक त्रिओषिद, ग ओ$_3$ + उ$_2$ ओ = उ$_2$ ग ओ$_4$ (गन्धकाम्ल)

कर्बन द्विओषिद, क ओ$_2$ + उ$_2$ ओ = उ$_2$ क ओ$_3$ (कर्बनिकाम्ल)

नोषजन-त्रिओषिद, नो$_2$ओ$_3$ + उ$_2$ ओ = २ उ नो ओ$_2$ (नोषसाम्ल)

नोषजन पंचोषिद, नो$_2$ ओ$_5$ + उ$_2$ ओ = २ उ नो ओ$_3$ (नोषिकाम्ल)

स्फुर पंचोषिद, स्फु$_2$ ओ$_5$ + ३ उ$_2$ ओ = २ उ$_3$ स्फु ओ$_4$ (स्फुरिकाम्ल)

अम्लिक ओषिदोंको कभी कभी अम्लोंके अनार्द्रिद भी कहते हैं। अनार्द्रिदका अर्थ जलरहित है

लवण—१. भस्म ओषिद और अम्लिक ओषिदके संयोगसे जो पदार्थ बनते हैं उन्हें लवण कहते हैं जैसे—

सै$_2$ ओ + ग ओ$_2$ = सै$_2$ ग ओ$_3$ – (सैन्धक गन्धित)

सै$_2$ ओ + ग ओ$_3$ = सै$_2$ ग ओ$_4$ – (सैन्धक गन्धेत)

ख ओ + क ओ$_2$ = ख क ओ$_3$ – (खटिक कर्बनेत)

२. भस्म उदौषिद और अम्लिक ओषिदके संयोगसे भी लवण बन सकते हैं; अर्थात् भस्म और अम्लके संयोगसे इस प्रक्रियामें 'जल' पृथक होता है—

२ सै ओ उ ÷ उ$_2$ ग ओ$_4$ = सै$_2$ ग ओ$_4$ + २ उ$_2$ ओ

ख (ओ उ)$_2$ + उ$_2$ क ओ$_3$ = ख क ओ$_3$ + २ उ$_2$ ओ

भ (ओ उ)$_2$ + उ$_2$ ग ओ$_3$ = भ ग ओ$_3$ + २ उ$_2$ ओ

३. कुछ लवण अम्ल और भस्मिक ओषिदके संसर्गसे भी बनते हैं—

ता ओ + उ$_2$ ग ओ$_4$ = ता ग ओ$_4$ + उ$_2$ ओ

$$\text{द ओ} + \text{२ उ ह} = \text{द ह}_2 + \text{उ}_2\text{ ओ}$$

४. कुछ लवण धातुओं और अम्लोंके संसर्गसे बनते हैं:—

$$\text{२ द} + \text{२ उ}_2\text{ ग ओ}_4 = \text{२ द ग ओ}_4 + \text{२ उ}_2$$

$$\text{२ म} + \text{४ उ ह} = \text{२ म ह}_2 + \text{२ उ}_2$$

(इ) पर-ओषिद—इन यौगिकोंमें पहले ओषिदोंकी अपेक्षा कुछ अधिक ओषजन विद्यमान रहता है। इनको गरम करने पर यह अधिक ओषजन पृथक् हो जाता है और साधारण ओषिद शेष रह जाते हैं जैसे—

$$\text{२ भ ओ}_2 = \text{२ भ ओ} + \text{ओ}_2$$

$$\text{३ मा ओ}_2 = \text{मा}_3\text{ ओ}_4 + \text{ओ}_2$$

$$\text{२ सी ओ}_2 = \text{२ सी ओ} + \text{ओ}_2$$

इन परौषिदों पर गन्धकाम्ल डालनेसे भी ओषजन निकलने लगता है और विसर्जित ओषिद अम्लके साथ संयुक्त होकर लवण बनाता है:—

$$\text{२ मा ओ}_2 + \text{२ उ}_2\text{ ग ओ}_4 = \text{२ मा ग ओ}_4 + \text{२ उ}_2\text{ ओ} + \text{ओ}_2$$

पर कभी कभी अम्लके संसर्गसे उदजन-परौषिद $\text{उ}_2\text{ ओ}_2$, नामक वायव्य निकलने लगता है जिसका वर्णन आगे किया जावेगा, यथा—

$$\text{भ ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ ग ओ}_4 = \text{उ}_2\text{ ओ}_2 + \text{भ ग ओ}_4$$

गन्धकाम्लके स्थानमें यदि उदहरिकाम्लका उपयोग किया जाय तो हरिन् गैस जनित होती है—

$$\text{मा ओ}_2 + \text{४ उ ह} = \text{मा ह}_2 + \text{२ उ}_2\text{ ओ} + \text{ह}_2$$

उदजन-पर-ओषिद

अभी ऊपर लिखा जाचुका है कि भार-परौषिदको हल्के गन्धकाम्लके साथ संसर्ग करनेसे उदजन परौषिद, $\text{उ}_2\text{ ओ}_2$ नामक वायव्य निकलता है—

$$\text{भ ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ ग ओ}_4 = \text{भ ग ओ}_4 + \text{उ}_2\text{ ओ}_2$$

थैनर्ड नामक वैज्ञानिकने संवत् १८७५ वि० में सबसे पहले इसे प्राप्त किया था। गन्धकाम्लके स्थानमें उदहरिकाम्लभी लिया जासकता है।

जब सैन्धकम्का टुकड़ा शुद्ध ओषजनमें जलाया जाता है तो सैन्धक-परौषिद बनता है। यह यौगिक भी उदहरिकाम्लके साथ उदजन परौषिद देता है।

$$\text{सै}_2\text{ ओ}_2 + \text{२उह} = \text{२सैह} + \text{उ}_2\text{ ओ}_2$$

सैन्धकम्को शुष्क कर्बनद्विओषिद-रहित वायुमें गरम करके आजकल सैन्धक परौषिद व्यापारिक मात्रामें तैयार करते हैं। २० प्रतिशतक गन्धकाम्लके घोलको बर्फमें रखकर ठण्डा किया जाता है और सैन्धक-परौषिदकी यथोचित मात्रा थोड़ा थोड़ा करके इसमें डाली जाती है। ऐसा करनेसे ग्लौबर-लवण $\text{सै}_2\text{ गओ}_4$, १० उ_2 ओ, के रवे बैठने लगते हैं। घोलको शून्य दबावपर स्रवित करते हैं। उदजन परौषिद जलकी अपेक्षा कम उड़नशील है, इस प्रकार यह पृथक करलिया जाता है। इसके घोलको डाट-दार बोतलोंमें जिनमें अन्दर मोम लगा रहता है भर लेते हैं।

क्षीण दबावके अन्दर स्रवण करनेसे शुद्ध उदजन-परौषिदभी प्राप्त हुआ है।

गुण—शुद्ध उदजन परौषिद स्वच्छ चासनीदार द्रव है। थोड़ीसी मात्रामें तो यह बेरंगका प्रतीत होता है पर अधिक मात्रामें यह पानीके समान नीले रंगका दिखाई पड़ता है। नोषिकाम्लके समान इसमें गन्ध होती है। वायुमें यह बहुत शीघ्र उबलने लगता है। ६८ मि मी. दबाव पर इसका क्वथनांक $८४^\circ - ८५^\circ$ है और शून्य तापक्रमपर इसका आपेक्षिक घनत्व

१.४६३ है। द्योतक पत्रसे परीक्षा करनेपर पता चलता है कि इसमें तीव्र अम्लीय गुण हैं! पर इसका हल्का घोल शिथिल होता है अर्थात् यह द्योतक पत्रके रंगको नहीं बदलता है। अंधेरेमें बोतलमें अच्छी तरहसे बन्द करके यह कई सप्ताह तक अविभाजित रक्खा जासकता है। पर बोतलकी दीवारें चिकनी होनी चाहिये। यदि दीवारें खुरखुरी हैं या वह रोशनी में रखा गया है तो यह विभाजित होने लगता है:—

२ उ$_2$ ओ$_2$ = २ उ$_2$ ओ + ओ$_2$

स्वर्णम, रजतम्, परारौप्यम् आदि धातुओंके चूर्ण इसका बड़े शीघ्रतासे विभाजन करते हैं।

—२२°श पर यह ठोस किया जासकता है।

उदजन परौषिदमें हरिन्के समान रंग विनाशक गुण होता है। यह बालों और अन्य चित्रकारी सम्बन्धी रंगोंके उड़ानेके काममें आता है। हरिन्से रंग विनाश करते समय उदहरिकाम्ल जनित होता है जो कभी कभी हानि पहुँचा देता है पर उदजन परौषिद द्वारा रंग विनाश करनेमें अम्ल जनित होनेकी कोई आशंका नहीं है।

उदजन परौषिदको जलका अणु समझना चाहिये जिसके साथ एक ओषजनका परिमाणु संयुक्त है। ओषजन और जलअणुका यह संयोग बहुत दृढ़ नहीं है इस कारण उदजनपरौषिदमें ओषिद कारक गुण हैं। यह ओषदीकरण करके लोहस लवणोंको लोहिक लवणोंमें परिवर्तित कर सकता है—जैसे लोहस हरिदको लोहिक हरिदमें:—

२ लोह$_2$ + उ$_2$ओ$_2$ + २उ ह

= २ लोह$_3$ + २ उ$_2$ ओ

इसी गुणके कारण यह सीस गन्धिदको सीस गन्धेतमें परिणत कर सकता है—

सीग + ४ उ$_2$ ओ = सी ग ओ$_4$ + ४ उ$_2$ओ

बहुधा ऐसाभी देखा गया है कि उदजन परौषिदका एक ओषजन परमाणु अन्य यौगिकोंमें से एक-ओषजन परमाणुको खींचकर ओषजनका स्थायी अणुबन जाता है। जैसे ओषोन (Ozone) और उदजन परौषिदमें प्रक्रिया निम्न प्रकार होती है—

उ$_2$ओ$_2$ + ओ$_3$ = २ ओ$_2$ + २ उ$_2$ओ

इस संयोगका कारण यह है कि ओषोन और उदजन परौषिद दोनोंमें ही ओषजनका एक एक पर-माणु अति निर्बलतासे संयुक्त है। इस प्रकार इस उदाहरणमें ऐसा प्रतीत होता है कि उदजन परौषिदका गुण अवकरणका भी है। यह वास्तवमें अवकरण नहीं है। इसे अवकरणाभास कह सकते हैं अवकरणाभासके उदाहरण और दिये जाते हैं। रजत-ओषिद, र$_2$ओ, इसके संयोगसे अवकृत हो जाता है और रजत प्राप्त होता है—

र$_2$ओ + उ$_2$ओ$_2$ = २ र + उ$_2$ओ + ओ$_2$

गन्धकाम्लकी विद्यमानतामें मांगनीज द्वि ओषिद और मांगनेत भी अवकृत होकर मांगनीज गन्धेत और ओषजन देदेते हैं—

मा ओ$_2$ + उ$_2$ग ओ$_4$ + उ$_2$ओ$_2$ =

मा ग ओ$_4$ + २ उ$_2$ओ + ओ$_2$

२ उ मा ओ$_4$ + ३ उ$_2$ग ओ$_4$ + ५ उ$_2$ओ$_2$ =

२ मा ग ओ$_4$ + ८ उ$_2$ओ + ५ ओ$_2$

इस दूसरी प्रक्रियामें यह समझ लिया गया है कि गन्धकाम्लकी विद्यमानतामें पांशुजपर मांगनेत, पां मा ओ$_4$, परमांगनिकाम्ल उ मा ओ$_4$ में निम्न प्रकारके परिणत होगया है, जिसपर फिर उपर्युक्त रीतिसे उदजन परौषिदका प्रभाव पड़ता है—

२ पां मा ओ$_4$ + उ$_2$ ग ओ$_4$ = पां$_2$ ग ओ$_4$ + २ उ मा ओ$_4$

इन सब अवकरणाभासोंमें ओषजन जनित होता है। उदजन परौषिद रजतम् और परारौप्यम्के सूक्ष्म चूर्णों द्वाराभी विभाजित हो जाता है पर इन धातुओंमें स्वयं कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। ये धातु उत्प्रेरकका काम करते हैं।

समालोचना

हिन्दूसंगठन—दाम ~)॥ पृष्ठ संख्या ४७ लेखक-देवतास्वरूप भाई परमानन्द एम० ए०। प्रकाशक—भारत कार्यालय कानपुर।

सुप्रसिद्ध विद्वान्, इतिहासवेत्ता और देशभक्त भाईपरमानन्दने दर्जनों महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखकर देश की बहुत बड़ी सेवाकी है। उन्हींकी सुदृढ़ लेखनीसे लिखे हुए हिन्दूसभा, कांग्रेस और चुनाव सम्बन्धी चार निबन्धोंका यह संग्रह है। पुस्तक है तो छोटी लेकिन इसके पढ़नेसे भाईपरमानन्द की दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता साफ झलकती है। कांग्रेस और हिन्दूसभाके संघर्षके अवसर पर इस पुस्तकको निकाकर राधामोहन गोकुलजीने बड़ा कार्य किया है। चुनाव का काल बीत जानेपरभी इस पुस्तककी उपयोगिता कम नहीं हुई। प्रत्येक शिक्षित हिन्दूके मनन करने योग्य और पुस्तक वितरण करने योग्य है।

हिन्दूपंच—साप्ताहिकपत्र वार्षिक मूल्य प्रति २) संख्या)॥ पता—मैनेजर हिन्दू पंच और वर्मन प्रेस नं० ८४ अपरचितपुर रोड कलकत्ता।

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्माके सम्पादकत्वमें हिन्दूपंच बड़े उत्तम ढंगसे निकल रहा है। इसके अग्रलेख, हास्य और व्यंग्य भी अच्छे होते हैं जब तब इसका विशेषांक भी सुन्दर और सज-धजके साथ निकलता है जिसमें बड़े बड़े विद्वानोंके लेख रहते हैं। वास्तवमें यह पत्र हिन्दू-जातिको जगानेका काम कर रहा है। हम चाहते हैं कि ग्राम ग्राम में इस पत्रका प्रचार हो।

विकास—मासिकपत्र। वार्षिक मूल्य ४) प्रति संख्या। ~)॥

बिलासपुर जिलेकी डिस्ट्रिक्ट कौंसिलके शिक्षा-विभागका यह पत्र श्री कुलदीप सहाय बी० ए० के सम्पादकत्वमें प्रतिमास निकलता है। बहुतसे विद्वानों के उत्तमोत्तम लेखोंसे यह पत्र विभूषित रहता है। सी० पी० प्रान्तके अध्यापकोंके लिए विशेष उपयोगी है हम हृदयसे इसकी उन्नति चाहते हैं।

वैदिक—सन्देश—साप्ताहिक पत्र। वा० १ २॥) प्रतिसंख्या)॥

पता—सम्पादक वैदिकसन्देश अजमेर।

राजपूताना-मालवा प्रान्तीय वैदिकधर्मप्रचारिणी-सभाका यह मुखपत्र श्रीद्वारिकाप्रसादजी सेवकके सम्पादकत्वमें हालहीमें निकलने लगा है। इसके अग्रलेख महत्व पूर्ण होते हैं। सामाजिक लेख, प्रश्नोत्तर और सामयिक समाचारभी अच्छे और मनोहरढंगसे छपते हैं। आर्यसमाजमें ऐसे क्रान्तिकारी पत्रकी बड़ी जरूरत थी। यह आर्यसमाजकी त्रुटियोंको दूर करेगा। आशा है इसका उचित आदर और प्रचार होगा।

सेनापति—सचित्र साप्ताहिकपत्र। वा०मू० २) प्रति-संख्या)॥

पता—मनेजर सेनापति नारायण प्रसाद बाबू लेन कलकत्ता।

हाल हीमें यह पत्र निकलने लगा है। इसमें धर्म राजनीति, इतिहास, दर्शन, संगीत, वैद्यक, कृषि, व्यापार आदि सभी विषयोंपर उपयोगी लेख रहते हैं। पत्र बड़ा होनहार है। हम पं० रामगोविन्द त्रिवेदीको ऐसा सुन्दर और सस्तापत्र निकालनेके लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि इस पत्रका खूब प्रचारहोगा

मतवाला—साप्ताहिक पत्र वा०मू० ३)प्रतिसंख्या ~)

पताः—मैनेजर 'मतवाला' शंकर घोष लेन कलकत्ता।

यह मुख्यतः समालोचनात्मक पत्र है। धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक सभी लेख मार्मिक और महत्वपूर्ण होते हैं। यह हिन्दूसंगठनका ज़बरदस्त प्रचारक है। इसका अग्रलेख इतना मनोहर और प्रभाव-शाली होता है कि बार बार पढ़नेको जी चाहता है। इसके व्यंग्य और हास्यभी बड़े ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद होते हैं। वास्तवमें यह एक क्रान्तिकारी पत्र है। सत्य और न्यायकी रक्षामें बड़े बड़े विद्वानों और नेताओंके विरुद्ध जो कुछ लिखता है वह बड़ी गम्भीरता और शिष्टताके साथ लिखता है, मर्यादाका उल्लंघन कभी नहीं करता। सत्य, न्याय, धर्म और सत्साहित्यकी रक्षा और वृद्धिही इस पत्रकामुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। इस पत्रने देशको बहुत बड़ी सेवाकी है। इसका आदरभी अवश्य हुआ परन्तु इसका प्रचार यथेष्ट रूपसे नहीं हुआ। हम महादेव-प्रसादजी सेठको इस पत्रको ऐसेसुचारु रूपमें चलानेके लिए हृदयसेबधाई देते हैं और शिक्षित पुरुषोंसे हमारा अनुरोध है कि जनतामें इस पत्रका खूब प्रचार करें।

सूर्य्य-सिद्धान्त

[गतांक से आगे]

$$\text{ज्या पूका} = \frac{\text{ज्या } 23^\circ 27' \times \text{ज्या } 292^\circ 59'}{\text{कोज्या } 25^\circ 20'}$$

$$\text{परन्तु ज्या } 292^\circ 59' = -\text{ज्या } (360^\circ - 292^\circ 59') = -\text{ज्या } 67^\circ 1'$$

ऋणात्मक चिन्ह यह प्रकट करता है कि उदय कान्तिक अग्रा पूका पूर्व विन्दुसे दक्षिण है। इसलिये

$$\text{ज्या पूका} = \frac{\text{ज्या } 23^\circ 27' \times \text{ज्या } 67^\circ 1'}{\text{कोज्या } 25^\circ 20'}$$

$\therefore$ लरिज्या पूका = लरिज्या २°२७′ + लरिज्या ६७°१′ − लरिकोज्या २५°२०′

$$= 9.59999 + 9.96941 - 9.95611$$
$$= 9.60729$$
$$\therefore \text{पूका} = 23^\circ 55'$$

इसीको ज्या सूर्योदय कालकी उदय ज्या या अग्राज्या भी कहलाती है। इसीकी सहायतासे सूर्योदयका विषुवकाल जानना चाहिये।

सूर्योदयका विषुवकाल—यदि गोलीय त्रिभुजके कोणोंको अ, इ, ऊ, अक्षरोंसे और इनके सामनेके भुजोंको क्रमशः आ, ई, ऊ, अक्षरोंसे प्रकट किया जाय तो गोलीय त्रिकोणमिति* से प्रकट है कि

$$\text{स्परे}\frac{\text{ऊ}}{2} = \frac{\text{ज्या}\frac{1}{2}(\text{अ}+\text{इ})}{\text{ज्या}\frac{1}{2}(\text{अ}-\text{इ})} \times \text{स्परे}(\text{आ}-\text{ई})$$

* देखो Todhunter और Leathem की Spherical Trigonmetry पृष्ठ ७५

सूर्यका सायन भोगांश २९२°५९′ अथवा १८०°+११२°५९′ है जिसका यह अर्थ है कि शरद संपात विन्दुसे ११२°५९′ पूर्व है। विषुवसंपातके उदयकालसे शरद सम्पातिके उदयकलां-तक ३७ घड़ी होती है। इसलिए शरद संपातका विषुवकाल ३० घड़ी या १८०° होता है। इस लिए यदि यह मालूम हो जाय कि शरद सम्पातसे ११२°५९′ का उदय काशीमें कितनी देरमें होता है तो इस विन्दुका भी विषुवकाल जाना जा सकता है। ऐसी दशामें चित्र ६२ के गोलीय त्रिभुज श का पू-का भुज श का ११२°५९′, पूका २३°५५′, ∠श पू का=काशीका लम्बांश=९०°-२५° २०′=६४°४०′, श पू=श-क का विषुवकाल है। इसलिए गोलीय त्रिकोणमितिके ऊपर दिये हुए सूत्रके अनुसार,

$$\text{स्परे}\frac{\text{श पू}}{2} = \frac{\text{ज्या}\frac{1}{2}(\angle\text{श पू का} + \angle\text{पू श का})}{\text{ज्या}\frac{1}{2}(\angle\text{श पू का} - \angle\text{पू श का})}\ \text{स्परे}\frac{1}{2}(\text{श का} - \text{पू का})$$

$$= \frac{\text{ज्या}\frac{1}{2}(64^\circ 40' + 23^\circ 27')}{\text{ज्या}\frac{1}{2}(64^\circ 40' - 23^\circ 27')}\ \text{स्परे}\frac{1}{2}(112^\circ 59' - 23^\circ 55')$$

$$= \frac{\text{ज्या } 44^\circ 3'\cdot 5}{\text{ज्या } 20^\circ 36'\cdot 5}\ \text{स्परे } 44^\circ 32'$$

$$\therefore \text{लरि स्परे}\frac{\text{श पू}}{2} = \text{लरि ज्या } 44^\circ 3'\cdot 5 - \text{लरिज्या } 20^\circ 36'\cdot 5 + \text{लरि स्परे } 44^\circ 32'$$

$$= 9.84223 - 9.54665 + 9.99329$$
$$= 10.28887$$

$$\therefore \frac{\text{श पू}}{2} = 62^\circ 47'$$

$$\therefore \text{श पू} = 125^\circ 34'$$

=२० घड़ी ५५.७ पल

अमावस्यान्तका विषुवकाल:—जिस क्षण शरद सम्पात बिंदु पूर्व क्षितिजपर आवेगा उससे २० घड़ी ५५.७ पल उपरान्त सूर्य क्षितिजपर आवेगा जब इसका सायन भोगांश शरद सम्पातसे ११२°५९′ होगा* । परन्तु वसंत सम्पातसे शरद सम्पातका विषुवकाल ३० घड़ी होता है इसलिए माघी अमावस्याके सूर्योदयके समय विषुवकाल ५० घड़ी ५५.७ पल है । यह नाक्षत्र मानमें है । परन्तु सूर्योदयसे अमावस्यान्तकालका समय १४ घड़ी ४५ पल है । यह सावन मानमें है जो नाक्षत्र मानके १४ घड़ी ४७.५ पलके लगभग है । (देखो पृष्ठ ४७६) । इसलिए,

सूर्योदयके समय विषुवकाल =५० घड़ी ५५.७ पल
सूर्योदयसे अमावस्यान्तका नाक्षत्रकाल=१४ " ४७.५ पल

∴ अमावस्यान्तके समय विषुवकाल=६५ घड़ी ४३.२ पल
= ५ घड़ी ४३.२ पल
=३४°१८′

विषुवकालसे उदयलग्न और अग्रा जानना:—अब यह जानना है कि जब विषुवकाल ३४°१८′ है तब उदय लग्नका सायन भोगांश क्या है । यह चित्र ६० की सहायतासे सहज ही जाना जा सकता है जहां वपू=३४°१८′, ∠का व पू=परमक्रान्ति=२३°२७′ और ∠व पू का=१८०°×व पू द=१८०°, लम्बांश=१८०°–६४°४०′=१२५°२०′

यदि गोलीय त्रिभुजके तीन कोण अ, इ, उ अक्षरोंसे और इनके सामनेके भुज क्रमशः आ, ई, ऊ अक्षरोंसे प्रकट किये जांय तो गोलीय त्रिकोणमितिके दो सूत्र† इस प्रकार प्रकट किये जा सकते हैं:—

$$\text{स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{आ}+\text{ई})=\frac{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}-\text{इ})}{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}+\text{इ})}\times\text{स्परे}\ \frac{\text{ऊ}}{2}$$

$$\text{स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{आ}-\text{ई})=\frac{\text{ज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}-\text{इ})}{\text{ज्या}\ \tfrac{1}{2}(\text{अ}+\text{इ})}\times\text{स्परे}\ \frac{\text{ऊ}}{2}$$

इन दोनों सूत्रोंके सहारेसे आ और ई दोनोंके मान जाने जा सकते हैं । इस प्रकार चित्र ६० के गोलीय त्रिभुज व पू का से

$$\text{स्परे}\ \tfrac{1}{2}(\text{व का}+\text{का पू})=\frac{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\angle\text{वपूका}-\angle\text{का व पू})}{\text{कोज्या}\ \tfrac{1}{2}(\angle\text{वपूका}+\angle\text{का वि पू})}\times\text{स्परे}\ \frac{\text{व पू}}{2}$$

$$=\frac{\text{कोज्या}\tfrac{1}{2}(११५^\circ२०'-२३^\circ२७')}{\text{कोज्या}\tfrac{1}{2}(११५^\circ२०'+२३^\circ२७')}\times\text{स्परे}\frac{३४^\circ१८'}{२}$$

$$=\frac{\text{कोज्या}\ ४५^\circ५६'.५}{\text{कोज्या}\ ६९^\circ२३'.५}\times\text{स्परे}\ १७^\circ९'.५$$

$$\therefore \text{लर स्परे}\tfrac{1}{2}(\text{व का}+\text{का पू})=\text{लरि कोज्या}\ ४५^\circ५६'.५+\text{लरि स्परे}\ १७^\circ९'.५-\text{लरिकोज्या}६९^\circ२३'.५$$

*यह बात उस रीतिसे भी जानी जा सकती है जो पृष्ठ ४६३—४६४ में बतलायी गयी है ।

†देखो Todhunter और Leathem की Spherieal Trigonometry पृष्ठ ७४

$=९\cdot८४२२ + ९\cdot४८९६ - ९\cdot५४६५$

$=९\cdot७८५४$

$\therefore \frac{\text{व का + का पू}}{२} = ३१°२३'$

$\therefore$ व का + का पू $=६२°४६'$ ……………(१)

इसी तरह, दूसरे सूत्रसे,

$\text{स्परे}\ \tfrac{१}{२}\ (\text{व का} - \text{का पू}) = \frac{\text{ज्या}\ ४५°५६'\cdot५}{\text{ज्या}\ ६९°२३'\cdot५} \times \text{स्परे}\ १७°९'\cdot५$

$\therefore$ लरि स्परे $\frac{\text{व का — का}}{२}$ $=$ लरिज्या $४५°५६'\cdot५ +$ लरि स्परे $१७°९'\cdot५$

$-$ लरिज्या $६९°२३'\cdot५$

$= ९\cdot८५६५ + ९\cdot४८९६ - ९\cdot९७१३$

$= ९\cdot३७४८$

$\therefore \frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२} = १३°२०'$

$\therefore$ व का $-$ का पू $= २६°४०'$ …………(२)

समीकरण (१) और (२) को जोड़नेसे,

२ व का $= ८९°२६'$

$\therefore$ व का $=४४°४३'$

और समीकरण (२)को समीकरण (१) से घटानेपर,

२ कापू $= ३६°६'$

$\therefore$ कापू $=१८°३'$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ऊपरके दो सूत्रोंकी सहायतासे यदि विषुवकाल ज्ञात हो तो किसी समयका उदय लग्न और अग्रा दोनों सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए,

अमावस्यान्तकालका सायन उदय लग्न $=४४°४३'$

और उदयन लग्नकी दक्षिण अग्रा$=१८°३'$

पृष्ठ १०२ में सायन लग्न $४३°३१'$ और पृष्ठ १०३ में उदय लग्नकी अग्रा $१७°३९'$ आयी है जो नवीन रीतिसे प्राप्त अंकोंसे बहुत भिन्न हैं। इसका कारण यही है कि वहां उदय लग्न अनुपातके द्वारा जाना गया है जो स्थूल है।

जब सायन लग्न $४४°४३'$ है तब त्रिभोन लग्न

$=४४°४३' - ९०°$

$=३६०° + ४४°४३' - ९०°$

$\therefore$ अमान्तकालिक त्रिभोन लग्न$=३१४°४३'$

अमान्तकालका मध्यलग्न जानना—अमान्तकालमें जो विषुवकाल आया है उससे १५ घड़ी अथवा $९०°$ कम उसी समयके मध्य लग्नका विषुवकाल होगा क्योंकि विषुवद् वृत्तका जो विंदु याम्योत्तर वृत्तपर होता है वही मध्य लग्नका विषुवकाल और विषुवद् वृत्तका जो विन्दु पूर्व क्षितिजपर होता है वही उदय लग्नका विषुवकाल होता है। परन्तु विषुवद्वृत्तके इन दोनों विंदुओंका अन्तर १५ घड़ी या $९०°$ के समान होता है।

चित्र ६३ में यदि व पू को $३४°१९'$, व का को $४४°४३'$ तथा याम्योत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्तके सामान्य विन्दुको च मान लिया जाय तो च व म गोलीय त्रिभुज के व म का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

च व$=$च पू$-$व पू$=९०° - ३४°१९' = ५५°४१'$

$\angle$च व म$=२३°२७'$

और ∠व च म = ९०°। क्योंकि यह विषवद्वृत्त और याम्योत्तर वृत्तके बीचका कोण है, इसलिए नेपियरके पहले नियम के अनुसार (देखो प्रष्ठ १८४),

कोज्या २३°२७′ = स्परे ५५°४१′ × कोस्परे वम

$$= \frac{\text{स्परे } ५५°४१'}{\text{स्परे वम}}$$

$$\therefore \text{ स्परे वम} = \frac{\text{स्परे } ५५°४१'}{\text{कोज्या } २३°२७'}$$

∴ लरि स्परे व म = लरि स्परे ५५°४१′ – लरि कोज्या २३°२७′

= १०·१६५८ – ९·९६२५ = १०·२०३३

∴ व म = ५७°५७′

∴ सायन मध्यलग्न = ३६०° – ५७°५७′

= ३०२°३′

यह १०३ प्रष्ठमें आये हुए सायन मध्यलग्नसे केवल १′ बड़ा है। इसका यह अर्थ हुआ कि सूर्य सिद्धान्तके अनुसार जो मध्यलग्न आया है वह बिलकुल ठीक है। इसका कारण यह है कि मध्य लग्न और सूर्य बहुत पास हैं यदि मध्यलग्नसे सूर्य दूर होता तो इसमें भी अन्तरपड़ता।

त्रिभोनलग्नका नतांश जानना

मध्य लग्नका नतांश सूर्य सिद्धान्तकी रीतिसे ४५°३′ आया है (देखो प्रष्ठ १०४) यह रीति बिलकुल शुद्ध है। इससे त्रिभोन लग्नकी नतांश ज्या या दृक्क्षेप जाननेकी जो विधि पृष्ठ ५९३ – ९४में बतलायी गयी है उसके अनुसार त्रिभोन लग्नका नतांश ४२°१८′ होता है यदि उदय लग्नकी अग्रा नवीन रीतिसे १८°३′ मानी जाय। परन्तु यह बहुत स्थूल है। इसलिये गोलीय त्रिभुज म ख वि (चित्र ६३) से ख वि का मान सीधे ही निकालना उचित होगा। यहाँ खवि विचित्र लग्न या त्रिभोन लग्नका नतांश है, म ख मध्य लग्नका नतांश है और म वि मध्य लग्न और त्रिभोन लग्नका अन्तर है जो ३१४°४३′ – ३०२°३′ अथवा १२°४०′ के समान है और ∠मविख ४ = ९०°, इसलिए नेपियरके दूसरे नियमके अनुसार,

कोज्या मख = कोज्या ख वि × कोज्या मवि

$$\therefore \text{ कोज्या खवि} = \frac{\text{कोज्या मख}}{\text{कोज्या मवि}} = \frac{\text{कोज्या } ४५°३'}{\text{कोज्या } १२°४०'}$$

∴ लरि कोज्या ख वि = लरि कोज्या ४५°३′ – लरि कोज्या १२°४०′

= ९·८४९१ – ९·९८९३ = ९·८५९८

∴ खवि = ४३°३६′

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश = ४३°३६′

यह जाननेकी दूसरी रीति भी है जो उसी गोलीय त्रिभुज के ∠मविख और मख की सहायतासे नेपियरके दूसरे नियमपर अभित है। दोनो रीतियोंसे त्रिभोन लग्नका नतांश अभिन्न होता है। इसलिए सूर्यसिद्धान्तके पृष्ठ ५९३-५९४ में बतलायी गयी रीतिकी अपेक्षा यही मान्य होनी चाहिए।

दृक्क्षेप = त्रिभोमन लग्नकी नतांश ज्या = ज्या ४३°३६′ = ·६८९६

दृग्गति = त्रिभोन लग्नकी उन्नतांश ज्या = कोज्या ४३°३६′ = ·७२४२

$$\text{छेद} = \frac{१}{४ \text{ दृग्गति}} = \frac{१}{४ \times ·७२४२}$$

अमान्त कालिक त्रिभोन लग्न = ३१४°४३′ (पृष्ठ ११२)

ले० महावीरप्रसाद श्री वास्तव

[शेष फिर]

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २४ | मकर, संवत् १९८३ | संख्या ४

विभाजन (Distribution)

[ले. श्री विश्वप्रकाश विशारद]

आरम्भ तथा लगान

विभाजन शब्द हीसे पता चलता है कि किसी चीज़ का विभाग करना है। उत्पादनके लिये कहा जा-चुका है कि चार पदार्थों-की आवश्यकता होती है भूमि, श्रम, पूंजी और व्यवस्था। जिससमय एक उत्पादित पदार्थ बेचा जाता है तो उससे कुछ आय होती है। यदि एक जातिके उत्पादित पदार्थोंको मिला लिया जाय तो जो आय उसके बेचनेसे होगी वह जातीय आय (national income) कहलावेगी। इस आयमें भूमि, श्रम, पूंजी और व्यवस्था इन चारोंका भाग है और इनचारोंको उस जातीय आयमेंसे अपना २ भाग अवश्य मिलना चाहिये। विभाजनका कार्य्य है कि वह निश्चित करे कि कितना जातीय-आयका भाग भूमिको, कितना श्रमको, कितना पूंजीको और कितना व्यवस्थाको जायगा।

इस भागका निश्चय मांग (demand) और प्राप्ति (supply) से होसकता है। व्यवस्था-पक श्रम, भूमि और पूंजी लेते समय उनके अन्तिम उत्पादकत्व (marginal productivity) का ध्यान अवश्य रखता है। मानलीजिये कि एक खेतमें दस मनुष्य काम करते हैं और उस खेतसे ५० मन अनाज पैदा होता है। यदि व्यवस्थापक एक मनुष्य और काम करनेके लिये रखले तो कुछ अनाज कुछ अधिक अवश्यपैदा होगा। मान लीजिये ५५ मन अनाज पैदा हुआ। ग्यारहवें मनुष्यके रखनेसे ५ मन अन्न और पैदा हुआ। व्यवस्थापक ग्यारहवें आदमीको ५ मनसे अधिक मजदूरी नहीं

देसकता। उसका अन्तिम उत्पादनत्व पांच मनही है। वह मजदूरभी पांच मनसे कम न लेगा क्योंकि उसका काम पांच मन है। अब व्यवस्थायक हर एक मजदूरको पाँच मनही देगा चाहे उसका काम उससे अधिक ही क्यों न हो। इस प्रकार व्यवस्थापक अन्तिम उत्पादनत्वके बराबरही देता है। भूमिमें भी यही नियम लागू है। इसलिए इन पदार्थों की माँग अन्तिम उत्पादनत्वके देनेपर ही हो सकेगी।

पर प्राप्ति (Supply) का भी इसके निश्चय करनेमें बहुत बड़ा भाग है। यदि किसी प्रकारकी रुकावट न हो तो बहुतसे मजदूर काम करने आवेंगे और स्वयं नौकर हो जानेकी कोशिश करेंगे। ऐसी अवस्थामें व्यवस्थापक उन नौकरोंको अन्तिम उत्पादनत्वसे कमपर ही रख लेगा। परन्तु यदि किसी उद्यममें समुचित प्राप्ति नहीं होती तो उस उद्यममें कभी २ व्यवस्थापकको अधिक देना पड़ेगा।

विभाजनमें—

(१) भूमिके लिए लगान।
( ) श्रमके लिए मजदूरी।
(३) पूँजीके लिये व्याज।❀
(४, व्यवस्थाके लिये लाभ।

देना होता है। इन सबपर अब विशेषरूपसे लिखा जायगा।

लगानके विषयमें भ्रम

लगानके विषयमें अनेकों भ्रम होगये हैं। वर्त्तमान लगान प्रणालीही इन भ्रमोंका कारण है। वास्तवमें लगान केवल भूमिके उपयोग ही के लिये लिया जाता है। भूमिसे तात्पर्य है उन सब प्राकृतिक लाभोंसे जो उस पृथ्वीके भागको मिले हैं। सब स्थानोंपर समान वर्षा नहीं होती। कहींपर अधिक होती है कहींपर बहुत कम। भूमिभी कहींकी स्वाभाविक तौरसे उपजाऊ होती है और कहींकी पथरीली होती है। पर लगान भूमिपर ही लगता है। यदि उस भूमिपर कुछ रुपया व्यय कर दिया गया हो तो उससे जो आय होगी वह आर्थशास्त्रिक लगान न होगा। बहुतसे स्थानों पर खेत बराबर कर दिये जाते हैं, कुयें नहर आदि बना दी जाती हैं। ऐसे स्थानों पर कुछ अधिक लगान लिया जाता है पर वास्तवमें यह उस पूँजी पर व्याज है जो उसमें लगाई गई है।

लगानका निय

भूमिका प्रत्येक भाग समान उपजाऊ न होनेसे लगानका लगना आरम्भ हुआ। यदि सब भाग समान उपजाऊ होते और भूमि समुचित होती तो लगान कभी न लगता। क्योंकि यदि एक स्थान पर कोई लगान मागता तो वह दूसरे स्थान पर प्रसन्नतासे चला जाता। यह सिद्ध बात है कि सबसे पहिले सब से अधिक उपजाऊ भूमिही जोती जाती है। यदि दस आदमी एक स्थानपर हैं और यदि एक खेत-जोतनेसे खाने भरको मिल सकता है तो वे उसी खेत पर काम करेंगे जो सबसे अधिक उपजाऊ हो। पर थोड़े दिनोंके बाद एक खेतसे इतना उत्पादन नहीं होगा जो १०० मनुष्यों को खिला सके। मनुष्य बहुत जल्दी संख्यामें बढ़ते हैं। इसलिये आवश्यक होगा कि दूसरा खेत जोता जाय। पहिले तो लोग इस बात की कोशिश करेंगे कि ऐसा खेत मिल जाय जो उस खेतके समान उपजाऊ हो। यदि भाग्यवश कोई ऐसा खेत मिल गया जो लगानका लगना आरम्भ न होगा। परन्तु थोड़े दिनोंके बाद फिर तीसरे खेतकी आवश्यकता होगी। अब यदि उसके समान उपजाऊ खेत न मिला तो उससे कम उपजाऊपर ही खेती होने लगेगी। अब लगानका आरम्भ हो जाता है। जो अच्छे खेत पर काम करते हैं वे कम श्रम और कम पूँजीसे कम उपजाऊ खेतसे अधिक पैदा कर लेते हैं। कम उपजाऊ खेतवाला चाहेगा कि उसको अधिक उपजाऊ खेत मिल जाय और वह उसके लिये कुछ दे भी देगा। बस यहींसे लगानका लगना आरम्भ हो जाता है। इसका कारण उपजमें अन्तर ही है। जमींदार अच्छे खेतवालेसे कहेगा कि तुम इतना

❀ इसका वर्णन 'विज्ञान' के एक गत अङ्कमें हो चुका है।

रुपया दिया करो नहीं तो हमारी जमीन छोड़ दो। हम दूसरेको अपनी जमीन दे देंगे। अब यह आदमी या तो लगान दे दें या कम उपजाऊ भूमि पर काम करने लगे। प्रायः वह लगान ही दे देगा क्योंकि कम उपजाऊ भूमि पर काम न करना चाहेगा।

खेत

अ	ब	स	क
१५	१५	१२	
मन	मन	मन	
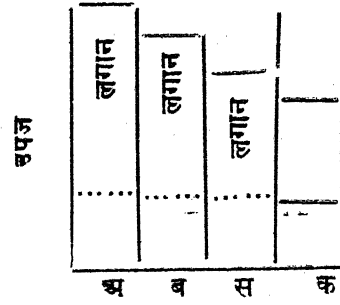
यहां पर अ, ब, स और क चार खेत है, जिनके क्षेत्र-फल समान हैं। इन पर श्रम और पूँजीकी समान मात्रायें लगाई जाती है। परन्तु इनकी उपज समान नहीं होती। अ पर १५ मन, ब पर १५ मन और स पर १२ मन अनाज पैदा होता है। क खेत को जोतनेको अभी आवश्यकता नहीं पड़ी।

अब प्रश्न यह है कि अ और ब कितना लगान देंगे। लगान देना तो दोनों ही को पड़ेगा क्योंकि दोनों ही स से अधिक उपजाऊ हैं। इसका नियम है कि अन्तिम खेत (marginal land) और जो खेत जाते जाते हैं उनका अन्तरही अर्थ शास्त्रिक लगान है अन्तिम खेत वह हैं जिसकी उपज और व्यय बराबर हो। यदि एक खेत पर हम २०) व्यय करें और उसकी आय २०) ही हो तो वह खेत अन्तिम खेत कहा जायगा। यदि दूसरे खेत पर २०) व्यय करने से १६) की आय होती है। तो वह खेत जोता न जायगा। यहां पर अ, ब और स तीन ही खेत जोते जाते हैं क खेतके जोतनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इसलिए स खेत अन्तिम खेत है। अ और ब खेत पर १५ मन अनाज पैदा होता है और स जो अन्तिम खेत है उस पर १२ मन। अतः अन्तर हुआ तीन मनका यही लगान है।

यहां पर अ, ब, स, क चार खेत लिये गये हैं। क खेत अन्तिम खेत है उसको कुछ भी लगान नहीं देना होता। स, ब, अ खेतों को बिन्दु लकीरके ऊपर की उपज लगानमें देनी पड़ती है। स लगान देता हैं। जितना क और स में अन्तर है. ब देता है जितना क और ब में अन्तर है और अ देता है जितना स और अ में अन्तर है। अ सबसे अधिक उपजाऊ है इस-लिए उसे सबसे अधिक लगान देना होता है।

अन्तिम खेतका निश्चित करना

अन्तिमखेतके निश्चित करनेमें केवल उपजका ही विचार नहीं किया जाता। बाजारसे दूरीका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है।
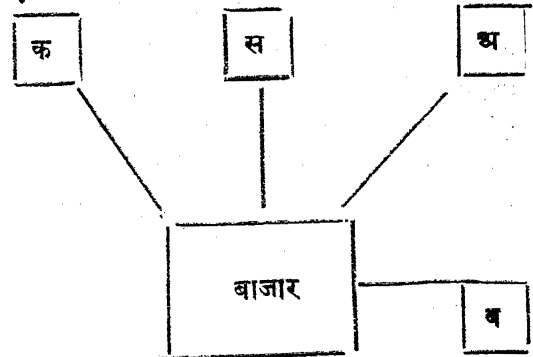
अ, स, ब क चार खेत हैं, वे बाजारसे समान दूरी पर नहीं है। क खेत की उपज १३० मन स की ६० मन, अ की १०० मन, ब की ७० मन। उपजको देखने से स की उपज सबसे कम मालूम होती है और क की सबसे अधिक। पर वास्तवमें क की उपजको बाजार लानेमें बहुत व्यय होजाता है और उसकी उपज सबसे कम होजाती है। यदि कोई रेल इत्यादिक साधन

क खेतके पास होजाय तो क खेतकी उपज सबसे अधिक होसकती है। इसलिये चीजोंके लेजानेके साधन पर किसी खेतकी उपयोगिता बढ़ जाती है। अन्तिम खेतके निकालनेमें इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

लगानका वस्तुके मूल्यसे सम्बन्ध नहीं है

बहुतसे लोगोंका विचार है कि लगानका भी वस्तुके मूल्यके निश्चय करनेमें हाथ है। पर वास्तवमें लगान और वस्तुके मूल्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है। लगान चाहें अधिक देना पड़े या कम मूल्य में किसी प्रकारका अन्तर न होगा। लगान तो केवल अन्तिम खेत की उपजका अन्तर है। अन्तिम खेत वह है जिसकी आय और व्ययमें कुछ भी अन्तर न हो। अन्तिम खेत पर जितना व्यय होता है वही बाजारमें उस वस्तु का मूल्य बनाता है। और अन्तिम खेतको किसी प्रकारका लगान देना पड़ता। इसलिये लगान और मूल्यमें कोई सम्बन्ध नहीं है।

न्यूनप्राप्तिके सिद्धान्तका (law of diminishing Returns) लगान पर प्रभाव

यदि न्यून प्राप्तिका सिद्धान्त न होता तो लगान देनेकी आवश्यकता न पड़ती। एक ही खेतपर अधिक श्रम और पूंजी लगाई जाती और उससे बढ़ी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति होजाती। पर यह सम्भव नहीं है। ज्यों २ हम अधिक मात्रायें देते हैं, उपज कम होती जाती है और एक अवस्था ऐसी पहुंचती है कि व्ययसे कम आय होती है। ऐसी अवस्थाओंमें नये खेतकी शरण लेनी पड़ती है। जहाँ नये खेतकी शरण ली जाने लगी लगानका लगना आरम्भ होजाता है।

खानोंपर लगान

खानके लगान और खेतोंके लगानमें थोड़ा सा अन्तर है। खेतोंके लिये पृथ्वीकी उपज सदा विद्यमान रहती है। वह नष्ट नहीं होसकती। पर खानके पदार्थ थोड़े दिनोंमें समाप्त होजाते हैं। इसलिये इन पदार्थोंको खान में से निकालनेके लियेभी कुछ देना पड़ता है। जैसा लगान खेतोंपर दिया जाता है वह तो देनाही पड़ता है।

मनुष्य किस प्रकार पैदा हुआ।

[ले०—श्री शङ्करलाल जींदल, एम. एस-सी.]

यह साबित हो चुका है कि मनुष्यका शरीर एक दम पृथ्वीपर नहीं आया। जिस दिन ईश्वरकी अनन्त शक्तिके एक सूक्ष्म अंशने जड़में प्रवेश करके निर्जीव पदार्थको जीवित किया उसी दिनसे मनुष्य सृष्टिका आरंभ हुआ। यही आदि जीव मनुष्यका अति प्राचीन पूर्वज माना जाता है। सबसे पहिले एक कोष (cell) का प्राणी अमीबा हुआ। इसके दो खण्ड होते होते जो असंख्य सन्तानें उत्पन्न हुईं उनमेंसे सब जीव मूल-जीवके समान न होकर नाना कारणोंसे विकलाङ्ग उत्पन्न हुए। इस विकलताके कारण वे नाना प्रकारके प्राकृतिक उपद्रवोंसे बचे रहे। जीवन संग्राममें जय पाकर ये सब जीव बहुत कालतक पृथ्वीपर विचरते रहे और जन्म लेते रहे।

जीवका यह क्रम-परिवर्तन केवल पृथ्वीके बाल्य-कालतक ही नहीं रहा। बल्कि जैसे जैसे बाहरकी प्राकृतिक शक्ति धीरे धीरे बदलती रही वैसे वैसे जीव भी नाना प्रकारसे रूप बदलता हुआ जाति परजाति उत्पन्न करता रहा। यह परिवर्तन अभीतक बंद। नहीं हुआ है।

इच्छा-शक्तिका सञ्चार होनेपर शत्रुके हाथसे रक्षा पानेके लिए, जीवको प्रकृतिका आश्रित नहीं होना पड़ा। इस स्वाभाविक इच्छा-शक्तिके अनुरोधसे ही मनुष्य आदि उन्नत प्राणी कृत्रिम उपायसे आज हज़ारों प्राकृतिक प्रतिकूलताओंके विरुद्ध खड़े होकर संग्राम करतेहैं। प्राचीन जीवोंमेंइस इच्छाशक्तिका लेशतक नहीं था। प्रबल बाह्य प्रकृतिकी प्रेरणासे जीवोंको नाना रूप बदलते बदलते लक्ष्यहीन होकर चलना पड़ता था। घटना भेदसे इनमेंसे जो

कुमार्गमें पड़ गये वे मृत्युके मुंहमें जा पहुँचे। परन्तु जिनको भाग्यसे सुमार्ग मिलगया वे क्रमसे उन्नति लाभ करते रहे। आधुनिक मानव जाति इसी आदि जीवके किसी सुपथ गामी वंशजके द्वारा उत्पन्न हुई है। इसीकी आलोचना अब यहांपर की जावेगी।

आदि जीवकी उत्पत्ति हो चुकनेपर उसके वंशज दो मित्र जातियोंमें विभक्त हो गये। प्राचीन समयके आकाशमें कर्बनि द्विओषिद (carbon dioxide) अबकी अपेक्षा बहुत अधिक मिली थी। उन दोनों जातियोंमेंसे एक तो केवल कर्बन-द्विओषिदसे शरीरका पोषण करती थी और दूसरी ओषजन (oxygen) वायु ग्रहण करके जीती थी। गोकि कर्बन और ओषजन दोनों ही शरीरके लिए उपयोगी हैं फिर भी कर्म करनेकी जितनी शक्ति जीवनको शुद्ध ओषजन देती है उतनी कर्बन द्विओषिद नहीं देती। यहींसे ही अंगारक ग्रहण करने वाला जीव जीवनकी दौड़में पीछे रह गया। जहां ओषजन ग्रहण करने वाला जीव उन्नतिके मार्गपर शीघ्रतासे चल-पड़ा तहां अंगारक वाष्प खानेवाला ठीक एक स्थानमें खड़ा होकर बहुत सी अंगारक वाष्पको शरीरके पालनेके लिए ग्रहण करनेके उद्योगमें लग गया।

तत्पश्चात् ओषजन खानेवाले जीवोंको एक ही अवस्थामें न रहकर स-मेरुदण्ड और अ-मेरुदण्ड (vertebrate and invertebrate) इन दो जातियोंमें विभक्त होना पड़ा। किसी समय इन दोनों जातियोंमें अ-मेरुदण्ड जीवोंने पृथ्वीपर बड़ी उन्नति की। मकड़े मक्खियां, चींटियां आदि जीव उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए। फिर स-मेरुदण्ड जातिके जीवोंसे इसको हार माननी पड़ी क्योंकि मेरुदण्ड न रहनेसे इन्होंने अपने चर्मको इन्द्रियोंकी रक्षाका प्रधान साधन बनाकर जो बड़ी भूलकी वही आगे चलकर इनकी उन्नतिके मार्गमें बाधक बन गई। स्थूल चर्मके द्वारा शरीरके ढके रहनेके कारण, आकार बढ़नेपर इनको अपना आवरण विदीर्ण करना पड़ा। इस समय भी केकड़ा, चींटी मक्खी आदि अ-मेरुदण्ड जीव एक प्रकारसे अपने चर्मके आवरणको तोड़ कर ही बढ़ते हैं। जो काम स-मेरुदण्ड जीवोंकी हड्डियां करती हैं वही काम अ-मेरुदण्ड प्राणी अपने कड़े आवरणसे लेते हैं। देहकी प्रधान इन्द्रियों और मांस पेशियोंका इसी आवरणसे सम्बन्ध रहता है। इसी कारण चर्म त्याग करनेके पीछे नया चर्म तैयार होनेतक इनको चुपचाप पड़ा रहना पड़ता है। इसी कारण इनको उन्नति करनेका अधिक अव-काश न मिल सका। जो ज्ञान वे प्राप्त करते थे वह चर्म त्यागके समयमें खो देते थे। कुछ अमेरुदण्ड जीवोंने ज्ञान प्राप्त करनेके कारण चर्म त्याग करना छोड़ दिया। परन्तु ऐसा करनेसे उनकी उन्नतिमें और भी बाधा पड़ी वह यह कि उनकी आयु कम होगई और शरीर छोटा हो गया और बलपूर्वक बढ़नेकी चेष्टा करनेके कारण इनका क्षुद्र जीवन बारम्बार देह बदलनेमें ही काम करने लगा। रेशमका कीड़ा इसकी मिसाल है।

स-मेरुदण्ड जीव बहुत कालतक जलचर जीवोंके रूपमें समुद्रमें विचरते रहे। चूंकि उन दिन चन्द्रमा पृथ्वीके बहुत समीप था इस कारण उसके प्रबल आकर्षणसे समुद्रके पानीमें ज्वार भाटा अधिक उठता था। इसी समय पानीकी बाढ़के साथ जो जलचर जीव स्थलपर आजाते थे वे सब के सब पानीके घटनेपर समुद्रमें नहीं लौट सकते थे। चूंकि प्रतिकूल अवस्थामें आपड़नेपर अपनेको प्रतिकूलता-के अनुकूल करलेना ही जीवका जीवत्व है इसकारण अपने गलफड़ोंके स्थानमें इन्हें फेफड़े उत्पन्न करने पड़े। पानीके जाव इस वजहसे उन्नति नहीं कर सके कि उनको अपनी आवश्यकताओंके पूरा करनेमें अपनी बुद्धि नहीं लगानी पड़ी। थलचर प्राणी अवस्था भेदसे पक्षी तथा स्तनपायी इन दो जातियों-में बट गये। उस समय सम्पूर्ण धरातल जलचर जीवोंसे उत्पन्न महाकाय सरीसृपों (reptiles) से परिपूर्ण था। इनके साथी जब नई शक्ति लेकर उत्पन्न होने लगे तब नये और पुराने जीवोंमें घोर युद्ध हुआ। जो नये जीव बहुत सी ओषजन शरीरमें

रखकर शक्तिका संचय करते थे वही इस युद्धमें बच सकते थे इसके सिवा नये जीव अंडे देनेका अभ्यास छोड़कर जीते बच्चे पैदा करने लगे। इस कार्यसे वे मनुष्यत्वकी ओर बड़ी शीघ्रतासे तरक्की करने लगे।

यह एक नियम है कि जिस जाति अथवा व्यक्ति को जीवनकी सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री सहज में ही मिल जाती है उनके लिए आगे उन्नति करना बहुत कठिन है। इस वास्ते यद्यपि पक्षियोंने शरीरमें बड़ी तरक्कीकी परन्तु सामग्री आसानीसे पा लेनेके कारण उनको विचार नहीं करना पड़ा और यही बुद्धिसे काम न लेना ही मनुष्यत्वतक पहुँचनेका बाधक हो गया।

स्तनपायी जीव पृथ्वीपरके बड़े बड़े सरीसृपों के आक्रमणसे बचनेके कारण वृक्षोंपर रहने लगे। इनमें दो भेद उपस्थित हो गये – एक, वे जो बड़े बड़े नखोंसे शाखाओंको पकड़कर वृक्षपर रहते हैं। दूसरे वे जो अपनी बड़ी-बड़ी उँगलियोंसे शाखाओंको पकड़ते हैं। उँगलीवाले ही जीव नख वाले जीवोंको हटाकर मनुष्यत्वकी ओर अग्रसर हुए।

जिस मानसिक शक्तिके द्वारा मनुष्य अन्य जीवोंसे भिन्न हो गया है उसकी आलोचना करते समय गिननेकी शक्ति सबसे पहिले ध्यानमें आती है। इसीको ज्ञानका प्रथम अंकुर समझा जाता है। वृक्षचर जीव जब एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कूदते थे तब उनको बड़े प्रयत्नसे दूरीका ठीक हिसाब मनमें रखना पड़ता था। इस हिसाबमें भूल होने-के कारण पहले अनेक प्राणियोंको पृथ्वीपर गिर कर प्राण छोड़ने पड़े, परन्तु अन्तमें फिर वे ऐसी भूलसे बरी हो गये।

जब किसी जीवमें किसी विशेष शक्तिकी कमी हो जाती है तब प्रायः और कोई शक्ति साथ-साथ बढ़कर उस कमीको पूरा कर देती है, जैसे अन्धेकी सुनने तथा छूनेकी शक्तिकी तेज़ी चिरकालसे प्रसिद्ध है। अनेक अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्योंकी दृष्टि और प्राण शक्ति बहुत कम है। वैज्ञानिकोंका कथन है कि मनुष्योंके प्राचीन पुरखे जब शाखाओं-पर विचरते थे तब धरतीपर चलनेवाले प्राणियों-की तरह वे सूंघ अथवा देख नहीं सकते थे, इस कारण ये शक्तियां क्षीण होगईं और उनके स्थानमें उनको बुद्धिसे काम लेना पड़ा। यही परिवर्त्तन इन-को उन्नतिके मार्गपर ले गया।

इसके बाद बुद्धिका विकास होतेही हाथ-पांव वाले मनुष्य उत्पन्न होकर पशु-पक्षी आदिको मारकर अपना निर्वाह करने लगे। इस कार्य्यसे भी उनको बुद्धि बढ़ानेमें बड़ी सहायता मिली, क्योंकि उनको शिकार करनेके लिए औज़ार बनाने पड़े। सबसे पहिले पत्थरके ही औज़ार बने और इसी युगको इतिहासमें stone-age कहते हैं। पुनः उन्नति करते करते ऐसे मनुष्य उत्पन्न होने लगे जो कि देवताओंमें शामिल किये जाते हैं। अब भी जो मनुष्य अपनी बुद्धिसे काम नहीं लेते हैं उनकी बुद्धि मंद होजाती है—और संसारमें उनका दर्जा नीचा रहता है। बुद्धिके ही प्रतापसे सर जगदीश-चन्द्र वसु और सर प्रफुल्ल चन्द्र राय इत्यादि ऋषि माने जाते हैं।

भारतमें रासायनिक उद्योग धन्धे

[ले० श्री शंकरराव जोशी, एफ़. ए-. जी.]

रतवर्ष धीरे धीरे उद्योग-धन्धोंमें तरक्की करता जा रहा है किन्तु हम देखते हैं कि कई कारणोंसे ये उद्योग धन्धे अकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं। दक्षिण भारत-के बेंगलोर नगरमें एक भारतीय वैज्ञानिक संस्था है। इस संस्था द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती है। मि० एच० ई० वाटसन इस संस्थाके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। हालमें ही आपने 'इण्डस्ट्रियल ऐण्ड इंजिनियरिंग कमेस्ट्री' नामक पत्रिकाकी जुलाई संख्यामें भारतके रासायनिक उद्योग धन्धोंके कारो-

बातका सिंहावलोकन करते हुए बहुत कुछ लिखा है। आपके इसी लेखके आधारपर हम यह लेख लिख रहे हैं।

भारतमें शक्करका उद्योग सर्व प्रथम है। किन्तु भारतमें शक्कर कम बनाई जाती है। अधिकांश माल 'कच्ची शक्कर' या 'गुड़के' रूपमें ही तैयार होता है। भारतमें जितना भी गुड़ तैयार होता है उसका सिर्फ प्रतिशत १ भाग शक्कर बनानेके काममें लाया जाता है।

नमक—शक्करके बाद दूसरे नम्बरका उद्योग नमक बनानेका है प्रति वर्ष करीब १७५० हज़ार टन नमक भारतमें तैयार होता है। सरकार नमकपर कर लेती है जिससे वह इस उद्योगपर कड़ी नज़र भी रखती है किन्तु यह उद्योग अधिकतर छोटे छोटे ठेकेदारोंके ही हाथमें है। पंजाबमें नमक खानोंमेंसे निकाला जाता है। प्रतिवर्ष करीब १५०,००० टन नमक खानोंसे निकाला जाता है। बाकी नमक खाड़ियोंमें समुद्रके पानीको सुखाकर बनाते हैं। साँभर झीलका पानी सुखाकर भी नमक बनाया जाता है। नमक बनानेका तरीका बहुत ही प्राचीन है। अभीतक इसमें कुछ भी सुधार नहीं किए गए हैं। इसके अलावा खारे पानीसे नमकके अलावा दूसरे पदार्थ तैयार करनेकी ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया जाता है। महायुद्धके जमानेमें मेगनेसाइट (magnesite) और सलफरिक असिड (sulphuric acid) से इप्सॉल्ट या मैग्नेशिया तैयार किया जाता था। परन्तु सकड़ोंटन मैग्नेसियम सल्फेट (magnesium sulphate) कारखानेसे बहकर नष्ट हो जाता रहा है। अहमदाबादके पास खारा घोड़ामें मग्नेशियम क्लोराइड (m. chloride) तैयार करनेका प्रयत्न जारी है। यहाँकी परिस्थिति इसके अनुकूल भी है। स्थानीय ब्राइन (brine-नमकका पानी) से बहुत सा नमक तैयार किया जाता है। यहाँकी आबहवा इतनी गरम और रूखी है कि पानीको धूपसे उड़ानेमें मेगनेशियम क्लोराइटके क्रिस्टल पड़ जाते हैं। एक कारखाना खड़ा किया गया है। इस कारखानेमें पानी उबालकर मेगनेशियम कोराइड तैयार किया जाता है। सन् १९१६ से सन् १९२३ तक आठ हज़ार टन माल तैयार किया गया था। परन्तु खर्चेका लागत ज्यादा बैठनेसे अब यह कारखाना बन्दकर दिया गया है।

तेल—भारतमें तेल निकालनेकी रीति वही है, जो हज़ारों वर्ष पहले थी। लकड़ीके कोल्हूसे ही तेल निकाला जाता है। कुछ कारखाने भी खोले गए हैं। अगर सावधानीसे काम किया जाय तो कोल्हूसे अच्छे दर्जेका तेल निकाला जा सकता है और खलीमें भी प्रतिशत ८ या इससे कम तेल का अंश रह सकता है। किन्तु तेली लोग जिस तरीकेसे तेल निकालते हैं उस तरीकेसे तेल मैला और खराब निकलता है और खलीमें भी प्रतिशत १०—१२ अंश तेल रह जाता है। एञ्जिनसे चलने वाले कोल्हूओंका प्रचार भारतमें बढ़ रहा है।

साल्ट पीटर—भारतमें मट्टीमेंसे शोरा निकाला जाता है। इसके तैयार करनेका तरीका भी बहुत ही प्राचीन है। देशी ढंगसे तैयार किए हुये मालमें ३० से ५५ प्रतिशततक पोटैशियम नाइट्रेट रहता है। वह माल तब कारखानेमें साफ़ करनेको भेजा जाता है और साफ़ किए हुए मालमें पोटैशियम नाइटेटकी औसत ९४ प्रतिशततक पहुंच जाती है। सन् १९१८ में क़रीब २५००० टन माल तैयार हुआ था। किन्तु पैदावारकी औसत करीब दस हज़ार टन प्रति वर्ष है।

लाख—भारतमें लाख भी बहुत होती है। देशी तरीकेसे जो माल तैयार होता है। उसमें कुछ दोष रह जाते हैं। अभीतक लाख प्रयत्न करने पर भी नक़ली लाख तैयार नहीं की जा सकी है। सन् १९२१ में कुल १५१ लाखके कारखाने थे, जिनमें करीब दस हज़ार आदमी काम करते थे।

अतर फुलेल सुगंधित तेल आदि—भारतमें रोशा घास, लेमन घास, चंदन आदिके तेल और सुगंधित तेल बनाये जाते हैं, अतर भी निकाला जाता है। किन्तु भारतमें जितना भी अतर निकाला जाता है। वह सबका सब चंदनके तेलपर खींचा जाता है। कई

जगह गुलाब जल भी बनाया जाता है। कई प्रान्तोंमें अजवाइनका सत भी खींचा जाता है किन्तु थायमाल बनानेके कारखाने बहुत ही कम पाये जाते हैं। नारंगी चमेली, गुलाब आँवला आदिके सुगंधित तेल भी बनाये जाते हैं। किन्तु प्रति वर्ष कितना माल तैयार होता है, इसका अन्दाजा लगाना कठिन है क्योंकि व्यापारी लोग अधिकतर अपने घरोंमें ही तेल अतर आदि तैयार करते हैं। व्यापारिक ढङ्गपर स्थापित कारखानों का अभावसा ही है।

रङ्ग—देशी रङ्ग पक्का सुन्दर और चमकीला होता है। विदेशोंमें भारतके देशी रङ्गोंकी अच्छी क़द्र है।

अब भारतके उन उद्योग धन्धोंपर विचार किया जायगा जो विदेशोंसे यहां आता है। भारतकी परिस्थिति इनके सवथा अनुकूल नहीं है। कपड़ा, घासलेट और आगपेटीके अलावा दूसरे मालके लिए भारतवासियोंको कोई दिलचस्पी नहीं है। रासायनिक पदार्थोंकी माँग बड़े बड़े शहरोंतक ही मर्यादित है, क्योंकि भारतकी अधिकाँश जनता देहातोंमें—शहरोंसे मीलों दूर रहती है और आवागमनके साधनोंके अभावके कारण देहातोंमें उन पदार्थोंका प्रवेश ही नहीं हो पाया है। देशकी आबादीको देखते हुए मानना पड़ता है कि यदि प्रयत्न किया जाय तो माँग बहुत कुछ बढ़ सकती है और हरएक प्रकारके मालकी मांग पूरी करनेके लिये कई बड़े बड़े कारखानोंकी जरूरत हो सकती है। परन्तु मालको एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचानेके लिए इतना अधिक किराया देना पड़ता है कि पासके बन्दरमें विदेशसे आए हुए मालसे भी देशी माल महँगा पड़ता है क्योंकि छोटे छोटे कारखानोंको अधिक व्यय उठाना पड़ता है। विशेषज्ञोंके वेतनका खर्च जरूरतसे ज्यादा बैठता है। और यदि किसी खास उद्योग धन्धेके लिए विदेशी विशेषज्ञकी जरूरत हुई तो फिर माल और भी मँहगा पड़ता है। इसके अलावा कोयला भी दूरसे मँगाना पड़ता है और कच्चा माल प्राप्त करनेमें भी, सड़क रेल आदिकी कमीके कारण, ज्यादा खर्च दरकार होता है। इन्हीं कारणोंसे देशी माल विदेशी मालसे महँगा पड़ता है।

वानस्पतिक तेल—भारतके कुछ हिस्सोंमें पश्चिमी ढंगपर तेल निकालनेके कारखाने खोले गए हैं। नारियलके तेलका कारखाना भारतके पश्चिमी किनारेपर खोला गया है। कारखानेको बारहों महीने जारी रखनेके लिए कच्चे मालकी जरूरत होती है किन्तु काफ़ी कच्चा माल नहीं मिलता है और खर्चका परता ज्यादा बैठनेपर भी माल, देशी तरीकेसे तैयार किए हुए मालसे ऊंचे दरजेका नहीं होता। इसलिए यह कारखाना विशेष तरक्की न कर सका और संभवतः बँद कर दिया गया है। और अब कारखानेके लिए साफ तेल तैयार किया जाता है बंगाल और ब्रह्म देशमें भी ऐसे ही कारखाने खोले गए हैं और प्रति वर्ष करीब ३ लाख टन तेल निकाला जाता है जिनमेंसे एक लाख टन तेल-विदेशोंको भेजा जाता है। इस उद्योग धंधेकी तरक्कीके रास्तेमें एक बड़ी भारी रुकावट यह है कि खलीकी मांग बहुत ही कम है। भारतवर्षमें तो इसकी मांग नहींके बराबर ही है। इसलिए तेल और खली विदेशोंको भेजनी पड़ती है। परन्तु तेलके पैकिंगमें ज्यादा खर्च लगता है। और बिनौले, खोपरा, अलसी, तिल, आदि विदेशोंमें भेजनेमें कम खर्च लगता है। सबब यहांसे भेजा हुआ तेल विदेशोंमें कुछ महंगा पड़ता है।

साबुन—भारतमें करीब एक दर्जन साबुनके कारखाने हैं। परन्तु वे छोटे हैं और प्रतिदिन करीब दो टन माल तैयार होता है। करीब १५ हजार टन साबुन हर साल विदेशोंसे आता है। इतनी अधिक मांगको देखते हुए आश्चर्य होता है कि भारतमें इस व्यवसायने तरक्की क्यों नहीं की।

शराब—भारतमें २० शराब बनानेके कारखाने हैं, जिनमें देशी शराब तैयारकी जाती हैं। कुछ कारखानोंमें अलकोहल तैयार किया जाता है जो ८६ अँश प्रति शतके दर्जेका होता है (a fair quantity of 86 /ₒ alcohol)। हैदराबादमें ये कारखाने ज्यादा हैं। महुवाके फूल मोटर

चलानेका तेल तैयार करनेका प्रयत्न भी कहीं कहीं जारी है। कुछ कारखाने कर्बन-द्विओषिद भी तैयार करते हैं। सोडावॉटरके लिए इसकी बहुत ही ज्यादा मांग है।

अन्य रासायनिक पदार्थ—छः सात कारखानोंमें सलफुरिक एसिड तैयार किया जाता है। परन्तु पश्चिमी कारखानोंकी तुलनामें यह कारखाने बहुतही छोटे हैं। सलफुरिक एसिड बनानेके लिये लगने वाला कच्चा माल विदेशोंसे ही आता है। सन् १९१८ में करीब १५ हजार टन माल तैयार किया गया था। परन्तु अब पैदावार घट गई है। थोड़ा बहुत नाइट्रिक एसिड और हायड्रोक्लोरिक (hydrochloric acid) एसिड भी बनाया जाता है।

गत महायुद्धके जमानेमें फिटकरी, एल्युमिना-फेरिक (alumina ferric) अमोनियम हायडेट (ammonium hydrate) अमोनियम सलफेट, कारबन बायसलफाइड, कॉपरसलफेट (नीलाथोथा), लिथाजी (lithage) ईथर, (ether), फेरस सलफेट (ferrous sulphate) मेगनेशियम सलफेट क्लोराइड, पोटेशियम सलफेट सेडियम हायड्रो आक्साइड आदि तैयार किए जाते थे। मेगनेशियम और कास्टिक सोडाको छोड़कर शेष सब प्रकारके मालकी पैदावार प्रति दिन दो टनसे ज्यादा नहीं थी। सन् १९२० से इनकी पैदावार घटती जा रही है। कुछ पदार्थोंके कारखाने तो बिलकुल बंदही हो गए हैं।

(paint) **रंग वैगरा**—भारतमें प्रति वर्ष करीब बीस हजार टन वार्निश आदि रंगनेके पदार्थ विदेशोंसे आते हैं। और इन पदार्थोंको तैयार करनेके लिए लगने वाले कच्चे मालकी भारतमें कमी नहीं है किन्तु फिर भी इस व्यवसायने विशेष उन्नति नहींकी है। संभव है, सस्ते विदेशी मालकी प्रतियोगिताके कारण ही ऐसा हुआ हो! कलकत्तामें दो कारखाने हैं और बंगलोरमें सपेदा white lead तैयार किया जाता है वाणिज्यकी परिस्थितिमें अनुकूल परिवर्तन होते ही संभव है, ये कारखाने कुछ उन्नति करें।

ओषधि आदि-गाजीपुरके सरकारी कारखानेमें अफीम कुनेन और ऐसे ही कुछ पदार्थ तैयार किए जाते हैं। अफीमकी पैदावार घटती जा रही है। सन् १९१३ से सन १९१७ तकका औसत २५ हजार हंड्रेड वेट था। वह आजकल घटकर १३ हजार हंड्रेडवेट रह गया है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि सुगंधित तेल आदि तैयार करनेका व्यवसाय अति प्राचीन है। किन्तु अभी कुछ ही वर्षोंसे आधुनिक पद्धतिसे तेल निकालनेका काम हाथमें लिया गया है। भारतका चंदनका तेल बहुत ही उत्तम होता है। चंदनके तेलके लिए जिस जातिके चंदनके वृक्ष (santalum album) की जरूरत होती है, वह ज्यादा तादादमें भारतके सिवा दुनियांके और किसी हिस्सेमें नहीं मिलता है। पहले चंदनकी लकड़ी विदेशोंमें भेजी जाती थी। परन्तु सन् १९१६ में मैसूर रियासतने बंगलोरमें व मैसूरमें चंदनके तेलके कारखाने खोले हैं। इनस्थानोंमें बना हुआ माल उत्तम प्रतिका होता है। भारतवर्षमें कुछ कारखानोंमें, इलायची, लौंग, दालचीनी आदिका तेल भी निकाला जाता है। पंजाब आदि कुछ प्रान्तोंमें थायमाल, तारपीनका तेल आदि पदाथ भी बनाए जाते हैं।

ऊपर संक्षेपमें भारतके कारखानोंका सिंहावलोकन किया गया है जो विदेशी ढंगपर चल रहे हैं और जो विदेशोंकी देखा देखी भारतमें स्थापित किए गए हैं। दुखके साथ कहना पड़ता है कि खदानें और चंदनके तेलके कारखानेके अलावा शेष सभी प्रकारके कारखाने बहुत बुरी हालतमें हैं। विदेशी प्रतियोगिताके कारण भारतीय उद्योग धंधे नहीं पनप पाए हैं। अतएव भारतमें बड़े पायेपर कारखाने खोलनेका काम जोखिम भरा है। छोटे छोटे कारखाने अलबत्ता थोड़े मुनाफेकी उम्मीदसे चलाए जासकते हैं और कुछ कारखाने किसी तरह अबतक जीते हैं।

वैज्ञानिकीय

द्रव कांच

साधारणतया हमारे व्यवहारमें जो कांच आता है वह बहुत ही कड़कीला होता है। कांच आजही नहीं हजारों वर्षोंसे भारतमें बनता आया है। मिश्र और एशिया माइनरमें लगभग ३००० वर्ष पूर्व यह बनता था। पर वह भी आज कलके कांचकी तरह कड़कोलाही होता था। पाश्चात्य सभ्यतामें कांचका स्थान बहुत ऊंचा है। ऐसा शायद कोई अच्छा मकान होगा जिसके दरवाजों और खिड़कियोंमें कांचको पट्टियां न लगी हों। बन्दूक़की गोलीसे बचनेके लिए मोटे कांचके कवच भी बनाये जाते हैं। विज्ञानमें तो इसका प्रयोग इतना अधिक होता है कि विज्ञानका कमरा कांच-गृह ही मालूम होता है। कांचके तार खींचकर इसकी रुई भी बनाई जाती है जिसकी २८०० तारोंकी मोटाई १ इञ्च होती है। इस रुईमें ९० प्रतिशतक वायु होती है। यह रुई दुर्वाहकता उत्पन्न करनेके काम आती है।

यह कांच रेता और कुछ रासायनिक पदार्थोंको भट्टीमें गर्म करके बनाया जाता है। परन्तु अब दो आस्ट्रियन वैज्ञानिकोंने 'द्रव कांच' का आविष्कार किया है। उनका दावा है कि इसमें साधारण कांचके सब गुण तो होते ही हैं, साथ ही साथ इसमें एक विशेषता और है कि यह साधारण कांचकी तरह टूटता नहीं। इस द्रव कांचको बोतलमें भरकर रख सकते हैं। जब आवश्यकता हो तब उसमेंसे निकालकर अपनी इच्छानुसार वस्तु बना सकते हैं।

यह द्रव कांच फौर्मेलडीहाइड (formaldehyde) और यूरिया (urea) के मिलानेसे बनता है। द्रव अवस्थामें गोंदकी तरह इसको उड़ेल सकते हैं और मन चाही वस्तु बना सकते हैं। गर्म करनेपर यह कठोर हो जाता है। और साधारण कांच जैसा हो जाता है। यह कांच स्वच्छ और बिना रंग होता है। इसे आसानीसे रंगा जासकता है। रबरकी गेंदकी तरह यह उछलता है। जब यह टूटता है तो साधारण कांचकी तरह टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता वैज्ञानिकोंका दावा है कि यद्यपि इसका आपेक्षिक घनत्व साधारण कांचसे आधा ही है तो भी यह उसी व्ययमें तैय्यार किया जा सकेगा।

❀ ❀ ❀

ताप सहनेवाला कांच

यदि कांचको गर्म कर एक दम ठण्डा कर दिया जाय तो कांच चटक जाती है। हमारी लैम्पोंकी चिमनियां इसी लिए पानीका जरा सा भी छींटा पड़ जानेसे चटक जाया करती हैं। वैज्ञानिकोंने परीक्षण करके पता लगाया है कि यदि कांचमें बोरिकाम्ल और अलुमीनियमका ओषिद् मिला दिया जाय तो वह कांच ताप परिवर्तनको अच्छी प्रकार सह सकता है। इस कांचके एक गिलासमें पानी खौला कर यदि उसमें बर्फ डाल दें तो भी वह न टूटेगा। यदि गिलासमें बर्फ भरकर उसे खुली ज्वालापर एक दम जलके खौलाव बिन्दु या कथनांक तक गर्म कर दें तो भी उस पर कुछ असर नहीं होता।

❀ ❀ ❀

क्या पृथ्वीका घेरा कम हो रहा है?

अमेरिकाके श्रीयुत इवांस (evans) और वैल्स (wells) ने अभी ही पृथ्वीके चारों ओर परिक्रमाकी है। वे न्यूयार्कसे चलकर सानफ्रांसिस्को, योकोहामा, ओम्सक, मास्को, बर्लिन और पेरिस होते हुए फिर न्यूयार्क पहुँच गए, । उन्होंने यह यात्रा २२ हवाई जहाज, तीन स्पेशल ट्रेन, एक मोटर, बहुत तेज जहाज और बहुत सी छोटी छोटी नौकाओं तथा गाड़ियोंके सहारे की। इस यात्रामें उन्हें २८ दिन, १४ घंटा ३६ मिनट और ५ सेकण्ड लगे। अबसे १३ वर्ष पहले जोन हेनरीमियर्स (john henry mears ने पृथ्वीकी परिक्रमा की थी। उसकी अपेक्षा इस यात्रामें ८ दिन कम लगे। अनुमान किया जाता है कि यह अपेक्षाकृत कमी सम्भवत: पृथ्वीके व्यासके सिकुड़नेके ही कारण हो।

भूगर्भ शास्त्रियोंका कथन है कि पृथ्वी दिन दिन सिकुड़ती जा रही है। ज्यों ज्यों इसका ताप विकिरण द्वारा कम होता जायगा त्यों त्यों पृथ्वी सिकुड़ती जायगी और अन्तमें बिलकुल ठण्डी हो जायगी, उस समय इसका सिकुड़ना बन्द हो जायगा। अमेरिकन उड़ाकेकी उड़ानसे इस बातकी पुष्टिमें बहुत कुछ सहायता मिलती है।

* * *

क्या सूर्यका हमपर कुछ प्रभाव पड़ता है?

अभीतक साधारणतया हम सबका यही विश्वास है कि सूर्य हमेशा एकरस हमारी पृथ्वीको प्रकाशित किया करता है। आज और कलके सूर्यके प्रकाशमें हमें कोई भेद मालूम नहीं होता। परन्तु डा० ऐबटने अभी परीक्षण करके पता लगाया है कि सूर्यके प्रकाशके प्रसरणमें परिवर्तन होते रहते हैं। उसके प्रकाशमें परिवर्तन होनेका कारण है सूर्यकी पृष्ठपर दीखनेवाले काले दाग। ये काले दाग दुरवीक्षण यन्त्रसे बहुत अच्छी तरह देखे जा सकते हैं। ये काले दाग बड़े बड़े ज्वालामुखी हैं जिनके मुँहसे उपरि संतप्त (super-heated) गैसें निकलती हैं। और साथही साथ उनके मुंहसे निकली विद्युतकी गोलियाँ पृथ्वी तथा अन्य सौरमण्डलके ग्रहों पर प्रहार करती हैं। इस विद्युत तथा उपरिसन्तप्त गैसके प्रभावके कारण सूर्यके प्रकाशमें अन्तर आता रहता है और इसीसे पृथ्वीकी जल वायुपर भी उसका प्रभाव पड़ता है। गैसोंकी भिन्न भिन्न परतोंके परस्पर टकरानेसे एक प्रकारकी घुम्मर बवंडर घेरियां (whirlpools) बनती हैं। ये ही ज्वालामुखी हैं। विगत जनवरीमें जो दाग देखा गया उसका व्यासप्रायः १०००० मीलके है।

* * *

पौदोंके लिये कर्बनिकाम्लकी खाद

पौदे भी प्राणियोंकी तरह श्वास लिया करते हैं। श्वास लेनेके लिये उनकी नाक पत्तोंके छेद हैं। हरे हरे पत्तोंको यदि किसी उन्नतोदर ताल (convex lens) देखें तो उनमें ऐसेही छेद दीखते हैं। इन्हीं छेदोंकी सहायतासे पत्ते ओषजन लेते हैं और कर्बनिकाम्ल गैस छोड़ते हैं। इन छेदोंको (stamata) वनसपति-श्वासेन्द्रियाँ कहते हैं।

परीक्षाणोंसे हम देख चुके हैं कि सूर्य्यके प्रकाशमें यही पत्ते ओषजनके साथ-साथ कर्बनिकाम्ल गैस भी अपने अन्दर ले लेते हैं इसी कर्बनिकाम्ल गैससे ही पत्तोंके क्लोरोफिल द्वारा निषास्ता आदि बनता है।

जिस प्रकार खाद डालनेसे खेती खूब बढ़ती है उसी प्रकार कारखानोंकी चिमनियोंसे निकले हुए धुएंको ठण्डा कर पैदोंपर स्पर्श करानेसे पौदे खूब पनपते हैं। पौदोंको बढ़नेके लिये पानी तो जमीनसे मिलता है और कर्बन कर्बनिकाम्ल गैससे। कर्बन और जलको मिलाकर निषास्ता बनाना क्लोरोफिलका काम है जो सूर्यके प्रकाशकी सहायतासे अच्छी प्रकार हो जाता है। इस प्रकार कर्बनिकाम्ल गैसकी खादसे, जिस पेड़के फूल साधारणतया १ वर्ष बाद निकलते हैं, उसके एक ही महीनेमें निकल आते हैं।

* * *

गैसोलीन

वैज्ञानिक खोजोंकी गतिकी तीव्रताको देखकर आश्चर्य होता है हवाई जहाजोंके आविष्कार होनेके बादसे ही उनमें आश्चर्यजनक उन्नति होती जा रही है। इस अविष्कारको हुए बहुत समय नहीं हुआ। अभीतक हवाई जहाज़ पेटरोलसे चलते थे। पेट्रोलकी असुविधाओंको देखते हुए गैसोलीनका आविष्कार किया गया था। अब जर्मनीके वैज्ञानिक दो क़दम और आगे बढ़े हैं। वे ऐसी गैसके तैयार करनेमें लगे हुए हैं जिससे हवाई जहाज और भी अधिक निरापद होकर उड़ सकेंगे। इस गैसमें एक और भी विशेषता होती है, वह यह है कि इस गैससे हवाई जहाजोंकी चाल बढ़ जायगी और वे बिना ज़मीन पर उतरे ही लम्बी लम्बी मंजिलें तै कर सकेंगे।

अमीचन्द्र विद्यालंकार।

हमारा सूर्य्य-मंडल

पृथ्वी

[ले० श्री शंकर लाल जींदल, एम.एस-सी.]

किसी अँधेरी रातको जब कि चंद्रदेव अपना उज्ज्वल मुख हमसे छिपाये हुए हों आप अपने मकानकी छतपर चढ़ कर एक दृष्टि महाकाशकी ओर डालें तो आपको विदित होगा कि असंख्य तारे अपनी धीमी धीमी रोशनीसे महाकाशके तमको नाश कर रहे हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि ये क्या हैं आपको शायद आश्चर्य्य हो कि ये हमारी पृथ्वीकी भांति आकाशमें बड़े बड़े जड़ पदार्थके पिण्ड हैं—कुछ तो अपनी ही रोशनीसे चमक रहे हैं और थोड़ेसे दूसरोंसे उधार लेकर कार्य्य कर रहे हैं। यदि हम चद्रमामें जा सकते तो हम पृथ्वीको ऐसी ही देखते जैसे कि हम चंद्रमाको यहांसे देखते हैं, परन्तु पृथ्वीका आकार चंद्रमाके आकारसे बड़ा दीखता, इस लेखमें हम केवल पृथ्वीका ही कुछ वर्णन करेंगे, आगामी लेखोंमें सूर्य्य और अन्य ग्रहोंका उल्लेख किया जावेगा।

जब हम छोटे थे तब अपने ग्राममें भूचाल आनेके समय यह सुना करते थे कि पृथ्वी एक गायके सींग पर विराजमान है और जब वह एकसींगसे दूसरो सींगपर इसको बदलतो है तब उसमें कम्पन उत्पन्न होता है कुछ लोगोंको हमने घरसे बाहर निकलकर पृथ्वीके लाठियोंसे पीटते देखा था। उनका उद्देश्य यह था कि पीटनेसे पृथ्वीपर जो दबाव पड़ेगा उससे वह शीघ्र ही दूसरे सींगपर विराजमान हो जावेगी। अब आप सोचें कि जिस देशमें इतनी अविद्याका राज्य है वहां उन्नतिका राज्य किस प्रकार हो सकता है? आपको यह न समझलेना चाहिए कि हमारे प्राचीन ज्योतिषी भी इन्हीं तरहकी बातोंमें विश्वास करते थे। उनके कार्य्योंसे जो कि मैं किसी अन्य लेखमें वर्णन करूंगा विदित होता है कि उन लोगोंने बिना किसी आधुनिक यंत्रोंके सहारेसे कैसे कैसे आश्चर्यजनक आविष्कार किये थे। ऐसा ही अन्धकारमय समय योरुपमें भी था जब कि गेलिलियो महोदयने यह मालूम किया कि पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर घूमती है न कि सूर्य्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता है इन महापुरुषोंको इस आविष्कारके बदले जेल-यातना सहनी पड़ी थी।

अब आपको हम यह बतलायंगे कि सूर्य्य मंडलमें क्या क्या है? सूर्य्य ही सारी शक्तिका भंडार है। जो इसकी शक्तिपर निर्भर हैं वे इसके वशमें हैं। सूर्य्यके चारों ओर आठ और ज्योतिष पिंड वेगसे चक्कर लगा रहे और इन पिंडोंमेंसे कुछके चारों ओर भी छोटे पिंड घूम रहे हैं। सूर्य्य जो कि अपना स्थान नहीं बदलता है नक्षत्र कहलाता है और जो आठ पिंड इसकी परिक्रमा कर रहे हैं उनको ग्रह कहते हैं। ग्रहोंके चारों ओर घूमने वाले छोटे पिंडोंको उपग्रहके नामसे पुकारते हैं। सूर्य्यके समान हजारों नक्षत्र आकाशमें स्थित हैं, वे भी अपना स्थान हमारे पृथ्वीके लिहाजसे नहीं बदलते हैं।

आठ ग्रहोंके नाम बुध शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, युरेनस् और नेपचुन हैं। चंद्रमाको उपग्रह कहते हैं क्योंकि यह पृथ्वीके चारों ओर चक्कर लगाता है इनका विवरण फिर दिया जावेगा। अब हम केवल पृथ्वीके बारेमें कुछ उल्लेख करेंगे—

खुले मैदानमें खड़े होकर देखनेसे यही प्रतीत होता है कि हमारी पृथ्वी चपटी है परन्तु वास्तवमें वह ऐसी ही गोल है जैसा कि हमको सूर्य्य और चंद्रमा दिखाई देते हैं, क्योंकि हमारा कद पृथ्वीके सामने इतना छोटा है जितना कि एक घड़े पर एक चीटी इस वास्ते वह गोल नहीं मालूम होती है। बुद्धि और प्रयत्नसे यह साबित हो सकता है कि पृथ्वी भी गोल है—इसका मामूली सा सबूत यह है कि समुद्र पर कोई जहाज यदि हमारी तरफ आरहा है तो वह हमको एक दम सारा दिखाई नहीं देता, बल्कि पहिले उसका सिरा दीखता है फिर थोड़ा थोड़ा करके सारा दिखाई देने लगता है। यह मिसाल उसीके समान है

जब कि एक महराबदार पुलके दोनों तरफसे दो आदमी धीरे धीरे चलें तो हर एक दूसरेका पहिले सिर देखेगा फिर जिस्म दिखाई देगा और अंतमें पैर दिखाई पड़ेंगे।

दूसरी बात यह है कि पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर बड़े वेगसे घूम रही है और यह चक्कर पूरे एक वर्षमें समाप्त होता है। इसके अतिरिक्त वह अपनी कीली पर २४ घंटेमें एक बार घूमती है जिससे कि दिन रात होते हैं। जो हिस्सा सूर्य्यके सामने होता है वहां दिन होता है और जो सूर्य्यसे परे होता है वहां रात होती है। एक शक पैदा यह हो जाता है कि जब हम रेल इत्यादिमें बैठते हैं तो हमको उसके चलनेका ज्ञान होता है परन्तु पृथ्वीका चलना ज़रा भी नहीं मालूम होता है इसकी वजह यह है कि पृथ्वी रेलकी भांति चलते समय न तो हिलती-डोलती है और न घरघराती है इससे हमें उसके चलनेको ज्ञान बिलकुल भी नहीं होता, गर्मी सर्दी पृथ्वीके सूर्य्यके चारों ओर घूमनेके कारण होते है, क्योंकि इसका मेरुदंड (axis) ठीक सीधा नही है बल्कि कुछ तिरछा है इस वास्ते कभी पृथ्वीके उत्तरी भागमें दिन बड़े होते हैं और कभी दक्षिणी भागमें बड़े होते हैं जब दिन बड़े होते हैं तब गर्मीका मौसम आता है और जब रात बड़ी होती हैं तब जाड़ा आता है। पृथ्वीका तल ठंडा है परन्तु इसके भीतर काफी गर्मी है जिसके कारण इसकी तलका तापक्रम बर्फके समान नहीं होता। जिस दिन अन्दरकी गर्मी क्षीण होजावेगी उस दिन पृथ्वीपर बड़ी भारी सर्दी होगी।हम नहीं कह सकते कि उस समय जीव भी इसपर रह सकेंगे कि नहीं।

पृथ्वी सूर्य्यसे ६३००००० मील है। वहांसे रोशनी जिसकी चाल प्रति सैकेंड १८५००० मील है हमारी पृथ्वी तक आनेमें आठ मिनट लेती है यदि एक डाक गाड़ी यहांसे ५० मील प्रति घंटाके हिसाबसे रात दिन सूर्य्यकी ओर चले तो वह ३२५ वर्षमें पहुँचेगी। यानी अकबर बादशाहके ज़मानेकी चली रेल कहीं अब जाकर सूर्य्यमें पहुँचती। सूर्य्य पृथ्वीसे इतना बड़ा है जितना कि मिट्टीका एक बड़ा घड़ा एक मटरके दानेके सामने। वही डाक गाड़ी जो कि पृथ्वीके चारों ओर २१ दिनमें हो आवेगी सूर्य्यके चक्करमें उसको ७ वर्ष लगेंगे। सूर्य्यका वज़न पृथ्वीसे ३३२००० गुना है। इससे आप देख सकते हैं कि हमारी पृथ्वी सूर्य्यके सामने कितनी तुच्छ है और इस पृथ्वीके सामने हम कितने तुच्छ हैं। फिर भी परमात्माने मनुष्यको इतनी बुद्धि दी है जिसके प्रतापसे वह बैठा बैठा सारी सृष्टि की खोज करता रहता है।

मद्यानार्द्र और कीतोन

(Aldehydes & Ketones)

[ले० श्री सत्य प्रकाश, बी. एस सी. विशारद]
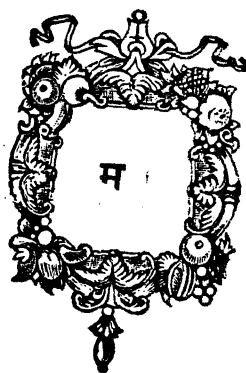
मद्योंका वर्णन करते हुए कहा जाचुका है कि प्रथम-मद्योंके ओषदीकरण करने से जो यौगिक मिलता है उसे मद्यानार्द्र कहते हैं. इन मद्यानार्द्रों में मद्यकी अपेक्षा उदजनके दो परमाणु कम होते हैं। दारील मद्यके ओषदीकरणसे जो मद्यानार्द्र मिलता है उसे पिपील-मद्यानार्द्र कहते हैं:—

```
   उ                    उ
   |                    |
उ—क—ओ उ + ओ = उ—क=ओ + उ₂ ओ
   |
   उ                 पिपील मद्यानार्द्र
दारीलमद्य
```
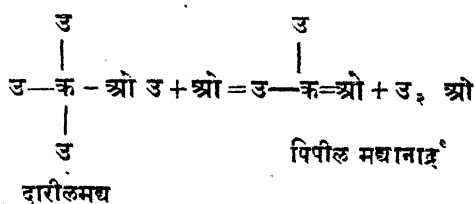
इस प्रकार मद्यके दो उदजन परमाणु एक ओषजन-परमाणुसे संयुक्त होकर जलके रूपमें पृथक् होजाते हैं। इसलिये इन यौगिकोंका नाम मद्यानार्द्र (जल रहित मद्य), पड़ा है। ज्वलील मद्य इसी प्रकार सिरकमद्यानार्द्र देता है।

$$\text{क उ}_3\text{.क} \begin{matrix} \text{उ} \\ | \\ - \\ | \\ \text{उ} \end{matrix} \text{ओ उ} + \text{ओ} = \text{क उ}_3\text{.क} < {}^{\text{उ}}_{\text{ओ}} + \text{उ}_2 \text{ ओ}$$
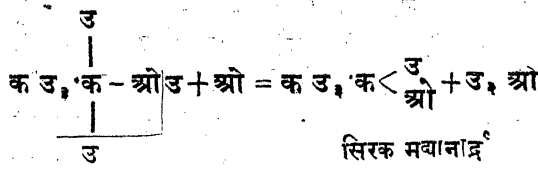
सिरक मद्यानाद्र

इसी प्रकार जितने प्रथम मद्य हैं वे ओषदीकरण द्वारा मद्यानाद्र देते हैं। इन मद्यानाद्रोंका सूत्र—$\text{क}_{\text{न}}\text{उ}_{2\text{न}}$ ओ-है। नीचेकी सारिणीमें कुछ मद्यानाद्र कथनांकों सहित दिये जाते हैं।

मद्यानाद्र	सूत्र	कथनांक
पिपील मद्यानाद्र	उ. क उ ओ	—
सिरकमद्यानाद्र	क उ_3. क उ ओ	२१°
अग्रमद्यानाद्र	$\text{क}_2 \text{ उ}_5$. क उ ओ	४९°
नवनीतमद्यानाद्र	$\text{क}_3 \text{ उ}_7$. क उ ओ	७४°
वलमद्यानाद्र	$\text{क}_4 \text{ उ}_9$. क. उ ओ	१०२°

इस सारिणीको देखनेसे पता चलता है कि प्रत्येक मद्यानाद्रके अन्तमें—क उ ओ, या-क—उ
$\begin{matrix} \| \\ \text{ओ} \end{matrix}$
मूल है। इस मूलको मद्यानाद्र मूल कहते हैं। मद्यानाद्रोंमें ज्यों ज्यों कर्बनकी संख्या बढ़ती जाती है, त्यों त्या उनका कथनांकभी बढ़ता जाता है। इन मद्यनाद्रोंमें पिपील मद्यानाद्र और सिरक मद्यानाद्र अधिक उपयोगी हैं अतः इनका ही वर्णन यहाँ दिया जायगा।

पिपील मद्यानाद्र उ. क उ ओ

यह कहा जाचुका है कि दारीलमद्यके ओषदीकरण से पिपील मद्यानाद्र बनाया जासकता है। इस ओषदीकरणकी अत्यन्त सरलविधि यह है कि एक चञ्चुक (कांचके गिलास) में थोड़ा सा दारीलमद्य लो और चञ्चुकके मुंह पर कांचकी एक छोटी पतली छड़ रखदो। इस छड़में परुरौप्यम्‌का एक तार इस प्रकार लपेटोकि उसका नीचा सिरा मद्यके ऊपर लटक सके। तारको गरम करके लालकर-लो और फिर चंचुकमें इसी विधिसे शीघ्र ही लटका दो। ऐसा करनेसे परुरौप्यम्‌के तारकी लाल चिनगारी नहीं बुझेगी और मद्यकी वाष्पें वायुके ओषजन द्वारा ओषदीकृत होकर मद्यानाद्रमें परिणत होजायंगी। मद्यानाद्रकी कटु गंध सुंघाई पड़ेगी।

अधिक मात्रामें यह प्रयोग इस प्रकार किया जासकता है—कांचकी एक कुप्पीमें दारीलमद्य लो। कुप्पीके मुंहमें एक काग कसो जिसमें दो छेद हों। एक छेदमें काँचकी समकोण नली जिसका एकसिरा मद्यमें डूबता हो और दूसरा सिरा कुप्पी के बाहरहो लगाओ। दूसरे छेदमें एक छोटी समकोण नली लगादो। इसका सिरा कागके केवल नीचे तक ही पहुँचनेकी आवश्यकता है। मद्यमें डुबाना नहीं चाहिये। इस छोटी समकोण नलीके दूसरे सिरेको भस्मक नलिकासे संयुक्तकर दो। भस्मकनलीमें परुरौप्यिद एस बेस्टस (platinised asbestos) भरदो। एसबेस्टसको परुरौप्यिक हरिदके घोलमें सिञ्चित करके धीरे धीरे जलानेसे परुरौप्यिद एसबेस्टस बनाया जासकता है। भस्मक नलीका दूसरा सिरा पहलेके समान ही एक दूसरी कांचकी कुप्पीसे संयुक्त करदो। इसके मुंहमें भी दो छेद वाला काग और दो समकोण नलिकायें लगी होनी चाहिये। इस कुप्पीको बर्फमें रखकर ठंडा रखना चाहिये। पहली कुप्पीकी बड़ी समकोण नली द्वारा वायुको इस प्रबन्धमें प्रवाहित करो। परुरौप्यिद एस बेस्टसको गरम करके एक बार लालकरदो। पहली कुप्पीको जल कुंडी पर गरम करके ४०° श तापक्रम करलो। यदि वायुका प्रवाह समुचित तीव्र है तो परुरौप्यिद ऐसबेस्टस बिना और गरम किये ही बराबर लाल (रक्त तप्त) रहेगा। बर्फमें रखी हुई बोतलमें पिपील मद्यानाद्र और कुछ अपरिवर्त्तित मद्य स्रवित हो जायगा।

पिपील मद्यानाद्रके घोलको यदि शून्यमें, या तीव्र गन्धकाम्ल की विद्यमानतामें वाष्पीभूत करें तो एक प्रकारका रवेदार सफ़ेद चूर्ण प्राप्त होगा

जिसे पर-पिपील मद्यानार्द्र (para formaldehyde) कहते हैं। यह पिपील मद्यानार्द्रका बहुरूपी (polymerised) पदार्थ है जिसका सूत्र (क. उ२ओ)न है। पिपील मद्यानार्द्र वायव्य पदार्थ है जो—२१° पर द्रवीभूत और—६२° पर ठोसाकार होता है। यह रोगकीटाणुओंके नाश करनेके काममें आता है। १५ प्रति. शत. दारीलमद्य और जलमें ४० प्रति. शत घुला हुआ पिपील मद्यानार्द्रका घोल पिपीलिन (formalin) कहलाता है। व्यापारिक रसायनमें भी इसके बहुत उपयोग होते हैं।

सिरकमद्यानार्द्र, क उ३, क उ ओ

ज्वलील मद्यको तीव्र गन्धकाम्ल और पांशुज द्विरागेत द्वारा ओषदीकृत करनेसे सिरकमद्यानार्द्र प्राप्त होसकता है—

३ क२उ५ओ उ + पां२रा२ ओ७ + ४ उ२ गओ४ = ३. क उ३ क उ ओ + रा२ (गओ४)३ + पां२ ग ओ४ + ७ उ२ ओ

एक कुप्पीमें टोंटीदार कीप, भपका, संचक आदि लगाओ। कुप्पीमें ५० ग्राम पांशुजद्विरागेत का चूर्ण लो और २१० घन श. मी जल डालो। तत्पश्चात् ६० घन. श. मी निरपेक्ष मद्य और ३८ घन. श. मी तीव्र गन्धकाम्ल का मिश्रण धीरे धीरे कुप्पी में डालो और प्रक्रिया आरम्भ करनेके लिए थोड़ा सा गरम करो। इसके पश्चात् प्रक्रिया द्वारा स्वयं ही बहुत सा ताप जनित होगा और बाहरसे गरम करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। संचकमें ५० घन. श. मी. के लगभग सिरकमद्यानार्द्र स्रवित हो जावेगा।

सिरकमद्यानार्द्र बेरङ्गका कटु गन्धवाला द्रव पदार्थ है। यह जलमें घुलनशील है। इसका कथनाङ्क २१° है। यदि थोड़ेसे मद्यानार्द्रमें तीव्र गन्धकाम्लकी एक बूंद डाल दी जाय तो बहुत गरमी उत्पन्न होगी और एक ऐसा द्रव पदार्थ प्राप्त होगा जो जलमें अनघुल होगा। इसे परमद्यानार्द्र (paraldelyde) कहते हैं। इस बेरङ्गके द्रवका कथनांक १२४° है। सिरकमद्यानार्द्रका यह बहुरूपी पदार्थ है जिसका सूत्र (क उ३ क उ ओ)३ है। इसका सङ्गठन निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है:—
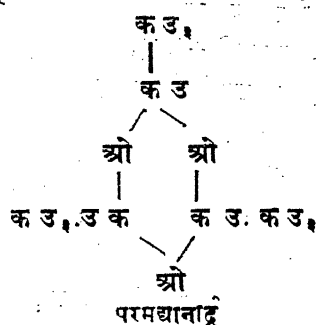
परमद्यानार्द्र

मद्यानार्द्र मूल – क उ ओ परमद्यानार्द्रके इस संगठनमें लुप्त (आबद्ध) होगया है अतः परमद्यानार्द्रमें साधारण मद्यानार्द्रोंके गुण विद्यमान नहीं हैं।

सिरकमद्यानार्द्रके दो अणु पांशुजकर्बनेतकी विद्यमानतामें निम्न प्रकार बहुरूपी हो जाते हैं। इस प्रक्रिया से जो पदार्थ प्राप्त होता है उसे मद्यानोल (aldol) कहते हैं—

क उ३ क उ ओ + क उ३ क उ ओ
= क उ३ क उ (ओ उ) क उ२ क उ ओ
मद्यानोल

हरल
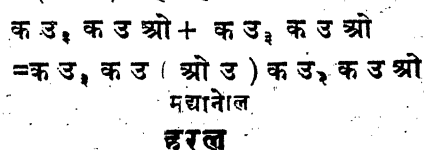
हरोपिपीलका वर्णन करते हुये हरलकी ओर निर्देष किया गया था। सिरकमद्यानार्द्रके दारील मूल–क उ३ के उद्जन परमाणुओंके स्थानमें हरिन् के तीन परमाणु स्थापित कर दिये जायं तो हरल यौगिक बन जायगा—

क उ३ क उ ओ ; क ह३ क उ ओ
सिरकमद्यानार्द्र हरल
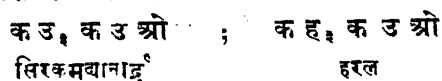
ज्वलीलमद्यमें हरिन् वायव्य प्रवाहित करके लीबिग नामक वैज्ञानिकने सं० १८८६ वि० में इसे बनाया था और अब भी इसी विधिसे व्यापारिकमात्रामें तैयार किया जाता है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

क उ, क उ२ ओ उ + ह२

ज्वलील मद्य

=क उ, क उ ओ + २ उ ह

सिरकमद्यानार्द्र

क उ, क उ ओ + ३ ह२

=क ह, क उ ओ + ३ उ ह

हरल

इस प्रक्रियामें कुछ हरल मद्यसे संयुक्त होकर हरल मद्येत निम्न प्रकार बनाता है:—

क ह, क उ ओ + क२ उ५ ओ उ

=क ह, क उ (ओ उ) ओ क२ उ५

हरल मद्येत

जिसे तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा स्रवित करनेसे द्रव हरल प्राप्त हो सकता है।

क ह, क उ (ओ उ) ओ क२ उ५ + उ२ ग ओ४

=क ह, क उ ओ + क२ उ५ उ ग ओ + उ२ ओ

यह तीव्र गन्धका तैलके समान द्रव है जिसका कथनांक ९८° है। बहुधा जलके अणुके साथ संयुक्त होकर एक रवेदार श्वेत पदार्थमें परिणत हो जाता है जिसे हरल उदेत, क ह, क उ (ओ उ)२, कहते हैं। इसको सैन्धक उदौषिद घोलके साथ गरम करनेसे हरोपिपील (क्लोरोफार्म) बना सकते हैं—

सै ओ | उ + क ह, | क उ ओ=

क उ ह, + सै ओ क उ ओ

हरोपिपील सैन्धक पिपीलेत

हरलके समान अरुणल, क रु, क उ ओ और नैलल, क नै, क उ ओ भी हो सकते हैं।

कीतोन

जिस प्रकार प्रथम मद्योंको ओषदीकृत करनेसे मद्यानार्द्र प्राप्त होते हैं वैसे ही द्वितीय मद्यों का ओषदीकरण करनेसे जो यौगिक मिलते हैं उन्हें कीतोन कहते हैं। द्वितीय अग्रील मद्यका ओषदीकरण करनेसे द्विदारील कीतोन मिलता है जिसे सिरकोन भी कहते हैं:—

क उ, क उ,

| |

६ उ, — क — ओउ + ओ=कउ, — क=ओ

|

उ सिरकोन

मद्यानार्द्रों का सामान्य स्वरूप $_{उ}$ >क ओ है। कीतोन और मद्यानार्द्र में भेद केवल इतना ही है कि इसमें उ के स्थानमें एक मद्यीलमूल और लग गया है। कीतोनोंका सामान्यरूप $^{र}_{र}$> क ओ है।

द्वितीय मद्योंके ओषदीकरण द्वारा तो कीतोन बनाये जा सकते ही हैं, पर इनके बनानेकी एक और भी विधि है। खटिक सिरकेत का शुष्क स्रवण करनेसे सिरकोन बनाया जा सकता है—(ख' से खटिक के आधे परमाणुसे तात्पर्य है)

क उ, क ओ : ओ ख' कउ,

...... = > क ओ + खकओ,

क उ, : क ओ ओ ख' क उ, खटिक कर्बनेत

सिरकोन

यदि खटिक सिरकेत और खटिक पिपीलेत के मिश्रणको गरम किया जाय तो सिरक मद्यानार्द्र प्राप्त हो सकता है।

क उ, क ओ : ओ ख'

...... = क उ, क उओ + खकओ,

उ : क ओ ओ ख'

सिरक मद्यानार्द्र

यह विधि बहुत ही सामान्य है। खटिक सिरकेत और खटिक अग्रोनेत को गरम करनेसे दारील ज्वलील कीतोन प्राप्त हो सकता है—

क उ, क ओ ओ ख' = क उ,

क२ उ५ क ओ ओ ख' = क२ उ५ > क ओ + ख क ओ,

सिरकोन इन सबमें मुख्य है। इसको खटिक सिरकेत या कभी कभी सीस सिरकेतका शुष्क स्रवण करके बनाते हैं। यह बेरंगका सुगन्धित द्रव पदार्थ है। कथनांक ५६° श है। पानी में यह मिलन शील है। इसमें नैलिन्का घोल और क्षार सैन्धक उदौषिद डालकर गरम करनेसे नैलोपिपीलके पीले रवे मिलेंगे। सैन्धक नोषोप्रशिदके घोलमें सिरकोनके बहुत हलके घोल की कुछ बूँदें डालकर

सैन्धक उदौषिद घोल द्वारा क्षारीय करने पर गुलाबी लाल रंग प्राप्त होता है। इस विधिसे सिरकोनकी पहिचान की जाती है।

मद्यानार्द्र और कीतोनोंके समानगुण

अनेक गुणोंमें मद्यानार्द्र और कीतोन मिलते जुलते हैं। कुछ समानतायें यहां दिखाई जावेंगी।

(१) मद्यानार्द्र और कीतोन दोनों अवकृत होने पर क्रमानुसार प्रथम और द्वितीय मद्य देते हैं।

कउ$_3$ / उ >क ओ + उ$_2$ = क उ$_3$ / उ >क< ओ उ / उ या

सिरकममद्यानार्द्र

क उ$_3$ क उ$_2$ ओ उ　उज्वलीलमद्य

क उ$_3$ / क उ$_3$ >क ओ + उ$_2$ = (क उ$_3$)$_2$ क उ ओ उ

सिरकोन　　　द्वितीय अग्नील मद्य

२. उद श्यामिकाम्ल, उकनो, के साथ सिरक-मद्यानार्द्र और सिरकोन दोनों ही युक्त यौगिक बनाते हैं जिन्हें श्यामउद्रिन कहते हैं—

क उ$_3$ / उ >क ओ + उ क नो = क उ$_3$ / उ >क< ओ उ / क नो

सिरक मद्यानार्द्र श्यामउद्रिन

क उ$_3$ / क उ$_3$ >क ओ + उ क नो = क उ$_3$ / क उ$_3$ >क< ओ उ / क नो

३. सैन्धक अर्धगन्धित, सै उ ग ओ$_3$ के साथ दोनोंके अर्धगन्धित बनते हैं—

क उ$_3$ / उ >क ओ + सै उ ग ओ$_3$ = क उ$_3$ / उ >क< ओ उ / ग ओ$_3$ सै

क उ$_3$ / क उ$_3$ >क ओ + सै उ ग ओ$_3$ = क उ$_3$ / क उ$_3$ >क< ओ उ / ग ओ$_3$ सै

४. उदौषीलअमिन, नोउ$_2$ ओउ, के साथ दोनों के संयोगसे जलका एक एक अणु पृथक् हो जाता है और ओषिम नामक यौगिक बनाते हैं।

क उ$_3$ / उ >क ओ + नो उ$_2$ ओ उ

= क उ$_3$ / उ >क : नो ओ उ + उ$_2$ ओ

सिरकमद्यौषिम

क उ$_3$ / क उ$_3$ >क ओ + नो उ$_2$ ओउ

= क उ$_3$ / क उ$_3$ >क: नो ओ उ + उ$_2$ ओ

सिरकोषिम

५. उदाजीविन, नो उ$_2$ नो उ$_2$ अथवा द्विदीप्तील उदाजीविन क$_6$ उ$_5$ नो उ नो उ$_2$ के साथ संयुक्त होकर दोनों उदाजीवोन नामक यौगिक बनाते हैं और जलका एक अणु पृथक् होजाता है। द्विदीप्तील उदाजीविनका प्रयोग कीतोन और मद्यानार्द्रोंकी पहिचानके लिये बहुत किया जाता है।

क उ$_3$ / उ >क ओ + उ$_2$ नो उ नो क$_6$ उ$_5$

= क उ$_3$ / उ >क : नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$ + उ$_2$ ओ

सिरकमद्यानार्द्र उदाजीवोन

क उ$_3$ / क उ$_3$ >क ओ + उ$_2$ नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$

= कउ$_3$ / कउ$_3$ >क:नो. नो उ क$_6$ उ$_5$ + उ$_2$ ओ

सिरकोन उदाजीवोन

इस कामके लिये परख नलीमें ३cc सिरकाम्ल लो और उसमें दो बूंदे द्विदीप्तील उदाजीविनकी घोलो। घोलमें तिगुना पानी डालकर हलका करलो सिरकोन या मद्यानार्द्रको पानीमें घोलो। घोलमें द्विदीप्तील उदाजीविनका घोल डालो। ऐसा करनेसे उदाजीवोनका अवक्षेप या धुंधला द्रव प्राप्त होगा।

मद्यानार्द्र और कीतोन में भेद

इन समानताओंके होते हुए भी मद्यानार्द्र और कीतोनोंमें कुछ भेद है। मद्यानार्द्र स्वयं दूसरे यौगिकोंमेंसे ओषजन ग्रहण करके शीघ्र ही अम्लों में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार मद्यानार्द्रोंमें अवकरण करनेका गुण है। मद्यानार्द्र मूल—क उ ओ ओषजन ग्रहण करके-क ओ ओ उ मूलमें परिणत हो जाता है। यह मूल कर्बोषील मूल कहलाता है और कार्बनिक अम्लोंका चिह्न है। कीतोनोंमें इस प्रकारका ओषदीकरण नहीं हो सकता है।

(१) इस गुणके कारण मद्यानार्द्रको ताम्रिक ओषिदके क्षारीय घोलके साथ गरम करने पर ताम्रस ओषिदका नारङ्गी अवक्षेप प्राप्त होगा—

$$\begin{matrix} \text{ता ओ} \\ \text{ता ओ} \end{matrix} + \text{उ} \overset{\text{क उ}_3}{\underset{|}{\text{क:ओ}}} = \begin{matrix}\text{ता}\\\text{ता}\end{matrix}>\text{ओ} + \text{ओउ} - \overset{\text{क उ}_3}{\underset{|}{\text{क=ओ}}}$$

सिरकमद्यानार्द्र सिरकाम्ल
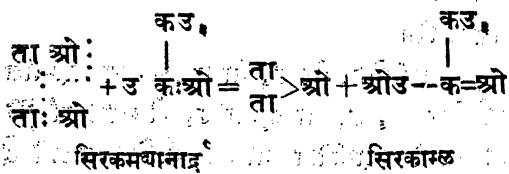
इस प्रक्रियाको फेहलिंग-घोल (Fehlings Solution) द्वारा बहुधा किया जाता है। फेहलिंग घोल इस प्रकार बनाते हैं (१) रोशील लवण (अर्थात् सैन्धक पांशुज द्रमलेत) ७ ग्राम को १४ घन. श. मी जलमें घोलो और २ ग्राम सैन्धक उदौषिदको इसमें डालकर ६ घन. श. मी जल और डालकर २० घन. श. मी घोल बना लो (२) ३ ग्राम तूतिये को २० घन. श. मी पानीमें घोल लो और तूतिये के इस घोलमें १ बूंद गन्धकाम्ल भी डाल दो। रोशील लवण और तूतियेके घोलोंको अलग अलग रक्खो।

परखनलीमें सिरकमद्यानार्द्रका घोल लो और उसमें तूतिये और रोशील लवण दोनोंकी बराबर मात्रा डालकर गरम करो। थोड़ी ही देरमें ताम्रस ओषिदका नारङ्गी अपक्षेप प्रकट होने लगेगा।

(२) मद्यानार्द्र रजतनोषेतके घोलको भी अवकृत कर सकते हैं और रजतके कण परखनली की सतह पर जमा होने लगेंगे और थोड़ी देरमें रजत-दर्पण बन जायगा अर्थात् जिस स्थानपर चांदीके कण जमा होजायंगे वह स्थान दर्पणके समान चमकने लगेगा। प्रयोग इसप्रकार करते हैं। रजत नोषेतके घोलमें एक बूंद अमोनिया-के हलके घोलकी डालो। अमोनिया इतना न डालना चाहिये कि कोई श्वेत अवक्षेप प्राप्त होजाय। इस घोलको सिरक मद्यानार्द्र के घोलके साथ गरम करो। परख नलीको गरम पानीमें रखकर गरम करना अधिक उचित है। थोड़ी देरमें रजतदर्पण परखनलीमें प्रकट होने लगेगा। प्रक्रियामें यह समझा जासकता है कि रजतनोषेत रजतओषित का काम कररहा है—

$$\text{र}_2\ \text{ओ} + \text{कउ}_3\ \text{क उ ओ} = 2\text{र} + \text{कउ}_3\ \text{क ओ ओउ}$$

सिरकाम्ल
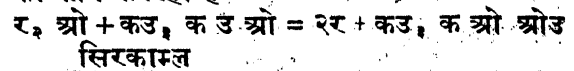
(३) मद्यानार्द्रकी तीसरी पहिचान यह है कि ये शिफ्स-रसको बैंजनी रंग प्रदान करते हैं। शिफ्स-रस मैजण्टा रंगको गन्धक द्वि ओषिद द्वारा बेरंगा करके बनाते हैं। इस रसमें मद्यानार्द्र की एक बूंद डालते ही बैंजनी रंग प्रकट होजायगा।

कीतोनोंमें उपर्युक्त प्रकारका ओषदीकरण सम्भव नहीं है। ओषदी करण होनेपर कीतोन विभाजित होजाते हैं और ओषदीकरण द्वारा जो अम्ल प्राप्त होता है उसमें कीतोनकी अपेक्षा कर्बन-के परमाणुओंकी संख्या कम होती है—

$$\overset{\text{क उ}_3}{\underset{\text{क उ}_3}{\text{क ओ}}} + {}_2\text{ओ}_2 = \overset{\text{क उ}_3}{\text{क}} \begin{matrix}\text{ओ}\\\text{ओउ}\end{matrix} + \text{क ओ}_2 + \text{उ}_2\ \text{ओ}$$
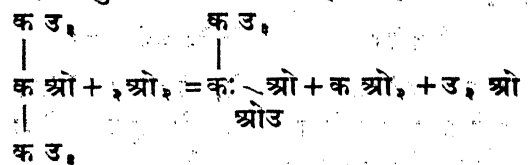
मद्यानार्द्रोंके ओषदीकरणसे जो अम्ल मिलतेहैं उनमें कर्बन परमाणुओंकी संख्या उतनीही होती है जितनी मद्यानार्द्रमें थी।

(४) घुलीहुई उदहरिकाम्ल वायव्यकी विद्यमानतामें मद्यानार्द्र मद्योंसे संयुक्त होकर युक्त यौगिक बनाते हैं। उन्हें सिरकम कहते हैं। सिरकयो मद्यानार्द्र निम्न प्रकार मद्यके दो अणुओंसे संयुक्त होते हैं—

$$\text{क उ}_3\ \text{क उ}\ \text{ओ} + \begin{matrix}\text{उ}\ \text{ओ क}_2\ \text{उ}_5\\ \text{उ}\ \text{ओ क}_2\ \text{उ}_5\end{matrix} = \text{क उ}_3\ \text{क उ}\ (\text{ओ क}_2\ \text{उ}_5)_2 + \text{उ}_2\ \text{ओ}$$

सिरकम

(५) मद्यानार्द्र अमोनियाके साथ मद्यानार्द्र अमोनिया नामक यौगिक बनाते हैं—

$$\text{क उ}_3\ \text{क उ ओ} + \text{न उ}_3 = \text{क उ}_3\ \text{क उ} \begin{matrix}\text{ओ उ}\\ \text{नो उ}_2\end{matrix}$$

सिरकमद्यानार्द्र अमोनिया
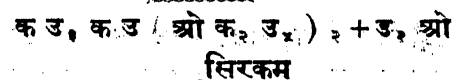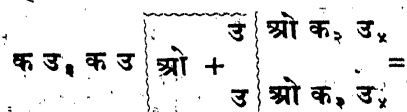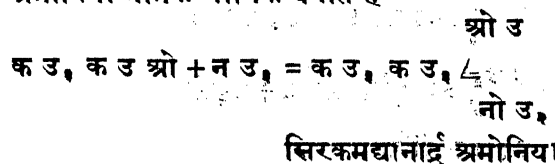
जल

[लेखक—श्री० सत्यप्रकाश, बी. एस-सी., विशारद ।]

ल बहुत ही साधारण पदार्थ है। साधारण इसलिए कि भूमंडलका तीन चौथाई भाग पानी है। किसीको इसकी कमी नहीं है। नदियों तालाबों, कुओं और समुद्रोंमें इसकी अगाध मात्रा विद्यमान है। वर्ष भरमें हमारे देशमें एक बार वर्षा ऋतु आती है और उसमें मूसलाधार पानी बरसने लगता है। बादल भी इस पानीके ही दूसरे रूप हैं। कभी कभी ओले पड़ने लगते हैं। ये ओले भी पानी का रूपान्तर हैं। बर्फ, भाप और पानी तीनों रासायनिक रूपमें एकही है जलके अणु जब परस्परमें बहुत निकट आ जाते हैं तो वे ठोसाकार हो जाते हैं। इसे हो बर्फ कहते हैं। जब ये अणु बहुत दूर हो जाते हैं तो ये भाप बनजाते हैं। बर्फ ठण्डी क्यों होती है, और भाप गरम क्यों होती है? बात यह है कि जल आदि पदार्थों के अणु बहुत ज़ोरोंसे नाचाकरते हैं जिस प्रकार हमारी पृथ्वी घूमती है। ये इतनी शीघ्रतासे घूमते हैं कि हम इन्हें देख नहीं सकते। इस नाचनेमें जो शक्ति लगती है वह ताप और शीतके रूपमें प्रकट हो जाती है। कम्पनकी गति यदि धीमी पड़ जाय तो पदार्थका तापक्रम कम हो जायगा और यदि गति तीव्र हो जाय तो तापक्रम बढ़ जायगा। ठोस बर्फके अणुओंकी गति अवकाश कम मिलनेके कारण धीमी पड़ जाती है। इसी लिये बर्फ ठण्डी होती है। भापके परमाणुओंके कम्पनकी गति अत्यन्त तीव्र होती है। इसलिये इसका तापक्रम बहुत अधिक होता है।

प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया गया है कि जलमें उद्जन और ओषजन नामक दो तत्त्व विद्यमान हैं। इस बातको सिद्ध करनेकी दो विधियां हैं—१ विश्लेषण विधि, २ संश्लेषण विधि। तीन प्रकारके विश्लेषण प्रयोग पहले दिये जा चुके हैं:—

(क) जलका विद्युत् द्वारा विश्लेषणकरके—इस प्रयोगके लिये विद्युत् घटमें जल लेते हैं और गन्धकाम्ल जलमें घोल देते हैं। विद्युत् घटोंके दोनों ध्रुवों पर एक एक परखनली जलसे भरकर उलटी पानीमें डुबा देते हैं। तत्पश्चात् विद्युत् धारा प्रवाहित की जाती है। एक परखनलीमें उद्जन और दूसरेमें ओषजन संग्रहीत होने लगता है। उद्जनका आयतन ओषजनकी अपेक्षा दुगुना होता है। इससे सिद्ध है कि आयतनके हिसाबसे जलमें उद्जन ओषजनकी अपेक्षा दुगुना है।

(ख) सैन्धकम् धातुको जलमें छोड़नेसे उद्जन निकलने लगता है और सैन्धकम् सैन्धक उदौषिदमें परिणत होजाता है। इससे भी स्पष्ट है कि पानीमें उद्जन और ओषजन तत्त्व हैं।

(ग) रक्त तप्त लोह चूर्ण पर भाप प्रवाहित करनेसे भी उद्जन पृथक् होजाता है और लोह चूर्ण लोह ओषिदमें परिणत हो जाता है।

इन प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि जल उद्जन और ओषजन नामक तत्वोंका यौगिक है। उद्जन और ओषजनके संश्लेषणसे पानी निम्न प्रकार बनाया गया है।

(क) कांचके एक गोलेमें शून्य करके दो भाग (आयतनसे) उद्जन और एक भाग ओषजन भरो। गोलेमें विद्युत् संयोग होना चाहिये। विद्युत् धारा प्रवाहित करके चिनगारी उत्पन्न करो। चिनगारीके लगतेही ओषजन और उद्जन विस्फुटनके साथ संयुक्त होंगे और गोलेके सतहपर जलकी बूँद दिखाई पड़ेंगी। गोलेमें अब उद्जन और ओषजन कुछ न रह जायगा। केवल शून्य रहेगा। कैवेण्डिशने इसी प्रकारका प्रयोग किया था।

इसी प्रयोगको इस प्रकार परिवर्त्तित और परिवर्धित कर दिया गया है। इसके लिये आयतन मापक (Eudiometer) यन्त्र काममें लाते हैं इस यन्त्रमें निरात्र लगी हुई एक नलिका

होती है जिसका एक सिरा बन्द रहता है। बन्द सिरेके पास विद्युत्तार लगे होते हैं जिनसे चिनगारी उत्पन्न की जा सकती है। इस नलामें पारदभर कर एक थालीमें कांचके ढकनेसे दबाकर उलटा रखते हैं। फिर इसमें शुद्ध ओषजन की ज्ञातमात्रा प्रविष्ट कराते हैं। तत्पश्चात् उद्जन उचिताधिक मात्रामें इसमें प्रवेश करते हैं। तदनन्तर विद्युत् चिनगारी द्वारा उद्जन और ओषजनका संयोग कराते हैं। इस समय आयतन मापक को अच्छी तरह पारद भरी थालीके अन्दर दबाये रखना चाहिये। अब दबाव-को कम करनेसे पारा आयतन मापकमें चढ़ेगा। आयतन अब फिर पढ़ लना चाहिये, इससे पता चल जायगा कि कितना उद्जन रह गया है।

उदाहरण—सामान्य दबाव और तापक्रम पर ३० आयतन ओषजन और ८० आयतन उद्जन यन्त्रमें प्रविष्ट किया गया और बादको २० आयतन उद्जन शेष रह गया।

अतः (८०-२०)=६० आयतन उद्जन ३० आयतन ओषजनसे संयुक्त होगया। इससे सिद्ध है कि पानी बनानेके लिये २ आयतन उद्जन और एक आयतन ओषजन की आवश्यकता है।

(ग) संश्लेषणका एक प्रयोग बरज़ीलियस और डूलंग ने सं० १८७७ वि० में इस प्रकार किया था। उन्होंने ताम्र ओषिदकी ज्ञात मात्रा ली और उसको गरम किया और ताम्र ओषिद पर उद्जन प्रवाहित किया। यह उद्जन ताम्र ओषिदके ओषजनसे संयुक्त होकर जल बनायेगा। यह जल खटिक हरिद और तीव्र गन्धकाम्लके गोलोंमें अभिशोषण कर लिया गया। प्रयोगके पूर्व और प्रयोगके पश्चात् इन गोलोंको तौलनेसे पता चल जायगा कि कितना पानी बना है। ताम्र ओषिद को फिर तौलनेसे पता लगाया जा सकता है कि इसका कितना ओषजन जल बनानेमें उपयुक्त हुआ है। यह ध्यान रखना चाहिये कि उद्जन बिलकुल शुद्ध हो। इसके शुद्ध करनेके लिये, उद्जनको ताम्र ओषिदमें प्रवाहित करनेसे पूर्व सीसनोषेत, रजत-गन्धेत, पांशुजउदौषिद्, और स्फुर पंचौषिद्से भरी हुई चूल्हाकार नलियोंमें होकर प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे उद्जन (जो गन्धकाम्ल और दस्तमसे बनाया जाता है) की अशुद्धियां—उद्जन गन्धिद, गन्धक द्विओषिद, नोषजनके ओषिद, कर्बन द्विओषिद, जल उद्जन संक्षीणिद, आदि दूर हो जाती हैं।

उदाहरण—१. ताम्र ओषिदका पूर्व भार=११·५६ ग्राम

२. ... ... पिछली भार=१०·४० ग्राम

उपयुक्त ओषजन=१·१६ ग्राम

३. गन्धकाम्ल और खटिक-हरिद्वाली नालियोंका भार=५०·४६ ग्राम

पिछला भार=५१·७६५ ग्राम

∴ जल =१·३०५ ग्राम

इस प्रकार १·३०५ ग्राम भाग जलमें १.१६ ग्राम ओषजन है। तो इसमें उद्जन (१·३०५-१·१६)= ०·१४५ ग्राम होगा।

∴ पानीमें ओषजन उद्जन की अपेक्षा (भार से) $\frac{१·१६}{०·१४५}$=८ गुना है।

पानी की भाप उद्जनकी अपेक्षा ९ गुना भारी होती है अर्थात् यदि दो समान आयतनके गोलों में से एकमें भाप भरी जाय और दूसरेमें उद्जन और दोनोंका दबाव और तापक्रम एक हो तो भाप का भार उद्जनके भारका ९ गुना होगा।

अबतक हमने पानीके विषयमें तीन बातें बताई हैं:—

(१) पानीमें आयतनके हिसाबके दो आयतन उद्जन और एक आयतन ओषजन है।

(२) पानीमें भारके हिसाबसे ८ भाग ओषजन और एक भाग उद्जन है।

(३) पानीका वाष्पघनत्व ९ है।

उद्जनका परमाणु भार १ है और ओषजनका १६। इन सब परिणामों पर ध्यान देते हुए कहा जा सकता है कि पानीका सङ्गठन $उ_२$ ओ है।

पानीके भौतिक गुण

यह विषय भौतिक विज्ञानका है ! कुछ साधारण और उपयोगी गुण यहां दिये जावेंगे। सामान्य तापक्रम पर पानी द्रव, बेरङ्गका पदार्थ है। इसमें न कुछ स्वाद होता है, न गन्ध। पर अशुद्ध पानी में कुछ स्वाद प्रतीत होगा। नदियों का पानी, या कुएके पानीमें कुछ खनिज पदार्थ मिले होते हैं, इनमें कर्बन द्वि ओषिद वायव्यकी भी कुछ मात्रा घुली होता है। मेघका पानी इन पानियोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होता है। पर कभी-कभी बरसते समय वायु मण्डलकी कुछ अशुद्धियां पानी में मिल जाती हैं। स्रवित करके पानी शुद्ध बनाया जा सकता है। स्रवणके लिए एक कुप्पीमें पानी भरो। इसके मुँहमें एक भपका लगा दो। पानीको उबाल कर भापमें परिणत करो। यह भाप भपकेमें ठण्डी हो जायगी; और द्रवित होकर बूँद-बूँद करके स्रवित की जा सकती है।

शुद्ध पानीका हिमांक ०°श है और इसका क्वथनांक १००°श है। पर यदि पानीमें कुछ लवण आदि अशुद्धियां हों तो हिमांक शून्यसे भी कम हो जायगा और क्वथनांक १००°श से बढ़ जायगा।

पानीको ज्यों ज्यों ठण्डा करते जायँ त्यों त्यों इसमें संकोच होता जायगा अर्थात् इसका आयतन कम होता जायगा, पर ४°श तक ही यह संकोच होगा। ४°श से और कम तापक्रम करने पर पानीमें फिर प्रस्तार आरम्भ होगा। आयतन बढ़ने लगेगा। आयतन वृद्धिके साथ विशिष्ट गुरुत्व कम हो जाता है और आयतन-सङ्कोचके साथ विशिष्ट गुरुत्व बढ़ जाता है। डा० होपके प्रयोगने यह बात भली प्रकार प्रदर्शित करदी है कि पानी ४°श पर सबसे अधिक भारी होता है। बर्फ़ पानीसे हलकी होती है अतः पानी पर तैरती है। भिन्न भिन्न तापक्रमों पर पानीका विशिष्ट गुरुत्व निम्न प्रकार है—

तापक्रम	विशिष्ट गरुत्व
बर्फ़ ०°श –	०·९१६७४
पानी०°श –	०·९९९८७
२°श –	०·९९९९६
४°श –	१·०००००
६°श	०·९९९९७
१०°श	०·९९९७३
१५°श	०·९९९१५
२०°श	०·९९८२७
२५°श	०·९९७१४
३०°श	०·९९५७७

सामान्य तापक्रम परभी पानी भाप बन कर उड़ा करता है गीले कपड़े हवामें टांगनेसे थोड़ी देरमें सूख जाते हैं, गर्मीमें तालाब और छोटी-छोटी नदियाँ सूख जातीं हैं यद्यपि वायुमण्डल और पानी का तापक्रम कभी १००°श नहीं होता है। भाप पानीसे ही नहीं प्रत्युत बर्फ़से भी उठती है। यदि यह भाप संचित रहे तो जल पर एक प्रकारका दबाव डालती है। यह दबाव प्रत्येक तापक्रमके लिए भिन्न-भिन्न है इस दबावको वाष्प-तनाव कहते हैं तापक्रमकी वृद्धिके साथ-साथ यह वाष्प तनाव बढ़ता जाता है जैसा निम्न अङ्कोंसे स्पष्ट है—

तापक्रम	वाष्प तनाव	
बर्फ़ – १०°श	२·०९	मि० मी०
– २°श	३·९	
०°श	४·६	
१०°श	९·२	
२५°श	२३·६	
४०°श	५४·९	
८०°श	३५४·९८	
१००°श	७६०·००	
१०१°श	७८७·६३	

१ ग्राम ०°श तापक्रमकी बर्फ़को ०°श तापक्रम के पानीमें परिणत करनेके लिये कुछ गर्मी देने की आवश्यकता होगी। प्रयोग द्वारा सिद्ध कियाजा सकता है कि यह गुप्त-ताप, ८० कलारी के लगभग

है। १ ग्राम १००°श तापक्रमके जलको १००°श भाप बनानेके लिये ५३६ कलारी तापकी आवश्यकता होगी। अतः पानीके वाष्पीभूत होनेका गुप्ततापं ५३६ है।

दबावमें परिवर्त्तन करदेनेसे पानीके क्वथनांकमें बहुत परिवर्त्तन होजाता है। दबाव कम होजानेपर क्वथनांकमें कमी होजाती है और दबाव बढ़जानेसे क्वथनांक बढ़जाता है। पहाड़ोंकी ऊँची चोटियोंपर वायुका दबाव धरातलकी अपेक्षा बहुतही कम होता है अतः वहाँ पानी ८० के लगभग तापक्रम परही उबलने लगता है। ऐसी अवस्थामें बिना दबावको बढ़ाये आलू आदि नहीं पकसकते हैं जिनके पकनेके लिये १०० तापक्रम चाहिये। बन्द पतीली (ढकनोसे दबी हुई) में दाल जल्दी पकती है क्योंकि अन्दर भापका दबाव बढ़नेसे क्वथनांक बढ़जाता है।

क्वथनांक क्या है—? क्वथनांक वह तापक्रम है। जब द्रवकी भापका तनाव वायुमण्डलके दबावके बराबर होजाता है। वाष्प तनावकी सारिणीसे स्पष्ट है कि १००°श तापक्रमपर पानीकी वाष्प का तनाव ७६० मिमी है। वायुमण्डलका सामान्य दबावभी ७६० मिमी है। अतः १००°श पर पानी उबलने लगता है। यदि वायुमण्डलका दबाव ३५४·२० मि'मी' कर दिया जायतो पानी ८०°श पर उबलने लगेगा क्योंकि इस तापक्रम पर वाष्पका तनाव ३५४·२८ मि'मी' होता है।

पानीका आपेक्षिक ताप और आपेक्षिक घनत्व ०°श पर १ माना गया है।

पानीका घोलक-गुण

सामान्यतः लवणों और अन्यपदार्थोंके घोल बनानेके लिये पानीका उपयोग कियाजाता है। मद्य, ज्वलक, हरोपिपील आदि द्रवभी घोलकोंके रूपमें कार्बनिक रसायनमें विशेषतः उपयुक्त होते हैं पर पानीसे अधिक आवश्यक कोई घोलक नहीं है। प्रत्येक पदार्थ पानीमें भिन्न भिन्न प्रकारसे घुलता है। घुलनेके रूप ये होसकते हैं:—

( ) थोड़ेसे पानीमें पदार्थकी अनिश्चित मात्रा घुलनशील हो अर्थात् घुलनशील पदार्थ पानीमें प्रत्येक अनुपातमें घुलनशील हो। जैसे मद्य और पानी। ऐसी अवस्थामें कहा जायगा कि मद्य और पानी प्रत्येक अनुपातमें मिलनशील हैं।

(२) द्रव पानीमें मिलन-शील नहो पर कुछ घुलजाता हो। जैसे जल और ज्वलक। थोड़ासा जल ज्वलकमें घुलजाता है और थोड़ासा ज्वलक जलमें।

(३) चूर्ण जो जलमें समुचित घुलनशील हैं पर जलकी नियत मात्रामें चूर्ण की नियतमात्राही घुलनशील है। इसके पश्चात् घोलसंपृक्त होजायगा और अधिक पदार्थ नहीं घुलसकेगा। जैसे जलमें नमक तूतिया, पांशुजहरेत आदि।

(४) चूर्ण जो जलमें नहीं के बराबर ही घुलनशील हों जैसे भारगन्धेत, रजत हरिद सीस रागेत।

(५) चूर्ण जो जलमें साधारण तापक्रमपर बिलकुल घुलनशील नहों पर तापक्रम बढ़ानेसे, और अधिक पानीके उपयोगसे कुछ घुलजायं जैसे सीस हरिद, खटिक गन्धेत, रजत नोषित इत्यादि।

(६) वायव्य पदार्थ लगभग सभी जलमें थोड़ा बहुत घुलनशील हैं।

पदार्थोंकी घुलनशीलतापर तापक्रमका बहुत प्रभाव पड़ता है। साधारणतः चूर्णोंकी घुलनशीलता तापक्रम बढ़ानेपर बढ़जाती है। पांशुज हरेत, तूतिया, मगनीस गन्धेत आदि अधिक तापक्रमपर अधिक घुलनशील होते हैं। इस बातका लाभ रवेबनानेमें उठाया जाता है। ६०°श तापक्रम तकके जलमें पदार्थोंका संपृक्त घोल बनाते हैं, फिर घोलको धीरे धीरे ठण्डा होने देते हैं, ठंडा होने में तापक्रम की कमी के कारण घुलनशीलता कम हो जाती है और जितना पदार्थ घुलनेसे अशक्त रहजाता है, उतना

रवेके रूपमें प्रकट होजाता है । खटिक नीबूयेत (Calcium Citrate) आदि कुछ पदार्थ ऐसेभी हैं जो ठंडे जलमें अधिक घुलनशील हैं पर गरम करनेपर कम घुलनशील हैं । खटिक नीबूयेतका जलमें घोल बनाओ और गरम करो । श्वेत अवक्षेप दिखाई पड़ेगा ।

जब उपर्युक्त विधिसे लवणोंके रवे बनाये जाते हैं तो इस प्रक्रियामें लवणोंके अणुओंके जलके अणुओंकी एक निश्चितमात्रा संयुक्त होजाती है । इसे स्फटिकीकरणका जल (Water of crystallisation) कहते हैं । निम्न लवणोंमें यह जल निम्न प्रकार है—

ग्लोबर लवण (सैन्धकगन्धेत)
सै$_2$ ग ओ$_4$. १० उ$_2$ ओ
सैन्धक कर्बनेत (धोनेका सोडा)
सै$_2$ क ओ$_3$ १० उ$_2$ ओ
सैन्धक टंकेत (सोहागा)
सै$_2$ टं$_4$ ओ$_7$. १० उ$_2$ ओ
ताम्रगन्धेत (तूतिया)
तागओ$_4$. ५उ$_2$ ओ
लोहस गन्धेत (कसीस)
लोगओ$_4$ ७उ$_2$ओ
स्फट पांशुज गन्धेत (फिटकरी)
स्फ$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ पां$_2$ग ओ$_4$.२४ उ$_2$ओ

बहुतसे स्फटिकीकरणके जलसे संयुक्त लवण ऐसे होते हैं, कि यदि वे शुष्क वायुमें रखदिये जायं तो जलके अणु धीरे धीरे पृथक होजाते हैं और वे चूर्णके रूपमें रहजाते हैं । धोनेका सोडा इसी प्रकारका है । इस गुणको नोना लगना या प्रपुष्पण (Efflorescence) कहते हैं । इसके विपरीत खटिक हरिद, पांशुजसिरकेत, आदि लवण वायुसे जल आकर्षित करके द्रव जैसे होजाते हैं इसगुणको पसीजना (deliquescence) कहते हैं ।

सभी वायव्य पदार्थ जलमें कुछ न कुछ घुलनशीलहैं । इनकी घुलनशीलतापर तापक्रमका प्रभाव बिलकुल उल्टा होता है । तापक्रमके बढ़ानेसे वायव्योंकी घुलनशीलता कम होजाती है । पर दबावके बढ़नेसे घुलनशीलताभी बढ़जाती है । जल वायव्य के घोलमेंसे वायव्य तापक्रमको बढ़ाने या दबावको कमकरदेनेसे पृथक् होसकता है । जलमें घुला हुआ ओषजन मछलियों और अन्य जलजीवोंको प्राणवायु प्रदान करता है ।

मृदु और कठोर जल

पानीके साथ साबुन मलनेसे झाग उठने लगता है । नदियों, और स्रोतोंके जलमें बहुतसे खनिज पदार्थ मिल जाया करते हैं । इनमें कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो साबुनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं । ऐसे पदार्थोंसे युक्त पानी साबुनसे मलनेसे झाग देता है । इस पानीको मृदुजल (Soft water) कह सकते हैं । पर कभी कभी नदियों या कुओंका पानी ऐसी चट्टानोंमें होकर आता है जहांसे यह चूनेका पत्थर खड़िया मिट्टी-खटिक कर्बनेत, खकओ$_3$ और खटिक गन्धेत, खग ओ$_4$—आदि अपने साथ घोले लाता है यह पदार्थ साबुनपर प्रभाव डालते हैं और ऐसे पानीके साथ यदि साबुन मला जायगा तो झाग नहीं उठेगा, क्योंकि उक्त पदार्थो द्वारा साबुनका अनघुल यौगिक बनजाता है । ऐसे जलको कठोर-जल (Hard water) कहते हैं जलकी यह कठोरता दो प्रकारकी होती है ।—

१ स्थायी और २. अस्थायी

अस्थायी कठोरता —यह जलमें घुले हुए कर्बन द्विओषिदके कारण होती है क्योंकि यह कर्बन द्विओषिद उपर्युक्त प्रकारके खनिज-पदार्थोंको पानीमें घोल लाता है । एक परख नलीमें चूनेका पानी (खटिक उदोषिद) लो और इसमें कर्बन द्विओषिद प्रवाहित करो । पहले खटिक कर्बनेतका श्वेत अवक्षेप प्रकट होगा पर कर्बन द्विओषिद और प्रवाहित करने से खटिक कर्बनेत खक ओ$_3$, खटिक अधकर्बनेत ख (उ क ओ$_3$)$_2$ में परिणत होजायगा । अर्ध कर्बनेत जलमें घुलनशील है अतः अब घोल फिर स्वच्छ होजायगा । प्रक्रियायें इस प्रकार हैं:—

ख (ओ उ)$_2$ + क ओ$_2$ = ख क ओ$_3$ + उ$_2$ ओ
चूनेका पानी खटिक कर्बनेत

क ओ$_2$ + उ$_2$ ओ = उ$_2$ क ओ$_3$
कर्बनिकाम्ल

ख क ओ$_3$ + उ$_2$ क ओ$_3$ = ख (उ क ओ$_3$)$_2$
खटिक अर्धकर्बनेत

यह खटिक अर्धकर्बनेत ही वास्तवमें जलको अस्थायी कठोरता प्रदान करता है। इसे अस्थायी कठोरता इसलिये कहते हैं क्योंकि अर्धकर्बनेत इस घोलको गरमकरके या चूनेके पानी द्वारा अवक्षेपन करके पृथक् किया जासकता है। इन दोनों विधियोंसे अनुघुल खटिक कर्बनेत बनजाता है जो छान कर पृथक् करलिया जासकता है—प्रक्रियायें इस प्रकार हैं:—

(१) ख (उ क ओ$_3$)$_2$ = ख क ओ$_3$ + क ओ$_2$ + उ$_2$ ओ (गरम करनेसे)

(२) ख (उ क ओ$_3$)$_2$ + ख (ओ उ)$_2$ = २ ख क ओ$_3$ + २ उ$_2$ ओ चूने का पानी

स्थायी कठोरता—वह कठोरता जो इस प्रकार उबालनेसे से दूर नहींकी जासकती है स्थायी कठोरता कहलाती है। यह कठोरता विशेषतः गिप्सम लवण (खटिक गन्धेत, खगओ$_4$) केकारण होती है। इसको केवल उबालकर दूर नहीं किया जासकता है। इसके दूर करनेकी विधि यह है कि इसमें धोनेका सोडा अर्थात् सैन्धक कर्बनेत, सै$_2$ क ओ$_3$. १० उ$_2$ ओ डालकर उबालो। ऐसा करनेसे खटिक गन्धेत खटिक कर्बनेतमें परिणत होजाता है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—

ख ग ओ$_4$ + सै$_2$ क ओ$_3$ = ख क ओ$_3$ + सै$_2$ ग ओ$_4$

धोनेके काममें सोडा इसलिये उपयोगमें लाया जाता है क्योंकि यह पानीको मृदु करदेता है। खटिक कर्बनेतके साथ इस प्रक्रियामें सैन्धक गन्धेत भी उत्पन्न होता है। इसलिये इस प्रकार मृदु किया हुआ जल पीने के योग्य नहीं रह जाता है।

ताल व मात्रा

[श्री० हरिनारायण मुकर्जी।]

संगीतशास्त्र में तालके ये दस नाम हैं:—काल, मार्ग, क्रिया, लय, अंग, ग्रह, जाति, कला, यति और प्रस्तार। जिसको "ताल" कहते हैं उसीको काल भी कहते हैं। मात्राओंके द्वारा कालका विभाग किया जाता है। मात्रामें "लय" नहीं है; केवल सुर व तालमें लय है। मात्राके द्वारा लघु गुरु कल्पना करके नाना प्रकारके छन्द बनाये गये हैं और वही तालके द्वारा प्रकाश होते हैं। कालके विषयमें संगीतशास्त्रमें निम्नलिखित उपदेश दिया गया है:—

सौ कमलपत्रोंको सूच्यग्रभागसे विद्ध करनेके लिये जो समय लगता है उसे "लव" काल कहते हैं। और—

८ लव काल = १ क्षण काल
८ क्षण " = १ काष्ठ "
८ काष्ठ " = १ निमेष "
८ निमेष " = १ कला "
८ कला " = १ त्रुटि "

एक अक्षरके उच्चारण करनेमें जो समय लगता है उसे 'अनद्रुत" कहते हैं। २ अनद्रुत = १ द्रुत। २ द्रुत = १ लघु। २ लघु = १ वक्र वा गुरु और ३ लघु = १ प्लुत।

मात्राओंके द्वारा सुर अथवा गीत रचना करनेका नियम वा उपदेश संगीतशास्त्रमें पाया नहीं जाता है। केवल लघु गुरुके विचार द्वारा रचना करनेका नियम पाया जाता है। यथा—

गणः समूहः स द्वेधा व मात्राविशेषणात्।
गुरुलघुरितिद्वेधा वर्णो ऽनुस्वारसयुतः॥
मस्त्रिगुः पूर्वलो यः स्यान्मध्यलोरो ऽन्तगुस्तु सः।
तो ऽन्तुलो मध्यगो यः स्याद्यादिभस्त्रिलघुस्तनः॥

इसी प्रकारसे बहुत सांकेतिक उपदेश शास्त्रोंमें पाये जाते हैं जिनकी सहायतासे पद और सुरकी रचना की

जासकती है और इसी लिये शास्त्रपाठकी आवश्यकता है।

"काल"के प्रस्तार द्वारा जिस प्रकार नाना प्रकारके लय व ताल बनाये गये हैं उसी प्रकार क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, र और ह इन १६ अक्षरोंके विस्तारसे मृदंग (पखावज) के बोल (हस्तपाठ) बनाये गये हैं। इनका विस्तारित वर्णन संगीतशास्त्रके वाद्यध्यायमें पाया जाता है।

सप्तकोष्ठ चक्र या वादि संवादि विचार

	वादि			संवादि			
सम्पूर्ण १	स	र	ग	मा	प	ध	न
	र	ग	मा	प	ध	न	स
	ग	मा	प	ध	न	स	र
	मा	प	ध	न	स	र	ग
	प	ध	न	स	र	ग	मा
	ध	न	स	र	ग	मा	प
	न	स	र	ग	मा	प	ध
षाडव १	स	—	ग	मा	प	ध	न
	स	र	—	मा	प	ध	न
	स	र	ग	—	प	ध	न
	स	र	ग	मा	—	ध	न
	स	र	ग	मा	प	—	न
	स	र	ग	मा	प	ध	—
षाडव २	र	—	मा	प	ध	न	स
	र	ग	—	प	ध	न	स
	र	ग	मा	—	ध	न	स
	र	ग	मा	प	—	न	स
	र	ग	मा	प	ध	—	स
षाडव ३	ग	—	प	ध	न	स	र
	ग	मा	—	ध	न	स	र
	ग	मा	प	—	न	स	र
	ग	मा	प	ध	—	स	र
	ग	मा	प	ध	न	र	—

	वादि			संवादि			
षाडव ४	मा	—	ध	न	स	र	ग
	मा	—	ध	न	स	र	ग
	मा	प	—	न	स	र	ग
	मा	प	ध	—	स	र	ग
	मा	प	ध	न	स	—	ग
षाडव ५	प	प	ध	न	स	र	मा
	प	ध	न	स	र	ग	—
	प	ध	—	स	—	ग	मा
	प	ध	न	स	र	ग	मा
	प	ध	न	स	र	ग	—
षाडव ६	ध	—	स	स	ग	म	प
	ध	न	स	—	ग	मा	प
	ध	न	स	र	—	मा	प
	ध	न	स	र	ग	—	प
	ध	न	स	र	ग	मा	—
षाडव ७	न	स	—	ग	मा	प	ध
	न	स	र	—	म	प	ध
	न	स	र	ग	—	प	ध
	न	स	र	ग	मा	—	ध
	न	स	र	ग	मा	प	—
औडव १	स	र	ग	मा	—	ध	—
	स	र	ग	—	प	ध	—
	स	र	गा	—	प	—	न
	स	र	—	मा	प	ध	—
	स	—	ग	मा	प	ध	—
	स	र	—	मा	प	—	न
	स	—	ग	मा	प	—	न
	स	र	—	मा	—	ध	न
	स	—	ग	मा	—	ध	न
	स	—	ग	—	प	ध	न

	वादि			संवादि			
ओडव २	र	ग	—	प	ध	—	स
	र	ग	मा	—	ध	—	स
	र	ग	—	प	—	न	स
	र	—	मा	प	ध	—	स
	र	—	मा	प	—	न	स
	र	—	मा	—	ध	न	स
ओडव ३	ग	मा	—	ध	—	स	र
	ग	—	प	ध	—	स	र
	ग	—	प	ध	न	स	र
	ग	मा	—	ध	न	स	र
	ग	मा	प	—	न	स	र
	ग	मा	प	ध	—	स	र
	ग	मा	प	ध	न	स	—
ओडव ४	मा	प	ध	—	स	—	ग
	मा	प	—	न	स	र	—
	मा	प	—	न	स	—	ग
	मा	—	ध	न	स	र	—
	मा	—	ध	न	स	—	ग
ओडव ५	प	ध	—	स	र	—	म
	प	ध	—	स	र	ग	मा
	प	—	न	स	र	—	मा
	प	—	न	स	—	ग	मा
	प	ध	न	स	ग	म	—
ओडव ६	ध	—	स	र	ग	मा	प
	ध	न	स	—	ग	मा	प
	ध	न	स	र	—	मा	प
	ध	न	स	र	—	—	—
	ध	न	स	—	ग	म	—
ओडव ७	न	—	र	ग	मा	प	ध
	न	स	र	—	मा	प	ध
	न	स	र	—	—	प	ध
	न	स	—	ग	मा	—	ध
	न	स	—	ग	म	प	र

जन्तु जगतमें सामाजिक जीवन

[ले० श्री एम० एन० दत्त, एम एस सी]

प्राणधारियोंमें केवल मनुष्य ही ऐसा नहीं है जो कि पारस्परिक सामाजिक संबंधों द्वारा संगठित हो अन्य जीव जन्तुओंसे भी लाभ उठाता हो। देखा जाय तो मालूम होगा कि कुछ ऐसे भी कीट पाये जाते हैं जिन्होंने अपने सामाजिक जीवनको मनुष्यकी अपेक्षा उन्नतिके शिखर पर कहीं ऊंचा उठा रक्खा है जिस प्रकार सामाजिक व्यवहारके छोटे से छोटे केन्द्रसे निकलकर आज मनुष्य मात्रने अपने समाजको गौरवपूर्ण बना रक्खा है उसी प्रकार चीटियोंने भी अपने समूहको विभाजित तथा स्वतन्त्र छोटी छोटी मडलियोंसे लेकर बड़े से बड़े दलको पारस्परिक संबंधों द्वारा खड़ा कर रक्खा है। परन्तु पूर्व इसके कि हम छोटी छोटी जातिके जन्तुओंके सामाजिक जीवन का चित्र आपके सन्मुख रक्खें, हम उनका भी थोड़ा हाल बता देना आवश्यक समझते हैं जिन्होंने अभी सच्ची उन्नतिका शिखर नहीं ग्रहण किया है।

आश्चर्यजनक हेलमेल

प्राणी मात्र बहुधा अद्भुत संगति निर्माण कर रहा करते हैं। गोमांसाहारी पक्षी चौपायोंपर बैठ जाते हैं और उनकी खालोंमेंसे कीड़े ढूंढ़ ढूंढ़ कर खाया करते हैं। परन्तु मिश्री प्लोवर और मगरका वृत्तान्त अत्यन्त अलौकिक और मनोहर है। इन पक्षियोंके सम्बन्धमें यह देखा गया है कि जिस समय मगर पानीके बाहर निकलकर धूप खाया करते हैं ये उनके साथ बड़ी स्वछन्दतापूर्वक मिलते हैं। बहुधा मगरके सांस लेनेके कारण खुले हुये मुखमें प्लोवर बैठा दिखाई पड़ सकता है। वह वहां आनन्दपूर्वक टहलता रहता है और मगरके अन्तिम भोजनसे जबड़ोंमें अटके हुये छोटे छोटे टुकड़ोंको, न कि एरिस्टौटिलके कथनानुसार दांतोंको, चुना करता है। आश्चर्यकी बात यह है कि मगर इन पक्षियोंको यहाँ तक बैठ ती हैं कि वे उसके मुखमें पूर्ण रूपसे पैठ जाते हैं तब भी कभी मार डालने

आघात नहीं करता, बल्कि वह तो इन्हें बड़े प्रेमसे पेसा करने दिया करता है, ताकि उसका मुख साफ हो जाय और जोंक तथा अन्य कीटादिक उसके शरीरसे बीन-बीन कर अलग कर दिये जायँ कुछ चीटियोंके निवासस्थानों में अन्य भाँतिके जन्तु भी मिलते हैं जैसे लेपिस्मड या पेटीमेलीर्स जो उनके साथ बड़े हिलमिल कर रहा करते हैं। यद्यपि लेपिस्मिड लुटेरोंकी भांति जिस समय एक चीटी दूसरीको भोजन दे रही हो झपट-कर खा जाया करते हैं परन्तु फिर भी लाड़ला मानकर वे इनसे कुछ नहीं बोलतीं। परन्तु पेटीमेलीस चीटियोंके बड़े काम आते हैं क्योंकि ये बचे खुचे मालको और मरी हुई चीटियोंको जो कि पड़ी रह जाती हैं उन्हें खा जाया करते हैं और आवश्यकता पड़नेपर चीटियाँ अपने भोजनमेंसे भी इन्हें खिला दिया करती हैं। नि-स्सन्देह नन्हा चींटी के बस्तीके 'भिक्षुक' नाम बहुत ही सोचा समझ कर रक्खा गया है। सामुद्रिक जीवोंमें ऐसे बहुतसे साथी मिलेंगे। बात नहीं यदि आपको कभी कभी एक स्वानमसल सुन्दर लालडोरेके द्वारा किसी सामुद्रिक बिटरलिङ्ग मछलीसे जुड़ा हुआ दिखाई दे सकता है उत्पत्ति काल मछलीका ओवीडक्ट बहुत लंबा हो जाता है और वह उसके शरीरके बाहर एक लाल नलीके रूपमें निकला रहता है जिसके द्वारा स्वानमसल आकर्षित हो जाते हैं। ये जन्तु अपने पतले पञ्जोंसे मछलीकी ओवडक्टको पकड़ लेनेमें सफलीभूत होते हैं। ज्यों ही ऐसा सम्बन्ध हो जाता है मछलीका इसका पता चल जाता है और वह मसल-के उन गलभड़ोंमें अंडे रखने लग जाती हैं जहां कि लगभग एक मासके ये सेया करते हैं। परन्तु जब कि बीबी बिटरलिङ्ग इस प्रकार सुरक्षित स्थानमें अंडे देने के कार्यमें लगी होती हैं, बीबो अनोडोण्टा खाली नहीं बैठी रहती। वह भी नवजात अंडोंकी टोली निकालकर नलीको मछलीकी खालपर चढ़नेके लिये छोड़ देती है जहां पहुँचकर वह अपना स्वतंत्र जीवन व्यतीत करनेके योग्य बड़े हो जायं।

दूसरा उदाहरण मिलता है बड़े २ तैराक कोले-न्टरेट फिसेलिआ (योद्धा) का और छोटी २ नोमियस ग्रोनोवी मछलियोंका जो कि अपने प्राणघातकोंसे बच-नेके लिये फिसेलियाके पीछेलगी फिरा करती हैं क्योंकि वे कोलेन्ट रेटके टेंटेकिल्सके डंक रूपी सेलके रक्षा संबन्धी मूल्यको भली भांति प्रत्यक्ष समझती हैं।

सहभोज्य

परन्तु जब हम देखते हैं कि एक छोटी मछली संतुष्टता पूर्वक किसी बड़े घोंघेके अन्दर रहती है और छोटा मटरीला केकड़ा भी किसी हौर्स मसलके भीतर वास कर रहा है तो यह प्रत्यक्ष प्रगट हो जाता है कि मछली और केंकड़ोंको वहां केवल शरण ही नहीं मिलती बल्कि वे उनके भोजनोंसे भी लाभ उठाते हैं। इनसे जीव-विज्ञानमें एक ऐसे संबन्धके लिये जो कि सहभोज्यके नामसे प्रसिद्ध है बड़ा अच्छाउदाहरण मिलता है। इससे भी बढ़कर हमारे पास उदाहरण है, केंकड़ों और घोंघोंके संबंधका। वैरागी केकड़ेका शैल सामुद्रिक घोंघे द्वारा चारों ओरसे घिरा होता है और कुछ जातिके केंकड़े अपने अपने पंजोंमें पकड़कर घोंघोंको ले जाया करते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सामुद्रिक घोंघेके विषैले डंक रूपी शैल किस काम आते होंगे, इससे अतिरिक्त कि केंकड़ेकेलिये चेहरा (Mask) बने रहें और वार तथा बचाव करनेमें अपनी रक्षा किया करें। उधर सामुद्रिक घोंघे-को यह लाभ है कि केकड़ा उसे इधर उधर लिये फिरे और अपने वाहकके खोये हुये भोजनके टुकड़ोंसे अपना पेट भी भर लिया करे यह कोई असंभव या असगत बात नहीं कि कभी कभी केकड़ा जान-बूझकर अपना साथी चुन लिया करता है और अपने शैल अथवा पंजेमें इस तरह बिठा लेता है कि शैल (छिल-का) बदलते वक्त वह उसे भूल नहीं सकता। परन्तु जिस समय उनकी इच्छानुसार साथी नहीं मिलते केकड़े अत्यन्त आकुलताके साथ अस्वस्थसे दृष्टि पड़ते हैं जबतक कि उन्हें कोई मनवांछित साथी नहीं मिल जाते

सहकार्यता तथा कार्यक्रम विभाग

अब कुछ समयके लिये इन अचानक अथवा चिरस्थायी संग सहवासियोंके समाजसे बिलग होकर एक

दूसरे प्रकारके भिन्न मंडलकी ओर भी ध्यान दें जो कि उसी जाति या समूहसे संबन्ध रखने वाले हैं, या यों कहना चाहिये कि उनकी बस्तियोंकी भी दशाका अवलोकन होना आवश्यक है' ये दल उत्पत्ति द्वारा बन जाया करते हैं। नव आगन्तुक परस्पर जुड़े होते हैं और कई स्थानोंमें कार्य विभागके खासे उदाहरणका नमूना हमारे सन्मुख रखते हैं, जिसका कि भाव मनुष्य मात्रके हृदयमें वर्षोंसे भरा हुआ है परन्तु जिसकी उपयोगिता जीव विज्ञानकी दृष्टिसे संवत् १८९३ वि० में मलीन एडवर्ड द्वारा ही मालूम हुई। मूंगोंके अनेकों समूह प्राणधारी जन्तुओंकी बस्तियां बनी हुई हैं परन्तु सदस्योंमें कार्य विभागका अभाव है और बस्तीकी वृद्धिके समय जवान जन्तुगण बुड्ढे बुड्ढोंका गला घोंटकर मार डालते हैं। परन्तु जफीटिस नागरिकोंमें कभीकभी कार्य विभागकी मात्र दृष्टिगोचर होती पाई गई है। उदाहरणके लिये हाईड्रेकिनिया पोलिप्सकी बस्तीमें जो कि बहुधा ऐसे शैलोंपर फैलता हुआ दिखाई पड़ता है जिसपर कि वैरागी केंकड़े भी प्रजाकी भांति निवास करते हैं लगभग सौ प्राणियोंके वहाँ मौजूद हैं और इन्द्रियों द्वारा एक दूसरेसे जुड़े हुए हैं। प्रत्येक सहवासके प्राणियोंमें तीन या भिन्न भिन्न जातियाँ पाई जाती हैं। बहुतसे रूप रंगमें न्यूट्रीरिब बने होते हैं जैसे कि छोटा साफ पानीका जल-जन्तु जो कि देखनेमें नलीके समान छोटे मुखवाले और रवा सदृश शरीर-धारी जीव होते हैं इनपरही समस्त सहवासका पालन पोषण निर्भर होता है। इनके अतिरिक्त ऐसे भी जीव हैं जो कि जनते रहते हैं और जिनके मुख होताही नहीं और इसलिये खा भी नहीं सकते परन्तु जो कि जन जन कर एक भांतिके ऐसे नये कीटि समूहका सिलसिला जारी रखते हैं जो कि नई बस्तियाँ अपने लिये चालू कर दिया करते हैं ऐसे भी जीव विद्यमान हैं जो कि मुखहीन, लम्बे, दुर्बल और चैतन्य होते हैं और जिनसे सहवासोंमें भोजन या आपत्तिका पता चलता रहता है। जब किसी आपत्तिका भय होता है तो लाकड़े पानीमें डुबकी लगा जाते हैं जिससे कि छोटे छोटे बड़े शूल पानीके ऊपर निकले रह जाते हैं और यह समझा जाता है कि यह झाड़ीके कांटोंकी भाँति कुसमय निकले हुये हैं।

मित्रता और एकत्र सहवास

ऐसे अनेक जीव पाये जाते हैं जो कि भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें होनेपर भी एकत्र रहना पसन्द करते हैं। अनेक पक्षी तथा काले कौवे और चकोर एक साथ रहते हैं और ऐसे रहनेसे अनेक प्रकारका लाभ उठाते हैं। 'उहेभार' पक्षी अफ्रीकामें रहते हैं और अपने घोंसला एक एक पेड़को घेरकर बनाते हैं। सारस आपसमें अत्यन्त मित्रताके साथ रहते हैं और दूसरे जलके पक्षीयोंको भी लाभ पहुँचाते हैं। मेडीट्रेनीयन' समुद्रमें एक प्रकारके सारस अपने निवासके चारों ओर पहरा भी लगाते हैं और चर भेजकर शत्रुओंका पता लगाते हैं। तोते भी अपनी टोलियोंमें बराबर मिलकर काम करते हैं और सुख व दुःखमें एकत्र मिलकर एक दूसरेकी सहायता करके लाभ और आनन्द भोग करते हैं। हरिन बकरी नीलगाय और हाथियोंकी टोलियाँ बनी होती हैं और शत्रुओंके आक्रमणके समय एकत्रित होकर एक दूसरेकी सहायता करते हैं। बन्दर भी अपने सब काम काजमें एक दूसरेकी सहायता करते हैं। अकेला जो पशु अपने शत्रुसे न लड़ सके वह एकत्रित होकर अत्यन्त ही बल पूर्वक उनको हरा देते हैं। प्रत्येक दलके साथ एक बड़ा और बलशाली सरदार होता है जिसका प्रभाव सब मानते हैं और उन्हींकी इच्छानुसार काम करते हैं।

'बबून' व वनमानुष मनुष्यकी तरह एकत्र होकर लड़ते भी हैं और लड़ाई व लूटके समय चर और पहरोंकी सहायतासे एक साथ जाकर अत्यन्त बल-प्रयोग करके शत्रुओंका नाश करते हैं।

मिलजुल कर वास करना

प्रेरी कुत्ते (Prairie dogs) अपने जोड़ेके साथ जमीनमें अलग अलग गड्ढा खोदकर रहते हैं परन्तु यह गड्ढे बहुत पास पास होते हैं यह एक प्रकारका ग्राम व शहर बना लेते हैं। यह ग्राम बहुतसे स्थानपर

फला हुआ होता है। ऐसे ग्राम बनाकर रहनेका लाभ बवर (एक प्रकारके चूहेकी भांति जानवर है) उठाते हैं। एक एक मकानमें ६ तक बीवर रहते हैं, यह मकान पानीके किनारे अति शान्ति-दायक स्थानपर होता है। इनके बच्चे तीन वर्ष तक अपने अपने मां बापके मकान में रहते हैं फिर अपने जीवन-संगिनियोंके साथ लेकर अलग मकान बनाकर आनन्दसे वास करते हैं। अगर एक ग्राम अत्यन्त घन हो जाय तो इनमेंसे कुछ अन्य स्थानपर जाकर नया ग्राम स्थापित करते हैं, परन्तु सब नव विवाहित युवक युवती के लिये पुराने मकानको छोड़ कर दूढ़े बीवर अलग बड़े घर बनाकर नये ग्राम स्थापित करते हैं। यह भी इनके बारेमें कहा जाता है कि इनमें जो सुस्त व अन्य प्रकारसे ग्राममें वासके योग्य नहीं होते हैं उनको ग्रामके बाहर अलग रहनेकी सजा दी जाती है। उनके मकान खूब अच्छे लकड़ोंके बने होते हैं। यह लोग पेड़के ऊपरसे लकड़ी कुतर कर काट लाते हैं और पानीके किनारे किसी पेड़के सहारे लगा लेते हैं। इस कार्यमें किसी समय अनेक गृहस्थ एकत्रित होकर काम करते हैं। यह एकत्रित होकर बड़े बड़े लकड़ीके टुकड़े काटते हैं उनको धक्का देकर ठीक स्थानपर लाते हैं और कभी पानी कम होनेपर नदियोंमें बन्द बनाकर पानीको रोकते हैं। इनको बधाई देते हुये हम यह भी खयाल रक्खें कि इनकी प्रत्येक बात हम लोगों के सीखने योग्य है।

वैदिक सृष्टिक्रमकी वैज्ञानिकता

[लेखक—साहित्य शास्त्री पं० रामप्रसाद पांडेय, विशारद, काव्यतीर्थ ।]

सौर जगतकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान लापलासका मत है कि एक समय एक प्रकाण्ड ज्वलन्त वाष्पपिण्ड समग्र सौर जगत्को व्याप्त किये था। और वह वाष्पपिण्ड अपने मेरुदण्डके चारो ओर बड़ी त्वराके साथ आवर्तन करता था। कालक्रमसे ताप विकीर्ण करते हुए यह वाष्पपिण्ड शीतल और घनीभूत होने लगा। आवर्तन वेगकी त्वराके कारण केन्द्र त्वारिणी शक्तिके (Centrifugal force) प्रभावसे इस क्रमसे वाष्पपिण्डसे एक अंश अलग निकलकर नेपच्यून (Neptune) ग्रहमें परिणत हो गया। इस प्रकार यूरेनस, शनि बृहस्पति प्रभृति ग्रहोंकी भी उत्पत्ति हुई। आदि वाष्पपिण्डका जो अंश शेष था वही सूर्य समझिये। सृष्टिके इस उत्पत्ति क्रमको ज्योतिष शास्त्रमें निहारीका वाद (Nebula theory) कहते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि ज्वलन्त वाष्पपिण्डसे सौर जगत्के ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई किन्तु लाप्लास और आधुनिक वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तोंमें अन्तर यह है कि लाप्लास उसी एक ज्वलन्त वाष्पपिण्डसे क्रमशः ग्रहोंकी उत्पत्ति मान कर उसके शेषांशके सूर्य मानते हैं और आधुनिक वैज्ञानिक एक साथ ही सब ग्रहों और सूर्यको भी प्रक्षिप्त होना निर्दिष्ट करते हैं।

ऋग्वेदमें सौर जगत्की उत्पत्तिके सम्बन्धमें बृहस्पति ऋषिने एक मन्त्रमें निर्देश किया है:—

अष्टौ पुत्रा सो अदितेर्ये जाता स्तन्वस्परि,
देवां उपप्रेत सप्तभिः परामार्ताण्डमस्यात् ॥१ ।१०।७२

अर्थात् आदितिसे आठ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। इनमेंसे एक पुत्र देवलोकमें गया और मार्तण्ड नामक पुत्र दूर ही स्थापित हुआ।

ऋग्वेदके इस मन्त्र और पाश्चात्य विद्वानोंके सिद्धान्तोंकी परस्पर तुलनासे ज्ञात होता है कि जिसे वैज्ञानिक नीहारिका (Nebula) कहते हैं वही इस मन्त्रमें उल्लिखित आदिति है। इस आदिति या आदि नीहारिकासे, जो कुछ कहिये, एक ही समयमें सूर्य, चन्द्र, बुध, मङ्गल, पृथ्वी आदि ग्रहों की उत्पत्ति हुई। यही ग्रह अदितिके आठ पुत्र हैं। ऊपर उल्लिखित मार्तंड नामक आदितिका पुत्र जो दूर स्थापित हुआ वह ग्रहराज सूर्य भगवान हैं।

सौर जगतका केन्द्र विन्दु यही मार्तंड है। इसी मार्तंडके तेज पुंजसे सौर जगत्के सब ग्रह आलो-

चित होते हैं। सूर्यके आकर्षण द्वारा ग्रहादि उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। यदि सूर्यका ताप न होता तो हमारी पृथ्वीपर जीव जन्तु या वनस्पति कुछ भी न होता। एक ऋषिने कहा है:—

अयं देवा नामपसामपस्तमो यो
जजान रोदसी विश्व संभुवा
विमो यमे रजसी सुक्रतुयाजरेभिः
स्कंभनेभिः समानृचे ११६०१४ ऋक

अर्थात् वही देवताओंमें श्रेष्ठ है, कर्मकाण्डोंमें भी बड़ी प्रधान है, वह सब सुखोंका देनेवाला है, वही द्यावा पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला है एवम् प्राणियोंके सुखके लिए उसने द्यावा पृथ्वीका परिच्छेद किया किया है। वही दृढ़तर शंकुके द्वारा इनको स्थिर करता है।

प्राणियोंके सुखके लिए पृथ्वी आदि सब ग्रह सूर्यके भीषण उत्तापसे दूर रहते हुए भी अपनी इच्छाके अनुसार इधर उधर चले नहीं जा सकते। सूर्यके आकर्षणके कारण खूंटोंमें बंधे पशुकी भांति ग्रहादि एक स्थानपर स्थिर हैं। सुतरां, इन मन्त्रोंके आधारपर अनुमान करना पड़ता है कि प्राचीन ऋषिगणने सौर जगत्की उत्पत्ति संगठन प्रणालीके सम्बन्धमें प्राकृतिक तथ्यका आविष्कार कर लिया था।

ऊपर कह आये हैं कि सौर जगत्की उत्पत्तिका उपादान सर्व प्रथम ज्वलन्त वाष्पपिण्ड था। वही पिण्ड नैसर्गिक नियमानुसार विभिन्न ग्रहोंमें परिणत हो गया। आकृति वा आदि नीहारिका द्वारा सूर्य एवं सौर जगत्के अन्य ग्रहोंकी उत्पत्ति होनेसे यह सिद्ध होता है कि जिस उपादानसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई है वही पृथ्वीका भी प्रणेता है। इसी सिद्धान्तको पाश्चात्य विद्वानोंने सप्रमाण सिद्ध किया है, केवल अनुमान ही नहीं करते रहे।

कितनी ही दूरीपर रहनेवाली चीज दूरबीनसे स्पष्ट दिखाई पड़ती है। गेलिलियोने जिस समय प्रथम दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा आकाशका पर्यवेक्षण किया था उस समय उन्हें अनेक अश्रुतपूर्व आश्चर्यमय रहस्योंका दर्शन हुआ। सौर कलंक (Sum spot) चन्द्रगह्वर, शनिवलय (Ring) बुध और शुक्र ग्रहोंकी कायाकी ह्रास-वृद्धि आदिका उन्होंने आविष्कार किया। मनुष्योंकी ज्ञान-स्पृहा सदा बढ़ती ही रहती है। गेलिलियोके बाद अनेक उससे भी उत्कृष्ट दूरवीक्षण यंत्र बने। जिनकी सहायतासे वैज्ञानिकोंने ग्रहोंके सम्बन्धमें बहुत सी नवीन बातों का पता लगा लिया। उन लोगोंने न केवल बहुतसे ग्रहोंका पता लगाया वरन् वे ग्रह किन उपादानोंसे बने हैं इस तथ्यको भी ढूंढ़ निकाला। आकाशके ग्रह वाष्पीय, तरल वा कठिन किस उपादानसे गठित हुए हैं इसका वस्तुतः ज्ञान वैज्ञानिकोंके कौतूहलका विषय था। ये सभी बातें केवल दूरवीक्षण यंत्रकी सहायतासे नहीं जानी जा सकती थीं। इसके बाद रश्मि-चित्र-दर्शक यंत्र (Spectroscope) का आविष्कार हुआ जो वास्तविक ज्ञान सम्पादनका साधन था। इस यंत्रकी सहायतासे वैज्ञानिक करोड़ों मीलकी दूरीपर अवस्थित वस्तुका सच्चा हाल बता सकते हैं। विभिन्न उपादानों द्वारा गठित ज्वलन्त पदार्थका रश्मि चित्र (Sp ctrum) विभिन्न प्रकारका होगा। रश्मि चित्र ज्ञात होते ही उपादानका भी ज्ञान हो जाता है।

रश्मि चित्र-दर्शक यंत्रका आविष्कार होते ही सूर्यके उपादानका पता लगाया जाने लगा। सूर्यके बड़े ऊँचे तापक्रम के कारण उसके संगठन-उपादान परस्पर विच्छिन्न होकर सूर्य मंडलके चारों ओर वाष्पाकार में अवस्थित हैं। बहुत यत्न करनेपर ज्ञात हुआ है कि सूर्यमें लोहा सीसा, निकेल कोबाल्ट मेगनेसियम् केलसियम्, सोडियम, बेरियम, हीलियम, ओषजन, उज्जन प्रभृति उपादान वर्तमान हैं। आश्चर्यका विषय तो यह यह है कि सूर्यका कोई उपादान ऐसा नहीं है जो पृथ्वीमें वर्तमान न हो। सूर्यके भीषण तापक्रम के कारण अनेक उपादानोंका अभी वास्तविक पता नहीं लग सका है। किन्तु वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि पृथ्वीके अन्य उपादान भी सूर्यमें वर्तमान हैं। अतः यह माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि सूर्य और पृथ्वीके उपादान एक ही हैं। सुतरां सौर जगतके अन्य ग्रहोंका भी

उन्हीं उपादानों द्वारा संगठित होना स्वयंसिद्ध है।

ब्रह्माण्डकी तुलनामें सौर जगत् बहुत ही छोटा है। महासागर और एक जल विन्दुमें जितना अन्तर है। ब्रह्माण्ड और सौर जगतमें भी उतना ही अन्तर है। अतः सौर जगतके ग्रहोंके सम्बन्धमें उक्त सिद्धान्त ठीक होते हुए भी अगर उसे हम ब्रह्माण्डके प्रत्येक ग्रह के विषयमें ठीक समझें तो यह धारणा कदापि समीचीन नहीं कही जा सकती। इसीलिये ज्योतिर्विदोंने एक एक करके आकाशके सभी नक्षत्रोंकी परीक्षा की। सहस्र सहस्र नक्षत्रोंकी परीक्षासे उन्हें पता लगा कि करोड़ों मील दूरवर्ती नक्षत्र भी सूर्यकी भांति ज्वलन्त वाष्पीय उपादानसे गठित हैं। इसीलिये यह निर्धारित किया गया कि ब्रह्माण्डके अगणित नक्षत्र एक ही उपादान द्वारा गठित हैं।

आकाशके सभी ग्रह यदि एक ही उपादानसे गठित हों तो उनका क्रमविकास भी एक ही सा होगा। हमारी पृथ्वी भी जिन अवस्थाओंमें होते हुए वर्तमान परिस्थितिपर पहुँची है दूसरे नक्षत्र भी उन्हीं अवस्थाओंमें होकर इस परिस्थिति को पहुँचेंगे यह स्वयं सिद्धि है।

सुतरां, पृथ्वीका जीवन-इतिहास अनुसन्धान करनेसे अन्य ग्रहोंका भी जीवन-क्रम ज्ञात हो जायगा। एक समय पृथ्वी भी सूर्यकी भांति ज्वलन्त वाष्पीय अवस्थामें थी। लाखों वर्ष ताप विकीर्ण करके इस समय यह शीतल हो गई है। अभी भी पृथ्वीका आभ्यन्तरिक्त भाग अतिशय उत्तप्त है। कुछ समयके पश्चात् यह ताप भी विलुप्त हो जायगा। चन्द्रका आग्नेय गिरि भी निर्वापित हो गया है।

सूर्य पृथ्वीसे १७ लाखगुणा बड़ा है। अतः सूर्यके शीतल होनेमें असंख्य वर्ष लगेंगे। पर पृथ्वीकी भांति उसका भी निर्वापित होना निश्चित ही है। ब्रह्माण्डमें कितने सूर्य निर्वापित हो चुके हैं। मृत्यु ही जगतकी चरम परिणति है।

आकाशके करोड़ों ग्रह पृथ्वीके जीवन क्रमका अनुसरण कर रहे हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पृथ्वी शीतल हुई उसपर अनेकों भूपंजर (crust) गठित हुए। यह बात ब्रह्माण्ड पुराणके ४८ में अध्याय में निम्नलिखित श्लोकोंमें लिखी है:—

कृष्ण भौमञ्च प्रथमं भूमि भागंच कीर्त्तिं।
पाण्डु भौमं द्वितीयन्तु तृतीयं रक्तमृत्तिकम्॥
पीतभौमञ्चतुर्थन्तु पंचमं शर्करामयम्।
षष्ठ शिलामयञ्चैव सौवर्ण सप्तमं तलं॥

पृथ्वीका प्रथम स्तर कृष्णावर्ण भूभाग मय, द्वितीय पाण्डु वर्ण भूमि, तृतीय रक्तमृत्तिकामय, चतुर्थ पीत भूमि विशिष्ट, पंचम शर्करामय, षष्ठ शिलामय, सप्तम सुवर्ण मय।

आधुनिक भूतत्वविदोंने पृथ्वीके जिन स्तरोंका वर्णन किया है उनकी तुलना उक्त स्तरोंसे करनेपर पता लगेगा कि उनमें अनेक सादृश्य है। कृष्णभूमि स्तर ही कर्दम (clay) है कर्दम ही बहुत तापके कारण स्लेट (slate) बन जाता है। पाण्डु भूमि खड़िया मिट्टी (chalk) का स्तर है। रक्त मृत्तिका (red sand stone) स्तर ही है। षष्ठ स्तर एक प्रकारका कठिन प्रस्तरमय है। अधिक तापसे जलके सातवें स्तरका सुवर्ण वर्ण धारण करना कुछ असम्भव नहीं है।

पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि भूस्तरोंकी मोटाई ५० मील है। इसके पश्चात् कुछ कठिन पदार्थ नहीं है। ५० मीलके नीचे धातु और पत्थर भूगर्भके भीषण तापसे गलकर तरल अवस्थामें विद्यमान हैं। पृथ्वीका व्यास प्रायः आठ हज़ार मील है और स्तरोंकी मोटाई ५० मील। अतः भूस्तर पृथ्वीके व्यासका $\frac{१}{१६०}$ भाग मात्र है। एक नारियलके आयतनकी तुलनामें उसका छिलका जितना मोटा है। पृथ्वीके आयतनकी तुलनामें ये भूस्तर भी उतने ही मोटे हैं। सुतरां आर्य ऋषियोंने जो पृथ्वीको नारियलके फलके सदृश कहा है वह सर्वथा ठीक है।

पृथ्वीपर जीवोत्पत्ति एवं जीवोंके क्रम-विकासके सम्बन्धमें आर्य ऋषियोंका जो सिद्धान्त था उसका समर्थन आधुनिक विज्ञान करता है। जलमें पहिले जीवोंका आविर्भाव हुआ था। पाश्चात्य विद्वान भी इसी बातको स्वीकार करते हैं। इसके बाद पृथ्वीके

विभिन्न स्तरोंमें भिन्न भिन्न जीव की उत्पत्ति हुई। विभिन्न स्तरोंमें प्राप्त जीव कंकालोंकी पर्यालोचना करके आधुनिक वैज्ञानिकोंने स्थिर किया है कि प्रथम मत्स्यादिका आविर्भाव हुआ। (age of fishes) यही मत्स्यावतार समझिये। इसके बाद सरीसृपयुग (Age of the reptiles) इसके पश्चात् स्तनपायी जीवोंका प्रादुर्भाव हुआ (age of the mammals) सबके पश्चात् मानव युग (age of man) है। हिन्दू ऋषियोंने और एक सूक्ष्म विभाग किया है। भगवानने ही समस्त जीवोंकी सृष्टि की है इस लिये ऋषियोंने कहा कि परमात्माने ही जीवात्माका रूप धारण किया है। विभिन्नयुगोंमें विभिन्न जीवोंके आविर्भावको ही ईश्वरावतार कहते हैं। पहिले मत्स्य, फिर कूर्म उसके बाद फिर स्तनपायी बराह अवतार हुआ, इसके बाद अर्धमानव व अर्ध पशु रूपी नृसिंह। इसके बाद खर्वाकृति पूर्ण मानव अवतार, इसके बाद क्रमशः श्रेष्ठतर मानवोंका अवतार।

अब विचार करनेपर निश्चय हो जायगा कि हिन्दुओंके धर्म ग्रन्थोंमें हजारों वर्ष पूर्व जो बातें लिखी जा चुकी हैं वही आज वैज्ञानिक खोज कर जान रहे जान हैं। अतः हिन्दुओंकी प्राचीन मौलिकता, बुद्धिमत्ता और विज्ञता स्वयंसिद्ध है।

सर्व सिद्धान्त संग्रह

(गताङ्कसे आगे)

[ले०—श्री गंगाप्रसादजी उपाध्याय, एम. ए.]

सर्वंहि प्रकृतेः कार्यं नित्यैका प्रकृतिर्जडा।
प्रकृतेस्त्रिगुणत् वेशादुदासीनोपि कर्तृवत् ॥१५॥

सचेतनावत्तद्योगात्सर्गः पंग्वन्धयोगवत्।
प्रकृतिर्गुणसाम्यं स्याद्गुणास्सत्वं रजस्तमः ॥१६।

सब जगत् प्रकृति का कार्यरूप है। प्रकृति नित्य है, एक है और जड़ है। पुरुष चेतन है। वह उदासीन होने पर भी प्रकृतिसे तीनों गुणोंके योग से कर्त्ताके समान वर्त्तता है अर्थात् चेतन जीव और अचेतन प्रकृति यह दोनों मिलकर जगत् बनाते हैं। जैसे लङ्गड़ा और अन्धा आदमी मिलकर काम निकालता है। (लङ्गड़ा अन्धेके कंधे पर बैठ कर फल तोड़ सकता है। अकेला न लङ्गड़ा काम कर सकता था न अंधा) गुण तीन हैं सत्, रज, तम। और प्रकृति तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाका नाम है ॥१५-१६॥

सत्वोदये सुख प्रीतिः शान्तिर्लज्जाङ्ग लाघवम्।
क्षमा धृतिरकार्पण्यं दमो ज्ञानप्रकाशनम् ॥ १७॥

सतो गुणके उदय होनेपर सुख, प्रीति, शान्ति, लज्जा, शरीरका छरछरापन, क्षमा, धृति, उदारता, दम और ज्ञानका प्रकाश होता है ॥१७॥

रजोगुणोदये लोभः सन्तापः कोपि विग्रहौ।
अभिमानो मृषावादः प्रवृत्तिर्दम्भ इत्यपि ॥१८॥

रजोगुणके उदय होने पर, लोभ सन्ताप, कोप विग्रह, अभिमान, झूठ, प्रवृत्ति और दम्भ उत्पन्न होते हैं ॥१८॥

तमोगुणोदये तन्द्री मोहो निद्राङ्ग गौरवम्।
आलस्यमप्रबोधश्च प्रमादश्चैवमादयः ॥ १९ ॥

तमके उदय होनेपर सुस्ती, मूर्च्छा, नींद, शरीर का भारीपन, आलस्य, अज्ञान, प्रमाद आदि उत्पन्न होते हैं ॥१९॥

व्यासाभिमत सिद्धान्ते वक्ष्येहं भारते स्फुटम्।
त्रैगुण्य विततिं सम्यग्विस्तरेण यथा तथम् ॥२०॥

व्यासने महाभारतमें जो सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण सम्बन्धी सिद्धांत दिया है उसको अच्छे प्रकार विस्ताररूपसे मैं कहूँगा ॥२०॥

प्रकृतेःस्यान्महांस्तस्मादहङ्कारस्ततोऽप्यभूत।
तन्मात्राख्यानि पञ्चस्युः सूक्ष्मभूतानि तानिहि॥२१॥

प्रकृतिसे महत्तत्व उत्पन्न हुआ, महत्तत्त्वसे अहङ्कार, अहङ्कारसे पांच तन्मात्रायें जिनको सूक्ष्म भूत कहते हैं ॥२१॥

वाक्पाणि पाद संज्ञानि पायूपस्थौ तथैवच।
शब्दस्पर्शस्तथारूपं रसो गन्ध इहीरिता ॥२२॥
खवाय्वग्न्यम्बुपृथ्व्यस्स्युः सूक्ष्मा एव न चापरे।
पटःस्याच्छुक्लतन्तुभ्यः शुक्ल एव यथा तथा ॥ २३ ॥
त्रिगुणानुगुणंतस्मात्तत्वसृष्टिरपि त्रिधा॥

सत्त्वात्मकानि सृष्टानि तेभ्यो ज्ञानेन्द्रियाण्यथ ॥२४

इनसे वाणी, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ नामो इन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी नामी पांच सूक्ष्मभूत (न कि स्थूल भूत)। जैसे श्वेत कपड़ा बुना जाता है इसी प्रकार तीन गुण वाली प्रकृतिसे तीन गुण वाला जगत बनता है। सत्त्वात्मिक सृष्टि पहले हुई फिर उससे इन्द्रियाँ ॥२४॥

श्रोत्रंत्वक् चत्तुषी, जिह्वा घ्राणमित्यत्र पञ्चकम् ।
तैश्शब्द स्पर्शरूपाणि रस गन्धौ प्रवेत्यसौ ॥२५॥

कान, त्वचा, दो आंखें, जिह्वा, नाक यह पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उनसे मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान प्राप्त करता है ॥२५॥

रजो गुणोद्भवानि स्युस्तेभ्यः कर्मेन्द्रियाण्यथ ।
वाक् पाणि पाद संज्ञानि पायूपस्थौ तथैवच ॥२६॥
वचनादान गमन विसर्गानन्द कर्म व ।
मनोऽन्तःकरणाख्यं स्यात् ज्ञेयमेकादशेन्द्रियम् ॥२७॥

फिर रजोगुणसे कर्म इन्द्रियां उत्पन्न हुई अर्थात् बाणी, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ, बोलना पकड़ना, चलना, मल त्यागना, सुख भोगना। मन अन्तः करण की एक ग्यारहवीं इन्द्रिय है। २६—२७

तमोगुणोद्भवान्येभ्यो महा भूतानि जज्ञिरे ।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश इत्यपि ॥२८॥

तमोगुणसे पैदा हुई अन्य चीज़ोंसे पांच महा भूत पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश उत्पन्न हुये ॥२८॥

पञ्चविंशति तत्वानि प्रोक्तान्येतानि वै मया ।
एतान्येव विशेषेण ज्ञातव्यानि गुरोर्मुखात् ॥२९॥

यह २५ तत्त्व मैंने कहे। इनको विशेष रीतिसे गुरु के मुखसे सीखना चाहिये ॥ २९॥

आत्मानः प्रलये लीनाः प्रकृतौ सूक्ष्मदेहिनः ।
गुण-कर्म वशाद्ब्रह्मस्थावरान्त स्वरूपिणः ॥३०॥

सूक्ष्म शरीरधारी आत्मायें प्रलयमें प्रकृतिमें लीन हो जाती है। और प्रलय के बाद प्रकृति के गुणों और अपने कर्मों के कारण ब्रह्मा से स्थावर तक सब रूप धारण करते हैं ॥३०॥

प्रकृतौ सूक्ष्मरूपेण स्थितमेवाखिलं जगत् ॥
अभिव्यक्तं भवत्येव नासदुत्पत्तिरिष्यते ॥३१॥

वस्तुतः समस्त जगत् सूक्ष्मरूपसे प्रकृतिमें स्थित रहता है। यह केवल प्रकट हो जाता है। असत् अर्थात् शून्यसे कुछ उत्पन्न नहीं होता ॥३१॥

असदुत्पत्ति पक्षे च शशशृङ्गादि सम्भवेत् ।
असत्तैलं तिलादौ चेत्सिकताभ्योऽपितद्भवेत् ॥३२॥

अगर शून्य या असत्से उत्पत्ति मानी जाय तो खरगोशके सींग भी होने संभव हो जायँ। यदि तिल आदिमें तेल न होता तो रेत से भी तेल उत्पन्न हो सकता ॥३२॥

जनितं जनयेचेति यस्तु दोषस्त्वयेरितः ।
अभिव्यक्त मते न स्यादभिव्यञ्जक कारणैः ॥३३

तुमने जो सांख्यमतमें यह दोष लगाया है कि इसमें उत्पन्न हुई वस्तु फिर दूसरी चीज़ोंको उत्पन्न करने लगती हैं। यह ठीक नहीं है। क्योंकि हम मानते हैं कि जगत् पहले अव्यक्त दशामें रहकर फिर व्यक्त हो जाता है क्योंकि उसके व्यक्त होने के कारण मौजूद होते हैं ॥३३॥

आत्मानो बहवःसाध्या देहे देहे व्यवस्थिताः ।
एकश्चेद्युगपत्सर्वे म्रियेरन् सम्भवन्तु वा ॥३४॥

आत्मा बहुतसे हैं और अपने अपने देहमें मौजूद हैं। यदि एक ही आत्मा होता तो एक साथ ही सब उत्पन्न होते और एकसाथ मर जाते।

पश्येयुर्युगपत्सर्वे पुंस्येकस्मिन् प्रपश्यति ।
अतः स्यादात्मनानात्वमद्वैतं नोपपद्यते ॥३५॥

यदि एक ही आत्मा होता तो एक पुरुषके देखनेपर सब देखने लगते। इसलिये सिद्ध है कि आत्मा बहुतसे हैं। एक अद्वैत आत्मा सिद्ध नहीं होता ॥३५॥

आत्माज्ञातव्य इत्यादि विधिभिः प्रतिपादितः ।
निवृत्ति रूप धर्मः स्यान्मोक्षदोऽन्य प्रवर्तकः ॥३६॥

श्रुतिमें दो प्रकारका विधान है। एक निवृत्ति रूप और दूसरा प्रवृत्ति रूप। 'आत्मा जाननेके

योग्य है' इत्यादि उपदेश निवृत्तिरूप है जिससे मनुष्य सांसारिक झगड़ोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्त करता है। इससे भिन्न अन्य उपदेश प्रवृत्तिरूप हैं ॥३६॥

अग्निष्टोमादयो यज्ञाः काम्याः स्युर्विहिता अपि।
प्रवृत्तिधर्म्मास्ते ज्ञेया यतः पुंसां प्रवर्तकाः ॥ ३७॥

अग्निष्टोम आदि यज्ञ वेदोक्त हैं और काम्य हैं। परन्तु यह प्रवृत्ति धर्मके हैं क्योंकि इनसे मनुष्यकी प्रवृत्तिसांसारिक कार्योंमें लगती है ॥३७॥

धर्मेणोर्ध्वगतिः पुन्सामधर्मात्स्यादधोगतिः।
ज्ञानेनैवापवर्गः स्यादज्ञानाद्बध्यते नरः ॥ ३८ ॥

धर्मसे मनुष्यकी ऊपरकी ओर गति होती है और अधर्मसे नीचेकी ओर। ज्ञानसे मुक्ति होती है और अज्ञानसे बन्ध ॥३८॥

ब्रह्मार्पणतया यज्ञाः कृतास्ते मोक्षदा यदि।
अयज्ञत्वप्रसङ्गस्स्यान्मन्त्रार्थस्यान्यथाकृतेः ॥३६॥

अगर ब्रह्मको अर्पण करने के द्वारा यज्ञ मोक्ष को देने वाले होते हैं तो मन्त्रोंके दूसरा अर्थ करने पर प्रसङ्ग अयज्ञ का होगा।

यदि ब्रह्मको अर्पण करके जो यज्ञ किये जायें उनसे मोक्षकी प्राप्ति मानी जाय (न कि ज्ञानसे) तो मन्त्रोंका अर्थ अन्य प्रकार किया जानेसे यज्ञका प्रसंगही सिद्ध न होगा।

तस्माद्यागादयो धर्मास्संसारेषु प्रवर्तकाः।
निषिद्धेभ्योरेपि कर्त्तव्याः पुंसां संपत्ति हेतवः ॥४०॥

इसलिये यज्ञ आदि धर्म मनुष्य को संसारमें प्रवृत्ति कराते हैं। जो काम मनुष्यों को सम्पति दिलाते हैं वह निषिद्ध साधनोंसे भी करने चाहिए।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रहे कपिलवासुदेवसांख्यपक्षानाम नवम प्रकरणम्।

अब श्रीशंकराचार्य विरचित सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रहका कपिलवासुदेव सांख्य नामक ६ वां प्रकरण समाप्त हुआ।

दसवां अध्याय

अथ पतञ्जलिपक्षः

अथ सेश्वर साङ्ख्यस्य वक्ष्ये पक्षं पतञ्जलेः ।
पतञ्जलिरनन्तः साद्योगशास्त्र प्रवर्तकः ॥ १ ॥

अब पतञ्जलिके ईश्वरवादी साङ्ख्यका वर्णन करेंगे। योग दर्शनका निर्माता पतञ्जलि अनन्त था ॥१॥

पञ्च विंशतितत्त्वानि पुरुषं प्रकृतेः परम्।
जानतो योग सिद्धिः स्याद् योगाद्दोषक्षयो भवेत् ॥२॥

२५ तत्वों और प्रकृतिके परे पुरुषको जानकर योगकी सिद्धि होती है। योगसे दोषोंका क्षय होता है ॥२॥

पञ्च विंशति तत्त्वानि पुरुष प्रकृतिमहान्।
अहङ्कारश्च तन्मात्रा विकाराश्चापि षोडश ॥३॥
महा भूतानि चेत्येतदृषिणैव सुविस्तृतम्।
ज्ञान मात्रेण मुक्तिस्यादित्यालस्यास्य लक्षणम् ॥४॥

२५ तत्त्व अर्थात् पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, तन्मात्रायें और उनके १६ विकार, पाँच महाभूत इनका कपिल ऋषिने विस्तार पूर्वक वर्णन कर दिया। केवल ज्ञानसेही मुक्ति मानना आलस्यका लक्षण है ॥ ३—४ ॥

ज्ञानिनोऽपि भवत्येव दोषैर्बुद्धिभ्रमः क्वचित्।
गुरूपदिष्ट विद्यातो नष्टाविद्योऽपि पूरुषः ॥५॥
देह दर्पण दोषांस्तु योगेनैव विनाशयेत्।
सम्यग्ज्ञातो रसो यद्वद्गुडादेर्नानुभूयते ॥६॥
पित्त ज्वर प्रतैस्तस्माद्दोषानेव विनाशयेत्।
गुरूपदिष्ट विद्यस्य विरक्तस्य नरस्यतु ॥७॥
दोषक्षयकरस्तस्माद् योगादन्यो न विद्यते।
अविद्योपात्तकर्तृत्वात्कामात्कर्माणि कुर्वते ॥८॥
ततः कर्म विपाकेन जात्यायुर्भोग सम्भवः।
पञ्च क्लेशास्त्वविद्या च राग द्वेषौ तदुद्भवौ ॥९॥
अस्मिताभिनिवेशौ च तत्राविद्यैव कारणम्।
आत्म बुद्धिरविद्या स्यादनात्मनि कलेवरे ॥१०॥

जिन ज्ञानी पुरुषों ने गुरु-उपदेशको ग्रहण किया है उनको भी कभी २ दोषोंके कारण भ्रम

होजाता है। ज्ञानी पुरुषके शरीर रूपी दर्पणके दोष योगसे ही दूर हो सकते हैं। जिस प्रकार ज्वर वालेको गुड़का ज्ञान नहीं होता। इसलिये दोषोंको दूर करना चाहिये। इसलिये गुरुसे पढ़े हुये विरक्त मनुष्यके दोषोंका क्षय सिवाय योगके और किसी प्रकार नहीं हो सकता। मनुष्य अज्ञान से उत्पन्न हुई इच्छाओंके वश होकर कर्म करता है। और कर्म के फलसे जाति आयु, और भोग्य उत्पन्न होते है। पाँच क्लेश यह हैः—अविद्या, और उससे उत्पन्न हुये राग, द्वेष, अस्मिता (अहङ्कार) और अभिनिवेश (मौतका डर)। इस सबका कारण अविद्या है। जड़ शरीरको आत्मा मानना ही अविद्या है॥ ५—१० ॥

पञ्च भूतात्मको देहो देही त्वात्मा ततोऽपरः।
तज्जन्य पुत्र पौत्रादि सन्तानेऽपि ममत्वधीः ॥११॥

अविद्या देह भोग्ये वा गृह क्षेत्रादिके तथा।
नष्टाविद्योऽथ तन्मूलराग द्वेषादि वर्जितः॥ १२ ॥
मुक्तये योगमभ्यस्येदिहामुत्र फलास्पृहः।
चित्त वृत्ति निरोधे स्याद्योगःस्वस्मिन् व्यवस्थितः १३

शरीर पांच भूतोंसे बना है। आत्मा इस शरीर से परे है। शरीरसे उत्पन्न हुये पुत्र, पौत्र सन्तान, देहके भाग, घर खेत आदिमें ममत्व करना ही अविद्या है मुक्तिके लिये अविद्याको नष्ट करके, राग राग द्वेषको छोड़कर संसार और परलोकके फल की इच्छा न करता हुआ योग करे। चित्तकी वृतियोंका निरोध और अपनी आत्मामें स्थितिही योग है॥ ११—१३ ॥

वृत्तयो नात्र वर्ण्यन्ते क्लिष्टाक्लिष्ट विभेदिताः।
क्रियायोगं प्रकुर्वीत साक्षाद् योग प्रवर्त्तकम् ॥१४॥

क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों का यहाँ भेद नहीं किया जाता। उस क्रिया को करना चाहिये जिस से आगे योग की सिद्धि हो॥ १४ ॥

क्रिया योग स्तपो मन्त्रजपो भक्तिर्दृढेश्वरे।
क्लेश कर्म विपाकादि शून्य सर्वज्ञ ईश्वरः ॥१५॥

यह क्रियायें यह हैं तप, मंत्र का जप, और ईश्वर में दृढ़ भक्ति। ईश्वर सर्वज्ञ और क्लेश तथा कर्मों के विपाक से रहित है॥ १५ ॥

स कालेनानवच्छेदाद् ब्रह्मादीनां गुरुर्मतः।
तद्वाचकः स्यात्प्रणवस्तज्जपो वाच्य भावनम् ॥१६॥

वह काल से परे हैं। ब्रह्मा आदि का गुरु है। उसका वाचक 'ओ३म्' है। 'ओ३म्' का जाप करे और उस के वाच्य ईश्वर का ध्यान करे॥ १६ ॥

योगान्तरायनाशः स्यात्तेन प्रत्यङ् मनोभवेत्।
आलस्यं व्याधयस्तीव्राः प्रमादस्त्यानसंशयाः ॥१७॥
अनवस्थित चित्तत्वमश्रद्धा भ्रान्तिदर्शनम्।
दुःखानि दौर्मनस्यञ्च विषयेषु च लोलता ॥१८॥
श्वास प्रश्वास दोषौ च देह कम्पो निरङ्कुशः।
इत्येव मादयो दोषा योग विघ्नाः स्वभावतः ॥१९॥

योग की बाधायें दूर हो जाती हैं और मन भीतर को हो जाता है। योगकी बाधायें यह हैः—आलस्य, कड़े रोग, प्रमाद, सन्देह, चित्तका ढीलापन, अश्रद्धा, भ्रान्ति, दुःख, मनकी मलीनता, विषयोंमें लोलुपता, साँस लेने या सांस छोड़नेके दोष, शरीरमें कंपकंपी होना, इनसे योगमें बाधायें पड़ती हैं। १७—१९।

ईश्वर प्रणिधानेन तस्माद् विघ्नान् विनाशयेत्।
मैत्र्यादि भिर्मनः शुद्धिं कुर्याद् योगस्य साधनम्२०

इसलिये ईश्वर विश्वासको बढ़ाके विघ्नोंको दूर करे। मैत्री आदिसे मनकी शुद्धि करे यही योगका साधन है ॥२०॥

मैत्री कुर्यात् सुधोलोके करुणां दुःखिते जने।
धर्मोऽनुमोदनं कुर्यादुपेक्षाऽमेव पापिनाम् ॥२१॥

बुद्धिमानोंके साथ मित्रता करे, दुखीके साथ करुणा। धर्मका अनुसरण करे। और पापियों के साथ उपेक्षा करे ॥२१॥

भगवत्क्षेत्र सेवा च सज्जनस्य च सङ्गतिः।
भगवच्चरिताभ्यासो भावना प्रत्यगात्मनः ॥२२॥

तीर्थों की सेवा, सज्जनोंकी सङ्गति, ईश्वरके कामोंका अभ्यास, आन्तरिक आत्माकी भावना।

इत्येवमादिभिर्यत्नैः संशुद्धं योगिनोमनः।
शक्तं स्यादति सूक्ष्माणां महता मपि भावने ॥२३॥

इस प्रकारके यत्नोंसे योगीका मन शुद्ध होकर

सूक्ष्मसे सूक्ष्म और बड़ेसे बड़े विषयको समझनेके योग्य होता है ॥२३॥

योगाङ्गकारणाद् दोषे नष्टे ज्ञान प्रकाशनम् ।
अष्टाऽवङ्गानि योगस्य यमोऽथ नियमस्तथा ॥२४॥
आसनं पवनायामः प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
ध्यानं समाधिरित्येवं तानि विस्तरतोयथा ॥२५॥

योगके अङ्गोंके करनेसे दोष नष्ट हो जाता है और ज्ञानका प्रकाश होता है । योगके आठ अङ्ग यह हैं:-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,ध्यान, समाधि । उनका विस्तारसे वर्णन नीचे किया जाता है ॥२४-२५॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमः पञ्च भवन्त्येते जात्याद्यनुगुणा मताः ॥२६॥

पांच यम यह हैं अहिन्सा, सत्य, चोरी, त्याग, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, यह जाति* आदिके अनुकूल हैं ॥२६॥

*जाति-आयु-भोग (पातंजलिसूत्र २ ।१३)

नियमाश्शौचसन्तोष तपो मन्त्रेशसेवनाः ।
यमस्य नियमस्यापि सिद्धौ वक्ष्ये फलानिच ॥२७॥

नियम पांच हैं शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर सेवा । यम और नियमकी सिद्धि और फल कहते हैं ॥२७॥

अहिंसायाः फलं तस्य सन्निधौ वैरवर्जनम् ।
सत्यादमोघवाक्त्वं स्यादस्तेयाद्रत्न सङ्गतिः ॥२८॥

अहिन्साका फल यह है कि निकटमें बैर नहीं रहता । सत्यसे वाणीकी शुद्धि होती है। और चोरी त्याग से रत्न प्राप्ति ॥२८॥

ब्रह्मचर्याद्वीर्यलाभो जन्म धोर परिग्रहात् ।
शौचात्स्वाङ्गेऽजुगुप्सास्याद् दुर्जन स्पर्श वर्जनम् ॥२९

ब्रह्मचर्यसे वीर्यलाभ अर्थात् शक्ति मिलती है। अपरिग्रहसे जन्मोंका ज्ञान, शौचसे अपने शरीरसे घृणा नहीं रहती और दुर्जनके स्पर्श से घृणा होती है ॥२९॥

सत्व शुद्धि स्सौमनस्यमैकात्म्येन्द्रिय वश्यते ।
आत्मदर्शन योगत्वं मनश्शौचफलं भवेत् ॥३०॥

मन की शुद्धि का फल यह है शरीरकी शुद्धि मन का भला होना, एक काममें मन लगना, इन्द्रियोंका वशमें होना और आत्माके दर्शन की योग्यता ॥३०॥

अनुत्तमसुखावाप्तिः सन्तोषाद् योगिनो भवेत् ।
इन्द्रियाणाञ्च कायस्य सिद्धिः स्यात्तपसः फलम् ३१

योगीको सन्तोषसे बहुत सुख होता है। तप का फल यह है कि इन्द्रियोंमें और शरीर में शक्ति आ जाती है ॥३१॥

इन्द्रियस्य तु सिद्धया स्याद् दूरालोकादि सम्भवः ।
काय सिद्धयाणिमादिः स्यात्तस्य दिव्य शरीरिणः ३२॥

इन्द्रियोंकी शक्तिसे दूरकी वस्तु देखना असम्भव होता है । दिव्य मनुष्यके शरीर की सिद्धिसे अणिमा लघिमा आदि सिद्धि यें प्राप्ति होती हैं ॥३२॥

जपेन देवताकर्षः समाधिस्त्वीश सेवया ।
आसघंस्यात् स्थिरसुखं द्वन्द्वनाशस्ततो भवेत् ॥३३

जपसे देवताका आकर्षण होता है। और ईश्वर प्रणिधानसे समाधि । आसन सुखसे और निश्चल बैठनेका नाम है । उससे गर्मी सर्दी आदि द्वन्द्व नष्ट होते हैं ॥३३॥

पद्मभद्र मयूराख्यैर्वीर स्वस्तिक कुक्कुटैः ।
आसनै योग शास्त्रोक्तै रासितव्यञ्च योगिभिः ॥३४

योगियोंको चाहिये कि पद्म, भद्र मयूर वीर, स्वस्तिक, कुक्कट आदि योगशास्त्रमें बताये हुए आसनोंसे बैठें ॥३४॥

प्राणापान निरोधः स्यात् प्राणायामस्त्रिधाहिसः ।
कर्त्तव्यो योगिना तेन रेचक पूरक कुम्भकैः ॥३५॥

प्राण और अपानका रोकना ही प्राणायाम है। वह तीन तरहका है रेचक, पूरक और कुम्भक। योगीको चाहिये कि इन तीनोंका अभ्यास करे ॥३५॥

रेचनाद्रेचको वायोः पूरणात् पूरको भवेत ।
सम्पूर्ण कुम्भवत्स्थानादचलेस्सतु कुम्भकः ॥ ३६ ॥

हवाको बाहर निकालना रेचक, भीतर भरना पूरक, पूरे घड़ेके समान अचल रहना कुम्भक है ॥३६॥

प्राणायामश्चतुर्थः स्याद्रेचपूरक कुम्भकान्।
हित्वा निजस्थितिर्वायोरविद्या पापनाशिनी ॥३७॥

चौथा प्राणायाम है रेचक, पूरक, कुम्भकके अतिरिक्त वायुको अपनीही स्थितिमें रखना। इससे अविद्या और पापका नाश होता है ॥३७॥

इन्द्रियाणांच चरतां विषयेभ्यो निवर्तनम्।
प्रत्याहारो भवेत्तस्य फलमिन्द्रिय वश्यता ॥३८॥
चित्त स्यदेशबन्धः स्याद्धारणा द्विविधाहिसा।
देशबाह्यन्तरत्वेन बाह्यः स्यात् प्रतिमादिकः ॥३९॥

चंचल इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना प्रत्याहार है। उसका फल इन्द्रिय निग्रह है ॥३८॥

चित्तको एक देशमें बांधनेको धारणा कहते हैं। वह दो प्रकारकी होती है। भीतर और बाहरी क्योंकि देश बाहरी और भीतरी दोनों प्रकारका होता है। बाहरी प्रतिमा आदिसे होती है ॥३९॥

देश स्त्वाभ्यन्तरोज्ञेयो नाभिचक्रहृदादिकः।
चित्तस्य बन्धनं तत्र वृत्तिरेव न चापरम् ॥४०॥

नाभि चक्र, हृदय आदि भीतरी देश है। चित्त को वहां बांध देनाही वृत्ति है दूसरा नहीं ॥४०॥

नाभि चक्राति देशेषु प्रत्यय स्यैकतानता।
ध्यानं समाधिस्तत्रैव त्वात्मनः शून्यवत्स्थिति ॥४१॥

नाभि चक्र आदि देशोंमें मनका एकाग्र हो जाना ध्यान है। और उसी जगह आत्माकी शून्य वत् स्थितिको समाधि कहते हैं। अर्थात् जिस समय आत्मामें किसी अन्य वस्तुका ध्यान न रहे उसे समाधि कहते हैं ॥४१॥

धारणादित्रये त्वेकविषये पारिभाषिकी।
संज्ञा संयम इत्येषा त्रयोच्चारणलाघवात् ॥४२॥

धारणा, ध्यान, समाधि, इन तीनोंको जो एकही विषयसे सम्बन्ध रखते हैं छोटे रूपसे उच्चारण करनेके लिए 'संयम' नामसे पुकारा जाता है ॥४२॥

योगिनस्संयमजयात् प्रज्ञालोकः प्रवर्तते।
संयमस्स तु कर्त्तव्यो विनियोगोऽत्रभूमिषु ॥४३॥

संयमसे योगीकी बुद्धि बढ़ जाती है। संयम अवश्य करना चाहिये और उसका उपयोग इस प्रकार से है ॥४३॥

पञ्चेभ्योऽपि यमादिभ्यो धारणादित्रयंभवेत्।
अन्तरङ्गं हि निर्बीज समाधिः स्यात्ततः परम् ॥४४॥

यम आदि पांचों से धारण आदि तीन अधिक महत्वके हैं। निर्बीज समाधि उनसे परे है ॥४४॥

अजित्वा त्वपरां भूमिं नारोहेद्भूमिमुत्तराम्।
अजित्वारोहणे भूमेर्योगिनस्स्युरुपद्रवाः ॥४५॥
हिक्काश्वास प्रतिश्याय कर्णदन्ताक्षि वेदनाः।
मूकता जडताकासशिरो रोगज्वरास्त्विति ॥४६॥

नीचेके दर्जेको पार किये बिना ऊपरके दर्जेको न चढ़े। यदि कोई योगी नीचेके दर्जेका पार किये बिना ऊपरके दर्जे पर चढ़ेगा, तो उसे कुकुर खांसी, दमा, कान, दांत, आंखोंकी पीड़ा, गूँगापन, सुस्ती खांसी, सिरकी पीड़ा और ज्वर हो जानेका डर रहता है ॥४५-४६॥

यस्येश्वर प्रसादेन योगेभवति तस्यतु।
न रोगाः सम्भवन्त्येते येऽधरोत्तर भूमिजाः ॥४७॥

जिसको ईश्वरकी कृपासे योग आ जाता है उसको नीचेके दर्जे या ऊँचे के दर्जों से होनेवाली बीमारियां नहीं होती हैं ॥४७॥

एक एवाखिलो धर्मो बाल्य कौमार यौवनैः।
वार्धकेन तु कालेन परिणामाद्विनश्यति ॥४८॥

बाल्य कौमार और यौवन अवस्थाका धर्म एक ही है। अर्थात् इन अवस्थाओंमें वृद्धि होती है। परन्तु बृद्ध अवस्थामें परिपक्क हो जानेके कारण नाश होना (आरम्भ) होता है ॥४८॥

पराग्भूतस्य या तीडापिङ्गलाभ्यामहर्निशिम्।
कालस्तं शमयेत् प्रत्यगभिया तः सुषुम्नया ॥४९॥

जिनका चित्त बाहरकी ओर है उनका समय रात दिन ईडा और पिङ्गला नामी नाड़ियों द्वारा व्यतीत होता है। जिनका भीतरकी ओर है वह सुषुम्ना नाड़ी द्वारा समय व्यतीत करते हैं ॥४९॥

मुक्तिमार्गः सुषुम्ना स्यात् कालस्तत्रहि वञ्चितः।
चंद्रादित्यात्मकः कालस्तयोर्मार्गद्वयंस्फुटम् ॥५०॥

सुषुम्ना मुक्तिका मार्ग है। उसमें समय

मालूम नहीं पड़ता । कालके दो स्पष्ट मार्ग हैं चंद्रमार्ग और सूर्यमार्ग ॥५०॥

क्षीरात्समुद्धृतं त्वाज्यं न युतः क्षीरतां व्रजेत् ।
पृथक्कृतो गुणेभ्यस्तु भूयो नात्मा गुणी भवेत् ॥५१॥

दूधसे घी निकल कर फिर दूध नहीं होता इसी प्रकार आत्मा गुणोंसे अलग होकर फिर गुणोंका धारण नहीं करता ॥५१॥

यथानीता रसेन्द्रेण धातवश्शातकुम्भताम् ।
पुनरावृत्तये न स्युस्तद्वदा मापि योगिनाम् ॥५२॥

जैसे पारससे छूनेसे लोहा सोना हो जाता है, और फिर लोहा नहीं हो सकता । इसी प्रकार योगियोंका आत्मा भी फिर पुरानी दशाको प्राप्त नहीं होता ॥५२॥

नाडी चक्रगतिर्ज्ञेया योग मभ्यस्यतां सदा ।
सुषुम्ना मध्यवंशास्थि द्वारेणतु शिरोगता ॥५३॥

योगियोंका नाड़ी चक्रका ज्ञान अवश्य होना चाहिये । सुषुम्ना नाड़ी पीठके मध्य भागकी हड्डीके द्वारा शिरको जाती है ॥५३॥

इडा च पिङ्गला घ्राणप्रदेशे सव्य दक्षिणे ।
इडा चन्द्रस्यमार्गो स्यात्पिङ्गला तु रवेस्तथा ॥५४॥

इडा नाकके बायें नथनेमें चन्द्रमार्ग है पिङ्गला नाकके दाहिने नथनेमें सूर्य्य मार्ग है ॥५४॥

कुहूरधो गतालिङ्ग वृषणं पायुमप्यसौ ।
विश्वोदरा धारणा च सव्येतरकरौ क्रमात् ॥५५॥

कुहू नाड़ी नीचेको जाती है वह लिङ्ग, अण्ड कोश और गुदा तक गई है । विश्वोदरा बांई तरफ़ और धारणा दाहिनी तरफ़ है ॥५५॥

सव्येतरांघ्री विज्ञेयौ हस्ति जिह्वा यशस्विनी ।
सरस्वती तु जिह्वा स्यात् सुषुम्नापृष्ठनिर्गता ॥५६॥

हस्तिजिह्वा बायें पैरकी है, यशस्विनी दाहिने पैरकी । सरस्वती जीभकी है और सुषुम्नाके पीछेसे निकली है ॥५६॥

तत्पार्श्वयोः स्थितौ कर्णौ शङ्खिनी च पयस्विनी ।
गान्धारी सव्य नेत्रं स्यान् नेत्रंपूषा तु दक्षिणम् ॥५७॥

शङ्खिनी और पयस्विनी उनके पास हैं और दोनों कानोंकी हैं । गान्धारी बांई आंखकी है और पूषा दाहिनी आँखकी ॥५७॥

ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि स्युर्नाड्यः कण्ठाद्विनिःसृताः ।
नाड्योहि योगिनां ज्ञेयाः सिरा एव न चापराः ॥५८॥

कण्ठसे निकली हुई नाड़ियां ज्ञान और कर्म इन्द्रियाँ है । योगियोंको जानना चाहिये कि नाड़ियाँ सिरा अर्थात् पतली पतली नलिकायें हैं । इनसे भिन्न नहीं ॥५८॥

प्राणादि वायु संचारो नाडीष्वेव यथा तथा ।
ज्ञातव्यो योग शास्त्रेषु त द्व्यापार च दृश्यताम् ॥५९॥

प्राण अपान आदि वायुका संचार नाड़ियों द्वारा जिस प्रकार होता है वैसा योग शास्त्रोंमें दिया है उसको जानना चाहिये ॥५९॥

योगीतु संयमस्थाने संयमात्सर्वविद्भवेत् ।
पूर्वजाति परिज्ञानं संस्कारे संयमाद्भवेत् ॥६०॥

संयमके लिये जो जो स्थान नियत हैं उनमें संयम करनेसे योगी सर्वज्ञ हो जाता है । संस्कारके सम्बन्ध (*) में संयम करनेसे उसे पहले जन्मोंका ज्ञान हो जाता है ॥६१॥

*(देखो योग सूत्र ३ । १८)

हस्त्यादीनां बलानि स्युर्हस्त्यादि स्थान संयमात् ।
मैत्र्यादि लभते योगी मैत्र्यादि स्थान संयमात् ॥६१॥

हाथी आदिके स्थानमें संयम करनेसे हाथी आदिका बल हो जाता है । मित्रता आदिके स्थान में संयम करनेसे मित्रता आदिकी प्राप्ति होती है ॥६१॥

चन्द्रे स्यात्संयमात्तस्य तारका व्यूह वदनम् ।
ध्रुवेऽनागतविज्ञानं सूर्येस्याद्भुवनेषु धीः ॥८२॥

चांदमें संयम करनेसे तारोंका ज्ञान होता है । ध्रुवमें संयम करनेसे भविष्यका ज्ञान होता है । सूर्यमें संयम करनेसे संसार भरका ज्ञान होता है ॥६२॥

(क्रमशः)

सूर्य्यमंडल

सूर्य्य

[लेखक — शंकरलाल जिंदल, एम. एस-सी.]
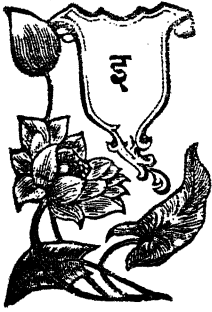
इस लेखमें सूर्य्यका कुछ उल्लेख करेंगे। सूर्य्य सारे मांडलका केन्द्र है। आठों ग्रह अपने अपने उपग्रहोंके साथ सर्वदा इसके चारों ओर बिना आराम किए चक्कर लगा रहे हैं।

बीचमें सूर्य्य देव हैं जो सारे वंशके पिता कहे-जासकते हैं। इन्हींकी शक्तिसे सारे ग्रह प्रकाशमान हैं। सूर्य्य किसी ग्रहको आलसमें नहीं देख सकता। इसी कारण उनको बड़े वेगसे अपने गिर्द घुमाता है। प्रकृति देवी भी हमको यही शिक्षा देती है कि हे मनुष्यों आलससे बचो वरन् तुम्हारा नाश होजावेगा। हमारी सारी शक्ति सूर्य्यसे ही आती है। यदि सूर्य्य अपनी शक्ति हमको देना बंद कर दे तो हमारा नाश फौरन हो जावे। आप जो बड़े बड़े कारखानोंमें कलें चलते देखते हैं और नित्य रेल अथवा मोटरकारोंमें बैठे घूमा करते हैं, यह सब हमारे सूर्य्य देवके प्रतापके ही कारण हैं। सूर्य्यकी शक्ति कोयले (coal) के अन्दर छिपी हुई है और उसी कोयलेको हम जलाकर पुनः उसकी शक्तिको काममें लाते हैं। यदि आप कहें कि पानीके झरनोंसे जो काम लिया जाता है वह तो सूर्य्यसे कोई संमबन्ध नहीं रखता, इसका उत्तर यह है कि पानी भी तो सूर्य्यकी ही शक्तिके द्वारा वाष्प बनकर आकाशमें उड़ता है और फिर पानीके रूपमें ऊंचे स्थानोंमें बरसता है जोकि झरनोंके काम आता है।

देखनेमें सूर्य्य एक छोटी सी रकाबीके बराबर है, परन्तु वास्तवमें वह पृथ्वीसे हजारों गुना बड़ा है। एक मिट्टीके बड़े घड़ेके सामनेसे जैसे एक मटरका दाना है वैसे ही हमारे सूर्य्यके समाने यह पृथ्वी है। छोटा दिखाई इस वास्ते देता है कि वह यहांसे ९३००००००० मील दूर है। रोशनी को जो एक सेकंडमें १८६००० मील चलती है सूर्य्यसे यहांतक आनेमें उसको ८ मिनट लगते हैं। यदि एक डाक गाड़ी हमारी पृथ्वीके चारों ओर चले तो वह २१ दिनमें चक्कर समाप्त करेगी। सूर्य्यके चारों ओर घूमनेमें उसको ७ वर्ष लगेंगे और यहांसे सूर्य्य तक ३२५ वर्षमें पहुंचेगी। सूर्य्यका व्यास diameter ८६५००० मील है और उसकी मात्रा पृथ्वीकी मात्रा से ३३२००० गुनी है

सूर्य्यकी रोशनी इतनी तेज़ है कि यदि आकाशमें ६००००० चाँद हों तब कहीं उसकी रोशनीकी बराबरी हो सके उसकी सतहका तापक्रम ५०००° से ६०००°शतांश है। उबलते हुए पानीका तापक्रम १००° शतांश होता है। सूर्य्यकी प्रत्येक वर्ग सैन्टीमीटर सतहसे १ मिनटमें इतनी गर्मी निकलती है कि वह ८९००० ग्राम पानीके तापक्रमको एक डिगरी शतांश बढ़ा देगी। अब प्रश्न यह होता है कि इतनी गर्मी कहां से आती है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि सूर्य्यकी सतह बराबर सिकुड़ती जाती है और इसकी वजहसे काफ़ी गर्मी पैदा होती। एक और नया कारण यह बतलाया जाता है कि परमाणुओंके विछिन्न (decompose) होनेसे सूर्य्यकी गर्मी क़ायम रहती है।

सूर्य्य अपनी कीलीपर चक्कर लगा रहा है, जिसका समय २५ दिन है। इसके अतिरिक्त वह हर साल ३७२०००००० मील हरिकुलस hercules नक्षत्रकी ओर बढ़ता चला जा रहा है। सूर्य्यके सबसे भीतरवाले भागको हम नहीं देख सकते हैं। जो हिस्सा हमें दिखाई देता है उसको आलोक-मंडल (photosphere) कहते हैं। इसके चारों ओर वर्ण-मंडल (chromosphere) व छटामंडल (corona) है। प्रत्येक लाखों मीलोंतक फैले हुआ है ये दोनों मंडल केवल सूर्य्य ग्रहणके दिन देखे जा सकते हैं।

सूर्य्यके अन्दर ४० मूल तत्त्व पाये जाते हैं इनमें से खास खास लोहा, नकलम्, टिटेनम् मगनीरूम्, रागेम्, कोवल्टम् कर्बन, खटिकेम्, उद्जन और हिमजन हैं। आलोकमंडल (photosphere) में काले काले धब्बे नज़र आते हैं, इन्हींको चाल को देखकर यह पता लगा कि सूर्य्य भी अपनी कीलीपर चक्कर लगा रहा है।

सबसे ज्यादा धब्बे लगभग ११ सालमें आते हैं और उन दिनोंमें हमारी पृथ्वी पर बवंडर cyclones, उत्तराकाशीय तेजपुज aurora borealis और चुम्बकीय आंधी magnetic storms आती हैं।

सूर्य्यके और भी थोड़ेसे गुण कहनेके बाद यह लेख समाप्त किया जायगा। यह तो आपको मालूम ही हो गया है कि सूर्य्य ही हमको सारी शक्ति देता है। यदि हिन्दू लोग इसकी पूजा करते थे तो क्या आश्चर्य्यकी बात है। विलायतमें जहां कि सूर्य्य इतना अधिक नहीं निकलता जितना कि हमारे यहां, यह मालूम किया गया है कि इसकी रोशनी बच्चोंके लिये (नहीं नहीं सब ही प्राणी मात्र के लिये) जो कि सूखेके रोगसे ग्रसित हैं बड़ी लाभ दायक है। मनुष्यको उचित है कि प्रतिदिन अपने शरीरको कुछ देर सूर्य्यकी किरणोंमें रक्खे। यही कारण था कि हमारे पूर्वज नहानेके बाद सूर्य्यको जल चढ़ानेके ही बहाने अपने शरीरको उसकी किरणोंमें कुछ देर रखते थे। मेरा विश्वास है कि यदि हिन्दुओंकी पिछली बातोंपर पूर्ण विचार किया जाय तो कई अविष्कार हो जायंगे। मकान ऐसे बनने चाहिये जहां कि सूर्य्यका प्रकाश भली भांति जा सके। कभी कभी अपने कपड़ोंको भी इसकी रोशनीमें डाल देना चाहिये।

सूर्य-सिद्धांत

[ले०—श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव]

[गतांकसे आगे]

अमान्त कालिक सायन सूर्य = २६३°१४' (पृष्ठ १०३)

∴ अमान्तकालिक विश्लेषांश = २१°·२९'

∴ सूर्य या चन्द्रमाका लंबन = $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ४ × ·७२४२ × ज्या २१°२९'

= ४ × ·७२४२ × ·३६६२

= १·०६०८घड़ी

= १ घड़ी ३·६५ पल

यह पच्छिम लम्बन है क्योंकि त्रिभोन लग्नसे सूर्य पच्छिम है। इसलिए इसको अमावस्यान्त कालमें जोड़नेपर भोगांश-लंबन-संस्कृत-अमावास्यान्त काल आवेगा।

सूर्योदयसे अमावास्यान्तका समय = १४ घड़ी ४५ पल

पच्छिम भोगांश लंबन = १ घड़ ३·६ पल

∴ सूर्योदयसे लंबन-संस्कृत-अमावास्यान्तकाल = १५घड़ी ४८·६ पल

अर्थात् लंबनके कारण चन्द्रमा सूर्यके सामने सूर्योदयसे १५ घड़ी ४८·६ पलपर आवेगा। यह भी बिल्कुल शुद्ध नहीं है, इस लिए असकृत्कर्म करना आवश्यक है अर्थात् अब यह देखना चहिए कि सूर्योदयसे १५ घड़ी ४८·६ पलपर क्या लंबन होता है। इस कालके लिए इस समयका उदय लग्न, त्रिभोन लग्न, मध्य लग्न इत्यादि जानना चाहिए जिसके लिए वही क्रिया फिर दुहरानी पड़ेगी जो पृष्ठ १०९से ११५तक दिखलाई गई है।

१५ घड़ी ४८·६ पल (सावन) = १५ घड़ी ५१·१ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदयका विषुवकाल = ५० घड़ी ५५·७ पल (पृष्ठ १०९)

∴ लंबन संस्कृत अमावास्यान्तके समय विषुवकाल

= ६ घड़ी ४६·८ पल

= ४०°४१' के लगभग

पृष्ठ ११०के समीकरणोंमें ३४°१९को जगह ४०°४१' रख कर सरल करनेसे इस समयकी उदय लग्न और अग्रा आजायगी क्योंकि और गुणक सामान्य हैं। इसलिए

लरि स्परे $\frac{1}{2}$ (व का + का पू) = लरि कोज्या ४५°५६'·५ + लरि स्परे २०°२०'·५ − लरि को ज्या ६९°२३'·५

= ९·८४२२ + ९·५६६१ − ९·५४६४

= ९·८६४९

∴ $\frac{\text{व का + कापू}}{२}$ = ३६°१४'

∴ व का + कापू = ७२°२८' ....(३)

लरि स्परे $\frac{1}{2}$ (व का — का पू) = लरिज्या ४५°५६'·५ + लरि स्परे २०°२२'·५ − लरि ज्या ६९ २३'·५

= ९·८५६५ + ९·५६६१ − ९·९७१२

= ९·४५४३

∴ $\frac{\text{व का − का पू}}{२}$ = १५°५३'

∴ व का − का पू = ३१°४६' ....(४)

समीकरण (३) और (४) से,

व का = ५२°७'

का पू = २०°२१'

∴ सूर्योदयसे १५ घड़ी ४८·६ पलपर उदय लग्न ५२°७′ और अग्रा २०°२१′ है ।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न = ५२°७′ − ९०° = ३२२°७′

और विषुवकाल = ४०°४१′

∴ पृष्ठ ११२ की तरह च = व ९०° − ४०°४१′ = ४९°१९′

∴ स्परे व म = $\frac{\text{स्परे ४९°१९′}}{\text{ज्या २३°२७′}}$

∴ लरि स्परे व म = लरि स्परे ४९°१९′ − लरि कोज्या २३°२७′

= १०·०६५७ − ९·९६२५ = १०·१०३२

∴ व म = ५१°४५′

∴ सायन मध्य लग्न = ३६०° − ५१°४५′ = ३०८°१५′

मध्य लग्नकी क्रान्तिज्या = ज्या ३०८°१५′ × ज्या २३°२७′

= − ज्या ५१°४५′ × ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्ति ज्या = ९·८९५० + ९·५९९९९ = ९·४९४९,

∴ मध्यलग्नकी दक्षिण क्रान्ति = १८°१३′

काशीका उत्तर अक्षांश = २५°२०′

∴ मध्य लग्न का नतांश = ४३°३३′

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर = ३२२°७′ − ३०८°१५′ = १३°५२′

∴ त्रिभोन लग्नके नतांशकी कोटिज्या = $\frac{\text{कोज्या ४३°३३′}}{\text{कोज्या १३°५२′}}$

∴ लरि नतांश कोज्या = लरि कोज्या ४३°३३′ − लरिकोज्या १३°५२′

= ९·८६०२ − ९·९८७२ = ९·८७३०

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश = ४१°४३′

सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति = ६१′·३७

∴ सूर्यकी एक घड़ीकी गति = १′·०२३

सूर्यकी ३ पलकी गति = ·०५१

∴ सूर्यकी एक घड़ी ३ पलकी गति = १′·०७

अमान्त कालिक सायन सूर्य = २९३°१४′

∴ लम्बन संस्कृत अमान्तकालिक सूर्य = २९३°१५′

त्रिभोन लग्न = ३२२°७′

सायन सूर्य = २९३°१५′

∴ विश्लेषांश = २८°५२′

दृग्गति = त्रिभोन लग्नकी नतांश कोटिज्या

= कोज्या ४१°४३′

∴ छेद = $\frac{१}{\text{४ दृग्गति}} = \frac{१}{\text{४ कोज्या ४१°४३′}}$

∴ सूर्य का लंबन = $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ४ कोज्या ४१°४३′ ज्या २८°५२′

= ४ × ·७४६४ × ·४८२८ घड़ी

= १.४४२ घड़ी

= १ घड़ी २६·५ पल

सूर्योदयसे अमावस्यान्तका समय = १४ घड़ी ४५ पल

सूर्यका लंबन = १ घड़ी २६·५ पल

∴ द्वितीय लंबन संस्कृत अमावस्यान्तकाल

= १६ घड़ी ११·५पल

इस समयका त्रिभोन लग्न जानकर फिर लंबन जानना चाहिये:—

१६ घड़ी ११·५ पल (सावन) = १६ घड़ी १४·२ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदयका विषुवकाल = ५० घड़ी ५५·७ पल

∴ द्वितीय लंबन संस्कृत अमान्त कालका विषुवकाल

= ७ घड़ी ९·९ पल

=४३° के लगभग

∴ लरि स्परे ½ (व का + का पू)=लरि कोज्या ४५°५६′·५ +लरि स्परे २१°३′ – लरिकोज्या ६९°२३′·५

= ९·८४२२ + ९·५९५४ – ९·५४६४

= ९·८९१२

∴ (वका + कापू)/२ = ३७°५४

∴ व का + का पू = ७५°४८′

लरि स्परे ½ (व का – का पू) = लरिज्या ४५°।६′·५ + लरि स्परे २१°३०′ – लरि ज्या ६९°२३·५

= ९·८५६५ + ९·५९५४ – ९·९७१३

= ९·४८०६

∴ (व का—का पू)/२ = १६°४९′·५

∴ व का – का पू = ३३°३९′

∴ व का=५४°४३′·५

और का पू = २१°४′·५

∴ सूर्योदयसे १६ घड़ी ११·५ पलपर उदय लग्न ५४° ४३′·५ और अग्रा २१°४′·५

∴ इस समय त्रिभोन लग्न = ५४°४३′·५ – ९०°= ३२४° ४३′·५

और इस समय विषुवकाल =४३°

∴ चव =९०° – ४३°=४७°

∴ स्परे व म = स्परे ४७° / कोज्या २३°२७′

∴ लरि स्परे वम = लरि स्परे ४७° – लरिकोज्या २३°२७′

= १०·०३०३ – ९·९६२५=१०·०६७८

∴ वम = ४९°२७′

∴ सायन मध्यलग्न = ३६०° – ४९°२७′ = ३१०°३३′

∴ मध्यलग्नकी क्रान्तिज्या= ज्या ३१०°३३′ × ज्या२३°२७′

= – ज्या ४९°२७′ × ज्या २३°२७′

लरि क्रान्तिज्या = ९·८८०७ + ९·५९९९=९·४८०६

∴ क्रान्ति = १७°३९′ दक्षिण

काशीका अक्षांश = २५°२०′

मध्यलग्नका नतांश=४२°५६′

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्नका अन्तर = ३२४°४३′·५ – ३१०°३३′ =१४°१०′·५

∴ त्रिभोन लग्नकी नतांश कोटिज्या= कोज्या ४२°५६′ / कोज्या १४°१०′·५

∴ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या ४२°५६′ – लरि कोज्या १३′१०′·५

= ९·८६४६ – ९·९८६५=९·८७८१

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश=४०°५७′

सूर्यकी १ घड़ीकी गति = १·′०२३

सूर्यकी २० पलकी गति = ·३४१

५ " = ·०८५

१ " = ·०१७

·५ " = ·००६

∴ १ घड़ी २६·५ पल की गति = १'·५

अमान्त कालिक सायन सूर्य = २६३°१४'

१ घड़ी २६·५ पलकी गति = १'·५

∴ द्वितीय लंबन संस्कृत अमान्तकालका सूर्य = २९३°१५'·५

त्रिभोन लग्न = ३२४°४३'·५

∴ विश्लेषांश = ३०°२८'

दृग्गति = त्रिभोन लग्नकी नतांश कोटिज्या = कोज्या ४०°५७'

$$∴ छेद = \frac{१}{४दृग्गति} = \frac{१}{४ कोज्या ४०°५७'}$$

$$∴ लंबन = \frac{ज्या विश्लेषांश}{छेद}$$

= ४ कोज्या ४०°५७' × ज्या ३०°२८'

= ४ × ·७५५३ × ·५०७०

= १ घड़ी ३३ पल

सूर्योदयसे अमान्तकाल तकका समय = १४ घड़ी ४५ पल

तीसरी बारका लंबन = १ घड़ी ३२ पल

∴ तीसरी बारके लंबनसे संस्कृत अमान्तकाल = १६ घड़ी १७ पल इस प्रकार पहले लंबनसे अमावस्यान्तकाल १५ घड़ी ४८·६ पलपर, दूसरे लंबनसे १६ घड़ी ११·५ पलपर और तीसरे लंबनसे १६ घड़ी १७ पल पर होता है। इससे प्रकट है कि पिछले अमावस्यान्तकालोंमें केवल ५·५ पलका अन्तर है। यदि दो तीन बार और संस्कार किया जाय तो अन्तर शून्य हो जायगा। इस दशामें जो अमावस्यान्तकाल आवेगा वही शुद्ध अमावस्यान्त होगा। अनुमानसे जान पड़ता है कि जो अमावस्यान्तकाल तीसरी बारमें आया है उससे शुद्ध अमावस्यान्त केवल दो या तीन पल अधिक होगा। इसलिए दो तीन पलके लिए दो तीन बार और संस्कार करनेमें झंझटके सिवा विशेष लाभ नहीं है। इसलिए मान लिया जात है कि लंबन संस्कृत शुद्ध अमावस्यान्तकाल सूर्योदयसे १६ घड़ी १७ पलपर है। यही सूर्य ग्रहणका मध्यकाल समझना चाहिए। यहांतक ९ वें श्लोकतककी क्रिया समाप्त हुई।

नति—

१० वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमाकी मध्यगतियोंके अंतरको दृक्क्षेपसे गुणा करना चाहिए। परन्तु मेरी समझमें यदि स्पष्ट गतियोंके अंतरसे गुणा किया जाय तो अधिक शुद्धता होगी।

सूर्य और चंद्रमाकी दैनिक गतियोंका अंतर = ७९२'·३४३ (देखो पृष्ठ ९६)

दृक्क्षेप त्रिभोनलग्नकी नतांश ज्या = ज्या ४०°५७'

$$∴ नति = \frac{७९२'·३४३ × ज्या ४०°५७'}{१५} = \frac{७९२'·४३ × ·६५५४}{१५} = ३४'·६२$$

यहां त्रिज्याके भाग देनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि ज्याका मान दशमलव भिन्नमें लिया गया है। यह दक्षिण है क्योंकि मध्यलग्नका नतांश दक्षिण है।

∴ चंद्रमाकी ६० घड़ीकी गति = १४°१३'·७

" १ " " = १४′१३″·७

" ३० पल " = ७′ ६″.६

" २ " " = २८″·५

∴ चन्द्रमाकी १ घड़ी ३२ पलकी गति=२१′४६″ =२१′·८

गणित सिद्ध अमावस्यान्त कालिक चंद्रमा=६रा०°३२′·८

∴लंबन संस्कृत अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा=६रा०°५४′·६

" " राहु =३६°२८′·०

राहुसे चंद्रमाका अन्तर =५रा२४°२६′·६

=१७४°२६′·६

∴ चन्द्रशरकी ज्या= ज्या १७४°२६′·६ × ज्या ४° ३०′ / ३४३८

= ज्या ५°३३′·४ × ज्या ४°३०′ / ३४३८

= ३३३·४ × २७० / ३४३८

=२६′·१८

यह उत्तर शर है क्योंकि राहुसे चंद्रमा आगे है परन्तु ६ राशिसे कम दूर है।

∴ नति संस्कृत चंद्रशर=—३४′·६२ + २६′·१८=—८′·४४

अर्थात् नति संस्कृत दक्षिण चन्द्रशर=८′·४४

चंद्रकक्षामें सूर्यबिम्बका स्फुट व्यास=३३′·६३४

चंद्रमाका स्फुट व्यास =३४′·५५५

छाद्य अथवा सूर्यका व्यासार्ध =१६′·८१७ के लगभग

छादक अथवा चन्द्रमाका = १७′·२७८

∴मानैक्यखंड =३४′·१० "

और मानान्तर खंड =०′·४६ "

ग्रासका परिमाण=मानैक्यखंड—नति संस्कृत चंद्रशर

=३४′·१—८′·४४

=२५′·६६

यह चन्द्रबिम्बके व्याससे छोटा है इस लिए सर्व ग्रास ग्रहण न लगेगा वरन् खंड ग्रहण लगेगा। (देखो पृष्ठ ६५६ और श्लोक ११ चं० ग्र०)

पृष्ठ ६६८ के अनुसार

स्थित्यर्ध= ६० घड़ी × √{(३४·१ + ८·४४)(३४·१ — ८·४४)} / ७६२·३४३

= ६० × √{४२·५४ × २५·६६} / ७६२·३४३

= ६० × √१०६१·५८ / ७६२·३४३

= ६० × ३३·०३६ / ७६२·३४३

= १६८२३४० / ७६२३४३ घड़ी

= २ घड़ी ३०·११ पल

= २ घड़ी ३० पल

∴ स्पर्शकाल=१६ घड़ी १७ पल—२ घड़ी ३० पल

=१३ घड़ी ४७ पल

अर्थात् काशीमें सूर्योदयसे १३ घड़ी ४७ पलपर ग्रहणका स्पर्श होगा। परन्तु यह स्थूल है। सूक्ष्म गणना करनेके लिए इस समयका भी लंबन और नति फिर निकाल कर स्थित्यर्ध

इत्यादि जानना चाहिए जैसा कि श्लोक १४—१७ में बतलाया गया है।

१३ घड़ी ४७ पल (सावन)=१३ घड़ी ४९·३ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदयका विषुवकाल=५० घड़ी ५५·७ पल

∴ स्पर्शकालके समय विषुवकाल=४ घड़ी ४५ पल

= २८°३०′

∴ लरि स्परे ½ (व का + का पू) = लरि कोज्या ४५° ५६′·५ + लरि स्परे १४°१५′ – लरि कोज्या ६९°२३′·५

= ९·८४२२ + ९·४०४८—९·५४६४

= ९·७००६

∴ स्परे ½(व का + का पू)=२६°३९′

∴ व का + का पू = ५३°१८′

लरि स्परे ½ (व का – का पू) =९·८५६५ + ९·४०४८—९·९७१३

=९·२९००

∴ ½ (व का – का पू) =११°२′

∴ व का – का पू =२२°४′

∴ व का =३७°४१′

और का पू = १५°३७′

∴ सूर्योदयसे १३ घड़ी ४७ पलपर उदय लग्न ३७°४१ और अग्रा १५°३७′ है।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न = ३७°४१′—९०°=३०७°४१′

और " विषुवकाल = २८°३०′

पृष्ठ ११२ की तरह व व =९०° – २८°३०′=६१°३०′

$$\therefore \text{स्परे व म} = \frac{\text{स्परे ६१°३०'}}{\text{कोज्या २३°२७'}}$$

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ६१°३०′ - लरि कोज्या २३°२७′

= १०·२६५२ – ९·९६२५=१०·३०२७

∴ व म = ६३°३१′

∴ सायन मध्य लग्न = ३६०° – ६३°३१′=२९६°२९′

मध्य लग्नकी क्रान्ति ज्या =ज्या २९६°२९′ × ज्या २३°२७′

=– ज्या ६३°३१′ × ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्ति ज्या =९·९५१९ + ९·५९९९=९·५५१८

∴ मध्यलग्नकी दक्षिण क्रान्ति=२०°५२′

काशीका उत्तर अक्षांश = २५°२०′

∴ मध्य लग्नका नतांश = ४६°१२′

मध्यलग्न और त्रिभोन लग्नका अन्तर = ३०७°४१′ – २९६°२९′ = ११°१२′

$$\therefore \text{त्रिभोन लग्नके नतांशकी कोटिज्या} = \frac{\text{कोज्या ४६°१२'}}{\text{कोज्या ११°१२'}}$$

∴ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या ४६°१२′ – लरि कोज्या ११°१२′ = ९·८४०२ – ९·९९१६=१९·८४८६

∴ त्रिभोन लग्नका नतांश = ४५°६′

दृग्गति = त्रिभोनलग्नकी नतांश कोटिज्या = कोज्या ४५°६

$$\therefore \text{छेद} = \frac{१}{\text{४ कोज्या ४५°६'}}$$

सूर्योदयसे १४ घड़ी ४५ पलपर स्पष्ट सायन सूर्य = ९रा२३°१४′

१ घड़ीकी सूर्यकी गति = १′

∴ १३ घड़ी ४५ पल पर अथवा स्पर्श कालिक सूर्य = ९रा२३°१३′

त्रिभोन लग्न = ३०७°४१′
= २६३°१३′

विश्लेषांश = १४°२८′

नतांश = $\frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

= ज्या १४°२८′ × ४ × कोज्या ४५°६′

= ४ × ·२४९८ × ·७०५९

= ·७०५३ घड़ी

= ४२·३ पल = ४२ पल

मध्य ग्रहणकालका लंबन = १ घड़ी ३२ पल

∴ दोनोका अन्तर = ५० पल

इसलिए १६ वें श्लोकके पूर्वार्धके अनुसार

स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध = प्रथम स्थित्यर्ध + ५० पल

= २ घड़ी ३० पल + ५० पल

= ३ घड़ी २० पल

इसलिए सूर्योदयसे स्पर्शकाल तकका समय

= सूर्योदयसे मध्यग्रहणका समय-३ घड़ी २० पल

= १६ घड़ी १७ पल − ३ घड़ी २० पल

= १२ घड़ी ५७ पल

∴ काशीमें सूर्योदयसे १२ घड़ी ५७ पलपर ग्रहणका स्पर्श होगा ।

इसी प्रकार स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी जान लेना चाहिये ।

इस गणनासे स्पष्ट है कि काशीमें सूर्यग्रहणका स्पर्श और मोक्ष दोनों देख पड़ेगा । परन्तु यह बात काशीमें एकत्र हुए किसी मनुष्यको नहीं देख पड़ी जैसा कि लोगोंका अनुभव है । इसका कारण यह है कि सूर्यसिद्धान्तके अनुसार जो मूलाङ्क आये हैं वे बहुत स्थूल हैं । इसी कारण यद्यपि लग्नके नतांश इत्यादि के जाननेकी रीति बिल्कुल बदल दी गयी है तो भी सूक्ष्मता नहीं आसकी । इन मूलाङ्कोंमें सबसे बड़ी अशुद्धि राहुके मूलाङ्कमें है जैसा कि चन्द्रग्रहणाधिकारमें बतलाया गया है ।

राहु मूलङ्क शुद्ध लेनेपर क्यादशा होती है !

१९२६ ई० के नाविक पचांगके अनुसार ११ जनवरी सोमवारको ग्रीनिच के मध्यम मध्याह्नकालमें सायन राहुका स्थान ११५०·७५०५ था । इस समय काशीमें मध्यह्नोपरान्त १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल हुआ था (देखो पृष्ट ३७०), जो मध्यम प्रातःकालसे २८ घड़ी ५०·५ पल होता है । इस समयसे माघी अमावस्याके अन्ततक अर्थात् गुरुवारके मध्यम प्रातः कालके १६ घड़ी ५४ पलतक २ दिन ४८ घड़ी ३·५ पल होता है । इतने समयमें राहुकी गति इस प्रकार निकली:—

१ दिनकी गति	=	0°·0५२९५
	१५	
२ ”	=	0°·१०५९0
३० घड़ीकी गति	=	0°·२६४८
१५ ”	=	0·0१३२४
३ ”	=	0·00२६५
३ पल की गति	=	0·0000४
योग	=	0·१४८३

यह घटानेपर सायन राहुका स्थान हुआ, ११५°·६०२३

= ११५°३६'·१

परन्तु ग्रयनांश = २२°४१'

∴ राहुका निरयन भोगांश (ग्रमावस्यान्त कालमें)

= ९२°५५'

चन्द्रमाका निरयन " = २७०°३३'

∴ राहुसे चन्द्रमाका ग्रन्तर = १७७°३८'

यदि चन्द्रमाका परमशर ४°३०' की जगह ५°८'४२" माना जाय (देखो पृ० ११३) तो

चन्द्रशर ज्या = ज्या १७७°३८' × ज्या ५°८'४२"

= ज्या २°२२' × ज्या ५°८'४२"

= ·०४१३ × ·०८९७

= ·००३७

∴ चन्द्रशर = १२'४०" उत्तर = १२'·६७ उत्तर

नति = ३४·६२ दक्षिण

∴ नति संस्कृत चंद्रशर = २१'·९५ दक्षिण

∴ ग्रासका परिमाण = मानैक्य खंड—नति संस्कृत चन्द्रशर

= ३४'·१ − २१'·९५

= १२'·१५

इस प्रकार यहाँ भी सिद्ध होता है कि यदि राहुका भोगांश ठीक ठीक लिया जाय तो भी ग्रासका परिमाण १२'·१५ होता है अर्थात् ग्रहणका स्पर्श और मोक्ष काशीमें देखा जा सकता है परन्तु यह भी अनुभवमें नहीं आया। इसलिए अब यह देखना है कि यदि सूर्य और चन्द्रमाके लंबन नति और स्फुट व्यास इत्यादि दृग्गणितके अनुसार और नवीन रीतियोंसे निकाले जाँय तो क्या अन्तर पड़ता है।

नाविक पंचांगके अनुसारः—

अमावस्यान्त कालमें चन्द्रमाका क्षितिज लंबन = ६१'१२" = ६१'·२

" " उत्तर शर = ७'४४" = ७'·७

" " व्यासार्ध = १६'४०"·६ = १६'·६८

" सूर्यका व्यासार्द्ध = १६'१७"·२ = १६'·२९

त्रिभोन लग्न और मध्यलग्न वही माने जाते हैं जो पहले निकाले गये हैं।

पृष्ठ ५८६ के सूत्र (च) के अनुसार

भु = लि ज्या त्रा कोज्या श − लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व

जहां त्रा त्रिभोन लग्नका नतांश, लि चन्द्रमाका क्षितिज लंबन, श चन्द्रमाका शर, व विश्लेषांश और भु नति है।

∴ नति = ६१'·२ ज्या ३२४°४३'·५ कोज्या ७'·७ − ६१'·२ कोज्या ३२४°४३'५ × ज्या ७'·७ × कोज्या ३०°२८'

= ६१'·२ × ·५७७६ × ·९९९९ − ६१'·२ × ·८१६४ × ·००२२ × ·८६१९

= ६१'·२(·५७७६ × ·९९९९ − ·८१६४ × ·८६१९ × ·००२२)

= ६१·२(·५७७५४ − ·००१५५)

= ३५'·२५

चन्द्रशर उत्तर = ७'·७

∴ नति संस्कृत चन्द्रशर = २७'·६

मानैक्यखंड = १६'·६८ + १६'·२९ = ३२'·९७ = ३३'·०

∴ ग्रासका परिमाण = ३३'·० − २७'·६ = ५'·४

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यदि राहु, चन्द्रमा और सूर्यके व्यास, लंबन और नति नवीन गणनानुसार लिये जायँ तो ग्रास केवल ५ कलाके लगभग होता है जो उद्योग करने-पर देखा जा सकता है। परन्तु प्रत्यक्ष ऐसा नहीं देख पड़ा था इसलिए आवश्यक है कि नवीन गणना से चन्द्रमा, सूर्य के भोगांश और अमावस्यान्तकालका भी निश्चय करना चाहिए।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २४ } कुम्भ, संवत् १९८३ { संख्या ५

विभाजन (Distribution)

मजदूरी (Wages)

[ले० श्री विश्वप्रकाश विशारद]

गानवाले लेखमें भूमिके मालिकका भाग दिया जा चुका है। अब मजदूरोंके श्रमके लिये निश्चय करना है कि कितना दिया जाय। श्रमकी उत्पादनमें कितनी आवश्यकता होती है इसका वर्णन किया जा चुका है।

मजदूरीके मिलनेके भिन्न भिन्न रूप होते हैं। जिस समय सिक्के प्रचलित न थे यह कार्य्य अनाज आदिक वस्तुओंके देनेसे किया जाता था। पर जो धन सिक्कोंसे मिलता है वह वास्तविक मजदूरी नहीं है। वास्तविक मजदूरी तो सन्तुष्टि है जो इससे होती है। चार आनेका मूल्य एक गाँव वालेके लिये नगरकी अपेक्षा अधिक है। ग्रामीण उससे जितना सन्तुष्ट हो सकता है उतना नगरवासी न होगा। इसका कारण यह है कि प्रायः मनुष्य ग्राममें कम व्यय करके भी अच्छी तरह रह सकता है। ग्राममें सभी वस्तुयें सस्ती मिलती हैं। मकान १) या १॥) में बहुत बड़ा घर मिल सकता है। खेतोंकी पैदावार जिसके लिये नगरोंमें अधिक देना पड़ता है वहां कम व्यय किये हुये ही मिल सकती है। नगरमें एक मामूली मकान पांच या छः रुपयेको नहीं मिलता। भोज्य पदार्थ भी अधिक मूल्य पर ही बिकते हैं। इन सबके अतिरिक्त ग्राममें थोड़ासा ही व्यय करके मनुष्य प्रभावशाली और धनी बन जाता है पर नगरमें अधिक धन देकर भी वह अवस्था नहीं हो पाती। यही कारण है कि ग्रामके मजदूर कम मजदूरी पाते हैं और

नगरके बहुत अधिक । नगरके मजदूर अधिकप ाते हुये भी इतने सुखी नहीं होते जितने ग्रामके। इसलिये वास्तविक मजदूरी ही मुख्य चीज़ है।

अर्थशास्त्रका सिद्धान्त है कि वास्तविक मजदूरी सदा बराबर ही रहेगी । व्यवस्थापक मजदूरको कितना देगा? व्यवस्थापक कभी भी उत्पादनसे अधिक नहीं दे सकता यदि सौ मजदूर काम करते हैं तो एक दिनमें मानलिया जाय कि १००) का काम किया। एक मजदूर और करनेके लिये रख लिया गया। अब १००॥) की आय हुई। इससे यह पता चलता है कि इस आदमीके बढ़ जानेसे केवल ॥) की वृद्धि हुई। इस मजदूरका व्यवस्थापक ॥) से अधिक नहीं दे सकता । यदि यही मजदूर अन्तिम मजदूर (Marginal Labour) है अर्थात् जितनी आयकी बृद्धि होती है उतना व्यय भी होता है, तो व्ययवस्थापक उसके उत्पादनमेंसे मशीन आदिमें जो पूंजी लगी है उसका ब्याज और अन्य वस्तुओंका मूल्य निकालकर उसे मजदूरीके रूपमें दे देगा। शेष जितने मजदूर हैं वे भी अन्तिम मजदूरसे अधिक न पायेंगे । यदि कोई उस मजदूरी पर काम न कर पायेगा तो वह छोड़ जायगा और रिक्त स्थान पर अन्तिम मजदूर रख लिया जायगा। इस तरह मजदूरोंकी मजदूरी सदा अन्तिम मजदूरके बराबर हो हाती है।

पूर्व यह कहा जा चुका है कि समान श्रमकी वास्तविक मजदूरी भी समानही होती है। अब तक तो यही बतलाया गया है कि सब मजदूर अन्तिम मजदूरके बराबर ही पाते हैं । मान लिया जाय कि दर्जी और मोचीके काम समान श्रमके हैं। यदि दर्जी उतने ही श्रमके लिये अधिक पाता है और मोची कम तो थोड़ेसे मोची उस कामको छोड़कर दर्जीके काम करनेको तैयार हो जायंगे। पर दर्जीका काम शिक्षित (Skilled) है और अच्छा दर्जी बननेके लिये शिक्षाकी आवश्यकता होती है । इसलिये मोची जल्दी दर्जीका काम नहीं करने लगते। पर वे अपने लड़कोंको दर्जीका काम सिखाने लगेंगे। इस बीचमें दर्जी अधिक लाभ उठा लेंगे। परन्तु जब मोचीके लड़के दर्जी गीरीका काम सीख जायंगे तो दर्जियोंकी संख्या बढ़ जायगी और वे आपसमें नौकरीके लिये झगड़ने लगेंगे । इस दशामें दर्जियोंको कम मजदूरी मिलेगी। अब दर्जियों और मोचियोंकी मजदूरी समान होगई पर क्योंकि उनका श्रम समान है। पर मजदूरी समान होनेमें थोड़े दिन अवश्य लग जाते हैं।

शिक्षित मजदूरोंकी मजदूरी समान होनेमें समय लगता है, पर अशिक्षित मजदूरों (unskilled labour) की मजदूरी बहुत जल्दी समान हो जाती है। शिक्षित मजदूरोंमें देरी इसलिये लगी थी कि मजदूरोंको सीखना पड़ा। पर अशिक्षित मजदूरोंको कोई विशेष सीखना नहीं पड़ता। यह कारण है कि जब वे किसी उद्योगमें अधिक मजदूरी मिलते देखते हैं तो वहीं चले जाते हैं। अशिक्षित मजदूरोंमें मजदूरी बहुत जल्दी समान हो जाती है।

पर एक उद्योगसे दूसरे उद्योगमें जानेके लिये भी कई रुकावटोंका सामना करना पड़ता है। बहुत सी जातियोंमें स्थान न परिवर्त्तन करनेका रोग विद्यमान है । भारतवर्ष भी इस रोगसे बहुत कुछ रुग्ण है।

ऐसे स्थानों पर जहांके निवासी स्थान परिवर्तन नहीं करना चाहते उद्योगमें बड़ी बाधा पड़ती है और सब व्यवस्थापकोंको अधिक मजदूरी देनी पड़ती है। ऐसी अवस्थामें समान श्रमकी समान मजदूरी नहीं होसकती क्यों कि किसी स्थानपर आवश्यकता से अधिक मजदूर होंगे और कहीं पर आवश्यकता से कम। जहाँ आवश्यकतासे अधिक मज़दूर होंगे वहाँ मजदूरी कम होगी और जहाँ आवश्यकतासे कम होंगे वह मजदूरी अधिक होगी। स्थान परिवर्त्तनके अतिरिक्त जातिके बन्धन एक उद्योगको छोड़कर दूसरा उद्योग नहीं करने देते। एक दर्जी एक मोची का काम जातिके बन्धनोंसे नहीं करता और

इस कामको नीच समझता है। ब्राह्मण अपनी पूजा के सिवाय और कुछ काम नहीं कर सकता। नाई हजामत ही बना सकता है। भारतवर्षमें इन पाखण्डके कारण उद्योग नहीं चल सकता। पाश्चात्य देशमें यह बातें नहीं पाई जाती और मजदूरका मुख्य ध्येय अधिक मजदूरी ही होता है। यदि ऐसी रुकावटें किसी देशमें होती हैं तो समान श्रमके लिये समान मजदूरी नहीं होसकती।

मजदूरी देने की रीति

प्रायः मजदूरी देनेकी दो रीतियां मैं। एकतो समयके अनुसार और दूसरी कामके अनुसार। मजदूर जो काम करनेके लिये रक्खे जाते हैं और जिनको मजदूरी महीने, सप्ताह और दिवसके हिसाबसे मिलती है वह समयके अनुसार अपनी मजदूरी पाते हैं। बहुत से मजदूर ठेके पर रक्खे जाते हैं। वे यदि एक काम कर देते हैं तो उनको निश्चित मजदूरी मिल जाती है। आजकल यह प्रथा बहुत चल गई है।

मजदूरी में अन्तर

उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्ति भी बहुतसे कारण हैं जिनकी वजहसे मजदूरीमें अन्तर हो जाता है। बहुतसे उद्योग नीच समझे जाते हैं ऐसोंमें उनके श्रमके हिसाबसे, अधिक मजदूरी देनी पड़ती है। अस्वस्थवायुमें काम करने, जैसेकि खानों आदिमें काम के लिये कुछ अधिक देना होता है। यहां पर जीवन का जोखम होता है वहां काम करनेवाले अधिक पाते हैं बहुतसे उद्योगोंमें साल भर काम नहीँ होता और थोड़े दिन काम करके साल भरकी कमाई निकालना होता है। जैसे दर्जीका काम है उसको जाड़े और गर्मीके शुरू होनेपर काम मिलता है उसके बाद नहीं। राज भी सालभरमें कई महीने मकान नहीं बना सकते। ऐसे लोग अपने श्रमसे अधिक पाते हैं।

स्त्रियों की मजदूरी

स्त्रियां पुरुषोंसे कम मजदूरी पाती हैं। इसका कुछ कारण तो यह है कि वे पुरुषोंसे कम काम करती है। इससे अतिरिक्त वह गृहस्थ चलानेके लिये थोड़ी और आय कर लेती है। उनकी आय पुरुषोंकी आयसे मिलकर समुचित होजाती है।

सूर्य मण्डल

बुध और शुक्र

[शङ्करलाल जींदल, एम. एस-सी.]

ध सूर्यके सबसे समीपवाला ग्रह है। इसको अङ्गरेजीमें Mercury कहते हैं। यह हमारी पृथ्वीसे इतना छोटा है कि २१ बुध मिलकर कहीं इस पृथ्वीके बराबर हो सकते है। सूर्यसे इसका फ़ासला ३६,०००,००० मील है। यदि एक डाकगाड़ी बुधसे सूर्यकी ओर रवाना हो और कभी रास्तेमें न ठहरे तो उसको ८३साल सूर्यतक पहुँचनेमें लग जावेंगे। यदि हमारी उम्र सफ़र शुरू करनेके पहिले १७ सालकी हो तो हम १०० वर्षकी उम्रमें सूर्यमें जो बिराजमान होंगे। लेकिन आजकल कौन १०० वर्षका होता है इससे हम रास्तेमें ही परलोक सिधार जावेंगे। बुध सूर्यके चारों ओर केवल ८८ दिनमें ही चक्कर लगा लेता है और अपनी देहका वही भाग सर्वदा सूर्यकी ओर रखता है जैसे चन्द्रमाका वही भाग हमारी पृथ्वीकी तरफ़ रहता है, अर्थात बुध अपनी कीली पर घूमनेमें भी ८८ दिन ही लेता है। इसकी रफ़्तार फ़ी सेकेण्ड ३० मील है। बुधके पास कोई उपग्रह (satelite) नहीं है। हमको बुध केवल सुबह और शामके समय ही दिखाई देता है क्योंकि वह हमारी पृथ्वी और सूर्यके बीचमें है। दुरबीनसे यदि बुधको देखा जावे तो वह भी चन्द्रमाकी तरह घटता बढ़ता दिखाई देगा। एक ख़ास बात यह है कि बुध हमको सूर्यके disc अर्थात् थाली में होकर कभी-कभी एक काला सा धब्बा

सा जाता हुआ दिखाई पड़ता है। हम यह ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि बुधमें वायु है कि नहीं। हां यह निश्चय है कि इसमें जीव जन्तु कोई भी नहीं रहता। चूंकि इसकी सतह काली है इस वास्ते यह विशेष प्रकाशमान् नहीं दिखाई देता है।

शुक्र—बुधके बादमें शुक्रका नम्बर है। वह हमारी पृथ्वीसे कुछ ही छोटा है। अङ्गरेजीमें इसको Venus कहते हैं। पाश्चात्य कवियोंने इसको प्रेमकी देवी (goddess of love) माना है। सूर्यसे इसकी दूरी ६८,०००,००० मील है। यह सूर्यकी करिक्रमा साढ़े सात मासमें कर आता है। बुधकी तरह यह भी अपनी सतहका वही भाग सूर्यकी ओर रखता है। इस वास्ते वहां दिन रात नहीं होते। एक भागमें सर्वदा दिन रहता है और दूसरे भागमें सर्वदा रात रहती है। इसमें हवा है और कुछ मेघ भी हैं जो कि बहुत चमकते हैं। शुक्र सबसे अधिक चमकीला ग्रह है। बीस पच्चीस तारोँकी ज्योति मिलकर कहीं इसकी रोशनीके बराबर होगी। एक तरफ़ इसके बहुत ठण्ड है और दूसरी ओर गर्मी। इसी वास्ते ठण्डकी तरफ़ पानी जमा हुआ रहता है और दूसरी ओर वाष्प बनकर हवामें रहता है। वहाँ बड़ी बड़ी आंधी सर्वदा चलती रहती हैं। वहाँ जीवोंका होना असम्भव नहीं है। परन्तु ठीक ठीक नहीं कह सकते। यदि वहां जीव है तो वे पृथ्वीके जीवोंसे बिलकुल भिन्न हैं। उनको पानीके लिए अंधेरी तरफ़ जाना पड़ता होगा और धूपके लिए उजालेमें आना पड़ता होगा। अर्थात् आबादी अधिकतर उन्हीं हिस्सोंमें होगी जहां कि प्रकाश और अंधेरा मिलते हैं। यह भी बुधकी तरह सूर्यकी थाली disc में कभी कभी एक काला धब्बा होकर जाता दिखाई देता है और चूंकि यह हमारी पृथ्वी और सूर्यके बीचमें है इसलिए दुरबीनमें चांदकी तरह घटता बढ़ता नज़र आता है और सिर्फ़ सुबह वा शामके समय दिखाई देता है। इसका उपग्रह कोई नहीं है।

हिन्दुओंमें विवाह आदि उन दिनोंमें नहीं होते जब कि शुक्र छिप जाते हैं। इसको दैत्योंका गुरु माना है और बृहस्पतिको देवताओंका गुरु माना है इसका कारण यह है कि हिन्दू लोग उदित तारोंको देवता और छिपे तारोंको दैत्यके नामसे पुकारते थे। चूंकि बृहस्पति रात्रिमें पूर्वसे निकलकर पच्छिमकी ओर जाता दिखाई पड़ता था और सबसे अधिक प्रकाशमान् है इसलिए इसको देवताओंका गुरु कहा है। शुक्र केवल सुबह वा शामके समय ही दिखाई पड़ता था और छिपे हुए तारोंमें रहता है इसलिए इसको दैत्योंका गुरु माना है।

मङ्गल

शुक्र के वाद पृथ्वी और पृथ्वीके बाद मङ्गलका नम्बर आता है। हमारी पृथ्वीका रास्ता शुक्र और मङ्गलके रास्तोंके बीचमें है। अङ्गरेज़ीमें मङ्गलको Mars कहते हैं। यह लाल रङ्गका तारा है। आजकल वह रातके दस बजे सिरके ऊपर दिखाई देता है। इसके देखनेके लिए ज्योतिषी लोग बड़ा प्रयत्न करते हैं क्योंकि यह हमारे समीप है और यह सम्भावनाकी जाती है कि वहां भी जीव जन्तु रहते हैं। दूरबीनमें वह इतना बड़ा दीखता है जितना कि हमको चाँद वैसे ही दिखाई पड़ता है। इसका फ़ासला सूर्यसे ११८,०००,००० मील है यह पृथ्वीसे इतना छोटा है कि चार मङ्गल हमारी पृथ्वीके बराबर होते हैं। सूर्यकी परिक्रमा करनेमें इसको १ साल ११ मास लगते हैं और पृथ्वीकी भांति दिन रात होते हैं। इस वास्ते कहा जाता है कि यहां जीव-जन्तु व पेड़-पौधे और मनुष्यकी तरह बुद्धिमान प्राणीका होना बहुत सम्भव है। मङ्गलका एक दिन व एक रात मिलकर २४॥ घंटे होते हैं। यानी हमारे यहांसे केवल आधे घण्टेका अन्तर है। मङ्गलमें हवा है कुछ पानीकी भाप भी मिली हुई है किन्तु पृथ्वीकी तरह मङ्गलका आकाश मेघोंसे ढका नहीं रहता। दुरबीनके देखनेसे जो सफ़ेद दाग़ दिखाई देते हैं वे ध्रुवीय स्थान (polar regions) हैं जहांपर बर्फ़ जमी हुई है। गर्मीमें यह पिघल जाती है। मगङ्गमें जो रेखायें

हैं वह सब नहर हैं इनमें तीन मासतक गर्मीमें जल रहता है इसके बाद जल बिलकुल दिखाई नहीं देता। जब जल दिखाई देता है तभी पेड़ पौदे भी उगते हैं। बाक़ी महीनोंमें रेगिस्तानके सदृश रहता है और मङ्गलका लाल रङ्ग बालूके ऊपरकी चमकती हुई धूपका ही रङ्ग है। कुछ ज्योतिषियों का विचार है कि सीधी नहरें बुद्धिमान् प्राणियोंकी बनाई हुई हैं। यदि वहाँ प्राणी हैं तो वे दुःखी होंगे क्योंकि वहां वर्षा नहीं होती। जब नहरोंमें बर्फ़का पानी आता होगा तब वे साल भरका प्रबन्ध कर लेते होंगे। वहां कुएँ भी नहीं हो सकते और खेती बाड़ी भी करना कठिन है। बर्फ़का पानी आने पर झटपट खानेके पदार्थोंका प्रबन्ध करना पड़ता होगा मङ्गल धीरे धीरे मरणासन्न हो रहा है। किसी समय हवा थी परन्तु व्यास छोटा होनेसे उसकी आकर्षण शक्ति कम है जिसकी वजहसे हवाका बहुत सा अंश महा आकाशमें चला गया। समुद्र भी सूखे ही मालूम होते हैं, क्योंकि जल भी पदार्थोंके साथ मिल गया है। मङ्गलके दो चांद हैं जो कि बहुत छोटे हैं। इनके नाम फ़ोबो (Phobo) और डीमो (Diemo) हैं, फ़ोबो कुछ बड़ा है और इसका घेर १०० मीलसे कुछ भी अधिक है। डीमो का घेर केवल ३० मील है, फ़ोबो मंगल का चक्कर एक दिनमें ३ दफ़ा लगाता है और इसी वास्ते मंगलकी रातमें दो पूर्णिमा होती हैं। डीमो का चक्कर ३०½ घण्टेका है वहां रातमें कभी अंधेरा नहीं होता।

बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नैपचुन

बृहस्पति—मंगल ग्रहके बाद बृहस्पतिका नम्बर आता इन दोनों ग्रहोंके बीचका फ़ासला बहुत ज्याद है। हिसाब लगानेसे मालूम हुआ है कि इन दोनोंके बीचमें एक और बड़ा ग्रह होना चाहिये। बड़ी बड़ी दुरबीनोंके द्वारा अनुसंधान करनेसे यह पता लगा है कि इस जगहमें बड़ा ग्रह तो कोई नहीं है परन्तु उसके बजाय छोटे छोटे ग्रह बहुतसे हैं जो कि कभी मिलकर एक बड़ा ग्रह बनाते थे। इनको अब ग्रह कणिका कहते हैं। यह भी सूर्य्यके चारों ओर चक्कर लगाते हैं।

बृहस्पति सब ग्रहोंसे बड़ा है इसलिये इसको ग्रह राज कहते हैं। आज कल शामके वक्त यह ग्रह दक्षिण आकाशमें दिखाई देता है। इसकी चमक सब ग्रहोंसे अधिक है। हिन्दुओंमें इसको गुरु भी कहते हैं और विवाह आदि शुभ कार्योंमें इसका बड़ा विचार किया जाता है। हमारी पृथ्वीसे यह १३०० गुणा बड़ा है। यह सूर्य्य की परिक्रमा १२ वर्षमें करता। है इसकी गति ८ मील फ़ी सेकिन्ड है। अपनी कीलीके उपर यह केवल १० ही घण्टेमें चक्कर लगा लेता है। इसमें कुछ अपना तेज भी है। इसी वास्ते वह ख़ूब उजला दिखाई देता है। वज़नमें यह केवल ३०० पृथ्वीके ही बराबर है। इसके ८ चांद हैं। पहले ४ चाँद हमारे चांदके ही बराबर हैं और बाक़ी ४ चाँद बहुत ही छोटे हैं जो कि मामूली दुरबीनसे दिखाई नहीं देते। यदि कोई छोटी दुरबीन आपको मिल जावे तो बृहस्पतिको अवश्य ही देखियेगा। इसके ४ बड़े चाँदोंसे बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई देता है।

नदी समुद्र तथा जीव जन्तु वहाँ कुछ भी नहीं हैं। बहुत गर्म है और गर्म भाप उसमें है जो कुछ कुछ जल रही है। उसके बारेमें अधिक मालूम नहीं क्योंकि भापसे ढका है।

शनि-बृहस्पतिके बादका ग्रह शनि है। इसका फ़ासला हमारी पृथ्वीसे सूर्य्यके फ़ासलेका नौ गुना है। वह इतना बढ़ा है कि ७८३ पृथ्वी उसके बराबर होती हैं। चूंकि यह सभी वाष्पीय पदार्थ हैं इसलिए वह वजनमें बहुत हल्का है, इसमें काले काले दाग़ दिखाई देते हैं, जो गरम भापके इकट्ठा होनेसे मेघ समान बन गये हैं। सूर्य्यकी परिक्रमा करनेमें इसको ३० वर्ष लगते हैं।

इसकी रफ़्तार ६ मील फ़ी सेकिन्ड है। अपनी कीलीपर यह १० घण्टे १४ मिनट में ही घूम लेता है। सूर्य्यके प्रकाशके साथ शनि अपना भी प्रकाश देता है इस वास्ते वह अच्छी तरह चमकता है।

इसके चारों ओर तीन चक्र हैं जो कि करोड़ों छोटे बड़े जड़ पिण्डोंकी कतारोंसे बने हैं। शनिके १० चाँद हैं, जिनके कारण वहां रात्रिमें अँधेरा कभी नहीं होता। शोक इस बातका है कि वहाँ कोई मनुष्य नहीं है।

यूरेनस—इस ग्रहको हमारे पूर्व पुरुष नहीं जानते थे। हैर्शिलने इसको सबसे पहले मालूम किया। यहाँसे उसकी दूरी सूर्य्यकी दूरीसे १८ गुणी है। इसका आकार हमारी ६५ पृथ्वीके बराबर है परन्तु उसका कुल वज़न १४ पृथ्वीके वज़नके ही बराबर है। इसकी गति फी सैकन्ड ४ मील ही है, इस वास्ते इसको सूर्य्यकी परिक्रमा करनेमें ८४ वर्ष लगते हैं। अपनी कीलीपर यह ग्रह केवल ६॥ घंटेमें ही घूम लेता है। इसमें ४ चाँद है, सबसे बड़ा हमारे चाँदसे भी छोटा है। वहाँसे सूर्य एक बड़े तारेके समान दीखता है।

नेपचुन-सूर्य्य मंडलका यह सबसे आख़री ग्रह है। इसके बादका हाल मालूम नहीं है। हमारे पूर्वज इसको भी नहीं जानते थे। इसका आविष्कार केवल गणितसे ही हुआ है। यहाँसे इसकी दूरी सूर्य्यकी दूरीसे ३० गुणी है। इसका आकार २५ पृथ्वीके आकारके बराबर है।

इसकी गति फी सेकिन्ड ३॥ मील है और सूर्य्यकी परिक्रमाका समय १६५ वर्ष है। सूर्य्यकी रोशनी वहाँपर हमारे चाँदकी रोशनीसे कुछ ही अधिक पहुँचती होगी। वहांसे सूर्य्य एक छोटा सा तारा दीखता होगा। चूंकि यह सारा वाष्पसे बना है इस लिए वजनमें वह केवल १७ पृथ्वीके वज़नके बराबर है। इसका १ चांद है जो ६ दिनमें इसके चारों ओर घूम जाता है।

—

ताम्र

[ले०—श्री विमलकुमार मुकर्जी, एम. एस-सी.]

पृथ्वीके आदिम निवासियोंके इतिहासमें ताँबेके विषयमें कुछ न कुछ विवरण पाया जाता है। यद्यपि यह सत्य है कि प्रस्तर ही मनुष्य जातिकी सभ्यताका आदि सोपान स्वरूप माना जाता है तथापि ताम्र धातु भी प्रायः पहलेसे ही मानव जीवनके बहुधा नित्य प्रयोजनीय कामोंमें आ रहा है। लौहके गुणोंके परिचय पानेके बहुत पूर्वसे ही ताम्र युद्धके अस्त्र शस्त्र तथा तैजस पत्रोंके बनानेके कामोंमें लाया जाता था।

आदि रासायनिक ताम्रको मङ्गल नक्षत्रका दर्पण समझा करते थे और इसीकारण उन्होंने इस धातुका चिन्ह "♀" निश्चित किया था।

ताम्र धातु बहुत ही स्वच्छ अवस्थामें पृथ्वीके बहुत स्थानोंमें पाया जाता है। यथा, अमेरिकाके "सूपीरियर" झीलके किनारे "मिचीगन" के सन्निकट यह धातु बहुधा मिलता है। पृथ्वीके नाना स्थानोंमें तांबा खानोंमेंसे निकाला जाता है किन्तु इन खनिज पदार्थोंमें तांबा गन्धक, लौह आदि धातुओंके सहित मिला रहता है।

प्रतिबिम्बित आलोकमें ताम्रका रंग लाल जान पड़ता है परन्तु इसके पतले पत्रके भीतर होकर जो रोशनी निकलती है उससे उसका रङ्ग हरा दिखाई देता है। तांबा जब उत्तापसे पिघलनेकी अवस्थामें आ जाता है तब वह कांचकी तरह तोड़ा जा सकता है, यहां तक कि इस अवस्थामें इसका चूर्ण भी बन सकता है। यदि एक टुकड़ा तांबा गरम किया जाय और फिर शीघ्र ही पानीमें डाला जाय तो वह ठण्डे होनेपर कड़ा पड़ जाता है और आघात प्राप्त होनेसे शीघ्र ही टूट जाता है, परन्तु यदि धीरे-धीरे ठण्डा हो तो वह कोमल रहता है और ऐसे तांबेके तार खींचे जा सकते हैं और पत्र बन सकते हैं।

तांबेमें अति उत्तम प्रकारसे उत्ताप और वैद्युतिक प्रवाह चल सकते हैं और इसी कारण तांबेका तार वैद्युतिक कामोंमें बहुधा काममें आता है। परन्तु इन विशेष गुणोंको पानेके लिये यह धातु बहुत ही स्वच्छ रहनी चाहिये और किसी प्रकारका दूसरा पदार्थ उसमें मिला न रहना चाहिये।

तांबा प्रायः १०८६° श तापक्रमपर पिघलता है। इसकी भापका वर्ण हरा होता है। वायुका ताँबेपर कोई असर नहीं होता है परन्तु हवामें जलकण तथा कर्बन द्विओषिदकी उपस्थितिमें इस धातुपर एक नीला सा पदार्थ जम जाता है। गीली मिट्टीमें कुछ दिनतक गड़े रहनेसे भी तांबेपर ऐसा ही रङ्ग पड़ जाता है। इस धातुपर ठंडी अवस्थामें उदहरिकाम्ल और गन्धकाम्लका कोई असर नहीं पड़ता है, यद्यपि गर्म अवस्थामें इन अम्लतत्वोंमें तांबा धीरे धीरे गल जाता है। नोषिकाम्लमें ठण्डे व गर्म किसी अवस्थामें भी यह धातु सुगमतासे घुलनशील है। अमोनिया साधारण वायुकी उपस्थितिमें ताँबेपर बहुत शीघ्र ही काम करता है और इस धातुको गलाकर एक गाढ़ा नीला रङ्गका पदार्थ बना देता है।

इस धातुका परमाणुभार ६३.५७ है।

ताँबा वैद्युतिक कामोंमें बहुत लगाया जाता है और इससे बर्तन और इञ्जनके ब्वायलर आदि भी बनते हैं। जहाज़ोंको जड़नेके लिये ताँबेकी कीलें तथा चद्दर काममें लाई जाती हैं। इसका कारण यही है कि समुद्रके पानीमें इस धातुका क्षय बहुत कम होता है। प्रायः सब देशोंमें छोटे छोटे सिक्के तांबेके ही बनते हैं। यहांके पैसोंमें प्रायः प्रति १०० भागमें ६५ भाग तांबा, ४ भाग रांगा और १ भाग जस्ता रहता है। सोने और चांदीके सिक्कोंमें प्रति १०० भागमें ८--१० भाग तांबा मिश्रित रहता है। दूसरे धातुओंके साथ तांबा मिलानेपर बहुत सी व्यवहारमें उपयोगी धातुयें बनती हैं। यथा, पीतलमें १ भाग जस्ता और २ भाग तांबा रहता है। प्रति १०० भागमें तांबा ८०—९० भाग, जस्ता १--२५ भाग और रांगा १--१८ भाग मिलने पर कांसा बनता है। जर्मन सिल्वर के प्रति १०० भागमें तांबा ५०--६० भाग, जस्ता २० भाग, और निकल २५--२७ भाग रहते हैं।

खनिज धातुसे ताम्र निकालनेकी विधि

इस लेखके पूर्वमें ही कहा गया है कि तांबा प्रायः अन्यान्य पदार्थोंके सहित खानोंमेंसे निकाला जाता है। स्वच्छ तांबा पानेके लिये इसके साथी खनिज पदार्थोंको भली भांति निकाल देनी चाहिये। वर्त्तमान समयमें निम्नलिखित प्रथासे तांबा शोधा जाता है:—

सबसे पहिले खानमें से निकाले हुए धातुके छोटे छोटे टुकड़े बनाये जाते हैं और उसके साथ लगी हुई मिट्टी इत्यादि धोकर निकाल दी जाती है। अब यह धुला हुआ पदार्थ लोहेके भट्टोंमें गरम किया जाता है। इससे कुछ मिला हुआ गन्धक वायुके ओषजनसे मिलकर वाष्पके रूपमें निकल जाता है। इस भुंजे हुए धातुके साथ कुछ खनिज धातु और कोयला मिलाकर इन सबोंको एक भट्टेमें डाल दिया जाता है जिसके अन्दर आग्नेय ईटोंका एक अस्तर रहता है और जिसको गरम वायु प्रवाहित कर उत्तापित किया जाता है। इस भट्टेमेंसे एक पिघला सा [illegible] निकलता है जिसके प्रति १०० भाग में ४५—७५ भाग तांबा गन्धक युक्त लोहेके साथ मिला हुआ रहता है। यह तरल पदार्थ भट्टेके नीचे भागमें रहता है और वहाँसे एक नलीमें होकर बाहर निकल आता है। अब इसको एक दूसरे भट्टेमें डाला जाता है। यह भट्टा ऊपर नीचे घुमाया जा सकता है और बीचमें मोटा होता है। इसके अन्दर मिट्टीका अस्तर रहता है और निम्न भागमें छिद्र रहता है जिससे वायुका प्रवेश इच्छानुसार कराया जा सकता है। गन्धक, लोह आदि धातुयें इस रीतिसे ओषजनसे संयुक्त होकर निकल जाती है। लोहेका ओषिद मिट्टीके अस्तरसे मिलकर अलग निकल आता है। ताँबा ज्यों ही ओषजनसे संयुक्त होने लगता है एक नीलीसी

अग्नेय लपट भट्टेके ऊपर दिखाई पड़ती है और उसी समय भट्टेके भीतर वायुका प्रवेश बन्द कर दिया जाता है। भट्टेको तब घुमा कर ताँबा निकाल लिया जाता है। ताँबेके ठण्डे होते समय उसमें मिश्रित गन्धकोषिद निकल जाता है और इससे पिघले हुए ताँबेकी सतह उभड़ी सी मालूम पड़ती है। इस अवस्थामें धातुको फिर गलाया जाता है और इस पिघले हुए पदार्थको कच्ची लकड़ीसे हिलाया जाता है जिससे निकलते हुए उदजनसे सब ओषजन दूर होकर सिर्फ तांबा रह जाता है।

इस तांबेको बहुत ही स्वच्छ अवस्थामें पानेके लिए वैद्युतिक विधिका प्रयोग किया जाता है जिससे इस धातुको हम बहुत ही निर्मल अवस्था-में पाते हैं।

वैज्ञानिकीय

आश्चर्यजनक नली और उसकी प्रबल किरणें।

न्यूयार्कके डा० कालिरज ने एक बिजलीकी तोप बनाई है। यह एक कांचकी नली है। इसकी लम्बाई ४ फुट है। यह बीचमें-से फुटबालकी तरह फूली हुई है और इसके एक सिरेपर धातकी एक टोपी लगी है।

इस यन्त्रमेंसे लाखों करोड़ों अलक्त-राणुओंकी धारा बड़े जोरसे निकलती है। उनकी गति १०००००मील प्रति सेकण्ड होती है। यदि उनके मार्गः में कोई बाधा न आवे तो १५ मिनिटमें सूर्य तक पहुँच जायँ। यदि भारकी समानतासे तुलना की जाय तो यह बड़ीसे बड़ी तोप से भी कहीं अधिक विघातक सिद्ध होंगी, परन्तु सौभाग्य है कि यह काम नहीं आ सकतीं।

बहुत समय पहिले सर विलियम क्रुक्सका अनु-मान था कि शून्य नलीमें बिजलीकी जो चमक दीखती है वह बिजलीके कणोंके कारण होती है। यह बात पीछे सिद्ध भी हो गई। जिस समय उससे बिजलीका सम्बन्ध किया जाता है उस समय ऋण-पत्रे (Cathode plate) से असंख्य अलक्तराणु सीधी रेखामें गति करते हैं। उन्हें ऋण किरण (Cathode Rays) कहते हैं। नलीके एक सिरेपर निकलके पत्रेकी आड़ लगाने पर देखा गया कि ये किरणें उसके बाहर निकल आती हैं। वे वायुको पार नहीं कर सकती इसलिए निकलकर थोड़ी दूरपर ही रुक जाती हैं।

❀ * ❀

अलक्तराणुका फ़व्वारा

डा० कालरिजने यह देखा कि यह किरणें बाहर निकल कर दूरतक नहीं जाती हैं। इसलिए उन्होंने उसमें बिजली यहांतक अधिक (३००००० वोल्ट तक) गुजारी कि नलीके निकलके पत्रेमेंसे होकर निकले हुए कण पहलेकी अपेक्षा अधिक दूर जाने लगे। इससे ३ फुट लम्बा फुव्वारा निकलने लगा। इसकी लम्बाई ५ फुट तक बढ़ सकती है। इन किरणोंकी ताक़त इतनी अधिक है कि इनके मार्गमें कोई रुकावट नहीं डाल सकता। ये हीरा, मोती, स्फटिक और धातु आदि सबके पार हो जाती हैं। उनके प्रवेशसे संगमरमर चमकने लगता है। कट्जका रंग बदल जाता है, कृमि इनके स्पर्शसे मर जाते हैं, यदि कोई आदमी बीचमें हाथ रख दे तो उसका हाथ चल जाय। इस अंशमें ये किरणें रेडियमकी किरणों-से मिलती हैं। परन्तु यदि कोई इससे ६ फीट दूर हो तो उसपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

❀ ❀ ❀

एक विशाल डाइनेमो

अमेरिकामें एक डाइनेमो बनाया जा रहा है। उसके आकारका इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि नियाग्राके झरनेसे जितनी विद्युत् पैदाकी जा रही है उसका $\frac{1}{2}$ भाग इससे पैदा हो सकेगी। उसका भार ५०००० मन है। इसको भाप द्वारा चलाया जायेगा। उसे चलानेके लिए भाप पैदा करनेको एक मिनटमें ५० मनके लगभग कोयला जलाना पड़ा करेगा। इससे पैदा की गई बिजली न्यूस्टेट रेलवेके चलाने के काम आयेगी।

* * *

विज्ञान और आस्तिकता

विज्ञान और नास्तिकवादका इतना सम्बन्ध हो गया था कि विज्ञानका नाम लेते ही नास्तिकताका आभास होता था। बहुत अंशोंमें यह सत्य भी था। परन्तु एक नहीं कितने ही उदाहरण ऐसे हैं कि अपने अन्य समयमें वैज्ञानिक यह अनुभव किया कि 'There is some high power' अर्थात् संसार में कोई न कोई ऐसी शक्ति है जो कि सबसे ऊँची है।

कितने ही वैज्ञानिक तो अपनी आत्माका भी अस्तित्व नहीं मानते थे। वे कहते थे कि मनुष्यकी आत्मा नित्य नहीं, इस शरीरके नष्ट होनेके बाद कोई वस्तु नहीं रहती। अमेरिकाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीयुत एडीसन उनहींमेंसे थे। वे कहाकरते थे कि मुझे कोई ऐसी युक्ति मालूम नहीं होती जिससे मैं यह विश्वास कर सकूँ कि मनुष्य अमृत (immortal) अर्थात नित्य है। परन्तु अब उनका विचार बदल गया है।

अब उनकी आयु ८० वर्ष की है। अब वे यह अनुभव करने लग गये हैं कि उनका जीवन किसी विशेष महान उद्देश्यकी ओर जा रहा है। अपनी वृद्धावस्थामें उनके विचारोंमें आस्तिकताके भावोंका उदय होरहा है। वे कहते हैं कि—

'जब हम आत्माके सम्बन्धमें बातचीत करते हैं उस समय यदि आत्माका अभिप्राय चेतनतासे है तो मुझे विश्वास है कि यदि हमें कोई युक्ति मिल सकती है तो वह उसके अमृतत्व के लिए ही।

सिकोइया (Siquia) एक पेड़ है जिसकी आयु इस समय है ३९०० वर्ष। यदि वह इतनी देरतक रह सकता है जो कि हमारे लिये अमृतत्वके बराबर है तो हम शरीर मन और आत्माके किसीन किसी रूपमें इतनी देरतक क्यों नहीं रह सकते।'

❀ ❀ ❀

रंगीली वस्तुका चुनाव

कपड़ा, कागज़ और खिलौना आदिकोई रंगीनवस्तु लेते समय एकरङ्गकी वस्तु देखकर झट दूसरे रंगकी वस्तु न देखनी चाहिये। चमकीले रङ्गकी वस्तुको देखने के बाद आंखकी रेटिनापर उसका असर गहरा पड़ जाता है। वह असर एक मिनट तक दूर नहीं होता। कभी कभी तो वह एक मिनटसे भी अधिक देरतक रहता है। उसे देखनेके बादही यदि दूसरा रङ्ग देख लिया जाय तो उसका ठीक रङ्ग न दीख पड़ेगा। आँख-पर पहले रङ्गका प्रभाव होने के कारण रङ्गोंमें गड़बड़ी हो जायगी। दोनोंका मिला हुआ रंग दीखने लगेगा।

किसी तेज़ रंगकी वस्तु देखकर उसके बाद फिर हलके बिना चमकके मटियाले रंगकी वस्तु देखनी चाहिए। तेज चमकीले रंगके देखनेके बाद भूरा रंग देखिए। फिर कुछ देर ठहर कर दूसरे रंगकी वस्तु देखिए। इस प्रकार देखनेसे रंगोंमें गड़बड़ न होगी।

* * *

शिम्पैञ्जी-सहभोज

डार्विनके मतानुसार मनुष्योंके पुरखा कुछ शिम्पैञ्जी लन्दनके चिड़िया घरमें रहते हैं। जंगलोंमें तो ये बिलकुल जंगलीकी ही तरह रहते हैं। चिड़िया घर में रखकर उन्हें नई सभ्यतासे रहना सिखाया गया है। उन्हें मेजपर बैठ कर कांटे छुरीसे खाना सिखाया जा रहा है।

एक दिन प्रातःकाल १० बजे सर्व साधारणको उनका सहभोज दिखानेका प्रबन्ध किया गया। एक छोटीसी मेज़के चारों ओर कुर्सियां रख दी गईं। चीनी मिट्टी चढ़े हुए टीनके बर्तनोंमें उन्हें चाय आदि दी गई। जैमी क्लेरेन्स, जैकी और बीबी शिम्पैञ्जी आकर कुर्सियोंपर पैठ गये। जैकी इन सबमें बड़ा है। सबने पहले तो खूब दूध पिया। फिर सबको जैकीने रोटियां दीं। जब वे रोटी खा चुके तब फिर सबके आगे एक तश्तरी घुमाई गई। फिर सबने थोड़ासा दूध पिया। दूध पीकर वे उठखड़े हुए। जैकीने सबसे छोटे बीबी को हाथका सहारा देकर कुर्सीपरसे उतारा। तबतक शेष दोनों वहीं खड़े रहे।

फिर सबने आपसमें हाथ मिलाया और सोनेके लिए चले गये। इस प्रकार बैठकर खानेके सब नियम वे अच्छी तरह सीख गये हैं। हाँ, कभी कभी जल्दी-

के कारण इनके हाथसे बर्तन गिर जाते हैं। इसलिए टूटनेके डरसे चीनी तथा काँचके बर्तन काममें नहीं लाये जा सकते।

❀ ❀ ❀

ताँबेके बर्तन

कितने ही ऐसे बर्तन होते हैं जिनमें पड़े पड़े घी, दही, तेल और उसी प्रकारके खानेके अन्य पदार्थ खराब हो जाते हैं। उनमें कुछ कुछ हरापन आजाता है। इस हरेपनकी उपस्थिति ही हमें बतला रही है कि यहाँ कोई नया यौगिक तैय्यार हो गया है। वास्तवमें प्रायः हमारे खाने पीनेकी चीजोंमें अम्ल होते हैं। ये अम्ल तांबे पर झट क्रिया कर बैठते हैं। यह हरा रंग ताम्बे के एक यौगिक का है।

सीसा, पारा आदि कई धातुओंसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पारेसे तो एक दम मौत भी हो जाती है। सीसक और विस्मुथके लवण तो धीरे धीरे शरीरमें विष फैलाने (Slow poisoning) के काम भी आते हैं। इन धातुओंके खिलानेसे कालान्तरमें मृत्यु हो जाती है तांबा भी इसी प्रकारका एक धातु है। इसके लवणोंके पेटमें चले जानेसे जी मतलाने लगता है और कभी कभी क़ै भी हो जाती है।

हमारे शरीरकी रासायनिक परीक्षा करके देखा गया है कि शरीरमें ताँबा मौजूद है। इसका यह आशय नहीं कि हम सब ताँबेके विषके प्रभावसे क्षीण ही होते जा रहे हैं। बहुत स्वल्प मात्रामें हमारे शरीरपर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। एक क्वार्ट जलमें एक ग्रामके एक हजारवें हिस्सेके २३ से १७३ भागतक ताँबा होता है। उसका कोई बुरा प्रभाव नहीं होता। हाँ, यदि इससे अधिक ताँबा चला जाय तो वह हमारे यकृत और पाचनरस (Pancreatic juice) पर अपना प्रभाव डालता है।

इसलिए डाक्टरोंका कथन है कि खाने पीनेके काममें आनेवाले बर्तनोंमें ताम्रका उपयोग कम करना चाहिये; क्योंकि यह उन पदार्थोंके अम्लोंसे झट मिल जाता है।

यदि विवश होकर ताँबेके बर्तनोंका उपयोग करना ही पड़े तो उनपर क़लई अवश्य करवा लेनी चाहिए। मांजते मांजते बर्तनकी कलई घिस जाती है। घिस जानेपर ताँबा निकल आता है। उससे फिर खराबी होनेकी सम्भावना है। इसलिए क़लईके घिसते ही झट दुबारा क़लई करा लेनी चाहिए।

सोनेसे पारा

प्राचीन समयसे धातुओंके परस्पर परिवर्तनमें विश्वास चला आता है। परन्तु वैज्ञानिक युगके प्रारम्भ में एक धातु का दूसरेमें परिवर्तन होना असम्भव समझा जाता था। वैज्ञानिक समझतेथे कि वास्तवमें एक तत्व दूसरेमें परिवर्तित नहीं किया जा सकता। परन्तु रेडियमके आविष्कारके बाद वैज्ञानिक कल्पनाओंमें एकदम क्रान्ति हो गई। डाल्टनके परमाणुवादके स्थानपर अलक्तराणुकी कल्पनाने स्थान लिया। न्याय तथा वैशेषिकके परमाणुवादसे आगे बढ़कर वैज्ञानिकोंने शंकरके वेदान्तकी देहलीपर पांव रखा। तबसे यह समझा जाने लगा कि ये सब तत्व एक ही वस्तु अलक्तराणुसे बने हुए हैं। यदि किसी तरह बहुत ऊंचा तापपरिमाण प्राप्त कर लिया जाय तो वे तत्व भी जो अभी एक दूसरेमें परिवर्तित नहीं होते, परिवर्तित हो सकेंगे। यूरेनियमसे रेडियम तथा सीसकके बननेसे उनका उत्साह और भी बढ़ गया है।

जर्मनीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० गशलर (Guschler) देरसे इन सम्बन्धमें परीक्षण कर रहे हैं। मीथे (Meithe) और नागाओका (Nagaoka) ने परीक्षा करके दिखाया है कि विशेष अवस्थाओंमें ताप और विद्युतकी क्रियासे पारेसे सोना बनाया जा सकता है। पारेका परमाणु भार सोनेसे अधिक है। इस लिए सोदी (Soddy) के मतमें पारेमें और अलक्तराणुओंके मिलनेसे सोना नहीं बन सकता बल्कि उसमेंसे कुछ अलक्तराणुओंके निकलनेसे बन सकता है। इससे यह भी अनुमान होता है कि यदि सोनेके परमाणुओंमें किसी तरह उदजनका प्रवेश करा दिया जाय तो वह पारेमें बदल जायगा।

डा० गशलरने इसी कल्पनाके आधारपर परीक्षण किये। उनके मतानुसार उन्हें सफलता भी हुई। वे इसकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं कि सोनेके परमाणुके चक्रमें उदजन आसानीसे प्रवेश कर सकता है क्योंकि वह बहुत छोटा होता है। एक बार वाह्य-शक्तिके प्रभावसे जब वह चक्रमें घुस जायगा तब वह उसमेंसे नहीं निकल सकता क्योंकि अन्दरसे बाहरकी ओर ढकेलनेके लिए उसमें कोई शक्ति नहीं है। उन्होंने परीक्षण करते हुए समय समयपर रश्मिचित्र (specturm) बनाकर उनके चित्र लिए। ३० घण्टे तक उसमें पारेकी उपस्थिति प्रतीत नहीं हुई। इसके बाद उसमें पारेका भी चिह्न दीखने लगा। ज्यों ज्यों क्रिया अधिक अधिक होती गई त्यों त्यों पारेकी उपस्थिति भी बढ़ती गई।

धातुओंके इस प्रकार परस्पर परिवर्तनपर मनुष्यका अधिकार नहीं हुआ है। जिस दिन इसका प्रयोग व्यापारिक रूपसे होने लगेगा उस समय बहुमूल्य धातुओंकी क़ीमत बहुत गिर जायगी। क़ीमत जो गिरेगी वह तो गिरेगी ही साथ ही साथ उनकी अधिकताके कारण मनुष्य उनकी क़दर भी कम करने लगेंगे।

कोयलेसे तेल

१५ वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद वैज्ञानिकोंने कोयलेसे मिट्टीके तेल बनानेकी विधिका अविष्कार कर ही लिया। इस विधिसे तैय्यार किया हुआ तैल कुओंसे निकले तैलसे महँगा न पड़ेगा। इस विधिके अविष्कारक फ्रेड्रिक बर्गस हैं (Dr. Friedrich Bergius)। इस अविष्कारसे कोयलेकी उपयोगिता और बढ़ेगी और तेलके समाप्त होनेका सवाल बहुत कुछ हल हो जायगा।

डाक्टर साहबका कहना है कि १०० मन कोयलेसे १५ मन पेट्रोल बनाया जा सकता है। उसके साथ ही साथ २० टन घटिया तेल, ६ टन गाढ़ा तेल और ८ टन लैम्पोंमें जलानेका तेल बनाया जासकता है। तेल बनानेके बाद बचा कोयला व्यर्थ न जायगा। बचा कोयला बड़ा उपयोगी होगा।

कोयलेमें जितनी उदजन होती है तेलमें उससे दुगुनी होती है। यदि कोयलेके बारीक चूर्णमें उदजन और मिला दी जाय तो वह तैलके रूपमें बदल जायगा। डाक्टर साहबकी विधिका आधार यही है। बड़े बड़े कमरोंमें लोहेका चूरा बिछा दिया जाता है। फिर कई वायुमण्डलके दबावपर उदजन उनमें गुजारी जाती है। यह कमरे इतने मजबूत बनाये जाने चाहिए कि उदजनके दबावसे फूट न जायं।

ये बड़े बड़े चैम्बर भपकोंका काम करते हैं। इन भपकोंमेंसे कोलतारके समान गाढ़ा द्रव निकलता है। इस तेलको साफ़ करके भिन्न भिन्न प्रकारके तेल तैय्यार किये जाते हैं।

कुछ उदजन कोयलेमें पहले ही उपस्थित होती है। कुछ दबावके साथ गुजारी जाती है। बना हुआ तेल साथ ही साथ गर्म करनेके भी काम आ सकता है। जर्मनीमें दो कारखाने इस विधिके अनुसार लाखों मन तेल तैय्यार भी करने लग गये हैं।

अमीचन्द्र विद्यालंकार

ज्वलक और गन्धकीय यौगिक

(Ether and Sulphur Compounds)

[लेखक श्रीसत्यप्रकाश बी. एस-सी. विशारद]

द्योंका सामान्य रूप र ओ उ है। र के स्थानमें कोई मद्यील मूल जैसे — क $उ_३$, — $क_२$ $उ_५$, — $क_३$ $उ_७$ स्थापित करनेसे तत्सम्बन्धी मद्य मिल-सकता है। साधारण रसायनके क्षारोंको भी यही रूप प्रदान किया जासकता है। र के स्थानमें कोई धनात्मक धातु या-नो $उ_४$ अमोनियम मूल स्थापित करनेसे क्षार मिलसकते हैं।

क्षार

सैन्धक उदौषिद, सै. ओ उ

पांशुज उदौषिद, पां ओ उ

रजत उदौषिद, र ओ उ

अमोनिया, [नो ओ$_४$] ओ उ

मद्य

दारील मद्य, [क उ$_३$] ओ उ

ज्वलील मद्य, [क$_२$ उ$_५$] ओ उ

अग्रील मद्य, [क$_३$ उ$_७$] ओ उ

नवनीतील मद्य, [क$_४$ उ$_६$] ओ उ

इसप्रकार क्षारों और मद्योंके संगठनमें समानता है। यही नहीं, क्षारों और मद्योंपर अम्लोंका प्रभाव भी समान पड़ता है जैसा कि निम्न समीकरणोंसे स्पष्ट है:—

सै. ओ उ + उ ह = सैह + उ$_२$ ओ

सैन्धकहरिद

[क उ$_३$] ओ उ + उ ह = क उ$_३$ ह + उ$_२$ ओ

दारील हरिद

पर इन समानताओंके होते हुए भी दोनोंमें बहुत भेद है। प्रत्येक क्षार लाल-द्योतक पत्रको नीला करदेता है। पर यदि मद्यमें नील द्योतक पत्र-या लाल द्योतकपत्र कोईभी क्यों न डाला जाय, द्योतक पत्रोंके रंगोंमें कोईभी परिवर्त्तन नहीं होगा, अतः मद्यमें क्षारीय या अम्लीय कोईभी गुण नहीं हैं। भौतिक रूपमें भी मद्य क्षारोंसे भिन्न है। लगभग जितने मद्य हैं वे साधारण तापक्रमपर द्रव होते हैं। पर क्षार बहुधा उस अवस्थामें ठोस होते हैं। सैन्धक उदौषिद क्षारपर सैन्धकम् धातुका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं होता है। पर मद्यमें यदि सैन्धकम्का टुकड़ा डालाजाय तो यह मद्यके उदौषीलमूलके उदजनको पृथक् करदेगा और स्वयं उसका स्थान लेलेगा।

२ क$_२$ उ$_५$ ओ उ + २ सै = २क$_२$ उ$_५$ ओ सै + उ$_२$

सैन्धक ज्वलौषिद

कुछ तत्वोंके परमाणु एकसे अधिक उदौषील मूलोंसे संयुक्त होसकते हैं जैसे भारम् धातुका उदौषिद भ (ओ उ)$_२$, में भारम्के एक परमाणुसे २ उदौषील मूल-ओउ-संयुक्त हैं, पर कर्बनके एक परमाणुसे दो उदौषील मूल बहुधा संयुक्त नहीं होसकते हैं दो उदौषीलोंमेंसे जलका एक अणु शीघ्र विभाजित होजाता है।

जैसे—

$$\text{क उ}_२ <^{\text{ओ उ}}_{\text{ओ उ}} = \text{क उ}_२ \text{ ओ} + \text{उ}_२ \text{ ओ.}$$

यदि क्षारोंके दो उदौषील मूलोंमेंसे जलका एक अणु पृथक् करलिया जाय तो धातु ओषिद शेष रहजाते हैं। जैसे—

पां ओ | उ
पां | ओ उ | = पां$_२$ ओ + उ$_२$ ओ

पांशुज ओषिद

भ (ओ उ)$_२$ = भ ओ + उ$_२$ ओ

भार ओषिद

इसी प्रकार मद्योंके दो अणुओंमेंसे यदि जलका एक अणु पृथक् करलिया जाय तो ओषिदोंके समान एक प्रकारके यौगिक मिलते हैं जिन्हें ज्वलक कहते हैं। दारील मद्यके दो अणुओं मेंसे जलका एक अणु निकालनेपर द्विदारील ज्वलक मिलता है:—

क उ$_३$ ओ : उ = क उ$_३$ > ओ + उ$_२$ ओ
क उ$_३$: ओ उ   क उ$_३$

द्विदारील ज्वलक

इसी प्रकार यदि ज्वलीलमद्यके २ अणुओंमें से जल का एक अणु पृथक् किया जाय तो द्वि ज्वलील ज्वलक, (क$_२$ उ$_५$)$_२$ ओ प्राप्त होगा:—

क$_२$ उ$_५$ ओ : उ = क$_२$ उ$_५$ > ओ + उ$_२$ ओ
क$_२$ उ$_५$: ओ उ   क$_२$ उ$_५$

द्विज्वलील ज्वलक

द्विदारील ज्वलकमें दो दारील मूल- क उ$_३$ हैं, और द्विज्वलील ज्वलकमें दो ज्वलील मूल, – क$_२$उ$_५$, हैं। ऐसा भी ज्वलक होसकता है जिसमें एक दारील मूल हो और एक ज्वलील मूल। दारील मद्य और ज्वलील मद्य, दोनोंके एक एक अणुओंमें से यदि जल का एक अणु पृथक् कर लिया जाय तो दारील-ज्वलील ज्वलक प्राप्त होगा—

क उ$_{३}$ ओ : उ　　　क उ$_{३}$
...... 　　=　　　　> ओ + उ$_{२}$ ओ
क$_{२}$उ$_{५}$: ओ उ　　क$_{२}$ उ$_{५}$

दारील ज्वलीत ज्वलक

जिस ज्वलकमें मद्यके दोनों मूल एक ही हों, उसे सरल ज्वलक कहते हैं और जिस ज्वलकमें मद्यके दोनों मूल पृथक् पृथक् हों उसे मिश्रित ज्वलक कहते हैं। द्विदारील ज्वलक और द्विज्वलील ज्वलक सरल ज्वलक हैं पर दारील ज्वलील ज्वलक मिश्रित ज्वलक है। ज्वलकोंकी एक सारिणी नीचे दी जाती है। इनका सामान्य सूत्र-क$_{न}$ उ$_{२न+२}$ ओ-है।

ज्वलक	सूत्र	क्वथनांक	विशिष्ट गुरुत्व
द्विदारील ज्वलक	(क उ$_{३}$)$_{२}$ ओ	—२३·६°	—
द्विज्वलील ज्वलक	(क$_{२}$ उ$_{५}$)$_{२}$ ओ	३४·६°	०·७३१ (४°)
द्विअग्रील ज्वलक	(क$_{३}$ उ$_{७}$)$_{२}$ ओ	९०·७°	०·७६३ (०°)
द्विसम अग्रील ज्वलक	(क$_{३}$ उ$_{७}$)$_{२}$ ओ	६९°	०·७४३ (०°)
द्विनवनीतील ज्वलक	(क$_{४}$ उ$_{९}$)$_{२}$ ओ	१४१°	०·७८४ (०°)

साधारणतः ज्वलक कहनेसे द्विज्वलील ज्वलक का तात्पर्य समझना चाहिये। ये ज्वलक मद्यके समान बेरंगके शिथिल पदार्थ है पर मद्यकी अपेक्षा ये अधिक उड़नशील हैं। द्विदारीलज्वलक और ज्वलोल मद्य दोनोंका सूत्र क$_{२}$ उ$_{६}$ ओ है। इस प्रकार दोनों में समरूपता है। उपर्युक्त सारिणीसे विदित हो जायगा कि सामान्य तापक्रम पर द्विदारील ज्वलक वायव्य है पर ज्वलीलमद्य उसी तापक्रम पर द्रव होता है। ज्वलक पानीकी अपेक्षा हलके होते हैं। ये पानीमें मद्यकी अपेक्षा बहुत ही कम घुलनशील हैं। मद्य और इनमें एक और भी भेद है। स्फुर पंचहरिद और सैन्धकम् धातु दोनों साधारण तापक्रम पर ज्वलकपर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं यद्यपि मद्य इन दोनोंके प्रभावसे क्रमशः मद्यहरिद् और सैन्धक मद्येतमें परिणत हो जाता है।

साधारण ज्वलक, (द्विज्वलील ज्वलक) का अन्वेषण वेलेरियस कोरडस नामक सज्जन ने सं० १६०१ वि० में किया था। अंगूरकी शराब पर तीव्र गन्धकाम्लका प्रभाव डालनेसे ज्वलक उत्पन्न किया जाता है। ज्वलीलमद्य पर गन्धकाम्लका प्रभाव निम्न प्रकार होता है:—

क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$ = क$_{२}$ उ$_{५}$ उ ग ओ$_{४}$ + उ$_{२}$ ओ
　　　　　　　　　　ज्वलील उदजन गन्धेत

क$_{२}$ उ$_{५}$ उ ग ओ$_{४}$ + क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ =
(क$_{२}$ उ$_{५}$)$_{२}$ ओ + उ$_{२}$ ग ओ$_{४}$
　　ज्वलक

इस प्रकार प्रक्रियामें पहले ज्वलील उदजन गन्धेत बनता है और फिर मद्यके एक दूसरे अणुसे प्रभावित होकर ज्वलक बन जाता है। उपर्युक्त समीकरणों द्वारा स्पष्ट है कि प्रक्रियाके अन्तमें उतना ही गन्धकाम्ल फिर जनित हो जाता है जितना आरम्भमें था। इस प्रकार गन्धकाम्लकी थोड़ीसी मात्रा ही अधिक मद्यको ज्वलकमें परिणत कर सकती है। पर एक बात स्मरण रहना चाहिये कि पहले समीकरणमें उत्पन्न जल गन्धकाम्लकी तीव्रताको धीरे धीरे कम कर देगा और फिर गन्धकाम्ल मद्यको ज्वलकमें परिणत करनेके योग्य नहीं रह जायगा।

ज्वलक बनानेकी विधि—कांचकी एक कुप्पीमें भपका संचक, पेंचदार कीप, और तापमापक यथानुसार लगाओ। फिर ८० घन. श. मी. तीव्र गन्धकाम्ल और ११० घन. श. मी निरपेक्ष मद्य (Absolute alcohol) का मिश्रण कुप्पीमें भरो।

पेंचदार कीपमें और मद्य भर लो। कुप्पीको रेणु-कुंडो (बालू पर) गरम करो। तापक्रम १४०°-१४५° होना चाहिये। बूंद बूंद करके कीपसे मद्य टपकाओ। संचकमें जल और ज्वलक स्रवित हो जायंगे। स्रवण करनेमें यह अधिक उपयोगी होगा कि संचकको बर्फ द्वारा ठंडा रखा जाय। स्रवित पदार्थमें सैन्धक उदौषिद् और साधारण नमक डालकर रखनेसे गन्धसाम्ल (गन्धकाम्ल के विभाजन द्वारा जनित) और अपरिवर्त्तितमद्य दूर हो जायंगे और शुद्धज्वलक प्राप्त हो जायगा।

सन्धक ज्वलीलेत और ज्वलील नैलिद् के प्रभावसे भी ज्वलक बनाया जा सकता है। ४० घन. श. मी शुद्ध मद्यमें ३ ग्राम सैन्धकम् घोलो। घोलको कुप्पीमें भरो और १५ ग्राम ज्वलील नैलिद् डाल दो। कुप्पीमें सीधा खड़ा झपका लगाकर जलकुंडी पर गरम करो थोड़ी ही देरमें सैन्धक नैलिद् जम जायगा और द्रव पदार्थको स्रवित करके मद्य और ज्वलकका मिश्रण प्राप्त किया जा सकता है। नमकका घोल डालकर शुद्ध ज्वलक पृथक् किया जा सकता है। प्रक्रिया इस प्रकार है:—
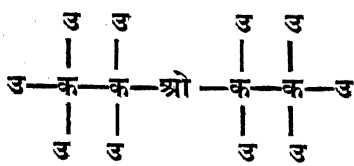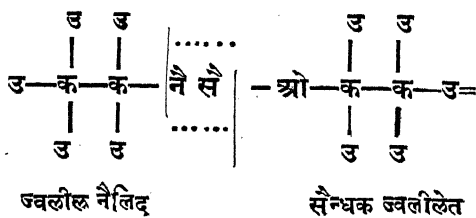
ज्वलील नैलिद्   सैन्धक ज्वलीलेत

द्विज्वलील ज्वलक

इसी प्रकार द्वि दारील ज्वलक दारील नैलिद और सैन्धक दारीलेतसे बनाया जा सकता है

क$उ_3$ नै + सै ओ क$उ_3$ = (क$उ_3$)$_2$ ओ + सै नै

दारील-ज्वलील-ज्वलक दारील नैलिद और सैन्धक ज्वलीलेतके संयोगसे बनाया जा सकता है:—

क$उ_3$ नै + सै ओ क$_2$$उ_5$ = (क$उ_3$ / क$_2$$उ_5$) > ओ + सै नै
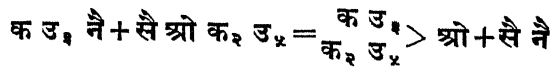
द्वि दारील ज्वलक और दारील ज्वलील ज्वलक क्रमशः निम्नसङ्गठनों द्वारा प्रदर्शित किये जा सकते हैं:—

```
    उ        उ              उ        उ   उ
    |        |              |        |   |
उ—क—ओ—क—उ;   उ—क—ओ—क—क—उ
    |        |              |        |   |
    उ        उ              उ        उ   उ
```
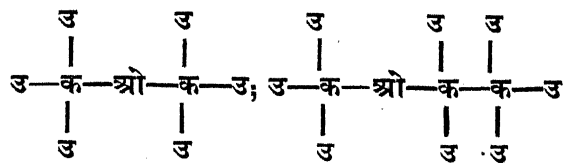
साधारण ज्वलक को निम्न रीतियों से भी प्रदर्शित किया जा सकता है:—

```
क उ₃ क उ₂              क₂ उ₅
          > ओ    ;               > ओ
क उ₃ क उ₂              क₂ उ₅

      क₂ उ₅
  ओ<               ;     ( क₂ उ₅ )₂ ओ
      क₂ उ₅
```
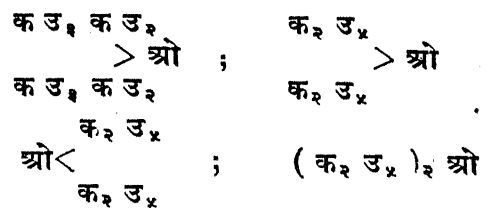
ज्वलक तीव्र उदनैलिकाम्ल द्वारा विभाजित हो सकते हैं। जैसे दारील अग्रील ज्वलक पर उदनैलिकाम्ल का प्रभाव पड़नेसे दारील नैलिद् और अग्रील नैलिद् प्राप्त होते हैं:—

```
   क उ₃      नै
...|.........
   ओ    +   उ            क उ₃  नै
            उ     =         +
...|.........           क₃ उ₇  नै
   क₃ ओ₇   नै
```
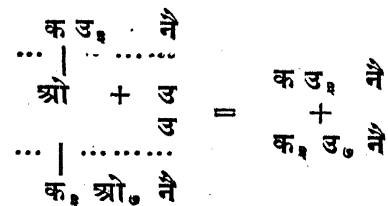
ज्वलील ज्वलक के गुण—

यह अत्यन्त ही उड़नशील और जलनशील द्रव है।

इसमें अत्यन्त शीघ्रतासे आग लग जाती है। इसलिये इसका नाम 'ज्वलक' पड़ा है। इसे दग्धक आदि की लौ (लपक) से सदा दूर रखना चाहिये नहीं तो आग लग जानेकी सम्भावना है। इसकी वाष्प बहुत भारी होती हैं।—११७° ६ श पर यह

ज्वलक ठोसाकार हो सकता है। ज्वलक को बहुत सूंघनेसे मूर्छा हो सकती है। ज्वलक अत्यन्त शीघ्र वाष्पीभूत हो जाता है और ऐसा होनेमें तापक्रम बहुत घट जाता है। अपने हाथ पर थोड़ा सा ज्वलक डालो। यह तत्काल ही उड़ने लगेगा और हाथमें बहुत शीतलता प्रतीत होगी। तैल, मज्जा आदि के घोलने में ज्वलक का अधिक उपयोग किया जाता है।

गन्धकीय यौगिक

अब तक हमने मद्यों और ज्वलकोंका वर्णन दिया है। इन दोनों प्रकारके यौगिकोंमें कर्बन और उदजनके अतरिक्त ओषजन तत्व भी विद्यमान था। यदि इन यौगिकोंके ओषजनके स्थानमें गन्धक परमाणु रख दिया जाय तो गन्धकीय यौगिक प्राप्त हो सकते हैं। निम्न यौगिकोंकी तुलनाकी जा सकती है।

क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ ज्वलील मद्य	क$_{२}$ उ$_{५}$ ग उ ज्वलील उदगन्धिद	सै ग उ सैन्धक उदगन्धिद	सै ओ उ सैन्धक उदौषिद
ओ < क$_{२}$ उ$_{५}$, क$_{२}$ उ$_{५}$ ज्वलील ज्वलक	ग < क$_{२}$ उ$_{५}$, क$_{२}$ उ$_{५}$ ज्वलील गन्धिद	ग < सै, सै सैन्धक गन्धिद	ओ < सै, सै सैन्धक ओषिद
	ग-क$_{२}$ उ$_{५}$ | ग-क$_{२}$ उ$_{५}$ ज्वलील द्वि गन्धिद	ग-सै | ग-सै सैन्धक द्वि गन्धिद	ओ—सै | ओ—सै सैन्धक परौषिद

इस प्रकार ज्वलील उदगन्धिद, क$_{२}$ उ$_{५}$ ग उ, को गन्धकीय मद्य समझना चाहिये। गन्धकीय मद्योंको पारद-वेधन (Mercaptan) भी कहते हैं पारद-वेधनों और मद्योंमें भेद केवल इतना ही है कि एकमें गन्धक परमाणु है तो दूसरेमें ओषजन परमाणु इसी प्रकार ज्वलीलगन्धिद (क$_{२}$ उ$_{५}$)^{२} ग गन्धकीय ज्वलक कहा जा सकता है।

पारदवेधन—मद्यके ऊपर स्फुट पञ्चगन्धिद-का प्रभाव डालनेसे गन्धकीय मद्य-अर्थात् पारद-वेधन बन सकते हैं।

५ क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ + स्फु$_{२}$ ग$_{५}$ ==
ज्वलील मद्य
५ क$_{२}$ उ$_{५}$ ग उ + स्फु$_{२}$ ओ$_{५}$
ज्वलील पारदवेधन

ज्वलील हरिद पर पांशुज उद गन्धिदके प्रभाव से भी पारदवेधन प्राप्त हो सकता है:—

क$_{२}$ उ$_{५}$ ह + पां ग उ =
ज्वलील हरिद
क$_{२}$ उ$_{५}$ ग उ + पां ह
पारदवेधन

दारील पारदवेधन क उ$_{३}$ ग उ को छोड़ कर (जो वायव्य है) अन्य सब पारदवेधन उड़नशील द्रव हैं। ज्वलील पारदवेधनका क्वथनांक ३६° है। इनमें अत्यन्त कटु दुर्गन्ध होती है। सैन्धकम् अथवा पांशुजम् धातुके प्रभावसे इनमेंसे उदजन निकलने लगता है और पारद वेधिद (mercaptide) बन जाते हैं। यह प्रक्रिया मद्योंके समान है जो सैन्धकम्के संसर्गसे मद्येत बनाते हैं:—

२ क$_{२}$ उ$_{५}$ ग उ + २ सै = २ क$_{२}$ उ$_{५}$ ग सै + उ$_{२}$
सैन्धक ज्वलील पारद वेधिद
२ क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ + २ सै = २ क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ सै + उ$_{२}$
सैन्धक ज्वलीलेत

जब पारदवेधिद पारदिक ओषिद या पारदिक एक विशेष हरिदके मधिक घोलमें मिलाया जाता है तो पारद पारदवेधिद—(क$_{२}$ उ$_{५}$ ग)$_{२}$ पा—बनता है इस यौगिकके कारण ही इन गन्धकीय मद्योंका नाम पारदवेधन पड़ा है। वायुमें रखनेसे पारद

वेधनोंका ओषदीकारण होजाता है और द्विगन्धिद प्राप्त होते हैं:—

$$२ क_२ उ_५ ग उ + ओ = क_२ उ_५ ग + उ_२ ओ$$

$$\begin{array}{c} | \\ क_२ उ_५ ग \end{array}$$

ज्वलील द्विगंधिद

पर तीव्र नोषिकाम्ल द्वारा ओषदी करण करनेसे ज्वलील पारद वेधन ज्वलील गन्धोनिकाम्ल, $क_२ उ_५ ग ओ_३ उ$, में परिणत हो जाता है—

$$२ क_२ उ_५ ग उ + ३ ओ_२ = २ क_२ उ_५ ग ओ_३ उ$$

इस अम्लके धातु लवण गन्धोनेत (Sulphonate) कहलाते है। $क_२ उ_५ ग ओ_३ पां$ का नाम ज्वलील पांशुज गन्धोनेत है। ज्वलील नैलिद् और पांशुज गन्धित द्वारा यह बनाया जासकता है

$$क_२ उ_५ नै + पां_२ ग ओ_३ =$$
$$क_२ उ_५ ग ओ_३ पां + पां नै$$

गन्धकीय ज्वलक—साधारण ज्वलकों पर स्फुर पंचगन्धिद्का प्रभाव डाल कर गन्धकीय ज्वलक बनाये जासकते हैं:—

$$५ (क_२ उ_५)_२ ओ + स्फु_२ ग_५ =$$
$$५ (क_२ उ_५)_२ ग + स्फु_२ ओ_५$$

ज्वलील गन्धिद

ज्वलील नैलिद् पांशुज गन्धिद्के संयोगसे भी ज्वलील गन्धिदमें परिणत होसकता है

$$२ क_२ उ_५ नै + पां_२ ग = (क_२ उ_५)_२ ग + २ पां नै$$

यह गन्धिद् पानीमें घुलनशील नहीं हैं और इनमें भी दुःखदायी गन्ध होती है।

ओषोन (Ozone)

[ले० श्री० सत्यप्रकाश बी. एस सी. विशारद]

षजनके एक अणुमें दो परमाणु हैं। पर यह एक विचित्रता समझनी चाहिये कि ओषजन के तीन परमाणु परस्परमें संयुक्त होकर एक पदार्थ बनाते हैं जिसे ओषोन कहते हैं। इसका संकेतरूप $ओ_३$ है। इसका अणुभार १६ × ३ = ४८ है। जो व्यक्ति विद्युत् सम्बन्धी यन्त्रों से काम करते रहते हैं वे एक विचित्र सड़ी मछली कीसी दुर्गन्धसे अवश्य परिचित होंगे। यह दुर्गन्ध इसी ओषोनके कारण आती है। वास्तवमें बातयह है कि विद्युत संचार द्वारा वायुका कुछ ओषजन ओषोनमें परिणत होरहा है।

ओषोन बनानेकी विधि:—इसके बनानेकी कई विधियाँ हैं पर कुछ मुख्य विधियाँ यहाँ दी जाती हैं:—

(१) इसकामके लिये कांचका एक विशेषयन्त्र लेते हैं जिसमें कांचकी एक नली दूसरी नलीके भीतर चिपटी होती है, दोनों नलियोंके बीचके स्थान में होकर ओषजन प्रवाहित किया जाता है। अन्दर की नलीमें गन्धकाम्लका हल्का घोल होता है जिसमें पररौप्यम्का एक तार लटकता होता है। इस तारका सम्बन्ध उपपादन वेष्ठन (Induction coil) के एक ध्रुवसे किया जाता है। बाहरकी नली एक चंचुक में रखी जाती है जिसमेंभी हल्का गन्धकाम्ल होता है। इसमेंभी एक तार लटकाते हैं जिसका सम्बन्ध उपपादन वेष्ठनके दूसरे ध्रुवसे करदिया जाता है। इसप्रकारके प्रबन्धमें ओषजन प्रवाहित करते हैं और उपपादन वेष्टनसे विद्युत् संचार करते हैं। इस प्रकार करनेसे ओषजन ओषोनमें परिणत होजाता है।

३ ओ$_2$ २ओ$_3$

(२) जलके विद्युत् विश्लेषणमेंभी ओषोन उत्पन्न होसकता है विशेषकर यदि ध्रुव पररौप्यम्के हों। यदि धनात्मक ध्रुवकी बहुतकम सतह जलमें होतो २३ /° के लगभग ओषोन ओषजनसे मिश्रित पाया जासकता है। पहले लोगोंका विचार था कि इस विधिसे प्राप्त गैस उ$_2$ ओ$_3$ है। पर यह बात ठीक नहीं है क्योंकि इसे गरम करनेसे शुद्ध ओषजन प्राप्त होता है नकि जल। इससे स्पष्ट है कि इस गैसमें उद्जनके परमाणु नहीं हैं।

(३) कांचकी कुप्पीमें जिसमें नम वायु हो, स्फुरको लटकानेसे उचित तापक्रम पर ओषोन प्राप्त होसकता है।

ओषोन की पहिचानः—ओषोनमें अत्यन्तही तीव्र गुण होते हैं, अतः इसे 'वैशक्तिक ओषजन' (Active oxygen) कहसकते हैं, इस गुणके कारण यह पदार्थोंका बहुत शीघ्र ओषदीकरण करदेता है। मांडी (नशास्ता)को जलमें उबालो। इस घोलसे छन्ना कागज़ को भिगोलो। इस कागज़पर पांशुज नैलिदके घोलकी दो बूंदें डालदो। इस भीगे हुए कागज़को ओषोनके संसर्गमें लानेसे कागज़का रंग चटकीला नीला हो जायगा। यह विधि ओषोनकी पहिचान लिये बहुत उपयुक्त है। ओषोन पांशुजनैलिदपर जलकी विद्यमानतामें इस प्रकार प्रभाव डालता हैः—

२ पांनै + ओ$_3$ + उ$_2$ ओ =
२ पां ओ उ + ओ$_2$ + नै$_2$

नैलिन् इस प्रक्रयामें मुक्त होता है जो मांडीके संसर्गसे नीला रंग देता है।

प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया जासकता है कि ओषोनमें ओषजनके अतिरिक्त अन्य कोई तत्व नहीं है। ओषोनको गरमकरनेसे यह विभाजित होकर ओषजनमें परिणत होजाता है। इस प्रयोगके लिये ओषोनको एक मज़बूत कांचकी नलीमें होकर प्रवाहित करो। इस नलीको दग्धकसे गरम करो। नलीके दूसरे सिरेके पास मांडी-पांशुजनैलिद द्वारा नमकिया हुआ छन्ना कागज़ लाओ। इसका रंग अब नीला नहीं पड़ेगा क्योंकि ओषोन ओषजनमें विभाजित होगया है।

२ ओ$_3$ = ३ ओ$_2$

ओषोनके गुण :—यह वायव्य पदार्थ है जिसमें एक प्रकारकी तीक्ष्ण मत्स्य गन्ध आती है। यह द्रवीभूत भी किया जासकता है। द्रव ओषोनका रंग नीला होता है। इसमें प्रबल ओषद्कारक गुण होते हैं। ओषदीकरण करते समय ओषोनके आयतनमें कोईभी भेद नहीं पड़ेगा। बात यह है कि ओषोनका एक ओषजन परमाणुही ओषदीकरणमें उपयुक्त होता है और शेष दो परमाणु ओषजनका एक अणु बनादेते हैं। इस प्रकार ओषोनके एक अणुसे ओषदीकरणके पश्चात् भी ओषजन का एक अणु शेष रहजाता है। इस प्रकार आयतनमें कोई भेद नहीं पड़ता है।

ओ$_3$ = ओ$_2$ × [ओ]
एक अणु   एक अणु

पारद पर ओषोनका विचित्र प्रभाव पड़ता है। ओषोन के संसर्ग से पारद की चमक, इसकी स्निग्धता, और इसके तल की उन्नतोदरता, सब नष्ट हो जाती है। यह कांच की नली के सतहसे चिपक कर पतले दर्पण के समान हो जाता है। पांशुज नैलिद पर इसका जो प्रभाव पड़ता है उसका वर्णन किया ही जा चुका है। पांशुज नैलिदसे नैलिन् मुक्त होजाता है और पांशुज उदौषिद (जलकी विद्यमानतामें) प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्फुर भी इसके संसर्गसे स्फुरकाम्लमें उ$_3$ स्फु ओ$_4$ में परिणत हो जाता है।

स्फु + ३ उ$_2$ ओ + ५ ओ$_3$ ==
२ उ$_3$ स्फु ओ$_4$ + ५ ओ$_2$

इसी प्रकार यह गन्धिदों को गन्धेतों में परिणत कर देता है जैसे सैन्धक गन्धिद को सैन्धक गन्धेतमें।

सै$_2$ ग + ४ ओ$_3$ == सै$_2$ ग ओ$_4$ + ४ ओ$_2$

पत्ती आदिके रङ्गोंको भी यह उड़ा देता है क्योंकि रङ्गोंका ओषदी करण होजाता है।

उदजन परौषिद और ओषोन दोनों निम्न प्रकार एक दूसरे से प्रभावित होते हैं:—

$$ओ_3 + उ_2 ओ_2 = उ_2 ओ + २ ओ_2$$

ओषोन का सङ्गठन—ओषोन ओषजनका भिन्नरूपी (Allotropic) है। दोनोंमें भेद इतना ही है कि इन दोनोंमें ओषजनके परमाणु भिन्न प्रकारसे संयुक्त हैं। ओषजनके तीन अणुओंसे, ३ ओ$_2$, ओषोन के दो अणु (२ ओ$_3$) प्राप्त होते हैं।

$$३ ओ_2 = २ ओ_3$$

(१) इस प्रकार यदि नियत आयतनका सम्पूर्ण ओषजन ओषोनमें परिणित कर दिया तो आयतन पहिलेकी अपेक्षा दो तिहाई रह जायगा। इस प्रयोग को इस प्रकार कर सकते हैं। एक नली ऐसी लो जिसमें दो स्थानों पर समकोण मुड़ी हुई चूल्हाकार सूची नली लगी हो और जिसमें पररौप्यम्‌के दो तार भी हों। नलीमें शुद्ध शुष्क ओषजन भरो। सूची नलीमें थोड़ासा तीव्र गन्धकाम्ल डाल दो। परर‍ौप्यम्‌के तार द्वारा विद्युत् संचार करो। ओषजन ओषोनमें परिणत होगा। सूची नलीमें गन्धकाम्लका स्थान परिवर्तित हो जायगा जिससे स्पष्ट होगा कि ओषजन के आयतन में कमी होरही है।

(२) सूची नलीका सिरा बन्द करदो। नलीको गरमकरो गरमकरनेसे जितना ओषोन बनाथा वह फिर ओषजनमें परिणत होजायगा। तापक्रम ठण्डा होनेदो। सूची नलीके सिरेको अब खोलदो। ऐसा करनेसे गन्धकाम्ल फिर उसी स्थानमें आजायगा जिस स्थानमें प्रयोगके आरम्भमें था। इस प्रकार ओषोनका आयतन बढ़जाता है यदि उसे ओषजनमें परिणत करलें।

(३) ओषोन तारपीनके तेलमें पूर्णतः विना विभाजित हुए ही अभिशोषित होजाता है। इस प्रकारका प्रयोग अन्य तेलोंके साथभी कियागया है। इनसे यह परिणाम निकाला गया है कि "तैल द्वारा अभिशोषित ओषोनका आयतन उस आयतनका दुगुना होता है जो ओषजनको ओषोनमें परिणत करते समय कम हुआ था"। अर्थात् यदि ओषजनको ओषोनमें परिणत करनेसे आयतनमें 'क' कमी हुई है तो इस ओषोन को तार पीन के तेल में अभिशोषण करने पर '२क' की कमी होगी इस प्रकार सम्पूर्ण कमी '३क' हुई इससे स्पष्ट है कि ३ आयतन ओषजन ने दो आयतन ओषोन दिया था।

$$\underset{३ आयतन}{३ ओ_2} = \underset{२ आयतन}{२ ओ_3}$$

अतः ओषोन का सूत्र ओ$_3$ है।

(४) पांशुज नैलिद द्वारा विश्लेषित होने पर भी ओषोनके आयतनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। यह बात इस प्रकार प्रदर्शितकी जा सकती है। एक बन्द गोलेमें पांशुज नैलिदका घोल लो और इसे ओषोन नलिकामें ओषोन उत्पन्न करने के पूर्व ही डाल दो। इसके पश्चात् ओषजनको ओषोनमें तब तक परिणत करो कि फिर आयतन में और कमी न हो। इसके पश्चात् अब यदि गोले को तोड़ा जाय तो नैलिन् मुक्त होगा और गैसके आयतनमें कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा। यदि मुक्त नैलिन्‌की मात्रा ठीक ठीक मालूम कर ली जाय और इस मात्राके तुल्य ओषजनका आयतन निकाल लिया जाय तो पांशुज नैलिद द्वारा अभिशोषित ओषजन का आयतन उतनाही होगा जितना ओषजनका आयतन ओषोनमें परिणत होनेमें कम होगया था।

इन सब प्रयोगोंसे स्पष्ट है कि ओषोनका सूत्र ओ$_3$ है।

(१) ओषजन जब ओषोनमें परिणत होता है तो इसके आयतनमें कमी होजाती है—

$$\underset{(३ आयतन)}{३ ओ_2} = \underset{२ आयतन)}{२ ओ_3} [१ आयतनकी कमी]$$

(२) ओषोन को गरम करके ओषजनमें परिणत करनेसे आयतनमें उतनी ही वृद्धि होती है

जितनी ओषजनको ओषोनमें परिणत करनेमें कम हुई थी।

२ ओ$_3$ = ३ ओ$_2$ [आयतन की वृद्धि]
(२ आयतन ३ आयतन)

(३) ओषोनमें ओषजनको परिणत करनेमें जो कमी होती है अथवा ओषोनको ओषजनमें परिणत करनेमें जो वृद्धि होती है, वह तारपीन द्वारा अभिशोषित आयतनकी आधी होती है।

कमी अथवा वृद्धि (उपर्युक्त समीकरणोंके अनुसार)=१ आयतन।

तारपीन द्वारा अभिशोषित २ ओ$_3$=२ आयतन

(४) ओषोन जब पांशुज नैलिदसे विश्लेषित होता है तो उसके आयतनमें कोई भेद नहीं पड़ता है—

ओ$_3$ + २ पां नै + उ$_2$ ओ=ओ$_2$ + नै$_2$ + पां ओ उ
१ आयतन १ आयतन

(५) निस्सरण की गति द्वारा निकाले गये घनत्वसे भी ओषोन के उपर्युक्त सूत्र का समर्थन होता है। हम पहिले लिख आये हैं कि दो वायव्योंके निस्सरणकी गतियों और उनके घनत्वोंके वर्गमूलोंमें व्युत्क्रम अनुपात होता है। हरिन् गैस (जिसका घनत्व ज्ञात है) और ओषोन की निस्सरण गतियों की तुलना करने पर यह पता चला है कि ओषोनका घनत्व २४ अर्थात् ओषजनके घनत्वका १½ गुना है। इससे स्पष्ट है कि ओषोनका सूत्र ओ$_3$ है।

ओषोन द्रवीभूत भी किया गया है। द्रव ओषोन का रङ्ग नीला होता है और इसका क्वथनांक—११८ श है। यदि शीघ्रतासे गरम करें तो इसमें विस्फुटन होने लगता है। गरम करने से यह ओषजनमें परिणत होने लगता है और बहुत सा ताप जनित होता है। उससे तापक्रम इतनी शीघ्रता से बढ़ने लगता है कि अन्तमें विस्फुटन होने लगता है।

भारतमें मृत्यु संख्यामें वृद्धि

[ले० श्री० शंकर राव जोशी।]

ह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि देशकी जन-संख्याकी वृद्धि जन्म-संख्यापर ही निर्भर करती है। देशमें मौतें जितनी ही कम होंगी, और जन्म-संख्या जितनी ही ज्यादा होगी आबादी भी उसी मानसे बढ़ेगी। जन्म-संख्या तीन बातोंपर निर्भर करती है, १ बच्चे पैदा करनेकी उमर, २ शादी करनेकी उमर और ३ सन्तति पैदा करनेकी शक्ति। जन्म-संख्यापर सामाजिक रीतियोंका भी असर पड़ता है। विधवा विवाह और अधिक उमरमें शादी करनेका असर जन्म-संख्यापर पड़ता है। यह एक अनुभवसिद्ध बात है कि गरीब कुटुम्बमें सन्तति अधिक पैदा होती है। एक प्रसिद्ध विद्वान्का कथन है कि आकस्मिक कारणोंसे होनेवाली मृत्युएँ रोकी जा सकें, तो २३ वर्षमें जन-संख्या दुगुनी हो सकती है। किसी देशकी जन-संख्यापर विचार करते समय हमें दूसरे देशमें जाकर बसनेवालों और दूसरे देशोंसे आकर उस देशमें बस जानेवालोंकी संख्यापर अवश्य ही ध्यान देना चाहिये। पुराने देशोंसे लोग अधिक संख्यामें बाहर जाकर नवीन देशोंमें बस जाते हैं।

बच्चे पैदा करनेकी अवस्था—भारतवर्षमें सन्तति पैदा करनेकी अवस्था, स्थूल मानसे, १४ वर्षसे ४० वर्षकी आयुतक मानी जाती है। इङ्गलैण्डमें यह अवस्था १६ से ४५ है। भारतवर्षमें ८० सैकड़ा लड़कियोंकी शादी २० वर्षकी अवस्थाके पहले ही हो जाती है। किन्तु इङ्गलैण्डमें प्रति सैकड़ा १ लड़की हो २० वर्षकी अवस्थाके पहले शादी करती है। यदि सन्तति उत्पन्न करनेकी अवस्थाके मानसे जन्म-संख्याकी तुलनाकी जाय तो भारत और इङ्गलैंडकी जन्म-संख्या क्रमशः १७०:

१६० होगी। इन अङ्कोंसे यह बात साफ़ मालूम हो जाती है कि भारतीय स्त्रियोंमें सन्तति पैदा करनेकी शक्ति कम है। भारतमें जन-संख्याके मानसे प्रति हज़ार पीछे ३६ बच्चे पैदा होते हैं और इङ्गलैंडमें २७ व फ्रांसमें २०। भारतवर्षमें दूसरे देशोंसे आकर बसनेवालोंकी संख्या शून्य ही है और यहांसे हज़ारों मनुष्य दूसरे देशोंमें जाकर बस गए हैं और बसते जा रहे हैं। सिलोन, स्ट्रेट सेटलमेंट, मलाया आदि देशोंमें भारतीय मज़दूर जाते हैं। भारतवर्षमें भी एक प्रांतके मनुष्य मज़दूरी, नौकरी व्यापार आदि कारणोंसे दूसरे प्रांतोंमें जाकर बसते रहते हैं।

मृत्यु-संख्या—भारतमें प्रति हज़ार पीछे ३४ मौतें होती हैं; किन्तु इङ्गलैंडमें सिर्फ १५। भारतवर्षमें एक पुरुषकी औसत आयु २२·५ सालकी होती है किन्तु इङ्गलैण्डमें यह औसत ४६ वर्ष है।

अब सवाल यह पैदा होता है कि भारतवर्षमें ज़्यादा मौतें क्यों होती हैं? मृत्यु-संख्यामें वृद्धि होनेके कई कारण हैं; उनमेंसे गंदे स्थानोंमें रहना, अस्वच्छता, रोगोपचारके साधनोंका अभाव, पौष्टिक भोजनका अभाव आदि मुख्य हैं। किन्तु ये कारण ऐसे नहीं हैं, जो दूर न किये जा सकें और यदि प्रयत्न किया जाय तो मृत्यु-संख्या बहुत कुछ घट सकती है। भारतमें बढ़ती हुई जन-संख्याके लिए स्थान नहीं है और वर्तमान अवस्थाको देखते हुए कहना पड़ता है कि बढ़ती हुई आबादीके लिए यहां काफ़ी नाजका मिलना भी मुमकिन नहीं। भारतवर्षमें प्रति मनुष्यकी वार्षिक आयका औसत ३० रुपयाके लगभग है। देहातोंमें चौबीस घन्टेमें एकबार रूखा सूखा भोजन पाकर ही गरीब लोग अपनेको सुखी मान लेते हैं। अकाल या महामारीके ज़मानेमें तो बेचारे देहातियों पर जो बीतती है, वह भगवान ही जानता है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बढ़ती हुई मौतोंके रोकनेका क्या उपाय किया जाना चाहिए? भारतकी सम्पत्ति पैदा करनेकी शक्तिको बढ़ाना एक उपाय है। मगर भारतकी जनसंख्याका क़रीब ६७ सैकड़ा भाग देशके क्षेत्रफलके ⅓ रकबेपर फैला हुआ है। देशके ⅓ रकबेकी ज़मीनका अधिकांश नदी नालों, पहाड़ और जङ्गलोंसे व्याप्त है। यह भूभाग खेतीके क़ाबिल नहीं है। भारतकी कृषि योग्य भूमिके करीब आधे भागपर खेती की जा रही है। हिसाब लगाकर देखनेसे पाया गया है कि भारतमें प्रति हल पीछे ११ एकड़ ज़मीन पड़ती है किन्तु एक जोड़ी बैलके लिए ११ एकड़ जमीनका अच्छी तरह जोता जाना संभव नहीं। प्रति हल पीछे सिर्फ ५-६ एकड़ ज़मीन होना चाहिए। भारतकी प्रति शत ८० जनता खेती या उससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य उद्योगधन्धों द्वारा अपना गुज़र चलाती है। और इन्हीं कारणोंसे देशमें नाजकी कमी भासित हो रही है। भारतमें आबपाशीके साधनोंकी उतनी विपुलता नहीं है और वैज्ञानिक सिद्धान्तों द्वारा खेती करना तो यहांके लोग जानते ही नहीं है। इस दिशामें योग्य प्रयत्न करनेसे भारतमें खेतीकी पैदावारमें खूब तरक्की की जा सकती है। और तरक्कीकी काफ़ी गुञ्जाइश है भी। भारत वासियोंने इस ओर प्रयत्न भी किए हैं किन्तु उनको सफलता नहीं मिली है। विदेशियोंकी प्रतियोगिता ही इसका एकमात्र कारण है। इसलिए वर्तमान हालतको देखते हुए कहना पड़ता है कि मृत्युसंख्याको घटानेके लिए जनसंख्याकी वृद्धिको रोकना ही एकमात्र उपाय है।

भारतमें ही क्यों संसारके सभी देशोंमें पाया जाता है कि गरीब और मध्यम श्रेणीके लोगोंका कुटुम्ब बड़ा होता है। और यही कुटुम्ब मजदूरी और नौकरीके लिए टकेके बीस मिलते हैं, जिससे मज़दूरीकी दर घट जाती है। मांगसे पैदावार ज्यादा होनेसे ही दर घट जाती है। इसलिये हमें मांगके अनुसार ही पैदावार करनेका उपाय करना चाहिए। भारतकी अधिकांश जनता गरीब है। यही कारण है कि यहाँ बहुत ज्यादा मज़दूर मिलते हैं। मगर काफ़ी मजदूरी न मिलने और ज़रूरतसे ज्यादा

संख्यामें मज़दूर होनेसे बेचारोंको भर पेट खानेको भी नहीं मिलता और बहुततोंको तो भूकों मरना पड़ता है। इसलिये हमें पाश्चात्य देशोंका अनुकरण करना चाहिए। जबतक पुरुष अपने कुटुम्बका भरण पोषण करनेकी क्षमता प्राप्त न कर ले उसको ब्याह ही नहीं करना चाहिए। भारतको सन्तान पैदा न करनेकी कोशिश करना चाहिये। शादी करनेकी उमर बढ़ा देने, कमानेकी योग्यता न होनेपर शादी न करने और शादी कर लेनेपर सन्तान उत्पन्न न करनेकी कोशिश करनेसे देशका बहुत कुछ भला हो सकता है। भीखमंगे, और मज़दूरोंकी सृष्टि करके देशको रसातलमें पहुँचाना राष्ट्रको नामशेष और बेइज्जत करना है। हमको उतने ही बच्चे पैदा करने चाहिए जितनेका पालन पोषण अच्छी तरहसे किया जासके और जिनको सुशिक्षित बनाकर योग्य नागरिक बनानेकी क्षमता हममें हो। ×

× एक अङ्गरेजी लेखके आधारपर।

पुनर्जन्म और आधुनिक विज्ञान

[लें० श्रीशङ्करलाल जींदल, एम. एस-सी.]

हिन्दुओंमें यह विचार बहुत प्राचीन कालसे पाया जाता है कि इस शरीरके नाश होते ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता बल्कि एक अति सूक्ष्म वस्तु जिसको वे आत्मा कहते हैं अन्य शरीर धारण करती है। पश्चिमके वैज्ञानिक इस बातको नहीं मानते हैं परन्तु उनमेंसे कुछका विचार हमारे ही विचारसे मिलता है। सर अलिवर लाज Sir Oliver Lodge उनमेंसे एक हैं। हालमें ही अमरीकाके महाधनी पुरुष हेनरी फ़ोर्ड Henry Ford भी इसी ओर झुक गये हैं। हमको इस बातसे आश्चर्य कदापि न करना चाहिए क्योंकि हम जानते हैं कि उनकी सभ्यताका अभी आरम्भ हो है। थोड़े दिन हुए जब रामायण इत्यादिमें वायुयानका (Aeroplane) नाम आता था तब ये लोग उसको पौराणिक कह कर उड़ा दिया करते थे। आज आप स्वयं देखते हैं कि समाचार पत्रोंमें कितने लेख वायुयानोंके सम्बन्धमें भरे रहते हैं।

इस लेखमें हमारा विचार है कि देखें पश्चिमके विद्वानोंने इस बातमें कहांतक उन्नति की है और उनके प्रयोगोंके फल Experimetal results कहांतक हमारे यहांके सिद्धान्तके पक्ष वा विपक्षमें हैं। जीवतत्व वेत्ताओंने बड़े अनुसन्धानके बाद मालूम किया है कि प्रत्येक जीवधारीका शरीर कोषों (Cells) से बना है जिस प्रकार कि प्रत्येक पदार्थ अणुओंसे बनता है। हर एक कोषमें जीवाद्यम होता है जिसको अंग्रेज़ीमें Protoplasm कहते हैं। इस जीव पदार्थमें वही वस्तुएं होती हैं जो हमारे शरीरकी पुष्टिके लिए आवश्यक हैं अर्थात् प्रोटीन Proteins, चर्बी Fats, और कर्बोज Carbohydrates। इन विद्वानोंका यही विचार है कि जीवन उसी रासायनिक क्रियाका फल है जो कोषके अन्दर सर्वदा होती रहती है। हालमें ही एक कृत्रिम कोष अमरीकामें बनाया गया है जो प्राकृतिक कोषसे बहुत सी बातोंमें मिलता है परन्तु अन्तर इतना ही है कि यह कोष प्राकृतिक कोषके अनुसार स्वतः कर्मकर्त्ता automatic नहीं है। मनुष्यको स्वयं स्थितिस्थापकत्व equilibrium तोड़ना पड़ता है। इसी वास्ते वे कहते हैं कि मन (mind) दिमाग़ (brain) की असंख्य कोषोंकी क्रियाओंका फल है और इन कोषोंकी मृत्युके साथ मनकी भी मृत्यु हो जाती है। उनके विचारसे आत्मा कुछ भी नहीं है; केवल मनुष्योंका ख्याल मात्र ही है।

हमको ये बातें सुन कर हताश न हो जाना चाहिए क्योंकि उनके विचार रोज़ाना बदलते रहते

हैं कारण कि उनका ज्ञान अभी पहले ही दर्जेमें है। ज्यों ज्यों उनका ज्ञान बढ़ता जावेगा त्यों त्यों वे सचाईकी ओर आते जायंगे। इसके पक्षमें कई उदाहरण वर्त्तमान् हैं मसलन् आधुनिक वैज्ञानिक कुछ दिन पहिले एक तत्वका अन्य तत्वमें बदल जानेमें विश्वास नहीं करते थे। यदि हम ध्यान पूर्वक विचार करें तो हमें मालूम होगा कि संसारमें एक और शक्ति काम कर रही है जो वैज्ञानिक अर्थात् रसायनिक और भौतिक (chemical and physical) नियमोंका तनिक भी खंडन नहीं करती है और वह प्रकृति अर्थात् मात्रा और शक्ति (matter and energy) के गुणोंसे भी परे है। इसको अंग्रेजीमें चेतना intelligence कहते हैं। इसका काम प्रकृति-मात्रा और शक्ति (mater and energy) को उनके नियमानुसार संचालन (Guide) करना है।

प्रत्येक मनुष्यका शरीर असंख्य जीव कोषों (life cells) से बना है और प्रत्येक कोषमें रासायनिक क्रिया उन्हीं नियमोंसे बाधित होकर हो रही है जोकि हम रोज़ाना प्रयोगशाला (Laboratory) में देखते हैं। जो खूराक हम प्रति दिन खाते हैं वह इतनी ही शक्ति (energy) देती है जितनी कि उसको प्रयोगशालामें जलानेसे प्राप्त हो सकती है। फिर भी कोई न कोई ऐसी वस्तु हमारे अन्दर काम कर रही है जो इन जड़ शक्ति (Energy) को हमारे दैनिक कार्य्यमें सञ्चालन कर रही है। इसको मन (Mind) कहते हैं। आत्मा केवल स्थूल शरीरके द्वारा ही काम नहीं करती बल्कि वह मूल प्रकृति (ether) के ज़रियेसे भी काम करती है। इसको mind या मन कहते हैं।

शरीरकी मृत्युके साथ मन mindकी मृत्यु नहीं होती और वह पिछले जन्मकी बातोंको स्मरण रखता हुआ अन्य स्थूल शरीरमें प्रवेश करता है। इसीको पुनर्जन्म कहते हैं। इस जन्मके वर्त्तमान संस्कारों अथवा पशु योनियोंमें गुजरनेके कारण उसको पिछले जन्मकी बातें याद नहीं रहतीं। जब कभी ऐसा होता है कि मन एक मनुष्य योनिसे एक दम दूसरी मनुष्य योनिमें जाता है तब उसको कुछ कुछ तीन या चार वर्षकी उम्रमें पिछली बातें याद रहती हैं। इसके पक्षमें हम उन उदाहरणोंको दे सकते हैं जो कि हालमें ही लीडर Leader अखबारमें छपे हैं। ऐसे दो लड़के बरेलीमें पैदा हुए हैं जो अपने पिछले जन्मका हाल जानते हैं। एक लड़का कानपुरमें है जो अपने पिछले जन्मके हालातसे वाक़िफ़ है। यह स्मरण शक्ति कुछ ही दिन रहती है क्योंकि वर्त्तमान संस्कार उनको भुला देते हैं। सूक्ष्म शरीरसे आत्माका सम्बन्ध केवल मुक्तिके समयमें ही छुटता है अन्यथा नहीं। एक बात और यह है कि योगी लोग अपने पिछले जन्मोंका हाल जान लेते हैं उसका कारण यही है कि वे मनको एकाग्र कर वर्त्तमान संस्कारोंको भुला पिछली बातोंका स्मरण करते हैं जैसे आप अभी कोई भूली हुई बातको याद करते समय मनको एकाग्र करते हैं।

विद्युतकी वीरता।

लगभग २५ वर्ष पहिले जर्मन वैज्ञानिक विक्टर मेयर (Victor Meyer) ने भविष्यद्वाणी की थी कि एक अत्यन्त ताप-शील यन्त्रके आविष्कार होनेपर रसायन-शास्त्र एक नवीन जीवन धारण करेगा। आधुनिक रसायन-शास्त्र इस भविष्य वाणीकी सत्यता अनुभव कर रहा है क्योंकि विद्युतकी सहायतासे हम उच्च-ताप पा सकते हैं और अनेक वस्तुयें मितव्ययतासे बना सकते हैं। आज दिन सहस्रों मनुष्य और लाखों रुपये इस हेतु काममें लाये जाते हैं।

मोआयसाँ (Moissan) ने पहिले पहिले बिजलीकी सहायतासे वैद्युतिक चुल्हा (Electric furnace) बनाया था। ऐसे चूल्हेके बनानेके लिये एक बड़े पत्थरके चूनेके ऊपर एक दूसरा छोटा चूनेका टुकड़ा रख दिया जाता है और दोनों टुकड़ोंके बीचमें एक गड्ढा कर दिया जाता है। जिस वस्तुको गर्म करना होता है वह इसीमें रख दी जाती है। दोनों कनारोंसे दो कारबनकी पतली छड़ी ऐसी घुसेड़ दी जाती हैं कि वे गड्ढेतक पहुँच जायँ। तत् पश्चात् इन्हीं कारबन द्वारा बिजली दिये जानेपर उज्ज्वल वैद्युतिक चिन्गारियाँ उत्पन्न होती हैं। इस क्रिया द्वारा लगभग ६०००° श का तापक्रम मिलता है। इस वैद्युत्तिक चूल्हेकी सहायतासे अनेक वस्तुयें गलायी जाती हैं। जितना ही अधिक परिमाणमें विद्युत दी जाय तापक्रमका परिमाण उतना ही अधिक होता जाता है। १५०० श तापक्रममें लोहा गल जाता है और २६५०° में भापमें परिणत होजाता है। ताँबा १०८२° में गलता और २३१०° में भाप बन जाता है। चाँदी और सोना क्रमानुसार ६६०°श और १०६२ श में गलते और १६५५ श और २२००°श में भाप बन जाते हैं। इसी चूल्हेकी सहायतासे ये वस्तुयें भापमें परिणत की गई हैं।

वैद्युतिक चूल्हेकी सहायतासे और भी बहुतसी वस्तुयें बनाई गई हैं। इसमें हम केवल कुछका वर्णन करेंगे। इनमेंसे विशेषतः कैलेशियम कराबाइड (Calcium Carbide) और कैलेशियम साइन्माइड (Calcium Cyanamide) वा नाइट्रोलिम (nitrolim) उल्लेखनीय हैं।

कारबाइड आज दिन लगभग प्रत्येक घरमें पाया जाता है। हमारे देशमें बारात या तमाशेके समय कारबाइड बत्तीकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है। बत्तियोंको जलानेके लिये चूनेके टुकड़ेकी भाँति एक सफ़ेद वस्तुकी आवश्यकता होती है। इसका नाम केलेशियम कारबाइड है। इस टुकड़ेपर पानी गिरनेसे एक प्रकारकी गैस जिसे असिटलीन (acetylene) कहते हैं निकलती है। इस गैसकी रोशनी बहुत उज्ज्वल होती है।

इसके बनानेकी रीति यह है कि कोयले और चूनेके छोटे छोटे टुकड़े करके विद्युतिके चूल्हेमें भरदेते हैं। ३५००°श के तापक्रममें इसे रखते हैं इस तापके द्वारा चूना और कोयला गल कर रसायनिक क्रिया द्वारा कारबाइड बन जाता है। नार्वेके ओडा (Odda, Norway) नगरमें एक छोटा चूल्हा है जिसमें लगभग १८५० अश्व-शक्ति (Horse power) की बिजली दी जाती है।

विद्युतके चूल्हेके नीचेसे उपरोक्त क्रिया द्वारा बना हुआ कारबाइड निकाल कर ठंढा किया जाता है तत्पश्चात् विदेशोंको भेजा जाता है।

पहिले पहिल ओडामें एक वर्षमें लगभग ३२ सहस्र टन (१टन=२७मन) कारबाइड बनाया जाता था। और आज कल लगभग ८० सहस्र टन पैदा होता है। किन्तु एक ऐसे चूल्हेके बनानेका प्रयत्न हो रहा है जिससे १२८००० टन कारबाइड बनाया जा सके। आजकल अमरिका, इटली, स्वीज़रलैण्ड इत्यादि देशोंमें कारबाइड बनानेके लिये विराट् कार्यालय स्थापित हो गये हैं कारबाइड बनानेकी इस रीतिका आविष्कार अभी थोड़े ही दिन हुये हुआ है परन्तु आज संसारकी एक बड़ी शिल्प-कला हो गई है। अब हम इस कारबाइडसे नाईट्रोलिम के, जो कि पृथ्वीकी उर्वरता बढ़ानेमें प्रयोग की जाती है, बनाने की विधि बतलायेंगे। कारबाइड को भली प्रकार पीस कर विद्युतके चूल्हेमें लगभग ८००°श तापक्रममें गर्म करके नत्रजन देकर कैलेशियम साइनामाइट वा नाइट्रोलिम बनाते हैं। इस क्रियामें नत्रजनकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है और इसी कारण नत्रजन मितव्ययतासे बनानेकी विधिभी बतलाना चाहिये। हम जानते हैं कि हवामें लगभग ५ भागमें ४ भाग नत्रजन है और १ भाग अम्लजन है। क्या हम इस हवासे नत्रजन नहीं बना सकते? लिण्ड (Lind) ने पहिले पहिल हवाको अधिक दबाव और कम तापक्रम द्वारा तरल कर दिया था। मुख्यतः

नत्रजन और अम्लजन दो गैसें तरल बनायी गई थीं। तरल नत्रजनका कथनांक तरल अम्लजनके कथनांकसे ऊँचा होता है। और अंशिक परिस्रवन द्वारा ये दोनों तरल पदार्थ अलग किये जा सकते हैं। नाइट्रोलिम बनानेके लिये लगभग १०० टन तरल वायु प्रति दिन बनायी जाती है। ओडाके नाइट्रोजन फ़र्टिलाइज़र कम्पनी (Nitrogen fertilizer Company) में तरल नत्रजन पृथ्वी भरमें सबसे अधिक परिमाणमें बनता है।

यह नाइट्रोलिम ठंडा होनेपर अच्छी प्रकारसे पीसा जाता है। और इसमें जो बचा हुआ कारबाइड रहता है उसे जल द्वारा नष्ट कर देते हैं। तत्पश्चात् यह विदेशोंमें भेजा जाता है।

दिनोदिन मनुष्य संख्या बढ़ती जा रही है किन्तु पृथ्वीकी उर्वरता कम होती जाती है। और इसी कारण इस प्रकारकी उर्वरता वर्द्धक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती जा रही है। कैनाडा, अमेरिका स्वीडन, नार्वे इत्यादि देशोंमें इसके बड़े बड़े कार्यालय बन गये हैं। इन उर्वरतावर्द्धक वस्तुओंके बिना किसान लोग अपने आवश्यकतानुसार अन्न नहीं उत्पन्न कर सकते। परिणाम यह होगा कि एक दिन संसारको अकाल ग्रसित कर लेगा। वैज्ञानिकोंका मत है कि पृथ्वी दुर्भिक्ष (Soil-starvation) की ओर जा रही है और बढ़ती हुई मनुष्य संख्याके साथ क़दम ब क़दम नहीं चल रही है। इसका यह कारण नहीं कि कृषक वर्ग अपने खेतोंमें कम परिश्रम करते हैं किन्तु पृथ्वीके अधिक प्रयोगसे उर्बरता कम होती जा रही है। आज कलके वैज्ञानिक लोग इस उर्वरताके बढ़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

अब हमें देखना चाहिये कि विद्युत मितव्ययताके साथ क्योंकर पैदा की जा सकती है। और किस प्रकारसे मनुष्य इसे अपने काममें लगा सकते हैं। नगरोंमें बिजलीकी बत्ती, पंखा और अनेक यन्त्रादिके लिये जितनी विद्युत हम खर्च करते हैं उसके लिये बहुत मूल्य देना पड़ता है। परन्तु इतने मूल्यमें विद्युत ख़रीदकर कोई शिल्प कला लाभ नहीं उठा सकती और इसीलिये रासायनिकोंने बिजलीको मितव्ययतासे बनानेका यत्न किया है। अब हम लोग एक ऐसी वस्तु जानते हैं जिसके द्वारा सरलता और मितव्ययतासे बिजली बना सकते हैं। यह जल-प्रपात है। वैज्ञानिकोंने इसे सफ़ेद कोयला नाम दिया है। किसको ज्ञात था कि ये जल-प्रपात संसारके लिये ऐसे लाभदायक सिद्ध होंगे? अब आइसलैण्ड, नार्वे, कैनाडा, स्वीडन इत्यादि देशोंमें इसके द्वारा बहुत से कार्य मितव्ययतासे सम्पादित होते हैं। प्रथम ये सारी शिल्प-कलायें कोयलेके खानोंके निकट हुआ करती थीं और अब जल-प्रपातोंके सन्निकट स्थापित हो रही हैं। नार्वेके टाइसी फाल्डेन (Tysse faldene) में जो बिजलीका कारख़ाना स्थापित हुआ है उससे ८३ सहस्र अश्व-शक्ति अत्यन्त सरलता से प्राप्त की जा सकती है। अल्बी यूनाइटेड कारबाइटेड कम्पनी (Albey United Carbide. Co., Ltd.) और नाइट्रोजेन प्रोडक्ट्स ऐण्ड कारबाइड कम्पनी लिमिटेड (Nitrogen product and Carbide. Co., Ltd.) ये दानों कार्यालय सन् १६०७ ई० में स्थापित हुये हैं। १६१३ ई० में संसार में २ लाख २३ सहस्र ५ सौ टन कारबाइड खर्च हुआ था और इसमेंसे ८८ सहस्र टन नाइट्रोलिम इन दोनों कारखानोंने दिया था। औरा (Aura) फोक (Foke) और ब्लेकेस्टल ब्राटलैण्ड (Blekestle Bratland) नामक स्थानोंमें जलप्रपातके द्वारा १ लाख अश्व शक्तिकी बिजली बनानेकी कोशिश हो रही है। इसके सफल होनेपर यहाँ २ लाख टन नाइट्रोलिम तैयार करना संभव होगा आइसलैण्डके डीटी (Detti) और फास (Foss) में जो जल-प्रपात हैं उनसे ४ लाख अश्व-शक्तिकी बिजली पायी जा सकतीहै और यहाँ भी नाइट्रोलिम बनानेकी कोशिश हो रही है। कैनाडा इत्यादि देशोंमें जो जलप्रपात हैं उन मेंसे भी बिजली बनानेकी कोशिश हो रही है।

हमने पीछे कहा है कि हमलोगोंके चारो ओर-की वायुमें अम्लजन और नत्र-जन का विशेष भाग होता है। यह वायु यदि एक विशेष विद्युत के चूल्हेके भीतरसे गुज़रायी जाय तो उत्तापके प्रभावसे नत्र-जन ओषिद (nitrogen oxide) नामक गैसमें परिणत हो जाती है । यह पानीके साथ मिलनेपर नाइट्रिक (nitric) और नाइट्रस (nitrous) खाद बनती है। इन दोनों खादोंसे चूने-के साथ रसायनिक संसर्ग होनेपर खटीक, कैल-शियम, नाइट्रेट (nitrate) और नाइट्राइट (ni-trite) बनते हैं । ये दोनों वस्तुयें भी पृथ्वीको उर्बरा बनानेके लिये प्रयोग होती हैं। इस प्रकारसे नाइट्रिक एसिड बनाकर और भी बहुतसे कामोंमें लाते हैं।

कोयला और बालू विशेष परिमाणमें मिलाकर विद्युतके चूल्हे द्वारा गलाये जायँ तो कारबारण्डम (Carborundum) या सिलीकन कारबाइड ना-मक वस्तु जोकि अब्रेसिव (abrasive) बनानेके काममें आती है बनती है। बालूकी मात्रा परिवर्तन (modified) करनेपर पेन्सिल बनानेकेलिये ग्राफ़ाइट (graphite) बनती है। एक भाग बालू और दो भाग कोयला मिलाकर विद्युतके चूल्हेके द्वारा एक सिलाक्सिकन (Siloxican) नामक वस्तु बनायी जाती है जोकि बहुत उत्ताप सह सकती है।यह वस्तु लोहा गलानेका चूल्हा बनानेके लिये प्रयोग होती है। दिया सलाई बनानेके लिये जो मसाला इस्तेमाल होता है उसमें स्फुर (phosphorus) की आवश्यकता पड़ती है। कैल-शियम फ़ास्फ़ेटसे विद्युतकी सहायता द्वारा स्फुर प्रचुर परिमाणमें बनाया जाता है । कारबन डाई-सल्फाइड जोकि घोलकके लिये बहुत स्तेमाल हो-ता है विद्युतिक क्रिया द्वारा प्रचुर परिमाणमें बना-या जाता है । बालूको बहुत उत्तापमें वैद्युतिक चूल्हेपर गलानेसे कार्ट्स नल (quartz tube) बनता है। यह भी बहुत उत्ताप सह सकता है । कार्ट्स बहुत गर्म करके यदि ठंढा किया जाय तो शीशेकी नाईं फट नहीं जाता और इसी लिये रसा-यन-शास्त्रमें इसकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है। हरिन अम्ल (hybrochloric acid) के अतिरिक्त किसी अन्य खाद्से यह नष्ट नहीं होता।

आजकल आलमोनियमके बर्तन हर घरमें पाये जाते हैं। पहिले ये बहुत दाममें मिलते थे किन्तु अब विद्युतकी सहायतासे बहुत आसानी और किफ़ा-यतसे बनाये जा सकते हैं । आज कल हज़ारों टन उत्कृष्ट स्टील विद्युतको सहायतासे बनाये जाते हैं क्रोमियम (Chromium) मोलीडिनम (Molyb-denum) टिटानियम (Titanium) इत्यादि मूल्यवान् वस्तुयें विद्युतके चूल्हेके आविष्कार होनेके पहिले मनुष्यको अज्ञात थे। वैद्युतिक शक्ति द्वारा हम लोग इन वस्तुओंको बना सकते हैं। इन धातुओंको भिन्न २ भागोंमें लोहेके साथ मिलानेसे भिन्न २ प्रकारके स्टील बनते हैं। पेरिस (Paris) नगरके ला-निओ-मेटालर्जिक (La-Neo-Meta llurgic Societe-d' Electrochimic.) नामक-कम्पिनियाँ इन सब प्रकारके स्टीलोंके बनानेके लिये प्रसिद्ध हैं।

यदि नमकीन पानीको बिजलीकी सहायता-से रासायनिक क्रिया द्वारा (Electrolysis) तोड़ें तो कास्टिक सोडा, हरिन (Chlorine) सोडियम (Sodium) और अन्य धातुयें प्रचुर परिमाणमें बनती है। संसारमें तांबेकी आवश्य-कता अधिक है। आजकल असली (Pure) तांबा बिजलीकी सहायतासे बनता है। वैद्युतिक विच्छेद की क्रिया (Electrolysis) आजकल और भी बहुत आवश्यक काममें लग रही है । चांदी या सोनेकी क़लई भी इसके द्वारा होती है।

पहिले किसी वस्तुको रसायनिक क्रिया द्वारा तोड़नेमें बड़ी कठिनाई अनुभव करनी पड़ती थी किन्तु आजकल बिजली द्वारा यह बड़ी सरलता पूर्वक होता है। योरोप और अमेरिकामें बिजली-का प्रयोग अत्यधिक है । इसका विस्तृत रूपमें वर्णन करना इस छोटेसे निबन्धमें असम्भव है।

विद्युतने हम लोगोंके ज्ञानमें आश्चर्यजनक वृद्धि की है, यहांतक कि क्रूक्स (Crookes) टाम्सन (Thomson) रुथरफोर्ड (Rutherford) और साडी (Soddy) आदि वैज्ञानिकोंने इसके द्वारा अणु (Atom) को भी तोड़ा है। इससे पता चलता है कि बिजलीका प्रयोग कितना अधिक है और यह कितने बड़े कामकी वस्तु है।

धीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती

सर्व सिद्धान्त संग्रह

गतांक से आगे

[ले० श्रीगङ्गाप्रसादजी उपाध्याय, एम ए]

कायव्यूह परिज्ञानं नाभिचक्रे तुसंयमात्।
क्षुत्पिपासा निवृतिः स्यात्कण्ठ कूपे तु संयमात्॥६३॥

नाभि चक्रमें संयम करनेसे शरीरकी समस्त बनावटका ज्ञान होता है। कानके छिद्र में संयम करनेसे भूख और प्यास जाती रहती है॥६३॥

कूर्म नाड्यां भवेत्स्थैर्यमर्थज्योतिषि सिद्ध धीः।
जिह्वाग्रे रससंवित्स्यान नासाग्रे गन्धवेदनम्॥६४॥

कानकी नाड़ीमें संयमसे स्थिरता आती है। प्रकाशमें संयम करनेसे पूर्ण ज्ञानी होता है। जीभके अग्र भागमें संयम करनेसे रसोंका ज्ञान होता है और नाकके अग्रभागमें संयम करनेसे गंधों का ज्ञान होता है॥६४॥

अभ्यासादनिशं तस्मादहकान्तिश्शुभाकृतिः।
क्षुदादि विनिवृत्तिश्च जायते वत्सरावतः॥६५॥
संवत्सरेण विविधा जायन्ते योगसिद्धयः।
यथेष्टचरितं ज्ञानमतीतार्थ गोचरम्॥६६॥
स्वदेहेन्द्रियसंशुद्धिर्जरा मरण संक्षयः।
वैराग्येण निवृत्तिः स्यात्संसारेयोगिनोऽचिरात्॥६७॥

निरन्तर अभ्याससे शरीरकी शोभा बढ़ जाती है। सालभरमें भूख आदि भी निवृत्त हो जाती है। क्योंकि सालभरमें योगकी बहुत सी सिद्धियां हो जाती हैं, जैसे जहां इच्छा हो वहां जासकना, बीती हुई बातोंका ज्ञान, अपने शरीर और इन्द्रियोंकी शुद्धि बुढ़ापे और मृत्युका क्षय। योगीको शीघ्रही वैराग्य द्वारा संसारसे निवृत्ति होजाती है॥६५-६७॥

अणिमाद्यष्टकं तस्य योग सिद्धस्य जायते।
तेन मुक्ति विरोधो न शिवस्येव यथा तथा॥६८॥
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरीशता।
प्राकाम्यञ्च तथेशित्वं वशित्वं यत्रकामदम्॥६९॥

योगकी सिद्धिसे अणिमा आदि आठ सिद्धियां होती हैं। इससे शिवके समान मुक्ति मिल जाती है। आठ सिद्धियां यह हैं:—

अणिमा (बहुत छोटा होनेकी शक्ति)
लघिमा (बहुत हलका होनेकी शक्ति)
महिमा (बहुत बड़ा होनेकी शक्ति)
प्राप्ति (चीजोंको प्राप्त करनेकी शक्ति)
ईशता (दूसरोंपर शासन करनेकी शक्ति)
प्राकाम्य (प्रबल इच्छा शक्ति)
ईशित्व (दूसरोंपर हुकूमत करनेकी शक्ति)
वीशत्वं (दूसरोंको वशमें करनेकी शक्ति) इनसे सब कामनायें पूरी हो जाती है॥६८॥

इति श्री मच्छङ्कराचार्य विरचित सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रह पतञ्जलिईश्वर सांख्यपक्षो नाम दशम प्रकरणम्

अब श्रीशङ्कराचार्य्य कृत सर्व दर्शन सिद्धान्त-संग्रहका पतञ्जलि-ईश्वरवादी पक्ष नामी दसवां प्रकरण समाप्त हुआ॥६ ॥

ग्यारहवां अध्याय

अथ वद व्यास पक्षः

सर्व शास्त्राविरोधेन व्यासोक्तो भारते द्विजैः।
गृह्यते साङ्ख्यपक्षाद्धि वेद सारोऽथ वैदिकैः॥१॥

व्यासने महाभारतमें अन्य शास्त्रोंसे अविरुद्ध जो कुछ वेदोंका सार कहा है वह वस्तुतः वेदोंको माननेवाले ब्राह्मणोंने साङ्ख्य से लिया है॥१॥

पुरुषः प्रकृतिश्चेति द्वयात्मकमिदं जगत्।
परश्शायनश्तन्मात्र पुरे तु पुरुषः स्मृतः॥२॥

पुरुष और प्रकृति मिलकर यह जगत् बनता है, पंच तन्मात्राओंसे बने हुए शरीर रूपी पुर में सोता है, इसलिये उसको पुरुष कहते हैं॥२॥

तन्मात्रास्सूक्ष्म भूतानि प्रायस्ते त्रिगुणास्स्मृताः ।
प्रकृतिर्गुण साम्यंस्याद् गुणास्सत्वं रजस्तमः ॥३॥

सूक्ष्म भूतोंको तन्मात्रा कहते हैं, वह तीन गुण वाली हैं। गुण तीन हैं सत्व, रज, तम, इनकी साम्य अवस्था का नाम प्रकृति है ॥३॥

बन्धःपुंसो गुणावेशो मुक्तिर्गुणविवेक धीः ।
गुणस्वभावैरात्मा स्यादुत्तमो मध्यमोऽधमः ॥४॥

इन्हीं गुणोंके कारण मनुष्य की बन्ध होती है। गुणोंका विवेक ही मुक्ति है। इन्ही गुणोंके स्वभाव के कारण ही आत्मा उत्तम, मध्यम या अधम होता है ॥४॥

उत्तमः सात्विकः श्लेष्म प्रकृतिस्स जलात्मकः ।
राजसो मध्यमो ह्यात्मा स पित्त प्रकृतिर्मतः ॥५॥
अधमस्तामसो वात प्रकृतिर्यत्तमो मरुत् ।
सत्वं शुक्लं रजो रक्तं धूम्र कृष्णं तमोमतम् ॥६॥

सात्विक अच्छा है। उसकी कफ़ की प्रकृति है और जलके स्वभाववाला है। बीचका राजसी है। उसकी पित्तकी प्रकृति है। सबसे निकृष्ट तामस है उसकी वातकी प्रकृति है, तम वायुवाला है, सत्व सफेद है, रज लाल है और तम काला है ॥५-६॥

जलाग्नि पवनात्मानः शुक्ल रक्तासितास्ततः।
तत्तदाकार चेष्टाद्यैर्लक्ष्यन्ते सात्विकादयः ॥७॥

इसलिये सत्व, रज, तमवाले पुरुष जल, या अग्नि या वायु की सी प्रकृति रखते हैं और सफेद लाल या काले होते हैं। यह आकार और चेष्टा आदिसे पहचाने जाते हैं।

प्रियंगुदूर्वा शस्त्राब्ज हेमवर्णः कफात्मकः !
गूढ़ास्थिबन्धन्सुस्निग्ध पृथुवक्षावृहत्तनुः ॥८॥

सतोगुणी पुरुषकी कफकी प्रकृति होती है उसका रङ्ग प्रियङ्गुका सा या दूर्वा का सा या शस्त्र-का सा, या कमल का सा, या सुनहरा होता है। उसकी हड्डियोंकी गांठे गूढ़ होती हैं, उसकी चिकनी और चौड़ी छाती होती है और शरीर बड़ा होता है ।८।

गम्भीरो माँसलः सौम्यो गजगामी महामनाः ।
मृदङ्ग नादो मेधावी दयालुस्सत्यवागृजुः ॥६॥

वह गम्भीर, गठीला, सौम्य, हाथीकी सी चालवाला, उदार चरित्र, मृदङ्ग के से शब्दवाला, बुद्धिमान, दयालु, सत्यवादी और सीधा होता है ॥९॥

क्षुद्र दुःख परिक्लेशैरतप्तो धर्मतस्तथा ।
अनेक पुत्रभृत्याढ्यो भूरिशुक्रोरतिक्षमः ॥१०॥

छोटे २ दुःखों या गर्मी सर्दीसे घबराता नहीं। बहुतसे पुत्र और नौकरों वाला होता है, अधिक वीर्यवाला और रतिके समर्थ होता है ॥१०॥

धर्मात्मा मितभाषी च निष्ठुरं वक्ति न कचित् ।
बाल्येऽप्यरोदनोऽलोलो न बुभुक्षार्तितोभृशम् ॥११

धर्मात्मा, थोड़ा बोलने वाला, कभी कठोर नहीं बोलता, बाल्यावस्थामें भी नहीं रोता, न चिलबिला होता है। न कभी भूखसे अत्यन्त दुःखी होता है। ११।

भुंक्तेऽल्पं मधुरं कोष्णं तथापि बलवानसौ ।
अप्रतीकारता बैरं चिरं गूढंवहत्यसौ ॥१२॥

थोड़ामीठा और कुछ कुछ गर्म खाना खाता है, तौभी बलवान होता है। शत्रुताका मनमें छिपा कर भी बहुत दिनों बदला नहीँ लेना। १२।

धृतिर्बुद्धिःस्मृतिः प्रीतिः सुखंलज्जाऽङ्गलाघवम् ।
आनृण्यं समतारोग्यमकार्पण्यमचापलम् ॥१३॥

धृति, बुद्धि, स्मृति, प्रीति, सुख, लज्जा, छर-छरापन, उधार न लेना, चित्तकी समता, आरोग्य, नीचताका अभाव और चपलताका न होना। १३।

इष्टापूर्तविशेषाणां क्रतूनामविकत्थनम् ।
दानेन चानुग्रहणमस्पृहा च परार्थतः ॥१४॥

अपने किये हुये धर्म आदिका विशेष कथन न करना, दया करके दान देना, दूसरोंके धनकी आकाङ्क्षा न करना। १४।

सर्वभूति दयाचेति गुणैर्ज्ञेयोऽत्र सात्त्विकः ।
रजोगुण परिच्छेद्यो राजसोऽत्र यथाजनः ॥१५॥

और सब जीवोंपर दया। इन गुणोंसे सात्विक पुरुष जाना जाता है। जिस पुरुषमें राजसी गुण है वह रजो गुण सम्बन्धी लक्षणोंसे जानाजाता है। १५।

रजः पित्तं तु देवाग्निरग्निस्तदिपत्तजस्तुवा।
तीव्र तृष्णो बुभुक्षार्त्तः पैत्तिकोऽमित भोजनः॥१६॥

रज पित्त पित्तकी आग है। या आगपित्तसे उत्पन्न है। पित्त वाले आदमी को बहुत प्यास लगती है और बहुत भूख और वह बहुत खाता है। १६।

पिङ्गकेशोऽल्परोमा च ताम्रवक्त्रङ्घ्रिहस्तकः।
धर्मासहिष्णुरुष्णाङ्गः स्वेदनः पूतिगन्धयुक्॥१७॥

भूरेबाल होते हैं। शरीरपर रोम कम होते हैं। चेहरा पैर और हाथ लाल होते हैं। धूपको सहन नहीं करसकता। शरीर गर्म होता है। पसीना बहुत आता है और शरीरसे दुर्गन्ध निकलता है। १७।

स्वस्थो विरेचनादेवं मृदुकोष्ठोऽति कोपनः।
शूरस्सुचरितोमानी क्लेशभीरुश्च पण्डितः॥१८॥

शौच साफ आनेके कारण तन्दुरुस्त रहता है उसका पेट कोमल होता है। क्रोध शीघ्र आता है। शूर, सुचरित, मानवाला। क्लेशसे डरता बहुत है, और पण्डित होता है। १८।

माल्यानुलेपनादीच्छुरतिस्वस्थोज्ज्वलाकृतिः।
अल्प शुक्रोऽल्पकामश्च कामनीनामनीप्सितः॥१९॥

माला और उबटन आदिको बहुत चाहता है, सुखपर हर्ष और चमक होती है। वीर्य कम होता है। कामी भी कम होता है स्त्रियाँ उसको अधिक नहीं चाहतीं। १९।

बाल्येऽपि पलितं धत्ते रक्तरोमाथ नीलिकाम्।
बली साहसिको भोगी सम्प्राप्तविभवस्सदा॥२०॥

बालकपनमेंही बाल सफेद होजाते हैं, लाल रोम होते हैं और नीलिका नामी आंखकी बीमारी होती है। बलवान, साहसवाला, भोगी, और सदा धनवाला होता है। २०।

भुङ्क्तेऽति मधुरं चार्द्रं भक्ष्यं कट्वम्लनिस्पृहः।
नात्युष्णभोजी पानीयमन्तरा प्रचुरं पिबन्॥२१॥

ताज़ा और मीठा भोजन करता है, खट्टे और कड़वेकी इच्छा उसे नहीं होती। बहुत गर्म खाना नहीं खाता। खानेमें पानी बहुत पीता है। २१।

नेत्रं चात्यल्प पक्ष्मास्यं भवेच्छीतजलप्रियः।
कोपेनार्काभितापेन रागमाशु प्रयाति च॥२२॥

उसकी आंखोंपर बहुत पतले और छोटे पलक होते हैं। ठण्डा पानी उसे बहुत प्रिय होता है, क्रोधसे और धूपसे वह बहुत शीघ्र लाल हो जाता है। २२।

अत्यागित्वमकारुण्यं सुख दुःखोपसेवनम्।
अहङ्कारादसत्कारश्चिन्ता वैरोपसेवनम्॥२३॥

त्याग न होना, करुणा का अभाव, सुख दुःख-में फँसा होना, अहङ्कारसे दूसरेकी परवाह न करना चिन्ता और वैर भाव। २३।

परभार्यापहरणं हीनाशोऽनार्जवन्त्विति।
राजसस्य गुणाः प्रोक्तास्तामसस्य गुणा यथा॥२४॥

दूसरेकी स्त्री ले लेना, लज्जा न होना, मक्कारी यह राजस पुरुषके लक्षण कहे गये। अब तामस के लक्षण कहे जाते हैं। २४।

अधर्मस्तामसो ज्ञेयस्तामसो वातिकोजनः।
अधन्यो मत्सरी चोरः प्राकृतोनास्तिकोभृशम्॥२५॥

अधर्मको ही तामस समझना चाहिये। तामसी पुरुषमें वातका विकार होता है, वह दरिद्र डाह करनेवाला, चोर, गँवार और पूरा नास्तिक होता है। २५।

दीर्घ स्फुटितकेशान्तः कृशः कृष्णोऽतिलोमशः।
अस्निग्ध विरलस्थूलदन्तो धूसर विग्रहः॥२६॥

उसके बाल दूर तक फटे होते हैं। वह दुबला काला और बहुत रोमवाला होता है उसके दांत चिकने नहीं होते, वह स्थूल और इधर उधर लगे होते हैं। उसका शरीर खाकके समान धूसर होता है॥२६॥

चञ्चलास्यधृतिर्बुद्धिश्चेष्टा दृष्टिर्गतिः स्मृतिः।
सौहार्दमस्थिरं तस्य प्रलापोऽसङ्गतस्सदा ॥२७॥

उसकी धृति, बुद्धि, चेष्टा, दृष्टि, गति और स्मृति चञ्चल होती है, उसकी मित्रता स्थिर नहीं होती, उसका प्रलाप भी असङ्गत होता है।२७।

बह्वाशी मृगयाशीलो, मलिष्ठः कलह प्रियः।
शीतासहिष्णुश्चपलो दोषश्रीर्जर्जरस्वरः ॥२८॥

बहुत खानेवाला, शिकारका इच्छुक, मैला और लड़ाई चाहनेवाला, ठण्डकका सहन न कर सकनेवाला, चपल, दोषोंकी खोजमें रहने वाला और टूटी फूटी आवाज वाला ॥२८॥

सन्न सक्त चलालापा गीतवाद्यरतस्सदा।
मधुराद्युपभोगी च भक्ष्यपक्वाम्लसस्पृहः॥२९॥

उसकी चञ्चल बातचीत निकटकी चीजोंके विषयमें ही होती है। गाने बजानेका बहुत शौकीन होता है, मीठी चीजें आदि बहुत खाता है, अच्छी तरह पकी हुई और खट्टी वस्तुओं का बहुत चाहता है।

अल्प पित्तकफः प्रेक्ष्योऽस्वल्पनिद्रोऽल्प जीवनः।
एवमादि गुणैर्ज्ञेयस्तामसो वातिको जनः ॥३०॥

उसमें पित्त और कफ थोड़ा देखनेमें आता है सोता बहुत है। थोड़ी ही जीविकापर रह सकता है। इसी प्रकारके गुणोंसे वात प्रधान तमोगुण भी पुरुष माना जाता है।३०।

पञ्चभूत गुणान् वक्ष्ये त्रैगुण्यान्नाति भेदिनः ॥
जङ्गमानाञ्च सर्वेषां शरीरे पञ्चधातवः ॥३१॥

अब मैं पांच भूतके गुणोंका वर्णन करता हूं, यह तीन गुणोंसे बहुत भिन्न नहीं है। सब जङ्गमों (चलने वालों) के शरीरमें पांच धातुएं होती हैं।३१।

प्रत्येकशः प्रभिद्यन्ते यैश्शरीरं विचेष्यते।
त्वक् च मांसं तथास्थीनि मज्जा स्नायुश्च पंचमः ॥३२
इत्येतदिह संख्यातं शरीरे पृथ्वीमयम्।
तेजोऽग्नि तस्तथा क्रोधश्च क्षुरूष्मा तथैव च ॥३३॥
अग्नि र्जरयते चापि पञ्चाग्ने याश्शरीरिणाम्।
श्रोत्रं घ्राणमथास्यञ्च हृदयं कोष्ठमेव च ॥३४॥
आकाशात्प्राणिना मेते शरीरे पञ्च धातवः।
श्लेष्मा पित्त मथ स्वेदो वसा शोणितमेव च ॥३५॥
इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा।
प्राणात्प्राणयते देही व्यानाद् व्यायच्छते सदा ॥३६॥
गच्छत्यपानोऽवाक् चैव समानो हृद्यवस्थितः।
उदानादुच्छ्वसिति च श्रुति भेदांश्च भाषते ॥३७॥
इत्येते वायवः पञ्च चेष्टयन्तीह देहिनः।
इष्टानिष्टसगन्धश्च मधुरः कटुरेव च ॥ ३८ ॥
निर्हारी सङ्गतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च।
एवं नवविधो ज्ञेयः पार्थिवो गन्धविस्तरः ॥३९॥

यह पाँच धातु एक दूसरेसे भिन्न हैं और इनसे ही शरीर चलता है। त्वचा, मांस, हड्डियाँ, मज्जा, और पांचवीं नसें यह शरीर में पृथिवीकी बनी हुई हैं। तेज, क्रोध, आंख और गर्मी अग्निसे बने हुये हैं। अग्निसे खाना पचता है। शरीरमें यह पांच आग वाले पदार्थ हैं। शरीरमें आकाशसे बने हुये पांच पदार्थ यह हैं:—कान, नाक, मुहं, हृदय, और पेट। प्राणियोंके शरीरमें सदा पांच चीजें जलसे बनी होती हैं अर्थात् कफ, पित्त, पसीना, चर्बी, खून। प्राण वायुसे मनुष्य साँस लेता है व्यान वायुसे बढ़ता है। अपानवायु नीचेको चलता है। समान वायु हृदयमें स्थित है। उदानसे बाहर सांस फेंकता है। और उसीसे भिन्न भिन्न प्रकार के शब्द बोलता है। इन पांच प्राणोंके द्वारा शरीरी इस शरीरमें चेष्टायें करता है। पृथिवीसे बना हुआ गन्ध नौप्रकारका है, इष्ट (प्रिय) अनिष्ट (अप्रिय) मीठा, कड़वा, निर्हारी (फैलनेवाला), सङ्गत (किसी वस्तुके भीतर रहजानेवाला जैसे हींग।) स्निग्ध (चिकना) रूखा और विशद। ३२-३९।

मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोऽम्लः कटुस्तथा।
एवं षड् विधविस्तारो रसो वारि मयो मतः ॥४०॥

जलसे बना हुआ रस छः प्रकारका है, मीठा, नमकीन, कड़वा, कसैला, खट्टा, तीक्ष्ण। ४०।

ह्रस्वो दीर्घस्तथा स्थूलश्चतुरश्रोऽथ वृत्तवान्।
शुक्लः कृष्णास्तथा रक्तो नीलः पीतोऽरुणास्तथा ॥४१॥
एवं द्वादश विस्तारो ज्योतिषोऽपि गुणः स्मृतः।
षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ॥४२॥
धैवतो निषधश्चैव सप्तैते शब्दजा गुणाः॥
उष्णश्शीतं सुखं दुखं स्निग्धो विशद एवच ॥४३॥
कठिनश्चिक्कणः श्लक्ष्णः पिच्छिलो मृदु दारुणौ।
एवं द्वादशविस्तारो वायव्यो गुण उच्यते ॥ ४४॥

आगसे यह बारह गुण और निकलते हैं, ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चौकोण, गोल, सफ़ेद, काला, लाल, नील, पीला, गेहुँआ। शब्दसे उत्पन्न हुये सात गुण यह हैं:—

षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषध।

वायुके बारह गुण यह हैं, गरम, ठण्डा, सुख, दुःख, चिकना, शुद्ध, कड़ा, चिपकनेवाला, पतला, मोटा, नरम, खुरदरा। ४१-४४।

आकाशजं शब्द माहुरेभिर्वायु गुणैस्सह।
अव्याहतैश्चेतयते न वेत्ति विषमागतैः॥ ४५॥
आप्याययते नित्य धातुभिस्तैस्तु पञ्चभिः।
आपोऽग्निर्मरुतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु॥ ४६॥

वायुके गुणोंके साथ २ शब्द को आकाशसे उत्पन्न हुआ बताते हैं। यह पांच भूत यदि ठीक २ रीतिसे मिले होते हैं तो मनुष्य सचेत रहता है। इनमें विघ्न आनेसे अचेत होजाता है। इन्हीं पांच धातुओं को द्वारा वृद्धि होती है। शरीरोंमें जल, आग और हवा सदा जागते रहते हैं। ४५-४६।

चतुर्व्यूहात्मकोविष्णुश्चतु र्धैवाकरोज्जगत्।
ब्रह्म क्षत्रिय विट् शूद्रांश्चतुर्वर्णान् गुणात्मकान्॥४७॥
विप्रश्शुक्लो नृपो रक्तः पीतो वैश्योऽन्त्यजोऽसितः।
विस्तृत्य धर्मशास्त्रे हि तेषां कर्म समीरितम् ॥४८॥

चतुरात्मक विष्णुने चार प्रकारका संसार बनाया जिसमें चार गुणथे अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ४७।

ब्राह्मण सफ़ेद होता है, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीला और शूद्र काला। धर्मशास्त्रमें विस्तार पूर्वक उनके कर्म कहे हैं। ४८।

एकस्मिन्नेव वर्णेतु चातुर्वर्ण्यं गुणात्मकम्।
मोक्षधर्मेऽधिकारित्व सिद्ध ये मुनिरभ्याधात् ॥४९॥

मोक्ष धर्म में अधिकारकी सिद्धिके लिये व्यास मुनि कहते हैं कि एक एक वर्णमें चारोंवर्ण शामिल हैं। ४९।

स कर्म देवता योगज्ञानकाण्डेष्वनुक्रमात।
प्रवर्तयति तत्कर्म परिपाक क्रमविदन् ॥ ५०॥

यह जानकर कि इन भिन्न २ पुरुषोंके कर्मोंका क्या २ फल मिलता है उसजीने कर्म, देव पूजा और ज्ञानके अनुसार इनके भिन्न २ कर्म करनेको शिक्षायें दी हैं। ५०।

ऋजवश्शुद्ध वर्णाभाः क्षमावन्तो द्विजातया।
स्वधर्म निरता येस्युस्ते द्विजेषु द्विजातया ॥५१॥

द्विजोंमें असली ब्राह्मण वही हैं जो सच्चे हैं, शुद्ध रंगके हैं, क्षमावान और दयालु हैं और अपने धर्ममें रत हैं। ५१।

कृषिक्षेत्रका प्रबन्ध

[ले० श्री पं० शीतलाप्रसाद तिवारी, विशारद, कृषि अध्यापक।]

(Farm management)

सी बने बनाये कृषिक्षेत्र (farm) का काम चला देना कोई भी बड़ी भारी बात नहीं है। परन्तु नई भूमि क्रय करके उसे कृषि-क्षेत्र (farm) के ढङ्ग पर प्रबन्ध करना हरेक कृषि-वैज्ञानिकके लिये नई बात है। ऐसे समयमें यह विचार करना पड़ता है कि हमें इस फार्ममें कितने जोड़ी बैल रखने पड़ेंगे और इन बैलोंके लिये हमें कितने मन चारेका प्रबन्ध करना पड़ेगा; कितना हरा चारा

खिलाना पड़ेगा कितना सूखा चारा। यह दोनों भाँति-के चारे फार्म' के कितने क्षेत्रफलमें उगाये जाने चाहियें। इसके सिवाय हमें कृषि करनेके लिये और कौन कौनसे सामान चाहियें;—अर्थात हलोंका तथा पटेला और अन्यान्य कृषि-यन्त्रोंका। इसमें वर्तमान ढङ्गके वैज्ञानिक कृषि-यन्त्र भी होने चाहिये। उनका ब्योरेवार प्रबन्ध करना पड़ेगा।

जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है* कि ५० एकड़ भूमिका कृषिक्षेत्र किसी भी वैज्ञानिकके प्रबन्धके लिये ठीक है। यदि इस कृषिक्षेत्रमें सिंचाईका प्रबन्ध नहरके द्वारा होता हो तो प्रति ७ एकड़पर एक जोड़ी बैल रखना आवश्यक है और यदि कृषिक्षेत्रकी सिंचाईका प्रबन्ध कुयेंसे हो, तो प्रति ५ एकड़पर ही एक जोड़ी बैल रखना पड़ेगा, क्योंकि बैलोंको चरसेसे पानी निकालना पड़ेगा।

कृषिक्षेत्रकी सिंचाईका प्रबन्ध एक बहुत ही आवश्यक कर्म्म है। सिंचाईपर ही फ़सलोंकी उपज निर्भर हैं। सिंचाईके कार्य्यमें सुगमता उत्पन्न करनेके लिये आजकल 'बोरिङ्ग' के द्वारा तहतोड़ कुयें बनवा कर उनमेंसे 'इञ्जन' द्वारा पानी उठाकर फ़ार्मोंकी सिंचाईकी जाती है; जिनका वर्णन यहाँपर स्थानाभावसे नहीं किया जा सकता।

जब हम अपने फ़ार्मके लिये बैलोंका प्रबन्ध कर लें, तो हमें आवश्यकतासे अधिक १ जोड़ी बैल अथवा भैंसा भी रखलेना चाहिये जिससे हम फार्मकी बैल-गाड़ीमें भी प्रतिदिन काम ले सकें—अथवा जब कभी हमारे बैल बीमार हो जावें तो हमारे फ़ार्मका काम बन्द न हो सके। ५० एकड़ फ़ार्म के लिये सिंचाईकी सुविधानुसार ७ जोड़ीसे लेकर ६ या १० जोड़ी बैलोंका प्रबन्ध करना आवश्यक है।

कृषिक्षेत्रके क्षेत्रफलके आवश्यकतानुसार जब बैलोंकी जोड़ियाँ मोल ले ली जायँ तो उचित यह होगा कि कृषिक्षेत्र (Farm) के अन्य सामान भी आवश्यकतानुसार ही क्रय किये जावें। इस वक्त बैलोंके क्रय करनेके पश्चात् हमें हलोंकी ओर ध्यान देना पड़ेगा। हलोंके क्रय करनेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि मिट्टी-पलटने वाले (mould board plough) हल दो प्रकारके हैं। एक प्रकार-में तो बड़े बड़े हलोंकी गणना की जाती है, जैसे पञ्जाब प्लाऊ अथवा डिस्क हल वगैरह। दूसरे प्रकार-के हल वह हैं जिनकी गणना छोटे हलोंमें हैं जैसे मेस्टन तथा वाट्स हल वगैरह। यह हल ५० एकड़के फार्मके लिये केवल दो या तीन बड़े चाहिये और छोटे पाँच या ६ हल बहुत होंगे। इन हलोंके क्रय करने-के पश्चात अपने देशी हल भी ७ अथवा ८ लुहारोंसे तय्यार करा लेना चाहिये। क्योंकि मिटी-पलटने वाले वैज्ञानिक हल जुताई के ही लिये देशी हलोंसे प्रत्येक दशामें उत्तम हैं। परन्तु बिना देशी हलोंके व्यवहार-के भारतीय कृषि-वैज्ञानिकोंका काम अभी पूरा सफल नहीं हो सकता। बैल गाड़ी भी ऐसे फार्मके लिये एक बड़ी और एक छोटी रखना पड़ेगी। हैरो भी एकाध रखना आवश्यक है। यदि कृषिक्षेत्रका मूलधन पर्य्याप्त है तो दो 'हैरो' क्रय कर लेनेमें कोई हर्ज नहीं समझा जा सकता इन यन्त्रोंके अतिरिक्त सिंचाई के लिये भी यन्त्र खरीदने पड़ेंगे। यदि हमारे कृषिक्षेत्रमें तोड़से पानी पहुंच सकता है तो बड़े ही आनन्दकी बात है। नहीं तो यदि डालके पानीसे कृषिक्षेत्रकी सिंचाई होती है तो उपयुक्त फार्मके लिये दो चेन पम्प और दो एक बेड़ी (दुबला) रखना पड़ेगा।

कृषिक्षेत्रोंकी सिंचाईके लिये "डबल गियर चेन पम्प" भी काममें लाया जा सकता है। कृषिक्षेत्र-की हैसियत और सुविधाके अनुसार बल्देव वाल्दी और अन्यान्य सिंचाईके यन्त्रोंका भी प्रयोग करना आवश्यक है। जब यह सारी विशेष क़ीमती वस्तुएँ फ़ार्मके लिये खरीद करके एकत्रित कर ली जाँय तो कृषिक्षेत्रके लिये छोटी मोटी वस्तुयें भी क्रयकर लेना उतना ही आवश्यक है जितना कि बड़ी चीज़ों का क्रय कर लेना आवश्यक है। इन छोटी-छोटी वस्तुओंमें पटेला, फावड़ा कुदाली, खुरपी इत्यादिका

* 'विज्ञान' भाग २३ संख्या ४ पेज २२६ देखो इस लेखका सम्बन्ध उसी से है।

भी आवश्यकतानुसार प्रबन्ध कर लेना चाहिये। जब यह सारी वस्तुयें क्रय कर ली जायँ, तो सबसे पहिले हमें बैलोंके चारेका हिसाब लगा लेना चाहिये कि साल भरमें कितना चारा लगेगा। जब चारेका हिसाब ठीक प्रकारसे लग जाय तो (crop rotation) अर्थात फसलोंके उलट फेरकी रीतिसे (crop scheme) फसलके क्रय की तैय्यारी करना चाहिये।

आठ अथवा नौ जोड़ी बैलोंके लिये यदि चार एकड़ भूमिमें चरी बोई जाय, तो उसमें १५०० मनके लगभग हरा चारा उत्पन्न होगा। ज्वारकी चरीके अलावा हरे चारेके लिये जई, गिनी घास, रिजका (Lucern) इत्यादि भी दो एकड़ बो देना चाहिये। जिसमें लगभग ४०० मनके हरा चारा पैदा हो जावेगा। यह दो हजार मनके लगभग हरा चारा हमारे बैलोंके लिये साल भरके लिये आवश्यक तथा पर्याप्त होगा। अब हमें सूखे चारेके बारेमें भी विचार करना पड़ेगा। सूखे चारेमें भूसा ही एक ऐसा चारा है, जो कि 'रबी' की फसलोंसे प्राप्त हुआ करता है। इसलिये 'रबी' की फसलोंकी काश्त जिसमें जौ, गेहूँ, मटर, चना, जई इत्यादि की गणना की जा सकती है लगभग २० एकड़में करना चाहिये। यदि 'रबी' की काश्त २० एकड़में की जायगी, तो हम ८०० मनके लगभग भूसा पा जावेंगे। इस ८०० मन सूखे भूसे से तथा १५०० मन हरे चारे से हम साल भर अपने बैलोंको भली प्रकार खिला पिला सकेंगे। बैलोंके दानेके लिये भी हमें कुछ फसलोंकी आवश्यकता पड़ेगी जैसे चना इत्यादि। यदि आवश्यक और धन दायक फसलोंके ही बोनेसे आवश्यकतानुसार कृषिक्षेत्रकी भूमि फँस जावे, तो हमें बैलोंके दानेके लिये चना बाजारसे मोल ले लेना चाहिये क्योंकि फार्मके खेतोंमें यदि हम क़ीमती फसलोंको बोवेंगे तो चनेकी अपेक्षा अधिक धन प्राप्त कर सकेंगे।

इन सब बातोंका ध्यान रखते हुये—५० एकड़के कृषिक्षेत्रमें फ़सलों के हेर फेर (farm rotation.) का ध्यान रखते हुये निम्न प्रकारसे Crops scheme फसलकी सूची बनानी चाहिये।

(१) गन्ना, तम्बाकू, आलू, मकाई, चरी	९ एकड़
(२) ऊख	१ एकड़
(३) गेहूँ	१४ एकड़
(४) मूंगफली	१ एकड़
(५) ज्वार दानेके लिये	३ एकड़
(६) ज्वार और अरहर	३ एकड़
(७) जई दाने के लिए	२ एकड़
(८) जई हरे चारेके लिये	२ एकड़
(९) चरी और जौ	३ एकड़
(१०) शीघ्र पकने वाली अरहर और मटर	२ एकड़
(११) कपास	३ एकड़
(१२) चना	५ एकड़
(१३) लूसने और गिनी-घास	२ एकड़
	=
	५०

फार्म रोटेशन (Farm rotation) के अनुसार प्रतिवर्ष यही फसलें अपने कृषिक्षेत्रके खेतोंमें उलट फेरकर बो सकते हैं। इससे हमारी सारी आवश्यकतायें भी पूर्ण हो सकती हैं, और धनदायक फसलोंको बेचकर धन भी प्राप्त कर सकते हैं। उत्तम प्रबन्धके साथ फार्मके प्रति एकड़में ८०) से लेकर १००) तक व्यय करना पड़ेगा। इस हिसाबसे ५० एकड़ फार्मके लिये चार, पाँच हजार रुपयेकी आवश्ककता होगी। इस चार पांच हजार रुपयेको छोड़कर जो कि हर समयमें फार्मके मूलधनके रूपमें उपस्थित रहेगा, जिससे कि फार्मके फसलोंकी बुवाई इत्यादिका व्यय चलेगा। फार्मके अग्रलिखित सामानके लिये भी चार ही पाँच हजार रुपयेकी आवश्यकता होगी। हिसाब लगानेसे इस बातका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जायगा कि किसी भी वैज्ञानिक फार्मके लिये जो कि एक ही आदमीकी निगहबानी और प्रबन्धमें हो ८ या १० हजार रुपया लगाना पड़ेगा। इतने रुपयेके लगा देनेपर और ठीक प्रबन्ध करनेपर डेढ़-दो हजार रुपया प्रति वर्ष बड़ी आसानीसे बच सकता है। यदि यही फार्म किसी बड़े शहरके निकट हो और फार्मकी भूमि निजकी जमीदारीमें हो तो कहना ही क्या है। ऐसी दशामें यदि मजदूर भी सुग-

मतासे और कम मजदूरीमें मिल जाया करें तो फार्मकी बहुत सी फसलें खड़ी ही बिक जाया करेंगी और शहरके निकट होनेसे दाम भी करारा मिलेगा ऐसी हालतमें चतुर और परिश्रमी वैज्ञानिक काश्तकार उल्लिखित कार्यसे चार पाँच हजार रुपया प्रतिवर्ष बचा सकता है।

कृषिक्षेत्रके प्रबन्ध विषयमें कुछ आवश्यक बातोंकी चर्चा हमने ऊपर की है। अब हम एक बातकी चर्चा और करके इस लेखको यहींपर समाप्त कर देंगे, क्योंकि विषय बहुत लम्बा चौड़ा और गम्भीर है परन्तु समझाना हमें थोड़े मेंही है। हमारे किसान प्रायः किसी भी अपने कारोबारका हिसाब नहीं रखते जिससे न तो यही मालूम होता है कि इस व्यवसायमें हमने कितना व्यय किया, और हमें कितना लाभ हुआ। यह रीति अत्यन्त हानिकारक है। कृषिक्षेत्रके प्रबन्धकोंको फार्मका हिसाब रखनेके लिये कई एक रजिस्टर रखने पड़ते हैं जिनमें फार्मकी तमाम वस्तुओंके खर्च और आयके विषयमें सारी बातें साफ-साफ लिखी जाती हैं। फार्मके हिसाब रखनेका ढंग किसी भी सरकारी फार्मपर जाकर देखना और समझना चाहिये, और उसी प्रकारसे अपने फार्मका हिसाब भी रखना आवश्यक है। जो लोग फार्मका हिसाब ठीकसे न रखेंगे, वह कभी भी फार्मसे लाभ नहीं उठा सकेंगे। फार्मके रजिष्टरोंका ब्योरेवार वर्णन करना इस लेखमें मुझे स्थानाभावसे कठिन प्रतीत होता है इसलिये अब हम इस विषयको यहींपर समाप्त करके कृषि विज्ञान सम्बन्धी अन्य वर्तमान सामयिक तथा आवश्यक और उपादेय विषयोंका वर्णन 'विज्ञान' के अगले अंकोंमें करेंगे।

मनोरञ्जक रसायन

[ले० श्री अमीचन्द्र विद्यालंकार]

बिजली से जल साफ़ करना

साधारणतया हमें जो जल प्राप्त होता है वह शुद्ध नहीं होता। कुछ न कुछ मैल उसमें मिला रहता है। जल साफ़ करनेकी अनेक विधियाँ हैं। आज कल बिजलीका प्रयोग दिन दिन बढ़ता जा रहा है। अमेरिकामें तो इसका प्रयोग यहाँ तक बढ़ रहा है कि वे रोटी पकाना, पानी गर्म करना, कपड़ोंपर स्त्री करना इत्यादि सभी कार्य बिजलीकी सहायतासे करने लगे हैं। अब बिजलीसे पानी भी शुद्ध किया जाने लगा है। आविष्कारकका कहना है कि पानीमें बिजली गुज़ारनेसे पानीकी बुरी मैल नीचे बैठ जायगी और पानीके स्वादके स्थानपर उसका स्वाद भी अच्छा हो जायगा।

* * *

एक पुराना मकान अपने स्थानसे ३५मील दूर

साउथ बरीसे नौरोटन ३५ मीलदूर है। साउथ बरीमें एक मकान था। उसके मालिक थे डा० स्विफ्ट। वे अपना मकान छड़ी २ करके नौरोटन ले आये। उन्होंने एक राज बुलाया और मकानके कुछ भाग किये। उन भागोंको वे दूसरे स्थानपर ले गये। वहां जाकर उन भागोंको फिर मिला दिया।

❀ * ❀

गोल और मोटी शकरकन्दी

बहुतसे आविष्कार अचानक ही हुआ करते हैं। आजकल उद्देश्यको सामने रखकर वैज्ञानिक अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए दिन रात जुटे रहते हैं। जिस बातका उन्हें आविष्कार करना होता है वह उनके सामने होती है। पर आजकल भी ऐसे आविष्कार होते हैं जिनका पहले कुछ ध्यान भी

नहीं होता। उनमेंसे शकरकन्दीको अधिक मोटा करनेकी विधिका आविष्कार बिल्कुल नया है।

सन् १६२१ में न्यूजर्सी (अमेरिका) के कृषि सम्बन्धी प्रयोगशालाके प्रो० एल० जी शर्मर हार्न (Schermer Horn)ने भिन्न २ देशोंसे शकरकन्दियां मंगाई। उनमें बहुत भेद था। जहां २ वे पैदा होती थीं उस उस स्थानकी मिट्टी तथा अन्य बातोंकी परीक्षा करनेसे प्रोफ़ेसर साहबको शीघ्र ही एक नई बातका अनुमान हो गया।

इस आविष्कारने किसानोंको चकित कर दिया। इससे पूर्व किसानोंका यही विश्वास था कि यह स्थानके जलवायुके अधीन है। इसकी उपजमें परिवर्तन करना हमारी शक्तिके बाहर है।

चार सालतक लगातार परीक्षण किये गये। अन्तमें पता लग गया कि पोटाशकी खादका शकरकन्दोकी उपजपर बड़ा प्रभाव होता है। यदि खादमें पोटाशकी प्रति शतक कम हो तो शकरकन्दी पतली और लम्बी होती हैं। कुछ सीमातक पोटाशकी मात्राके बढ़ानेके साथ शकरकन्दीकी लम्बाई कम और मोटाई अधिक होती जाती है।

साधारणतया इसके खेतमें जो खाद दी जानी चाहिये उसमें ३ भाग नत्रजन, ८ भाग प्रस्फुरिकाम्ल और ८ भाग पोटाश होता है। इस खादसे थोड़े खर्च से ही अच्छी शकरकन्दी पैदा हो जाती है।

बिना पोटाशकी खादके खेतमें शकरगन्दी इतनी पतली होती है कि एक एकड़ खेतमेंसे (१०० बुशल) ही बाजारमें जानेके योग्य होती है। पर ८ प्रति शतक खाद देनेसे (१५२ बुशल)। इस प्रकार इसमें ५२°/. बृद्धि हो गई।

इस आविष्कारको काममें लानेसे किसानोंके परिश्रम तथा धनका बड़ा भाग बचेगा। जलवायुके प्रभावको ध्यानमें रखते हुये भारतवर्षमें भी इसकी परीक्षा की जा सकती है।

❀ ❀ ❀

मनुष्य जीवनके लिए Thyroixne थरौक्सीन बड़ी आवश्यक वस्तु है। शरीरमें यह थेराइड ग्रन्थिसे पैदा होती है। जब यह ग्रन्थि अपना काम करना बन्द करदे तब किस प्रकार थाइरौक्सीन उस व्यक्तिके शरीरमें पैदा की जाय इस बातके पता लगानेके लिये बड़े २ परीक्षण हो रहे थे। आजसे ६ वर्ष पहिले डा० केनडौलने भेड़ बकरियोंकी ग्रन्थिसे इस रासायनिक पदार्थकी कुछ मात्रा इकट्ठी कर उसपर अनेक परीक्षण किये। यदि भेड़ बकरी आदि जन्तुओंकीही ग्रन्थियोंसे थाइरौक्सीन इकट्ठी की जाय तो यह कितनी मँहगी पड़े इसका अनुमान इसीसे लगाया जासकता है कि ७०-८० हज़ार प्राणियोंकी ग्रन्थियोंसे केवल एक औंस ही थाइरौक्सीन मिलेगी। इसलिए प्रयोगशालामें इसे तैयार करनेके लिए और परीक्षण किए गये।

अब एडिन्बराके प्रो० बर्गर और हैरिंगटनने उसकी तात्त्विक बनावटको परोक्षाका पता लगाया है। प्रो० किनडौलको थाइरौक्सीनकी ठीक २ बनावटका पता नहीं लगा था। यह थाइरौक्सीन नैल (Iodim) और कोयले (कार्बन) का एक यौगिक है। इन वैज्ञानिकोंने प्रयोगशालामें जो थाइरौक्सीन तैयार किया है वह शरीरके लिए ठीक उपयोगी बैठता है। उसमें दायें बायेंका भेद नहीं पड़ता। इस प्रकार कोयलेसे हमारे शरीरके लिए उपयोगी वस्तुका निर्माण करनेके लिए इन दोनों वैज्ञानिकोंका नाम चिकित्सालाके इतिहासमें अमर रहेगा।

❀ ❀ ❀

ठोस हीलियम

हीलियम का आविष्कार हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। यह एक गैस है। वायुमें इसकी बहुत ही कम मात्रा होती है। वायुसे यह बहुत ही हलकी है। उद्जन झट जल पड़ती है पर यह नहीं। इसलिए यह गैस हलकेपनके हेतु काम आने वाले स्थानोंपरउद्जनकी अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। १६०८ ई० में एक डच वैज्ञानिकको इसे द्रव रूपमें लानेमें सफलता हुई। परन्तु इस वर्षसे पूर्व कोई भी वैज्ञानिक इसे ठोस अवस्थामें लानेमें समर्थ नहीं हुआ। डच वैज्ञानिक श्री प्रो॰ डब्लू॰ एच॰

कीसोम (W. H. Keesom) इसे ठोस अवस्था में प्राप्त करनेमें सफल हुए हैं। बहुत ऊंचे दबाव और अत्यधिक नीचे तापक्रमपर इसे ठोस बनानेमें सफलता हुई। ठोस होलियम पारदर्शक है।

❀ ❀ ❀

दस मिनिटमें नया पुल

मनुष्यकी कार्य कुशलताको देखकर आश्चर्य होता है। आजकल समयकी बड़ी भारी क़द्र की जाती है। ज़रासे समयके हेरफेरसे कुछका कुछ होजाता है। मोटर हवाई जहाज़ और इसी प्रकार के अन्य सब साधन थोड़े समयमें ही अधिक काम कर सकनेकी प्रवृत्तिके परिणाम हैं। आजकल इस बातपर विशेष ध्यान दिया जाता है कि थोड़ेसे ही समयमें बहुतसा काम होजाय। मैशीनोंके आविष्कारने इस बातको स्पष्ट कर दिखाया है कि कितनी जलदी कितना अधिक काम किया जासकता है। संयुक्त राज्य अमेरिकाकी एक रेलवे लाइनका पुल कुछ पुराना होगया था उसे बदलना आवश्यक था। इञ्जीनियर बुलाये गये। उन्होंने पुराना पुल हटाकर १० मि॰ में—केवल १०ही मि॰ में—उसके स्थानपर नया पुल तैयार कर दिया। नया पुल बनाकर पासही रखलिया गया था। ज्यूंही एक गाड़ी पुल परसे गुजरकर गई कि पुरानेके स्थानपर नया फ़िट कर दिया गया। पुल बननेके २ मि॰ बाद ही उसपरसे गाड़ी बिना किसी भयके गुज़र गई। उसके लिए तो मानो कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं।

❀ ❀ ❀

संसारकी सबसे विशाल वस्तु

हावर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) की वेधशालामें ज्योतिषी एक नये ही तारेका अध्ययन कर रहे हैं। ज्योतिषियोंका कहना है कि वह तारा पृथिवीसे इतनी दूर है कि वहांसे प्रकाशकी एक किरणको हमतक पहुँचनेमें १ करोड़ वर्ष लगते हैं। भला इस दूरीका भी कुछ ठिकाना है। और ज़रा उसका आकार तो देखिए। प्रकाश एक सेकण्डमें १८६००० मील चलता है। इस प्रकाशको उस नक्षत्रको पार करनेमें २० लाख वर्ष लगेंगे। इसीसे आप उसके आकारका अनुमान कर सकते हैं।

❀ ❀ ❀

वैज्ञानिक युग

आजसे एक शताब्दि पूर्व फ्रांसके सम्राट् नैपोलियनके मुखसे यह सुननेका अवसर हुआ था कि 'असम्भव' तो कोई शब्द ही नहीं, वह तो मूर्खोंकी डिकशनरीमें होगा। वास्तवमें देखा जाय तो उसकी सचाई आज प्रकट हो रही है।

किसी समयमें बिना घोड़े या किसी अन्य जीवित जानवरकी सहायताके बिना सवारीका खींचा जाना असम्भव समझा जाता था। परन्तु समय आया बाइसिकलका आविष्कार हुआ। वैज्ञानिक आगे भी अपने प्रयत्नमें लगे रहे। धीरे धीरे मोटरका आविष्कार हुआ। बग्घी और बाइसिकलका प्रयोग घटने लगा। १८९९ में अमेरिकामें ८३५०० के पीछे एक मोटर थी परन्तु १९२१ में ११ में एकके पास। हम कई बार कह बैठते हैं कि यह असम्भव है, यह नहीं हो सकता। हम हवाई जहाज़को भी असम्भव समझते थे। १९१४ में जब हवाई जहाज़ोंपर वैज्ञानिक मगज़पच्ची कर रहे थे तब वह सम्पादक उन्हें यही सलाह देते थे कि तुम लोग असम्भव कल्पनाके पीछे पड़कर क्यों अपना बहुमूल्य समय तथा धन बरबाद कर रहे हो। पर वैज्ञानिकोंने उनके सदुपदेशोंपर कान नहीं दिया। वे अपने कानोंपर पट्टी बांध कर अपने काममें जुटे रहे। आजकल हवाई जहाज़ जो कुछ कर रहे हैं उसे बतानेकी आवश्यकता नहीं।

बेतारका तार, दूर दूरतक बिना तारके बातें पहुँचाना (Broad casting), बोलने वाला बायस्कोप, (Phmo film) पनडुब्बी आदि सभी चीज़ें एकसे एक बढ़ कर विस्मयमें डालने वाली हैं। वैज्ञानिकों की इतनी तीव्र उन्नति तथा ऐसी तीक्ष्ण बुद्धिको देखकर आजसे १०० वर्ष पहले चाहे 'असम्भव' शब्दकी सत्तामें सन्देह न होता हो

पर अब तो सचमुच असम्भव शब्द ही असम्भव मालूम होने लग गया है।

नक़ली रेशम, कपूर, नील, सैकड़ों रंग, चमड़ा रबड़, शब्दका प्रकाशमें बदलना और कहाँ तक गिनायें सचमुच वैज्ञानिक विश्वकर्माकी मायाके आगे 'असम्भव' शब्द हार मान गया है।

जिस असम्भव शब्दको पराजित करना तो दूर रहा उसका सामना भी बड़े बड़े सम्राट् न कर सके उसका सामना किया अदना आदिमियोंने। एडीसन एक ग़रीब लड़का था, फोर्ड एक कारखाने-में मैशीनपर काम करता था, फ्रैंकलिन ठप्पा लगाने वाला था, न्यूटन ग़रीबोंसे भी ग़रीब था।

इनके पास न धन था न सम्पत्ति, न सेना थी न साम्राज्य। हाँ एक चीज़ थी और वह थी आविष्कारक बुद्धि। उनकी बुद्धिके आगे सबको हार माननी पड़ी। आज हम समझ सके हैं कि इस संस्कृत वाक्यमें कितनी यथार्थता है :—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्

पाश्चात्य लोग जो कुछ कर रहे हैं और आगे करेंगे उससे न तो हमारा कुछ बनेगा और न बिगड़ेगा। सम्भव है कुछ बिगड़ जाय, पर बनेगा तो निश्चय ही नहीं। श्री जगदीशचन्द्र बोस, और पी. सी. राय जैसे दो एक वैज्ञानिक भारतका भी नाम उज्वल कर रहे हैं। परन्तु ये तो उंगलियोंपर भी गिनने योग्य नहीं। हमें अपनी आध्यात्मिक प्रगतिके साथ साथ वर्तमान आधिभौतिक प्रगतिमें आगे बढ़ना होगा। यदि हमने समयका साथ न दिया तो समय हमें विलीनताके गहरे गढ़ेमें लीन कर देगा तब हमारी इतनी प्राचीन जातिका कहीं निशान भी न मिलेगा। यदि हम संसारमें अस्तित्व बनाये रखना चाहते हैं तो हमें अपना जीवन विज्ञानमय बनाना होगा। जबतक हमारे जीवनके प्रत्येक अंगमें विज्ञानका रंग नहीं समा जायगा तबतक हम उस पदपर नहीं पहुँच सकते जिस पर पाश्चात्य ज़ातियाँ पहुँची हुई हैं।

* * *

बैंज़ोल

यह पतला नीरंग द्रव होता है। बड़ी जल्दी जल पड़ता है। ८१° शतांशपर यह खौलता है। मद्यसार ईथर और एसिटोनसे यह झट मिल जाता है पर जलसे नहीं। बड़ा उड़नशील होता है।

कपड़ोंपर यदि धब्बे पड़ गये हों तो इससे बड़ी आसानीसे साफ़ किये जा सकते हैं। इसे वार्निश-में भी मिलाकर काममें लाते हैं। कभी कभी वार्निश-को खुला रखनेसे उस पर एक पपड़ी सी जाम जाती है। यदि उसपर बैंज़ोल डाल दिया जाय तो वह पपड़ी भी इसमें घुल जाती है। उसके घुलने-से फिर वार्निश तैयार हो जाती है। हमने देखा है कि अधिकतर लोग ऐसे स्थानों पर मिट्टीके तेलसे काम निकालना चाहते हैं परन्तु उससे वह काम नहीं निकल सकता जो बैंज़ोलसे।

अस्फाल्टम (Asphaltum) की पर्याप्त मात्रा लेकर बैंज़ोलमें घोलनेसे धातुओंपर लगानेकी पौलिश बनती है। उसमें यदि एकाध मात्रा खौलाया हुआ अलसीका तेल डाल दें तो पौलिश बहुत अच्छी बनती है। वह काँचपर लगानेके भी काम आ सकती है।

यह बहुत जल्दी उड़नेवाला पदार्थ होता है इसलिए इसकी शीशीका मुँह खुला न रखना चाहिए। यह जल्दी जल पड़ता है इसलिए इसकी शीशीको आगके पास न खोलना चाहिए।

* * *

आविष्कार

पाश्चात्य देशोंने विज्ञानमें जो उन्नति की है उसे देखकर दाँतों तले उंगली दबानी पड़ती है। वैज्ञानिक उन्नतिकी गतिकी तीव्रताको देखकर आश्चर्य होता है। परन्तु क्या यह वैज्ञानिक उन्नति हाथपर हाथ धरे हुए बैठे ही बैठे हो गई? क्या इसकेलिए कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ा? वास्तवमें देखा जाय तो पाश्चात्य देशोंने वैज्ञानिक गवेषणाओंके लिए न केवल अतुल सम्पत्ति व्यय की है अपितु पाश्चात्योंने अपने जीवनतक विज्ञानके लिए समर्पित कर दिये

हैं। कितने ही वैज्ञानिक इसी प्रकारकी परीक्षायें करते करते अपने जीवनसे भी हाथ धो चुके हैं। कीटाणुओंके गुणोंकी परीक्षाके लिए कुछ स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट नवयुवकोंकी आवश्यकता होनेपर अनेक नवयुवकोंने अपने जीवन अर्पित कर दिये। यद्यपि वे जानते थे कि इस प्रकार परीक्षण किये जानेपर उनका जीवन प्रदीप सदाके लिए बुझा जायगा, तो भी यह मृत्युका भय उन्हें अपने मार्गसे विचलित न कर सका।

अब धनको ही लीजिए। यूनाइटिड स्टेट अमेरिकाके "चैम्बर आफ कामर्स"ने गणना करके पता लगाया है कि अमेरिकाके कारखानोंके मालिक प्रतिवर्ष ३५००००००० डालर (१ डालर = लगभग ३ रुपये) के व्यय करते हैं। यह धन थोड़ा नहीं है) रोज़ २ तो अविष्कार होते नहीं रहते। एक एक आविष्कारके होनेमें बहुत समय लगजाता है। बहुत सम्पत्ति व्यय कर चुकनेके बाद भी कई बार निराश होना पड़ता है। देखनेमें तो यही मालूम पड़ता है कि अविष्कारोंमें लगे हुए वैज्ञानिक व्यर्थ अपना समय खराब कर रहे हैं। परन्तु जब एक आविष्कार हो जाता है तब उससे कितनी सुविधायें हो जाती हैं। उस एक ही आविष्कारसे व्यय किया हुआ समस्त धन मय सूद दर सूदके वसूल हो जाता है। चैम्बरने हिसाब लगाकर पता लगाया है कि अविष्कारोंसे प्रतिवर्ष ५००,०००,००० डालरकी बचत होती है। वर्तमान समयमें पाश्चात्य लोग आविष्कारकी महिमाको समझते हैं इसीसे उसके लिए इतना धन-जनका व्यय कर रहे हैं।

* ❁ *

अमेरिका इतना वैभव सम्पन्न क्यों है?

अमेरिका व्यापारकी उन्नतिके कारणोंका पता लगानेके लिए ब्रिटिश उद्योग-संघ (Industrial) की ओरसे बर्टरम्म औस्टिन (Bertram Austin) और फ्रैंसिस लौपड़ अमेरिका गए थे। उन्होंने निम्न कारण बताये हैं:—

१—अमेरिकामें उन्नति योग्यताके अनुसार दी जाती है।

२—अमेरिका इस सिद्धान्तको समझता है और कार्यमें लाता है कि थोड़ा मुनाफ़ा उठाया जाय और जिससे धन पुनः २ घूम फिरकर काम आ सके। वे जानते हैं कि धनसे थोड़ा लाभ उठाकर जल्दी २ फिर उसे व्यापारमें लगा देना चाहिये।

३—जल्दी जल्दी धनको पुनः २ लगानेके लिये विधियाँ सुगम तथा सस्ती काममें लाई जाती हैं जिससे कम पूंजीमें ही काम चल जाय।

४—अमेरिकन समय तथा मेहनतको कम करनेके लिए हमेशा उपाय ढूंढते रहते हैं।

५—काम लेने वाले ऊँची तनख्वाह देनेमें नहीं झिझकते।

६—अमेरिकन कारखानेवाले मिलकर विचार परिवर्तन द्वारा एक दूसरेकी सहायता करते हैं।

७—अमेरिकन इस बातका विशेष ध्यान रखते हैं कि समय, शक्ति स्थान आदिमेंसे कुछ व्यर्थ न जाने पावे।

८—अमेरिकन अपने यहाँ काम करनेवालोंको हर तरहकी सुविधा प्रदान करते हैं और पानी, प्रकाश, मकान इत्यादि सबका उचित प्रबन्ध करते हैं जिससे जहाँ काम करनेवालोंको लाभ रहता है वहाँ उसके साथ साथ काम करानेवाले को भी लाभ रहता है क्योंकि काम अधिक हो जाता है।

९—अमेरिकन अविष्कारोंको प्रोत्साहित करते हैं। छोटे छोटे आविष्कारोंके लिए भी वे बड़े बड़े इनाम देते हैं। वे यह कोशिश करते हैं कि उनके यहाँ अच्छेसे अच्छे आविष्कारक पैदा हो सकें।

यदि अमेरिकन अंग्रेज़ोंसे क़ानून तथा संगठनके आगे सिर झुकाना सीख लें तो अमेरिकाकी प्रतिद्वन्द्वितामें कोई भी जाति नहीं ठहर सकती।

श्री

जीवनका सद्व्यय

लेखक—हिन्दी नवजीवन के वर्त्तमान उपसम्पादक पं० हरिभाउ उपाध्याय। प्रकाशक—गंगापुस्तक माला कार्यालय लखनऊ। मूल्य १) सजिल्द १॥) प्रकाशकसे प्राप्त कागज़ व छपाई सफ़ाई उत्तम।

प्रस्तुत पुस्तक गङ्गा पुस्तकमाला का ५१ वाँ पुष्प है। यहEconomy of Human life का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकसे हिन्दी संसार भले प्रकार परिचित है। भाषा मधुर और सरल है। अनुवादक महोदयके शब्दोंमें हम भी यही कहते हैं कि यह पुस्तक मनुष्य मात्रके लिए पथ प्रदर्शक और कर्त्तव्यकी कुंजी है। इसकी सूक्तियाँ हृदयपर गहरा असर डलती हैं। पश्चात्य संसारकी मुख्य मुख्य भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं। कहा जाता है कि महामना मालवीयजी तो इसके पीछे पागल हैं। विहारके प्रसिद्ध नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजी इसके सम्बधमें लिखते हैं—"यह ग्रन्थ छोटा पर अमूल्य है। यह उन रत्नोंमें से है, जिनकी क़ीमत कभी घट नहीं सकती। जिस प्रकार हम धर्म ग्रन्थोंका पाठ करते हैं। उनका मनन और उनका अनुकरण करते हैं, उसी प्रकार इस ग्रन्थका भी पठन मनन और अनुकरण करना चाहिए।" इस अमूल्य पुस्तकका अनुवाद करनेके लिये हम पं० हरिभाऊजीको कोटिशः धन्यवाद देते हैं। इसका एक एक शब्द भारतीय नवयुवकोंके लिए हृदयंगम करने योग्य है।

पूर्वाद्धमें व्यक्तिगत मानवीय कर्तव्य, मनोधर्म, रमणी, कौटुम्बिक सम्बन्ध, मनुष्योंका आगन्तुक अन्तर, सामाजिक कर्त्तव्य, और धर्मपर उत्तमोत्तम विचार प्रकट किये गये हैं। पाँचवें अध्यायमें दूरदर्शितापर विचार करते हुए लिखा है—"अपने विषयमें बड़ी बड़ी डींगे मत हाँक; क्योंकि इससे तू तिरस्कृत होगा। दूसरोंका मज़ाक़ मत उड़ा, ऐसा करना खतरनाक है। कड़वी हँसी मित्रतामें विषके समान है। जो अपनी जिह्वाको नहीं रोक सकता, वह कभी मुसीबतमें फँसे बिना नहीं रहता।" पृष्ठ ३० में सन्तोषपर अमूल्य विचार प्रगट किये गये हैं। पूर्वाद्ध के भिन्न भिन्न अध्यायोंमें वर्णित, सन्तोष धनी और निर्धन, स्वामी और सेवक आदि शीर्षकमें प्रकट किये हुए विचार पूँजीपतियों और मजदूरोंके लिए अमूल्य हैं! यदि पूंजीपति और मजदूर इनपर अमल करने लगें तो हड़तालों और आए दिन होने वाले खून खच्चरका हमेशाके लिए अन्त हो जाय। यदि भारतवासी इस पुस्तकका प्रत्येक वाक्य वेद वाक्य के समान मानकर तदनुसार आचरण करने लगें तो गृहकलह, फूट, आदि दुर्गुण इस भारत वसुन्धरासे हमेशाके लिए तिरोहित हो जायं।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के अनुयायी भारतवासी अपने निजके कुटुम्बको ही 'संसार' मान बैठे हैं। परन्तु यह भ्रम मात्र है। पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे 'सामाजिक कर्त्तव्यके अध्यायोंको मन लगाकर पढ़ें और मनन करें। इससे उनको मालूम हो जायगा कि समाजके प्रति भी उनका कुछ कर्त्तव्य है।

उत्तरार्धमें वर्णित विचार मानव-जीवनको सुखमय बनानेके लिए रामबाण हैं। प्रत्येक शब्द युवा वृद्ध और राजा व रङ्कके लिये अमृत रूप है—नहीं काम-धेनुके समान है। इन विचारोंको रोजके व्यवहारमें काममें लाने वालेको यश, धर्म, अर्थ और मोक्ष प्राप्त हो सकता है। लोभ, प्रतिहिंसा, उत्कर्ष आदिपर प्रकट किए हुये विचार बहुत ही बढ़िया हैं। प्रतिहिंसा शीर्षक अध्यायसे कुछ नमूने उद्धृत करनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सकते हैं।

"प्रतिहिंसा या बदलेकी जड़ आत्माकी दुर्बलता पर जमाती है। जो अत्यन्त कमीना और नीच

होता है, वही प्रति हिंसाका अधिक आदी होता है। का-पुरुषोंके सिवा ऐसे कौन हैं जो उन लोगोंको भीषण कष्ट देते हैं, जिनका वे खुद द्वेष करते हैं। जो लूट भी लेता है और खून भी करता है, वह औरत नहीं तो और क्या है? × × × जो लोग उच्च-हृदय होते हैं उन्हें यह कहते हुए शर्म मालूम होती है कि इसने मुझे हानि पहुँचाई है।"

"आत्मतेज या तेजस्विताकी कमीसे प्रति-हिंसा-की प्रवृत्ति होती है। महान् पुरुषकी आत्मा किसी-को सतानेसे घृणा करती है। यही नहीं, वह तो उसका भी हित साधन करती है, जिसने उसको कष्ट पहुँ-चानेका इरादा किया हो।"

"प्रति हिंसाका इरादा भर करनेसे कष्ट होता है। उसकी प्रत्यक्ष क्रिया करना, तो और भी खतर-नाक है।"

"किसी अपराधका बदला लेनेसे बढ़कर कोई बात आसान नहीं, परन्तु उसके लिए क्षमा कर देनेसे बढ़ कर सम्माननीय और कठिन दूसरी बात नहीं है।

पुस्तकके कुछ विचारोंसे हम सहमत नहीं है, फिर भी वे आर्य-संस्कृतिसे प्रतिकूल नहीं है। आत्मा सम्बन्धी विचारोंसे तो हम बिलकुल ही सहमत नहीं। इन विचारोंमें ईसाईमत की छाया साफ़ तौर से नजर आती है। फिर भी पुस्तक बहुत ही अच्छी हैं। नवयुवकों और विद्यार्थियोंके लिए तो यह बड़े कामकी है। लायब्रेरी और इनामकी पुस्तकोंमें इसे अवश्य ही स्थान मिलना चाहिए। हमारे मतसे प्रत्येक घरमें इसकी एक एक प्रति अवश्य ही रखी जानी चाहिये।

ऐसी सर्वाङ्ग सुन्दर पुस्तकमें इने गिने दोषोंका होना बहुत ही खटकता है। कहीं कहीं मात्रायें गायब हो गई हैं और पाँच सात प्रूफ सम्बन्धी गल-तियां रह गई हैं। गंगा पुस्तक मालाके संचालकोंको इस ओर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए।

—शङ्कर रावजोशी

परिलेखाधिकार नामक छठा अध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[ले०—श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव्य बी०एस०सी०एल-टी विशारद]

[श्लोक १—परिलेखका प्रयोजन । श्लोक २—१२—स्पर्श, मोक्ष और मध्यकालके ग्रहणोंका परिलेख खींचनेकी रीति। श्लोक १३—कितना भाग ग्रस्त होनेपर ग्रहण देखना संभव है। श्लोक १४-१६—ग्राहकका मार्ग खींचनेकी रीति। श्लोक १७—१९—किसी इष्टकालमें ग्रहणका परिलेख खींचनेकी रीति। श्लोक २०—२१—सर्वग्रास ग्रहणके आरंभ कालका परिलेख खींचनेकी रीति। श्लोक २२—सर्वग्रास ग्रहणके अंतकालका परिलेख खींचनेकी रीति। श्लोक २३—किस प्रकारके चंद्र ग्रहणमें चन्द्रमाका रंग काला, भूरा, इत्यादि होता है। श्लोक २४—परिलेख खींचनेकी रीति किसको बतलानी चाहिए।]

इस अध्यायका नाम किसी किसी प्रतिमें छेद्यकाधिकार भी है। दोनोंका अर्थ एक है। छेद्यकको तुलनामें परिलेख सरल है, इसलिए यहां परिलेखाधिकार ही लिखा गया है।

प्रयोजन—

न छेद्यकमृते यस्माद्भेदा ग्रहणयोः स्फुटाः।
ज्ञायन्ते तत्प्रवक्ष्यामि छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ॥१॥

अनुवाद—(१) छेद्यक, परिलेख या चित्रके बिना सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणोंके संबंधमें इस बातका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता कि बिम्बकी किस दिशामें ग्रहणका आरंभ और किस दिशामें मोक्ष होगा इस लिए छेद्यक बनानेका उत्तम ज्ञान मैं कहता हूँ।

परिलेख खींचनेकी रीति—

सुसाधितायामवनौ बिन्दुं कृत्वा ततो लिखेत्।
सप्तवर्गाङ्गुलेनादौ मण्डलं वलनाश्रितम् ॥२॥

ग्राह्यग्राहकयोगार्ध सम्मितेन द्वितीयकम्।
मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ॥३॥

याम्योत्तरा प्राच्यपरा साधनं पूर्ववद्दिशाम्।
प्रागिन्दोर्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययात् ॥४॥

यथादिशं प्राग्ग्रहणं वलनं हिमदीधितेः।
मौक्षिकं तु विपर्यस्तं विपरीतमिदं रवेः ॥५॥

वलनाग्रान्नयेन्मध्यं सूत्रं यद्यत्र संस्पृशेत्।
तत्समासे ततो देयौ विक्षेपौ ग्रासमौक्षिकौ ॥६॥

विक्षेपाग्रात्पुनः सूत्रं मध्यबिन्दुं प्रवेशयेत्।
तद्ग्राह्यबिन्दुसंस्पर्शाद्ग्रासमोक्षौ विनिर्दिशेत् ॥७॥

नित्यशोऽर्कस्य विक्षेपाः परिलेखे यथादिशम्।
विपरीताः शशाङ्कस्य तद्वशादथ मध्यमम् ॥८॥

वलनं प्राङ्मुखं देयं तद्विक्षेपैकता यदि।
भेदे पश्चान्मुखं देयमिन्दोर्भानोर्विपर्ययात् ॥९॥

वलनाग्रात् पुनः सूत्रं मध्यबिन्दुं प्रवेशयेत्।
मध्यसूत्रेण विक्षेपं वलनाभिमुखं नयेत् ॥१०॥

विक्षेपाग्राल्लिखेद् वृत्तं ग्राहकार्धेन तेन यत् ।
ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं तद्ग्रस्तं तमसा भवेत् ॥११॥
छेद्यकं लिखता भूमौ फलके वा विपश्चिता ।
विपर्ययोदिशां कार्यः पूर्वापर कपालयोः ॥१२॥

अनुवाद—(२) अच्छी तरह शोधी हुई समतल भूमिपर एक विन्दु स्थिर करके और उसीको केन्द्र मानकर ४६ अंगुल-के व्यासार्धका एक वृत्त खींचो। इसे वलनाश्रित वृत्त कहते हैं। (३) उसी केन्द्रसे एक दूसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध छाद्य और छादक विम्बोंके व्यासार्धोंके योगके अर्थात् मानैक्यखंडके समान हो। इस वृत्तको समास वृत्त कहते हैं। इसी तरह उसी केन्द्रसे एक तीसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध उस ग्रहके विम्बके व्यासार्धके समान हो जिसपर ग्रहण लगता है। (४) इसी विन्दुसे होती हुई उत्तर-दक्षिण-रेखा तथा पूर्व-पश्चिम-रेखा पहले (त्रिप्रश्नाधिकार श्लो० ३, ४ में) बतलायी हुई रीतिके अनुसार खींचो। चन्द्रग्रहणमें स्पर्श पूर्व दिशासे और मोक्ष पश्चिम दिशासे होते हैं परन्तु सूर्यग्रहणमें इसके विपरीत होता है अर्थात् सूर्यग्रहणमें स्पर्श पच्छिमसे और मोक्ष पूर्वसे होता है। (५) चंद्रग्रहणमें चंद्रमाके स्पर्शकालिक स्फुट वलनकी ज्या जितनी हो पूर्व विन्दुसे उतने ही अंतरपर और उसी दिशामें जिस दिशाका स्फुट वलन हो केन्द्रसे वलनाश्रित वृत्ततक एक रेखा खींचो। इसी प्रकार चन्द्रमाके मोक्षकालिक स्फुटवलन-की ज्या जितनी हो, पच्छिम विन्दुसे उतने ही अन्तरपर परन्तु स्फुटवलनकी दिशाकी बिपरीत दिशामें केन्द्रसे वलनाश्रित वृत्ततक एक दूसरी रेखा खींचो। सूर्यग्रहणमें उपर्युक्त रेखाओंकी दिशाओंका क्रम उनके विपरीत होता है जो चन्द्रग्रहणमें बतलायी गयी हैं। इन रेखाओंको वलनाग्र रेखा कहते हैं और यह रेखाएं वलनाश्रित वृत्तको जहां काटती हैं उसे वलनाग्र विन्दु कहते हैं। (६) वलनाश्रित वृत्तपर (५ वें श्लोकके अनुसार) स्पर्श और मोक्षकालके जो वलनाग्र विन्दु बनाये जाते हैं उनसे केन्द्रतक जो रेखाएं जाती हैं वे समास वृत्तको जिन विन्दुओंपर काटती हैं उनसे चन्द्रमाके स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक शरोंके अंतरपर केन्द्रसे समास-वृत्ततक रेखाएं खींचो। यह रेखाएं समासवृतको जहां काटती हैं उन विन्दुओंको विक्षेपाग्र विन्दु कहते हैं। (७) इन विक्षेपाग्र विन्दुओंसे केन्द्रतक जो रेखाएं जाती हैं वे ग्राह्य बिम्बको जिन विन्दुओंपर काटती हैं उन्हींको क्रमानुसार स्पर्शविन्दु और मोक्ष विन्दु कहते हैं।

(८) सूर्य ग्रहणके परिलेखमें विक्षेपाग्रविन्दु उसी दिशामें बनाओ जिस दिशामें चन्द्रमाका शर हो परन्तु चन्द्रग्रहणके परिलेखमें विक्षेपाग्र विन्दुकी दिशा चन्द्रमाके शरकी दिशाके विपरीत होती है। इसीके अनुसार मध्यग्रहण कालका भी विक्षेपाग्र विन्दु बनाओ।

(९) चन्द्रग्रहणके मध्यकालके परिलेखमें यदि मध्यकाल-के स्फुटवलन और विक्षेपकी दिशाएँ एक हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण-रेखाके पूर्वसे बनाना चाहिए। परन्तु यदि स्फुटवलन और विक्षेपकी दिशाएं भिन्न हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखाके पच्छिममें बनाना चाहिए। यदि विक्षेपकी दिशा दक्षिण हो तो उत्तर विन्दुसे पूर्व या पच्छिम

वलनाग्रविन्दु बनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेपकी दिशा उत्तर हो तो दक्षिण विन्दुसे पूर्व या पच्छिम वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए। सूर्यग्रहणके मध्याकालके परिलेखमें इसके विपरीत करना चाहिए अर्थात यदि वलन और विक्षेप दोनों-की दिशाएं एक हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पच्छिमकी ओर और यदि दोनोंकी दिशाएं भिन्न हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पूर्वकी ओर बनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेपकी दिशा दक्षिण हो तो दक्षिण विन्दुसे और उत्तर हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु होना चाहिए।

(१०) मध्यग्रहणके वलनाग्र विन्दुसे केन्द्रतक एक रेखा खींचो। इसी रेखापर वलनाग्र विन्दुकी दिशामें केन्द्र से विक्षेपके अंतरपर एक विन्दु बनाओ, इसीको मध्यकाल-का विक्षेपाग्रविन्दु कहते हैं।

(११) विक्षेपाग्र विन्दुको केन्द्र मानकर ग्राहक या छादक-के व्यासार्धके समान त्रिज्यासे एक वृत्त बनाओ या यह वृत्त छाद्य विम्बको (चन्द्र ग्रहणमें चंद्र विम्ब और सूर्य-ग्रहणमें सूर्य बिम्बको जहां तक ढक लेता है उतना ही ग्रहणका परम ग्रस्त भाग होता है।

(१२) ज्योतिषीको चाहिए कि समतल भूमिपर अथवा फलक (काठके तख्ते) पर परिलेख बनावे। पूर्व कपालमें दिशाओंका जो क्रम रहता है उसके विपरीत पच्छिम कपालमें होना चाहिए अर्थात् पूर्व कपालमें जहां लव्य क्रम-से पूर्व, दक्षिण, पच्छिम और उत्तर दिशाएँ होंगी यहां पच्छिम कपालमें क्रमानुसार पच्छिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशायें होंगी।

विज्ञान भाष्यः—इन श्लोकोंमें ग्राह्य विम्बको स्थिर मान-कर उसके जितने अंतरपर और जिस दिशामें ग्राहकका केन्द्र ग्रहणके स्पर्श, मध्य और मोक्ष कालमें होता है उसको रेखागणितकी सहायतासे जाननेकी रीति बतलायी गयी है। चंद्र ग्रहणमें चन्द्रमा ग्राह्य और भूछाया ग्राहक होती है। सूर्य ग्रहणमें सूर्य ग्राह्य और चन्द्रमा ग्राहक होता है। अब श्लोकोंके क्रमसे प्रत्येक रीति की व्याख्या की जाती है:—

श्लोक २—चंद्रग्रहणाधिकार श्लोक २४-२५ तथा पृष्ठ ६७८-६८७ में बतलाया गया है कि स्फुटवलन क्या है और इससे क्रान्ति वृतका ज्ञान कैसे होता है। वहां यह भी बत-लाया गया है कि स्फुटवलनकी ज्या को ७० से भाग देनेपर इसकी ज्याका परिमाण अंगुलोंमें आजाता है। इस प्रकार त्रिज्याकी मान ४६ अंगुल के लगभग होता है क्योंकि त्रिज्या ३४३८ कलाओंकी होती है जिसको ७० से भाग देनेपर लब्धि ४९.१ आती है जिसे पूर्णाङ्कों में ४६ ही समझना चाहिए। इसी लिए इस श्लोक में ४६ अंगुल के व्यासार्ध का वलना श्रितवृत्त खींचने की रीति बतलायी गयी है। इस वृत्तसे स्फुटवलन बतलाने वाली रेखा सहज ही खींची जा सकती है। भास्कराचार्य तथा अन्य आचार्योंने वलनाश्रित वृत्तके खींचनेका नियम नहीं बतलाया है। उन्होंने केवल इतना लिखा है कि समास वृत्तपर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चिन्ह बनाकर स्फुटवलनके परिमाणका कोण दिशाके अनुसार बना लेना चाहिए।

श्लोक ३—इस श्लोकमें समास वृत्त और जिस ग्रहमें ग्रहण लगता है उसके बिम्बका वृत्त अर्थात् ग्राह्य-बिम्बवृत्तके खींचनेकी बात है। पर यह स्पष्ट नहीं बतलाया गया है कि इसका परिमाण क्या होना चाहिए। यदि ७० कलाओंका एक अंगुल माना जायगा तो समास-वृत्त और ग्राह्य-बिम्ब-वृत्त बहुत छोटे होंगे क्योंकि ग्राह्य-बिम्ब-वृत्तका व्यासार्ध १६ कला अथवा एक अंगुलके चौथे भागसे भी कम होता है और समास-वृत्तका व्यासार्ध १ अंगुलके लगभग होता है। इस लिए इन वृत्तोंके लिए ७० कलाओंका एक अंगुल माननेमें सुबिधा नहीं होगी। ऐसी दशामें चंद्रग्रहणाधिकारके १६ वे श्लोकमें जिस अंगुलकी चर्चा है उसे काममें लाना चाहिये। परन्तु उसमें अंगुलका जो मान दिया गया है वह उन्नत कालके अनुसार बदलता हुआ बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ६८८)। परन्तु मैं समझता हूं कि यदि अंगुलका परिमाण सदा ३ कलाका माना जाय तो विशेष हानि नहीं हो सकती क्योंकि जैसा पृष्ठ ६८६ में बतलाया गया है वर्तनके कारण सूर्य या चन्द्रबिम्बके आकारोंमें उदय या अस्त कालमें ही अधिक अन्तर देख पड़ता है। अन्य समयमें यह अन्तर इतना कम होता है कि उसपर विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। इसलिए यहां मैं ३ कलाका एक अंगुल मानना सुगम समझता हूँ, इसमें कुछ संस्कार करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

श्लोक ४—इसके पूर्वार्धमें यह बतलाया गया है कि जिस बिन्दुको मानकर वलनाश्रित वृत्त, समास-वृत्त और ग्राह्य-बिम्ब-वृत्त खींचनेको कहा गया है उसी विन्दुसे उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम रेखाएं त्रि०प्र०-श्लोक २-४ तथा चित्र ४४ के अनुसार खींचना चाहिए। उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहणमें स्पर्श चन्द्र-बिम्बके पूर्व भागमें होता है और मोक्ष पच्छिम भागमें होता है; परन्तु सूर्यग्रहणमें स्पर्श सूर्य-बिम्बके पच्छिम भागमें होता है और मोक्ष पूर्व भागमें होता है। इसका कारण स्पष्ट है। चन्द्रमा आकाशमें पूर्वकी ओर चलता हुआ पृथ्वीकी परिक्रमा करता है इस लिए जिस समय वह पृथ्वी की छाया में प्रवेश करने लगता है उस समय उसका पूरब वाला भाग ही पहले पहल छायामें घुसता है। इसी प्रकार चंद्र बिम्बका पच्छिम वाला भाग ही मोक्षके समय छायासे, अलग होता है। परन्तु सूर्य ग्रहणमें चन्द्रबिम्ब पच्छिमसे पूर्वकी ओर बढ़ता हुआ सूर्य बिम्बको ढक लेता है इस लिए स्पर्श के समय सूर्यबिम्बका पच्छिम वाला भाग ढकने लगता है और मोक्षके समय सूर्य बिम्बका पूर्व वाला भाग चन्द्र बिम्बसे अलग होता है।

श्लोक ५—चंद्रग्रहणके स्पर्श कालमें चंद्रमाके स्फुट वलनकी जो दिशा होती है पूर्व विन्दुसे उसी दिशामें स्फुट वलनके अंतरपर वलनाश्रित वृत्तपर चिह्न करना चाहिए। परन्तु मोक्षकालमें स्फुटवलनकी जो दिशा हो उसके विरुद्ध दिशामें पच्छिम विन्दुसे यह चिह्न करना चाहिए। इन चिह्नोंको वलनाग्र-विन्दु कहते हैं। मोक्ष कालमें दिशाके उलट देनेका कारण पृष्ट ६८० के चित्र १०१से स्पष्ट हो जाता है। वहां यह दिखलाया गया है कि ग्रहके प्राची अर्थात् पूर्व विन्दुसे जिस समय क्रान्ति वृत्त उत्तरकी ओर होता है उसी

समय प्रतीची अर्थात् पच्छिम बिन्दुसे क्रान्ति वृत्त दक्खिनकी ओर है। इस लिए जिस समय स्फुट वलनकी दिशा उत्तर कही जाती है उस समय वह पूर्व विन्दुसे उत्तरकी ओर होती है न कि पच्छिम, विन्दुसे। परन्तु स्फुट वलनकी जो दिशा चन्द्रग्रहणाधिकारके २४-२५ श्लोकोंसे सिद्ध होती है वह पूर्व विन्दुसे ही समझी जाती है इस लिए उस नियमके अनुसार मोक्ष कालिक वलनकी जो दिशा आती है वह पूर्व विन्दुके ही अनुसार आती है परन्तु चन्द्रग्रहणमें मोक्ष पश्चिम विन्दुकी ओर होता है इस लिए इस विन्दुसे स्फुटवलनका कोण बनानेके लिए अथवा क्रान्ति वृत्तकी दिशा जाननेके लिए स्फुटवलनकी दिशा उलट दी जाती है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसके विपरीत सूर्यग्रहणमें करना चाहिए। अर्थात् स्पर्श कालमें स्फुटवलनकी जो दिशा हो उसके विपरीत दिशामें पच्छिम विन्दुसे वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए, परन्तु मोक्ष कालमें पूर्व विन्दुसे स्फुटवलनकी दिशामें ही वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए। इसका कारण स्पष्ट है। सूर्य ग्रहणमें स्पर्श सूर्यविम्बके पच्छिमकी ओर और मोक्ष पूर्वकी ओर होता है। परन्तु पच्छिमकी ओर स्फुटवलनकी दिशा उलट जाती है जैसा ऊपर कहा गया है। इस लिए सूर्यग्रहणमें स्पर्श कालिक वलनकी दिशाको उलटना पड़ता है परन्तु मोक्षकालिक वलनकी दिशामें कोई फेर फार नहीं करना पड़ता।

श्लोक ६—वलनाग्र विन्दुसे जो रेखा वलनाश्रित वृत्त अथवा समास-वृत्त वा ग्राह्यविम्बके केन्द्रतक खींची जाती है उससे केवल यह जाना जासकता है कि क्रान्ति वृत्तकी दिशा क्या है सूर्य ग्रहणमें ग्राह्य विम्ब सूर्य ही होता है और सूर्य सदैव क्रान्ति वृत्तपर रहता है इसलिए केन्द्रसे वलनाग्र विन्दु तक जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्तही समझी जासकती है। परन्तु चन्द्र ग्रहणमें ग्राह्यविम्ब चन्द्रमा होता है और चन्द्रमा क्रान्ति वृत्तसे अपने शरके समान अंतरपर उत्तर या दक्षिण होता है इस लिए चन्द्र विम्बके केन्द्रसे वलनाग्रविन्दुतक जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्त कदापि नहीं हो सकती। यह इसके समानान्तर होती है। चाहे सूर्य ग्रहण हो चाहे चन्द्रग्रहण, दोनों दशाओंमें छादकका केन्द्र वलनाग्र विन्दुसे केन्द्रतक जानेवाली रेखापर नहीं होता क्योंकि सूर्यग्रहणमें छादक चन्द्रमा होता है जो क्रान्तिवृत्तपर नहीं चलता और चन्द्रग्रहणमें छादक भूछाया होती है जो चंद्रमाकी कक्षामें नहीं चलती इस लिए स्पर्श या मोक्ष कालमें छादकके केन्द्रका पता लगानेके लिए उस विन्दुसे जहां वलनाग्र रेखा समास वृत्तको काटती है चन्द्र विक्षेपके अंतरपर केन्द्रसे समास वृत्ततक एक रेखा खींचते हैं। यह रेखा समास वृत्तको जहां काटती है उसे विक्षेपाग्र विंदु कहते हैं। स्पर्श या मोक्षके समय छादकका केन्द्र इसी विन्दुपर होता है। इसलिए यदि इस विन्दुको केन्द्र मानकर छादकके व्यासार्धसे एक वृत्त खींचा जाय तो यह ग्राह्यविम्बको जहां स्पर्श करेगा वहीं ग्रहणका स्पर्श या मोक्ष होगा। विक्षेपाग्र विन्दुसे केन्द्रका जो रेखा खींची जाती है उससे भी स्पर्श या मोक्षका स्थान जाना जासकता है क्योंकि जिस विन्दुसे छादक और छाद्य विम्ब स्पर्श करते हैं उसी विन्दुपर विक्षेपाग्र विन्दुसे केन्द्रतक खींची जानेवाली रेखा भी ग्राह्य विम्बको काटती है। (देखो पृष्ठ ६६६ चित्र ३००) इस चित्रमें च को ग्राह्य विम्ब-

का केन्द्र समझ लिया जाय तो च से क्रान्ति वृत्त छप के समानान्तर जो रेखा खींची जायगी वह केन्द्र से वलनाग्र विन्दु-तक जानेवाली रेखा कही जासकती है। भूछाया छ से इस रेखाका जो अंतर होता है वह च के शरके समान होता है। च को केन्द्र मानकर च छ के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही समास वृत होगा च से जानेवाली वलनाग्र रेखा समास वृत्तको जहां काटेगी वहांसे च छ का अंतर भी चन्द्रमा-के शरके समान होगा। इस प्रकार सातवें श्लोकमें बतलाये गये नियमकी उपपत्ति सिद्ध हुई।

छठें श्लोकमें यह नहीं बतलाया गया है कि वलनाग्र रेखाकी किस दिशामें विक्षेपाग्र रेखा खींचनी चाहिए। यह ८ वें श्लोकमें बतलाया गया है। सूर्य ग्रहणमें विक्षेपाग्र रेखा उसी दिशामें खींचनी चाहिए जिस दिशामें चंद्रमाका शर हो अर्थात यदि चन्द्र शरकी दिशा उत्तर हो तो विक्षेपाग्र रेखा भी वलनाग्र रेखासे उत्तर होनी चाहिए, यदि चन्द्र शर दक्खिन होतो विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखासे दक्खिन खींचनी चाहिए। इसका कारण चित्र १०० पृष्ठ ६६६ से स्पष्ट है। यदि इस चित्रमें छ को सूर्य बिम्बका केन्द्र❀ मान लिया जाय और क्रान्तिवृत छ प को चन्द्रकी कक्षा च प से उत्तरमें मान लिया जाय तो चन्द्रशर दक्खिन होता है। ऐसी दशामें चन्द्रमा सूर्यबिम्बको ऐसे बिन्दुपर स्पर्श करता है जो सूर्य बिम्बके दक्षिणार्धमें है। अर्थात् जब चन्द्रशर दक्खिन होता है तब चन्द्रमा सूर्यबिम्बको दक्षिण की ओर स्पर्श करता है। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि यदि चन्द्रमाका शर उत्तर हो तो यह सूर्य बिम्बको उत्तरकी ओर स्पर्श करेगा।

परन्तु चन्द्रग्रहणमें इसके विपरीत होता है। यह भी उसी चित्रसे स्पष्ट होता है, यदि छ को भूछायाका केन्द्र मान लिया जाय। चित्रमें चन्द्रशर दक्खिन दिखलाया गया है। ऐसी दशामें भूछाया चन्द्रबिम्बको ऐसे बिन्दुपर स्पर्श करती है जो चन्द्र बिम्बके उत्तरकी ओर है। इसी प्रकार यदि चंद्रशर उत्तर हो तो सिद्ध हो सकता है कि भूछाया चन्द्रबिम्बको दक्षिणकी ओर स्पर्श करेगी। इसलिये यह नियम हो गया कि चन्द्रग्रहणमें स्पर्श बिन्दुकी दिशा चन्द्रशर-की दिशा के विपरीत होनी चाहिये अर्थात चँद्रग्रहणमें विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखासे उस दिशामें खींचनी चाहिये जो चन्द्रशरकी दिशाके विपरीत हो।

मोक्षकालके विक्षेपकी दिशा भी इसी नियमके अनुसार निश्चय करनी चाहिये। यदि चन्द्रशरकी दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमाका मोक्ष चन्द्रबिम्बके उत्तरार्धमें होता है जैसा कि उपर्युक्त चित्रमें चन्द्रमाकी स्थितिमें दिखलाया गया है। परन्तु सूर्य ग्रहण में सूर्यका मोक्ष सूर्य बिम्बके दक्षिणार्धमें होता है। इसी प्रकार यदि चन्द्रशरकी दिशा उत्तर हो तो चन्द्रमाका मोक्ष चन्द्रबिम्बके दक्षिणार्धमें और सूर्य-का मोक्ष सूर्य बिम्बके उत्तरार्धमें होता है।

मध्य ग्रहणकालमें भी विक्षेपकी दिशा इसी नियमसे निश्चयकी जा सकती है। उसी चित्रसे यह प्रकट है कि

❀ यदि छ को सूर्य बिम्बका केन्द्र तथा इसके वृत्तको सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो इसी चित्रसे सूर्य ग्रहणके सम्बन्धकी सारी बातें जानी जा सकती है।

जब चन्द्रशर दक्षिण होता है तब चन्द्रग्रहणके मध्यकालमें भू छायाका केन्द्र चन्द्र बिम्बसे उत्तर होता है परन्तु सूर्यं ग्रहणके मध्यकालमें चन्द्रमा सूर्य बिम्बके केन्द्रसे दक्षिण होता है। इसी प्रकार जब चन्द्र शर उत्तर होता है तब चन्द्र ग्रहण के मध्यकालमें भूछायाका केन्द्र चन्द्र बिम्बसे दक्षिण होता है और सूर्यग्रहणके मध्यकालमें चन्द्रमा सूर्य बिम्बके केन्द्रसे उत्तर होता है।

श्लोक ६—चन्द्रमाके मध्यग्रहणकालमें यदि चन्द्रशर और स्फुट वलनकी दिशा एक हो तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पूर्व बनाना चाहिये परन्तु यदि इनकी दिशाओंमें भिन्नता हो अर्थात् स्फुटवलन उत्तर और चन्द्रशर दक्षिण हो अथवा स्फुटवलन दक्षिण और चन्द्रशर उत्तर हो तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर दक्षिण रेखासे पच्छिम होना चाहिये। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि चन्द्रशर दक्षिण हो तो उत्तर-बिन्दुके पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र बिन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो दक्षिण-बिन्दुसे पूर्व या पच्छिमकी ओर वलनाग्र-बिन्दु बनाया जाय।

परन्तु सूर्य-ग्रहणके मध्यकालका परिलेख खींचनेके लिए ऊपर जो कुछ चन्द्र ग्रहणके सम्बन्धमें कहा गया है उसके विपरीत होना चाहिये। अर्थात् यदि चन्द्रशर और स्फुटवलनकी दिशा एक हो तो वलनाग्र-बिन्दु उत्तर-दक्षिण रेखासे पच्छिमकी ओर और यदि इनकी दिशाओंमें भिन्नता हो तो वलनाग्र बिन्दु उत्तर-दक्खिन रेखासे पूर्वकी ओर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहे कि यदि चन्द्रशर दक्खिन हो तो दक्खिन-बिन्दुसे पूर्व या पच्छिमकी ओर वलनाग्र बिन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो उत्तर बिन्दुसे पूर्व या पच्छिम वलनाग्र बिन्दु बनाया जाय। चित्र १०२ से इसका ठीक ठीक ज्ञान सहज ही हो सकता है! चन्द्रग्रहणके सम्बन्धमें जो भूछाया है वही सूर्य ग्रहणके संबन्धमें सूर्य बिम्ब समझ लेनेसे यही चित्र चन्द्रग्रहण और सूर्य ग्रहण दोनोंके लिए काम दे सकता है।

चित्र नं १०२

छ=भूछाया या सूर्यविम्ब का केन्द्र
च=चन्द्र विम्बका केन्द्र जब चन्द्रशर दक्षिण है।
चा=चन्द्रविम्बका केन्द्र जब चन्द्रशर उत्तर है।
पू=उस विम्बका पूर्व बिन्दु जिसकी परिधिपर यह अक्षर है।
प=उस विम्बका पच्छिम विन्दु जिसकी परिधिपर यह अक्षर है।
उ=उस विम्बका उत्तर विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।
द=उस विम्बका दक्षिण विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।
क्रक्रा=क्रान्ति वृत्त
कक=कदम्बप्रोत वृत्त

क्रिक्रि या क्रिकी चन्द्रमाके केन्द्रसे जाता हुआ क्रान्ति वृतके समानान्तर वृत इस चित्रमें स्फुटवलन उत्तरकी ओर दिखलाया गया है। इस लिए प्रत्येक विम्बके केन्द्रसे जाती हुई पूप रेखाके पू विन्दुसे क्रान्ति वृत क्रक्रा उत्तरकी ओर है। इस चित्रसे नीचे लिखी बातें स्वयम् सिद्ध हैः—

(१) चन्द्र ग्रहणके समय जब चन्द्रमा च पर और भू छाया छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण } भूछायाका केन्द्र छ चन्द्रमाके उत्तर विन्दु
स्फुटवलन उत्तर } उ से पच्छिमकी ओर

(२) चन्द्र ग्रहणके समय जब चन्द्रमा चा पर और भू छाया छ पर हो—

चन्द्र शर उत्तर } भूछायाका केन्द्र छ चन्द्रमाके दक्षिण
स्फुटवलन उत्तर } विन्दु द से पूर्वकी ओर

(३) सूर्य ग्रहणके समय जब चन्द्रमा च पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण } चन्द्रमाका केन्द्र च सूर्य विम्बके
स्फुटवलन उत्तर } दक्षिण विन्दु द से पूर्व की ओर

(४) सूर्य ग्रहणके समय जब चन्द्रमा चा पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर उत्तर } चन्द्रमा का केन्द्र चा सूर्य विम्बके उत्तर
स्फुटवलन उत्तर } विन्दु उ से पच्छिमकी ओर

इसी प्रकार यदि प्रत्येक विम्बके केन्द्रसे जानेवाली क्रा का रेखा पू प रेखा के पू विन्दु से दक्षिणकी ओर खींची जाय तो स्फुटवलनकी दिशा दक्खिनकी ओर होगी इस दशामें भी यह स्पष्ट हो जायगा कि श्लोक ६ का नियम बिलकुल ठीक उतरता है। चित्र खींचते समय इस बातका ध्यान रहना आवश्यक है कि छ से च वा च को जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्तसे समकोणपर अथवा कदम्बप्रोत वृत्तपर हो।

श्लोक १०—जब श्लोक ६ के अनुसार मध्य ग्रहण फलका वलनाग्र विन्दु जान लिया जाय तब केवल यह जानना रह जाता है कि इस वलनाग्र विन्दुसे ग्राह्य विम्बके केन्द्रतक जानेवाली रेखाके किस विन्दुपर ग्राहकका केन्द्र है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि मध्यग्रहण कालमें ग्राह्य और ग्राहक विम्बोंके केन्द्रोंका अन्तर चन्द्रमाके शरके समान होता है। इसलिये ग्राह्यविम्बके केन्द्रसे वलनाग्र बिन्दुकी दिशामें चन्द्रशरके अन्तर पर ग्राहकका केन्द्र नाप कर स्थिर कर लेना चाहिये।

श्लोक ११—ग्राहकके इसी केन्द्रपर ग्राहक विम्बके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वही ग्राहकका बिम्ब सूचित करेगा। यह वृत्त ग्राह्य विम्ब जितना भाग ढक लेगा वही भाग विम्बका ग्रस्त होगा। यदि ग्राह्यका पूरा बिम्ब ग्रा-

हक वृत्तसे ढक जायगा तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा, नहीं तो खंडग्रास ग्रहण होगा। इसकी उपपत्ति पृष्ठ ६५७ के चित्र ९९ के संबन्धमें बतलायी जा चुकी है।

श्लोक १२—इस श्लोकमें यह बतलाया गया है कि समतल भूमिपर अथवा काठ या किसी अन्य वस्तुकी तख़्तीपर परिलेख खींचा जा सकता है। फलककी जगह क़ाग़ज़ भी आजकल सुगमतासे प्रयोग किया जा सकता है।

इस श्लोकके उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि पूर्व कपालके परिलेखमें दिशाओंका जो क्रम हो पच्छिम कपालके परिलेखमें उसके विपरीत होना चाहिये। परन्तु यह बात समझमें नहीं आती क्योंकि यदि ग्रहणका स्पर्श पूर्व कपालमें हो और मोक्ष पच्छिम कपालमें, जैसा कि प्रायः होता है, तो एक ही ग्रहणके स्पर्शकाल या सम्मिलित कालका परिलेख उन्मीलन या मोक्षकालके परिलेखसे भिन्न होना चाहिये। परन्तु ऐसी बात न तो व्यवहारमें सुविधाजनक है और न बहुत अवश्यक ही है। इसके सिवा अगले श्लोकोंमें सम्मीलन और उन्मीलनकी दिशाएँ जाननेकी जो रीतियां बतलायी गयी हैं वे तभी सम्भव हैं जब एक ही परिलेखसे काम लिया जाय। अन्य आचार्योंने इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है। केवल ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तके ग्रहणोत्तराध्यायके श्लोक* २६ में यह लिखा हुआ है कि फलकपर यदि परिलख बनाया जाय तो इसपर जो दिशाएँ अंकितकी जायंगी वे भूमिके परिलेखकी दिशाओंके विपरीति होंगी। इसका कारण यह है कि भूमिके परिलेखमें दिशाओंका क्रम वह है जो त्रिप्रश्नाधिकारके श्लोक १-४ में बतलाया गया है। परन्तु फलकके परिलेखमें यह सुबिधा भी होती है कि उसको हम ग्राह्य बिम्बकी ओर उलटकर रख सकते हैं और स्पर्श या मोक्ष बिन्दुकी दिशाका ज्ञान सहजही कर सकते हैं। ऐसी दशामें फलकपर हमारे बायें हाथकी ओर पूर्व, दाहिने हाथकी ओर पच्छिम, ऊपरकी ओर उत्तर और नीचेकी ओर दक्खिन होगा। परन्तु भूमिके परिलेखमें हमारे दाहने हाथकी ओर पूरब, बायें हाथकी ओर पच्छिम, उत्तरकी ओर उत्तर और दक्षिणकी ओर दक्षिण होता है।

सूर्यसिद्धान्तके टीकाकारोंने तो यही लिखा है कि पूर्व या पच्छिम कपालके भेदसे दिशाओंके क्रममें भिन्नता कर देनी चाहिये। परन्तु मुझे इसके कारणका ज्ञान अभीतक नहीं हुआ इसलिए मैं इसका अर्थ पद्धतिके विरुद्ध जैसा कि ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तमें बतलाया गया है करता हूं। आशा है इसपर कोई सज्जन अपना मत प्रकट करेंगे और इसका कारण बतलानेकी कृपा करेंगे।

* प्राच्यपरे विपरीते विपरीतं मध्यवलन मेकेन्द्वोः।
पूर्ववदन्यत् सर्वं फलके स्वे ग्रहण परिलेखाः ॥ २६ ॥

जिसकी टीका सुधाकरजी इस प्रकार करते हैं—फलके प्राच्यपरे विपरीते कार्ये। भूमौ यः प्राग्विन्दुः पश्चिम बिन्दुश्च फलकेस पश्चिम बिन्दु प्राग्बिन्दुः कार्यं इति। अर्केन्द्वो मध्यवलनं यथादिशमागत विपरीतं कार्यम्।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २४ | मीन, संवत् १९८३ | संख्या ६

प्रकृति

प्रकृतिकी तरह शक्ति भी अविनाशी है। वह नष्ट नहीं होती। उसका भी रूपान्तर ही हुआ करता है। वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है कि:—

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः"

अर्थात् अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती और न भावका अभाव ही सम्भव है। जब हम कोई कल चलाते हैं तो जो शक्ति हम उसमें लगाते हैं, उसका एक फल तो यह होता है कि कल चलती है, परन्तु साथ ही साथ एक और भी परिवर्तन हो जाता है—वह है कलके पुर्जोंका गर्म होना। वास्तवमें प्रत्येक गतिसे ताप उत्पन्न होता है। यहाँ तक कि यदि एक गिलासमेंसे दूसरे गिलासमें पानी डाला जाये तो उससे भी पानीके तापक्रममें बृद्धि हो जाती है। जब किसी चीजको रगड़ते या कूटते हैं तो उससे भी तापक्रममें बृद्धि होती है। इसी लिये सर्दीमें जब अधिक ठण्ड मालूम होती है तब हम अपने हाथोंको रगड़ कर गर्म कर लेते हैं। रगड़नेमें जो शक्ति व्यय होती है वह नष्ट नहीं होती अपितु तापमें परिवर्तित हो जाती है। मक्खीके पङ्ख फड़फड़ानेसे भी कुछ न कुछ ताप अवश्य उत्पन्न होता है और सूक्ष्म यन्त्रोंके द्वारा उसे मापा भी जा सकता है। इस प्रकार हमने देखा कि ताप शक्तिका रूपान्तर ही है।

अब हम एक लोहेका गोला लेते हैं और उसे एक अन्धेरे कमरेमें प्रकाश-रहित बुन्सनकी नीली

ज्वालामें धीरे धीरे गर्म करते हैं। जब तक कि गोला गर्म होकर लाल नहीं हो जाता तबतक वह दृष्टिगोचर तो नहीं होता; हाँ यदि उसके पास हाथ ले जायें तो गर्मीका अनुभव अवश्य होता है। अब यदि उसे और गर्म करते जायें तो कुछ समयके बाद वह लाल लाल चमकने लगेगा और उससे प्रकाशकी लाल किरणें निकलती हुई प्रतीत होंगी। उसे कुछ देरतक गर्म किया जाये तो वह श्वेत रङ्गका दीखने लगता है। हमने गोलेको गर्म किया है। प्रारम्भमें गोला केवल हमारी त्वगिन्द्रियपर ही अपना प्रभाव डालता था, परन्तु जब वह गर्म होकर लाल हो गया तब हमारी एक और इन्द्रियपर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा। अब हमारी चक्षुरिन्द्रियपर भी प्रभाव पड़ रहा है। पहिले गोला हमें दीखता न था। परन्तु अब उससे निकली किरणोंके कारण हम अपनी आँखों द्वारा उसे देख सकते हैं।

आज कल बिजलीके लैम्पोंका अच्छा प्रचार हो गया है। शायद ही कोई ऐसा बड़ा शहर होगा जहाँ बिजलीके लैम्प न लगे हों। हम एक बिजलीका लैम्प लेते हैं और स्विचको हलका दबाकर थोड़ीसी बिजली तारोंमें से गुज़रने देते हैं। लैम्पमें लगा बड़ा बारीक तार हमें अँधेरेमें नहीं दीखता था परन्तु अपर्याप्त विद्युत्के गुजरनेसे अब वह हमें लाल लाल चमकता हुआ दीखता है। स्विचको पूरा दबा दीजिए। तार गर्म होकर श्वेत रङ्गका हो गया। हमारा कमरा प्रकाशित हो गया। आप पूछेंगे कि हमने गुजारी तो थी विद्युत, पर यह क्या? पहिले तो तार गर्म हुआ, फिर चमकने लगा और कमरा प्रकाशित हो गया। जिन्होंने विद्युत्के सम्बन्धमें अध्ययन किया है वे जानते हैं कि यदि विद्युत्प्रवाहके मार्गमें अधिक बाधा उपस्थित हो जावे तो विद्युत् तापके रूपमें बदल जाती है। हम पहिले परीक्षणमें देख चुके हैं कि यदि किसी वस्तुको बहुत ऊँचे ताप परिमाणतक गर्म किया जाये तो वह न केवल हमारी स्पर्शेन्द्रियपर ही अपना प्रभाव डालती है बल्कि आँखोंपर भी अपना प्रभाव डालने लगती है अर्थात् तापक्रमकी अधिकता होने पर ताप, प्रकाशमें परिवर्तित हो जाता है।

इन परीक्षणोंसे हमने देखा कि विद्युत, प्रकाश और ताप आपसमें बहुत ही समीपके सम्बन्धसे बँधे हुए हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि वास्तवमें वे एक ही शक्तिके रूपान्तर हैं।

हमारा प्रकाशका सबसे बड़ा स्रोत है सूर्य। हम अपने गत लेखमें सूर्यके प्रकाशके सम्बन्धमें कुछ अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। यहाँपर हम उसके विषयमें दो एक और नई बातें पाठकोंके सम्मुख रखनेका यत्न करेंगे। गर्मियोंमें ज़रा थोड़ी देरके लिये दोपहरको बाहर निकलिये। आपको धूप असह्य होती है। क्यों? इसी लिये कि गर्मीके मारे धूपका सहना मुश्किल हो जाता है। तो क्या सूर्यका प्रकाश गर्म होता है? प्रत्यक्ष देखनेसे तो यही मालूम होता है कि सूर्यका प्रकाश गर्म होता है। अपने लोहेके गोले और बिजलीके लैम्पके प्रकाशके साथ भी हमने तापका घनिष्ट सम्बन्ध देखा था परन्तु उनसे उत्पन्न तापसे हम व्याकुल नहीं हो जाते क्योंकि उनमें ताप इतना थोड़ा है कि वह हमारी त्वचाको असह्य नहीं होता। सर्दियोंमें जब हमें ठण्ड अधिक मालूम होती है तो हम धूपमें निकल कर बैठ जाते हैं। थोड़ी देरमें सूर्यकी गर्मीसे शरीर गर्म हो जाता है। सर्दियोंमें इसलिए हमें धूप अच्छी मालूम होती है। गर्मियोंमें जब धूप अधिक लगने लगती है तब हम छाता ओढ़ लेते हैं अथवा किसी वृक्षकी छायामें खड़े हो जाते हैं। उस समय फिर हमें धूपकी तेज़ीके कारण कष्ट अनुभव नहीं होता। क्यों? इसलिये कि अब धूप हमतक नहीं पहुँचती। इन सब बातोंको देखकर हमारा यह ख्याल होने लगता है कि प्रकाश गर्म होता है। यदि हम किसी वैज्ञानिकके सामने कहें कि "प्रकाश गर्म होता है" तो वह हमारी बातपर खिलखिलाकर हँस पड़ेगा। वास्तवमें प्रकाश कोई प्राकृतिक पदार्थ नहीं है कि उसमें प्राकृतिक वस्तुओंकी तरह हम यह कहने लगें कि वह ठण्डा है या गर्म। यदि हम चन्द्रमाकी चांदनीमें बैठें तो हमें शीतलताका अनुभव होता

है। हम कहते हैं कि चन्द्रमाका प्रकाश शीतल है। जुगनूके प्रकाशमें हमें न शीतलताका अनुभव होता है और न उष्णता का ही। हम अभी कह चुके हैं कि इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग करना अशुद्ध है।

प्रकाश कोई द्रव्य नहीं है क्योंकि उसमें गुरुता नहीं है और न वह स्थान ही घेरता है। प्रकाश और अन्धकारका दोनों ही अवस्थाओंमें गुरुतामें कोई भेद नहीं आता। प्रकाश शक्तिका ही एक रूपान्तर मात्र है।

आप कहेंगे कि यह कैसे? हमें अनुभवके द्वारा तो प्रकाशमें शीतलता व उष्णताका ज्ञान होता है तो हम यह कैसे मान लें कि वह सर्द व गर्म नहीं होता। आइये इसके लिए हम फिर उसी वैज्ञानिक दिव्य दृष्टिकी शरण लें जिसके द्वारा वैज्ञानिक अनेक प्राकृतिक रहस्योंका उद्घाटन करनेमें समर्थ हुए हैं।

हम पहिले लिख चुके हैं कि सूर्यका श्वेत प्रकाश वास्तवमें भिन्न २ प्रसिद्ध रङ्गोंके मिलनेसे बना हुआ है। पर्शुकके द्वारा उनका सुन्दर सप्तक स्पष्ट दीख पड़ता है। परन्तु वास्तवमें सूर्यकी किरणें केवल ऐसी ही नहीं होतीं जो कि त्रिपार्श्व पर्शुकके द्वारा फटकर भिन्न २ सात रंगोंका एक सप्तक बनायें। त्रिपार्श्व पर्शुकसे सौर-प्रकाशको फाड़कर अच्छी प्रकार देखनेसे पता लगता है कि सूर्यके प्रकाशमें मुख्यतः तीन तरहकी किरणोंका मेल हुआ है। इस सप्तकके दोनों ओर भिन्न २ प्रकारकी किरणें होती हैं। सप्तकके कासनी रंगके पार्श्वमें जो सूक्ष्म किरणें होती हैं उनको उपकासनी (ultra-violet) किरण कहते हैं और लाल रङ्गके पार्श्वमें जो किरणें होती हैं उन्हें रक्तातीत (infra-red) अथवा तापात्मक कहते हैं। अर्थात् पहले रासायनिक किरण हैं तब वर्णप्रद और पीछे तापात्मक। इसे इसी प्रकार स्पष्ट दिखा सकते हैं।

इनमें सबसे पहिली प्रकारकी किरणें (ultra-violet) उपकासनी हैं। पर्शुकमेंसे ये बिना किसी परिवर्तनके गुज़र जाती हैं। ये प्रकाश उत्पन्न नहीं करती और न कोई रङ्ग ही देती हैं। फोटोग्राफीकी प्लेटपर रजत हरिद् का लेप होता है। सूर्यके प्रकाशमें उसे खुला रखनेसे उसका रङ्ग विकृत हो जाता है। वास्तवमें रजतहरिद्के श्वेतसे भूरे व कालीनुमा रङ्गमें बदलनेमें कारण ये ही किरणें हैं। यदि किसी उचित साधन द्वारा इन किरणोंको दूर कर लिया जावे तो फिर सूर्यके प्रकाशमें फोटोग्राफीकी प्लेटको प्रभावित करनेकी शक्ति नहीं रहती हैं।

अब हम उसके दूसरे भागपर आते हैं। हमें पता है कि जब प्रकाशकी किरणें किसी विरल माध्यमसे होती हुई सघन माध्यममें गुज़रती हैं तब वे अपने मार्गसे कुछ विचलित हो जाती हैं और ठीक उसी दिशामें न जा कर किसी और ही दिशामें जाती हैं। इसको विचलन (Refraction) कहते हैं। हमने पर्शुकके द्वारा जो परीक्षण किये थे उनसे हमें पता लगा कि:—

(१) सूर्यकी श्वेत किरणें कोई सरल किरणें नहीं हैं अपितु ये सात भिन्न भिन्न रङ्गोंकी किरणोंके मेलसे बनी हुई हैं।

सौर प्रकाश

उपकासनी Actinic रासायनिक	वर्ण-प्रद								रक्तातीत या तापात्मक Infra-red
	बैंजनी	नीला	आकाशी	व	हरा	पीला	नारंगी	लाल	

(२) सूर्यकी किरणको त्रिपार्श्व पशुक (Prism) मेंसे गुजार कर भिन्न २ रङ्गोंमें विभक्त किया जा सकता है।

(३) भिन्न २ प्रकारकी किरणोंका विचलन भी भिन्न २ होता है। लालका विचलन सबसे कम और कासनीका सबसे अधिक।

यह पता लग जानेपर कि सूर्यकी किरणें भिन्न भिन्न रङ्गोंकी बनी हुई हैं हमारे लिए रङ्गोंकी व्याख्या करना बहुत कुछ आसान हो गया। जब किसी पदार्थपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं तब उनमेंसे कुछ तो उसके पार हो जाती हैं, कुछ उसीमें सोख ली जाती हैं और शेष उसपरसे प्रतिक्षिप्त होकर हमारी आँखोंपर पड़ती हैं उन किरणोंके हमारी आँखोंके पर्दे पर पड़नेसे हमें वस्तुका ज्ञान होता है। जो वस्तु जिस रङ्गकी दीखती है वह उस प्रकारकी किरणोंको छोड़कर शेष किरणोंको अपने अन्दर सोख (Absorb) लेती है। सूर्यके प्रकाशके सामने लाल रङ्गका शीशा रखिये तो सब वस्तुएं लाल दीखती हैं। इसका कारण यह है कि उस शीशेने अधिक विचलित होने वाली अर्थात् कासनी आदि रङ्गोंको अपनेमें सोख लिया है। अब शीशा हरे रङ्ग का लीजिये। उसने कम विचलित होने वाली किरणोंको अपने अन्दर सोख लिया है। उसमेंसे केवल हरे रङ्गकी ही किरणें बाहर रही हैं। अब यदि दोनों शीशोंको मिला दें तो उनके पार कुछ भी न दीखेगा। इसका कारण यह है कि दोनों शीशोंने मिलकर सारेका सारा प्रकाश अपने अन्दर सोख लिया। अब हमारी आँखोंके सामने नीरङ्ग अर्थात् काला रंग ही रह गया क्योंकि हमारी आँखों-तक कोई भी किरण नहीं पहुँच पाई।

एक कपड़ा, कागज या अन्य कोई वस्तु हमें लाल दीखती है। उसका कारण यह है कि उस वस्तुने लालके सिवाय सब किरणोंको अपने अन्दर ही सोख लिया। केवल लाल किरणें ही हमारी आँखतक उस वस्तुपरसे प्रतिक्षिप्त होकर पहुँचती हैं अतः वह हमें लाल ही दीखती हैं। यही बात अन्य रङ्गों वाली वस्तुओंपर भी घटती है कई पदार्थ ऐसे हैं जो किरणोंके किसी भागको नहीं सोखते। उनसे प्रकाश-की किरणें टकराकर मिली मिलाई हमारी आँखोंतक पहुंच जाती हैं। ऐसी वस्तुएं हमें श्वेत दीख पड़ती हैं। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनपरसे प्रकाश बिलकुल भी प्रतिक्षिप्त नहीं होता। वे वस्तुयें, उनपर जितना प्रकाश पड़ता है, सबका सब सोख लेती हैं। अतः ये काली दीख पड़ती हैं। रंगोंके अभावका नाम ही कालापन है। कालापन स्वयं अलग कोई स्वतन्त्र रंग नहीं होता। जो वस्तुयें प्रकाशकी सभी किरणोंको सोख लेती हैं वे काली दीख पड़ती हैं। कुछ वस्तुयें ऐसी होती हैं जिनमेंसे प्रकाशकी किरणें ज्यूँ की त्यूँ केवल जरा सा विचलित होती हुई निकल जाती हैं। ये वस्तुयें पारदर्शक प्रतीत होती हैं। इस प्रकार हमें पता लगा कि एक गुलाबका फूल हमें लाल दीखता है क्योंकि वह लालके सिवाय सप्तककी अन्य किरणों-को सोख लेता है और उसकी पत्तियाँ हरी दीखती हैं क्योंकि उसकी पत्तियोंके (chlorophyll) हरे भागमें यह शक्ति है कि वह हरे रंगकी किरणोंको छोड़कर अन्य सबको सोख लेता है इसलिये उसपरसे केवल हरी किरणें प्रतिक्षिप्त होती हैं।

एक चमेलीका फूल श्वेत दीखता है क्योंकि वह प्रकाशकी सब रंगोंकी किरणोंको समान रूपसे प्रति-क्षिप्त करता है। यदि हम उसे एक लाल शीशेसे देखें तो वह लाल दीखेगा और नीलेसे देखें तो नीला।

पीले फ़ास्फ़ुरसकी एक डलीको जैतूनके तेलमें डालकर एक शीशीमें रख लीजिये। अब यदि शीशी-का डाट अन्धेरेमें खोला जाये तो शीशी चमकने लगती है। अरक्षित दियासलाईको रात्रिमें हाथपर रगड़नेसे भी ऐसी चमक कुछ देरतक हाथपर दीखती रहती है। श्मशानोंके पास रात्रिमें फ़ास्फ़ुरसके कारण ऐसी चमक प्रायः दीखा करती है। जिसे साधा-रण लोग भूत समझकर बड़ा भय मानते हैं। श्म-शानके पासकी लकड़ियोंपर भी ऐसी चमक आ जाया करती है। ऐसी लकड़ियां प्रायः नदियोंके बढ़नेके

समय उसमें बहकर आया करती हैं और रातको नदी-के किनारे पड़ी दृष्टिगोचर होती हैं। इस चमक-का कारण रासायनिक-क्रिया है। प्रस्फुरक वायुकी ओषजनसे रसायनिक रूपसे मिली रहती है। प्रस्फुरकमें इस चमकको पहिले पहल देखनेके कारण इसका नाम स्फुर-प्रकाश (Phosphorescence) रक्खा गया है। वर्षाकी रातोंमें जुगुनुओंके कारण पेड़ बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। उनमें जगह २ छोटे २ तारे-से चमकते हुए दीखते हैं। वैज्ञानिकोंने पता लगाया है कि जुगुनूकी चमक भी एक प्रकारकी रासाय-निक क्रिया है। प्रो० हार्वे (Prof Harvey) ने परीक्षा करके दिखाया है कि Luceferine और Luceferase को मिलानेसे यह प्रकाश उत्पन्न होता है। यह अभी-तक निश्चित नहीं हुआ कि इस रसायनिक क्रियामें ताप पैदा होता है या नहीं। बड़े सूक्ष्म यन्त्रोंका उपयोग करनेपर भी ठीक परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। ऐसा समझा जाता है कि इस चमकसे भी कुछ न कुछ ताप अवश्य पैदा होता है वह सम्भवतः ·०००६ अंश शतांशके लगभग हैं। खैर कुछ भी हो यहाँ तो हमें केवल चमकसे मतलब है। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि पदार्थोंमें किरणोंके सोखनेकी शक्ति होती है। परन्तु सामान्यतया ऐसे पदार्थ हमारे देखने-में नहीं आते जो कि प्रकाशको सोख कर फिर छोड़ते भी हों। ऐसे कुछ पदार्थ पाये जाते हैं जिनमें प्रत्येक-की तरह अन्धेरेमें चमकनेकी शक्ति होती है। रेडियम भी रातको चमकता है। परन्तु उसके प्रकाशका कारण इन पदार्थों के प्रकाशके कारणसे सर्वथा भिन्न है। रेडियमका प्रकाश उसके (emanations) विकिरणके कारण। यहाँ हम थोड़ा सा उन पदार्थोंके विषयमें भी आपको बतलायेंगे जो दिनमें प्रकाश सोख कर रात्रि-को छोड़ते हैं।

इस प्रकार चमकने वाले (Phosphorescent) पदार्थोंमें जस्तका गन्धाइत एकमहत्व पूर्ण समास है। यदि इसे सूर्य या विद्युत्के प्रबल प्रकाशमें खुला रखा जाय तो यह प्रकाशकी कासनी और उप-कासनी किरणोंको अपने अन्दर सोख लेता है। ये सोखी हुई किरणें फिर उससे देरतक निकलती रहती हैं। अन्धेरे-में वह पीले हरे रङ्गमें चमकता है।

जस्तका गन्धाइत (Tin sulphite) प्राकृतिक अवस्थामें स्फटिकोंके रूपमें प्राप्त होता है। कृत्रिम रूपसे इसके तैय्यार करनेके लिये जस्त गन्धाइत खटिक प्लविद् (Calcium Fluoride) और भारियम गन्धाइत (Barium sulphite) की बराबर राशि मिलाने चाहिये। कभी २ चमकको स्थिर करनेके लिए रेडियम-के लवण भी मिला दिये जाया करते हैं। ३० से १० प्र० श० तक श्वेत celluloid या कैनेडियन गोंद मिलाकर इसकी लेई सी बनाकर इसका लेप भी कर सकते हैं।

फ्राँसमें नर्तकियोंके शरीरपर इस प्रकारके मन-कों से सजे हुए कपड़े पहिनाये जाते हैं जिनपर कि यह मसाला लगा हो। नाचके समय एक दम रोशनी गुल कर दी जाती है तब नाचने वाली तो नहीं दीखती परन्तु उनका साज ही इधर उधर भटकता हुआ दीखता है। सुर्यकी उपकासनी किरणोंका चेहरेपर हानिकर प्रभाव होता है। उनसे चेहरेका रङ्ग खराब हो जाता है। उस हानिकारक प्रभावसे बचानेके लिये कभी २ गर्म देशोंमें इसका लेप मुँह तथा अन्य खुले भागोंपर लगाया जाता है। प्रो० हेनरीका यह भी कथन है कि इसकी इस शक्तिके कारण इसके लेपसे बिजलीके लैम्पोंके प्रकाशकी तीक्ष्णता बिना उनकी शक्तिको कम किये उत्पन्न की जा सकती है।

अब हम तीसरी प्रकारकी किरणोंको लेते हैं। हम जानते हैं कि साधारणतया तापके फैलनेके दो मुख्य साधन हैं। १ ठोसों में तापके फैलनेका साधन है वाहन (Conduction) और (२) द्रवोंमें फैलनेका साधन है चलन (Convection)। सूर्यका प्रकाश हमतक प्रति दिन आता है। क्या वह भी वहन और चलनके द्वारा ही आता है? नहीं, कभी नहीं। क्योंकि पृथ्वीपर ४० मीलसे ऊपर जाकर वायु भी नहीं है। इसलिये वहन या चलनकी तो कल्पना भी दूर है। जब हम भट्टीके पास बैठे होते हैं तब हमें गर्मी मालूम होती है। यदि हम बीचमें हाथ कर

लें या कोई अन्य व्यवधान रख दें तो फिर गर्मीका नाम भी नहीं मालूम होता। यदि गर्मी चलनके कारण आ रही होती तो वायुके द्वारा अब भी आ पहुँचती। परन्तु आती नहीं है। इसलिये ज्ञात हुआ कि कोई तीसरा ही साधन है जिसके द्वारा गर्मी हमतक पहुँचती है। इस साधनके द्वारा गर्मी सूर्यसे हमारे पास तक पहुँचती है। यह साधन है विकिरण Radiation। ये तीसरी प्रकारकी किरणें यही विकिरणके द्वारा आई तापकी किरणें होती हैं।

यदि ठीक २ विचार कर देखा जाये तो क्या हम यह कह सकते हैं कि साधारण ताप (sensible heat) और विकृत ताप (Radiant Heat) एक ही है। स्वाभाविक रूपसे हमारे दिलमें यह प्रश्न होता है कि क्या ये दोनों एक ही तापके रूप हैं ? क्या व दोनों ही हमारे हाथको उनके सम्पर्कमें आनेपर समान रूपसे गर्म नहीं करेंगे ? यह तो सच है कि मनुष्यको तापका अनुभव तो दोनोंसे होता है। परन्तु दोनोंमें बड़ा भेद है। हम अभी बता चुके हैं कि विकृत-ताप हमेशा सरल रेखाओंमें ही गति करता है। यही कारण है कि छाता लगानेसे गर्मी रुक जाती है और मुंहके सामने हाथकर लेनेसे फिर भट्टीके पास बैठे हुए गर्मी नहीं लगती। चलनके लिये सरल रेखामें गति होना आवश्यक नहीं। उसकी गतिकी दिशा विकिरणकी तरह चारों ओर नहीं होती बल्कि ऊपरकी ही ओर होती है। वहनके लिये भी सरल रेखाका होना आवश्यक नहीं। जिस प्रकार वहनके द्वारा सीधी लोहेकी छड़ गर्म होती है उसी प्रकार टेढ़ी मेढ़ी भी गर्म हो जाती है।

विकृत ताप बहुतसे अंशोंमें प्रकाशसे बिलकुल मिलता है। प्रकाशकी गति लगभग १८६४०० मील प्रति सेकण्ड है। सूर्य-ग्रहणके समय प्रकाश और तापकी किरणें एकदम ही रुक जाती हैं। यदि इनकी गतिमें भेद होता तो ये एक साथ न रुक कर आगे पीछे रुकतीं। अतः मालूम हुआ कि दोनों एक ही विशाल चालसे चल रही हैं। हम जानते हैं कि प्रकाशकी किरण अपने मार्गमें आती हुई नहीं दीखती। हमें उसका प्रत्यक्ष तभी होता है जब वह किसी वस्तु पर पड़ती है अर्थात उसका अपने गुजरनेके मार्ग के माध्यमपर कोई प्रभाव नहीं होता। इसी प्रकार विकिरण द्वारा आये तापका भी माध्यमपर असर नहीं होता। सूर्यसे आती हुई किरणें वायुको गर्म नहीं करतीं। इसके उलटे गर्म लाल गोलेके स्पर्शसे पासके वायुके कण गर्म हो जाते हैं इसलिये विकृत ताप और गोलेके उस तापमें, जिससे वायुके कण गर्म हो गये, बड़ा भेद है। यदि विकृत ताप साधारण तापके सदृश होता तो यह बिना माध्यमपर प्रभाव डाले उसमेंसे नहीं गुजर सकता था।

विकृत-तापको प्रकाशकी तरह ताल (Lens) मेंसे गुजार कर केन्द्रित (focus) कर सकते हैं। प्रकाशकी घनता-सम्बन्धी दूरीके व्यस्त अनुपातका नियम इस तापपर भली प्रकार घटता है। इसीलिये विकृत तापको तापकी किरण कहना अधिक उपयुक्त होगा।

हमने देखा कि सूर्यकी किरणोंका तीसरा भाग विकिरणके द्वारा आई तापकी किरणोंका है। विकिरणके द्वारा जो ताप आता है उसके आनेका साधन आकाशतत्व अर्थात् ईथर है। यह तत्व सर्वत्र व्याप्त है। सूर्य ईथर में भिन्न भिन्न प्रकारकी तरङ्गे उत्पन्न करता है। उन्हीं तरङ्गोंमें भेद होनेसे ताप, भिन्न २ प्रकारके रङ्गोंकी किरणें और रासायनिक किरणें पैदा होती हैं। तरङ्गोंके सिद्धान्तको समझने के लिये एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

एक तालाबमें एक पत्थर फेंकिये। उसमें तरङ्गे उठेंगी। तरंगोंके उठनेके समय जल ऊपर और नीचे होता हुआ दीख पड़ेगा। यदि जलपर कोई रबड़की गेंद तैर रही हो तो हम देखेंगे कि गेंद थोड़ासा हिल कर वहीं रह जाती है, आगे २ चलती नहीं जाती। इससे हमें पता लगा कि तरङ्गोंमें ठीक वही क्रिया होती है जो कि करोके नामक खेलमें। अर्थात् जहां हमने पत्थर फेंका वहांके जलके कण क्षुब्ध हुए। उन्होंने अपने चारों ओरके जलको क्षुब्ध किया और वहीं रह गये और उन कणोंने अपने पासके

कणोंको। इस प्रकार अपना स्थान परिवर्तित किये बिना तरङ्गें सारे जलाशयमें फैल गईं। चित्रमें १ तरंगको इस पकार दिखा सकते हैं:—

अस झीलकी पृष्ट है। उसमें अ बिन्दुपर पत्थर फेंका। अ बिन्दुसे लहर प्रारम्भ हुई। पहिले ५ तक ऊपर उठी, उठनेकी ऊँचाई है द ५। ५ से अब नीचेकी ओर झुकनी शुरू हुई। ब, बिन्दुपर होती म तक गहिरी गई। म, न गहराई कहाती है। तरंगकी ऊँचाई और गहराई समान होती है। इसीको तरङ्गान्तर कहते हैं। तरङ्गके एक बार उठने और नीचे जानेमें जितनी लम्बाई होती है वह तरंगकी लम्बाई कहाती है। यहाँपर अ स तरङ्गकी लम्बाई है अ ब तरंगकी लम्बाई नहीं है। बलिक वह लम्बाईका ठीक आधा भाग है अर्थात् अ ब ब स बराबर है।

जब किसी वस्तुको गर्म किया जाता है तो उसमें शक्ति (Eenergy) इकट्ठी होने लगती है। यह शक्ति अपने पासके ईथरमें हलचल पैदा करती है। सबसे पहिले सबसे लम्बी तरङ्गें उत्पन्न होती हैं जिनके कारण तापका अनुभव होता है। ज्यों २ और अधिक अधिक गर्म करते जाते हैं त्यों त्यों तरङ्गोंकी लम्बाई कम होती जाती है। तब हमें तापके बाद सबसे पूर्व वे किरणें मिलती हैं जिनके कारण गोला लाल दीखने लगता है अर्थात् जो लाल प्रकाश करती हैं। धीरे २ तापके बढ़नेके साथ २ तरंगोंकी लम्बाई छोटी होती जाती है और अन्तमें सब रंगोंके प्रकाशकी किरणें निकलने लगती हैं जिनके मिल जानेसे श्वेत प्रकाशका अनुभव होने लगता है। उस समय हमें पदार्थ श्वेत चमकता हुआ दीख पड़ता है। रासायनिक प्रभाव डालने वाली किरणोंकी लम्बाई कासनी रंगकी किरणोंकी तरङ्गकी लम्बाईसे भी छोटी होती है।

तरङ्गोंकी लम्बाई बहुत ही कम होती है। लाल किरणकी तरङ्गें १ इञ्च स्थानमें ३३००० होती हैं और कासनी रंगकी किरणके १ इञ्चमें ६४००० तरङ्गें होती हैं इन सब किरणोंकी गति समान होती है। अर्थात् १८६४०० मील प्रति सेकण्ड। इनमें भेद तरङ्गकी लम्बाईके ही कारण होता है। इनके तरङ्गान्तर भी भिन्न भिन्न होते हैं। कासनी रंगका तरङ्गान्तर ·००००१६ इञ्च अर्थात् $\frac{१६}{१००००००}$ इञ्च है और लाल रंग देने वाली तरङ्गका तरङ्गान्तर ·००००२४ इञ्च अर्थात् $\frac{२४}{१००००००}$ इञ्च होता है। जिन किरणोंका तरङ्गान्तर कासनी रंगके तरङ्गान्तरसे कम होता है वे उपकासनी अर्थात् रासायनिक (Actiuic) किरणें होती हैं। जिनका तरङ्गान्तर लाल किरणोंसे अधिक होता है वे किरणें ताप उत्पन्न करने वाली किरणें होती हैं। इस प्रकार हमने देखा कि तरङ्ग भेदके कारण सूर्यके प्रकाशके इतने भाग हो जाते हैं।

जिन पदार्थोंमेंसे प्रकाश पार निकल जाता है उन्हें पार-दर्शक कहते हैं। इसी प्रकार जिनसे विकृत ताप पार निकल जाता है उन्हें Diathermanous अर्थात् पार-तापक कहते हैं। वायुमण्डल अच्छा पार-तापक है परन्तु जल वाष्प नहीं। यह आवश्यक नहीं कि जो पदार्थ पार-दर्शक हैं वे पार-तापक भी हों। जल-वाष्प पारदर्शक हैं पर पार-तापक नहीं। इसी प्रकार फिटकरी और जल भी पार-दर्शक हैं पर पार-तापक नहीं। इनमेंसे ताप पार नहीं जा सकता। अतः वहीं रुक कर उन्हें गर्म कर देता है।

जल-वाष्प पार-तापक नहीं है। इसी लिये उन दिनोंमें जब जल-वाष्प वायुमण्डलमें कम होते हैं, जल-वाष्पसे पूर्ण वायु-मण्डलके दिनोंकी अपेक्षा अधिक ठण्डी होती है क्योंकि रातको पृथ्वीकी गर्मीको रोकने वाला जलवाष्प पर्याप्त मात्रामें उपस्थित

नहीं होता। यदि वायु-मण्डलमें जल-वाष्प बिल्कुल न रहे तो वैज्ञानिक मण्डलके कथनानुसार इतनी सर्दी पड़े कि सबके सब जम जायें।

यदि कर्बन द्विगन्धिद् (carbon disulfide) में नैल घोला जाये तो लाल काला घोल प्राप्त होगा। यह प्रकाशके लिये अपारदर्शक है पर इसमेंसे ताप-की किरणें साफ़ गुजर जाती हैं। यदि किसी तालमें यह घोल भर दिया जाय तो यह तापको केन्द्रित करनेके लिये उसी तरह काम आ सकता है जिस प्रकार कि प्रकाशको केन्द्रित करनेके लिये साधारण ताल।

आइये जरा साधरण शीशेको भी देखें। शीशा प्रकाशके लिये पारदर्शक है। पर इसमेंसे होकर भट्टी या लाल चमकते गर्म गोलेका ताप बाहर नहीं जा सकता। परन्तु यदि तापका स्रोत बहुत ऊँचे ताप परिमाणतक गर्म हो तो तापकी किरणें शीशे-के पार निकल कर उसके पीछे रखी वास्तुओंको गर्म कर देती हैं इसी लिए सूर्य्यके प्रकाशकी गर्मी कमरे-के अन्दर पहुँच जाती है परन्तु अन्दर जलती हुई अंगीठीकी गर्मी कमरेके बाहर नहीं निकलने पाती। यदि हम शीशे और उनके पासकी ही लकड़ीको छू कर देखें तो हमें पता लगेगा कि सूर्यकी गरमी पड़नेसे हमें काँचका स्पर्श कुछ अपेक्षाकृत ठण्डा प्रतीत होता है। विकिरणके द्वारा आई गरमी शीशोंमें-से गुजर गई परन्तु पास ही लगी लकड़ीमेंसे गुजर न सकी अतः उसको गरमीने गर्म कर दिया। इस प्रकार हमें पता लगा कि तापके स्रोतके भिन्न भिन्न होनेसे तापके प्रसरणके कई भेद हो जाते हैं।

बर्फ प्रकाशकी किरणोंको अपने अन्दरसे गुजर जाने देती है परन्तु तापकी किरणोंको नहीं। इसी लिए वह गर्मियोंमें अधिक तापके रुकनेके कारण पिघलने लगती है। लालरङ्गका शीशा अपने अन्दरसे लम्बी तरंगोंको गुजर जाने देता है परन्तु छोटी तरंगोंको वह अपने अन्दर ही सोख लेता है।

इस प्रकार हमने देखा कि सूर्यकी किरणोंके अनन्त भेद हैं। प्रकाशका ठण्डा या गर्म होना कोई अर्थ नहीं रखता। गरमीका प्रभाव त्वगिन्द्रियपर पड़ता है और प्रकाशका आँखोंपर।* जब प्रकाश-की किरणोंके साथ तापकी किरणें होती हैं, जैसा कि प्रायः हुआ करता है तब प्रकाश गर्म मालूम होता है। यदि तापकी किरणोंको किसी माध्यमसे रोका लिया जाये जैसे बर्फसे तो हमें प्रकाश न ठण्डा मालूम होगा न गर्म। प्रारम्भमें हमने दिखाया था कि "वस्तु-अविनाशी है के सिद्धान्त की तरह "शक्ति-अविनशी है का सिद्धान्त भी सर्व-सम्मत है। हम देखते हैं कि ताप, प्रकाश, विद्युत् और चुम्बक इत्यादि अनेक शक्तियां अवस्था नुसार एक दूसरेमें परिवर्तित होते रहते हैं। जब बादल गर्जते हैं उस समय विद्युत् प्रकाशके रूपमें दीख पड़ती है। चमक कभी रेखा और कभी चादरके रूपमें हुआ करती है। इन रेखाओंकी लम्बाई कभी कभी मीलके लगभग होती है। चमकके साथ शब्द भी होता है। भिन्न भिन्न स्थानोंसे भिन्न भिन्न समयोंमें शब्द हमारे पासतक पहुँचता है इसीलिए लम्बी चमक होनेपर घन गर्जन लगातार कुछ समयतक सुनाई पड़ता है। विद्युत्के लैम्पोंमें भी इसी प्रकार विद्युत् प्रकाशके रूपमें परिवर्तित होती हुई हम प्रति दिन देखते हैं। अभीतक प्रकाशका विद्युत् में परिवर्तन होना नहीं देखा गया था। अभी वाशिङ्ग-टन में Bureau of Staudrds में एक ऐसे स्फाटिक की परीक्षाकी गई है जिसपर प्रकाशकी किरण पड़नेसे विद्युत्की उपस्थिति स्पष्ट मालूम होती है। उसी ब्यूरोके डा० विलियमका कथन है कि जब Molybdenite एक कमयाब खनिज पदार्थको

---

* प्रकाशकी अपनी किरणें हैं और तापकी अपनी। प्रकाशकी तरङ्गोंकी लम्बाई और तापकी किरणोंकी और है। दोनों के तरंगान्तरमें भी भेद है। अतः ये दोनों भिन्न भिन्न हैं, इनमें विशेष्य विशेषणभाव सम्भव नहीं।

सूर्य, चन्द्रमा या तारोंके प्रकाशमें रखते हैं तब वह प्रकाशको विद्युत्‌के रूपमें परिवर्तित कर देता है। इसका प्रकाश कुछ खास तरंग लम्बाई वाली हीं प्रकाशकी किरणोंपर पड़ता है सब पर नहीं।

डा० कौबलेञ्ज (Dr Chelentz) का अनुमान है कि यह सम्भवतः उन्हीं किरणोंपर प्रभाव डालता है जो कि रक्तातीत अर्थात् infra Red के पास हैं।

यहां स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि "विद्युत् क्या है?" और प्रकाश क्या है?"

वैज्ञानिकों ने यह सिद्धान्त निकाला है कि लम्बी-से लम्बी रक्तातीत (infra Red) किरण और छोटी से छोटी विद्युत्‌की तरंग गुणोंमें आपसमें समान हैं विद्युत्‌की तरंगोंकी चाल भी वही है जो कि प्रकाशकी अर्थात् तरंगों की चालभी वही है जो कि प्रकाशकी, अर्थात् १८६०० मील। यदि सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश विद्युत्‌में परिवर्तित किया जा सका तब विद्युत् और प्रकाशमें अनेक समताओंका ज्ञान हो सकेगा जिनका कि हम अभी अनुमान भी नहीं कर सकते हैं। आजकल मनुष्यके दैनिक जीवनो में विद्युत्‌का बड़ा भारी स्थान है। यदि इस प्रकार आसानीसे किसी पदार्थसे प्रकाशको विद्युत्‌में बदलनेकी ऐसी पद्धति जान ली गई जिससे बड़े प्रैमानेपर विद्युत् उत्पन्न हो सकी तो वैज्ञानिक संसारमें एक नयाही युग आ जायेगा।

अमीचन्द्र विद्यालङ्कार

विभाजन (Distribution)

लाभ (Profits)

[ले० श्री विश्वप्रकाश विशारद]

नुष्यके सब प्रयत्न लाभ ही के लिये हुआ करते हैं। बिना लाभ हुये कोई मनुष्य कार्य्य नहीं कर सकता। एक छोटा सा खोंन्चा रखनेवाला भी यही आशा रखता है कि उसकी पूंजीके अतिरिक्त उसको कुछ लाभ मिल जायगा। किसान खेतको इसलिये जोतता है कि उसको जितना वह व्यय करेगा उससे अधिक मिल जायगा। बड़ी २ फैक्ट्रियोंका भी यही हाल है, वे इसलिये चलाई जाती हैं कि व्यवस्थापकको लाभ हो। व्यवस्थापक सदा यत्नशील रहता है कि अधिकसे अधिक उसको लाभ हो और ऐसा करनेके लिये अनुचित और उचित सभी उपायोंको काममें लाता है।

लाभ क्या है? जितना व्यय किया जाय उससे अधिक प्राप्तिका नाम ही लाभ है। मान लीलिये कि एक उद्योगमें १००) व्यय किये गये। यदि उसको १२५) आय हुई तो २५) लाभ हुआ। देखनेमें तो यह परिभाषा बहुत छोटी लगती है पर लाभका प्रश्न बड़ा विवादास्पद है और भिन्न २ अर्थशास्त्र विशेषज्ञोंको भिन्न २ सम्मतियाँ हैं।

व्यवस्थापकका सम्बन्ध लाभसे बहुत अधिक है और वास्तवमें लाभ व्यवस्थापकको ही मिलता है। इसलिये व्यवस्थापकके कार्य्योंको भली प्रकार समझ लेना चाहिये। व्यवस्थापकका एक कार्य्य निगरानी और प्रबन्ध करना है, दूसरा जोखमका उठाना है।

पहले कार्य्यके अन्तर सारे उद्योगकी निगरानी और प्रबन्ध करना उसका काम है। इस कार्य्यके

करनेमें बड़ी निपुणताकी आवश्यकता है। व्यवस्थापकका उद्योग एक ऐसे स्थानपर आरम्भ करना पड़ता है जहाँ कि किसी वस्तुकी मांग हो। ऐसे स्थानपर जहाँ कि मांग न हो किसी वस्तुका उत्पादन करना कोई योग्यता नहीं है। मांगको जाननेके लिये भौगिलिक स्थिति और रीतिरिवाज़ोंकी आवश्यकता होती है। रीतिरिवाजोंके अध्ययन करनेसे यह पता चल जाता है कि किस स्थानपर किस वस्तु की और कैसी वस्तुकी अधिक आवश्यकता होगी। एक टोपीका दृष्टान्त ले लीजिये। बंगाल देशमें टोपी पहननेका रिवाज नहीं है। वहाँपर टोपीका कारखाना खोलनेमें किसी प्रकारका लाभ न होगा। संयुक्त-प्रान्तमें टोपी अवश्य पहनी जाती है। पर संयुक्त प्रान्तकी टोपी और टोपियां जो महाराष्ट्रमें पहनी जाती हैं उनमें बड़ा ही अन्तर है। इसलिये इस बातका ज्ञान हो जाना बहुत आवश्यक है कि किस स्थानमें कैसी वस्तुकी मांग है। इसके बाद उस पदार्थका प्रबन्ध करना पड़ता है जिसका उद्योग होना है। सूती कपड़े बुननेके रुईकी आवश्यकता होगी। कारखाना ऐसे स्थानपर खोलना चाहिये जहाँपर रुई आसानीसे और सस्ती मिल सके। यदि कारखाना रुईकी पैदावारसे बहुत दूर होगा तो उसके कारखाने तक ले जानेमें बहुत व्यय होगा। इन वस्तुओंका प्रबन्ध करना कोई आसान काम नहीं है। क्योंकि कोई वस्तु किसी स्थानपर सस्ती मिलैगी और कोई किसी स्थानपर, इसलिये उन स्थानोंका ज्ञान होना आवश्यक है। तीसरा प्रबन्ध श्रमका करना है। श्रमके अन्तरगत मशीनरी आजाती है। नई और अधिक काम करनेवाली मशीनोंका ज्ञान व्यवस्थापकको होना चाहिये। अच्छे व्यवस्थापक अच्छी मशीनोंसे ही काम करते हैं क्योंकि उससे कार्य्य अधिक हो सकता है। मज़दूरोंको रखना और उनसे काम लेना भी व्यवस्थापकका काम है। मज़दूरोंके मिलनेमें बहुत सी कठिनाइयां हुआ करती हैं और उनको अपने यहाँ रखने के लिये बड़ी चतुरतासे काम लेना होता है। व्यवस्थापक इन तीनोंका प्रबन्ध करता है। वास्तवमें देखा जाय तो व्यवस्थापक भी एक प्रकारका मज़दूर ही है। उसके श्रमके लिये उसे मज़दूरी मिलनी चाहिये। बहुतसे स्थानोंपर यह कार्य्य करनेके लिये मैनेजर इत्यादि रख लिये जाते हैं। इसलिये जो वेतन प्रबन्ध करनेके लिये मिलता है वह लाभ नहीं, वह तो उसकी मज़दूरी है।

प्रबन्ध करनेके अतिरिक्त व्यवस्थापकका दूसरा काम जोखम उठाना है। व्यवस्थापक, कोई भी उद्योग क्यों न हो, बहुत सी पूंजी लगाता है। किसी भी उद्योगके सफल होनेकी पूर्ण आशायें नहीं होती, उद्योगमें सभी कार्य्य आशापर निर्भर रहता है। यदि उद्योग अच्छी तरह चलने लगा, यदि उसमें अधिक लाभ होने लगा तो व्यवस्थापक मालामाल हो जायेगा। पर यह जोखम कौन उठावे। भारतवर्षमें धनी पुरुष बहुतसे हैं और योग्य व्यवस्थापक भी बहुतसे मिल जाते हैं। जो धनी है वह उद्योगको इसलिये आरम्भ नहीं करता कि इसमें जोखम है कहीं उसका रुपया डूब न जाय। इसलिये वह कम लाभपर ही सन्तुष्ट हो जाता है और अपने रुपयेको उस काममें लगाता है जिसमें सबसे कम जोखम हो चाहे उसमें कोई लाभ हो या न हो। यह तो धनी पुरुषोंकी बात। जो योग्य व्यवस्थापक हैं उनके पास इतनी पूंजी नहीं कि वे किसी उद्योगको आरम्भ कर सकें। जब वे किसी महाजन या बङ्कके पास जाते हैं कि हमको इतना रुपया दे दो जिससे हम यह उद्योग आरम्भ कर सकें, वे कहते हैं कि हमें तुम्हारा विश्वास नहीं। व्यवस्थापक प्रायः दो काम करते हैं कि (१) जो धन उनके पास है उसको उद्योगमें लगा दें और (२) कुछ धन व्याजपर लें। दोनोंमें ही जोखम है। यदि उद्योग सफल न हुआ तो जो कुछ उनके पास है उसको भी वह खो बैठेंगे और दूसरा धनजो उन्होंने ब्याजपर लिया है उसके न देने से उनका घरबार या जो कुछ ज़मींदारी होगी वह भी चली जायगी इसी जोखमके कारण उनको कुछ

अधिक आय होनी चाहिये। जो पूंजी उन्होंने स्वयं लगाई है उसपर उनको ब्याज मिलेगा ही और यह ब्याज लाभ नहीं माना जाता। लाभ तो वही है जो कि उनको जोखमके उठानेके कारण मिले

इसके अतिरिक्त व्यवस्थापकोंमें एक और गुण होता है जिसको साधारण भाषामें मोल भाव कहते हैं। बाज़ारमें यदि आप कोई वस्तु खरीदने जाइये तो आपको दो प्रकारके मनुष्य मिलेंगे। एक-वे जो सीधे साधे जो मूल्य मांगा गया वह देकर चले आये और दूसरे वे जो कि एक पैसे २ पर झगड़ते हैं। दूसरी तरहके मनुष्य प्रायः अपने इस गुणके कारण चीज़ें कम मूल्य पर खरीद लेते हैं। यही दशा व्यवस्थापकोंकी भी होती है। वे अधिक लाभ उठानेके लिये मोल भाव करते हैं और इस प्रकार ठग लेते हैं। व्यवस्थापक दो आदमियोंको ठग सकते हैं (१) भूमि, श्रम, पूंजीके मालिकोंको (२) अपने ग्राहकोंको जो उनको वस्तु खरीदते हैं।

अब यह बतलाया जायगा कि व्यवस्थापक किस प्रकार ठगते हैं। एक बात तो सिद्ध है कि व्यवस्थापकोंका ज्ञान अन्य लोगोंसे अधिक होता है। कभी कभी वह झूठ बातें उड़ाकर ठग लेते हैं। जैसे कि ब्याजका भाव आज गिर गया, मजदूर उस स्थान कम मजदूरी पा रहे हैं। यदि भाव बढ़ जाते हैं तो वे इस बातकी कोशिश करते हैं कि ये बातें छिपी रहें जिसमें उनको अधिक न देना पड़े। व्यवस्थापक मजदूरीका भाव तो जितना गिरा सकते हैं उतना गिरा देते। जिस स्थानपर मजदूर आसानीसे मिल जाते हैं उन स्थानोंपर भाव बहुत जल्दी गिर जाता है। यदि एक सन्तुष्ट नहीं तो दूसरा मजदूर कम मजदूरीपर रख लिया जाता है। मजदूरोंमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वे बहुत दिनों तक बिना मजदूरीके रह सकें। इसलिये कम मजदूरीपर काम करना स्वीकार कर लेते हैं।

गाहकोंके ठगनेके दूसरे उपाय हैं। गाहक इतने बुद्धिमान नहीं होते कि चीज़ोंकी खराबीको जान सकें। वे तो ऊपरसे देख सकते हैं कि वस्तु सुन्दर और मजबूत बनी हुई है। व्यवस्थापक कभी कभी घटिया माल लगा देते हैं जिससे कि उनको बहुत लाभ हो जाता है। इस तरहसे व्यवस्थापक खराब मालका उपयोग करके बहुत लाभ उठाते हैं।

प्रत्येक उत्पादनकर्त्ताका लाभ समान नहीं होता। एक ऐसी अवस्था अवश्य ही आती है जब कि व्यय और आयमें कोई अन्तर नहीं होता। यह अवस्था अन्तिम उत्पादन कर्त्ता (marginal Produced) की होती है। इसमें व्यवस्थापकको कोई लाभ नहीं मिलता। परन्तु वह कार्य इसलिये चलाता जाता है कि उसके श्रमकी मजदूरी उसे मिलती जाती है। इसके अतिरिक्त जितने उत्पादन कर्त्ता होंगे वे अधिकसे अधिक लाभ उठाते जायगे।

अबतक तो साधारणतया जैसा व्यापारमें होता है उसी की बात कही गई है। एक ऐसी अवस्था होती है जब कि एक पुरुषको यह अधिकार दे दिया जाता है कि वही एक वस्तुका उत्पादन करे और बेचे। ऐसी अवस्थामें वह जितना चाहे लाभ उठा सकता है क्योंकि कोई दूसरा उत्पादनकर्त्ता क्षेत्रमें नही है। इसको मनोपोली लाभ (monopoly) कहते हैं। भारतवर्षमें सरकारने नमक, अफीम आदिका सब अधिकार स्वयं रखलिया है। और बहुत सा लाभ सरकारको इससे होता है।

सर्व सिद्धान्त संग्रह

गतांक से आगे

[ले० श्री गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय, एम. ए.]

काम भोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्त स्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गतः ॥५२॥

वे द्विज क्षत्रिय हैं जो काम और भोगमें रत हैं, तीक्ष्ण और क्रोधी हैं, जिनको साहसके काम प्रिय हैं जिन्होंने अपना धर्म त्याग दिया है ? और जिनका रंग लाल है । ५२ ।

गोषु वृत्तिं समाधाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
न स्वकर्म करिष्यन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः । ५३ ॥

वह द्विज वैश्य हैं जो गौ चराकर जीविका कमाते हैं, जिनका रंग पीला है और जो खेती करते हैं और जो अपना कर्म नहीं करते । ५३ ।

हिंसानृत प्रियाः क्षुद्रास्सर्व कर्मोपजीविनः ।
कृष्णाश्शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाश्शूद्रतां गताः ॥५४॥

वे द्विज शूद्र हैं जिनको हिंसा और झूठ प्रिय है जो क्षुद्र हैं और सब काम करके जीविका कमाते हैं, जिनका रंग काला है और जो शुद्धिके नियमोंसे गिरे हुये हैं । ५४ ।

समयाचार निश्शेष कृत्य भेदैर्विमोहयन् ।
मोक्षदो विष्णुरेव स्याद् देव दैते यरक्षसाम् ॥ ५५॥ ॥

समय समयके आचार और भिन्न २ कामोंके विभागसे देव, दैत्य और राक्षसोंको मुग्ध करनेवाला विष्णुही सबको मोक्षका देनेवाला है । ५५ ।

चतुर्भिर्जन्मभिर्मुक्तिर्द्वेषेण भजतस्तव ।
भवेदिति वरो दत्तः पुण्डरीकाय विष्णुना ॥ ५५ ॥

विष्णुने पुण्डरीकको यह वरदिया कि तुम्हारी मुक्ति चार जन्ममें होगी क्योंकि तुमने द्वेषके द्वारा मेरी भक्ति की है । ५६ ।

रजस्सत्व तमो मार्गैस्तदात्मानस्स्वकर्मभिः ।
प्राप्यते विष्णुरेवैको देव दैत्य निशाचरैः ॥ ५७ ॥

रजोगुणी, सतो गुणी और तमोगुणी कर्मोंके अनुकूलही मनुष्योंकी प्रकृति बनती है और दैव, दैत्य तथा निशाचर उन्हींके अनुकूल विष्णुको प्राप्त होते हैं । ५७ ।

ब्रह्म विष्णु हराख्याभिः सृष्टि स्थितिलयानपि ।
हरिरेव करोत्येको रजस्सत्व तमोवशात् ॥ ५८ ॥

सतो गुण, रजोगुण और तमोगुणके वशमें होकर ही ईश्वर विष्णु ब्रह्मा, और शिवके रूपमें संसारको उत्पत्ति, पालन और नाश करता है । ५८ ।

सात्विकास्त्रि दशा स्सर्वे त्वसुरा राजसा मताः ।
तामसा राक्षसाश्शील प्रकृत्याकृति वर्णतः ॥ ५९ ॥

सब देव सात्विक हैं, असुर राजसी हैं और राक्षस तामसी हैं शील, प्रकृति और वर्णके अनुसार । ५६ ।

धर्मस्सुराणां पक्षस्स्यादधर्मो ऽसुररक्षसाम् ।
पिशाचादेरधर्मस्स्यादेषां लक्ष्मरजस्तमः ॥ ६० ॥

देवोंका पक्ष धर्मकी ओर है, असुर और राक्षसोंका अधर्मकी ओर । पिशाच आदिका अधर्मकी ओर । इनका लक्षण रज और तम है । ६० ।

ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात् ।
आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥६१ ॥

ईश्वरसे ज्ञानकी इच्छा करे । अग्निसे धनकी, सूर्यसे आरोग्यकी और कृष्णसे मोक्षकी । ६१ ।

यस्मिन्यपक्षे तु यो जातः सुरो वाप्यसुरोपिवा ॥
स्वधर्म एव तस्य स्यादधर्मेऽप्यत्र धर्मवित् ॥ ६२ ॥

जिस पक्षमें जो पैदा हुआ है चाहे सुर हो या असुर, उसी धर्मका उसको स्वीकार करना चाहिये चाहे वह धर्म अन्य स्थान पर अधर्म ही क्यों न हो । ६२ ।

वेद त्रयोक्ता ये धर्मास्तेऽनुष्ठे यास्तु सात्त्विकैः ॥
अधर्मोऽथर्व वेदोक्तो राजसैस्तामसैः श्रितः ॥ ६३ ॥

सतो गुणी लोगोंको उसधर्मका पालनकरना चाहिये जो तीनों वेदोंमें कहा है । राजसी और तामसी लोगोंको अथर्व वेदमें बताये अधर्मका पालन करना चाहिये । ६३ ।

विष्णुक्रमण पर्यन्तो यागोऽस्माकं यथा तथा ॥
राजसैस्तामसैर्ब्रह्म रुद्राविज्यौ तु तद्गुणौः । ४ ।

जैसे हमारे सब यज्ञोंका उद्देश विष्णु प्राप्ति है इसी प्रकार राजसी और तामसी पुरुषोंको ब्रह्मा और शिव की पूजा करनी चाहिये क्योंकि उनके वही गुण हैं । ६४ ।

निज धर्म यथा यातानतुगृहणात्यसौ हरिः ।
मुच्यते निज धर्मेण परधर्मो भयावहः ॥ ६५॥

ईश्वर उन्हींपर अनुग्रह करता है जो अपने धर्मपर चलते हैं । अपनेही धर्मसे मोक्ष होतो है । पराये धर्मसे भय होता है । ६५ ।

एक एव परो विष्णुः सुरा सुरनिशाचरान् ।
त्रिगुणानुगुणं नित्य मनुगृहणाति लीलया ॥ ६६ ॥

एक और महान् विष्णुही देव, असुर, राक्षसों पर अपनी लीलासे सत् रज और तमोगुणके अनुकूल नित्य अनुग्रह करता है । ६६ ।

इति श्री मच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रहे वेदव्यासोक्तभारतपक्षो नामैकादश प्रकरणम् ।

अब श्री शङ्कराचार्य कृत सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रहका वेद व्यास का कहा हुआ भारतपक्ष नामी ११वां प्रकरण समाप्त हुआ ।

बारहवां अध्याय ।

अथ वेदान्त पक्षः ।

वेदान्तशास्त्र सिद्धान्तः संक्षेपादथ कथ्यते।
तदर्थं प्रवणाः प्रायाः सिद्धान्ताः परवादिनाम् ॥ १ ॥

अब वेदान्त शास्त्रके सिद्धान्त संक्षेप से कहे जाते हैं । अन्य शास्त्रोंके सिद्धान्त भी प्रायः वेदान्त को ही सिद्ध करते हैं ॥१॥

ब्रह्मार्पणकृतैः पुण्यै र्ब्रह्मज्ञानाधिकारिभिः ।
तत्त्वमस्यादि वाक्यार्थो ब्रह्मजिज्ञास्यते बुधैः ।२।

जिन बुद्धिमानों ने अपने सब सुकर्म ब्रह्मके अर्पण कर रक्खे हैं और जिनको ब्रह्म ज्ञानका अधिकार है उनको चाहिये कि 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंके बोधक ब्रह्मकी जिज्ञासा करें ।

नित्यानित्य विवेकित्व मिहामुत्रफलास्पृहा ।
शमो दमो मुमुक्षुत्वं यस्य तस्याधिकारिता ॥ ३ ॥

उसीको ब्रह्मकी जिज्ञासाका अधिकार है जो नित्य और अनित्यके भेदको जानता है जिसको सांसारिक और पारलौकिक फलकी इच्छा नहीं है । जिसमें शम और दम है और जिसे मोक्षकी इच्छा है ॥३॥

तत्त्वमस्येव नान्यस्तं तच्छब्दार्थ परमेश्वरः ।
त्वं शब्दार्थः पुरोवर्त्ती तिर्यङ् मर्त्यादिकोऽपरः ।४॥

"तू वही है दूसरा नहीं।" तत् (वही) का अर्थ है परमेश्वर तू' का अर्थ है सामने वाला, जानवर, मनुष्य या कोई और ॥४॥

तादात्म्यमसि शब्दार्थो ज्ञेयस्तत्त्र पदार्थयोः ।
सोऽयं पुरुषः इत्यादि वाक्ये तादात्म्यवन्मतः ।५।

'तत्' और 'त्वं' इन दो शब्दोंकी एकता दिखानेके लिये 'असि' शब्द आया है । यह उसी प्रकार है जैसे "यह वह मनुष्य है" यहाँ 'वह' और 'मनुष्य' की एकता दर्शाई गई है ॥५॥

स्यान्मतं तत्त्व मस्यादि वाक्यं सिद्धार्थ बोधनात् ।
कथं प्रवर्तकं पुंसां विधिरेव प्रवर्त्तकः ॥ ६ ॥

अच्छा यह मान लो । परन्तु 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य सिद्ध अर्थका बोध कराते हैं । इससे मनुष्यों की किसी कार्यके करनेमें प्रवृत्ति नहीं होती । प्रवृत्ति तो तभी होगी जब कोई विधि वाक्य कहा जायगा । अर्थात् 'तुम अमुक कार्य्य को करो' ॥६॥

आत्मा ज्ञातव्य इत्यादि विधिभिः प्रतिपादिताः ।
यजमानाः प्रशस्यन्ते तत्त्ववादैरिहारुणैः ॥ ७ ॥

'आत्मा जाननेके योग्य है' इत्यादि विधि वाक्योंमें जिन यजमानोंका प्रतिपादन किया गया है उनकी तत्त्ववादी अरुणों द्वारा प्रशंसाकी गई है ॥७॥

बुद्धीन्द्रिय शरीरेभ्यो भिन्न आत्मा विभुर्ध्रुवः ।
नानाभूतः प्रतिक्षेत्रमर्थ वित्तिषु भासते ॥ ८ ॥

आत्मा बुद्धि इन्द्रिय तथा शरीरोंसे भिन्न विभु और एकरस है । परन्तु वह हर क्षेत्रमें अलग २

दिखाई पड़नेके कारण कई प्रकारका दिखाई पड़ता है ॥८॥

व्यर्थोतो ब्रह्मजिज्ञासा वाक्यस्यान्य परत्वतः।
अत्र ब्रूमस्समाधानं न लिङेव प्रवर्तकः ॥ ९ ॥

इसलिये ब्रह्म जिज्ञासा व्यर्थ है क्योंकि यह वाक्य विधिका सूचक नहीं है। इस आक्षेपका हम यह उत्तर देते हैं कि कर्ममें प्रवृत्ति कराने वाले केवल विधि लिङ् रूप वाले वाक्य ही नहीं होते। किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य भी होते हैं। ९॥

इष्ट साधनता ज्ञानादपि लोकः प्रवर्त्तते ।
पुत्रस्ते जात इत्यादौ विधि रूपो न तादृशः ॥ १० ॥

मनुष्य किसी काममें उस समय भी प्रवृत होता है जब उसे यह मालूम हो जाय कि अमुक वस्तु अमुक बातका साधन है। जैसे किसीसे कहेंकि 'तुम्हारे लड़का उत्पन्न हुआ है' तो यद्यपि यह वाक्य विधि लिङमें नहीं है तो भी इसको सुनकर मनुष्य हर्षके कामोंमें प्रवृत्त हो जाता है ॥१०॥

आत्मा ज्ञातव्य इत्यादि विधयस्त्वारुणे स्थितः।
बोधं विदधते ब्रह्मण्य ज्ञानाद्भ्रान्त चेतसाम्। ११।

अरुण आदिमें जो इस प्रकारके विधि वाक्य हैं कि आत्मा जानना चाहिये। इनसे अविद्यामें फंसे हुये लोगोंके लिये ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्तिमें प्रवृति होते हैं ॥११॥

स्यादेतत् कम्य कर्माणि प्रतिषिद्धानि वर्जयन्।
विहितं कर्म कुर्वाणः शुद्धान्तः करणः पुमान् ॥१२॥
स्वयमेव भवेज्ज्ञानी गुरुवाक्यानपेक्षया ।
तदयुक्तं न विज्ञानं कर्मभिः केवलैर्भवेत् ॥१३॥

(इस पर आक्षेप करते हैं)—हो। परन्तु की इच्छासे कर्म न करता हुआ और वर्जित कर्मों को छोड़ता हुआ तथा विहित कर्मोंको करता हुआ मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर स्वयं ज्ञानी होजाता है। उसको गुरु वाक्यकी आवश्यकता नहीं होती।

इस आक्षेपका उत्तर देते हैं:—नहीं। यह ठीक नहीं। केवल कर्मोंसे विज्ञान उत्पन्न नहीं होता १२ १३॥

गुरु प्रसादजन्यं हि ज्ञानमित्युक्तमारुणैः ।
प्रत्यक् प्रवणतां बुद्धेः कर्माण्युत्पाद्य शक्तितः ॥१४॥
कृतार्थान्यस्त मयान्ति प्रावृडन्ते घना इव।
प्रत्यक् प्रवण बुद्धेस्तु ब्रह्मज्ञानाधिकारिणः ॥१५॥
स्यादेव ब्रह्मजिज्ञासा तत्त्वमस्यादिभिर्गुरोः ।
तत्वमस्यादि वाक्यौघो व्याख्यातोहि पुनः पुनः ।१६।

अरुण आदिमें जिस ज्ञानके विषयमें कहा गया है वह गुरुके ही प्रसादसे उत्पन्न होता है। कर्म अपनी शक्तिसे बुद्धिमें एक प्रकारकी योग्यता उत्पन्न कर देते हैं। और अपना यह काम पूरा करके बरसातके बादलोंके समान चले जाते हैं। जो ब्रह्म ज्ञानके अधिकारी हैं और जिनकी बुद्धि योग्य है उनमें गुरु द्वारा उपदेश किये हुये 'तत्त्वमसि' आदिसे ब्रह्मके जाननेकी इच्छा उत्पन्न होती है। 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंकी कई बार व्याख्या की जाचुकी है। १४, १५, १६

गुर्वनुग्रह हीनस्य नात्मा सम्यक् प्रकाशते।
आत्मा विद्यानिमित्तोत्थः प्रपञ्चः पाञ्चभौतिकः॥१७॥

जिसपर गुरुकी कृपा नहीं उसको आत्माका प्रकाश नहीं होता। पांच भूतोंसे बना हुआ जगत् आत्मामें अविद्या निमित्तसे उत्पन्न होता है ॥१७।

निवर्तते यथा तुच्छं शरीर भुवनात्मकम् ।
तथा ब्रह्म विवर्त्तन्तु विज्ञेयमखिलं जगत् ॥ १८ ॥

समस्त जगत्को ब्रह्मका विवर्त अर्थात् मिथ्या रूप मानना चाहिये जिससे शरीर और संसार रूपी तुच्छता पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर नष्ट होजाय ॥१८॥

वेदान्तोक्तात्म विज्ञान विपरीतमतिस्तु या ॥
आत्मन्य विद्या सानादिः स्थूल सूक्ष्मात्मनास्थिता ।१९।

आत्माके विषयमें अविद्या वेदान्तमें कहे हुये विज्ञानसे विरुद्ध है। यह अनादि है और दो प्रकार कीहै अर्थात् स्थूल और सूक्ष्म ॥१९॥

आत्मनः खं ततो वायुर्वायोरग्निस्ततो जलम्।
जलात् पृथिव्यभूद् भूमेर्व्रीह्याद्योषधयोऽभवन्। २०।

आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे चांवल आदि ओषधियां उत्पन्न हुई। २०।

ओषधिभ्योऽन्नमन्नात्तु पुरुषः पञ्चकोशवान्।
अपञ्चो कृततन्मात्रः सूक्ष्म भूतात्मको जनः ॥२१॥
स्थूला भवति तद् भेदस्तिर्यङ् नरसुरात्मकः।
धर्माधिक्येषु देवत्वं तिर्यक्त्व स्यादधर्मतः ॥२२॥
तयोस्साम्ये मनुष्यत्वमिति त्रेधा तु कर्मभिः।
त्वगसृङ् मांस मेदोऽस्थिमज्जा शुक्लानि धातवः ॥२३॥
सप्तान्न परिणामाः स्युः पुंस्त्रीत्व मपि न स्वतः।
शुक्लाधिक्ये पुमान् गर्भे रक्ताधिक्ये वधूस्तथा ॥ २४ ॥
नपुंसकं तयोस्साम्ये मातु स्सञ्जायते सदा।
मज्जास्थि स्नायवश्शुक्लाद्रक्ता त्वङ् मांसशोणिताः ॥ २५।
षट्कोशाख्यं भवेदेतत्पितुर्मातुस्त्रयन्त्रयम्।
बुभुक्षा च पिपासा च शोकमोहौ जरामृती ॥२६॥
षडूर्मय प्राणबुद्धि देहेषु स्याद् द्वयन्द्वयम् ॥
आत्मत्वेन भ्रमन्त्यत्र वादिनः कोश पञ्चके ॥ २७ ॥

ओषधियोंसे अन्न और अन्नसे पांच कोषों वाला पुरुष उत्पन्न हुआ। सूक्ष्म भूतोंसे बना हुआ पुरुष जिसकी तन्मात्रायें अभी विकसित नहीं हुई थोड़े दिनोंमें स्थूल हो जाता है। इसके तीन भेद हैं। पशु, नर और देव। धर्मके आधिक्यसे देव होता है और अधर्मसे पशु। धर्म और अधर्मको समानतासे मनुष्य। इस प्रकार कर्मों द्वारा तीन प्रकार हुये। खाल, रुधिर, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और वीर्य, यह सात अन्नके परिणाम हैं। पुंसत्व और स्त्रीत्व स्वयंही नहीं होते। गर्भमें वीर्यकी प्रधानतासे लड़का होता है और रजकी प्रधानतासे लड़की। रज और वीर्यकी तुल्यतासे नपुंसक सन्तान होती है। मज्जा, हड्डी, और नसें पिताके वीर्यसे बनती हैं। खाल, मांस और रुधिर माताके रजसे यह छः कोश हुये तीन पिताके वीर्य्यसे और तीन माताके रजसे। भूख, प्यास, शोक, मोह, बुढ़ापा और मौत यह छः लहरें हैं पहलो दो प्राणोंमें, बीचकी दो बुद्धिमें और अन्तकी दो शरीरमें। बहुतसे दार्शनिक लोग भ्रमसे इन्हीं पांच कोशोंको आत्मा समझलेते हैं। २१-२७।

अन्नप्राण मनोज्ञानमयाः कोशास्तथात्मनः।
आनन्दमयकोशश्च पंचकोशा इतीरिताः ॥ २८ ॥

आत्माके यह पांच कोश माने गये हैं:—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, ज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश। २८।

मयड् विकारे विहित इत्यानन्दमयोऽभ्यसन्।
गृह्णात्यन्नमयात्मानं देहं लोकायतः खलु ॥ २९ ॥

मयट् प्रत्यय विकार अर्थमें आता है। इसी अर्थमें आनन्दमय कई बार शास्त्रोंमें प्रयुक्त हुआ है। लोकायत (चारवाक) मत वाले अन्न मय देहकोही आत्मा समझते हैं। २९।

देहैः परिमितं प्राणमयमार्हता विदुः।
विज्ञानमयमात्मानं बौद्धाः गृह्णन्ति नापरम् ॥ ३० ॥

जैन लोग मानते हैं कि देहसे परिमित प्राणमय कोशही आत्मा है। बौद्ध लोग कहते हैं कि विज्ञान मय कोशही आत्मा है अन्य नहीं।

आनन्दमयमात्मानं वैदिकाः केचिदूचिरे।
अहङ्कारात्मवादी तु प्राह प्रायो मनोमयम् ॥ ३१ ॥

कुछ वैदिक धर्म माननेवाले आनन्द मय को आत्मा मानते हैं। अहङ्कारात्मवादी मनोमय कोश को आत्मा मानते हैं। ३१।

कर्तृत्वादिभिरस्पृष्टो ग्राह्य आत्मात्मविन्मते।
कर्तृत्वं कर्मकाण्डस्थैर्देवताकाण्डमाश्रितैः ॥ ३२ ॥
अवश्याश्रयणीयं हि नान्यथा कर्म सिध्यति।
वसन्ते ब्राह्मणोऽत्राग्नीनादधीतेति वै विधौ ॥ ३३ ॥
देहोवात्मविशिष्टो वा कोऽधिकारी तु कर्मणि।
अचेतनत्वाद् देहस्य स्वर्गकामाद्यसम्भवात् ॥ ३४ ॥
न जाघटीति कर्तृत्वं नाशित्वात्तत्रकर्मणि।
आत्मनो ब्राह्मणत्वादि जातिरेव न विद्यते ॥ ३५ ॥
जाति वर्णाश्रमावस्था विकारेभ्योऽपि सोऽपरः।
विशिष्टो नापरः कश्चिद्विद्यते देह देहिनो ॥ ३६ ॥

जो आत्माको सचमुच जानते हैं वह मानते हैं कि आत्मा कर्त्तृत्व आदि गुणोंसे सर्वथा अलग है आत्माका कर्तृत्व केवल कर्मकाण्डी या देहाभिमानी मानते हैं। क्योंकि ऐसा न माननेसे उनका कर्म सिद्ध नहीं होता। 'वसन्तमें ब्राह्मण अग्निको जलावे' इस विधि वाक्यमें ब्राह्मणका क्या अर्थ है' शरीर या शरीर विशिष्ट आत्मा? कर्मका अधिकारी कौन है? चूंकि देह अचेतन है इसलिये उसको तो स्वर्गकी इच्छा होही नहीं सकती। और चूँकि देह नाशवान है इसलिये उसमें कर्त्तृत्व भी नहीं घटता। जाति, वर्ण, आश्रम, अवस्था आदि विकारोंसे जो परे है। देह और देही तथा इनके विशिष्ट सम्बन्धको छोड़कर अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। ३२-३६।

अतः काल्पनिकः कर्ता विज्ञेयस्तत्र कर्मणि।
नेति नेत्युच्यमाने तु पञ्चकोशे क्रमेण यः॥ ३७॥
भासते तत्परं ब्रह्म स्यादविद्या ततोऽन्यथा।
आत्मस्वरूपमाच्छाद्य विक्षेपान् सा करोत्यलम्॥३८॥

इसलिये उस कर्मका कर्ता काल्पनिक समझना होगा। इन पांच कोशोंको क्रमसे "यह नहीं, यह नहीं" करके हटानेके पश्चात् जो रह जाता है वही ब्रह्म है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह अविद्या है। वह अविद्या आत्माके स्वरूपको ढक लेती है और अनेक विक्षेपोंका कारण होती है। ३७। ३८।

अहङ्काराख्य विक्षेपः कामात् कर्म फलस्सदा।
मूलभूतोऽखिल भ्रान्तेर्विभ्राणो दुःख सङ्गतिम्॥३९॥
व्यवहारान् करोत्युच्चैः सर्वान् लौकिक वैदिकान्।
मातृमान प्रमेयादि भिन्नान् सर्वस्य सत्यवत्॥ ४०॥

अलङ्कार नामी विक्षेप फलकी इच्छासे किये हुये कर्मोंसे उत्पन्न होता है। यही सब भ्रान्तियों की जड़ है। और इसीसे दुःख होता है। इसीसे वैदिक और लौकिक सब व्यवहार उत्पन्न होते हैं जिनमें जाननेवाला, जानना, जाननेके योग्य वस्तु इन सबका भेद सच सा दिखाई पड़ता है। वस्तुतः इनमें भेद है नहीं। ३९। ४०।

निष्क्रियस्य त्वसङ्गस्य चिन्मात्रस्यात्मनः खलु।
स्वतो न व्यवहारोऽयं सम्भवत्यनपेक्षिणः॥ ४१॥

वस्तुतः आत्मा क्रिया रहित सङ्ग रहित, और चेतनता मात्र है। अतः बिना किसी की अपेक्षाके आत्मामें स्वयं ऊपर कहा हुआ व्यवहार नहीं हो सकता। ४१।

जडश्चेतेतयहङ्कारश्चैतन्याध्यासवान् ध्रुवम्।
अन्यवस्त्वन्तराध्यासादात्मान्यत्वेन भासते॥ ४२॥

जड़ अहङ्कार पर दूसरी वस्तुका अध्यारोप होता है तब वह चेतनके समान मालूम होता है। जैसे आत्मापर दूसरी चीज़का अध्यारोप होनेसे आत्मा उस वस्तुके समान मालूम होने लगता है जो 'आत्मा' नहीं है। अर्थात् भ्रम होता है। ४२।

इदमंशो द्विधाभूतस्तत्र प्राणः क्रियाश्रयः।
ज्ञानाधारोऽपरो बुद्धिर्मनः इत्यंश ईरितः॥ ४३॥

'इदं' अर्थात् शरीरके दो भाग हैं। एक प्राण जिससे क्रियायें होती हैं दूसरा बुद्धि या मन जिसके आश्रय ज्ञान रहता है। ४३।

तस्य चेष्टादयोऽपीष्टाः प्राणाद्याः पञ्च वायवः।
कारणाद्याः क्रियाभेदवागादि द्वारकास्तथा॥ ४४॥

चेष्टा आदि क्रियायें, प्राण आदि पांच वायु वाणी आदि कर्म-इन्द्रियां जोकि कर्मोंके साधन हैं यह सब "इसी से अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं। ४४।

द्विधान्तःकरणं बुद्धिर्मनः कार्य वशादिह।
आत्मैव केवलस्साक्षादहं बुद्धौ तु भाति चेत्॥ ४५॥
कृशोऽस्मीति मतौ भाति केवलो नेतितद्वद।
कृशादयोऽत्र दृश्यत्वान्नात्मधर्मा यथामताः॥ ४६॥
सुखादयोऽपि देहस्था नात्म धर्मास्तथैवच।
मातृमानं प्रमेयेभ्यो भिन्न आत्मात्म विन्मते॥ ४७॥

कार्यवश अन्तः करणके दो भाग हैं एक बुद्धि और दूसरा मन। यदि कहा जाय कि साक्षात् और शुद्ध आत्माकोही अहं-बुद्धि 'मैं' होनेका ज्ञान) होती है तो मैं पूछता हूं कि ('मैं दुबला हूं' इस वाक्यमें क्या शुद्ध आत्मासेही तात्पर्य है। जिस प्रकार दुबलापन आदि जो दिखाई देते हैं

शुद्ध आत्माके गुण नहीं हैं इसी प्रकार सुख दुःख आदि जो शरीरमें पाये जाते हैं आत्माके गुणभी नहीं होसकते। जो आत्माको वस्तुतः जानते हैं इनके मनमें आत्मा प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय तीनोंसे अलग है। अर्थात् जाननेवाला, जाननेकी वस्तु और जाननेके साधन इन तीनोंसे आत्मा अलग है।

तथैव चोपपाद्यस्यान्निरस्य परवादिनः।
अनात्मा विषयश्चेति प्रतिपाद्योन कस्यचित्॥ ४८॥

इस प्रकार अन्य दार्शनिकोंके मतका खण्डन करके आत्माका प्रतिपादन करना चाहिये। परन्तु इससे कोई यह न समझले कि अनात्मा विषय है। अर्थात् आत्माके अतिरिक्त जो वस्तु हैं वह इन्द्रियों आदि द्वारा दिखाई देता है। ४८।

घटोऽहमिति कस्यापि प्रतिपत्तेरभावतः।
रूपादिमत्त्वाद्दृश्यत्वाज् जडत्वाद् भौतिकत्वतः ॥४९॥
अन्नवच्चादनीयत्वाच्छ्वादेर्नात्मा कलेवरम्।
देहतोऽव्यतिरेकेण चैतन्यस्य प्रकाशनात्॥ ५०॥

आत्मा शरीर नहीं हैं क्योंकि (१) कोई ऐसा नहीं मानताकि 'मैं घड़ा हूँ' (२) शरीरमें रूप है (३) शरीर दिखाई देता है ४) जड़ है (५) भूतों से बना है। (६) शरीर को अन्न समान कुत्ते आदि खासकते हैं (७) चैतन्यका प्रकाश देहसे अलग होता है

अतस्त्वन्नमयो देहो नात्मा लोकायतेरितः।
प्राणोऽप्यात्मा न वायुत्वाज् जड़त्वाद् बाह्यवायुवत्॥५१॥

इसलिये अन्नमय कोश देह को आत्मा नहीं मानना चाहिये जो लोकायत ऐसा मानते हैं उनकी भूल है। प्राण भी आत्मा नहीं है क्योंकि बाहरकी वायुके समान यह भी वायु है और जड़ है ॥५०॥

इन्द्रियाणि न चात्मा स्यात् करणत्वात्प्रदीपवत्।
चञ्चलत्वान्मनो नात्मा सुषुप्तौ तदसम्भवात्॥ ५२॥

इन्द्रियां भी आत्मा नहीं हैं क्योंकि यह दीपक के समान ज्ञानका करण (साधन) मात्र हैं। न मन आत्मा है क्योंकि यह चंचल है और सुषुप्तिमें नहीं रहता॥५१॥

सुखेपर्यवसानाच्च सुखमेवात्म विग्रह।
धत्तेऽन्नमयनात्मानं प्राणः प्राणं मनोमनः॥५३॥
सच्चिदानन्द गोविन्द परमात्मा वहत्यसौ।
यदा बाह्येन्द्रियैरात्मा भुङ्क्तेऽर्थान् स्वपराङ्मुखान् ॥५४॥
तदा जाग्रदवस्था स्यादात्मनो विश्वसंज्ञिता।
बाह्येन्द्रिय गृहीतार्थान् मनोमात्रेण वै यदा॥५५॥
भुङ्क्ते स्वप्नांस्तदा ज्ञेया तैजसाख्या परात्मनः।
अविद्या तिमिर ग्रस्त मनस्यामत्मन्यवस्थिते॥ ५६॥
सुषुप्त्यवस्था विज्ञेया प्राज्ञाख्यानन्द संज्ञिता।
स्वापेऽपितिष्ठति प्राणो मृतभ्रान्ति निवृत्तये॥५७॥
अन्यथा श्वादयोऽग्नि संस्कारिष्यन्ति वानले।
स्वापेऽप्यानन्द सद्भावो भवत्येवोत्थितो यतः॥५८॥
सुखमस्वाप्समित्येवं परामृशति वै स्मरन्।
स्यान्मतं विषयाभावान्न तद्विषयजं सुखम्॥५९॥
वेद्यत्वान्न निजन्तेन दुःखाभावे सुखभ्रमः।
प्रतियोगिन्य दृष्टेऽपि सर्वाभावोऽपिगृह्यते॥ ६०॥
यतोऽन्यस्मै पुनः पृष्टः सर्वाभावं प्रभाषते।
न्यायेनानेन भावानां ज्ञानाभावोऽनुभूयते॥ ६१॥

चूंकि सुषुप्तिका अन्त सुख है अतः सुखही आत्माका गुण है। प्राण अन्नमय आत्माको धारण करता है। मन प्राण मय आत्माको। और सच्चिदानन्द गोविन्द परमात्मा मनोमय कोशको धारण करता है। जब बाह्य इंद्रियों द्वारा आत्मा उन विषयोंका अनुभव करता है जो उससे विमुख है तो जाग्रत अवस्था उत्पन्न होती है उसीको 'विश्व' कहते हैं। जब बाहरी इन्द्रियोंसे ग्रहण किये हुये विषयोंको केवल मनसे स्वप्नमें भोगता है तो उसको 'तैजस' अवस्था कहते हैं जब मन अविद्याके अंधेरेसे घिरा रहता है और उसमें आत्माकी स्थिति होती है तो सुषुप्ति अवस्था होती है इसको 'प्राज्ञ' कहते हैं। इसका चिह्न आनन्द है। प्राण सुषुप्तिमें भी रहता है जिससे कोई यह न समझ ले कि यह मरगया। यदि प्राण न होतो कुत्ते मुरदा समझकर खालें या सम्बन्धी देहान्त

संस्कार कर दें। सुषुप्तिमें भी आनन्द रहता है क्योंकि जब आदमी सोकर उठता है तो कहता है "मैं सुखसे सोया।"

अच्छा यह मान लिया (अब आक्षेप करते हैं परन्तु यह सुख विषयों से प्राप्त नहीं होता क्योंकि सुषुप्ति में तो कोई विषय रहते नहीं। चूं कि इस सुख का याद करके ही मान होता है इस लिये यह सच्चा सुख भी नहीं है! यह केवल दुःख के अभाव में सुख का भ्रम मात्र है। इस प्रकार यद्यपि किसी वस्तु का प्रतियोगी (उलटा) न भी दीखे तो भी उसके अभाव का ज्ञान हो जाता है। जैसे सुषुप्ति से उठे हुये से पूछो तो वह कहता है "मैंने सोने में किसी वस्तु का अनुभव नहीं किया" इसी युक्ति के चीज़ों के ज्ञान का अभाव अनुभव किया जाता है। ५३-६१।

अत्र ब्रूमस्समाधानं दुःखा भावो न गृह्यते।
प्रबुद्धेनेति सुप्तस्य नाज्ञानं प्रति साक्षिता॥ ६२॥

अब आक्षेप का उत्तर देते हैं। दुःख के अभाव का ग्रहण नहीं होता है। क्योंकि सोते हुये के अज्ञानके विषयमें जागते हुयेकी साक्षी नहीं ली जा सकती। ६२।

प्रति योग्य ग्रहात्स्वापे दुःखस्य प्रति योगिता।
अभावाख्यं प्रमाणन्तु नास्ति प्राभाकरे मते ॥६३॥

चूंकि सुषुप्तिमें अभावके उलटेका ज्ञान नहीं होता इसलिये यह दुःखका उलटा होता है। प्रभाकरके मतमें अभाव कोई प्रमाण नहीं है॥६३॥

नैयायिक मतेऽभावः प्रत्यक्षान्नातिरिच्यते।
सुख दुःखादि निर्मुक्तेर्मोक्षे पाषाणवस्थितम् ॥६४॥
आत्मानं प्रवदन्वादी मूर्खः किन्न वदत्यसौ।
स्थितिमज्ञान साक्षित्वं नित्यानन्दत्वमात्मनः ॥६५॥

नैयायिकोंके मतमें अभाव प्रमाण प्रत्यक्षसे भिन्न नहीं है। यह मूख दार्शनिक जो मुक्तिमें सुख दुःखके अभावमें आत्माका पत्थरके समान होना मानता है क्या कुछ न कहेगा।

इससे सिद्ध हुआ कि आत्मामें अज्ञानके साक्षी होने तथा नित्यानन्दके प्राप्त करनेकी शक्ति है ॥६५॥

वदन्त्यत्रात्मनानात्वं देहेषु प्रतिवादिनः।
एकश्चेत्सर्वभूतेषु पुंसि कस्मिन् मृते सति॥ ६६॥
सर्वे म्रियेरन् जायेरन् जाते कुर्युश्च कुर्वति।
एवं विरूद्ध धर्मा हि दृश्यन्ते सर्व जन्तुषु॥ ६७॥
अतस्सत्र शरीरेषु नानात्वं चात्मनाश्रितम्।
विरुद्धधर्म दृष्ट्यैव पुंसां भेदस्त्वयेरितः ॥६८॥
विरुद्ध धर्मा दृष्टाः क देहे वात्मनि वावद।
देहे चेद् देहनानात्वं सिद्धं किन्तेन चात्मनि॥ ६९॥

यहां हमारे विरोधी कहते हैं कि भिन्न शरीरोंमें भिन्न २ आत्मायें हैं। यदि सब संसार में एकही आत्मा होती तो किसी एक आदमीके मरने पर सब मर जाने चाहिये थे। और एकके जीने पर सब जीने चाहिये थे और एकके काम करने पर सबको कार्य्य करना चाहिये था। इस प्रकार सब प्राणियोंमें अलग २ धर्म पाये जाते हैं। इस लिये सिद्ध हुआकि भिन्न २ शरीरोंमें भिन्न २ आत्मायें हैं।

इसका उत्तर यह है कि तुमने मनुष्योंके विरुद्ध धर्मोंको देखकर नानात्व सिद्ध किया है। यह तो कहोकि तुमने यह विरुद्ध धर्म शरीरमें देखा या आत्मामें? अगर शरीरमें नानात्व देखा तो शरीर बहुत हुये? इससे और आत्मासे क्या सम्बन्ध। ६६-६९

चिद्रूपात्मनि भेदश्चेत् पुंस्येकस्मिन्प्रसज्यते।
एकस्येन्दोर्यथा पात्रेष्वनेकत्वं यथा तथा॥ ७०॥
अनेकदेहेष्वेकात्म प्रतिभासस्तथा मतः।
आत्मान्यः पञ्च कोशेभ्यः षड्भावेभ्यः षडूर्मितः ॥७१॥

अगर यह भेद चेतन आत्मामें हुये तो एक ही पुरुषमें भी होसकते हैं। जिस प्रकार अनेक बर्तनों में एक चांदके अनेक चांद प्रतीत होते हैं उसीप्रकार एक आत्माका अनेक देहोंमें आभास पड़ता है। आत्मा पांचकोशों, छः भावों और छः लहरोंसे (जो ऊपर कही गई हैं) अलग है। ७०। ७१।

देहेन्द्रिय मनोबुद्धिप्राणाहङ्कार वर्जितः
एकस्सकल देहेषु निर्विकारो निरञ्जनः॥ ७२॥

देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, अहङ्कार इन सबसे अलग सब देहोंमें एकही निर्विकार निरंजन आत्मा है ॥७२॥

नित्योऽकर्त्ता स्वयं ज्योतिर्विभुर्भोग विवर्जितः ।
ब्रह्मात्मा निर्गुणश्शुद्धो बोधमात्रतनुस्वतः ॥ ७३ ॥

वह नित्य है, अकर्त्ता है, स्वयं ज्योति है, विभु है, भोगोंसे अलग है, ब्रह्म है, आत्मा है, निर्गुण है, शुद्ध है और ज्ञान मात्रही जिसकी सञ्ज्ञा है ॥७३॥

अविद्योपाधिकः कर्त्ता भोक्ता रागादि दूषितः ।
अहङ्कारादि देहान्तः कलुषीकृत विग्रहः ॥ ७४ ॥

वही ब्रह्म अविद्याकी उपाधि लगनेसे कर्त्ता, भोक्ता और राग आदि बातोंसे दूषित हो जाता है। देहमें अहङ्कार आदिके कारण उसमें बिगाड़ होजाता है ॥७४॥

यथोपाधि परिच्छिन्नो बन्धकाष्टकवेष्टितः ।
ब्रह्मादि स्थावरान्तेषु भ्रमन् कर्मवशानुगः ॥ ७५
कर्मणा पितृलोकादि निषिद्धैर्नरकादिकम् ॥
विद्यया ब्रह्मसायुज्यं तद्धीनः क्षुद्रतां गतः ॥ ७६ ॥

यह आत्मा उपाधिसे परिच्छिन्न और आठ बन्धोंसे बंधा होकर कर्मके वंश ब्रह्मसे लेकर स्थावर तककी योनियोंमें भ्रमता हुआ विहित कर्मोंको करके पितृलोक आदिमें और निषिद्ध कर्मोंको करता हुआ नरक आदिमें घूमता है विद्यासे इस ब्रह्मका सायुज्य प्राप्त होता और ज्ञान शून्य होनेसे क्षुद्रताको प्राप्त होता है ॥७५॥७६॥

एक एव परो जीवः स्वकल्पितजगत्त्रयः ।
बन्ध मुक्तादि भेदश्च स्वप्नवद् घटनामियात् ॥७७॥

आत्मा एक ही है, वह पर है, उसीने स्वयं तीनों लोक बनाये हैं। बन्ध, मुक्त, आदि भेद स्वप्न केसमान होते हैं ॥७७॥

अथवा बहवो जीवाः संसाराज्ञान भागिनः ।
अनादित्वादविद्याया अन्योन्याश्रयता नहि ॥७८॥

या जीव बहुत हैं। और उनमें अज्ञान है जिससे संसार उत्पन्न होता है। चूंकि अविद्या अनादि है इसलिये इसमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता ॥७८॥

व्यष्टि देहादिदं युक्तं द्वयमित्य परं मतम् ।
समष्टि दृष्ट्या त्वेकत्वं व्यष्टिदृष्ट्या त्वनेकता ॥७९॥

दूसरा मत यह है कि देह अलग २ होनेसे आत्माका एक होना और अनेक होना दोनों ठीक है। समष्टि दृष्टिसे एक और व्यष्टि दृष्टिसे अनेक है ॥७९॥

साक्षी सद्वारनिर्द्वार सम्बन्धानां जडात्मनाम् ।
विज्ञानाज्ञानरूपेण सदा सर्वज्ञतां गतः ॥८०॥

आत्मा विज्ञान और अज्ञान रूपसे सब जड़ वस्तुओंका जो सद्वार या निर्द्वार सम्बन्ध रखती है साक्षी है। और इस प्रकार वह सदा सर्वज्ञ है। सद्वार सम्बन्ध वह है जो किसीके द्वारा हो निर्द्वार सम्बन्ध वह है जो अन्य किसीके द्वारा न हो ॥८०॥

माया मात्रस्सुषुप्त्यादौ खचिताज्ञानकञ्चुकः ।
जन्मान्तरानुभूतानामपि संस्मरणक्षमः ॥८१॥

अज्ञानका पर्दा पड़ा होनेके कारण सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें आत्मा माया मात्रही रहती है इसलिये अनेक जन्मोंके अनुभूत विषयोंकी भी याद रहती है ॥८१॥

तत्पापकवशादत्र तारतम्य विशेषभाक् ।
अवस्था पञ्चकातीतः प्रमाता ब्रह्म चिन्मतः ॥८२॥

जिन बातोंसे आत्माको जन्म जन्मान्तर होते हैं उन्हींके कारण उसमें तारतम्य (कमी, आधिक्य) आते हैं जब पांचों अवस्थाओंसे परे पहुंच जाता है तो ठीक ब्रह्मका जानने वाला प्रमाता होजाता है। ८२।

प्रमासाधनमित्येव मान सामान्यलक्षणम् ।
तत्परिच्छेदभेदेन तदेवं द्विविधं मतम् ॥ ८३ ॥

प्रमाणका सामान्यलक्षण यह ही है कि यह प्रमा अर्थात् ज्ञान का साधन है । यह ज्ञान कितना निश्चयात्मक है इस भेदके अनुसार वह दो प्रकार- का माना गया है। ८३।

निवर्तकमविद्याया इतिवा मानलक्षणम् ।
सशेषाशेषभेदेन तदेव द्विविधं मतम् ॥ ८४ ॥

यह प्रमाणका यह लक्षण है कि यह अविद्या-का दूर करनेवाला होता है । अविद्या कुछ बाकी रहती है या नहीं इसके हिसाबसे भी इसके दो प्रकार माने गये हैं । ४८ ।

तत्त्वमस्यादि वाक्योत्थमशेषाज्ञान बाधकम् ।
प्रत्यक्षमनुमानाख्यमुपमानन्तथागमः ॥८५॥
अर्थापत्तिरभावश्च प्रमाणानि षडेव हि
व्यावहारिकनामानि भवन्त्येतानि नात्मनि ॥८६॥

'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंसे जो प्रमाण मिलता है वह अविद्याका बिल्कुल दूरकरने वाला है 'प्रत्यक्ष' अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभाव यह छः प्रमाण व्यवहारिक वस्तुओंके लिये हैं । इनसे आत्माके विषयमें कुछ मालूम नहीं होता । ८५ । ८६ ।

स्वसंवेद्योऽप्रमेयोपि लक्ष्यते वाङ् मनोऽतिगः ।
हिरण्यगर्भ पक्षस्तु वेदान्तान्नातिभिद्यते ॥८७॥

यद्यपि आत्मा स्वयम्‌ही जाना जाता है और अप्रमेय है अर्थात् उसको प्रमाणोंसे नहीं जान सकते । परन्तु वह वाणी और मनसे परे है । हिरण्यगर्भ वादियोंके पक्ष वेदान्तसे बहुत भिन्न नहीं है । ८७ ।

आनन्दः पुरुषोऽज्ञानं प्रकृतिस्तन्मते मता ।
ज्ञानं द्विधास्थितं प्रत्यक् परागितिहि भेदतः ॥८८॥

उनके मतमें पुरुष आनन्द है और प्रकृति अविद्या है ज्ञान दो तरहका माना गया है एक भीतरी और दूसरा बाहिरी ॥८८ ।

आनन्दाभिमुखं प्रत्यग्बाह्यार्थाभिमुखं पराक् ।
आत्माज्ञान विवर्तः स्याद्भूत तन्मात्र पञ्चकम् ॥८९॥

आनन्दकी ओर झुका हुआ ज्ञान भीतरी है और बाहरकी ओर झुका हुआ ज्ञान बाहिरी । आत्मा पर अज्ञान रूपी जो विवर्त्त या भ्रम है उससे पांच तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं ॥८९॥

तन्मात्र पञ्चकाज्जातमन्तः करण पञ्चकम् ।
मनो बुद्धिरहङ्कार श्चित्तं ज्ञातृत्वमित्यपि ॥९०॥

पांच तन्मात्राओंसे अन्तः करण पंचक अर्थात् पांच भीतरी इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं । अर्थात् मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त और शक्ति जो अपनेको ज्ञाता होनेका ज्ञान देती है । ९०॥

पार्थिववस्स्यादहङ्कारो ज्ञातृत्वमत्रकाशजम् ।
करणद्वयमेतत्तु कर्तृत्वेनावभासते ॥९१॥

अहङ्कार पृथ्वी तत्वसे बना है, ज्ञातत्व आकाशसे । यह दो इन्द्रियाँ हैं जो कर्ताके रूपमें मालूम होती है ॥९१॥

बुद्धिः स्यात्तैजसी चित्तमाप्यं स्याद्वायुजं मनः ।
भूम्याद्येकैक भूतस्य विज्ञेयं गुणपञ्चकम् ॥९२॥

बुद्धि अग्निसे बनी है, चित्त जलसे और मन वायुसे । पृथ्वी आदि एक एक भूतके पांच गुण मानने चाहिये ।

अहङ्कारो भुवः प्राणो घ्राणङ्गन्धश्च पायुना ।
चित्तापानौ तथा जिह्वा रसोपस्थावपाङ्गुणाः ॥९३॥

अहङ्कार, प्राण, नासिका, गन्ध, पायु इन्द्रिय यह पृथ्वीके हैं । चित्त, अपान, जिह्वा, रस, और उपस्थ इन्द्रिय यह पृथ्वीके गुण हैं ॥९३॥

बुद्ध्युदानौ तथा चक्षूरूपपादस्तु तैजसाः ।
मनो वायोर्व्यान चर्मस्पर्शाः पाणिर्गुणास्तथा ॥९४॥

बुद्धि, उदान, आंख, रूप और पैर आगके हैं । मन, व्यान, चमड़ा, स्पर्श, हाथ यह वायुके गुण हैं ॥९ ॥

ज्ञातृत्वञ्च समानश्च श्रोत्र शब्दश्च वाक्खजाः ।
एकैक सूक्ष्मभूतेभ्यः पञ्च पञ्चापरे गुणाः ॥९५॥

ज्ञातृत्व, समान, कान, शब्द, वाणी आकाशके उत्पन्न हुये हैं । पांच सूक्ष्म भूतोंसे एक एक करके पांच दूसरे गुण उत्पन्न हुये हैं ॥९५॥

अस्थि चर्म तथा मांसं नाड़ी रोमाणि भूगुणाः ।
मूत्रं श्लेष्मा तथा रक्तंशुक्लं मज्जात्वपाङ्गुणाः ॥९६॥

हड्डी, चमड़ा, मांस, नाड़ी, रोम सूक्ष्मभूत पृथ्वी पानी केगुण हैं । मूत्र, कफ, रुधिर, वीर्य मज्जा, यह के गुण हैं ॥९६॥

निद्रा तृष्णा क्षुधा ज्ञेया मैथुनालस्यमग्निजः ॥
प्रचालस्तरणारोहे वायोरुथानरोधने ॥ ९७ ॥

नींद, प्यास, भूख, मैथुन, आलस्य अग्निसे उत्पन्न हुये हैं। चलना, कूदना, चढ़ना, उठना और रोकना यह वायुके उत्पन्न हुये गुण हैं ॥९७॥

काम क्रोधौ लोभभये मोहो व्योम गुणास्तथा।
ततोऽवधूत मार्गश्च कृष्णेनै वोद्धवं प्रति ॥९८॥

काम, क्रोध, लोभ, भय, मोह यह सूक्ष्म भूत आकाशके गुण हैं।

अवधूत मार्गको कृष्ण ने उद्धवसे कहा था ॥९८॥

श्री भागवत संज्ञे तु पुराणे दृश्यते हि सः।
सर्व दर्शन सिद्धान्तान्वेदान्तान्तानिमान् क्रमात् ॥
श्रुत्वार्थे वित्सुसंक्षिप्तान् तत्त्वतः पण्डितो भुवि ॥९९३॥

इसका श्रीमद् भागवत पुराणमें वर्णन है इन सब दर्शनोंके सिद्धान्तोंका जिनके अन्तमें वेदान्तका वर्णन हैं जो कोई मनुष्य क्रमसे पढ़ेगा वह संसारमें तत्वका जानने वाला पण्डित होगा ॥९९—३॥

इति श्री मच्छङ्कराचार्य विरचिते सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रहे वेदान्तपक्षो नाम द्वादश प्रकरणम् ॥

यह श्री शंकराचार्य रचित सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रहका वेदान्तपक्ष नाम बारहवां प्रकरण समाप्त हुआ।

इति सर्वदर्शनसिद्धान्तसंग्रहः समाप्तः।
यह सर्व दर्शन सिद्धान्त संग्रह समाप्त हुआ।

मज्जिक अम्ल

Fatty acids

(लेखक—श्री० सत्यप्रकाश बी. एस. सी. विशारद)
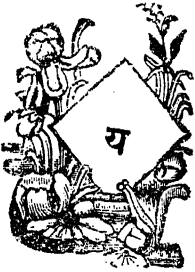
ह कहा जा चुका है कि मद्योंके ओषदीकरण से मद्यानार्द्र बनते हैं पर यदि मद्यानार्द्रों का भी ओषदीकरण किया जाय तो उनसे अम्ल प्राप्त हो सकते हैं, मद्य, मद्यानार्द्र और उनके अम्ल निम्न प्रकार सम्बन्धित हैं—

दारीजमद्य	पिपीलमद्यानार्द्र	पिपीलिकाम्ल
क उ$_{३}$ ओ उ	उ क उ ओ	उ क ओ ओ उ
उखीलमद्य	सिरकमद्यानार्द्र	सिरकाम्ल
क$_{२}$ उ$_{५}$ ओ उ	क उ$_{३}$ क उ ओ	क उ$_{३}$ क ओ ओ उ
अग्नील मद्य	अग्नमद्यानार्द्र	अग्निकाम्ल
क$_{३}$ उ$_{७}$ ओ उ	क$_{२}$ उ$_{५}$ क उ ओ	क$_{२}$ उ$_{५}$ क ओ ओ उ

इस प्रकार अम्लों में मद्यानार्द्रोंकी अपेक्षा ओषजन का एक परमाणु अधिक होता है। इनका सामान्यसूत्र क$_{न}$ उ$_{२न}$ ओ$_{२}$ है। नीचे की सारिणी में कुछ अम्लोंका क्वथनांक, गुरुत्व आदि दिया जाता है:—

अम्ल	सूत्र	क्वथनांक	विशिष्टगुरुत्व
पिपीलिकाम्ल	उ कओओउ		१.२३ (१०°)
सिरकाम्ल	कउ$_{३}$कओओउ	११८°	१.०५ (१६°.५)
अग्निकाम्ल	क$_{२}$उ$_{५}$कओओउ	१४१°	१.०१ (०.)
नवनीतिकाम्ल	क$_{३}$उ$_{७}$कओओउ	१६२°	.९८ (०°)
समनवनीतिकाम्ल	(कउ$_{३}$)$_{२}$कउकओओउ	१५४°	.९६५ (०°)
बलिकाम्ल	क$_{४}$उ$_{९}$कओओउ	१८५°	.९५६ (०°)

इस प्रकार इन मज्जिक अम्लोंके अन्तमें—क ओ ओ उ मूल लगा हुआ है इसे कर्बोषल मूल कहते हैं। इन सब अम्लोंमें एक कर्बोषील मूल है अतः इन्हें एक भस्मिक अम्ल कहते हैं। कुछ अम्ल ऐसे भी होते हैं जिनमें दो, तीन या अधिक भी कर्बोषील मूल हो सकते हैं। इन्हें द्वि-भस्मिक-,त्रि-भस्मिक—आदि अम्ल कहा जायगा। इनका वर्णन आगे किसी स्थान पर किया जायगा। इस समय यहाँ एक-भस्मिक अम्लोंका ही वृत्तान्त दिया जाता है।

अम्ल बनाने की सामान्य विधियाँ

सामान्यतः अम्ल नीचे लिखी विधियोंमेंसे किसी भी विधिसे बनाये जा सकते हैं।

(१) प्रथम मद्य या मद्यानार्दोंके ओषदीकरण से जैसा कि पहले कहा जा चुका है—

(अ) क उ$_3$ ओ उ + ओ = उ क उ ओ + उ$_2$ ओ
क्षरीलमद्य — पिपीलमद्यानार्द्र

उ क उ ओ + ओ = उ क ओ ओ उ
पिपीलिकाम्ल

(आ) क$_2$ उ$_5$ ओ उ + ओ = क उ$_3$ क उ ओ + उ$_2$ ओ
| ओ
↓
क उ$_3$ क ओ ओ उ
सिरकाम्ल

इस ओषदीकरणके लिये इन ओषदकारकोंमेंसे किसी का भी यथा स्थान उपयोग किया जासकता है—

(१) पांशुजद्विरागेत, पां$_2$ रा$_2$ ओ$_7$ द्वारा

(२) मांगनीजद्विओषिद मा ओ$_2$ और गन्धकाम्ल द्वारा

(३) वायुके ओषजन द्वारा, विशेषतः पररौप्यम् की विद्यमानतामें।

कीतोनोंके ओषदीकरणसे अम्ल प्राप्त होते हैं पर इन अम्लोंमें कीतोनोंकी अपेक्षा कम कर्बन परमाणु होते हैं:—

क उ$_3$ क ओ क उ$_3$ + २ ओ$_2$ = क उ$_3$ क ओ ओ उ + क ओ$_2$ + उ$_2$ ओ
सिरकोन — सिरकाम्ल

(२) लवणजन यौगिकोंको क्षार के साथ उबालने पर भी अम्ल प्राप्त हो सकते है जैसे हरोपिपील को पांशुज उदौषिदके साथ उबालनेसे पिपीलिकाम्ल का लवण पांशुज पिपीलेत प्राप्त होता है जिसमें उदहरिकाम्ल डाल कर पिपीलिकाम्ल प्राप्त हो सकता है—

क उ ह$_3$ + ४ पां ओ उ = उ क ओ ओ पां + ३ पां ह + २ उ$_2$ ओ
हरोपिपील — पांशुजपिपीलेत

उ क ओ ओ पां + उ ह = उ क ओ ओ उ + पां ह
पिपीलिकाम्ल

(३) मद्यनैलिदों पर पांशुज श्यामिदके प्रभावसे मद्यील श्यामिद बनते हैं। इन मद्यील श्यामिदोंका पांशुज उदौषिद घोल, या उदहरिकाम्ल अथवा गन्धकाम्ल द्वारा उद-विश्लेषण करनेसे मज्जिकाम्ल प्राप्त होसकते हैं ज्वलीलनैलिदसे अग्निकाम्ल निम्न प्रकार बनजाते हैं—

क$_2$ उ$_5$ नै + पां क नो = क$_2$ उ$_5$ क नो + पां नै
ज्वलीलश्यामिद

क$_2$ उ$_5$ क नो + २ उ$_2$ ओ = क$_2$ उ$_5$ क ओ ओ उ + नो उ$_3$
अग्निकाम्ल

इसी प्रकार दारीलश्यामिद से सिरकाम्ल बनाया जा सकता है

क उ$_3$ क नो + २ उ$_2$ ओ = क उ$_3$ क ओ ओ उ + नो उ$_3$
सिरकाम्ल

अम्लोंके अन्तका उदौषील मूल—ओ उ निकाल देनेसे जितना मूल शेष रह जाता है उसे अम्लील मूल कहते हैं।

पिपीलकाम्ल उ क ओ ओ उ में उ क ओ—अम्लीलमूल है। इसे पिपीलमूल कहते हैं, सिरकाम्ल क उ$_3$ क ओ ओ उ में क उ$_3$ क ओ—अम्लील मूल है जिसे सिरकील मूल कह सकते हैं।

एक मद्यसे दूसरा मद्य और एक अम्लसे दूसरा अम्ल बनाना—ऊपर दी हुई प्रक्रियाओं से मद्य अम्लमें और अम्ल मद्यमें बड़ी सरलतासे पाणित किया जा सकता है।

$$\text{क उ}_3\text{ ओ उ} \xrightarrow{\text{पां नै}} \text{क उ}_3\text{ नै} \xrightarrow{\text{पां क नो}} \text{क उ}_3\text{ क नो}$$

दारील मद्य

$$\xrightarrow{\text{जल}} \text{क उ}_3\text{ क ओ ओ उ} \xrightarrow{\text{उ क ओ ओ खे}}$$

सिरकाम्ल

$$\text{क उ}_3\text{ क उ ओ} \xrightarrow{\text{उ}_2} \text{क उ}_3\text{ क उ}_2\text{ ओ उ}$$

ज्वलील मद्य

इन प्रकियाओं द्वारा स्पष्ट है कि दारीलमद्य क्रमशः पांशुजनैलिद, पांशुज श्यामिद और उद-विश्लेषणके प्रभावसे सिरकाम्लमें परिणित हो जाता है। सिरकाम्लको खटिकपिपीलेत; उकओओखेके साथ शुष्क स्रवण करनेसे सिरकमद्यानाद्र प्राप्त होता है जिसके अवकरणसे ज्वलील मद्य प्राप्त होता है। इस प्रकार दारीलमद्यसे ज्वलील मद्यका संश्लेषण किया जा सकता है। नीचेकी श्रेणीसे पता चलेगा कि एक अम्ल दूसरे अम्लमें किस प्रकार परिणत किया जा सकता है।

$$\text{क उ}_3\text{ क ओ ओ सै} \xrightarrow{\text{सै ओ उ}} \text{क उ}_4 \xrightarrow{\text{ह}_2} \text{क उ}_3\text{ ह}$$

$$\xrightarrow{\text{पां ओ उ}} \text{क उ}_3\text{ ओ उ} \xrightarrow{\text{ओ}_2}$$

सैन्धक सिरकेत

$$\text{उ क उ ओ} \xrightarrow{\text{ओ}_2} \text{उ क ओ ओ उ}$$

पिपीलिकाम्ल

सैन्धक सिरकेतको सैन्धका चूनाके साथ स्रवण करनेसे दारेन प्राप्त होता है जो हरिन्के प्रभावसे दारील हरिद होकर पांशुज उदौषिद्से दारील मद्यमें परिणत होजाता है जिसके ओषदीकरणसे पिपीलिकाम्ल बन जाता है।

पिपीलिकाम्ल उ. क ओ. ओ उ

सत्रहवीं शताब्दिके लगभग यह अम्ल सबसे पहले चींटियोंके स्रवण द्वारा बनाया गया था, इसी लिये इसका नाम पिपीलिकाम्ल (पिपीलिका—चींटी) पड़ा है। इसके बनानेकी कुछ विधियाँ ऊपर दी जा चुकी हैं। उदश्यामिद्के जल-घोलमें यह पाया जाता है क्योंकि जलके संसर्गसे उदश्यामिद्में उदविश्लेषण हो जाता है और अमोनियम पिपीलेत बन जाता है।

$$\text{उ क नो} + \begin{matrix}\text{उ ओ उ}\\ \text{उ ओ}\\ \text{उ}\end{matrix} = \text{उ क ओ ओ नो उ}_4$$

अमोनियम पिपीलेत

कर्बन एकौषिद्, क ओ, सैन्धक उदौषिद्से संयुक्त होकर सैन्धक पिपीलेत (पिपीलिकाम्लका सैन्धक लवण) बनाता है।

$$\text{क ओ} + \text{उ ओ सै} = \text{उ क ओ ओ सै}$$

सैन्धक पिपीलेत

पिपीलिकाम्लके बनानेकी सबसे उपयोगी विधि इस प्रकार है—३० ग्राम मधुरिनको एक चीनी की रकाबीमें रखकर रेणुकुंडीपर सुखा लो। इस मधुरिनको स्रवण कुप्पीमें रक्खो। इस कुप्पीमें भपका और संचक लगा होना चाहिये। मधुरिनमें ३० ग्राम काष्ठिकाम्ल भी मिला दो। कुप्पी को रेणुकुंडी पर गरम करो। तापक्रम ११०°के लगभग होना चाहिये। संचक में पिपीलिकाम्ल स्रवित होजायगा।

इस प्रयोग की प्रक्रिया इस प्रकार है!

(क) मधुरिन काष्ठिकाम्लके संसर्गसे मधुरील एकपिपीलेत बनाता है।

$$\text{क ओ ओ उ} + \text{क}_3\text{उ}_5\text{ (ओउ)}_3 = \text{उ क ओ ओ (क}_3\text{ उ}_5\text{) (ओ उ)}_2 + \text{क ओ}_2 + \text{उ}_2\text{ ओ}$$

काष्ठिकाम्ल मधुरील एक पिपीलेत

(ख) मधुरील एक पिपीलेत का फिर उदविश्लेषण होजाता है और पिपीलकाम्ल बन जाता है।

$$उ\,क\,ओ\,ओ\,क_३\,उ_५\,(ओ\,उ)_२ + उ_३\,ओ = उ\,क\,ओ\,उ\,ओ + क_३\,उ_५\,\,ओ\,उ)_२$$

पिपीलिकाम्ल मधुरिन

इस प्रकार मधुरिन फिर प्राप्त हो जाता है। मधुरिन का कार्य केवल इतना ही समझना चाहिये कि यह काष्ठिकाम्लमेंसे कर्बनद्विओषिद का एक अणु पृथक् कर देता है।

क ओ ओ उ
|
क ओ ओ उ = उ क ओ ओ उ + क ओ$_२$

काष्ठिकाम्ल

पिपीलिकाम्लके गुण—शुद्ध पिपीलिकाम्लका क्थनांक १०१°श और द्रवांक ८ श है। इसमें अत्यन्त कटु गन्ध होती है, और यह त्वचा को खुरच डालता है। हाथ पर फफोले पड़ सकते हैं। इसके सब लवण जलमें लगभग घुलनशील हैं! अम्ल अथवा इसके लवणोंको संपृक्त गन्धकाम्लके साथ उबालनेपर कर्बनएकौषिद निकलने लगता है। शुद्ध कर्बन एकौषिदके बनाने की यह एक उपयोगी विधि है।

$$उ\,क\,ओ\,ओ\,उ — उ_२\,ओ + क\,ओ$$

पिपीलिकाम्ल अथवा सैन्धक पिपीलेत को एक परखनलीमें लो और संपृक्त गन्धकाम्लकी कुछ बूंदे डालकर गरम करो। परखनलीके मुँहके पास दियासलाई जलाकर लाओ। कर्बन एकौषिद नीली लपक से जलने लगेगा। इस प्रक्रियामें गन्धकाम्लका काम जल पृथक करने का है।

पिपीलिकाम्लमें अवकरण करने के तीव्र गुण विद्यमान हैं। यह अन्य पदार्थोंसे ओषजन खींचकर स्वयं कर्बनद्विओषिद और जलमें परिणत हो जाता है—

$$उ\,क\,ओ\,ओ\,उ + ओ = क\,ओ_२ + उ_२\,ओ$$

रजतनोषेतके घोलमें एक बूंद अमोनियाकी मिला लो। इस घोलको सैन्धक पिपीलेतके साथ मिला कर गरम करो। ऐसा करनेसे रजतके कण परखनलीकी सतहपर जम जांयगे और रजतका दर्पण प्रतीत होने लगेगा। पिपीलिकाम्ल रजतनोषेतके संसर्गसे रजत पिपीलेत, उ क ओ ओ र, में परिणत हो जाता है। रजत पिपीलेत गरम करनेसे रजत, कर्बनद्विओषिद और उदजनमें विभाजित हो जाता है:—

$$२\,उ.\,क\,ओ\,ओ\,र = र_२ + २\,क\,ओ_२ + उ_२$$

सिरकाम्ल क उ$_३$क ओ ओ उ

सिरकाम्ल शब्द ही इस बातका द्योतक है कि यह अम्ल सिरकामें पाया जाता है। भारतवर्षमें सिरका बहुधा गन्नेके रससे बनाया जाता है। गन्नेके रसमें बहुत दिनों तक रखनेसे खट्टापन आ जाता है। यह खट्टापन इसलिये आ जाता है कि गन्नेके रसकी शर्करा प्रेरक जीवों द्वारा जो इसमें उत्पन्न हो जाते हैं-मद्यमें परिणत हो जाती है और इस मद्यपर अन्य विशेष सिरकोत्पादक प्रेरकोंका प्रभाव पड़ता हैं जो वायुके ओषजनसे मद्यका ओषदी करण करते हैं और सिरकाम्लमें परिवर्तित कर देते हैं।

पाश्चात्य देशोंमें सिरका (Vinegar) शराबसे बनाया जाता है। तीव्र मद्यपर सिरकोत्पादक प्रेरक जीव प्रभाव नहीं डाल सकते हैं पर मद्यके हल्के घोलमें, जिसमें दस प्रति शतकसे अधिक मद्य नहो, थोड़ा सा सिरका डाल कर वायुमें रख देनेसे सम्पूर्ण मद्य सिरकामें परिणत हो जायगा, यहां सिरकामें जो सिरकोत्पादक प्रेरक जीव थे उन्होंने मद्य को ओषदीकरण करके अम्लमें परिणत कर दिया है।

स्टाल नाम के रसायनज्ञ ने सं० १७७७ वि० में सब से पहले शुद्ध सिरकाम्ल तैयार किया था। सिरकाम्ल की वाष्पें जलन शील होती हैं। एक परख नली में थोड़ा सा हैम सिरकाम्ल लेकर गरम करो। परख नली के मुंह के पास दियासलाई जलने लगेंगी।

लकड़ी के बुरादे का शुद्ध स्रवण करने से भी सिरकाम्ल बनाया जा सकता है। लकड़ी के बुरादे को एक गोल कुप्पी में लो जिसमें भभका लगा हो भभका का दूसरा सिरा एक बोतल से जिसमें पांशुज उदौषिद का घोल हो संयुक्त कर दो। इस बोतल में एक वाहक नली लगा कर पानीके भीतर डुबादो और एक गैलन पानी से भर कर वाहक नली के मुँहपर उलटा खड़ा करदो (जैसा उदजन आदि वायव्योंके

संचय में किया जाता है। अब बुरादे को गरम करो। गरम करने से कर्बन द्विओषिद, कोलतार आदि जो बनेगा वह पांशुज उदौषिद के घोल में संचित होजायगा। सिरकाम्ल की वाष्पें बेलन में भरने लगेंगी।

बेलन भर जाय तो सिरकाम्ल की परीक्षा कर लो सिरकाम्ल के साथ साथ सिरकोन आदि अन्य पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं जिन्हें अन्य विधियोंसे पृथक् कर लिया जा सकता है। व्यापारिकमात्रामें सिरकाम्ल बहुधा इसी प्रकार बनाया जाता है।

सिरकाम्ल बनाने को अन्य विधियाँ पहले दी जा चुकी हैं। ज्वलील मद्यको तीव्र गन्धकाम्ल और पांशुजद्विरागेत द्वारा ओषदीकरण करकेअथवा दारील श्यामिद के उदविश्लेषण से यह बनाया जा सकता है, कृष्ण परौप्यम् पर मद्य की वाष्प और वायु के मिश्रण को प्रवाहित करके भी यह बनाया जा सकता है। कृष्ण परौप्यम् उत्प्रेरक का काम करता है।

सिरकाम्ल के गुण—यह एक तीव्र अम्ल है। साधारण तापक्रम पर यह द्रव होता है पर शीतकाल में यह ठोसाकार होजाता है क्योंकि इसका द्रवांक १७° है। इस प्रकार ठण्डा करके बहुत संपृक्त अम्ल तैयार किया जा सकता है जिसे हैम सिरकाम्ल कहते हैं। इसका क्वथनांक ११८° है और इसकी वाष्पें नीली लपक से जलती है। १५° श पर इसका विशिष्ट गुरुत्व १.०५५ है। इसमें पानी मिलाने से संकोच होता है अतः इसका गुरुत्व बढ़जाता है। कदाचित् सिरकाम्ल जल के एक अणुसे संयुक्त होकर पूर्व सिरकाम्ल (ortho-acetic acid) बन जाता है—

क उ$_3$ क ओ ओ उ + उ$_2$ ओ

= क उ$_3$ क (ओ उ)$_3$ पूर्व सिरकाम्ल

इस प्रकार ७७°/० अम्ल का गुरुत्व १५ पर १.०७५ है। पर अधिक जल डालने से गुरुत्व फिर कम होने लगता है यहाँ तक कि ५०°/० अम्ल का गुरुत्व वही होजाता है जो १००°/० अम्ल का गुरुत्व है।

संपृक्त सिरकाम्ल हाथ पर पड़नेसे त्वचाको जला देता है। सिरकाम्ल की पहिचान इस प्रकार की जा सकती है।

१. सिरकाम्लको सैन्धक उदौषिदके घोल द्वारा शिथिल कर लो। घोल को गरम करके शुष्क करलो। घोल को गरम करके चूर्ण में तीव्र गन्धकाम्ल की दो बूँदें डालो। ऐसा करनेसे एक दम सिरकाम्ल की गन्ध प्रतीत होने लगेगी।

२. सिरकाम्लमें ज्वलीलमद्य और तीव्र गन्धकाम्ल की दो बूंदें डालकर गरम करने से ज्वलील सिरकेत की सुन्दर गन्ध सुंघाई पड़ेगी। प्रक्रिया इस प्रकारहै—

क उ$_3$ क ओ ओ उ + क$_2$ उ$_5$ ओ उ = क उ$_3$ क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ + उ$_2$ ओ

ज्वलील सिरकेत

(३) सिरकाम्ल के शिथिल घोलमें शिथिल लोहिक हरिदका घोल डालनेसे लाल रंग का घोलप्राप्त होता है जो लोहिक सिरकेत बननेके कारण हुआ है।

सिरकाम्लमें पिपीलिकाम्लके समान अवकरण के गुण नहीं हैं।

सिरकाम्लके कर्बोषील मूलके उदजनके स्थानमें धातुओं को स्थापित करनेसे जो लवण बनते हैं उन्हें सिरकेत कहते हैं।

एक शक्तिक धातुओं का सिरकेत—

क उ$_3$ क ओ ओ उ + सै ओ उ → क उ$_3$ क ओ ओ सै + उ$_2$ ओ

सैन्धक सिरकेत

द्विशक्तिक धातुओंके सिरकेतों के लिये सिरकाम्ल के दो अणुओंकी आवश्यकता है।

क उ$_3$ क ओ ओ उ

क उ$_3$ क ओ ओ उ + ख (ओ उ)$_2$ =

क उ$_3$ क ओ ओ
क उ$_3$ क ओ ओ > ख + २ उ$_2$ ओ

खटिक सिरकेत

इसी प्रकार अन्य सिरकेत समझे जा सकते हैं।

यदि सिरकाम्लमें हरिन् वायव्य प्रवाहित की जाय तो अम्लके मूल क उ$_3$ के एक दो, अथवा तीनों उदजनोंके स्थान में हरिन् के परमाणु स्थापित हो

सकते हैं इस प्रकार क्रमशः एकहर (सिरकाम्ल) द्विहरसिरकाम्ल और त्रि-हर-सिरकाम्ल बन जाते हैं।

क उ₃ क ओ ओ उ + ह₂ = क उ₂हकओ ओ उ + उ ह — एक हर सिरकाम्ल

क उ₂ ह क ओ ओ उ + ह₂ = क उ ह₂ कओओउ + उ ह — द्विहरसिरकाम्ल

क उ ह₂ क ओ ओ उ + ह₂ = क ह₃ क ओ ओ उ + उ ह — द्विहरसिरकाम्ल

यह प्रक्रियायें धूपमें अथवा लाल स्फुर, गन्धक या नैलिन् की विद्यमानतामें अधिक तीव्रता के साथ होती हैं।

अन्य अम्ल

अग्रिकाम्ल क₂ उ₄ क ओ ओ उ-यह अम्ल अग्रील मद्य को पांशुज द्विरागेत तथा गन्धकाम्लके साथ ओषदीकृत करके बनाया जा सकता है। यह पानीमें मिलनशील है पर घोलमें खटिक हरिद डालनेसे यह पानी पर तैल के समान तैरने लगता है। यह इस श्रेणीका पहला अम्ल है जिसमें इस प्रकारके तैलीय गुण है अतः इसका नाम अग्रिकाम्ल पड़ा है (अग्र= पहला)।

नवनीतिकाम्ल क₃उ₇क ओ ओ उ। यह दो समरूपोंमें पाया जाता है। सामान्य नवनीतिकाम्ल क उ₃ क उ₂ क उ₂ क ओ ओ उ सबसे पहले मक्खनमें केवरूल नामक वैज्ञानिक द्वारा सं० १८७१ वि० में पाया गया था अतः इसका नाम नवनीतिकाम्ल पड़ा है (नवनीत=मक्खन)। समनवनीतिकाम्ल

क उ₃, क उ₃ > क उ क ओ ओ उ है।

फ़सलों का हेर-फेर

(Rotation रोटेशन)

[लेखक-कृषि अध्यापक पं० शीतलाप्रसाद तिवारी "विशारद"]

कृषिक्षेत्र (Farm) का प्रबन्ध (management) करना कृषि-विज्ञानका एक अंग है। परन्तु फ़सलोंके हेर-फेर (Rotation) का ज्ञान प्राप्त कर लेनेसे यह लाभ है कि यदि हमारे पास खाद-पांसकी अधिकता नहीं है—तो बिना (Rotation) 'रोटेशन'-अर्थात् फ़सलोंके हेर-फेरके ज्ञानके न तो हम अपने कृषिक्षेत्रसे अधिकांशमें लाभही प्राप्त कर सकते हैं—न उन अन्यान्य कृषि-सम्बन्धी हानिकारक बातोंसे अपने कृषिक्षेत्रकी फ़सलोंकी रक्षाही कर सकते हैं; जो कि बिना (Rotation) 'रोटेशन' केज्ञानके हो जाया करती हैं। इस सम्बन्धमें यह जान लेना आवश्यक है कि जिस प्रकारसे पृथ्वीके सारे जीवधारी पदार्थ कुछ-न-कुछ भोजन करके ही अपने शरीरकी रक्षा करते हैं; और बढ़ कर समयानुसार फल-फूल देते हैं; उसी प्रकार कृषिक्षेत्रकी फ़सलें भी जो कि बनस्पति-वैज्ञानिकों द्वारा जीवधारी पदार्थ सिद्ध हो चुकी हैं। कृषिक्षेत्रके खेतोंके धरातल (soil) तथा गर्भतल (Subsoil) से अपनी आवश्यकता और रुचिके अनुसार ख़ुराक लेकर अपने वानस्पतिक अंग-प्रत्यंगकी उन्नति करके तब हमें फल-फूल देती हैं।

कृषिक्षेत्रकी फ़सलें जो कि खेतोंके धरातल (Soil) और गभतल (Subsoil) से ख़ुराक खींचती हैं, वह फ़सलें अपना तो अर्थ सिद्ध कर लेती हैं। परन्तु भूमिको कमज़ोर कर देती हैं। किन्तु यहाँ पर एक और बातका जान लेना बहुत ही आवश्यक है; और वह यह है कि कृषिक्षेत्रकी हरेक प्रकारकी फ़सलें भूमिकी

शक्ति (Fertility) को अपने द्वारा बर्बाद नहीं कर देतीं ; वरन् ऐसी भी बहुतसी फ़सलें हैं। जो कि भूमिकी शक्तिको नष्ट करनेके बजाय, उनके बोने से भूमिकी शक्ति बढ़ जाती है। इसलिए हमको (Rotation) 'रोटेशन'का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। यदि हम अपने कृषि-क्षेत्रके किसी खेतमें लगातार एक ही फ़सल बोते रहेंगे। तो कुछ दिनोंमें उस खेतकी प्राकृतिक उर्वरा शक्ति (Natural Fertility) एक दम नष्ट-बर्बाद हो जावेगी। जिससे उस खेतको पुनः से सुधारकर शक्तिशाली बनाना कठिन कार्य होगा।

कृषिक्षेत्रके किसी खेतमें इस वर्ष यदि कोई फ़सल बोई गई हो—तो दूसरे साल उस खेतमें उस फ़सलको बोना चाहिये, जिससे यदि पहली फ़सलके बोनेसे खेतकी शक्ति घटी हो तो दूसरी फ़सलके बोनेसे वापिस आजाय; और यदि पहिली फ़सलसे खेतकी शक्ति बढ़ी हो तो दूसरी फ़सलसे छीन ली जाय। इसी प्रकारसे फ़सलोंका उलट फेर लगातार तीन वर्ष तक करते रहना चाहिये। इस रीति से तीन वर्षके बाद फिर वही फ़सल उस खेतमें बोना चाहिये।।जो कि पहले साल बोई गई थी। रोटेशन (Rotation) का क्रम अधिकतर तिसाला होता है।

यदि कृषिक्षेत्रके खेतोंमें तिसाला 'रोटेशन' नियमानुसार होता रहे—तो खेतकी उर्बराशक्ति घटनेके बजाय या तो बढ़ेगी—या बराबर ही रह जायगी। इसलिये यह कहना ठीक है कि 'रोटेशन'का सिद्धान्त कृषि-कर्मके लिये लाभकारी है। जैसे यदि पहिले साल हम किसी खेतमें ऐसी फ़सल बोवें, जोकि खेतकी ताक़तको खींचकर अपनी वानस्पतिक उन्नति तथा फल फूलमें लगा देगी—अर्थात् गेहूँ—यह एक ऐसी फ़सल है, जोकि खेतकी सारी ताक़त आप खींच लेती है; और विशेष कर "नाइट्रोजनस" पदार्थोंका तो खेतसे अधिकांशमें लोपही कर देती है। इसलिये गेहूँ की फ़सलके कट जानेके पश्चात् हमें अपने कृषिक्षेत्रके खेतमें वर्षाके दिनोंमें कोई ऐसीफ़सल बोना चहिये, जोकि खेतमेंसे निकले हुये 'नाइट्रोजनस्' के भागको पुनः से पूरा कर दे।

सारे 'लेग्युमिनस् प्लान्टस्'—अर्थात दालदार फ़सलें जैसेकि सनई, उर्द, मूँग, अरहर, चना, मटर इत्यादि—यह फ़सलें खेतमें बोये जानेपर खेतमें 'नाइट्रोजनस्' भागको बढ़ाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इन फ़सलोंकी जड़ोंमें छोटे-छोटे जीवाणु (Bacteria) होते हैं। जो कि वायुमंडलसे (Atmosphere) से नत्रजन (Nitrogen) ग्रहण करके उसे नत्रेत (Nitrate) की दशामें परिवर्तितकर देते हैं। ऐसा होनेसे खेतकी घटी हुई ताक़त फिरसे पूरी हो जाती है।

'रोटेशन' केही सिद्धान्तके अन्तर्गत 'मिलवां फ़सलों' (Misiture Crops) का भी बोना है। क्योंकि मिलवाँ फ़सलोंमेंसे कोई फ़सल तो खेत की ताक़तको बढ़ाती है; और कोई फ़सल घटाती है। इस घटाव बढ़ावके कारण खेतकी (Natural Ferti ity) में—अर्थात प्राकृतिक उर्बरा-शक्तिमें कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि मिलवां फ़सलें भिन्न-भिन्न प्रकारकी ख़ुराक ग्रहण करनेके कारण खेतके धरातल तथा गर्भतलमें किसी ख़ास खाद्य पदार्थकी कमी नहीं होने देतीं। जैसे ज्वार और अरहरको मिलाकर बोना खेतको लाभकारी है। साथ ही रोटेशन सिद्धान्तके अन्तर्गत भी है। इसलिये फ़सलोंके उलट-फेरके समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी खेतमें भी ऐसी दो फ़सलें लगातार एक दूसरेके बाद न बोई जावें जोकि एक ही प्रकारकी ख़ुराक खेतसे ग्रहण करने वाली हों। इससे खेतकी कमज़ोरी बढ़ जावेगी। जैसे कपासके बाद कपास—अथवा ईखके बाद ईख बोनेसे खेत की ताक़त नष्ट हो जावेगी। नियमानुसार 'रोटेशन'का क्रम कृषिक्षेत्रमें करते रहनेसे महालाभ है। प्रत्युत इसके उन स्थानोंमें तो बहुत ही लाभ है, जहां कि खादकी अत्यन्तही कमी है—अथवा खादकी बचत के साथ ही साथ और भी बहुतसे लाभ हैं। जैसे कि

बहुतसी फ़सलोंके पौधोंमें रोग और कीड़े पैदा होकर उस फ़सलको नष्ट-बर्बाद कर देते हैं। यदि यही फ़सलें खेतमें कुछ दिनों तक लगातार बोई जावें—तो इस फ़सलके रोग और हानिकारक कीड़े इतने बढ़ जावेंगे कि उनका नष्ट करना असंभव हो जावेगा।

परन्तु यदि खेतोंमें फ़सलें उलट-फेरकर बोई जाती रहेंगी—तो इन सारी हानिकारक बातोंके नष्ट होजानेकी पूर्णाशा है। खेतके धरातल और गर्भतल दोनोंहीमें फ़सलोंके लिये पर्य्याप्त मात्रामें ख़ुराक रहती है। बहुतसी फ़सलोंकी जड़ें धरातल (Soil) से ही ख़ुराक ग्रहण करती हैं-इसी प्रकार से बहुतसे फ़सलोंकी जड़ें गर्भतल (subsoil) से ख़ुराक़ ग्रहण करती हैं। यदि हम किसी वर्ष ऐसी फ़सल खेतमें बोवें, जोकि धरातलसे ख़ुराक़ ग्रहण करे तो दूसरे साल ऐसी फ़सल उस खेत में बोना चाहिये, जोकि गर्भतलसे ख़ुराक़ ग्रहण करे। ऐसा करनेसे खेतका गर्भतल और धरातल कभी भी शक्तिहीन न हो सकेगा।

'रोटेशन' के नियमानुसार हरेक ऋतुओंमें हम भिन्न २ फ़सलोंको बोकर मज़दूरों और पशुओंको इस प्रकारसे काममें बझाये रहेंगे कि न तो वह बेकार ही रह सकेंगे; और न उनपर इतना अधिक परिश्रम ही पड़ेगा कि उनका स्वास्थ ख़राब हो जावे। भिन्न २ प्रकारकी फ़सलोंके बराबर बोते रहनेसे, और उनकी निकासी करते रहनेसे नक़द रूपया भी हमें हर समय मिलता रहेगा। इन सब बातोंके विषयमें परिपूर्ण रूपेण विचार करके हमें तजवीज करना चाहिये कि भिन्न २ ज़मीनोंमें तथा भिन्न २ स्थानोंमें हम 'रोटेशन'के द्वारा कहाँतक लाभ उठा सकते हैं। बहुतसी ऐसी भूमियां हैं-जहांके खेतोंमें 'रोटेशन' कियाही नहीं जा सकता—जैसे कि कछार और खादरकी भूमियोंमें—अथवा उन भूमियों के खेतोंमें भी, जहाँ कि सिंचाई करना किसी भी कारणसे असंभव हो। खेतोंकी उर्बराशक्तिके अनुसार तथा सिंचाई और खादके ही साधनोंसे 'रोटेशन' द्वारा हम अधिकसे अधिक लाभ भी उठा सकते हैं। और खेतोंकी उर्बराशक्ति भी बनाये रख सकते हैं। नीचे हम रोटेशनकी एक सारिणी (Table) भी देते हैं।

फ़सल	बुवाईका समय	कटाईका समय
पौंडा (खाद)	जनवरी-फ़रवरी	दिसम्बर
तम्बाकू (थोड़ी खाद)	जनवरी	मार्च-अप्रल
मकाई	मई	अगस्त
गेहूँ	अक्टूबर-नवम्बर	मार्च-अप्रैल
सनई	मई	अगस्त
आलू (खाद)	सितम्बर	दिसम्बर-जनवरी
पौंड़ा (खाद)	जनवरी	

उपर्युक्त 'रोटेशन' प्रथम श्रेणीकी दूमट भूमिमें जहाँकि पानी और खाद पर्य्याप्त मात्रामें मिल सके किया जा सकता है। यह 'रोटेशन' उन भूमियोंके लिये बहुत ही लाभदायक है, जोकि बड़े-बड़े शहरोंके क़रीब हों। क्योंकि इस 'रोटेशन'में जिन-जिन फ़सलों का क्रम बांधा गया है, उनकी बिक्रीका प्रबन्ध भी उत्तम रीतिसे करना चाहिये। जो कि शहरों में ही उत्तमता से हो सकता है।

कृत्रिम रेशम (Rayon)

[ले॰ श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार]

हमारे दैनिक जीवनमें रसायन-शास्त्रका बड़ा भारी भाग है। खाने, पीने, पहनने आदि सभी कार्योंमें काम आनेवाली वस्तुओंके निर्माणमें रसायन शास्त्रने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। नील, कपूर और तरह तरहके रंग तथा तरह तरहके अन्य काममें आनेवाले पदार्थ रसायन शास्त्रकी सहायतासे कृत्रिम रूप-से तैयार किये जासकते हैं। इसकी सहायतासे हमारे मार्गकी कठिनाइयाँ दूर होती जाती हैं, हमारा मार्ग सुगम तथा जीवन आनन्दमय होता जाता है। रेशम अभीतक कीड़ोंको मारकर निकाला जाता है। अब हमें कीड़े मारनेकी आ-वश्यकता नहीं रही। रसायनज्ञोंने हमारे लिए नक़ली रेशम तैय्यार कर दिया है। चमक दमकमें वह ठीक रेशम जैसा है। उसे अंग्रेज़ीमें रेयन (Rayon) कहते हैं।

यद्यपि १८ वीं शताब्दिके मध्यमें एक फ्रैंच वैज्ञानिकको पहले पहल इस बातका कुछ आभास हुआ था कि नक़ली रेशम तैय्यार किया जा सकता है, परन्तु सबसे पहले उसे तैय्यार करनेकी विधि हिलायर डि चार्डोनेट (Helaires de Chardonnet) ने ही पेटेंट कराई। १८६१ से पहले बाज़ारमें नहीं आया। वैज्ञानिक अपनी गवेषणामें लगे रहे। उन्होंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। यद्यपि इसे बाज़ारमें सफलता प्राप्त न हुई तो भी वैज्ञानिक इससे निराश नहीं हुए। अन्तमें ३४ वर्षके निरन्तर अध्यवसाय तथा कठोर परिश्रमके बाद वैज्ञानिकोंको ऐसी सफलता हुई कि नक़ली रेशम बनानेकी ऐसी विधियाँ उन्होंने निकाल लीं कि आजकल असली रेशमसे उसकी खपत कहीं अधिक हो गई है।

बहुत दिनों तक इसे नक़ली रेशम ही कहा जातारहा। "नक़ली" कहनेसे इसके महत्वमें कमी आती देखकर शीघ्र ही इसका दूसरा नामकरण संस्कार हुआ। इसका नाम रखा गया रेयन। यह एक फ्रेंच भाषाका शब्द है जिसका अर्थ होता है "चमकीला और श्वेत"। इस नये नामके परि-वर्तनसे इसके घटिया तथा कमक़ीमतके होनेकी भावना ग्राहकोंके दिलमें उत्पन्न होनी बन्द हुई।

यह बहुत उपयोगी पदार्थ है। इसकी महिमा इसीलिए नहीं है कि यह देखने में रेशमसे मिलता जुलता है अपितु इसकी महिमा इसके अपने गुणोंके कारण है।

असली रेशम कीड़ोंसे बनता है। कीड़े पत्ते आदि खाते हैं। उनके खानेसे उन कीड़ोंके मुंहसे एक लेसदार पदार्थ निकलता है। हवाके स्पर्श होनेपर वही पदार्थ सूखकर कड़ा हो जाता है। यही रेशमके कीड़ेका घर होता है जिससे हमें रेशम प्राप्त होती है। रेशमका कीड़ा जिस वस्तुको खाता है रासायनिक परिभाषामें उसे काष्टोज या सैलूलोज़ (Cellulose) कहते हैं। रुईके तन्तु, वृक्ष-के गूदा आदि सैलुलोज़के अच्छे उदाहरण हैं। वैज्ञा निकोंने भी इसी सैलुलोज़पर परीक्षण किये। इस-से 'रेयन' बनानेकी ३, ४ विधियाँ हैं। उन सबमें पहले सैलूलोज़पर रासायनिक पदार्थोंकी क्रिया कराकर उन्हें लेसदार द्रवके रूपमें ले आते हैं। इस कार्यमें बड़ी बारीकीकी आवश्यकता है। इस लेसदार द्रवसे जितना लम्बा तार बनाना चाहें बना सकते हैं।

कीड़ेसे बनाये रेशमका तार सब जगहासे एक जैसा मोटा तथा मज़बूत नहीं होता। परन्तु इस कृत्रिम रेशमका तार एक रस होता है। जिस तरह मनुष्यकी बनाई हुई कलायें नियमपूर्वक कार्य करती हैं इस प्रकार कीड़ेका मुँह नहीं कर सकता। उसके मुंहमें कोई "यान्त्रिक नियामक" (Mechanical Regulator) लगा हुआ नहीं

होता। यही कारण है कि उसका तार एक रस नहीं होता। कीड़ेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। वह जैसा चाहता है और जब चाहता है वैसा ही वह करता है। इसी लिए उसके रेशमका तार भी स्वेच्छाचारी ही होता है।

कीड़ेके उदराशयमें सैलुलोज़का लेसदार द्रव बनानेके लिए वहाँ किसी चतुर वैज्ञानिककी आवश्यकता नहीं होती। कीड़ा निश्चिन्त हो बैठा रहता। उसे क्रियाके बिगड़नेका डर नहीं होता। बना बनाया माल बाहर तैय्यार होकर आजाता है। उसे तो केवल कच्चा माल पेटमें भरना पड़ता है। परन्तु वैज्ञानिक मैशीनमें माल डालकर चुप-चाप नहीं बैठ सकता। यदि सैलूलोज़पर रासाय-निक पदार्थकी क्रियामें थोड़ीसी भी अशुद्धि हो गई तो उसके तारकी दृढ़तामें अन्तर आ जायगा। यदि अधिक अन्तर हो गया तो सम्भव है कि तन्तु ही न बनने पावे।

इसके बनानेमें लकड़ी अथवा रुई काम आती है। पहले उसे एक बड़े बर्तनमें डालकर भाप तथा अन्य रासायनिक उपकरणोंकी सहायतासे साफ़ करते हैं। इस प्रकार उबालने और भाप तथा रासायनिक पदार्थोंकी क्रिया करानेसे चिक-नाई और गोंद आदि अन्य पदार्थ अलग हो जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध सैलूलोज बच रहता है। फिर इसका रंग उड़ाते हैं।

इस प्रकार सैलूलोज़के तन्तु बच रहते हैं। इन तन्तुओंको बड़े बड़े बेलनोंमें पेरकर गन्नेकी तरह इनका पानी अलग कर देते हैं। फिर बड़े बड़े बेलनोंसे दबाकर इन तन्तुओंसे बड़ी बड़ी काग़ज़की तरहकी चादरें बना लेते हैं। इन चादरोंकी मोटाई साधारण स्याही चूसके काग़ज़ जितनी होती है। इन चादरोंमें से १ फुट लम्बे और एक फुट चौड़े वर्ग टुकड़े काट लिये जाते हैं।

सैलुलोज़से कृत्रिम रेशम (Rayon)

इन टुकड़ोंको दाहकसोडे या सोडाक्षार (Caustic Soda) के घोलमें डुबो देते हैं। उसमें ये २२ घण्टेतक पड़े रहते हैं फिर इन्हें दबाते हैं जिससे इन में उपस्थित अधिक पानी निकल जाय। अब इन्हें घूमते हुए चाकुओंके चक्र में डालते हैं जहां इनके बहुत छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं। इन टुकड़ों को ४८ घं० तक एक ही तापक्रम पर रखते हैं। इस विधिका नाम Mercerising Process है।

दाहक सोडा प्रबल क्षार होता है। उसके साथ सैलुलोज़की क्रिया होनेसे जो पदार्थ बनता है उसे क्षार सैलुलोज़ कहते हैं। इसे निश्चय मात्रा कर्बन उद्गन्धाइन (Carbon Bisulphite) से मिला कर खूब हिलाते हैं। इस प्रकार दो तीन घण्टेतक इन्हें अच्छी तरह मिलाते हैं। इस क्रियासे सैलुलोज़ ज़ैन्थेट (Cellulose Xanthate) बनता है। इसका रंग नारङ्गी होता है। यह कुछ लुचलुचा Plastic होता है और पानीमें आसानीसे घुल जाता है।

इसमें थोड़ा सा दाहक सोडा डालकर फिर खूब हिलाते हैं, तब तक इन्हें हिलाते रहते हैं जबतक कि ये एक रस न हो जायँ। यही अंतिम काम है। इसके बाद एक लेसदार द्रव तैयार हो जाता है जो रङ्गरूपमें गाढ़े शीरेसे मिलता जुलता सा होता है। अब इसे बड़े बड़े बर्तनोंमें डाल देते हैं और कुछ समयतक ऐसे ही पड़ा रहने देते हैं ताकि वह अच्छी तरह साफ़ हो जाय। फिर इसे छान लेते हैं। छाननेसे मिट्टी आदि मैल दूर हो जाते हैं।

अब इस लसदार (Viscous) पदार्थके तन्तु बनानेकी बारी आती है। यह पदार्थ एक क्षारीय पदार्थ है। अम्लके साथ सम्पर्क होनेपर यह कड़ा हो जाता है। यही इसका रहस्य है।

इस लसदार द्रवको एक नलीमें डालते हैं। नली अम्लमें डूबी होती है। नलीके पेंदेमें १४, १५ छेद होते हैं। नलीमें द्रवपर दबाव डालते हैं तो छेदोंमेंसे होकर बाहर वेगसे निकलता है। निकलते ही अम्लके साथ मिलकर वह कड़ा हो जाता है। इस लिए उसके तार बनते जाते हैं। ये तार बहुत

महीन होते हैं क्योंकि जिन छेदोंमेंसे होकर द्रव निकलता है उनकी मोटाई कुल एक इञ्चके १० हज़ारवें भागके दुगुनेसे ५ गुने तक होती है। ये छेद बिना तेज़ प्रकाशके साधारणतया आँखसे नहीं देखे जा सकते।

एक चरखीपर इन पतले तारोंको लपेटते जाते हैं। फिर इन्हें बटकर इनका धागा बना लेते हैं। धागा बनानेके लिए कभी कभी तारोंको अधिक सख्त होनेके पहले ही नियमपूर्वक घूमती हुई चर्खियोंपर डालकर बट लेते हैं और फिर उन्हें रासायनिक पदार्थोंसे धो कर कड़ा कर लेते हैं। यद्यपि ये तार बड़े कोमल होते हैं पर मिला कर बटे जानेपर इनका बड़ा मज़बूत धागा बन जाता है। बटनेके लिए एक चर्खीसे उतार कर दूसरी चर्खीपर चढ़ाते जाते हैं। फिर इन्हें रीलों पर लपेट लेते हैं।

अन्तमें इसे धोकर सुखा लेते हैं। अब यह फिर वही शुद्ध सैलूलोज़ रह गया। परन्तु अब यह अपने पुराने रूपको छोड़कर नए रूपमें आगया है। अब इसमें चमक आगई है। इसका धागा चमकता है। इसको ही Rayon अथवा नक़ली रेशम कहते हैं।

यह रेशम वास्तवमें वनस्पतिक तन्तु (Fibre) ही है। इसकी तथा सैलूलोज़ की रसायनिक बनावट एक है। इनमें कोई भेद नहीं होता। वास्तविक रेशम वनस्पतिक पदार्थ नहीं, वह कृमि-जन्य है। उसमें नत्रजन भी होता है जो कि इसमें नहीं है। सूखी अवस्थामें रेयनका तार रेशमके तारसे मज़बूतीमें आधा होता है। गीले होनेपर तो रेयनमें मज़बूती रहती ही नहीं। इस लिए इसके कपड़ोंको धोनेके समय विशेष ध्यान रखना चाहिये। चाहे कितना भी गर्म पानी क्यों न डाला जाय यह पीला नहीं पड़ता। रेशमको धोनेमें काममें आनेवाले साबुन तथा अन्य पदार्थ इसको धोनेके काममें भी आ सकते हैं। सूती कपड़ाकी तरह इसके कपड़ों के साथ भी निशास्ते (Starch) का उपयोग किया जा सकता है जिससे कि कपड़ा कड़ा हो जाय।

रंगोंसे विशेष प्रीति

इसकी चमक जाती नहीं। सावधानीसे धोकर सुखानेसे फिर वैसीकी वैसी आजाती है। इसके तार चिकने तथा लम्बे होते हैं। रुई और ऊनके कपड़ोंकी तरह इसके कपड़े कहींसे मोटे कहींसे पतले नहीं होते।

इसपर रंग अच्छी तरह चढ़ जाने और चमकके स्थिर रहनेसे इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। ऊनके साथ इसके कुछ तार मिला देनेसे उसमें विचित्र चमक आजाती है। कइयोंको आशंका थी कि बाज़ारमें इसके पर्याप्त मात्रा पहुँच जानेपर शायद इसकी माँगमें कमी होजाय। परन्तु इसकी उपयोगिताको देखते हुए उनकी यह आशंका व्यर्थ है। आजकल इसकी जितनी माँग है उतना माल कारखानोंमें तैय्यार नहीं हो पाता।

अन्य वस्तुओंके तन्तुओंके साथ इसे मिलानेसे बड़े रोचक तथा आकर्षक कपड़े बनते हैं। रेशमका धागा एक तरफ़ और दूसरी तरफ़ रेयनका धागा लगाकर बनाये कपड़ेको रंगनेसे उसका रंग एक तरफ़से कुछ और दूसरी ओरसे कुछ और ही मालूम पड़ता है। सूती और रेयनके कपड़ोंपर एक ही रंग चढ़ते हैं। सूती कपड़ोंमें चमक नहीं आती पर इसके कपड़े ख़ूब चमकते हैं।

नक़ली रेशम जुराब, बुनियान, कुर्तियाँ तथा दस्ताने और इसी प्रकारके अन्य वस्त्रोंके (जो जुराबकी तरह बुनकर बनाये जाते हैं) बनानेके काममें बहुत आता है। इसमें एक और भी गुण है। यह शरीरके पसीने आदिको सोख लेता है पसीना आदि इसमें टिकने नहीं पाता। इसमें से झट उड़ जाता है। इसलिए यह शरीरके साथ

लगे रहने वाले वस्त्रोंके बनानेके लिए अतीव उपयोगी है। पहले लोगोंका ख्याल था कि यह झट जल पड़ती है परन्तु परीक्षणोंसे यह बात विपरीत प्रमाणित हुई।

कपड़ेके व्यापारमें इसने नवयुग उपस्थित कर दिया है। फ्रांसमें इसका जन्म हुआ। १६२३ तक वहां इसकी कुछ भी क़द्र न हुई। परन्तु दो ही वर्षमें इसकी इतनी क़द्र बढ़ी कि अब फ्रांस इसकी मांग पूरी नहीं कर सकता। कनाडामें वन बहुत हैं। वहाँ लकड़ी मिलना सुगम है। इंगलैण्डकी ओरसे वहां भी इसका कार्य विशाल आयोजनाके साथ प्रारम्भ किया गया है। जर्मनीने भी इसका निर्माण प्रारम्भ कर दिया है। व्यापारी इसे पसन्द करने लगे हैं। इसकी सुन्दरता तथा उपयोगिता आगे सबको सिर झुकाना पड़ा है। अब इसकी मांग दिनोंदिन बढ़ती जारही है।

बैल्जियममें जितना रेयन तैयार होता है वह खप जाता है। स्विटज़रलैण्डमें इसकी मांग बढ़ी रही है। इटलीमें बना रेयन उतना अच्छा नहा होता। वे बाज़ार दरको अधिक देखते हैं न कि इसकी अच्छाईको। १६२५ में रेयनके बनानेमें उसका नम्बर दूसरा रहा और फ्रांसका पाँचवाँ। वह सबसे आगे बढ़ना चाहता है। दक्षिण अमेरिकामें इसकी खपत बहुत है परन्तु वहां यह बहुत बनता नहीं।

भारतमें भी इसका उपयोग बढ़ता जारहा है। रेशमके घर चीनमें भी यह अच्छी तरह प्रवेश पा चुका है। जापान वाले भी इसे खरीदने लगे हैं। इस तरह यह सारे संसारमें पहुँच गया है। असली रेशमका प्रयोग इसके आगे दिनोंदिन कम होता जारहा है।

इसको तैय्यार करनेमें सबसे पहला नम्बर अमेरिकाका है। वहां इसकी खपत भी अच्छी है। १९२५ में सारे संसारमें जितना रेयन खर्च हुआ उसका ½ भाग संयुक्त देश (United States) अमेरिकाने दिया।

इसकी कम क़ीमत और चमक तथा सौन्दर्यके आगे असली रेशम न ठहर सकेगा। बाज़ारमें इसकी प्रतिष्ठा दिनोंदिन बढ़ती जारही है। युद्धके समयमें भी इसके दामोंमें कोई अन्तर नहीं पड़ा था जबकि अन्य सब प्रकारके कपड़ोंके दाम बेतरह चढ़ गये थे। यह सैलूलोज़से बनता है। सैलूलोज़का सम्बन्ध है वानस्पतिक जीवनसे। इसलिए इसकी तैय्यारीके लिए कच्चा माल मिलनेमें कभी बाधा नहीं पड़ सकती। इसलिए घटना-चक्रके अनुसार इसकी दर उतरती चढ़ती नहीं।

यदि यह किसी और प्रकारके कपड़ेमें मिला हो तो ग्राहकको इसके मेलकी सूचना दे देनी चाहिए। रेशम, ऊन तथा सूत का रेयन प्रति द्वन्द्वी नहीं परन्तु उनका सहयोगी है। आजकल कपड़े वाले अन्य सब तरहके कपड़ोंमें इसको मिलाने लगे हैं जिससे कपड़ेकी सुन्दरता पहलेसे कहीं अधिक होजाती है।

सूर्य्य-सिद्धान्त

[ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस्.-सी., एल. टी., विशारद]

ग्रहण देखना कब सम्भव है:—

स्वच्छत्वाद् द्वादशांशोपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते ।
लिप्तात्रयमपिग्रस्तं तीक्ष्णत्वान्न विवस्वतः ॥१३॥

अनुवाद—(१३) चन्द्रमाका १२ वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छताके कारण देखा जासकता है परन्तु सूर्यकी तीन कला भी ग्रस्त हो तो सूर्यकी तीक्ष्णताके कारण नहीं देखपड़ता।

विज्ञान भाष्य—इसका अर्थ करनेमें टीकाकारोंने बड़ा मत-भेद प्रकट किया है। आचार्य रंगनाथजी, तथा उनके अनुयायी माधव पुरोहित जी और पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी जी यह अर्थ लगाते हैं कि चन्द्रमाका १२ वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छताके कारण नहीं देख पड़ता। परंतु यह अर्थ मेरी समझमें ठीक नहीं जंचता। स्वच्छताका अर्थ तीक्ष्णता नहीं लिया जा सकता। स्वच्छताके शब्दसे ही यह बोध होता है कि चन्द्रमाकी ज्योति स्वच्छ या स्पष्ट होती है इसलिए बारहवां भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छता पूर्वक स्पष्ट देखा जासकता है। जैसा अर्थ मैंने ऊपर लिखा है वैसाही अर्थ श्री विज्ञानानन्द स्वामीने अपने बंगला अनुवादके पृष्ठ २०३ पर किया है।

इस सम्बन्धमें भास्कराचार्य*, ब्रह्मगुप्त इत्यादिने लिखा है कि चंद्रमाके १६ वें भागसे कम ग्रहण हो तो नहीं देखा जा सकता और सूर्यके १२ वें भागसे कम ग्रहण होतो नहीं देखा जासकता। इससेभी सूर्यसिद्धान्तके पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ वही ठीक जानपड़ता है जो मैंने किया है। ब्रह्मगुप्त जीने स्वच्छताका शब्द इसी अर्थमें प्रयोग किया है जैसा कि इनके अवतरणोंसे प्रकट होता है।

*इन्दोर्भागः षोडशः खण्डितोऽपि तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः।
तेजस्तैक्ष्ण्यात् तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो नादेश्योतोऽल्पोग्रहो बुद्धि मद्भिः ॥३७॥
सिद्धान्त शिरोमणि, गणिताध्याय चन्द्रग्रहणाधिकार

नक्षत्रादि शशिवदन्यद् ग्रहणं तैक्ष्ण्याद्रवेरनादेश्यम्।
द्वादशभागादूनं स्वच्छत्वात् षोडशादिन्दोः ॥२०॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त; सूर्यग्रहणाधिकार

छादकके केन्द्रका मार्ग खींचना—

स्वसञ्ज्ञितास्त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु बिन्दवः ।
तत्र प्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मौक्षिक मध्योः ॥१४॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यान्मुखपुच्छेविनिःसृतम् ।
प्रसार्य सूत्र द्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत् ॥१५॥
तत्र सूत्रेण विलिखेत् चापं बिन्दुत्रय स्पृशा ।
स पन्था ग्राहकस्योक्तो येनासौ सम्प्रयास्यति ॥१६॥

अनुवाद—(१४) स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल में ग्राहक का केन्द्र जहां जहां होता है उन बिन्दुओं का पता विक्षेपाग्र बिन्दुओंसे ही लगाया जाता है। इन तीन बिन्दुओंमें से स्पर्श और मध्य बिन्दुओंसे तथा मध्य और मोक्ष बिन्दुओंसे (१५) मत्स्य बनावे। प्रत्येक मत्स्यको दो समान भागोंमें विभाजित करनेवाली और उसके मुख और पुच्छसे होकर निकलनेवाली रेखाएं बढ़ानेपर जिस बिन्दुपर मिलती हैं (१६) उसको केन्द्र मानकर एक ऐसा धनु बनावे जो पूर्वोक्त तीन बिन्दुओंको स्पर्श करे तो इसी धनुपर ग्रहणकाल-में छादकके केन्द्रका मार्ग होता है।

विज्ञान भाष्य—यदि दो बिन्दुओंमें से प्रत्येकको केन्द्र मानकर दूसरे बिन्दु की दूरीपर दो धनु खींचे जाँय तो उनके बीचमें जो क्षेत्र बनता है वह मछलीके आकारका होता है। ऐसे आकारको तिमि या मत्स्य कहा जाता है (देखो पृष्ठ ३२७) इसी प्रकार का मत्स्य बनानेका नियम १४ वें श्लोकमें बतलाया गया है। स्पर्श और मध्यकालके छादकके केन्द्रोंसे तथा मध्य और मोक्षकालके छादकके केन्द्रोंसे जो दो मत्स्य बनाए जाते हैं उनकी सामान्य जीवाएं (common chords) बढ़ानेपर जिस विन्दुपर मिलती हैं उसीको छादकके केन्द्रके मार्गका केन्द्र माना गया है और इसी केन्द्रसे छादकके केन्द्रोंको स्पर्श करने वाला धनु छादकके केन्द्रका मार्ग माना गया है। यह त्रिप्रश्नाधिकारके ४१वें श्लोकके भाभ्रम-रखाके खींचनेके नियमकी तरह है, और उसी प्रकार स्थूल भी है। इस नियमसे छादकके केन्द्रका जो मार्ग सिद्ध होता है उससे यथार्थ मार्गका अंतर बहुत कम होता है। इसलिए आगे लिखे हुए श्लोकोंके अनुसार इससे जो काम लिया जाता है वह व्यवहारके लिए पर्याप्त शुद्ध है।

किसी इष्टकालमें ग्रहणका परिलेख खींचना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात्प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम् ।
अवशिष्टाङ्गुल समां शलाकां मध्यविन्दुतः ॥१७॥
तयोर्मार्गोन्मुखो दद्यात् ग्रासतः प्राग्ग्रहाश्रिताम् ।
विमुञ्चतो मोक्ष दिशि ग्राहकाध्वनमेवसा ॥१८॥
स्पृशेद्यत्र ततोवृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत् ।
तेन ग्राह्याद्यदाक्रान्तं तत्तमोग्रस्तमादिशेत ॥१९॥

अनुवाद—(१७) गणितसे जानेगये इष्टकालके ग्रासको मानैक्यखंडसे घटानेपर जो शेष आवे उसके अंगुल बनाकर इसीके समान एक शलाका अथवा सीधी लकड़ी लेकर परिलेखके केन्द्रसे (१८) यदि इष्टकाल ग्रहणके मध्यकालसे पहले हो तो स्पर्श विन्दुकी ओर और यदि इष्टकाल मध्यकालके उपरान्त हो तो मोक्षविन्दुकी ओर छादकके केन्द्रके मार्गपर रखो और देखो कि जब शलाकाका एक सिरा केन्द्रपर है तब इसका दूसरा सिरा छादकके केन्द्रके मार्गको कहां छूता है, (१९) जहां छूवे वहीं इष्टकालमें छादकका केन्द्र होगा। इसी विन्दुको केन्द्र मानकर छादकके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वही इष्टकालमें छादकका विम्ब होगा। यह छाद्य विम्बको जितना ढक लेगा उतनाही भाग इष्टकालमें ग्रस्त होगा और इस समयका जो परिलेख होगा वही इष्ट ग्रासका परिलेख होगा।

विज्ञान भाष्य—यह काम आजकल परकारकी सहायतासे सहज ही हो सकता है। इन तीन श्लोकोंका सार यह है कि जब हमें चन्द्रग्रहणाधिकारके श्लोक १८-२० के अनुसार इष्टकालका ग्रास ज्ञात होजाय तब इसका परिलेख कैसे खींचना चाहिए। पृष्ठ ६५७ के चित्र ९९ के संबंधमें बतलाया गया है कि चन्द्रमाका ग्रस्त भाग ज झ = छझ + चज — च छ = मानैक्यार्ध—चन्द्रमाके केन्द्रसे भूछायाके केन्द्रका अंतर। इसलिए यदि मानैक्यार्धसे ग्रस्तभाग घटाया जाय तो छादक और छाद्यके केन्द्रोंकी दूरी ज्ञात हो सकती है। जब वह दूरी जान ली गयी और छाद्यका केन्द्र तथा छादकका मार्ग ज्ञातही है तब छादकका स्थान जान लेना कुछ कठिन नहीं है। यदि परकार-

के दोनों भुजोंकी नोकोंकी दूरी छादक और छाद्यके केन्द्रोंकी दूरी के समान करली जाय और छाद्यके केन्द्रको केन्द्र मानकर एक धनु खींचा जाय तो वह छादकके मार्गको दो विन्दुओंपर काटेगा। जो विन्दु मध्यविन्दुसे स्पर्श विन्दुकी ओर होता है वहां छादक मध्यकालके पहले रहता है और जो विन्दु मध्य-विन्दुसे मोक्ष विन्दुकी ओर होता है वहां छादक मध्यकालके पीछे रहता है। इस विन्दुको जानकर छादकके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वह छाद्यको जहांतक ढक लेगा वही ग्रस्तभाग होगा। इस प्रकार किसी इष्टकालका परिलेख सहज ही खींचा जासकता है।

सर्वग्रास ग्रहणके आरंभ या अंतका परिलेख खींचनेकी रीति—

मानान्तरार्धेनमिता शलाकां ग्रासदिङ्मुखीम्।
निमीलनाख्यां दद्यात्सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत्॥२०॥
ततो ग्राहक खण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत्।
तद् ग्राह्यमण्डल युतिर्यत्र तत्र निमीलनम्॥ २१॥
एवमुन्मीलने मोक्षदिङ्मुखीं सम्प्रसारयेत्।
विलिखेन्मण्डल प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत्॥ २२॥

अनुवाद—(२०) परिलेखके केन्द्रसे अर्थात् ग्राह्य विम्बके केन्द्रसे मानान्तर खंडके समान एक शलाका छादकके मार्गपर स्पर्श विन्दुकी ओर इस प्रकार रखे कि शलाकाका एक सिरा केन्द्रपर और दूसरा सिरा छादकके मार्गको स्पर्श करे। इसी स्थानपर सम्मीलनके समय छादकका केन्द्र होता है। (२१) इसको केन्द्र मानकर ग्राहकके विम्बार्धके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य विम्बके जिस विन्दुपर स्पर्श करेगा उसी स्थानपर सम्मीलनका आरंभ होगा। (२२) इसी प्रकार मानान्तर खंडके समान शलाकाको मोक्षविन्दुकी ओर रखा जाय तो शलाकाका सिरा छादकके मार्गको जहां स्पर्श करेगा उस विन्दुको केन्द्र मानकर ग्राहकके व्यासार्धके समान त्रिज्यासे जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य बिम्बको जहां स्पर्श करेगा वहीं उन्मीलन होगा अर्थात् इसी विन्दुसे सर्वग्रास ग्रहणका अंत होगा।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या करनेकी बहुत आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह चित्र १०० से स्वयम् स्पष्ट है। सम्मीलन या उन्मीलन कालके समय छाद्य और छादकके केन्द्रोंका अंतर मानान्तर खंडके समान होता है। इसलिए जब हमें छाद्यका केन्द्र, छादकका मार्ग तथा छाद्य, और छादकके केन्द्रोंका अंतर ज्ञात हैं तब छादकका केन्द्र स्थिर करना कठिन नहीं हो सकता। हाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि जब हमें सम्मीलन कालका परिलेख खींचना हो तब स्पर्शकी दिशामें और जब उन्मीलन कालका परिलेख खींचना हो तब मोक्षकी दिशामें शलाका रखनी चाहिए। यह काम भी आजकल परकारसे सहज ही लिया जा सकता है। परकार की दोनों नोकों का अंतर मानान्तर खंडके समान करके इसकी एक नोकको केन्द्र पर रखकर दूसरी नोकसे एक धनु खींचे जो छादक के मार्गको दो विन्दुओं पर काटेगी। जो विन्दु स्पर्शकी ओर होगा वहीं सम्मीलन कालमें छादकका केन्द्र होगा और जो विन्दु मोक्षकी ओर होगा वहीं उन्मीलन कालमें छादकका केन्द्र होगा। जब छादकका केन्द्र स्थिर कर लिया गया तब

छादकके बिम्बार्ध के समान त्रिज्यासे वृत्त खींचकर सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ और अंतका स्थान जानलेना कुछभी कठिन नहीं होता।

ग्राह्य बिम्ब का रंग कैसा होता है—

अर्धादूने स धूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकल ग्र ॥ २३ ॥

अनुवाद—जब चन्द्र बिम्बका आधेसे कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भागका रंग धुएँकी तरह होता है। आधेसे अधिक ग्रस्त होनेपर ग्रस्त भाग काला देख पड़ता है। जब चन्द्र बिम्बका बहुतसा भाग ग्रस्त होजाता है और थोड़ाहीसा बचा रहता है तब ग्रस्त भागका रंग लाली लिये हुए काला होता है। परन्तु सर्वग्रास ग्रहणका रंग लाली लिये हुए भूरा होता है। (सूर्यग्रहणमें सूर्यके ग्रस्त भागका रंग सदैव काला होता है।)

विज्ञान भाष्य—जबतक चन्द्रमाका प्रकाश तेज रहता है तबतक इसकी तुलनामें ग्रस्त भागका रंग धूम्र या काला देख पड़ता है। परन्तु जब चन्द्रमाका थोड़ाहीसा भाग बचा रहता है तब इसका प्रकाश तेज रहित होजाता है। इसलिए ग्रस्त भागका रंग कुछ कुछ लाल भी देख पड़ता है। लालीका कारण यह है कि सूर्यका सूक्ष्म प्रकाश वायुमंडलसे वर्तित होकर चन्द्र बिम्बपर पड़ता है इसलिए काले ग्रस्त भागपर कुछ लाली आजाती है। जिस समय पूरा चन्द्र बिम्ब छायामें आजाता है उस समय चन्द्र बिम्ब काला न होकर लाली लिए हुए भूरा देख पड़ता है। इसका कारण भी सूर्यका वर्तित प्रकाश है जो पृथ्वीके वायुमण्डलसे घूमकर चन्द्रमापर पड़ता है। यदि वायुमण्डल न होता तो चंद्रमाके ग्रस्त भागका रंग भी सदैव काला ही होता जैसा कि ग्रस्त सूर्यका रंग होता है।

वायुमण्डलके वर्तनके कारण कभी कभी एक आश्चर्य-जनक घटना और भी देख पड़ती है। उदय या अस्तकालमें जब ग्रहण लगता है तब कभी कभी चमकते हुए सूर्यकी उपस्थितिमें ग्रस्त चन्द्रमा देखपड़ता है जिससे एक ओर चन्द्रमामें ग्रहण लगा रहता है और दूसरी ओर सूर्य अपने तेजसे पृथ्वीको प्रकाशमान किये रहता है। ऐसी घटनाएँ सन् १६६६, १६६८ और १७५० ईस्वीमें देखपड़ी थीं।

परिलेख खींचनेका रहस्य गुप्त रखना चाहिए—

रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्य चित्।
सुपरीक्षित शिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥ २४ ॥

अनुवाद—परिलेख खींचनेकी विद्या देवताओंकी गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे वैसे आदमीको न बतलानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्यको जो एक वर्ष तक साथ रह चुका हो यह विद्या बतलानी चाहिए।

इति परिलेखाधिकार नामक ६ठें अध्यायका अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—इसका सार यही जान पड़ता है कि परिलेख खींचनेकी रीति सुगमता पूर्वक समझमें नहीं आ सकती इस लिए जो इसके तत्वको अच्छी तरह नहीं समझ सकता उसको बतलानेसे कोई लाभ नहीं है। यह जाननेके लिए कि इस

* देखो Parker's Astronomy page, 171.

विद्याका कौन अधिकारी हो सकता है एक वर्षकी अवधि अध्ययन बतला दी गयी है। जो शिष्य एक वर्षतक इस विद्याका करे वही इसके रहस्यको समझ सकता है।

अब चन्द्रग्रहणका परिलेख खींचनेका एक उदाहरण देकर यह बतलाया जायगा कि पाश्चात्य अर्वाचीन ज्योतिषी सूर्यग्रहणकी गणना कैसे करते हैं और यह कैसे मालूम करते हैं कि भूभागके किन किन स्थानोंमें सर्वग्रास ग्रहण देख पड़ता है तथा किन किन स्थानोंमें कितना ग्रास देखपड़ता है। इसके उपरान्त संक्षेपमें यह भी बतलाया जायगा कि खाल्दिया और यूनान देशवाले ग्रहणकी गणना कैसे करते थे। सूर्य ग्रहणका परिलेख खींचनेका उदाहरण विस्तारभयसे छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण—संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमाके चंद्रग्रहणका परिलेख खींचना—

यह तो प्रकटही है कि परिलेख खींचनेके लिये तात्कालिक स्फुटवलन और चन्द्रमाके शरके ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है और छादक ग्रहके केन्द्रका मार्ग खींचनेके लिए स्पर्शकाल, मध्यकाल और मोक्षकालके स्फुटवलनों और चंद्र-शरोंके ज्ञानकी आवश्यकता होती है। इनमेंसे स्पर्श और मोक्षकालके स्फुटवलनोंकी गणना चन्द्र ग्रहणाधिकार पृष्ठ ७१८-७२१ में की गयी है। इसलिए अब ग्रहण के मध्यकाल के स्फुटवलन की गणना भी कर लेनी चाहिये।

आक्षवलन की गणना—

चन्द्रमा का पूर्णिमान्तकालिक शर = ८-७६ अथवा ८-८ कला (पृष्ठ ७०८)

पूर्णिमान्तकालिक चंद्र-भोगांश २९८°३४′ (पृष्ठ ७०८)
अयनांश २२°४०′ (पृष्ठ ७१२-७१३)

पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र सायनभोग ३२१°१४′

पूर्णिमान्तकलिक चन्द्र मध्यम क्रान्तिज्या

= ज्या २३° २७′ ज्या ३२१°१४′

= ·३९७९ × ज्या ३८°४६′

= ·३७९ × ·६२६१

= ·२४९१

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्ति = १४°२५′·३ दक्षिण

" " शर ८′·८ उत्तर

∴ " " स्पष्ट क्रान्ति = १४° १६′·५ दक्षिण

काशीके सूर्योदयसे स्पर्शकालतकका समय = ४५ घड़ी ५४ पल

स्थित्यर्ध = ४ " ४२ "

सूर्योदयसे ग्रहणके मध्यकालका समय = ५० " ३६ "

सूर्योदयसे मध्यरात्रिका समय (पृ० ७१५) = ४६ ११

मध्यरात्रिके उपरान्त ग्रहणका मध्यकाल = ४ " २५ "

इसलिए ग्रहणके मध्यकालमें पृथ्वीकी छायाके केन्द्रका पश्चिम नतकाल ४ घड़ी २५ पल अथवा २६५ पल या १५९० असु हुआ। यही मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमाका भी नतकाल हुआ क्योंकि इस समय भूछाया और चन्द्रमाके केन्द्रोंका भोगांश समान होते हैं। इसलिए

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमाका नतकाल = १५९० असु = १५९० = २६° ३०′

चन्द्रमाकी मध्यग्रहणकालिक चरज्या = स्परे २५°२०′ स्परे १४°१६′·५

= ·४७३४ × ·२५४४

= ·१२०४

∴ मध्यग्रहण कालिक चरांश = ६°५५′

पृष्ट ४३१ के समीकरण (ग) के अनुसार, मध्यकालके चन्द्रमाकी नतांशकोटिज्या = (कोज्या २६°३०′ − ज्या ६°५५′)

× कोज्या २५°२०′ × कोज्या १४°१६′·५

= (·८९४९ − ·१२०४) × ·९०३८ × ·९६९१

= ·७७४५ × ·९०३८ × ·९६९१

= ·६७८४

∴ मध्यग्रहणकालिक नतांश = ४७°१७′

पृष्ठ ४०७ के अनुसार,

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४°१६'·५}{\text{ज्या } ४७°१७' \times \text{कोज्या } २५°२०' + \text{कोस्परे } ४७°१७' \times \text{स्परे } २५°२०'}$$

$$= \frac{·२४६५}{·७३४७ \times ·९०३८} + ·९२३३ \times ·४७३४$$

= ·३७१२ + ·४३७१

= ·८०८३

∴ अग्रा = ५३°५६′

∴ पच्छिम विन्दुसे चन्द्रमाका मध्यग्रहणकालीन दिगंश

= ५३°५६′ दक्षिण

∴ चित्र १०१ के अनुसार,

स्परे (स उ ग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्श रेखा

= कोज्या ५३°५६′ स्परे ४७°१७′

= ·५८८७ × १·०८३१

= ·६३७६

∴ स उ ग = ३२°३१′

∴ मध्यकालिक चन्द्रमाके समप्रोतवृत्तका नतांश = ३२°३१′

$$∴ \text{ज्या (आक्षवलन)} = \frac{\text{ज्या} ३२°३१' \times \text{ज्या } २५°२०'}{\text{कोज्या } १४°१६'·५}$$

$$= \frac{·५३७५ \times ·४२७९}{·९६९१}$$

$$= \frac{·२३००}{·९६९१}$$

= ·२३७३

∴ आक्षवलन = १३°४४′ दक्षिण, क्योंकि चन्द्रमा पच्छिम कपालमें है।

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमाका सायन भोगांश = ३२१°१४′

इसमें ९०° जोड़नेपर चन्द्रमाका सायन भोगांश = ५१°१४′ जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या } २३°२७' \times \text{ज्या } ५१°१४'}{\text{कोज्या } १४°१६'·५}$$

$$= \frac{·३९७९ \times ·७७९७}{·९६९१}$$

$$= \frac{·३१०२}{·९६९१}$$

= ·३२०१

∴ आयनवलन = १८°४०′ उत्तर

इस लिए मध्यग्रहणकालिक स्फुट वलन = १३°४४′ दक्षिण +
१८°४०′ उत्तर
= ४°५६′ उत्तर

इस लिए स्पर्श, मध्य और मोक्षकालके परिलेखके आवश्यक अङ्क यह हुए:—

स्पर्शकाल संबंधी—

स्फुटवलन=१९°१०′ उत्तर (ष्ठ ७१९)

∴ ज्या १९°१०′=११२८′=$\frac{११२८}{७०}$=१६ अंगुल

चन्द्रशर=१४′·६ उत्तर (पृष्ठ ७१४)

=$\frac{१४·६}{३}$अंगुल=४·८७ अंगुल

मध्यकाल संबंधी—

स्फुटवलन=४°५६′ उत्तर

∴ ज्या स्फुटवलन=ज्या ४°५६′=२९६′ =$\frac{२९६}{७०}$=४·२३अंगुल

चन्द्रशर=८′,८ उत्तर (पृष्ठ ७०८)

=$\frac{८·८}{३}$= २·९३ अंगुल

मोक्षकाल संबंधी—

स्फुटवलन= ३°५९′ दक्षिण (पृष्ठ ७२१)

∴ ज्या ३°५९′=२३९′=$\frac{२३९}{७०}$=३·४ अंगुल

चन्द्रशर = ३′ उत्तर (पृष्ठ ७१४)
= १ अंगुल

चित्र १०३

सब के लिए (देखो पृष्ठ ७००)

भूभा का व्यासार्ध = ४३′·९७ = $\frac{४३·९७}{३}$ = १४·६६ अंगुल

चन्द्र विम्बका व्यासार्ध = १६′·६६ = १६·६६ ÷ ३ = ५·५५ अंगुल

मानैक्य खंड = ६०′·६३ = ६०·६३ ÷ ३ = २०·२१ अंगुल

मानान्तर खंड = २७′·३१ = २७.३१ ÷ ३ = ९.१ अंगुल

यहां मैंने विम्बों या शरों का अंगुलात्मक परिमाण जानने के लिए प्रत्येकको ३ से भाग दिया है और ३ कला का अंगुल समझा है जैसा कि ऊपर श्लोक ३ के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है। इस परिलेख में वलनाश्रितवृत्तका एक अंगुल १ मिलीमीटर के समान लिया जाता है और अन्य वृतों या शरों के खीचने के लिए एक अंगुल डेढ़ मिलीमीटर के समान माना जाता है।

उ पू द प = वलनाश्रित वृत्त

उ, पू, द, प, = उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पच्छिम विन्दु

स वि वी मा = समासवृत्त जिसका व्यासार्ध मानैक्यखंडके समान है।

सबसे छोटा वृत्त = चंद्रविम्ब

च = चन्द्र विम्ब, समासवृत्त और वलनाश्रित वृत्त का केन्द्र

च व = वलनाग्र रेखा अथवा वलनाश्रित-वृत्तकी त्रिज्या जिसका पूर्वविन्दुसे अंतर स्पर्शकालके स्फुटवलनकी ज्या पूके समान है।

पू च व = स्पर्शकालिक वलन

व = स्पर्श कालका वलनाग्र विन्दु

स = स्पर्शकालकी वलनाग्र रेखा और समासवृत्तका युतिविन्दु

सवि = स्पर्शकालिक चन्द्रविक्षेप या शर। यह वलनाग्र रेखाके दक्षिण की ओर खींचा गया है क्योंकि चन्द्रशर उत्तर है और यह परिलेख चन्द्र-ग्रहणका है। (श्लोक ८)

वि = स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र विन्दु अथवा स्पर्शकालिक भूछायाका केन्द्र।

वि च = स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र रेखा

सा = विक्षेपाग्र रेखा और चन्द्र विम्बका युति-बिन्दु अथवा ग्रहणका स्पर्श विन्दु।

द च वा = मध्यग्रहणकालिक वलन

च वा = मध्यग्रहणकालिक वलनाग्र रेखा (श्लोक ९)

च म = च वा रेखापर मध्य ग्रहण कालिक चन्द्र विक्षेप (श्लोक १०)

म = मध्य ग्रहण कालमें भूछायाका केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछायाके व्यासार्धसे जो वृत खींचा जाता है उसीसे मध्य-कालिक या परम ग्रासका परिमाण जाना जाता है।

प च वू = मोक्षकालिक वलन

च वू = मोक्षकालिक वलनाग्र रेखा

मा = मोक्षकालकी वलनाग्र रेखा और समासवृत्तका युति-विन्दु।

मा वी = मोक्षकालिक चन्द्र विक्षेप। यह भी वलनाग्र रेखा के दक्षिण की ओर खींचा गया है।
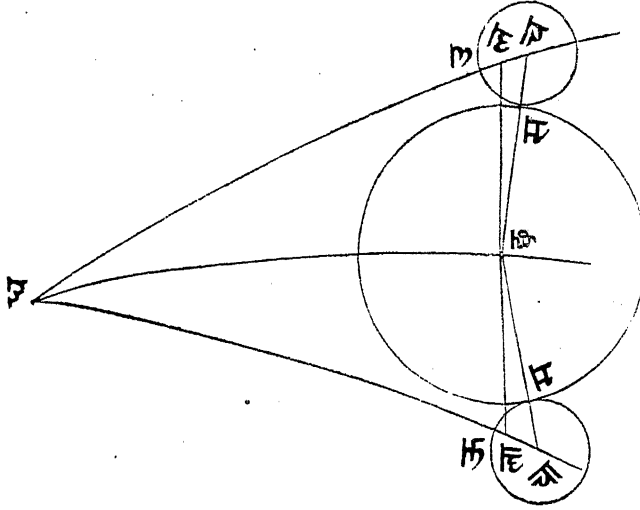
च वी = मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा

मो = मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा और समासवृत्तका युति विन्दु अथवा ग्रहणका मोक्ष विन्दु

वी = मोक्षकालिक भूछाया का केन्द्र

मु, पु = मध्य ग्रहण तथा मोक्षकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वी पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

मू पू = मध्यग्रहण तथा स्पर्शकाल के भूछाया के केन्दों म और वि पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

ख = मुपु और मू पू का युति-विन्दु

वि म वी = ख को केन्द्र और ख वि को त्रिज्या मानकर खींचा हुआ धनु जो ग्रहणकालमें भूछायाके केन्द्रका मार्ग है

(श्लोक १४-१६)

च नि अथवा च उ = मानान्तर खंड

नि = निमीलन या सम्मीलन कालमें भूछायाका केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछायाके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्र-बिम्ब को जिस विन्दुपर स्पर्श करता है वहीं सर्वग्रास ग्रहणका आरंभ होता है। (श्लोक २०-२१)

उ = उन्मीलन कालमें भूछायाका केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछायाके व्यासार्धसे जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्र-बिम्ब को जिस विन्दु पर स्पर्श करता है वहीं सर्वग्रासका अंत होता है। (श्लोक २२)

अर्वाचीन रीति से स्पर्श विन्दु की दिशा की गणना—

पाश्चात्य ज्योतिषी समप्रोत वृत्तकी दिशासे स्पर्श विन्दुकी दिशाकी गणना नहीं करते वरन् ध्रुवप्रोत वृत्तकी दिशासे स्पर्श या मोक्ष विन्दु की दिशाकी गणना करते हैं। इस लिए इनकी गणनामें स्फुटवलनके जाननेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। नीचे संक्षेपमें वह रीति भी बतला दी जाती है :—

चित्र १०४

छ = भूछाया का केन्द्र

ध = उत्तरी आकाशीय ध्रुव

च = स्पर्शकाल में चंद्रमाका केन्द्र

चा = मोक्षकाल में चद्रमा का केन्द्र

स = स्पर्श विन्दु

म = मोक्ष विन्दु

च छ ध = स्पर्शकालके चन्द्रमाके केन्द्रका ध्रुवप्रोत वृत्त

चा ऊ ध = मोक्षकाल के " " "

च = स्पर्शकालके चन्द्रविम्बका उत्तर विन्दु

ऊ = मोक्षकालके " "

छल या छला = छ से चन्द्र केन्द्रके ध्रुवप्रोतवृत्तका लम्बान्तर (Perpendicular distance)

∠ छ च स = चन्द्रमा के उत्तर विन्दुसे पूर्वकी ओर स्पर्श विन्दुकी दिशा।

∠ ऊ चा म = चन्द्रमाके उत्तर विन्दु से पच्छिमकी ओर मोक्ष विन्दुकी दिशा

च ध = स्पर्शकाल में चन्द्रविम्बके केन्द्रका ध्रुवांतर = ९०° − चन्द्रमाकी स्पर्शकालिक क्रान्ति

छ ध = भूछायाके केन्द्रका ध्रुवान्तर = ९०° − भूछाया की क्रान्ति

चा ध = मोक्षकालमें चन्द्रविम्बके केन्द्रका ध्रुवान्तर = ९०° − चंद्रमा की मोक्षकलिक क्रान्ति

यह स्पष्ट है कि स्पर्श या मोक्षकाल में चन्द्रमा भूछाया के बहुत निकट रहता है और इन दोनोंकी दूरी चछ मानैक्य खंड के समान होती है जिसका परिमाण एक अंश के लगभग होता है इसलिए इसकी तुलना में चन्द्रमा या भूछाया का ध्रुवान्तर छ ध बहुत होता है। इसलिए छ ल, छ च या छ ला, छ चा धनु को सीधी रेखाएँ तथा गोलीय त्रिभुज च छ ल या चा छ ला को सरल त्रिभुज (Plane triangle) मान लेनेमें कोई हानि नहीं हो सकती। इसी तर्क से छ ध को ल ध के समान माना जा सकता है क्योंकि च ध पर छ ल लम्ब खींचा गया है। इसलिये यदि चन्द्रमा की क्रान्ति क और भूछाया की क्रान्ति का हो तो,

च ल = च ध − ध ल = च ध − छ ध

यदि चन्द्रमा और भूछाया दोनों की क्रान्तियां उत्तर हों तो,

च ध − छ ध = (९०° − क) − (९०° − का) = का − क

और यदि दोनों की क्रान्तियां दक्खिन हों तो,

च ध − छ ध = (९०° + क) − (९०° + का)

= क − का = − का − (− क)

अर्थात् दोनों दशाओं में च ल का परिमाण जाननेके लिए भूछाया की क्रान्ति से चन्द्रमा की क्रान्ति घटानी चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि उत्तर क्रान्ति धनात्मक और दक्षिण क्रान्ति ऋणात्मक लिखी जाय।

∴ कोज्या ∠ च स = कोज्या ल च छ

$$= \frac{\text{चल}}{\text{चछ}} = \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

$$= \frac{\text{भूछायाकी क्रान्ति} - \text{चन्द्रमाकी क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

इसी प्रकार मोक्ष कालमें,

कोज्या ऊ चा म = कोज्या ऊ चा छ

$$= \frac{\text{चाला}}{\text{चाछ}} = \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

यहां इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि जब चन्द्रमा

भूछायासे उत्तर होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ९० अंशसे बड़ा होगा इस लिए इसकी कोटिज्या ऋणात्मक होगी। परन्तु जब चन्द्रमा भूछायासे दक्षिण होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ९० अंशसे छोटा होगा और इसकी कोटिज्या धनात्मक होगी। चन्द्रमा भूछायासे उत्तर तब होता है जब चन्द्रमाकी उत्तर क्रान्ति भूछायाकी उत्तर क्रान्तिसे अधिक होती है अथवा चन्द्रमाकी दक्षिण क्रान्ति भूछायाकी दक्षिण क्रान्तिसे कम होती है। इसके विपरीत दशामें चन्द्रमा भूछाया से दक्षिण होता है।

उदाहरण—अर्वाचीन रीतिसे उपर्युक्त चन्द्र ग्रहणके स्पर्श और मोक्ष विन्दुओंकी दिशाएं जानना—

चन्द्रमाकी स्पर्शकालिक क्रान्तियां ज्ञात ही हैं। इस लिए भूभा केन्द्रकी स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक क्रान्तियां जान लेनी चाहिएं।

भूभाका स्पर्शकालिक भोगांश = २९८°२९′·५ (पृ० ७१६)

अयनांश = २२°४०′

∴ भूभाका स्पर्शकालिक सायन भोगांश = ३२१°९′·५

∴ भूभाकी स्पर्शकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°९′·५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° − ३८°५०′·५)

= — ज्या २३ २७′ × ज्या ३८°५०′·५

= — ज्या·३९७९ × ·६२७२

= — ज्या·२४९६

∴ भूभाकी स्पर्शकालिक क्रान्ति = १४°२७′·३ दक्षिण

भूभाका मोक्षकालिक भोगांश = २९८°३८′·५ (पृ० ७१७)

अयनांश = २२°४०′

भूभाका मोक्षकालिक सायन भोगांश = ३२१°१८′·५

∴ भूभाकी मोक्षकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°१८′·५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° — ३८°४१′·५)

= — ज्या २३°२७′ × ज्या ३८°४१′·५

= — ३९७९ × ·६२५१

= — २४८७

∴ भूभाकी मोक्षकालिक क्रान्ति = १४°२४′ दक्षिण

इसलिए कोज्या उचस = $\frac{\text{भूछायाकी क्रान्ति − चन्द्रमाकी क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$

= $\frac{-१४°२७′·३ - (-१४°३१′·४)}{६०\text{-}६३}$

= $\frac{+४·१}{६०\text{-}६३}$ = + ·०६७६

∴ उ च स = ८६°७′

अर्थात् चन्द्र बिम्बके उत्तर विन्दुसे ८६°७′ पूर्वकी ओर ग्रहणका स्पर्श होगा।

कोज्या ऊचाम = $\frac{\text{का − क}}{\text{मानैक्य खंड}}$

= $\frac{-१४°२४′ - (-१४°२′)}{६०\text{-}६३}$

= $\frac{-२२′}{६०\text{-}६३}$ = − ·३६२९

यह मान ऋणात्मक है। इसलिये ऊचामक कोण ९० से अधिक है इसलिए जिस कोणकी कोटिज्या ३६२९ उसको १८० से घटानेपर ऊचमका मान मिलेगा।

कोटिज्या ६८°४३′ = ·३६२९

∴ ऊाचम = १८०° − ६८°४३′ = १११°१७′

अर्थात् चन्द्र बिम्बके उत्तर विन्दसे १११°१७′ पच्छिमकी ओर ग्रहणका मोक्ष होगा। नाविक पंचांगके अनुसार ग्रहणका स्पर्श उत्तर विन्दुसे ८४° पूर्व और मोक्ष उत्तर विन्दुसे ११०° पच्छिम बतलाया गया है इस अंतरका कारण यह है कि सूर्यसिद्धान्तके अनुसार क्रान्ति निकलनेकी रीति कुछ स्थूल है।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.
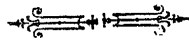
अवैतनिक संपादक

प्रोफ़ेसर ब्रजराज,

एम. ए., बी. एस. सी., एल. एल. बी.

भाग २४

तुला—मीन १९८३

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग ।

वार्षिक मूल्य, तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

अर्थ-शास्त्र

औद्योगिक रसायन

कृषिशास्त्र

गणित-शास्त्र

चिकित्सा-शास्त्र

जीव-विज्ञान

ज्योतिष

दर्शन

भूगोल

रसायन शास्त्र

वनस्पति-शास्त्र

वनस्पति शास्त्र

विद्युतशास्त्र

संगीत शास्त्र

समाज शास्त्र

साधारण